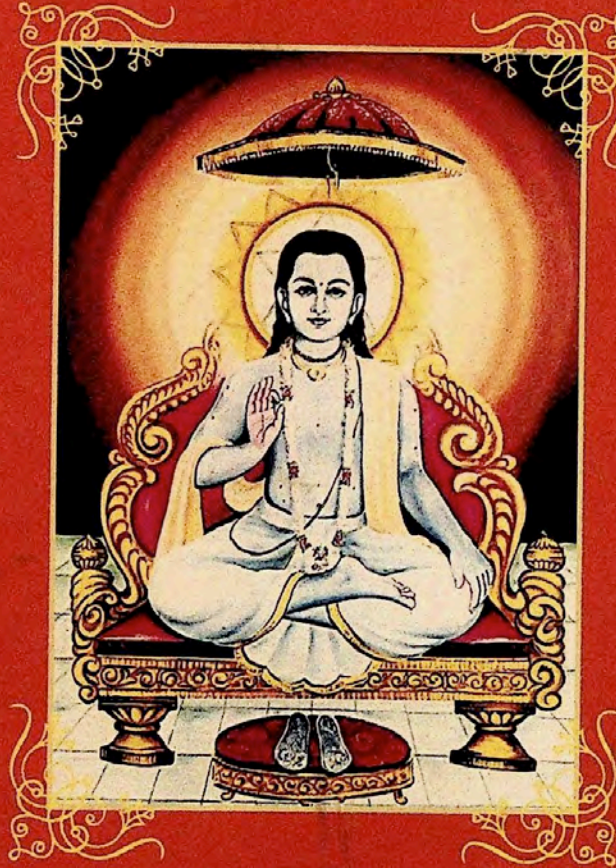


अध्यास [परपक्ष] गिरिवज्राख्यग्रन्थः

प्रथमखण्डः



आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यः

प्रकाशकः अध्यक्ष/महान्त श्रीसन्तदासजी महाराजः
श्रीराधाकृष्ण-संकीर्तन-सेवा-समितिः
श्रीनिम्बार्ककुञ्जः, श्रीराधाकृष्णमन्दिरम्, मोतीझील, वृन्दावनम्, मथुरा-281121

* श्रीराधासर्वेश्वरो विजयतेतराम् *



पूज्यपाद श्री १०८ महामुनीन्द्रभगवन्निम्बार्काचार्य्यचरणकमलाभ्यां नमः

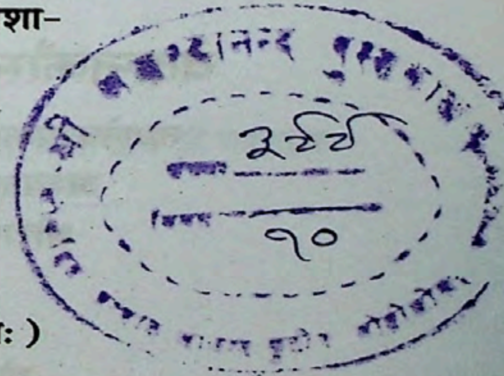
। अध्यास [परपक्ष] गिरिवज्राख्यग्रन्थः ।

प्रथमखण्डः

अनादिनिवृत्तिपथप्रवर्त्तकब्रह्मविद्योपदेशकलोकाचार्य्य श्रीसनन्दनादिप्रवर्त्तित
श्री १०८ महामुनीन्द्र भगवन्निम्बार्काचार्य्यचरणोपवृंहितवैदिकसत्सम्प्र-
दायानुगतनिखिलशास्त्रपारावारीणस्वाभाविकद्वैताद्वैतसिद्धान्तसमर्थन-
कुशल श्री १०८ माधवमुकुन्दचरणेन विरचितः

तस्य च

भगवदवतार श्री १०८ सनन्दनादिप्रवर्तित श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायानुगत श्री १०८
निखिलरसिकचक्रचूडामणि श्रीस्वामिहरिदासपदाश्रिताश्रित
श्री १०८ स्वामिनीशरण पादपद्मचञ्चरीकेण कुरुक्षेत्रान्तर्गत-
पुण्डरीग्रामलब्धजनिना श्रीवृन्दावनवास्तव्येन गौड़-
वंशावतंसश्रीशालिग्रामोपाध्यायात्मजेन तर्कादि-
शास्त्रविदुषा तर्कतीर्थतर्करत्नतर्कवागीशा-
मोलकरामशास्त्रिणा कृतया
वज्रोत्तेजिकया टीकया
समलङ्कृतः ।



भाषानुवादकस्तथा

सम्पादकश्च

पं० श्रीवैद्यनाथ झा (राष्ट्रपतिपुरस्कृतः)
(पूर्वप्राचार्यः)
श्री निम्बार्क संस्कृत महाविद्यालयस्य, वृन्दावनस्य

प्रकाशकः

अध्यक्ष/महान्त श्रीसन्तदासजी महाराजः
श्रीराधाकृष्ण-संकीर्तन-सेवा-समिति
श्रीनिम्बार्ककुञ्जः
श्री राधाकृष्णमन्दिरम्
मोतीझील, वृन्दावनम्, मथुरा-281121

* श्रीराधासर्वेश्वरो विजयतेतराम् *

पूज्यपाद श्री १०८ महामुनीन्द्रभगवन्निम्बार्काचार्य्यचरणकमलाभ्यां नमः

अध्यास [परपक्ष] गिरिवज्राख्यग्रन्थः

प्रथमखण्डः

प्रकाशन तिथिः गुरुपूर्णिमा सं० २०७१ ता० १२-७-२०१४

प्रथम संस्करण : १००० प्रतियाँ

अनुवादक एवं सम्पादक

विदेह देशजन्मा वृन्दावन वास्तव्य

पं.वैद्यनाथ झा (व्या.न्या.वे.आ.) एम.ए., साहित्यरत्न

(पूर्व प्राचार्य)

श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय

वृन्दावन

वेदान्तकौस्तुभ-प्रभाद्यनेक-ग्रन्थ-प्रकाशकः

तथानेकाप्रकाशितानुवादितानां ग्रन्थानां प्रकाशनेच्छुकश्च

अध्यक्ष/महान्त श्रीसन्तदासजी महाराजः

श्रीराधाकृष्ण-संकीर्त्तन-सेवा-समितिः

श्रीनिम्बार्क कुञ्जः

श्रीराधाकृष्णमन्दिरम्

मोतीझील, वृन्दावन, मथुरा-281121

मो. 9411258769, 8979253190

मूल्य- ` 1100/- (ग्यारह सौ रुपए)

पुस्तक प्राप्ति स्थान

श्रीनिम्बार्ककुञ्ज, श्रीराधाकृष्णमन्दिर

मोतीझील, वृन्दावन, मथुरा-281121

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रन्थ के चित्रों की सूची:-

१. **श्रीश्यामाश्याम** विराजमान श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन
२. **मंदिर में विराजमान भगवान् श्रीराधाकृष्ण जी**
श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, श्री राधाकृष्ण मंदिर, मोतीझील, वृन्दावन
३. **भव्य विशाल मंदिर में विराजमान ठाकुर श्रीयुगल विहारी जी**
श्रीनिम्बार्काश्रम, श्रीवैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर (गुजरात)
४. **दर्शनीय भव्य-विशाल मंदिर**
श्रीनिम्बार्काश्रम-श्रीवैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर (गुजरात)
५. **द्वारा प्रवर्तक अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यश्रीहरिव्यास देवाचार्य जी**
एवं उनके द्वादश शिष्यों की नामावली
६. **श्रीनिम्बार्क रत्न रसिक सम्राट् स्वामी श्री हरिदास देवजी महाराज**
७. **जगद्गुरु निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीराधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य श्री**
''श्रीजी'' महाराज की शुभाशीर्वादात्मक- मङ्गलकामना एवं उनका चित्र
८. **श्रीगोलोक धामवासी प्रातःस्मरणीय महान्त श्री नरहरिशरणजी महाराज**
निम्बार्काश्रम, श्रीवैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर (गुजरात)
९. **न्यायाचार्य-वेदान्ताचार्य श्रीमाधव मुकुन्द देवजी**
१०. **पण्डित वर वरिष्ठ श्रीअमोलकरामजी शास्त्री**
११. **विद्वद्वर वरिष्ठ श्रीगोलोक धाम निवासी महान्तवर वर श्री भीमाचार्य जी महाराज**
कर्दमाश्रम, कर्दमवाड़ी, विन्दुसरोवर रोड, सिद्धपुर (गुजरात)
१२. **महान्तवर महामण्डलेश्वर श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज**
श्रीनिम्बार्काश्रम, श्रीवैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर (गुजरात)
१३. **अनुवादक विद्वद्वर वरिष्ठ श्रीवैद्यनाथजी झा**
पूर्व प्राचार्य श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन
१४. **श्रीसन्तदासजी महाराज**
श्री निम्बार्क कुञ्ज, श्रीराधाकृष्ण मंदिर, मोतीझील, वृन्दावन
१५. अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र का प्रकाशन श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की अपूर्व सेवा है

इस ग्रन्थ में विषय सूची दो हैं जिसमें प्रकाशकीय सम्पादकीय आदि की प्रारंभ में पृष्ठ संख्या 76 तक है। इसके बाद पृष्ठ एक से ग्रन्थ की सूची प्रारंभ होती है।



श्रीश्यामाश्याम

विराजमान, श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन

सेवक-सन्तदास जी महाराज

विशेषाभार एवं मंगलमय शुभ सूचना

!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते!!

!!श्रीमदाद्याचार्य भगवते श्रीनिम्बार्काय नमः!!  !!श्री सद्गुरवे नमः!!

इस अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रन्थ के प्रथम खण्ड का प्रकाशन अगले पृष्ठों में छायाचित्रस्थ स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त मनीषी "श्रीनिम्बार्क प्रभा" ग्रंथ के रचयिता नित्य धाम - श्री गोलोकधाम निवासी प्रातः स्मरणीय महान्त प्रवर **श्रीनरहरि शरण जी महाराज**, **श्रीनिम्बार्काश्रम**- श्री वैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर (भावनगर) गुजरात की पुण्य स्मति में हो रहा है।

इसके प्रकाशन सम्बन्धी सम्पूर्ण आर्थिक व्यय की सेवा उनके ही आज्ञाकारी सुयोग्य प्रिय शिष्य भगवत्-भागवत-परमाचार्य-गुरु-सेवा परायण महामण्डलेश्वर महान्तवर सन्त **श्री मुकुन्दशरणजी महाराज श्रीनिम्बार्काश्रम- श्री वैद्यनाथमहादेव, वल्लवीपुर, भाव नगर, (गुजरात)** ने की है।

इस ग्रंथ का प्रकाशन सगुणोपासक सनातनी (वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर्यादि) सभी भक्तों की श्रद्धा-निष्ठा वृध्यर्थ एवं चतुः सम्प्रदायानुयायी सविशेषवादी समस्त वैष्णव छात्रों के वेदान्ताचार्य के परीक्षार्थियों के लिए भी परमानुकूल है।

शास्त्रीय प्रबल संस्कारों के साथ ही उत्पन्न, निगमागम की मर्यादा के पालन में निरत, श्रुतिस्मृतिसूत्र सम्मत स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त के पूर्ण पोषक, आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी की परम्परा का विस्तारण करने वाले प्रातर्वन्दनीय परमपूज्य जगद्गुरु श्रीनिम्बाकाचार्य पीठाधीश्वर जगद्गुरु निम्बाकाचार्य श्रीराधासर्वेशरण देवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज एवं समस्त निम्बार्कीय वैष्णवों-महान्तों, सन्तों एवं सद्भक्तों सभी के लिए यह शुभ प्रकाशन गौरवान्वित करने वाला और अति हर्षोल्लासवर्धक है।

अतः इस ग्रन्थ के प्रकाशन के पूर्ण सहयोगी श्रद्धेय सन्त श्रीमुकुन्दशरण जी महाराज पुनः पुनः धन्यवाद एवं प्रशंसा के सुपात्र हैं।

आभारी

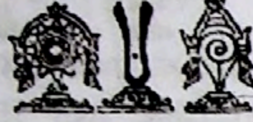
प्रकाशक - महान्त सन्तदास

विशेष सूचना - इसके साथ ही मैं यह भी सूचित करता हूँ कि श्रीनिम्बार्क-वेदान्त से शास्त्री-आचार्य के प्रमाणित परीक्षार्थी छात्र-छात्राओं एवं श्रीनिम्बार्क-वेदान्त के शोधार्थी छात्रों को पी-एच. डी. की डिग्री हेतु श्रीराधाकृष्ण-संकीर्त्तन- सेवा-समिति, श्रीनिम्बार्ककुञ्ज, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, मोतीझील, वृन्दावन से प्रकाशित श्रीनिंम्बार्क-ब्रह्मसूत्रभाष्य, श्रीवेदान्तकौस्तुभ का विस्तृत भाष्य श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्यकृत वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा एवं अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ये दोनों पुस्तकें निःशुल्क ही दी जायँगी।

प्रकाशकीय

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

भगवते श्रीमदाद्याचार्यश्रीनिम्बार्काचार्याय नमः



श्रीसद्गुरुवे नमः

॥ मंगलाचरण ॥

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥
गोप-गोपाङ्गनावीतं सुरद्रुम तलाश्रितम्।
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम्॥
कालिन्दीजल कल्लोल सङ्गिमारुतसेवितम्।
चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः॥
वेणुवादनशीलाय गोपालायाहि मर्दिने।
कालिन्दीकूललीलाय लोल-कुण्डलधारिणे॥
वल्लवीनयनाम्भोज मालिने नृत्यशालिने।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः॥

(गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्)

स्वभावतोऽपास्त समस्त दोष-
मशेष कल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरंवरेण्यं,
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥ ४॥
अङ्गेतुवामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम॥५॥

आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य कृत वेदान्तदशश्लोकी नं. ४-५

भीमाचार्यं गुरुं वन्दे करुणावरुणालयम्।
यस्यकृपाप्रसादेन राधाकृष्णोऽभवत् प्रियः॥

वेद निखिल वाङ्मय का मूल स्रोत है। यहीं से सम्पूर्ण शास्त्रों एवं साहित्यों की निर्झरिणी प्रवाहित होती है। ज्ञान-राशि स्वरूप वेद ज्ञान-विज्ञान का अक्षुण्ण भण्डार हैं अथवा यों कहा जाय कि घट में मृत्तिका एवं पट में तन्तु के समान वेद भारतीय संस्कृति में ऐसे ओत-प्रोत है कि दोनों को एक दूसरे से पृथक् करना कठिन ही नहीं असम्भव है। अतः वेद का ज्ञान प्रत्येक भारतीय के लिए परमावश्यक है। वेद-ज्ञान के बिना भारतीयता अधूरी है।

वैदिक-स्रोत या वैदिक-चिन्तन के आधार पर ही प्राचीनकाल में ऋषियों ने तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए दर्शनशास्त्र की रचना की। ये सभी दर्शनशास्त्र जिज्ञासुजनों को पठनार्थ प्रयास करने पर आसानी से भारतवर्ष में अनेकों जगहों से प्राप्त हो जाते हैं।

दर्शनशास्त्र की परिभाषा :

जिस शास्त्र के द्वारा आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, परलोक, पुनर्जन्म एवं मोक्ष संबंधी जानकारी प्राप्त हो उसे दर्शनशास्त्र कहते हैं।

दर्शन के भेद – दर्शनशास्त्र दो प्रकार के होते हैं :-

आस्तिक एवं नास्तिक।

आस्तिक दर्शन :-

जो दर्शन वेद को प्रमाण मानकर चलते है, वे आस्तिक दर्शन कहलाते है। इन्हें षड्दर्शन भी कहते हैं वे ये हैं - (१) न्याय (२)वैशेषिक (३) सांख्य (४) योग (५) मीमांसा (६) वेदान्त

नास्तिक दर्शन :-

चार्वाक्, जैन, बौद्ध।

१. न्याय-दर्शन के आदि आचार्य महर्षि गौतम जी थे।
२. वैशेषिक-दर्शन के आचार्य मिथिला निवासी महर्षि कणाद थे।
३. सांख्य-दर्शन के आदि आचार्य कपिल मुनि थे।
४. योग-दर्शन के आद्याचार्य महर्षि पतञ्जलि थे।
५. मीमांसा-दर्शन के आद्याचार्य जैमिनि ऋषि थे। ये भगवान् वेद व्यासजी के शिष्य थे।
६. वेदान्त दर्शन - वेद अनादि हैं, अतः इसके आचार्य भी वही हैं जो अनादि हैं। वेदान्त वेद का ही अंश है। अतः इसके आचार्य भगवान् वेदव्यास जी ही हैं।

टिप्पणी :- दो तरह के सांख्य सिद्धान्त शास्त्रों में उपलब्ध हैं। श्रीमद्भागवतजी के तृतीय स्कन्ध के अध्याय २५ से अध्याय ३३ तक माता देवहुति एवं भगवान् कपिल के संवाद में भगवान् विष्णु के अवतार कपिल भगवान् ने अपनी माता को जो सांख्य का उपदेश दिया है, उसमें जगत्कर्ता ईश्वर को स्वीकार किया गया।

उपर्युक्त दर्शनाचार्यों के अणु–परमाणु तत्त्वों, ईश्वर आदि के संबंध में उनके मतों में विभिन्नतायें हैं। उन सब दर्शनों का विशद् रूप में वर्णन है। अतः इस प्रकाशकीय में विशेष रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता।

वेदान्त–दर्शन का परिचय :- वेदान्त मुख्यतया उपनिषद् को ही कहते हैं। वेद माने ज्ञान का जहाँ अन्त हो अर्थात् पराकाष्ठा होती है – उसे वेदान्त कहते हैं। जिसमें अध्यात्म का सर्वोच्च ज्ञान हो वह वेदान्त कहलाता है। अध्यात्म का सर्वोच्च ज्ञान उपनिषदों में ही है। उपनिषद् वेदों के ही अन्तिम भाग हैं। इसलिए ये भी वेदों की तरह अनादि, अपौरुषेय; वेद की तरह स्वतः प्रमाण हैं। इसकी प्रामाणिकता के लिये प्रमाणान्तर की अपेक्षा नहीं होती। ईश्वर के सम्बन्ध में जीव के विषय में तथा मोक्ष के स्वरूप में उपनिषदों के निर्णय अकाट्य माने गये हैं। उपनिषदों की भाषा अति निगूढ है, अत्यन्त कठिन है। अतः सर्वसाधारण जनों द्वारा अग्राह्य होने के कारण भगवान् वेदव्यास ने उनका परम तात्पर्य अपने द्वारा निर्मित ब्रह्मसूत्र में व्यक्त किया है। इस दृष्टि से ब्रह्मसूत्र का वेदान्त में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अतः भक्ति एवं ज्ञान की विशुद्ध जानकारी के लिए उपनिषद् के साथ–साथ ब्रह्मसूत्र का भी अध्ययन या उसका पाठ करना जिज्ञासुओं के लिए परमावश्यक है।

ब्रह्मसूत्र – ब्रह्मसूत्र भी अति संक्षिप्त होने से साधारण जनों द्वारा अज्ञेय है। इसका निर्माण वेदान्त का स्पष्ट अनुभव करने, उपनिषदों का परम तात्पर्य समझने के लिये ही किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता:- श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद् रूप है। उपनिषदों का भी सार तत्त्व है। सर्ववेदमयी –सर्वशास्त्रमयी है। "या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता" है। यह गीता भगवान् के मुख–कमल से निःसृत है इस भारतवर्ष में या सम्पूर्ण विश्व में भगवान् श्रीकृष्ण की श्रीमद्भगवद्गीता जैसा दूसरा ग्रन्थ नहीं है। श्रीमद्भवद्गीता के श्लोकों का सही अर्थ समझने के लिए बिल्कुल निर्मल हृदय चाहिये। साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों

है और षडदर्शनों में जो सांख्य–दर्शन है, उस दर्शन में ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है। उनका भी नाम कपिल मुनि ही था। उनके दर्शन में प्रकृति–पुरुष यानी स्त्री और पुरुष के संयोग से, बिना ईश्वर के सृष्टि मानी गई है। इस मान्यता के खण्डन में भगवान् शंकराचार्य सहित सभी आचार्यों ने लिखा है कि अनीश्वरवादी – जो ईश्वर को नहीं मानते थे, पर वेद को मानते थे। भगवान् विष्णु के अवतार कपिल से भिन्न थे। भगवान् कपिल का जन्म गुजरात प्रान्त के सिद्धपुर नामक स्थान में हुआ था। उनके स्थान को कर्दम आश्रम कहते हैं और यह सरस्वती नदी के किनारे था। कर्दमजी ने वहीं तप किया था। मेरे गुरु स्थान का नाम कर्दम आश्रम है। स्थान के पास ही विन्दु सरोवर है। यही मेरा गुरु स्थान है। मेरे सद्गुरुदेव प्रातः स्मरणीय विद्वद्वर वरिष्ठ **श्रीभीमाचार्यजी महाराज** कर्दमाश्रम (कर्दमवाड़ी) के महान्त थे। यह स्थान विन्दु सरोवर रोड के साथ ही है।

की अनन्य भक्ति के बिना, उनकी पूर्ण कृपा के बिना श्रीमद्भगवद्गीता जी का वास्तविक अर्थ नहीं समझा जा सकता। जिसकी समस्त वासनायें शान्त हैं, जिसको भगवान् श्रीकृष्ण के अलावा किसी भी प्रकार की आकांक्षा नहीं है, उसी को श्रीमद्भगवद्गीता प्रिय होती है और वे ही उसका निरन्तर अध्ययन एवं चिन्तन करते हैं।

इस प्रकार मुख्यतया वेदान्त के तीन ग्रन्थ हैं। (१) उपनिषद् (२) ब्रह्मसूत्र (३) श्रीमद्भगवद्गीता। इन तीनों ग्रन्थों को प्रस्थानत्रयी कहते हैं। प्रस्थानत्रयी के अनुकूल जो अपने मत या सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। वे ही जगत् गुरु की उपाधि से अलंकृत होते हैं।

वैदान्तिक दार्शनिक प्रास्थानिक आचार्यों में श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीशङ्कराचार्य श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीरामानन्दाचार्य, श्रीबलदेव विद्याभूषण आदि आचार्य–जिनका वैदान्तिक भाष्य है, जिनकी विचारधारा के अनुयायी तथा जिनके वेदान्त की शास्त्रीय मान्यतायें भी विद्यमान हैं, भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं।

इनमें श्रीशंकराचार्यजी महाराज का दार्शनिक सिद्धान्त केवलाद्वैत है। इनके मत में एक मात्र सजातीय, विजातीय स्वगत त्रितय भेद विवर्जित शुद्ध–बुद्ध निर्धर्मक निर्विशेष चैतन्य स्वभाव ब्रह्म ही एकमात्र त्रिकालाबाधित सत्य तत्त्व है। जीव–जगत् नाम की कोई वस्तु सत्य नहीं है। उस ब्रह्म में न कोई धर्म है न कोई गुण है, न कोई उसका आकार है। वह "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" है। वह सत्य भी भाव रूप नहीं, मिथ्या भाव है। आनन्द भी दु:खाभाव है।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:'।

एक पक्ति में उन्होंने सार सिद्धान्त कह दिया है।

सभी वैष्णवाचार्य एवं सारा भक्ति जगत् इस मान्यता का विरोधी है। वैष्णवाचार्यों के मत में ब्रह्म अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक, कल्याणगुणसागर तथा असमोर्ध्व, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य आदि गुणगण विशिष्ट सच्चिदानन्दमय विग्रह एवं विविध विचित्र संस्थान, विचक्षण अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं।

टिप्पणी - त्रितय शब्द का स्पष्टीकरण :- श्रुति ब्रह्म सूत्र स्मृतियाँ चिदचिद् स्वरूप तत्त्वत्रयी विधायिनी ब्रह्मसूत्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी ने ब्रह्मसूत्र में लिखा है– जिज्ञास्य ब्रह्म, जिज्ञासुजीव, उसके अज्ञान मूल रूपा त्रिगुणात्मिका माया– इसे तत्त्वत्रय कहते हैं। जैसे उपभोक्ता जीव, भोग्य प्रकृति, प्रेरिता परमात्मा ये सब त्रिविध ब्रह्म हैं। जैसे–जीव ब्रह्म, माया ब्रह्म और परब्रह्म। जीव और माया (जगत्) को लेकर परब्रह्म परिपूर्ण है। वस्तुत: जीव और जगत् परब्रह्म के अंश हैं। जैसे–स्वयं श्रीभगवान् ने श्रीगीताजी मैं कहा है। ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: (श्रीगीताजी १५–७) विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् (गीता १०–४२) हे अर्जुन जीव मेरा ही अंश है। जीव सनातन है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरे एक अंश से स्थित है। जीव काल कर्म देहोऽयम् पाञ्च भौतिक: है।

श्रीशङ्कराचार्यजी महाराज जहाँ एक निर्धर्मक चिन्मात्र ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पारमार्थिक तत्त्व नहीं मानते, वहाँ श्रीनिम्बार्काचार्य ब्रह्म–जीव–जगत् तीन शाश्वत तत्व मानते हैं। जैसा कि श्रुति–वचन है– "भोक्ता–भोग्यं प्रेरितारंचमत्त्वा प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश:"।

भोक्ता–जीव, भोग्यजगत् एवं प्रेरिता ईश्वर इन तीन तत्वों का श्रुति में स्पष्ट उद्घोष है। केवल एक श्रुतिमात्र ही नहीं, इस प्रकार की अनेक श्रुतियाँ, अनेक स्मृतियाँ एवं पौराणिक वचन उपलब्ध हैं; जिन प्रमाणों के आधार पर केवलाद्वैतवादियों का एक तत्त्ववाद खण्डित हो जाता है।

यह ज्ञातव्य है कि श्रीनिम्बार्काचार्य के ये तीन तत्त्व योगदर्शन की तरह स्वतंत्र तत्त्व नहीं अपितु एक ही सर्वतन्त्र–स्वतन्त्र तत्त्व ब्रह्मतत्त्व की अपृथक् सिद्ध, भिन्नाभिन्न स्वभाव शक्ति विशेष है। फलतः इस मत में भी एक ही तत्त्व सिद्ध होता है–फिर भी तत्त्वत्रय है।

यहाँ ज्ञातव्य है कि इस विषय में सभी वैष्णवाचार्य एक मत हैं। श्रीरामानुजाचार्यजी आदि सभी वैष्णवाचार्य जीव–जगत्–ब्रह्म तीन तत्त्व शाश्वत तत्त्व मानते हैं। सभी वैष्णवाचार्य ब्रह्म को सगुण–साकार–जगत् को सत्य मानते हैं। विष्णु को परम तत्त्व मानते हैं। सभी भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हैं। भक्ति को साध्य एवं साधन मानते हैं। सबके मत में भक्ति शरणागति–प्रपत्ति ये सर्वोपरि साधन मान्य हैं। अन्तर केवल जीव और ब्रह्म के संबंध में है। श्रीरामानुजाचार्यजी, श्रीमध्वाचार्यजी, श्रीरामानन्दाचार्यजी आदि सभी प्रणम्य आचार्य जीव और ब्रह्म में भेद मानते हैं। इस विषय में श्रीनिम्बार्काचार्य जी का इन सबसे मत भेद है।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी की विशेषता–

श्रीनिम्बार्काचार्यजी की यही सर्वोपरि विशेषता है कि वे श्रुति के एक–एक अक्षर को, पद को वाङ्मय को ईश्वर के तुल्य समादर करते है।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी का इस विषय में किसी से समझौता नहीं है। उनका कथन है कि जब श्रुतियों में भेद–अभेद दोनों की प्रतिपादक अनेकानेक श्रुतियाँ–स्मृतियाँ, पुराणादि के वचन हैं, तो केवल भेद कैसे माना जा सकता है। यदि "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" आदि अनेक भेद प्रतिपादक श्रुतियाँ हैं तो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि" आदि अभेद प्रतिपादक वाक्य भी तो अनेकानेक विद्यमान हैं। उनका अपलाप कैसे किया जा सकता है। उनको मिथ्या कैसे कहा जा सकता है। ब्रह्म जहाँ अनन्त गुणगण निधान है, सगुण–साकार है; वही जीव और ब्रह्म का स्वाभाविक भेदाभेद संबंध भी है। यह स्वाभाविक भेदाभेदवाद श्रीनिम्बार्काचार्यजी का सर्वविलक्षण श्रुति–स्मृति–पुराणादि–सिद्ध सिद्धान्त है। इसके बिना श्रुतियों का सामञ्जस्य नहीं होता। एक श्रुति को प्रबल मानना, दूसरे को निर्बल; एक को सही, दूसरे को गलत– यह अनुचित है। जबकि दोनों का सामञ्जस्य सम्भव है।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि यह श्रौतभेद, अभेद, तार्किक भेद या अभेद नहीं है। सूत्रकार भगवान् वेदव्यास ने "उभयव्यपदेशात्त्वहि कुण्डलवत्" सूत्र में प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ब्र०सूत्र ३–२–२७, ३–२–२८ में स्वाभाविक भेदाभेद का समर्थन किया है। यदि तादात्म्य सम्बन्धावछिन्न प्रतियोगिता में

अभावरूप भेद माने तो संभव नहीं है क्योंकि सारा जीव ब्रह्मात्मक तत्त्व "पुरुष एवेदं सर्वं" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियों द्वारा ब्रह्मात्मक माना गया है। फिर उससे ब्रह्म का तार्किक भेद या अभेद कैसे संभव हो सकता है। अत: श्री निम्बार्क मत में, (श्रौत मत में) तार्किक भेद ग्राह्य नहीं। किन्तु ब्रह्मात्मकत्व परिपन्थित्वा भाव विशिष्ट तत् वस्तुगत विलक्षण प्रतीति एवं विलक्षण कार्यकारिता का निर्वाहक भावरूप या अभावरूप धर्म विशेष भेद यहाँ मान्य है। इस विषय में गोलोकवासी पण्डितप्रवर श्रीभगीरथजी झा द्वारा निर्मित द्वैताद्वैत विवेक तथा श्रीगोपालतापिनी उपनिषद् के भाष्य रूप वेदान्त-तत्त्व-समीक्षा ग्रन्थ देखना चाहिये।

श्री निम्बार्काचार्यजी के स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त से श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय (गौड़िय सम्प्रदाय) के सिद्धान्त मिलते है, इनमें मतभेद नहीं हैं।

शांकर मत एवं वैष्णवाचार्यों के मत में परस्पर के भेद का विवेचन :-

प्रमाण- वैष्णवाचार्य तीन प्रमाण मानते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान। श्रुतियों में ३ प्रमाणवादियों की संख्या सर्वाधिक है। सभी धर्मशास्त्रकार ३ प्रमाण ही मानते हैं। शङ्कराचार्यजी छ: प्रमाण मानते हैं।

ब्रह्म- शांकर मत में निर्गुण निराकार ही सिद्धान्त में मान्य है। सभी वैष्णवों के मत में भगवान् को सगुण-साकार मानते हैं।

जगत् - शांकर मत में जगत् मिथ्या है, ब्रह्म का विवर्त है-भ्रम है। वैष्णव मत में जगत् सत्य है, ब्रह्म का परिणाम-लीला विलास है।

मोक्ष - शांकर मत में स्व स्वरूपावाप्ति मोक्ष है। वैष्णव मत में भगवद् भावापत्ति मोक्ष का स्वरूप है। विशेष रूप से विशुद्ध जानकारी आचार्यों के ग्रन्थों में द्रष्टव्य है।

तत्त्वज्ञान- शांकर मत में जीव ब्रह्म का ऐक्यज्ञान तत्वज्ञान है। वैष्णव मत में पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव की परात्परता का ज्ञान तत्त्वज्ञान है।

मोक्षसाधन - शांकरमत में 'तत्वमसि' आदि महावाक्यों द्वारा जीव-ब्रह्म के ऐक्य ज्ञान का अनुसंधान ही साधन है। वैष्णव-मत में साक्षात् नारायण श्रीकृष्ण की गीता के अनुसार भजन ही भक्ति है, मोक्ष का परम साधन है।

ब्रह्म का स्वरूप- शांकरमत में ब्रह्म का स्वरूप सजातीय-विजातीय-स्वगत त्रितय भेद विवर्जित शुद्ध-बुद्ध निर्धमक, निराकार, ज्योति स्वरूप है। वैष्णव मत में अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक, कल्याण-गुणगण निलय ब्रह्म-रुद्र-इन्द्रादि कोटि किरीटेडित पादपीठ पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण-श्रीराम तथा श्रीमन्नारायण हैं।

ब्रह्मसूत्र से मण्डित वैष्णवाचार्यों में भी कुछ मत भेदः-

जैसे :- द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद। ब्रह्मसूत्र के ही आधार पर श्रीशङ्कराचार्यजी का भी अद्वैत मत है।

द्वैतवाद- जो मत दो तत्त्व सत्य माने वह द्वैतवादी है। द्वैतवादी सबसे अधिक हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग तथा माध्व दर्शन ये द्वैतवादी हैं। जीव और ईश्वर दोनों तत्त्व शाश्वत हैं, परस्पर भिन्न हैं। जीवात्मा प्रति शरीर में भिन्न एवं नाना प्रकार का है, अल्पज्ञ है एवं अल्पशक्तिमान है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सबका शासक एक है। श्रीशङ्कराचार्यजी के अद्वैत मत में दो नहीं, एक ही तत्त्व शाश्वत है और सब मिथ्या है, जगत् की व्यावहारिक मात्र सत्ता है।

विशिष्टाद्वैत :- श्रुति का वचन है – "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" एक मात्र अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है, पर वह अद्वैत श्रीशङ्कर की तरह निर्विशेष नहीं चित्, अचित् विशिष्ट है। चित्-अचित् इनके विशेषण हैं। जीव ब्रह्म एवं जगत् ब्रह्म में विशेष्य-विशेषण भाव है। जीव-जगत् विशेषण हैं। जीव देह है, ब्रह्म देही है। जीव-जगत् शेष हैं ब्रह्मशेषी हैं उनमें परस्पर विशेष्य विशेषण एवं शेष-शेषी भाव सम्बन्ध है। ब्रह्म सगुण है, निर्गुण श्रुति हेय गुण निषेधपरक है। सगुणश्रुति यथार्थ प्रतिपादक है। भेदश्रुति सकलश्रुति समर्थित है। श्रीमन्नारायण परात्पर तत्व हैं। प्रपत्ति ही परमात्मा का प्रापक है।

शुद्धाद्वैत – शुद्धाद्वैत श्रीबल्लभाचार्य जी का मत है। प्रकारान्तर से शुद्धाद्वैत माने श्रीकृष्णाद्वैत। श्रीकृष्ण ही "लोकवत्तु लीलाकैवल्यं" के अनुसार लीला विहार के लिये ही जगत् के रूप में परिणत होते हैं। पर जगत् रूप में परिणत होने पर भी ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। अविकृत परिणामवाद स्वीकृत है। भेद भी स्वाभाविक अभेद भी स्वाभाविक है। यह शुद्धाद्वैत मार्तण्ड ग्रन्थ में लिखा है।

अध्यास (परपक्ष) गिरिव्रज की भूमिका :-

प्रस्थानत्रयी पर सभी आचार्यों के दार्शनिक भाष्य हैं। ये दार्शनिक भाष्य भी सभी आचार्यों के नाम पर उनके दर्शन ही कहे जाते हैं। आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क की ब्रह्म सूत्र भाष्य पर "वेदान्त-पारिजात-सौरभ" नामक संक्षिप्त वृत्ति है। इनका सिद्धान्त स्वाभाविक भेदाभेद या द्वैताद्वैत है। स्वाभाविक द्वैताद्वैत को ही भिन्नाभिन्न भी कहा जाता है। श्रीनिम्बार्काचार्यजी को आचार्यों में सबसे प्राचीन मानते हैं। आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क के ब्रह्मसूत्र की संक्षिप्त वृत्ति के आधार पर उनके प्रधान शिष्य श्रीनिवासाचार्यजी ने ब्रह्मसूत्र भाष्य की विस्तृत व्याख्या कर "वेदान्त-कौस्तुभ" नामक दर्शन की रचना की, जो आचार्यों के दर्शनों में श्रीनिम्बार्क-दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। वेदान्त परिजात सौरभ एवं वेदान्त कौस्तुभ भाष्य में कहीं भी श्रीशङ्कराचार्यजी का नाम तथा उनके दर्शन के खण्डन की चर्चा है ही नहीं। श्रीशङ्कराचार्यजी के शांकर वेदान्त में स्पष्ट रूप से श्रीनिम्बार्काचार्यजी के सिद्धान्त का खण्डन है। अतः इन्हीं कारणों से श्रीनिर्म्बार्काचार्यजी का श्रीशङ्कराचार्यजी से प्राचीनत्व सिद्ध है।

ऐसी चर्चा पूर्व के आचार्यों या सन्तों द्वारा होती आई है।

"वेदान्त-पारिजात-सौरभ" एवं वेदान्त कौस्तुभ के आधार पर ही जगद्गुरु निम्बर्काचार्य श्री केशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी ने विलक्षण व्याख्याकर "वेदान्त -कौस्तुभ-प्रभा" नामक भाष्य की रचना की। इस प्रभावृत्ति की रचना भी संस्कृत भाषा में ही है।

श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी के रचित "वेदान्त-कौस्तुभ प्रभा की टीका विद्वद्वरेण्य श्रीनिम्बार्कीय पण्डित श्रीअमोलकरामजी शास्त्री ने संस्कृत भाषा में ही की है। जिसका नाम भावदीपिका है वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा" की टीका का हिन्दी में अनुवाद विद्वद्वर पंडित श्रीवैद्यनाथजी झा ने किया था। जिसका प्रकाशन बहुत ही कठिनाई से मैंने सन् 2006 में कराया था। ऊपर की पंक्तियों में लिखकर मैंने सिद्ध किया है कि "वेदान्त-पारिजात-सौरभ" एवं "वेदान्त-कौस्तुभ" आदि ग्रन्थ उस समय लिखे गये थे जब शांकर भाष्य की रचना नहीं हुई थी। मायावाद, विवर्तवाद, अवच्छेदवाद आदि का प्रचार नहीं हुआ था। द्वैताद्वैत का खण्डन किसी ग्रन्थ में नहीं था। श्रीशङ्कराचार्यजी के बाद उक्त विचारधाराओं का प्रबल-प्रचार हुआ। शांकर भाष्य में भामती आदि ग्रन्थों में द्वैताद्वैत मत का खण्डन हुआ था। अतः इन सबका निराकरण करने के लिए एक प्रौढ़ भाष्य-ग्रन्थ की अतीव आवश्यकता थी; जिसकी पूर्ति 13वीं सदी में होने वाले जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी ने वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा ब्रह्मसूत्र-वृत्ति लिखकर की। इस ग्रन्थ में मायावादियों के अध्यासवाद, निर्विशेष ब्रह्मवाद, निःसम्बोधि मोक्षवाद, अवच्छेदवाद, प्रतिविम्ब वाद आदि का खण्डन तत्-तत् सम्बन्धित सूत्रों में प्रस्थानत्रयी के आधार पर अतिविस्तार से दार्शनिक प्रौढ़ भाषा में किया गया है। सर्वप्रथम ग्रन्थ के आदि में प्रथम सूत्र की व्याख्या में अध्यासवाद के खण्डन में उन्होंने अति कर दी है। इसके अलावा उपर्युक्त अन्यान्य विषयों का भी सम्बन्धित सूत्रों की व्याख्या में श्रीशांकर विचारधारा की डटकर समीक्षा की है उनके निर्विशेष ब्रह्मवाद आदि सिद्धान्तों को श्रुति-स्मृति, गीता आदि के विरुद्ध सिद्ध कर दिया है जो देखने लायक है। श्रीशांकर मत समीक्षा के लिये यह अद्भुत ग्रन्थ है और समस्त वैष्णव सम्प्रदायानुयायियों के लिये भी नितान्त पठनीय है। श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी श्रीनिम्बार्काचार्यजी की आचार्य परम्परा में ३३वीं पीढ़ी में हुए थे।

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र का परिचय

आद्याचार्य जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य जी के स्वाभाविक भेदाभेदवाद के समर्थक ग्रन्थों जैसे भगवान् निम्बार्क द्वारा रचित "वेदान्त दशश्लोकी एवं वेदान्त पारिजात सौरभ" इन्हीं के प्रिय शिष्य श्रीनिवासाचार्यजी का "वेदान्त-कौस्तुभ" भाष्य (श्री निम्बार्क दर्शन), सातवें आचार्य श्री पुरुषोत्तमाचार्य की "वेदान्त-रत्न-मञ्जूषा" (श्री वेदान्त दशश्लोकी भाष्य) सोलहवें आचार्य श्रीदेवाचार्यजी की 'सिद्धान्त जाह्नवी,' १७वें आचार्य श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी की सिद्धान्त जाह्नवी की टीका "सिद्धान्त

सेतुका" ३३वें आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी द्वारा संस्कृत भाषा में रचित "वेदान्त कौस्तुभप्रभा" के अलावा आद्याचार्य श्रीनिम्बार्काचार्य जी की परम्परा में स्वाभाविक भेदाभेदवाद के सैद्धान्तिक ग्रन्थ और भी हैं, जो कुछ प्राप्त हैं और कुछ अप्राप्त हैं।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थों से प्रमाणित महान् विद्वान् पंडित प्रवर श्रीमाधव मुकुन्ददेवाचार्य जी ने अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र नामक ग्रंथ की रचना की। इसे न्याय की भाषा में लिखा गया है, जो अत्यन्त क्लिष्ट ग्रन्थ है। जिस ग्रंथ की टीका भी परम नैयायिक महान् विद्वान् श्रीअमोलकरामजी शास्त्री ने संस्कृत भाषा में ही की है। जिस टीका का नाम 'वज्रोत्तेजिका' है। अध्यास गिरिवज्र ग्रन्थ की हिन्दी टीका भी बहुत प्रार्थनापूर्वक प्रयास करने पर श्रीवैद्यनाथजी झा ने बहुत ही अच्छी प्रकार से की है। यद्यपि आँखों में दृष्टि का अभाव एवं शरीर प्रायः अस्वस्थ रहने पर भी श्रीझा जी ने यह कार्य किया। श्रीझा जी महाराज नव्यन्याय का अध्ययन पहले कर चुके हैं। अतः इन्होंने इस ग्रन्थ के अनुवाद में पूर्ण सफलता प्राप्त की जो विद्वानों के लिए बहुत ही उपयोगी है। अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र के हिन्दी अनुवाद के साथ ही श्रीअमोलकराम शास्त्रीजी की वज्रोत्तेजिका टीका भी साथ में छपी है। सबसे ऊपर विद्वद्वर श्री माधवमुकुन्ददेवाचार्यजी का मूल संस्कृत, उसके नीचे श्रीअमोलकरामजी की संस्कृत टीका 'वज्रोत्तेजिका', उसके नीचे श्री झा जी महाराज द्वारा हिन्दी अनुवाद। प्रकाशन का क्रम यही है।

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र के दो खण्ड:-

अध्यास (परपक्ष गिरिवज्र) दो खण्डों में छप रहा है। अभी पहला खण्ड तैयार हो चुका है। पहले खण्ड को उपोद्घात ग्रन्थ कहते हैं। उपोद्घात ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका २३ हैं। अध्यास (परपक्ष) का अर्थ श्रीशंकराचार्यजी का सैद्धान्तिक पक्ष है। इस पक्ष को एक पर्वत के समान माना गया है। उस पर्वत के कई शिखर हैं। उन अध्यास गिरि रूपी शिखरों को अकाट्य श्रुतियों का प्रमाण देकर वज्र के

टिप्पणी –

जगदगुरु श्री निम्बार्काचार्यजी की परम्परा के सोलहवें आचार्य श्रीदेवाचार्यजी का "सिद्धान्त जाह्नवी" नामक ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र का चतुः सूत्री भाष्य है, जिसकी रचना संस्कृत भाषा में ही है। उन्हीं के शिष्य श्री सुन्दर भट्टाचार्यजी की "सिद्धान्त सेतुका" नामक ग्रन्थ सिद्धान्त जाह्नवी की संस्कृत टीका भी है। इन दोनों ग्रन्थों का अनुवाद होना भी परमावश्यक है। मैंने आदरणीय श्री वैद्यनाथजी झा से सानुग्रह प्रार्थना किया था। ये स्वीकार कर कुछ हिन्दी टीका कर चुके हैं। विशेष ठंढक होने एवं अस्वस्थ रहने के कारण अनुवाद करना बन्द कर दिये हैं, आशा है– ठंढक समाप्त होने एवं स्वस्थ हो जाने पर सिद्धान्त जाह्नवी की पूर्ण हिन्दी टीका कर लेंगे। मैं भी श्री श्यामाश्यामजी से प्रार्थना करता हूँ कि श्री झाजी महाराज पूर्ण स्वस्थ रहें जिससे और ग्रन्थों का प्रकाशन भी हिन्दी में हो जाय। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के सैद्धान्तिक बहुत ग्रन्थ हैं, प्राचीन हैं। सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही हैं। आज के समय में लोगों के लिए हिन्दी भाषा में अनुवाद नहीं होने से अनुपयोगी जैसे हो गये हैं।

समान चोट करके उन्हें गिराया है। निपात का अर्थ गिराना है। पूजनीय श्री माधवमुकुन्ददेवाचार्यजी के ग्रन्थ की संस्कृत टीका विद्वद्वर वरिष्ठ श्रीअमोलकरामजी ने की है, जिसका नाम 'वज्रोत्तेजिका' है। यानी प्रात: स्मरणीय माधवमुकुन्दजी के वज्र को श्रुतियों का प्रमाण देकर उसका विशेष विश्लेषणकर और उत्तेजितकर दिया। अर्थात् और प्रेरित कर दिया। अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र का दूसरा खण्ड भी छप रहा है। दूसरे खण्ड को तैयार होने में साल भर लग जायगा। देर होने का मूल कारण है कि इन कठिन ग्रन्थों के प्रकाशन सम्बन्धी कार्य के लिये विद्वान् बहुत ही कम मिलते हैं; बहुत ही कठिनाइयों से ग्रन्थ छप कर तैयार हो रहा है।

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रंथ के प्रकाशन का मूल कारण :-

परपक्ष गिरिवज्र (अध्यास गिरिवज्र) यह ग्रन्थ भी ब्रह्मसूत्र की व्याख्या में लिखा गया है। परन्तु इसमें श्रीशङ्कराचार्यजी के केवलाद्वैत सिद्धान्त के मूल आधार अध्यास की जबर्दस्त समीक्षा है। श्रीशङ्कराचार्य का विवर्तवाद अध्यास पर निर्भर है। अध्यास का अर्थ है-भ्रम। जैसे रज्जु में सर्प, शुक्ति (सीप) में रजत भ्रम है, मिथ्या है अतात्विक है, उसी प्रकार शांकर सिद्धान्त में जगत् भ्रम है, धोखा है, कुछ नहीं है पर अविद्या से प्रतीत होता है। इस सिद्धान्त में जीव कुछ नहीं, जगत् कुछ नहीं। सृष्टि, बन्धन, मोक्ष- सब मिथ्या है, अज्ञान का विलास है। शाश्वत सत्य एक मात्र सजातीय, विजातीय, स्वगत त्रितय भेद विवर्जित शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव निर्विशेष, निर्गुण, निराकार ज्योति स्वरूप ब्रह्म ही है। इसमें कोई धर्म नहीं, जाति नहीं, गुण नहीं, आकार नहीं।

इस विचारधारा का इस ग्रन्थ में गौतमीय न्याय के आधार पर अकाट्य तर्कों द्वारा खण्डन है। अध्यास का सिद्धान्त तर्क की कसौटी पर सिद्ध नहीं होता। यही इस ग्रन्थ में समझाया गया है।

इस मान्यता में इस शास्त्र का विषय, अधिकारी तथा प्रयोजन ही सिद्ध नहीं हो सकता है, यह बात बड़ी मार्मिकता के साथ दिखाई गई है। जब किसी शास्त्र का विषय, प्रयोजन एवं अधिकारी ही नहीं सिद्ध हो सकता तब उसका आरम्भ ही व्यर्थ हो जाता है। कारण प्रवृत्ति में इष्ट साधनता एवं कृति साध्यताज्ञान अपेक्षित होता है। इष्ट साधनता के लिए विषय ज्ञान तथा कृति साध्यता के लिए अधिकारी ज्ञान आवश्यक होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में बताया गया है कि मायावाद सिद्धान्त में विषय प्रयोजन तथा अधिकारी सिद्ध न होने से वेदान्तशास्त्र का आरम्भ ही निरर्थक है।

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रन्थ में भगवान् श्रीशंकराचार्यजी के मायावाद की मान्यता का अकाट्य खण्डन

श्री शंकराचार्यजी के मत में जीव एवं ईश्वर उस ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र हैं। निर्विशेष ब्रह्म सत्ता के अलावा उनके यहाँ सब अध्यास है। भगवान् शङ्कराचार्यजी ने अपने इस मत का नाम मायावाद रखा है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में इस मायावाद सिद्धान्त का बड़ा लुभावना विशाल महल खड़ा किया है। उनके मायावाद सिद्धान्त को जानने के लिये ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य उपोद्घात (भूमिका) अंश पढ़ना

नितान्त आवश्यक है।

परपक्ष गिरिवज्र में ग्रन्थकार ने अपने लगभग दो सौ पृष्ठों में विशाल उपोद्घात भाष्य में श्रीशङ्कराचार्यजी ने जिस भित्ति पर अपने मायावाद का विशाल महल खड़ा किया था, उसकी एक-एक ईंट को उखाड़ फेंककर उनके मायावाद रूपी विशाल महल को धराशायी कर दिया है। जो पढ़ने लायक है। उसे समझने के लिए पैनी बुद्धि अपेक्षित है। विशुद्ध नव्यन्याय की भाषा में पं० शिरोमणि स्वनाम धन्य श्री निम्बार्कीय वैष्णव श्रीमाधवमुकुन्ददेवजी ने उनकी एक-एक मान्यता का खण्डन कर दिया है। मायावाद के इस प्रकार का अकाट्य खण्डन श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय एवं अन्य वैष्णवाचार्यों के ग्रन्थों में भी इसके जोड़ का दूसरा नहीं है। यह अतिशयोक्ति नहीं है।

भगवान् शंकर के मायावाद का मुख्य महल माया है, अविद्या है, अध्यास है। भगवान् शङ्कर के इन माया, अविद्या तथा अध्यास की क्या ही दुर्दशा की है पण्डित प्रवर श्रीमाधवमुकुन्ददेवजी ने जो देखते ही बनता है। अध्यास के खण्डन में तो उन्होंने अति कर दिया है। अधिष्ठान की असिद्धि अध्यास सामग्री की असिद्धि, संस्कार के अभाव, सादृश्य के अभाव, सन्निकर्ष के अभाव, आरोप्य की असिद्धि, अध्यास के लक्षण की असिद्धि, प्रमाणाभाव से अध्यास की असिद्धि, प्रमाण के अभाव से अविद्या की असिद्धि, अविद्या के अभाव में प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण, अर्थापत्ति प्रमाण, सर्व प्रमाणों की असिद्धि अविद्या के अनुमान का खण्डन, साध्य का खण्डन, हेतु का खण्डन, दृष्टान्त का खण्डन अनादि भावरूप अविद्या के निवर्त्यत्व तथा अविद्या के आश्रय के खण्डन द्वारा उनकी समस्त मान्यताओं एवं एकमात्र निर्विशेष ब्रह्म ही शाश्वत सत्य है, जगत् नाम की कोई वस्तु तात्त्विक नहीं है, आदि-आदि शांकर मान्यताओं की जबर्दस्त समीक्षा करके उनकी असारता तथा परतत्त्व परमात्मा के अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक कल्याण गुणगण निलयत्व एवं जगत् शाश्वत सत्य लोकवत्तु लीला कैवल्यं सिद्धकर, भागवत-जगत् का महान् उपकार किया है। भक्तिमार्ग के वैष्णवों की रूचि बढ़ाने के लिये परपक्ष गिरिवज्र परमोपयोगी है।

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रन्थ में सगुण सविशेष ब्रह्मवाद - भक्ति मार्ग का वैदिक प्रमाणों से मण्डित प्रबल समर्थन :-

अतः उक्त तथाकथित अध्यासवाद का खण्डनकर इस ग्रन्थ में सगुण, सविशेष ब्रह्मवाद, परिणामवाद ससंबोधि मोक्षवाद एवं भक्ति सिद्धान्त का प्रबल समर्थन किया है, जो केवल सभी वैष्णव सम्प्रदायों के लिये ही नहीं, अपितु सगुण समर्थक भक्ति सिद्धान्तानुयायी मानवमात्र के लिये महान् उपयोगी ग्रन्थ है। यही कारण है कि यह ग्रन्थ निम्बार्क सम्प्रदाय का होने पर भी श्रीरामानुजादि चतुःसम्प्रदायानुयायि वैष्णवों का भी परम प्रिय ग्रन्थ है। इसका सानुवाद प्रकाशन वैष्णव जगत् के लिये परम कल्याणकारी है, इसमें संशय नहीं। इसे सानुवाद सुन्दर, सजिल्द रूप में सुसज्जितकर, प्रकाशितकर, विश्व के समस्त विद्यालयों, पुस्तकालयों में प्रेषितकर स्वनामधन्य निम्बार्क सम्प्रदाय के स्वाभाविक

द्वैताद्वैत सिद्धान्त के प्रबल-पूर्ण समर्थक, सम्प्रदाय के वास्तविक भूषण, गौरव व सर्वतन्त्र स्वतन्त्र तार्किक शिरोमणि पं० माधवमुकुन्ददेवजी के सत्प्रयास को सार्थक करना हम सभी निम्बार्कीय वैष्णवों का परम कर्त्तव्य है।

'अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र' ग्रन्थ एवं 'वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा' की सैद्धान्तिक समता :-

'वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा' एवं परपक्ष 'गिरिवज्र' में कोई भिन्नता नहीं है। इन दोनों ही ग्रन्थों में स्वाभाविक भेदाभेद, सविशेष ब्रह्मवाद एवं जगत् सत्यत्व का समान रूप से समर्थन है। उक्त दोनों ग्रन्थ वेदान्त-दर्शन में द्वैताद्वैत वेदान्त प्रस्थान के ही मुख्य ग्रन्थ हैं और हैं, द्वैताद्वैत सिद्धान्त के कवच स्वरूप। ये दोनों ही लेखक आद्याचार्य श्रीनिम्बार्काचार्यजी की परम्परा के हैं। इन दोनों ही रचनाकारों ने स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन, बहुत ही विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण इन दोनों ग्रन्थों में किया है, जो देखते ही बनता है।

इन दोनों ग्रन्थों के रहते कोई भी दार्शनिक विद्वान् या सम्प्रदाय निम्बार्क सम्प्रदाय को आदर की दृष्टि से सम्मानित करेगा। इन दोनों ग्रन्थों में अन्तर केवल इतना ही है कि किसी स्थल में एक का अधिक व्याख्यान तो किसी दूसरे स्थल में दूसरे का अधिक व्याख्यान। ये दोनों ग्रन्थ अद्भुत हैं, सम्प्रदाय के प्राण हैं। इन्हीं दोनों ग्रन्थों की समता का एक और तीसरा ग्रन्थ है, जिसका नाम 'द्वैताद्वैत-विवेक' है; जिसके रचयिता सम्माननीय श्रीवैद्यनाथजी झा के सद्गुरुदेव श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री के शिष्य विद्वद्वर श्रीभगीरथजी झा थे।

स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का परिष्कार रूप में उपसंहारात्मक विवेचन :-

वैसे द्वैताद्वैत का शास्त्रीय परिष्कर अति सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचन है जो नव्यन्याय की भाषा में समझाया गया है, और विद्वद् भोग्य है। उसका स्पष्टीकरण भी न्यायशास्त्र के ज्ञाता विद्वान् ही सम्यक् प्रकार से कर सकते हैं। इसका परिष्कार वंशीवट के गोलोकवासी पं० श्रीकिशोरदासजी की प्रेरणा से दिवंगत विद्वद्वर वरिष्ठ पं० श्रीभगीरथजी झा ने अपने द्वैताद्वैत नामक ग्रन्थं में किया है। द्वैताद्वैत ग्रन्थ के लेखक इस ग्रन्थ के अनुवादक श्रीवैद्यनाथजी झा के सद्गुरुदेव ही थे। अतः इस गम्भीर विषय का परिज्ञान द्वैताद्वैत विवेक और इसी प्रकार के ग्रन्थ परपक्ष गिरिवज्र एवं वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा आदि आचार्यों के ग्रन्थों से ही हो सकता है। फिर भी मैं सरल रूप में द्वैताद्वैत का स्पष्टीकरण लिख रहा हूँ। इस ग्रन्थ का प्रकाशकीय लिखते समय अन्त में मैं एक दिन इस ग्रन्थ के अनुवादक महोदय पं० श्री झा जी के यहाँ गया और मैंने उनसे द्वैताद्वैत सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि श्रीगुरुजी महाराज! आप द्वैताद्वैत का स्पष्टीकरण करके बताइये जिससे इस द्वैताद्वैत सिद्धान्त को सरल ढंग से लिखा जाय। वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा एवं अध्यास परपक्ष गिरिवज्र दोनों ग्रन्थों के अनुवादक ये ही हैं। अतः इन ग्रन्थों के प्रकाशन काल में प्रायः मुझे इनके यहाँ जाना ही पड़ता है। दोनों ग्रन्थों के तैयार होने में १५ वर्ष से भी ऊपर हो गया। इनके यहाँ जाने पर मैं इनसे कुछ न कुछ प्रश्न तो करता ही रहता हूँ। मेरा पिछले

जन्म का कुछ संस्कार होगा एवं आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्काचार्यजी, पूर्वाचार्यों, ग्रन्थकार महानुभावों एवं अपने सद्गुरुदेव की अहैतुकी कृपा से ही ऐसे क्लिष्ट दार्शनिक ग्रन्थों में मेरी रुचि हुई। बहुत प्रयास एवं परिश्रम कर, बहुत अनुनय-विनय कर श्री झा जी महाराज से इस कार्य को कराया। श्री झा जी अति सरल हैं। जब भी उनके पास जाइये दार्शनिक, पौराणिक वार्ता होने लगती है। इस श्रीवृन्दावन धाम में इस समय इनके समान कोई दार्शनिक विद्वान् नहीं है। हम लोगों का बड़ा दुर्भाग्य है, जो ऐसे सरल अकिंचन विद्वान् से साम्प्रदायिक ग्रन्थों के प्रकाशन का लाभ नहीं ले सके।

अब द्वैताद्वैत का मूल विषय लिख रहे हैं- श्रीनिम्बार्क भगवान् का कथन है कि जब श्रुति के सैकड़ों द्वैतप्रतिपादक वचन हैं और उतनी ही मात्रा में अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियाँ भी विद्यमान हैं और दोनों षड्लिङ्गोपेत[1] हैं। फिर तो जिस प्रकार इन दोनों श्रुतियों का समन्वय है, वही सिद्धान्त श्रुति सम्मत मान्य होगा। इस दृष्टि से श्रीनिम्बार्क भगवान् द्वैताद्वैत का समन्वय इस प्रकार करते हैं :- उनका कथन है कि द्वैत का अर्थ है दो प्रकारों से ज्ञातव्य ईश्वर और जीव। ईश्वर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। जीव सर्वथा परतन्त्र है। इस दृष्टि से द्वैत है और जीव-जगत् का सबका ब्रह्मात्मक होने से अद्वैत है। जैसे सोने से बना कुण्डल कटक आदि आभूषण सुवर्णत्वेन सोना होने के कारण अद्वैत है, एक है। परन्तु कुण्डल-कटक आदि स्वर्ण निर्मित आभूषण विभिन्न आकारत्वेन भिन्न हैं। उसी प्रकार जीव-ईश्वर में स्वतन्त्र-परतन्त्र रूप में भेद (द्वैत) और ब्रह्मात्मकत्वेन अभेद (अद्वैत) इस प्रकार द्वैताद्वैत है।

श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में श्री युगलोपासना की प्रधानता:-

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य जी का जिस प्रकार दार्शनिक सिद्धान्त श्रुति-स्मृति सिद्ध है सर्वोपरि है। इसी प्रकार इनकी श्री युगलोपासना भी सर्वोपरि है। कृष्णोपासक सम्प्रदायों में कहीं कृष्ण की प्रधानता कहीं श्री राधाजी की प्रधानता है। श्री निम्बार्काचार्योपदिष्ट सिद्धान्त में श्रीयुगलोपासना ही वर्णित है। श्रीनिम्बार्काचार्य जी द्वारा रचित " वेदान्त दशश्लोकी" प्रसिद्ध है। श्रीनिम्बार्कीय प्रत्येक स्थानों में प्रातःकाल की प्रार्थना में वेदान्त दशश्लोकी का पाठ स्तुति रूप में अवश्य ही होता है। मेरे स्थान में नित्य ही सामूहिक रूप में प्रातःकालीन प्रार्थना में वेदान्त दशश्लोकी का पाठ होता है । वेदान्त दशश्लोकी के चौथे और पाँचवे श्लोक में व्यूहाङ्गी श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में वृषभानुजा श्रीराधाजी सहस्त्रों सखियों से सेवित सकलेष्ट कामदायिनी लिखी गई हैं। श्रीधाम वृन्दावन में कोई भी ऐसा स्थान या गृहस्थियों का गृह नहीं है जिसमें श्रीराधाकृष्ण युगल की सेवा-पूजा न होती हो मैंने अपने प्रकाशकीय के मंगलाचरण में वेदान्त दशश्लोकी के चौथे और पाँचवे श्लोकों द्वारा श्रीयुगल श्रीराधाकृष्ण की हार्दिक स्तुति की है।"

---

1. किसी ग्रन्थ में ग्रन्थकार का मख्य तात्पर्य क्या है? इसकी जानकारी के लिए षड्लिङ्गों की जानकारी अपेक्षित है। षड्लिङ्ग छः हैं। 1. उपक्रम, 2. उपसंहार, 3. अभ्यास, 4. अर्थवाद, 5. अपूर्वता, (6) उपपत्ति (युक्ति)।

राधा माधव में भेद नहीं है दोनों एक समान हैं। पुराणों, श्रुति–स्मृति में दोनों की समान रूप से स्तुति है। श्रीकृष्ण सतत द्वादश वर्षीय हैं। श्रीराधाजी को सतत् द्वादश वर्षीया लिखा गया है। राधामाधवयों न भेदो न पुराणे श्रुतौ तथा (श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण) इस प्रकार के अनेकों प्रमाण शास्त्रों में वर्णित हैं।

जगत् गुरु निम्बार्काचार्य श्रीभट्टदेवाचार्यजी ने युगलशतक में लिखा है–सन्तो सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारी वृन्दाविपिन विलासी, श्रीयुगलकिशोर हमारे ठाकुर आदि ऐसे ही जगद्गुरु निम्बार्काचार्य हरिव्यासदेवाचार्यजी द्वारा रचित महावाणी सेवा–सुख में लिखा है

कृष्ण रूप श्रीराधिका, राधे रूप श्रीश्याम। दर्शन को ये दोय हैं हैं एक ही सुखधाम॥

आचार्यवर रसिकशेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के प्रत्येक पदों में श्रीश्यामा–श्याम का ही नाम आता है।

श्रीगोपाल सहस्त्र नाम के पार्वती-शिव–संवाद में शिवजी ने पार्वतीजी को बताया है, हे पार्वती –

"गौरतेजो विना यस्तु श्याम तेजः समर्चयेत्। जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे॥

श्रीराधा के बिना अकेले श्रीकृष्ण की पूजा करने वाले को पातकी कहा गया है। अतः श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में नाम, जप, पूजन, ध्यान, संकीर्तन आदि में श्रीराधाकृष्ण युगल की ही प्रार्थना है।

श्री युगल नाम –

राधे कृष्ण राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।
राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे।

(महावाणीजी सेवासुख–पद नं. ७७)

श्रीधाम वृन्दावन में युगल उपासना की प्रधानता होते हुए भी श्रीराधा नाम की ही प्रधानता का कारण: –

श्रीधाम वृन्दावन को पुराणों में रासस्थली लिखा गया है। रास की अधीश्वरी श्रीराधाजी ही हैं जो सहस्रों सखियों से सेवित हैं। श्रीराधाजी की स्वीकृति के बिना भगवान् श्रीकृष्ण रास नहीं कर सकते इसका अर्थ है कि यहाँ की स्वामिनी श्रीराधाजी ही हैं। यह भाव प्रायः सबके मन में बन गया है। अतः बिना प्रयास के सहज स्वाभाविक सभी श्रीराधे–राधे बोलते हैं।

श्रीधाम वृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण युगल का सदा निवास है। दोनों सदैव एक साथ हैं, पर यहाँ के वासी प्रायः राधा–राधा ही बोलते और कुछ जप भी करते हैं। यह प्रभाव श्रीधाम वृन्दावन का है।

श्रीमाधवमुकुन्ददेवाचार्यजी का संक्षिप्त परिचय

पण्डित श्रीअमोलकरामजी शास्त्री की भूमिका में लिखा है कि माधवमुकुन्दशरणदेवाचार्यजी कब कहाँ पैदा हुए मुझे यह मालूम नहीं। ऐसा सुनने में आता है कि बङ्गदेश के अन्तर्गत अरुण घटा नामक स्थान में इनका निवास स्थान था।

'अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र' के मूल ग्रन्थ की टीका बंगाल प्रान्त के पण्डित विनोद विहारी चक्रवर्ती पंचतीर्थ ने बंगला भाषा में की है। अनुसंधान करने पर ऐसा पता चला है कि बंगीय अरुण घटा स्थान पर जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीस्वभूरामदेवाचार्य जी की परम्परा के महान्त अभी भी परम्परा से मौजूद हैं। इसी स्थान के किसी विशिष्ट महानुभाव महान्त प्रवर से ये दीक्षित थे।

श्रीनिम्बार्क–कुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन से यानी मेरे यहाँ से श्रीमद्भागवत में 'भूमविद्या समीक्षा' नामक ग्रन्थ प्रकाशित है। इसके लेखक डॉ. स्वामी द्वारकादास काठिया जी हैं। इनका जन्म स्थान बंगाल का ही है। ये विशेष पढ़े लिखे विद्वान् मूर्ति हैं। इन्होंने सही पता लगाकर ही लिखा होगा। श्रीमद्भागवत में भूम विद्या समीक्षा–ग्रन्थ में लिखा है कि–

अनन्त श्रीविभूषित जगद्‌गुरु भगवान् निम्बार्काचार्य श्रीस्वभूरामदेवाचार्य पदानुग वङ्गीय उद्भट दार्शनिक विद्वान् श्रीमाधवमुकुन्ददेवाचार्यजी प्रणीत 'अध्यास परपक्ष गिरिवज्र' का हिन्दी अनुवाद तथा पण्डित प्रवर श्रीअमोलकराम शास्त्री जी कृत् 'वज्रोत्तेजिका' संस्कृत टीका एवं विद्वद्‌वरेण्य पं. श्रीवैद्यनाथजी झा द्वारा हिन्दी–भाषानुवाद कराकर महान्त श्रीसन्तदासजी महाराज, श्रीनिम्बार्क–कुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन अतिशीघ्र ही प्रकाशन कराने जा रहे हैं।

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र की दर्शन–वेदान्त के आचार्य की परीक्षा में भी अनिवार्यता :-

यह महान् वेदान्त ग्रन्थ वाराणसी स्थित 'सम्पूर्णानन्द–संस्कृत विश्व विद्यालय' के आचार्य के परीक्षार्थियों के लिये निम्बार्क–वेदान्त का निर्धारित पाठ्य पुस्तक है। इस ग्रन्थ की गम्भीरता एवं समस्त सविशेषवादी चारों सम्प्रदाय के वैष्णव वेदान्तियों के परमानुकूल होने के कारण सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी ने इस ग्रन्थ को समस्त वैष्णव वेदान्ताचार्य की परीक्षा में पाठ्य–ग्रन्थ के रूप में निर्धारित कर दिया है। यह इस ग्रन्थ की महती विशेषता है।

अध्यास (परपक्ष) गिरिव्रज के प्रकाशन सम्बन्धी कार्य में सहयोगियों के प्रति आभार:-

सबसे बड़ा आभारी मैं श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के विद्वद्वर वरिष्ठ, श्री वैद्यनाथजी झा का हूँ जो अस्वस्थ, वयोवृद्ध, नेत्रों में दृष्टि की पूर्णता न होने पर भी इस अति दुरूह ग्रन्थ का संस्कृत भाषा से राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद किये। ग्रन्थ के अनुवाद के बाद ग्रन्थ के प्रकाशन संबंधी आर्थिक व्यवस्था हेतु श्रीधाम वृन्दावन के दो–चार महान्त महानुभावों से अपना अभिप्राय प्रकट किया, पर नहीं के बराबर सफलता प्राप्त हुई। यह ग्रन्थ दो खण्डों में लगभग 1200 पेजों में छप रहा है। अनुवाद संबन्धी कार्यों को लेकर ग्रन्थ प्रकाशन होने से पूर्व दोनों खण्डों के छपने की सी.डी. पूर्ण रूप से तैयार होने में ढाई लाख रूपये से कम नहीं लगेंगे। इससे ज्यादा भी लग सकता है। रुपये का व्यय कहाँ–कहाँ हो रहा है, यह सब मेरी जानकारी में है। इस प्रकाशन संबंधी कार्य में ज्यादा दौड़ धूप करना पड़ता है। विद्वानों के अभाव में यह ग्रन्थ बहुत कठिनाई से प्रकाशित हो रहा है। ग्रन्थ प्रकाशन संबन्धी आर्थिक व्यवस्था हेतु मैं परमादरणीय महामण्डलेश्वर श्रीमुकुन्द शरण जी महाराज, वलभीपुर (गुजरात) के यहाँ गया। ग्रन्थ का परिचय एवं उसकी महत्ता बताते हुए मैंने ग्रन्थ के छपने के पूर्व का व्यय उनके पूछने पर डेढ़ लाख रु० के लगभग बताया। इतने रूपये की व्यवस्था वे कर दिये। पहला खण्ड छपने के लायक तैयार है, ग्रन्थ प्रकाशन संबंधी आर्थिक व्यवस्था हेतु भी मैंने श्रद्धेय मुकुन्दशरण जी से ही अपना भाव व्यक्त किया। वे नि:संकल्प बहुत ही श्रद्धा पूर्वक पहले खण्ड के छपाने की पूर्ण स्वीकृति दे दिये हैं। मैंने स्वयं ही उनसे बोल दिया है- इस पहले खण्ड का प्रकाशन मैं आपके प्रात: स्मरणीय सद्गुरुदेव श्री नरहरिशरण जी महाराज की शुभ स्मृति में प्रकाशित हुआ है- ऐसा लिख दूँगा। उस ग्रन्थ में उनका और आपका चित्रपट भी छाप दिया जायगा। महान्त महामण्डलेश्वर श्री मुकुन्दशरण जी महाराज श्री निम्बार्क आश्रम - श्री वैजनाथ महादेव वल्लभीपुर (गुजरात) का, जो अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र के प्रथम खण्ड के प्रकाशन में सम्पूर्ण आर्थिक व्यय प्रदान किये, इस परम पवित्र उपकार को मैं भूल नहीं सकता। भगवान् श्रीराधाकृष्ण एवं आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्काचार्य की कृपा से ये चिरंजीव रहें और भविष्य में भी ऐसे पवित्र कार्यों के करने में इनकी रुचि बनी रहे, ऐसा प्रार्थी हूँ।

मूल ग्रंथ एवं विद्वद्वर वरिष्ठ पं० श्री अमोलकराम जी की संस्कृत–टीका के साथ हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन में क्रम से नम्बरिंग का प्रश्न कठिन हो गया।

पूज्य श्री झा जी नेत्र दौर्बल्य के कारण इस कार्य के लिये अपनी असमर्थता बताये, तो मैंने इसके लिये आगरा के विद्वद्वर बाबू श्री सुवास रायजी से इस कार्य को करने के लिये प्रार्थना किया। श्री सुवास रायजी अवकाश प्राप्त शिक्षाधिकारी श्रीजिलेदारजी शुक्ल के विशेष सम्पर्कीय हैं, जो श्रीधाम वृन्दावन का वास कर रहे हैं। श्री सुवास रायजी इस कार्य को करने के लिये स्वीकार कर लिये और ग्रन्थ के उपोद्घात (भूमिका) तक कर लिये। आगे समयाभाव एवं कुछ परिस्थितियों वश इस कार्य को करने के लिये अस्वीकार कर दिये। श्री सुवासरायजी वेदान्त–कौस्तुभ प्रभा के प्रूफ संशोधन का कार्य भी किये

थे। श्रीसुवास रायजी के द्वारा ऐसे कठिन कार्य में जो सहयोग प्राप्त हुआ उसका मैं बहुत ही आभारी हूँ।

इसके बाद आगे के कार्य प्रूफ रीडिङ्ग आदि के लिये मैने श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य पं० श्री कन्हैयालाल जी झा से प्रार्थना किया तो वे मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिये, पर कार्य पूर्ण होने के पहले ही उनके हाथों में कुछ ऐसी तकलीफ हुई जिससे वे इस कार्य को करने में असमर्थता प्रकट किये, फिर भी श्री प्राचार्य जी ने बहुत ही सहारा दिया। श्री प्राचार्यजी के इस पुनीत कार्य में सहयोग का मैं बहुत ही आभारी हूँ और भविष्य में भी ऐसे कार्य के लिये आशा रखता हूँ।

प्राचार्य कन्हैया लाल जी के बाद मैने अपने ही अनुगत सुयोग्य प्रिय शिष्य आचार्य डॉ. श्री दीपकजी, जो इस समय बी.एस. ए. कालेज मथुरा के शिक्षा संकाय में असि. प्रो० के पद पर कार्यरत हैं तथा "श्रीमद्भागवत के संवादों में शिक्षा के आयाम" विषय पर शिक्षा में देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर से शोध कार्य कर चुके हैं तथा श्रीमद्भागवत कथा के सरस व्याख्याता हैं– इस कार्य को करने के लिए प्रेरित किया। श्रीदीपकजी व्याकरण और श्री निम्बार्क वेदान्त से आचार्य हैं तथा श्री निम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन के छात्र रहे हैं। इस कार्य को करने के लिये सुयोग्य हैं और इन्हीं के कठिन परिश्रम से यह पहला खण्ड प्रकाशित होने जा रहा है। यदि इस विषम परिस्थिति में ये सहायक नहीं होते तो ग्रन्थ का छपना कठिन हो जाता। मैं इन्हें आशीर्वाद देता हूँ कि ये अपने पारिवारिक सुव्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन करते हुए श्री युगल श्रीराधाकृष्ण, अपने पूर्वाचार्यों, सद्गुरुदेव तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों के प्रति उत्तरोत्तर श्रद्धा-भक्ति की वृद्धि होती रहे और चिरंजीव रहें। ग्रन्थ प्रकाशन संबंधी सभी कार्यों में प्रारम्भ से अन्त तक श्री आनन्दविहारी शरण जी का विशेष सहायोग रहा है। ये ग्रन्थ प्रकाशन कार्य हेतु दिल्ली मेरे साथ जाते हैं और अकेले भी जाते हैं। श्री श्यामाश्याम और आचार्यों का उनके ऊपर ऐसा अनुग्रह हो जिससे आगे भी ऐसे कार्यों को करने के लिये ये तत्पर रहें।

ग्रन्थ के अनुवाद होने के समय अपने स्थान श्रीनिम्बार्ककुञ्ज से किसी न किसी को श्रीवैद्यनाथ जी झा के यहाँ भेजना ही पड़ता था। वे स्वयं नहीं लिखते थे। श्री झा जी महाराज अनुवाद बोलते जाते थे और लिखने वाले लिखते जाते थे। अन्त में श्री झा जी सुनकर या देखकर शुद्ध कर देते थे। अनुवाद लिखने का कार्य श्री प्रदीप पाण्डेय एवं श्री जितेन्द्रदेव शर्मा करनाल (हरियाणा) निवासी किये थे। श्री जितेन्द्रदेव शर्मा इस कार्य में विशेष समय दिये। अनुवाद होने में 3 साल लग गया था। श्री झा जी प्राय: अस्वस्थ ही रहते थे अत: कभी-कभी यह कार्य रुक भी जाता था। बहुत कठिनाई से अनुवाद का कार्य सम्पन्न हुआ। अनुवाद के लेखन कार्य में सहायक श्री प्रदीप पाण्डेय एवं श्री जितेन्द्रदेव शर्मा श्रीराधाकृष्ण-कृपा-कटाक्ष के भागी बनें इन लोगों के प्रति मैं ऐसी कामना करता हूँ।

वेदान्त कौस्तुभ-प्रभा नामक ग्रन्थ का प्रकाशन नई दिल्ली नीता प्रकाशन के संस्थापक स्व. श्रीराधेश्यामजी गुप्ता के यहाँ से हुआ था। वे उस ग्रन्थ को बड़ी ही श्रद्धा से प्रकाशन करवाये थे। श्री गुप्ताजी उस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी ही स्वाभाविक इच्छा से ग्रन्थ प्रकाशन संबंधी व्यय में से अधिकाधिक छूट भी दिये।

थे। वेदान्त कौस्तुभ-प्रभा प्रकाशन के बाद मेरी हार्दिक इच्छा हुई कि अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र का भी प्रकाशन होना चाहिए। इस बात को मैंने गुप्ता जी से कहा। श्री गुप्ता जी बोले – इस ग्रंथ का प्रकाशन सम्बन्धी सारा कार्य अपने यहाँ से ही कराऊँगा। वेदान्त कौस्तुभ-प्रभा के प्रकाशन की सी.डी. तैयार करके श्रीधाम वृन्दावन से ही भेजी गयी थी। श्रीधाम वृन्दावन से जाने-आने की कठिनाइयों के चलते मैं इस कार्य को वहाँ से नहीं कराऊँगा, ऐसी बात मैंने गुप्ता जी से कहा। श्री गुप्ता जी की ऐसे धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन करने में विशेष रुचि थी और यह ग्रन्थ भी धार्मिक ग्रन्थों में भी दार्शनिक ग्रन्थ तथा दूसरे ग्रन्थों की अपेक्षा भगवान की भक्ति से मण्डित है। अतः ग्रन्थ की महत्ता को देखते हुए वे बोल उठे महाराज! इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सारा कार्य आदि से अन्त तक मेरे ही यहाँ से होने दीजिए। श्री गुप्ताजी की विशेष श्रद्धाभाव को देखकर मैंने स्वीकार कर लिया। इसके बाद ग्रन्थ के प्रकाशन सम्बन्धी सुझाव भी श्री गुप्ताजी द्वारा प्राप्त हुए। उपरोक्त ऐसे परम पुनीत ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य में सहायता करने वाले श्री राधेश्याम जी गुप्ता के प्रति भगवान् श्रीराधाकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त हो एवं श्री राधेश्याम जी गुप्ता के समान ही श्रद्धा प्रेम तथा सेवाभावी श्रीगुप्ताजी के सुपुत्र श्री राजेश जी गुप्ता के भी मैं मंगल की कामना करता हूँ।

भज तं परमानन्दं सानन्दनन्दनन्दनम्।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्।
परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम्।
सत्यं नित्यं स्वतन्त्रञ्च सर्वेशं प्रकृतेः परम्।
निर्गुणं च निरीहं च निराकारं निरञ्जनम्॥

(श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड पूर्वार्द्ध – ५४/२८-३०)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

श्रीगीताजी १०/३ श्लोक

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

श्रीगीताजी ११/५५ श्लोक

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
यो मामेवसमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

श्रीगीताजी १५/१८-१९ श्लोक

– सन्तदास

वज्रोत्तेजिका भूमिका

(पं. श्रीअमोलकरामजी शास्त्री कृत)

(पूर्व संस्करण)

को न जानात्यासेतुहिमाचलं श्री 108 भगवदवतारा: महर्षयश्चत्वारो वेधसा मनसा सृष्टाः संसारान्मोक्षणशक्त्यन्विता निवृत्तिधर्मप्रवर्त्तका मोक्षशास्त्रेषु लोकाचार्या: श्री 108 सनन्दनादय इति। तदुक्तं महाभारते मोक्षधर्मे तथा—

'सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसा।
न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः प्रजासु ते॥
सर्वे ते चागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः।
स्वयमागतविज्ञाना निवृत्तिं धर्ममाश्रिताः॥
एते योगविदो मुख्या लोकाचार्याः प्रकीर्तिताः।
आचार्य्या मोक्षशास्त्रेषु मोक्षशास्त्रप्रवर्त्तकाः' इति॥

श्रीभागवते ब्रह्माप्याह—

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे
आदौ सनात्स्वतपसः स चतुः सनोऽभूत्।
प्राकल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्वं
सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन्॥ इति॥

एकादशे श्रीभगवताऽप्युक्तम्—

"एतावान्योग आदिष्टः मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा"॥इति॥

तस्मादनादिनिवृत्तिपथप्रवर्त्तका ब्रह्मविद्योपदेष्टारः स्वाभाविकद्वैताद्वैतसिद्धान्त-प्रवर्त्तकाः श्रीसनन्दनादयश्चत्वारः कुमाराः श्री 108 मद्धंसरूपेणावतीर्णस्य सर्वज्ञत्वसर्व-शक्तिमत्वादिसद्गुणाश्रयत्वातिशयसाम्यशून्यत्वसच्चिदानन्दरूपत्वजगज्जन्मादिकारणत्व सर्वनियन्तृत्वमुक्तोपसृप्यत्वादिधर्माश्रयस्य भगवतः परमात्मनः श्रीकृष्णस्य शिष्याः इति निश्चीयते, एते परमभागवता जगद्गुरवः सनन्दनादयः देवर्षिपूज्यपादश्रीनारदाय तत्त्वं परं भागवतञ्च धर्मं सत्सम्प्रदायार्थमुपादिशन्। एतच्च छान्दोग्ये सप्तमाध्याये भगवत्सनत् कुमारश्रीनारदसम्वादे स्पष्टम्। "नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः। आविर्भूतः कुमारैस्तं गृहीत्वा नारदाय वै॥ उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु। एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः॥" इति विष्णुयामलवचनेभ्यश्च प्राङ्निर्दिष्टानामाचार्यचरणानां गुरुशिष्यभावःसिद्धः॥



मन्दिर में विराजमान भगवान् श्रीराधाकृष्णजी

श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, मोतीझील, श्रीधाम वृन्दावन

तदेव तत्त्वं तदनुसरणीविद्भिः परवर्तिभिराचार्यैः ऋषिमहर्षिभिश्चानेकधोपबृंहितम्। तद्यथा—

इह खलु ब्रह्मादिसुरगणेडितकीर्तिरनन्ताचिन्त्यकल्याणगुणालय इतिहासपुराण-धर्मशास्त्रोपवृंहितसाङ्गवेदैकवेद्यो जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुर्विश्वभूतान्तरात्मा भगवान्वासुदेवाख्यः श्रीकृष्णद्वैपायनव्यासरूपेण सत्यवत्यामवतीर्य्य निखिलप्राणिनामखिल-पुरुषार्थसिद्धये स्वनिःश्वसितान् वेदान् ऋग्यजुःसामादिरूपेण विभज्य स्त्रीशूद्रजनोद्दिधीर्षया भारतादिपुराणसमुदायं विधाय मुमुक्षुजनानुकम्पया शारीरकमीमांसाख्यं वेदान्तशास्त्रं सूत्रयामास। तेषां सूत्राणां निरतिशयाचिन्त्यानन्तशक्तिवैभवो निरवधिककरुणावरुणालयो जगदेवदुःखपङ्कनिमग्नमुद्दिधीर्षुखनितलावतीर्णो भगवान्सुदर्शनावतारः श्रीदेवर्षिनारदानुग्रहभाजनो श्रीनिम्बार्काचार्य्यः व्याख्यानं वाक्यार्थरूपेण संगृहीतवान्। श्रीभगवच्छङ्खावतारैः पूज्यपादश्रीश्रीनिवासाचार्य्यैस्तस्य तात्पर्य्यजिग्राहयिषया वेदान्तकौस्तुभाख्यो ग्रन्थः प्राणायि तदनन्तरञ्चकैश्चिदाचार्य्यचरणैर्वादरायणीयसूत्राणा-मर्थोऽन्यथात्वं नीतः। अतः सुप्रौढपाण्डित्येनातिविसृत्वरस्वकीर्तिकिरणधवली-कृतसर्वदिङ्मण्डनेन सर्वतन्त्रस्वतन्त्रव्यायादितर्कोभयमीमांसादिशास्त्रपारावारीणेन श्रीमन्माधवमुकुन्दचरणेनाद्वैतवाद्युक्त्युत्सारणपुरस्सरं स्वाभाविकद्वैताद्वैतसिद्धान्तं प्रागुपदर्शिताचार्य्योपदिष्टमध्यास 'परपक्ष' गिरिवज्रनामकमहानिबन्धप्रणयनेन पुरस्कृतम्। ग्रन्थस्यास्य रचयिता सर्वदर्शनवेत्ता श्री 108 माधवमुकुन्दचरणाचार्य्यः कदेमं भुवो भागमलञ्चकारेति नास्माभिरेतावतापि निरचायि कालेन। एतेषां श्रीगुरुवरणानां किन्नामधेयमिति वयं न जानीमः। वङ्गदेशान्तर्गतारुणघट्टयामेतेषां निवासस्थानं चेति तु प्रायो जनानां प्रवादश्श्रूयते। यद्यप्येषनिवन्धो महाजटिलातिकुटिलवादियुक्ति-निराकरणपरः कथमप्यनवाप्तान्वीक्षिकीशिक्षाणामनासादिततर्ककौशलानामगोचरतया अशुद्ध्यादिदोषदूषितत्वाच्चोपेक्षास्पदतामुपगतस्तथाप्यस्य न सर्वत्र तादृशं काठिन्यमस्ति यादृशं वाद्युक्तपक्षतर्कनिरसनप्रकरणेषु भासते। सम्प्रत्यस्य ग्रन्थस्य संशोधनेन टीकाप्रणयनेन च दुर्बोधविषया आञ्जस्येन बुद्ध्यारूढा भवेयुरिति प्रेक्षिष्यन्ते विपश्चितः। यद्यपि तिस्रः कथा भवन्ति वादो जल्पो वितण्डाचेति तासां वादस्य वीतरागकथात्वेन तत्वनिर्णयमात्रमुद्देश्यं न पुनः परपक्षाधिक्षेपः स हि सरागतामावहति। तथापि तत्वनिर्णयावसाना वीतरागकथा तया न च परपक्षदूषणमन्तरेण तत्वनिर्णयः शक्यते कर्त्तुमिति तत्त्वनिर्णयाय वीतरागेणापि स्वपक्षस्थापनाय परपक्षो दूष्यत इति परपक्षे दोषोद्भावनेन न वीतरागकथात्वव्याहतिः। अतः तत्र शतधा सहस्रधा श्रुत्या युक्त्या च अनिर्विशेषवादः, जगन्मिथ्यात्ववादमध्यासवादः नैर्गुण्यवायं देहात्माध्यासवादित्येवमादि-

प्रतिद्वन्द्विवादजातं निरस्तम् तत्र तावदितरशास्त्राधिकारिभ्योऽस्य वेदान्तशास्त्रस्याधिकारी विलक्षणस्तदुपायानां फलस्य च विलक्षणत्वश्रवणादित्यधिकारिणो निरूपणम्। तथाच भगवद्भावापत्तिलक्षणमोक्षकामो दर्शनश्रवणादीष्टसाधनसमर्थोऽभीष्टफलसाधनसम्पादन-समर्थोऽभीष्टफलसाधनविषयकविद्वत्त्वाश्रयो वेदान्तशास्त्रस्याधिकारी तथाभूताधिकारसिद्धये श्रद्धोपसत्तिपूर्विकगुरूपसत्तिः वस्तुयाथात्म्यविवेको विरागो भगवत्प्रतिपत्तिस्तदनुग्रहप्रार्थनादीनि साधनानीति विवेकः। सन्ति च शतशः सहस्रशः श्रुतिसूत्रस्मृतयश्चिदचिद्ब्रह्मरूपतत्वत्रयाभिधायिन्यस्तथाहि ब्रह्मसूत्रनिर्मात्रा श्रीकृष्ण द्वैपायनव्यासाचार्य्येणोपक्रमसूत्रे जिज्ञास्यं जिज्ञासुस्तदज्ञान मूलभूतात्रिगुणात्मिकामायाचेतितत्वत्रयं प्रदर्शितमन्यथाजिज्ञासानुपपत्तेः। "भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म ह्येतत्।" क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। इति तत्राप्यचिद्वर्गभिन्नो ज्ञानस्वरूपो ज्ञातृत्वकर्तृत्वादिधर्मकोऽहमर्थरूपो भगवदायत्त-स्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकोऽणुपरिमाणकः प्रतिशरीरं भिन्नो बन्धमोक्षार्हश्चित्पदार्थः। "तस्माद्वाएतस्माद्वामनोमयादन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः। यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नं प्रज्ञानघन एव" अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति, अविनाशीवाऽरेयमात्मानुच्छित्तिधर्मा अथ योऽयं वेद, पुरुष एव द्रष्टा श्रोता रसयिता मन्ता बोद्धा जानात्येवायंपुरुषः, "ज्ञोऽतएव" कर्त्ताशास्त्रार्थवत्वात्, एष एव साधुकर्मकारयति, अणुर्ह्येष आत्माऽयं वा एते सिनीतः पुण्यं पापम्, बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते, बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रोह्यवरोऽपि दृष्टः, उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्, नाणुस्तच्छ्रु तेरितिचेन्नेताराधिकारात्। तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्। नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्, "अंशो नानाव्यपदेशात्" अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः। निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति "न स पुनरावर्त्तते, अनावृत्तिः शब्दात्" इत्यादीनक्रमशः उक्तार्थसाधकानि श्रुतिसूत्राण्यनुसन्धेयानि। अचित्पदार्थस्त्रिविधः प्राकृताप्राकृतकालभेदात् तत्र गुणत्रयाश्रयीभूतं द्रव्यं प्राकृतं तच्चनित्यं परिणामादिविकारिच, गौरनाद्यन्तवती जनित्री भूतभाविनी सितासिता च रक्ता च सर्वकामदुघा विभोः, अजामेकामित्यादिश्रुतिभ्यः। अथाप्राकृतं नाम त्रिगुण-प्रकृतिकालात्यन्तभिन्नमचेतनञ्च प्रकृतिमण्डलभिन्नदेशवृत्तिनित्यविभूतिविष्णुपद-परमव्योमपरमपदब्रह्मलोकादिपदाभिधेयम्, "आदित्यवर्णं तमसःपरस्तात्, योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्, तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः" इति मत्प्रसादात्परां शान्तं, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतमिति श्रीमुखवचनञ्चात्रानुसन्धेयम्,

तच्च धाम भगवदीयानादिसङ्कल्पात्तस्य तदीयानां नित्यमुक्तानाञ्च भोग्यादिरूपेणानेकरूपं परिणामादिविक्रयानर्हञ्च कालातीतत्वात् ''कालमुहूर्तादिमयश्च कालो न यद्विभूते: परिणामहेतु:, अथ प्राकृताप्राकृतोभयभिन्नोऽचेतनद्रव्यविशेष: कालो नित्यो विभुश्च ''अथ नित्यमिह वै पुरुष: प्रकृति: काल इत्यादि श्रुते:'' सदेव सोम्येदमग्रआसीदिति श्रुतौ सृष्टे:प्रागग्रशब्दवाच्यस्य कालस्य सत्यत्वश्रवणाच्च। ब्रह्मपदार्थस्तु वक्ष्यमाणजगत्कर्तृत्वादिगुणगणाश्रयपरब्रह्मनारायणवासुदेवशब्दाभिधेय: श्रीपति: श्रीकृष्ण: चिदचिद्ब्रह्मपदार्थानां तत्तत्प्रकरणपठितैस्तत्तद्गुणस्वरूपादि विशेषत्वबोधकैर्वाक्यैरितरेतरवैलक्षण्यमुपदिश्यते ''सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'' आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्तत्त्वमसि। अयमात्मा ब्रह्म 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते तदात्मानमेववेदाहं ब्रह्मास्मि इत्यभेदपरवचनैश्च चिदचितोर्ब्रह्मतादात्म्यमुपदिश्यते ''नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एकोबहूनां यो विदधाति कामान्, ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ द्वासुपर्णासयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश:। अक्षरात्परत: पर: सर्वस्य वशी सर्वस्येशान: एको वशी सर्वग: कृष्ण ईड्य:, अन्त: प्रविष्ट: शास्ता जनानां य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽ-नन्तरोऽयमात्मा न वेद यस्यात्माशरीरम्, एषते आत्माऽन्तर्याम्यमृत: संसारवन्धस्थिति-मोक्षहेतु:, इत्यादि-भेदविधायिनीश्रुतीभ्य:।''भेदव्यपदेशाच्चान्य:'' भेदव्यपदेशाच्च। अनुपपत्तेस्तु न शारीर:'' कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च पत्यादिशब्देभ्य:, अधिकन्तुभेद-निर्देशादित्यादिसूत्रेभ्य:। ''इन्द्रियाणि मनोबुद्धि: सत्त्वं तेजो बलं धृति: वासुदेवात्मकान्याहु: क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च, ससुरासुरगन्धर्वसयक्षोरगराक्षसम् जगद्वशे वर्त्ततेऽद: कृष्णस्य सचराचरम्, अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्य्यते जगत्, विष्णु शक्ति: परा प्रोक्ता चेतनाख्या तथा परा, ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:। द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तम: पुरुषस्त्वन्य: परमात्मेत्युदाहृत:, अज्ञो जन्तुरनीशश्च स्वात्मन: सुखदु:खयो:। ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा दासभूता: स्वत: सर्वे ह्यात्मन: परमात्मन:। नान्यथा लक्षणं तेषां बन्धे मोक्षे च विद्यते। तत्र य: परमात्मा तु स नित्यो निर्गुण: स्मृत:। न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा। कर्मात्मात्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धै: स युज्यते। सप्तसदशकेनापि राशिना युज्यते पुन:। तवान्तरात्मा मम च येचान्ये देहसंज्ञिता:। सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्य: केनचित् क्वचिदिति भेदविषयकेतिहासपुराणादिवाक्येभ्य: प्रत्यगात्म-ब्रह्मणोर्भेदोऽभिधीयते। भेदविषयकश्रुति-सूत्रपुराणवाक्यानां अत्यन्ताभेदवादिमते निर्विषयत्वापत्त्या बाध: प्रसज्येत तथात्वे चार्धनास्तिकतापत्तिर्दुर्वारा अयं दोष:

केवलभेदवादिमतेऽपि समानः। तन्मतेऽभेदवाक्यानां बाधप्रसङ्गात् नह्येकविधवाक्यबाधं विना केवलभेदोऽभेदो वा समर्थयितुं शक्यते। द्वैताद्वैतसिद्धान्ते तु उभयविधवाक्यानां न कथमपि विरोधः शङ्कनीयस्तेषां क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-प्रकृतिपुरुषक्षराक्षरादिशब्दाभिधेयस्य जडचेतनजातस्य ब्रह्मात्मकत्व तद्व्याप्यत्वतदधीनत्वादिहेतुभिर्ब्रह्मणोऽभिन्नत्वं सर्वात्मत्वसर्वव्यापकत्वस्वतन्त्र-त्वादिभिर्भिन्नत्वं तस्येति प्रतिपादनेन चरितार्थत्वात्। तथाहि। ''अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा यच्चकिञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा अन्तर्बहिश्चतत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः। अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरिति, ''यदासीत्तदधीनमासीत्'' सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः। आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः जीवोल्पशक्तिरस्वतन्त्रोऽवरः, सत्त्वं स्वातन्त्र्यमुद्दिष्टं तच्च कृष्णे न चापरे, अस्वातन्त्र्यात्तदन्येषामसत्त्वं विद्धि भारत। किमनेन जगन्नाथ सर्वं त्वद्वशगं जगदिति यद्यदायत्तस्थितिप्रवृत्तिकं वस्तु तत्तदभेदव्यपदेश्यमिति-व्याप्तिमामनन्ति छान्दोगाः प्राणेन्द्रियसम्वादे ''नवै वाचो न चक्षूंषि न मन इत्याचक्षते'' प्रसिद्धानां प्राणायत्तत्वादेव प्राणाभिन्नत्वमिति तथाभेदव्यपदेशश्च क्षेत्रक्षेत्रज्ञपरमात्मनां स्वरूपस्वभाववैलक्षण्य प्रतिपादनेन मुख्यार्थतयैव सूपपन्नः। ''सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद नान्यतोऽस्ति द्रष्टा द्वितीयाद्वैभयं भवतीत्यादिभेद-निषेधव्यपदेशास्तु परमात्मेतरस्वतन्त्रसत्वावच्छिन्न-वस्तुनिषेधेन सूपपन्नाः। एवञ्च न कस्यपि वाक्यस्य विरोधशङ्कागन्धोऽपि। अत एव च भेदविषयकाणाम-भेदविषयकाणाञ्च वाक्यानां परस्परं बाध्यबाधकभावो वक्तुं न शक्यः। तुल्यबलत्वात्, इदमेव तात्पर्य्यं हृदि निधाय भगवान्सूत्रकारः परस्परविरुद्धार्थकानां भेदवाक्या-नामभेदवाक्यानाञ्चाविरोधेन समन्वयप्रकारप्रदर्शनाय चेतनाचेतनयोर्ब्रह्मणा स्वाभाविकभेदाभेदसम्बन्धस्यैव निर्दोषत्वख्यापनाय घटकसूत्राणि प्रणीतवान्। ''अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापिदासकितवादित्वमधीयते एके ''उभयव्यपदेशात्त्वहि कुण्डलवत्, प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वादिति'' एकः सन् बहुधा बहून् प्रविष्टः त्वमेकोऽसि बहुधा बहून् प्रविष्टः, इत्याद्या घटकश्रुतयश्च। तस्मादस्यशास्त्रस्य विषयो ब्रह्मशब्दाभिधेयः सर्वज्ञः स्वाभाविकाचिन्त्यानन्तयावदात्मवृत्तिगुणशक्त्याद्याश्रयो भगवान्वासुदेवः पुरुषोत्तमः। विषयविषयिभावलक्षणः सम्बन्धस्तत्रोक्तलक्षणो मुमुक्षुरधिकारी भगवद्भावापत्तिलक्षणोमोक्षोऽत्रप्रयोजनमिति।



भव्य विशाल मन्दिर में विराजमान

ठाकुर श्रीयुगलविहारीजी

श्रीनिम्बर्काश्रम-श्रीवैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर (गुजरात)

भूमिका का अनुवाद

सेतुबन्ध रामेश्वरम् से लेकर हिमाचल पर्यन्त कौन नहीं जानता कि श्री 108 भगवान् के अवतार, चार महर्षि सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ब्रह्माजी के मानस पुत्र, संसार से मोक्ष प्रदान करने वाली भक्ति से समन्वित, निवृत्ति धर्म के प्रवर्तक मोक्ष शास्त्र के परमाचार्य हैं जैसाकि महाभारत के मोक्ष धर्म पर्व में लिखा हुआ है—

सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसा।
न ते लोकेषु सज्जन्ते, निरपेक्षाः प्रजासु ते॥
सर्वे ते चागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः।
स्वयमागतविज्ञाना निवृत्तिं धर्ममाश्रिताः॥
एते योगविदो मुख्या लोकाचार्याः प्रकीर्तिताः।
आचार्य्या मोक्षशास्त्रेषु मोक्ष-शास्त्र प्रवर्तकाः॥

श्रीमद्भागवत में ब्रह्मा जी ने भी कहा है-

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः सचतुः सनोऽभूत्।
प्राकल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन्॥

एकादश में श्री भगवान् ने भी कहा है-

एतावान्योग आदिष्ट मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा॥

इसलिये अनादि निवृत्ति पथ प्रवर्तक ब्रह्म विद्या के उपदेष्टा स्वाभाविक द्वैताद्वैत प्रवर्तक श्री सनन्दनादि चार कुमार, श्री 108 हंस रूप से अवतीर्ण, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, सद्गुण के आश्रय अतिशय तथा साम्य से शून्य सच्चिदानन्द रूप जगज्जन्मादि के कारण, सर्वनियन्तृत्वत्व मुक्तोपसृत्व आदि धर्मों के आश्रय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के शिष्य हैं ऐसा निश्चित होता है, ये चारों कुमार परम भागवत जगद्गुरु सनन्दन आदि ऋषियों ने देवर्षि पूज्यपाद श्री नारदजी के लिये परम तत्व भगवान् एवं भागवत धर्म का सत् सम्प्रदाय के लिये उपदेश दिया, यह बात छान्दोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय में भगवान् सनत्कुमार एवं श्री नारद जी के संवाद में स्पष्ट

है, इसी प्रकार "**नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः आविर्भूतः कुमारैस्तं गृहीत्वा नारदाय वै ॥ उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु। एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः।**" इस विश्वयामल के वचनों के द्वारा पूर्व में निर्दिष्ट आचार्य -चरणों का गुरु शिष्य भाव सिद्ध होता है इसी रहस्य को उनकी अनुसरणी को जानने वाले परवर्ती आचार्यों एवं ऋषि महर्षियों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया है, जैसे इस जगत् में ब्रह्मा आदि देवगणों द्वारा वन्दित कीर्ति वाले अनन्त अचिन्त्य कल्याणप्रद गुण गणों के आलय, इतिहास पुराण धर्म शास्त्र से उपवृंहित षडङ्ग वेदैकवेद्य, सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा लय के हेतु विश्व भूतान्तरात्मा भगवान् वासुदेव श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास रूप से देवी सत्यवती में अवतार लेकर सम्पूर्ण प्राणियों के अखिल पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अपने निश्वासभूत वेदों को ऋक्, यजुः तथा साम आदि रूप में विभाग करके स्त्री तथा शूद्र जनों के उद्धार के लिये महाभारत आदि पुराण-समुदाय का विधान करके मुमुक्षु जनों के ऊपर कृपा करके शारीरक मीमांसा नामक वेदान्त शास्त्र का निर्माण किया अर्थात् ब्रह्मसूत्र शास्त्र की रचना की उन सूत्रों का निरतिशय, अचिन्त्य, अनन्त, शक्ति रूप वैभव वाले सुदर्शनावतार भगवान् श्री निम्बार्काचार्य, देवर्षि नारद के कृपापात्र शिष्य ने वाक्यार्थ रूप से व्याख्यान किया (अर्थात् वेदान्त पारिजात सौरभ नामक वृत्ति की रचना की) तदनन्तर भगवान् श्याम सुन्दरके शंखावतार पूज्यपाद श्री श्रीनिवासाचार्यजी महाराज ने ज्ञान के तात्पर्य को समझाने की चेष्टा से वेदान्त कौस्तुभ ग्रन्थ की रचना की तत्पश्चात् कुछ आचार्यों ने भगवान् व्यास के सूत्रों की व्याख्या करते हुए उनका कुछ विपरीत ही अर्थ कर दिया, इसीलिये महान् प्रौढ़ पाण्डित्य के कारण अपनी विख्यात कीर्ति किरणों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने वाले सर्वतन्त्र स्वतन्त्र व्याकरणादि शास्त्रों सहित न्यायादि दर्शन शास्त्र तथा पूर्वोत्तर मीमांसा आदि शास्त्र पारावारीण श्रीमान् माधव मुकुन्द नामक विद्वत् वरेण्य ने अद्वैतवादी युक्तियों का खण्डन करते हुये स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त को प्राचीन काल में उपदेशित पूर्वाचार्यों के द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त को अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र, नामक महानिबन्ध की रचना करके उसे पुरस्कृत किया अर्थात् उसका समाधान किया, इस ग्रन्थ के रचयिता सर्वदर्शनवेत्ता श्री 108 पण्डित माधव मुकुन्द चरणाचार्य ने कब इस भारत वर्ष के भूमण्डल के किसी भाग को अलंकृत किया इस बात का हम इतने दिनों बाद भी निश्चिय नहीं कर पाये, इनके गुरुदेव का क्या नाम था, यह हम नहीं जानते, बङ्ग देश के अन्तर्गत अरुण घटा नामक स्थान में इनका निवास स्थान था। यह केवल जनता का प्रवाद सुना जाता है, यद्यपि यह निबन्ध महान् जटिल तथा अति कुटिल वादियों के तर्कों के खण्डन में निपुण है, इस ग्रंथ को जिस व्यक्ति ने न्याय शास्त्र विशेषतया नव्य न्याय शास्त्र का अध्ययन नहीं

किया है जिसे तर्कशास्त्रीय कुशल कला का ज्ञान नहीं है ऐसे लोगों के लिये यह ग्रन्थ एक तरह से बुद्धि का विषय न होने एवं अशुद्धि आदि दोष होने से यह ग्रंथ लोगों की दृष्टि में उपेक्षास्पद हो गया था फिर भी इस ग्रंथ में सर्वत्र वैसी कठिनाई नहीं है जैसी कठिनता वादी के उक्त पक्ष साधक तर्कों के खण्डन के प्रकरणों में प्रतीत होती है, सम्प्रति इस ग्रन्थ का संशोधन होने से एवं इस पर टीका का प्रणयन होने से भी इस ग्रन्थ के दुर्बोध विषय सरलतापूर्वक बुद्धयारूढ़ होंगे ऐसा विद्वान् लोग इसमें पायेंगे। यद्यपि तीन तरह की कथा होती है, वाद, जल्प और वितण्डा, इनमें वाद रूप वार्तालाप वीतराग संतों की कथा होने से उसमें तत्व निर्णय मात्र ही उद्देश्य होता है, परपक्ष का खण्डन नहीं, जिसमें परपक्ष का खण्डन भाव होता है उसमें सरागता होती है फिर भी तत्त्व निर्णय के लिये वीतराग संत पुरुषों की कथा होती है उसमें भी परपक्ष में दोष स्थापना अथवा उसके खण्डन के बिना तत्त्व निर्णय नहीं कर सकते इसलिये वाद कथा में भी तत्त्वनिर्णय के लिये वीतराग पुरुषों को भी अपने पक्ष की स्थापना के लिये परपक्ष को दूषित करना पड़ता है इसलिये परपक्ष में दोष उद्‌भावन से उसमें वीतराग कथात्व का व्याघात नहीं हो इस लिये उसमें भी सैकड़ों हजारों श्रुति प्रमाणों तथा युक्ति के आधार पर निर्विशेषवाद, जगन्मिथ्यात्ववाद, अध्यासवाद, नैर्गुण्यवाद तथा देहात्माध्यास वाद आदि-आदि प्रतिद्वन्द्वियों के वादों का खण्डन करना पड़ता है इसलिये इस ग्रन्थ में भी तत्व निर्णय के लिये ऐसा किया गया है यहाँ इतरशास्त्र के अधिकारी से इस वेदान्त शास्त्र का अधिकारी विलक्षण है एवं उसके उपाय एवं फल भी विलक्षण सुने गये है, इसलिये इसमें अधिकारी का निरुपण पहले करते हैं, इस शास्त्र का अधिकारी भगवद् भावापत्ति रूप मोक्ष कामी, वह दर्शन, श्रवण आदि इष्ट साधन समर्थ तथा अभीष्ट फल सम्पादन समर्थ एवं अभीष्ट फल साधन विषयक के आश्रय वेदान्त शास्त्र का अधिकारी है तथा प्रकारक अधिकार की शुद्धि के लिये श्रद्धापूर्वक गुरु शरणागति एवं वस्तु तत्व का याथात्म्य विवेक, वैराग्य प्रपत्ति तथा उनकी कृपा के लिये प्रार्थना आदि अपेक्षित हैं ऐसा जानना चाहिये, चित्, अचित् एवं ब्रह्म रूप तत्त्वत्रय के साधक सैकड़ों, हजारों श्रुति, सूत्र एवं स्मृति वाक्य हैं जैसाकि ब्रह्म सूत्र के निर्माता श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासाचार्य ने उपक्रम सूत्र में ही जिज्ञास्य, जिज्ञासु, अज्ञान के मूलभूत त्रिगुणात्मिका माया यह तत्त्वत्रय प्रदर्शित किया है, अन्यथा जिज्ञासा की उपपत्ति नहीं हो सकती, इस सम्बन्ध में श्रुत्यादि शास्त्र वचन है, "भोक्ता, भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मह्येतत्" तथा **क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः**" यहाँ भी अचित् वर्ग से ज्ञानस्वरूप ज्ञातृत्व कर्तृत्व आदि धर्मवान् अहमर्थ रूप भगवान् के अधीन स्वरूप स्थिति, प्रवृत्ति वाला अणुपरिमाणी शरीर में भी बन्ध मोक्ष के योग्य

चित्पदार्थ कहलाता है जैसाकि श्रुति वचन है "**तस्माद्वाएतस्माद्वामनोमयादन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः। यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नं प्रज्ञानघन एव**" "**अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति, अविनाशीवाऽरेयमात्मानुच्छित्तिधर्मा अथ योऽयं वेद, पुरुष एव द्रष्टा श्रोता रसयिता मन्ता बोद्धा जानात्येवायंपुरुषः, ज्ञोऽतएव**" "**कर्त्ताशास्त्रार्थवत्वात्, एष एव साधुकर्मकारयति, अणुर्ह्येष आत्माऽयं वा एते सिनीतः पुण्यं पापम् बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते, बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः, उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्, नाणुस्तच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात्। तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्। नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्,** "**अंशो नानाव्यपदेशात्**" **अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति**" "**न स पुनरावर्त्तते, अनावृत्तिः शब्दात्**" इत्यादि उक्त अर्थ के साधक श्रुति एवं सूत्र अनुसंधेय है, अचित् पदार्थ भी तीन प्रकार के होते हैं, प्राकृत, अप्राकृत और काल भेद, इनमें गुणत्रय का आश्रय द्रव्य प्राकृत कहलाता है और वह अनित्य है और परिणाम आदि विकारी है जिसमें श्रुति प्रमाण इस प्रकार है "**गौरनाद्यन्तवती जनित्री भूतभाविनी सितासिता च रक्ता च सर्वकामदुघा विभोः,** "**अजामेकाम्**" इत्यादि। अब अप्राकृत का वर्णन करते हैं। त्रिगुणात्मक प्रकृति काल इन दोनों से अत्यन्त भिन्न, अचेतन, प्रकृति मण्डल से भिन्न देश में वृत्ति, नित्य विभूति, विष्णु पद, परमव्योम परम पद तथा ब्रह्म लोकादि पद से अभिधेय धाम को अप्राकृत कहते हैं "**आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्, तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः**" तथा "**मत्प्रसादात्परां शान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्**" ऐसा श्रीमुख का वचन भी इस प्रसंग में अनुसंधेय है, वह धाम भगवदीय अनादि संकल्प से भगवान् एवं उनके नित्य मुक्त जनों के भोग्य आदि रूप से अनेक प्रकार के हैं और वह परिणाम आदि विकारों से रहित हैं, वह कालातीत हैं जैसा कि शास्त्र वचन हैं "**काल मुहूर्तादि मयश्चकालो न यद् विभूतेः परिणाम हेतुः**" प्राकृत, अप्राकृत दोनों से भिन्न अचेतन, द्रव्य विशेष को काल कहते हैं वह नित्य है और विभु है, जैसाकि श्रुति का वचन है '**अथ नित्यमिह वै पुरुषः प्रकृतिः कालः**' इत्यादि। दूसरी श्रुति है "**सदेव सौम्येदमग्र आसीत्**" इस श्रुति में सृष्टि से पहले अग्र शब्द वाच्य काल के विषय में सत्यत्व का श्रवण है, ब्रह्म पदार्थ वक्ष्यमाण जगत् कर्तृत्व आदि गुणगणों के आश्रय परब्रह्म नारायण वासुदेव आदि शब्दों के प्रतिपाद्य श्रीपति श्रीकृष्ण हैं जो चित्त् अचित् तथा ब्रह्म पदार्थों के तत्तत् प्रकरण में कथित तत्तत् गुण स्वरूप आदि विशेषत्व बोधक वाक्यों द्वारा जिनमें परस्पर वैलक्षण्य का आदेश है जैसे "**सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**" तथा "**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्तत्त्वमसि।**

अयमात्मा ब्रह्म सर्वं खल्विदं ब्रह्म त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते तदात्मानमेववेदाहं ब्रह्मास्मि इत्यभेदपरवचनैश्च चिदाचितोर्ब्रह्मतादात्म्यमुपदिश्यते इत्यादि अभेद परक वचनों द्वारा चित् अचित् का ब्रह्म तादात्म्य का उपदेश है एवं नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान् ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः। अक्षरात्परतः परः सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्यः, अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽनन्तरोऽयमात्मा न वेद यस्यात्माशरीरम् एषते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः संसारबन्धस्थितिमोक्ष हेतुः" इत्यादि भेद विधायिनी श्रुतियों द्वारा भेद की सिद्धि होती है, इसी प्रकार "**भेदव्यपदेशाच्चान्यः भेदव्यपदेशाच्च। अनुपपपत्तेस्तु न शारीरः" "कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च पत्यादिशब्देभ्यः अधिकन्तुभेद निर्देशादित्यादि सूत्रेभ्यः"। "इन्द्रियाणि मनोबुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च, ससुरासुरगन्धर्व सयक्षोरगराक्षसम् जगद्वशे वर्त्ततेऽदः कृष्णस्य सचराचरम्, अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्, विष्णु शक्तिः परा प्रोक्ता चेतनाख्या तथा परा ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। द्वामिमौ पुरुषौ लोकेक्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः, अज्ञो जन्तुरनीशश्च स्वात्मनः सुखदुःखयोः। ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मनः परमात्मनः। नान्यथा लक्षणं तेषां बन्धे मोक्षे च विद्यते। तत्र यः परमात्मा तु स नित्यो निर्गुणः स्मृतः। न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा। कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते। ससप्तदशकेनापि राशिना युज्यते पुनः। तवान्तरात्मा मम च येचान्ये देहसंज्ञिताः। सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्"**। इत्यादि भेद विषयक इतिहास तथा पुराण आदि के वाक्यों द्वारा जीवात्मा और परमात्मा में भेद का प्रतिपादन हुआ है इन भेद विषयक श्रुति, सूत्र तथा पुराण वाक्यों में अत्यन्त अभेदवादी के मत में निर्विषयत्व की आपत्ति होने से बाध की प्रसक्ति होगी, ऐसी स्थिति में उनके लिये अर्धनास्तिकता दोष की आपत्ति दुर्वार हो जायेगी यह दोष केवल भेदवादी के मत में भी समानरूप से लागू होता है कारण इनके मत में अभेद वाक्यों के बाध का प्रसंग होता है, एक प्रकार के वाक्य के बाध के बिना केवल भेद किंवा केवल अभेद का समर्थन नहीं किया जा सकता द्वैताद्वैत सिद्धान्त में तो दोनों प्रकार के वाक्यों में किसी प्रकार के विरोध की शंका नहीं है, इस मत में क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, प्रकृतिपुरुष तथा क्षर, अक्षर आदि तद्व्याप्यत्व तथा तदधीनत्व आदि हेतुओं से ब्रह्म से अभिन्नत्व तथा सर्वात्मत्व, सर्वव्यापकत्व एवं

सर्वतन्त्र स्वतन्त्रत्व आदि धर्मों से भिन्नत्व भी है ऐसे प्रतिपादन के द्वारा दोनों प्रकार के वाक्यों की चरितार्थता होती है, जैसाकि श्रुति वचन है, "**अन्तः प्रविष्ट शास्ताजनानां सर्वात्मा यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः। अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः इन्द्रियाणि मनोबुद्धि। यदासीत्तदधीनमासीत्**" "**सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः आत्माहि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः जीवोल्पशक्तिरस्वतन्त्रोऽवरः, स्वातन्त्र्यमुद्दिष्टं तच्च कृष्णे न चापरे, अस्वातन्त्र्यात्तदन्येषामसत्त्वं विद्धि भारत। किमनेन जगन्नाथ सर्वं त्वद्वशगं जगत्**" इस प्रकार जो वस्तु जिसके अधीन होती है उसमें उसके साथ अभेद व्यवहार होता है ऐसी व्याप्ति छान्दोग जन मानते हैं जैसाकि प्राणेन्द्रिय संवाद में उस उपनिषद् में कहा गया है "**नवै वाचो न चक्षूंषि न मन इत्याचक्षते**" श्रुतियों में प्रसिद्ध तत्त्वों का प्राण आधीन होने से ही उनमें प्राणाभिन्नत्व कहा गया है और भेद व्यवहार भी क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ तथा परमात्मा में स्वरूप तथा स्वभाविक वैलक्षण्य प्रतिपादन होने से मुख्य रूप में ही उत्पन्न होता है "**सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद नान्यतोऽस्ति द्रष्टा द्वितीयाद्वैभयं भवति**" इत्यादि भेद निषेध का व्यवहार परमात्मा से इतर स्वतन्त्र सत्त्वावच्छिन्न वस्तु के निषेध से ही उपपन्न होता है, इस प्रकार किसी भी वाक्य के विरोध की शंका की गंध भी नहीं है और इसीलिये भेद विषयक एवं अभेद विषयक वाक्यों में परस्पर बाध्य बाधक भाव नहीं कहा जा सकता, उचित नहीं कारण श्रुति के दोनों वाक्य समान बलवान है। इसी तात्पर्य को हृदय में धारण कर भगवान् सूत्रकार परस्पर विरुद्धार्थक भेद वाक्यों एवं अभेद वाक्यों का अविरोधेन (बिना विरोध के) समन्वय का प्रकार बताने के लिए चेतन एवं अचेतन तत्त्वों का ब्रह्म के साथ स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध में ही निर्दोषत्व की स्थापना के लिये घटक सूत्रों की रचना की जैसे "अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापिदासकितवादित्वमधीयते एके" "उभय व्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत्, प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वादिति" "**एकः सन् बहुधा बहून् प्रविष्टः त्वमेकोऽसि बहुधा बहून् प्रविष्टः**" इत्यादि घटक श्रुतियाँ भी हैं इसलिये इस शास्त्र का विषय ब्रह्मशब्दाभिधेय सर्वज्ञ स्वाभाविक अचिन्त्य अनन्त यावत् आत्म वृत्ति गुणशक्ति आदि के आश्रय भगवान् वासुदेव पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं शक्ति, विषय-विषयी भाव लक्षण-सम्बन्ध है और इसका पूर्वोक्त लक्षणयुक्त मुमुक्षु अधिकारी है तथा भगवद्भावापत्ति लक्षण मोक्ष यहाँ प्रयोजन है। इति संक्षेपः।

अनुवादक

पं० श्री वैद्यनाथ झा

भाषा टीकाकार अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र

(जन्मभूमि-घोघरडीहा, मधुबनी, बिहार)



दर्शनीय भव्य-विशाल मन्दिर

श्रीनिम्बार्काश्रम-श्रीवैजनाथ महादेव

वल्लभीपुर, भावनगर (गुजरात)

उपोद्घातग्रन्थस्य

सम्पादकीय

वृन्दावने केशिघट्टे मन्त्रराजप्रदायकम्,
आबालकृष्णरसिकं गुरुं वन्दे भगीरथम्।
जन्मना न्यायशास्त्रज्ञं वेदान्ताद्वैतपण्डितम्,
द्वैताद्वैतप्रियं किन्तु गुरुं वन्दे भगीरथम्॥

आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत्, ईश्वर आदि तत्वों के स्वरूप, स्थिति आदि विषयों की विशेष जानकारी के लिए हमारे यहाँ न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त दर्शन का अध्ययन आवश्यक माना गया है, परन्तु जीव, जगत्, ईश्वर आदि का निर्णायक स्वरूप वेदान्त में ही वर्णित है, अतः उक्त तत्वों की वास्तविक जानकारी वेदान्त दर्शन के अध्ययन से ही हो सकती है। वेदान्त शब्द का मुख्य प्रतिपाद्य वेद का अन्तिम भाग उपनिषत् ही है। उपनिषदों की संख्या यों तो सहस्राधिक ही है, कारण वेद की प्रत्येक शाखा में एक-एक उपनिषद् होती है। उनमें १०८ उपनिषदें मुख्य हैं। इनमें भी ईशादि अष्टोपनिषत् एवं छान्दोग्य, बृहदारण्यक एवं श्वेताश्वतर आदि एकादश उपनिषदें सर्वाधिक प्रामाणिक हैं, सभी भाष्यकारों ने अपनी व्याख्या में इनके उद्धरण दिये हैं। उपनिषदों का अर्थ निर्णायक शास्त्र भगवान् वेदव्यास कृत ब्रह्मसूत्र है। उपनिषदों का अर्थ कैसे करना चाहिये, यह ब्रह्मसूत्र शास्त्र ही बताता है। ब्रह्मसूत्र वेदान्त का सर्वश्रेष्ठ शास्त्रीय ग्रन्थ है। केवल लगभग पाँच सौ सूत्रों में ही भगवान् व्यास ने ब्रह्म तत्त्व का साङ्गोपाङ्ग विवेचन कर दिया है। ब्रह्मसूत्र के बिना उपनिषदों का अर्थ निर्णय सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ छान्दोग्य का श्रुति वाक्य है—"**सदेव सौम्येदमग्र आसीत्।**" पहले एक मात्र सत् ही था उसने इच्छा की "**एकोऽहं बहु स्याम**" तथा सृष्टि कर डाली, यहां सांख्य सत् शब्द का जड़ प्रकृति अर्थ करके अचेतन कारणवाद का समर्थन करता है, तो व्यासजी ने **ईक्षत्यधिकरण** के नौ सूत्रों द्वारा निर्णय दिया कि सत् शब्द वाच्य जड़ प्रकृति नहीं, अपितु चेतन ब्रह्म है। कारण आगे ईक्षति का प्रयोग है। ईक्षण चेतन का धर्म है, जड़ का नहीं। इसी तरह "आनन्दमयोऽभ्यासात्" इस आनन्दमय अधिकरण के द्वारा 'तस्माद् विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमय' इस तैत्तिरीय रस विद्या में पठित आनन्दमय शब्द का वाच्य परमात्मा है, न कि जीव या जड़, प्रकृति, यह सिद्ध किया। इसी तरह वेदान्त के आकाशादि समस्त कारण वाक्यों का समन्वय ब्रह्म में ही है, न कि भूताकाशादि में। यह बात ब्र० सू० प्र० अ० प्र० पाद में बताया है। इसके द्वि० तथा तृ० पाद में अस्पष्ट जीव, जीवलिङ्गक तथा स्पष्टजीवलिङ्गक वाक्यों का भी ब्रह्म में ही समन्वय बताया और चतुर्थ पाद में अब्रह्मात्मक प्रधान कारणवाद द्योतक वाक्यों का ब्रह्माधिष्ठित प्रधान कारण परत्व सिद्ध कर प्रथम समन्वयाध्याय के सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों का ब्रह्म में ही समन्वय बताया है। द्वितीय

अध्याय के प्रथम स्मृति पाद में ब्रह्म कारणवाद में स्मृति विरोध का परिहार, द्वितीय पाद में तर्क के आधार पर अचेतन कारणवाद का परिहार कर विरोधियों द्वारा ब्रह्म कारणवाद में प्रस्तुत विरोधों का युक्तियुक्त परिहार किया गया है। तृतीय अध्याय के प्रथम पादमें जगत् से वैराग्य के लिए जागतिक दोषों का विवेचन एवं इसके द्वितीय पादमें ब्रह्म में अनुराग उत्पन्न करने हेतु ब्रह्म में दिव्य गुणों का प्रतिपादन किया गया है। इसके तृतीय पाद में उपासना विद्याओं में समन्वय तथा चतुर्थ पाद में कर्म से विद्या (उपासना) की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। चतुर्थ अ० प्र० पाद में साधनावृत्ति मरणपर्यन्त करने का विधान बताकर इसके द्वि० तृ० पाद में उत्क्रमण एवं अर्चिरादि मार्ग का विवेचन है। अन्तिम पाद में मुक्ति स्वरूप एवं मोक्ष दशा में मुक्तात्मा के असमोर्ध्व ऐश्वर्य एवं असमोर्ध्व सुख भोग का वर्णन किया गया है।

इसके अलावा ब्र० सू० के विभिन्न अध्यायों, विभिन्न पादों में 'सर्वधर्मोपपत्ते' विवक्षित गुणोपपत्ते, 'अन्तर उपपत्तेः' 'सर्वोपेता च ''अदृश्यत्वादिगुण धर्मोक्तेः' आदि सूत्रों द्वारा ब्रह्म को सविशेष एवं पुरुषविध बताया गया है। उपनिषदों में ब्रह्म को सर्वत्र निरतिशय आनन्द, भूमासुख, निरति प्रेमास्पद-नख शिख आनन्द ही आनन्द आदि बताकर उसे असमोर्ध्व अनन्त सौन्दर्य माधुर्यादि गुण गुण गणाढ्य परम कारुणिक सर्व हितकारी बताया है तथा 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' आदि सूत्रों में भक्ति द्वारा उसके अपरोक्ष अनुभव की बात बतलाई गई है।

परन्तु इस तरह ब्र० सू० द्वारा स्पष्ट सिद्धान्त को कतिपय आचार्यो ने प्रस्थानत्रयी के विरुद्ध अपनी मनमानी लक्षणा व्यञ्जना अध्यारोप अपवाद आदि मनगढ़न्त कल्पनाओं के द्वारा भोली-भाली भावुक जनता को व्यामोह में डाल दिया है।भूमासुख, निरति प्रेमास्पद-नख शिख आनन्द ही आनन्द आदि बताकर उसे असमोर्ध्व अनन्त सौन्दर्य माधुर्यादि गुण गुण गणाढ्य परम कारुणिक सर्व हितकारी बताया है तथा 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' आदि सूत्रों में भक्ति द्वारा उसके अपरोक्ष अनुभव की बात बतलाई गई है। परन्तु इस तरह ब्र० सू० द्वारा स्पष्ट सिद्धान्त को कतिपय आचार्यो ने प्रस्थानत्रयी के विरुद्ध अपनी मनमानी लक्षणा व्यञ्जना अध्यारोप अपवाद आदि मनगढ़न्त

१. ज्ञातव्य है कि मायावादी के मत से यह ब्रह्म सूत्र भी नहीं कहला सकता। उनके सिद्धान्त के अनुसार यह ईश्वर सूत्र होगा। कारण उनके यहां ब्रह्म, ईश्वर तथा जीव तीन तत्त्व माने गये हैं॥ मायावच्छिन्न चैतन्य ईश्वर, अन्तःकरणावच्छिन्न, चैतन्य जीव, इन दोनों से भिन्न शुद्ध निर्विशेष चिन्मात्र तत्व ब्रह्म मान्य है। जगत्कर्ता उनके यहां ब्रह्म नहीं ईश्वर है। यहाँ तो ब्रह्म जिज्ञासा से प्रतिज्ञा करके उसका जन्माद्यस्य यतः लक्षण करके सम्पूर्ण ब्रह्मसूत्र में उसी का चिन्तन है। निर्विशेष का एक भी सूत्र नहीं— ऐसी स्थिति में उनके मत के अनुसार इसे ब्रह्मसूत्र कैसे कहा जा सकता। ब्रह्म सूत्र में **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** से ब्रह्म जिज्ञासा करके जन्माद्यस्य यतः ही लक्षण में विचारणीय है।

कल्पनाओं के द्वारा भोली-भाली भावुक जनता को व्यामोह में डाल दिया है।

इसी तरह ब्रह्म सूत्र के चारों अध्यायों में सम्पूर्ण उपनिषदों का तात्पर्य निर्धारण किया गया है। इसमें ब्रह्म तत्त्व का सांगोपाङ्ग विवेचन है। इसमें भगवद्‌गीता की तरह कर्म, ज्ञान तथा भक्ति का समुच्चय सिद्ध किया गया है। साम्प्रदायिक दुराग्रहरहित होकर ब्र० सू० का मनन करने पर ब्रह्म सूत्र साङ्गोपाङ्ग सर्वोपरि भक्तिशास्त्र प्रतीत होता है।

इन सूत्रों की विभिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार व्याख्या की है। श्री शंकराचार्य के सिद्धान्त के अनुसार की गई व्याख्या शांकर वेदान्त, वैष्णवाचार्यों की मान्यताओं के अनुसार की गई व्याख्या वैष्णव वेदान्त, वैष्णव वेदान्तों में भी श्रीनिम्बार्काचार्य के स्वाभाविक भेदाभेद मान्यता के अनुसार की गई व्याख्या निम्बार्क वेदान्त, श्री रामानुजाचार्य महाराज के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुंसार की गई व्याख्या श्रीरामानुज वेदान्त, माध्व वेदान्त श्री मध्वाचार्य के सिद्धान्तानुसार की गई व्याख्या कहलाते हैं, परन्तु मुख्य वेदान्त उपनिषत्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्‌गीता ही है। इसे प्रस्थानत्रयी भी कहते हैं। कल्याणकारी जनों को उपर्युक्त सभी व्याख्या निरपेक्ष मूल उपनिषत्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्‌गीता का श्रीमन्नारायण भगवान् को हृदय में धारण कर स्वयं उक्त त्रितय सद्‌ग्रन्थों का चिन्तन मनन करते रहना चाहिये। भगवद् गीता व ब्रह्मसूत्र की भाषा तो अति सरल है। भगवत् कृपा से जो भाव स्फुरित हो उसे प्रस्थानत्रयी का तात्पर्य समझना चाहिये। कारण भगवान् अपने भक्तों को सही सही तात्पर्य बताते हैं। जैसाकि उनके श्री मुख का वचन है— "ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते" इसी आशय का श्रुति वचन भी है—'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ तस्येते कथिता ऽयर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः' इसके अलावा 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' वचन भी है। इतिहास पुराणों के द्वारा ही वेदार्थ का निर्णय करना चाहिये। शास्त्रों का वचन है—वेदे रामायणे चैव भारते पाञ्चरात्रके आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते। तथा "आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा। स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्योन्न कुत्रचित्। सर्वे विधिनिषेधा स्युरेतयोरेव किंकराः। अतिपातकसंयुक्तो ध्यायन्निमिषमच्युतम्। ज्ञातव्य है कि ये सभी श्लोक आदि शंकराचार्यजी ने भी अपने विष्णु सहस्र नाम के भाष्य में उद्धृत किये हैं। हमारे गोलोकवासी गुरुदेव पं० श्री भगीरथ झा जी का तो कथन है कि अठारहों पुराणों को एक ग्रन्थ मानकर उपक्रम उपसंहार आदि ग्रन्थ तात्पर्य निर्धारक सामग्रियों द्वारा उनका अध्ययन करने पर अठारहों पुराणों में भगवान् व्यास का विष्णु पारम्य में ही तात्पर्य स्पष्ट प्रतीत है और

इसका प्रत्यक्षीकरण श्री गुरुदेव ने अपने प्रकाशित श्री भगवत्तत्व सुधानिधि, वेदान्त तत्त्व समीक्षा एवं श्री युग्म तत्त्व समीक्षा ग्रन्थत्रय में सप्रमाण सिद्ध कर दिया है, जिसे कोई भी देख सकता है, वेदान्त तत्त्व समीक्षा में श्रीगोपालतापिनी उपनिषद् के भाष्य के माध्यम से सम्पूर्ण वेदान्तार्थ का निरुपण, श्री भगवतत्त्व सुधानिधि में ऋग्वेदादि चारों वेदों के समस्त मन्त्रों— एकादश उपनिषदों प्रणव गायत्री पुरुष सूक्त आदि सूक्तों का विस्तृत विवेचन है। अस्तु।

श्री शांकर व्याख्या के अनुसार परम तत्त्व (ब्रह्म) निर्विशेष है अर्थात् सजातीय, विजातीय, स्वगत त्रितय भेदविवर्जित शुद्ध बुद्ध निर्गुण निरुप एवं आकार विवर्जित है। वहीं वैष्णव व्याख्या में मूल तत्त्व अनन्त अचिन्त्य, स्वाभाविक गुण गण निलय अशेष सौन्दर्य माधुर्यादि गुणगणविशिष्ट सच्चिदानन्दमय विग्रह मान्य है। श्रीशंकर निर्विशेष निर्गुण अद्वितीय चिन्मात्र ब्रह्म के अलावा और कोई तत्त्व पारमार्थिक नहीं मानते जब कि सभी वैष्णवाचार्य जीव, जगत् ब्रह्म तीन तत्त्व शाश्वत् मानते हैं, सबसे बड़ा मतभेद तो यही हो जाता है, वैष्णव आचार्यों एवं श्री शंकर मतानुयायियों में। वैष्णव आचार्य जगत् को सत्य तथा ब्रह्म की लीला मानते हैं, जबकि श्रीशंकर ने जगत् को बिल्कुल झूठा, धोखा, इन्द्रजाल आदि शब्दों द्वारा बिल्कुल नकार दिया है।

श्रीशंकराचार्य महाराज का केवलाद्वैत या मायावाद सिद्धान्त का आपात रमणीय महल अध्यास रूपी रेतीले क्षणभंगुर दीवालों पर आधारित है, निर्मित है। उनके केवलाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार सजातीय विजातीय स्वगत त्रितय भेद विवर्जित शुद्ध, बुद्ध, निर्गुण, निर्धर्मक निराकार एकमात्र अद्वितीय चिन्मात्र ब्रह्म ही सत्य है, एतदतिरिक्त सब मिथ्या है, अध्यास है, जैसा कि उनके सिद्धान्त के विषय में जगत् प्रसिद्ध है, '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**' कारण ब्रह्म के अतिरिक्त जीव जगत् मानने पर उनका प्रिय अद्वैत व्याघात होता है, अतः जीव का ज्ञान अध्यास[१] है, ब्रह्मातिरिक्त जगत् मानने पर अद्वैत भंग होता है, अतः जगत् प्रतीति अध्यास है, ब्रह्म में कोई गुण या धर्म मानने पर भी अद्वैत को खतरा, अतः गुणानुसंधान, धर्मावभास सब अध्यास है, अध्यास मूलक है, भ्रम है, धोखा है, कारण इनमें किसी को सत्य मानने पर उनका प्राण अद्वैत जाता है, यहाँ तक की धर्म सत्य प्रतिपादक, गुणवाचक, धर्मबोधक वेदादि शास्त्र अध्यास गीता, भागवत सब कुछ अध्यास है, झूठा है, कपोल कल्पित है कारण इनमें किसी को सत्य कहने पर उनका प्राण अद्वैत ही समाप्त हो जाता है। इनके मत में बन्धन भी मिथ्या, मोक्ष भी मिथ्या, गुरु भी मिथ्या, चेला भी मिथ्या, पाप भी मिथ्या, पुण्य भी मिथ्या, कारण वही, किसी को सत्य मानने पर उनका अद्वैत जहन्नुम में जाता है।

---

1. यहाँ प्रश्न होता है कि यदि आप अद्वैत को सिद्ध करने के लिये सबको अध्यास मानते हैं- तो प्रश्न उठता है कि आपका अध्यास क्या है सत्य है या असत्य है ? सत्य कहें तो है द्वैतापत्ति, अद्वैत भंग, असत्य कहें तब तो द्वैत ही है

पर तारीफ तो यह है कि इन सबके मिथ्या होने पर भी इनके यहाँ सब व्यवहार इनसे बखूबी चलता है। इनके यहाँ बन्ध्यासुत के भी वंशवाद चलता है, नाती पोता है, उसका उपनयन विवाह सबकुछ होता है। आकाश कुसुम से भी गले की माला बनती है, झूठे पानी से भी प्यास बुझती है, मिथ्या रोटी से भी भूख मिटती है, पर लोक में तो कहीं ऐसा नही दीखता कहीं भी मृगमरीचिका के जल से किसी की प्यास नहीं बुझती, पर भोले श्री शंकराचार्य बाबा के यहाँ ये सब चलता है, वहां कुछ असम्भव नहीं उनके सिद्धान्त के अनुसार जब वेदान्त शास्त्र का विषय, अधिकारी प्रयोजन आदि की सिद्धि नहीं बन पाती, जैसाकि इसी ग्रन्थ के आदि में प्रस्तुत ग्रन्थकार ने ऐसा सिद्ध करके उनके अनुसार वेदान्त शास्त्र का आरम्भ ही व्यर्थ करा दिया तो वहां भी आपने यही जवाब दिया है कि हमारे यहां (उनके यहाँ) तो प्रमाण प्रमेय आदि सभी व्यवहार अध्यासमूलक है। हमारे यहां तो सभी विरोधाभासों का बड़ी सरलता से अध्यास के माहात्म्य से समाधान हो जाता है। इस प्रकार अध्यास ही इनका ब्रह्मास्त्र है और इस मान्यता की वकालत करने वालों की भी कमी नहीं है, जिनमें श्री गौडपादाचार्य, श्री शंकराचार्य सुरेश्वराचार्य, भामतीकार वाचस्पति, चित्सुखाचार्य, आचार्य मधुसुदन आदि प्रमुख हैं। वकील वही बड़ा माना जाता है जो बिल्कुल सत्य को भी अपनी वाक्‌चातुरी से न्यायाधीश के समक्ष असत्य सिद्ध कर दे। भरी चौराहे पर सबके सामने की गई हत्या को भी अपनी वाक्‌पटुता से न्यायाधीश के समक्ष गलत सिद्ध कर अपने मुवक्किल को जीत कर झंडा दिला दे। ऊपर के सभी वकील सत्य जगत् को असत्य, सविशेष को निर्विशेष सिद्ध करने में सिद्ध हस्त हैं ये वकील ऊंचे वकील माने जा सकते हैं, पर सेर को सवासेर मिल ही जाता है इन सेरों के लिए सवासेर है, न्याय धुरन्धर दार्शनिक उद्योतकर वाचस्पति, उदयन, गंगेश, वर्धमान, पक्षधर, अयाची तथा शंकर आदि मैथिल न्यायाचार्य। कभी इस देश में ताण्डव मचाने वाले वैदिक सनातन धर्म को जड़मूल से नष्ट करने का संकल्प लेने वाले धर्मकीर्ति, वसुबन्धु, नागार्जुन आदि धुरंधर बौद्धनास्तिकों का अपने न्याय, नव्य न्याय के ब्रह्मास्त्र से विध्वंस कर सदा के लिए भारत भूमि से खदेड़ कर रसातल पहुंचा दिया। इसी तरह प्रच्छन्न बौद्धों के भी प्रस्थानत्रयी विरुद्ध, अविद्यावाद अध्यासवाद आदि मिथ्या

1. वैसे आप मिथ्या का अर्थ अलीक नहीं मानते बन्ध्या सुत नहीं मानते, अनिर्वचनीय कहते हैं पर बात तो वहीं हुई जात् सत भी तो नहीं ही हैं वैसे इस ग्रंथ में इनकी इस कलावाली सत् भी नहीं असत् भी नहीं अनिर्वचनीय है- सत्त्वेन्नबाध्येत असत्त्वेन्न प्रतीयते, प्रतीयते च बाध्यते च इस दलील का भी इस ग्रंथ में सत् क्या असत क्या प्रतीति क्या बाध क्या इन सब पर गंभीर प्रश्न उठाकर इनके अनिर्वचनीय वाद का पर्दाफाश किया गया है- जो मूल ग्रंथ में देखे जा सकते हैं। मिथ्या का अनिर्वचनीय अर्थ भी किसी कोश में नहीं आया, यह मिथ्या बोलता है, इसका अर्थ यह अनिर्वचनीय बोलता है- ऐसा कोई नहीं कहता ऐसा बोलने वाला लोक में उपहास का पात्र ही होगा- मिथ्या का अर्थ झूठा ही होता है।

प्रलापों का भी कोई जबर्दस्त नैयायिक ही खण्डन कर सकता था या है, पर पता नहीं मिथिला के उक्त बौद्धमत विध्वंसी नैयायिकों का इधर ध्यान क्यों नहीं गया। लगता है, उन्होंने बौद्धमत खण्डन से ही प्रच्छन्न बौद्धों का भी खण्डन मान लिया, पर मिथिला न सही मिथिला के ही नव्य न्याय शिष्य[१] परम्परानुवर्ती न्याय धुरंधर स्वनाम धन्य पूज्य पं० श्री माधव मुकुन्दजी का इधर ध्यान गये बिना नहीं रहा गया, उनसे यह मिथ्या प्रलाप सहा नहीं गया। पण्डित महान् नैयायिक था, वैष्णव था, कृष्णभक्त था, श्रीनिम्बार्कीय स्वाभाविक भेदाभेद वाद का समर्थक था, श्री राधाकृष्ण युगल किशोर का अनन्य अनुरागी था, भला कोई भी भक्तिमार्गीय इस भक्ति विरोधी अध्यासवाद रूपी प्रलाप को कैसे सहन कर सकता था, क्या यह प्रलाप प्रेमावतारी चैतन्य, कृष्णैकजीवन आचार्य वल्लभ, श्रीमन्नारायण के अनन्य आराधक भगवान् श्रीरामानुज के लिए सह्य हो सकता था।

इतना ही क्यों संसार के किसी भी भक्ति अनुरागी को यह भक्ति-विरोधी अध्यास भा सकता है ? अत: श्री निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी परम वैष्णव आचार्य पं० श्री माधव मुकन्द देवको दु:खी होकर इसकी विशद समीक्षा हेतु अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र नामक ग्रन्थ की रचना करनी पड़ी और विशेषतया अध्यास का विस्तार से खण्डन करना पड़ा। यह खण्डन द्रोहमूलक नहीं, विद्या के प्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि एक भक्तराज की यह करुणामूलक वेदना है। भला कोई भी व्यक्ति यह कैसे सहन कर सकता है कि उसका भगवान् मिथ्या, उसके भगवान् के नाम रूप धाम लीला मिथ्या, उसके आराध्य में कोई गुण नहीं धर्म नहीं, रूप नहीं, सौन्दर्य नहीं, करुणा नहीं, दया नहीं, जो कही गई है, सब अध्यास है, भ्रम है—क्या ये सारी बातें, किसी सहृदय भक्त के सहन योग्य हो सकती हैं कौन ऐसा भक्त होगा जो मायावादियों की इन सारी कपोलकल्पित कल्पना जल्प को सुनकर रो नहीं पड़ेगा, छटपटाता फिरेगा, लाचारों की तो बात ही क्या। पर प्रभु ने जिसे थोड़ा भी प्रबोध दिया, विद्या दी, वह तो इसकी पोल खोलेगा ही। वह भी किसी के अकल्याण के लिए नहीं, अपितु भक्तिजगत् के कल्याण के लिए। मैनें भी ग्रन्थ की गम्भीरता के अनुरूप तर्कशास्त्रीय योग्यता न होने पर भी स्वान्त:सुखाय ही भागवत जनों के कल्याण की भावना से इसका अनुवाद प्रारम्भ किया।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायानुयायी परम वैष्णवाचार्य स्वनाम धन्य पं० श्री माधवमुकुन्द देवाचार्य महाराज ने विशेषतया शांकर सम्मत अध्यास की समीक्षा हेतु ही इस अध्यास गिरिवज्रनामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें अध्यास का तो विशेष रूप से खण्डन है ही, परन्तु साथ-साथ सूत्रानुसार सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक एवं बौद्धादि

नास्तिकों के मत की समीक्षा है निराकरण है। इसलिये इसका दूसरा नाम परपक्ष गिरिवज्र भी है। गिरि का अर्थ पर्वत, पर्वत के भी अनेक शिखर होते हैं, इसी प्रकार इस ग्रन्थ में अध्यास या परपक्ष गिरि के अनेक शिखरों—अध्यासलक्षण, अध्यास अधिष्ठान अ० सामग्री आदि सैंकड़ों परमत के खण्डनीय पक्षों को अध्यास गिरि या परपक्षगिरि के शिखर मानकर उसका इस ग्रन्थ में विखण्डन किया गया। जिसमें कुल मिलाकर सैकड़ों गिरिशिखरों का निपात है। उनमें शताधिक गिरि शिखरों का निपात हैं, परन्तु अध्यास एवं अध्यास की विभिन्न सामग्रियों रूपी अनेकानेक शिखरों का बड़ी विद्वत्तापूर्ण ढंग से विध्वंस किया गया है। वहां मायावादियों पर प्रश्नों की बौछारें की गई है, अध्यास किसे कहते हैं? अध्यास के भी कायदे कानून होते हैं, उसके कारण होते हैं उसकी भी सामग्रियाँ होती हैं, सब जगह सबका अध्यास नहीं हो जाता, रज्जू में सर्प का ही अध्यास होता है, फावड़े का नहीं, सिंह व्याघ्र का नहीं, शुक्ति में रजत का ही अध्यास होता है, लोहे का नहीं, चादीं का नहीं, तिल का नहीं, सबको सब जगह अध्यास नहीं रज्जू में सर्प का अध्यास अंधेरे में होता है प्रकाश में नहीं, चर्मचक्षु को ही होता दिव्यचक्षु को नहीं, किसी अधिष्ठान में रहने पर ही अध्यास होता, बिना अधिष्ठान में नहीं, आरोप्य रहने पर ही अध्यास होता बिना आरोप्य के नहीं, सादृश्य से ही अध्यास होता है बिना सादृश्य के नहीं। अधिष्ठान वहीं होता है, जिसमें कोई धर्म होता है। अधिष्ठान के दो धर्म होते हैं—एक सामान्य दूसरा विशेष। शुक्ति में सामान्य धर्म है इदन्त्व विशेष धर्म है शुक्तित्व। जहाँ सामान्य धर्म ज्ञात तथा विशेष धर्म अज्ञात वहीं अधिष्ठान होता है तभी उसमें अध्यास होता है, शुक्ति स्थल में शुक्ति का इदन्त्व ज्ञात है, पर शुक्तित्व अज्ञात है इसीलिये उसमें सादृश्य के कारण अध्यास होता है, शुक्ति में रजत का सादृश्य चाकचिक्य है। मायावादी के मत में निर्धर्मक व ब्रह्म में कोई धर्म न होने से वह अध्यास के अधिष्ठान ही नहीं बनता ना ही धर्माभावके कारण केनापि धर्मेण सादृश्य ही से इस प्रकार अधिष्ठान की असिद्धि में अध्यास असम्भव है। शुक्ति रजत स्थल में रजत नामक वस्तु प्रसिद्ध है, तात्विक है, बाजार में उपलब्ध है, उसका संस्कार है, अतः मायावादी के मत में उसका अध्यास शुक्ति में होता है, प्रकृत स्थल में जगत् नाम की कोई वस्तु ही नहीं फिर उसका संस्कार कैसे, जिसका संस्कार नहीं उसका अध्यास कैसे, अतः आरोप्य पदार्थ

१. ज्ञातव्य है, प्राचीन न्याय एवं नव्य न्याय दोनों का जन्म मिथिला में ही हुआ है। प्राचीन न्याय के आद्याचार्य महर्षि गौतम एवं नव्य न्याय के जन्म दाता न्यायावतार गंगेश उपाध्याय मिथिला के ही रत्न थे। मिथिला के ही स्वनाम धन्य पण्डित प्रवर पक्षधर मिश्र से नव्य न्याय का अध्ययन कर बंगदेशीय विद्वान्मूर्धन्य वासुदेव सार्वभौम तथा न्यायमूर्ति पं. श्री रघुनाथ शिरोमणि ने बंग देश में नवद्वीप में न्याय विद्यापीठ की स्थापना की ओर वहाँ न्याय शास्त्र का अद्वितीय प्रचार प्रसार किया।

की असिद्धि होने से अध्यास असम्भव है। अध्यास धर्म सादृश्य से होता है चाकचिक्य धर्म शुक्ति रजत दोनों में समान होने से वहाँ अध्यास होता है प्रकृत में मायावादी के मत में ब्रह्म में कोई धर्म न होने से सादृश्य सम्भव नहीं, फिर अध्यास कैसे? दूसरी बात लोक में किसी पुरोवर्ती पदार्थ में चक्षुः सन्निकर्ष होने के बाद ही सादृश्यमूलक अध्यास होता है ब्रह्म के साथ चक्षुः सन्निकर्ष ही नहीं ब्रह्म पुरोवर्ति तथा चक्षुः सन्निकृष्ट नहीं, अतः अध्यास असम्भव। शुक्ति रजत स्थल में एक अज्ञानी को ही रजताध्यास होता है, किसी दिव्य दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति को रजताध्यास नहीं होता, अतः वहाँ तो अध्यास का आश्रय अज्ञानी जीव होता है, प्रकृत स्थल में मायावादी की दृष्टि में जब जीव भी ब्रह्म ही है, फिर ब्रह्म को अज्ञान कैसा? अज्ञानाभाव के कारण अध्यास का कोई आश्रय ही नहीं बनता, इस प्रकार अध्यास के आश्रयाभाव के कारण भी अध्यास सम्भव नहीं।

अध्यास की सामग्री के अभाव से भी अध्यास असम्भव।

तात्पर्य है कि यदि विश्वकल्पित होता है तो अध्यास के प्रधान अधिष्ठान ब्रह्म के सादृश्य से युक्त होता, पर ऐसा स्वीकार कर नहीं सकते। कारण सादृश्य गुण आदि के कारण होता है, वह निर्गुण ब्रह्म में सम्भव नहीं, इस प्रकार सादृश्यादि सामग्री के अभाव से भी अध्यास असम्भव है। अध्यास के लिए संस्कार, सादृश्य, सम्प्रयोग आदि कारण आवश्यक है। इन सबका अभाव होने से ब्रह्म में विश्व का अध्यास सम्भव नहीं है। सम्प्रयोग का तात्पर्य है। सम्यक् प्रकार पुरोवर्ति पदार्थ के साथ चक्षुः सन्निकर्ष। तात्पर्य है कि जिसका संस्कार पहले से होता है, उसी का अध्यास होता है, सर्प का संस्कार पहले से है, अतः उसका अध्यास होता है। यदि कहें कि कल्प के आदि में, उसके पूर्व प्रधान विश्वान्तर के अभाव से तद्भ्रमजन्य संस्कार से कल्प के आदि में भ्रम उत्पन्न होता है इस प्रकार परम्परा या संस्कार का अनादित्व कहेंगे, वह संस्कार अधिष्ठान ब्रह्म गत ही है, क्योंकि आपके मत में जीव ब्रह्म ही है। इसलिये वह संस्कार अधिष्ठान ब्रह्म समसत्ताक है, क्योंकि ब्रह्म अनादि और वह भ्रमजन्य संस्कार अनादि। इस प्रकार संस्कार के ब्रह्म समसत्ताक अनादि होने से उसकी सत्यता माननी होगी, फिर तो अद्वैत का व्याघात होगा।

सादृश्य के अभाव से भी अध्यास असम्भव—अध्यास में सादृश्य भी कारण होता है। सादृश्य धर्म से होता है। अद्वैतमत में अध्यास का अधिष्ठान निर्विशेष है। उसमें कोई धर्म नहीं और सादृश्य धर्ममूलक होता है। इसलिये उसका कही सादृश्य नहीं, श्रुति भी कहती है **'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** यहाँ स्पष्ट ब्रह्म में सादृश्यका प्रतिषेध है।

सादृश्य का प्रतिषेध। निर्विशेष ब्रह्म में गुण तथा क्रिया सादृश्य का अभाव होने से उसमें कैसा अविद्या एवं संस्कार आदि का अध्यास होगा और आप अध्यस्त संस्कार द्वारा ही अध्यास मानते हैं। इस प्रकार संस्कार सादृश्य दो प्रमुख अध्यास के कारणों के अभाव से अध्यास असम्भव है। यदि कहें कि ब्रह्म में कल्पित धर्म से ही सादृश्य हो जाएगा, वह भी सम्भव नहीं है। कारण कल्पित धर्म अध्यास से ही सम्भव है और अध्यास धर्म से ही होगा फिर तो अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति स्पष्ट है। यदि कहें कि अविद्याकृत अध्यास में सादृश्य की अपेक्षा नहीं होती, वह अनादि है तो यह भी नहीं कह सकते, इस सम्बन्ध में देखे इसी ग्रन्थ के मूल में गम्भीर विचार यदि कहें कि जैसे पीतः शङ्खः में अध्यास के सादृश्य के बिना भी अध्यास होता है, उसी तरह, यहाँ भी अध्यास हो जाएगा तो वैसा भी नहीं कह सकते, तो वहाँ द्रव्यत्व आदि धर्म से सादृश्य है। इस विषय का विशद विवेचन इसी ग्रन्थ के मूल में देखें।

लक्षण की असिद्धि से भी अध्यास असम्भव—अध्यास के लक्षण भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न किये हैं शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध, अन्यथा ख्यातिवादी नैयायिक अख्यातिवादी मीमांसक, सत् ख्यातिवादी सांख्य, अनिर्वचनीय ख्यातिवादी श्री शंकराचार्य आदि सभी वादियों की ख्यातियों का यहाँ अति गम्भीर विवेचन कर खण्डन कर सिद्ध किया गया है इस प्रकार अध्यास के लक्षण की भी सिद्धि नहीं होने से अध्यास सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में अति गम्भीर विवेचन किया गया है। इसमें विज्ञानवादी एवं शून्यवादी माध्यामिक बौद्ध एवं श्रीशंकराचार्य महाराज के 'स्मृति रूपः परत्र पूर्व दृष्टावभासः' अध्यास लक्षण की गम्भीर समीक्षा है जो विद्वद्भोग्य है जिसे इस ग्रन्थ के मूल में देखना चाहिये।

प्रमाण के अभाव से अध्यास असम्भव

यदि कहें कि अध्यास के सद्भाव में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा अर्थापत्ति प्रमाण है, उसके द्वारा अध्यास की प्रामाणिकता सिद्ध हो सकती है, जैसे अहं द्रष्टा, अहं भोक्ता, अहं श्रोता, अहं वधिरः अहं काणः इत्यादि देवदत्त आदिकर्तृक समस्त व्यवहार उसके देह आदि में अहं मम रूपी अध्यास मूलक है, क्योंकि देह, इन्द्रिय आदि में अध्यास होने पर ही उक्त व्यवहार बनते हैं, अध्यासाभाव में उक्त व्यवहार की उपपत्ति नहीं हो

इनका कहना है—जगत् अनादि है, पूर्व, पूर्व जगत् में भ्रमात्मक संस्कार से ब्रह्म में जगत् का अध्यास होता है, तो यह भी नहीं बनता। कारण इसका तात्पर्य तो यह है कि अनादि काल से ही ब्रह्म भ्रान्त है, यह कितनी विडम्बना है, ब्रह्म भी है और उसमें अविद्या भी अध्यास भी है यह तो वदतो व्याघात है।

सकती, यह अन्वयव्यतिरेक सिद्ध है, जो हेतुमत् होता है, वह साध्यवत् होता है, मृत्तिकामूलक घट की तरह, यह अनुमान प्रमाण है। इसी प्रकार यदि अध्यास प्रमाता न हो तो प्रमाण आदि व्यवहार नहीं होगा, कारण समस्त व्यवहार अविद्यावत् विषयक है। यह अर्थापत्ति प्रमाण भी अध्यास के प्रमाण है, जैसाकि भगवान् भाष्यकार ने कहा है—"**तमेतम् अविद्या रूपम् आत्मानात्मनोरितरेतराध्यासरूपम् पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाण प्रमेय व्यवहाराः लौकिकावैदिकश्च प्रवृत्ताः सर्वाणि च विधिनिषेधमोक्ष पराणि च शास्त्राणि**" तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण उक्त प्रत्यक्षादि शरीर इन्द्रिय संयुक्त आत्मविषयक होने से उनमें अध्यस्तत्व का अभाव है '**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः**' **आत्मा च इन्द्रियं च मनश्च तैर्युक्त आत्मा** अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन से युक्त आत्मा भोक्ता है, यह अर्थ है। आत्मा शब्द यहाँ शरीरवाची है, अर्थात् शरीर, इन्द्रिय तथा मन से युक्त आत्मा भोक्ता है, यह अर्थ है। अन्यथा मनोयुक्तः के स्थान में अध्यस्तः ऐसा श्रुति का प्रयोग किया जाता, यदि कहें कि उक्त प्रत्यक्ष आदि भले ही अध्यास में प्रमाण नहीं है, किन्तु ब्राह्मणो यजेत इत्यादि वचन तो स्पष्टतया अध्यास के प्रमाण है, कारण आत्मा में वर्ण, आश्रम तथा वय अवस्था आदि का आश्रय लेकर प्रवृत्त होते है, इसलिए श्रुति मूलक होने से अध्यास अवश्य माननीय है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि उक्त श्रुतियाँ भी वर्ण आश्रम, वय अवस्था आदि से युक्त शरीर संयुक्त आत्मा आधिकारिक होने से यह भी अध्यास नहीं है। ब्राह्मणो यजेत इत्यादि, श्रुतियों का भी आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो, भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः। इत्यादि श्रुतियों में एक वाक्यता है। इस श्रुति पर निष्ठा रखने वालों के लिए श्रुति ने मनीषी शब्द का प्रयोग किया है। एतावता वर्ण, वय आश्रम अवस्था भावी में अध्यासवादी के लिए श्रुति द्वारा कुमनीषित्व द्योतित होता है। इसलिये जिनके मत में वेदादि प्रमाणों के विरुद्ध होने पर कुल धर्म के रूप में अध्यास मान्य है वे ही लोग अध्यास मानें उनके लिए ही केवल अध्यास मान्य है—दूसरी बात यदि उक्त प्रतीति के आधार पर अध्यास माना जाये तब तो आपके मत से जीवन्मुक्त याज्ञवल्क्य वामदेव आदि महर्षियों के भी उक्त प्रकारक व्यवहार देखे जाने से उन लोगों में भी अध्यास स्वीकार करना होगा अर्थात् आपकी दृष्टि से वे सभी महर्षि भी भ्रान्तिमत् पुरुष हो जाएंगे, कारण उन लोगों ने भी अपने लिए अहं का प्रयोग किया है "**मामेव विजानीहि मामुपास्स्व तद्धैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेव प्रतिपेदे अहं मनुरभवम् सूर्यश्च**" "**कक्षीवानृषिरस्मि विप्रः तमेवावोचर**" '**अतो मामेव विजानीहि**'

इत्यादि व्यवहार देखा गया है। मैं मनु हुआ मैं सूर्य हुआ। आपकी दृष्टि में ये सब अध्यास होगा। तब तो वे सभी अध्यासवान् होगें, भ्रान्तिमान् होगें, फिर तो उन सबके उपदेश भी अप्रामाणिक होंगे, वे सभी अज्ञानी हो जाएंगे फिर तो उनके उपदेश के आधार पर लिखित आधुनिक पुरुषों द्वारा की गई शास्त्रों की व्यवस्थाएँ, उनमें सारे के सारे उपदेश भी अविश्वनीय हो जाएंगे। इस प्रकार तो उनके उपदेशों में वञ्चकता आ जाएगी, इसलिये अध्यास में कोई प्रमाण न होने से अध्यास सर्वथा असम्भव है।

यदि कहें कि अविद्या के प्रभाव से अध्यास की सामग्री के बिना भी अध्यास हो जाएगा। कारण अविद्या में दो शक्तियाँ होती है—आवरण शक्ति, विक्षेप शक्ति। आवरण शक्ति के प्रभाव से अविद्या जीव के आपने वास्तविक स्वरूप को भुला देती है। विक्षेप शक्ति से जगत् का आभास करा देती है तो यह भी नहीं कह सकते, कारण यहां वे ही सारे प्रश्न होंगे, अविद्या क्या चीज है, उसमें क्या प्रमाण है, उसका आश्रय कौन है? ब्रह्म कह नहीं सकते शुद्धत्व की हानि, जीव कह नहीं सकते कारण आपके मत में जीव ब्रह्म ही है, फिर ब्रह्मरूप को अविद्या कैसे?

दूसरी बात अविद्या के सद्भाव में भी क्या प्रमाण है? प्रत्यक्ष आदि प्रमाण कह नहीं सकते इसका खण्डन पहले ही कर दिया गया है। अविद्या का अनुमान नहीं हो सकता यह इसी पुस्तक के मूल में ही देखें अनुवाद भी पढ़ें। नव्यन्याय मार्तण्ड ग्रन्थकार ने बड़े विस्तार के साथ अविद्यानुमान का खण्डन किया है। क्यों न हो अनुमान ही तो न्याय का प्राण है व्याप्ति परामर्श हेत्वाभास व्यभिचार विरुद्ध असिद्ध सत्प्रतिपक्ष के विषय में भला इनसे कौन जूझ सकता है? प्रमाण विचार प्रामाण्य विचार जितना न्याय में हुआ वैसा विश्व में कहीं नहीं हुआ प्रमाण शास्त्र का विश्वप्रसिद्ध पण्डित मिथिला विभूति गंगेश की तत्त्वचिन्तामणि के जैसा विश्व में कहीं कोई ग्रन्थ नहीं बना जो उसपर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई लगभग पचासों टीकाओं से व्यक्त होता है।

नैयायिक शिरोमणि प्रकृत ग्रन्थकार ने तो इस ग्रन्थ में अविद्यानुमान के प्रसंग में कमाल ही कर दिया है, वहां बताया है कि अविद्यानुमान में न कोई पक्ष हो सकता न साध्य न हेतु, न व्याप्ति न परामर्श अविद्यानुमान की एक भी सामग्री नहीं हो सकती, अतः अविद्यानुमान सर्वथा असम्भव है।

दूसरी बात अविद्या का जो लक्षण मायावादी करते हैं, सदसद्भ्यामनिर्वचनीय

भाव रूपः यत्किञ्चिद्वस्तु'' इसपर भी प्रस्तुत ग्रन्थकार न्यायमार्तण्ड ने कमाल ही कर दिया है क्या गम्भीर विवेचन है क्या सूक्ष्म चिन्तन है। इस सम्बन्ध में इतना सूक्ष्मचिन्तन गम्भीर विवेचन मैंने वेदान्त के किसी भी ग्रन्थकार के ग्रन्थ में नहीं देखा, किसी वैष्णवाचार्य ने अध्यास पर अविद्यापर, विषय, अधिकार प्रयोजन पर मायावादी की हर बिन्दु पर इतनी गहरी चोट किसी वैष्णवाचार्य ने नहीं की है। इस दृष्टि से यह पुस्तक न केवल निम्बार्कीय वैष्णवों के लिये अपितु समस्त वैष्णव जगत्,भागवत जगत्, के लिए कवच स्वरूप है।

मायावादी कहते हैं माया (अविद्या) न सत् है, न असत्- न भाव रूप है, न अभाव रूप है, भावाभावविवर्जित उभय विलक्षण अनिर्वचनीय है, अनिर्वचनीय भाव रूप है। एक तरफ कहते हैं, न सत् है भाव रूप नहीं पर आगे कहते हैं भावरूपं किञ्चित्' यहाँ स्पष्ट वदतो व्याघात है, सुधीजन विचार करें।

इस स्थल पर भी अप्रतिम प्रतिभा के धनी दार्शनिक शिरोमणि ग्रन्थकार ने गजब की खिंचाई की है मायावादियों की। दार्शनिक बहस करने का भी इनका लाजवाब तरीका है। असच्चेन्न प्रतीयेत सत् चेन्न बाध्यते यहाँ पहले असच्चेन्न प्रतीयेत यहां पहले सत् असत् शब्द पर नाना प्रश्न किये हैं। 'न प्रतीयेत' मे प्रतीति पर गम्भीर प्रश्न किये हैं 'प्रतीति पर प्रश्न है प्रतीति क्या ज्ञान सामान्य है या ज्ञान विशेष यहां सत् असत्, प्रतीति, बाध्येते इन सब पर मायावादियों पर लम्बे प्रश्न किये हैं, प्रश्नों की बौछारें कर दी है नाना प्रश्न कर मायावादियों का मुख बन्द कर दिया है उन्हें कुछ बोलने लायक नहीं रहने दिया है और अविद्या का कोई लक्षण भी उनको नहीं करने दिया है। इस प्रकार चारों ओर से घेरकर मायावादियों के अध्यास का पर्दाफाश कर दिया इस ग्रन्थ ने।

यहाँ मायावादियों पर और कतिपय प्रश्न—

श्रीशंकर अनादि अध्यास मानकर सब व्यवहार निभाते है तो प्रश्न है कि ब्रह्म भी अनादि और अध्यास भी अनादि तो अद्वैत की हानि क्यों नहीं?

श्री शांकर मत में दृश्यत्व एवं विषयत्व हेतु से जगत् को मिथ्यासिद्ध किया गया है जगन्मिथ्या दृश्यत्वात् विषयत्वाच्च घटादिवत् उक्त हेतुओं से जगन्मिथ्यात्व की सिद्धि भी गलत यदि उक्त हेतुओं से जगत् को मिथ्या सिद्ध किया जाए तब तो ब्रह्म भी मिथ्या हो जाएगा कारण ब्रह्म भी दृश्य है, अनुमान होगा ब्रह्म मिथ्या दृश्यत्वात् घटादि वत्। ब्रह्म दृश्य है इसमें प्रमाण है, 'आत्मा वाऽरेद्रष्टव्यः इत्यादि श्रुतियां। दूसरी

बात यदि दृश्यत्व हेतु मिथ्यात्वका साधक होता तो 'पश्येम शरदः शतम्' इन वेदवाक्य में वञ्चकतापत्ति होगी।

इनके अलावा मायावादियों की अन्यान्य कई बातें भी मानने योग्य नहीं है, जो शास्त्रों एवं सनातन परम्परा के विरुद्ध हैं उदाहरणार्थ—वे संन्यास से ही मोक्ष मानते हैं, गृहस्थ को मोक्ष नहीं, ज्ञान से अथवा तथाकथित ज्ञान से ही मोक्ष मानते हैं, भक्ति से नहीं, सगुण से निर्गुण को श्रेष्ठ मानते सगुण को निम्न सगुण उपासना से निर्गुण उपासना को श्रेष्ठ मानते हैं, उपासना मन्दाधिकारियों के लिए है उच्चाधिकारियों के लिए नहीं लोकान्त प्राप्ति गोलोक वैकुण्ठादिधाम की प्राप्ति को मोक्ष नहीं मानते एवं उन दिव्य धामों के दिव्य सुखों को मोक्ष नहीं मानते, उन्हें ये अनित्य मानते है, गीता एवं उपनिषदों को ये ज्ञान का ग्रन्थ मानते भक्ति का नहीं, परन्तु ये सारी बातें गीता, भागवत एवं अठारहों पुराणों के विपरीत हैं, गीता में "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" कहा है। कर्म से ही जनक आदि को मुक्ति प्राप्ति हुई बताया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार जनक वंशीयनिमि राजा से लेकर वहुलाश्वजनक राजा गृहस्थ थे सभी आत्मविद्या विशारद थे मुक्त हुए थे, कहा है। श्री शंकर के अनुसार यदि संन्यासी को ही मोक्ष हो तब वाचस्पति, मण्डन, उदयन कुमारिल आदि किसी को भी मुक्ति नहीं ऐसा कहना होगा इतना ही क्यों फिर तो मरीचि अत्रि अङ्गिरादि समस्त ऋषियों किसी को भी मुक्ति नहीं ऐसा कहना पड़ेगा और औरों की बात ही क्या स्वयं वेदान्ताचार्य भगवान् व्यास, उनके पिता परम पिता शक्ति पराशर वशिष्ठ आदि अनेकों आचार्यो में किसी को भी मुक्ति नहीं मिली ऐसा कहना होगा कारण ये सभी गृहस्थ ही तो थे। ये मायावादी ब्रह्मविद्या में अधिकार भी संन्यासी को ही मानते है इस प्रकार इनके मत से तो लाखों लाख ऋषि महर्षि, गौतम, कणाद कपिल जैमिनि आदि दर्शनाचार्य भी मुक्ति के लिये लालायित रह जाएंगें। क्या कोई समझदार कभी ऐसा मानने को तैयार होगा?

भगवद्गीता के जोर का कोई ग्रन्थ नहीं है। गीता में दो-दो पक्ष उपस्थित कर निर्णय दिये गये है संन्यास और कर्मयोग में कौन श्रेष्ठ? भगवान् बोले- संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस करा वुभौ, तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्म योगो विशिष्यते कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते। यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियभ्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते अर्थात् कर्मसन्यास से कर्मयोगश्रेष्ठ है।

श्रीशंकराचार्य महाराज ने 'त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञो दानमध्ययनं प्रथमः तप इति द्वितीयः आचार्य कुले आत्मानमवसादयेदिति तृतीयः एते त्रयः पुण्य लोका भवन्ति ब्रह्मनिष्ठोऽमृतत्वमेति' (छा० उ०) इस श्रुति की व्याख्या में आपने ब्रह्मनिष्ठ का रूढि अर्थ

करके लिखा है, ये तीनों ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थी स्वर्गलोग की प्राप्ति करते है और ब्रह्मनिष्ठ संन्यासाश्रमी ही मोक्ष को प्राप्त करता है, परन्तु वाचस्पति मण्डन आदि दार्शनिक ब्रह्मनिष्ठ का यौगिक अर्थ करके ब्रह्म में निष्ठावान् कोई भी व्यक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी कोई भी मोक्ष पा सकता है।

कर्मयोग श्रेष्ठ। छठे अध्याय के अन्त में कहा— तपस्वी से, कर्मकाण्डी से तथा ज्ञानी से योगी श्रेष्ठ और योगियों में भी '**योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मनः। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः**' योगियों में भी शुष्क योगी से भक्त योगी श्रेष्ठ। सातवें में कहा— दैवीह्येषा गुणमयी मम मायादुरत्यया मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' यहाँ स्पष्ट भगवान् कहते है जो केवल मेरा ही भजन करता है वही माया को पार करता है। कहाँ तो यह स्पष्ट घोषणा तथा आठवें अध्याय में कहा अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरंयः प्रयाति स मद्भावम्' मामुपेत्यपुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्नाप्नुवन्ति आब्रह्म भुवन्नालोका. मामुपेत्यतु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में निर्विशेष ब्रह्मवाद, मिथ्यात्ववाद, निःसम्बोधि मोक्षवाद समेत अध्यासवाद की साङ्गोपाङ्ग समीक्षा कर सविशेष ब्रह्मवाद जगत् सत्य वाद ससम्बोधि मोक्ष वाद सर्वोपरि भक्तिवाद का समर्थन किया गया है। इस दृष्टि से वैष्णव जगत् के लिये यह अमूल्य निधि ग्रन्थ है, परन्तु नव्यन्याय की भाषा में विरचित यह ग्रन्थ संस्कृतानभिज्ञ साधारण जनों की तो बात ही क्या न्यायानभिज्ञ बड़े-बड़े विद्वानों के लिये भी दुर्बोध है।

दुरूह ग्रन्थ परपक्ष गिरिवज्रके हिन्दी अनुवाद के लिये श्री सन्तदास जी महाराज का अति दुरूह प्रयासः-

भक्ति जगत् के लिये परम कल्याण प्रद सम्प्रदाय की इस अमूल्य निधि का संस्कृतानभिज्ञ भक्तिपथ के पथिक जनों को भी इसका लाभ मिले वे भी इसे पढ़कर भक्ति मार्ग में सोत्साह आगे बढ़ते रहें इस दृष्टि से परम कारुणिक सन्तशिरोमणि बाबा सन्तदासजी निम्बार्क कुञ्ज मोतीझील वृन्दावन के मन में इसका भी अनुवाद कराकर प्रकाशित करवाने का विचार हुआ। उन्होंने इस ग्रन्थ का अनुवाद करने के लिए कई विद्वानों से सम्पर्क किया, परन्तु इस ग्रन्थ की दुरूहता के कारण किसी का भी इसका अनुवाद करने का साहस नहीं हुआ बाद में महाराजजी ने मुझ से प्रार्थना की। इससे पहले महाराजजी की प्रेरणा से ही मैंने जगद्गुरु श्री केशवकाश्मीरिभट्टाचार्य महाराज द्वारा विरचित ब्रह्मसूत्र भाष्य वेदान्त कौस्तुभप्रभा का अनुवाद किया था जिसे पूज्य बाबा ने प्रकाशित करवाया, परन्तु अब अधिक अवस्था होने से स्वास्थ्य खराब रहने तथा ग्रन्थ के अतिदुर्बोध होने के कारण पहले तो मेरा भी साहस नहीं हुआ। कारण यह ग्रन्थ पूरा का पूरा नव्यन्याय की

भाषा में लिखित है। इसे वही व्यक्ति ठीक-ठीक पढ़ सकता है जिसे नव्यन्याय का पूर्ण अध्ययन है। जिसने नव्यन्याय के सारे ग्रन्थ विधिवत् गुरु से पढ़े हों, साथ ही शांकर वेदान्त के सारे ग्रन्थ विधिवत् पढ़े हों ये दोनों बातें मुझमें भी नहीं थी। व्याकरणाचार्य करने के बाद नव्यन्याय पढ़ने मैं काशी आया था दो साल मैं काशी रहा। वहाँ व्याप्ति वादके तो सारे ग्रन्थ वहीं पढ़ लिये थे पर आगे नहीं पढ़ सका। मिथिला के संस्कार के अनुसार न्यायाचार्य करने का तो पूरा विचार था पर इसी बीच सन् ५० ई० में पूज्यगुरुदेव के साथ मेरा वृन्दावन आना हुआ उस साल वृन्दावन में कुम्भ था। केशी घाट में, मैं रोज रास देखने जाता था रास देखकर तो मेरा सारा राग मिट गया न्याय का राग, व्याकरण का राग, शास्त्रार्थ का राग, जिन रागों में मैं पूरी तरह लिप्त था सारे राग एक ही दिन में मिट गये[1] भला कृष्णानुराग होने पर और किसी का राग किसी को रहा है?

आखिर यहाँ का भगवान् ही तो इतर राग विस्मारक है। परन्तु गोलोकवासी आबाल कृष्ण भक्त न्याय वेदान्तादि सकल शास्त्र निष्णात गुरु देव पण्डित प्रवर पं० श्री भगीरथझाजी की कृपा से मुझे न्याय एवं वेदान्त के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान प्राप्त हो चुका था। उन्हीं की कृपा से मुझे श्री शांकर वेदान्त, वैष्णव वेदान्तादि शास्त्रों का सिद्धान्त मालूम हो चुका था, उन्हीं पूज्य श्री गुरुदेव की कृपा से साहस कर इस ग्रन्थ के अनुवाद कार्य में मैं प्रवृत्त हुआ। इस कार्य में मुझे गोलोकवासी पण्डित प्रवर दार्शनिक सार्वभौम न्यायरत्न १०८ श्री अमोलकराम शास्त्री की संस्कृत टीका से बहुत सहायता मिली। यद्यपि उनकी टीका भी अत्यन्त कठिन है। वैसे? वह भी नव्यन्याय में धुरन्धर थे, उन्होंने तो कहीं कहीं और अधिक विचार कर दिये हैं। फिर भी उनसे बहुत सहायता मिली।

कई जगह इस ग्रन्थ में असम्बद्ध सा भी लगा परन्तु इसकी दूसरी कोई प्रति नहीं मिलने से तत् स्थलों में उनका स्पष्टीकरण नहीं हो सका। यह ग्रन्थ यथानाम तथा गुणः है, इसमें अध्यास गिरि के समस्त शिखरों समेत परपक्ष सम्बन्धी समस्त शास्त्र-विरुद्ध गिरि-शिखरों का निपात है, जो द्रष्टव्य है।

यह बात मैं पहले निवेदन कर चुका हूँ कि इस समय मेरी ८०-८१ वर्ष की अवस्था है, नाना रोगों से पीड़ित रहता हूँ नेत्र दौर्बल्य अलग चश्मादि से भी स्पष्ट दिखाई नहीं देता पूरा अनुवाद करना प्रेस कॉपी तैयार करना, प्रूफ देखना सारा का सारा काम मुझे स्वयं करना पड़ा इसी से कृपालु पाठक समझ सकेंगे कि इसका अनुवाद सम्पादन मेरे लिए

1. न्याय पढ़कर शास्त्रार्थी बनने का विचार छूट गया और श्रीराधारानी की ऐसी कृपा हुई कि उसी साल वृन्दावन में श्रीनिम्बार्क संस्कृत विद्यालय में प्रधानाचार्य पद पर नियुक्ति हो गयी वह भी 21 वर्ष की अवस्था में ही मुझे यहां प्राचार्य बनने का सौभाग्य मिल गया और तब से ६० वर्ष तक वृन्दावनवास का सौभाग्य मिलता रहा। इससे बढ़कर प्रिया प्रियतम की मुझ पर क्या कृपा हो सकती है।

कितना कठिन कार्य रहा है। इस दृष्टि से इसमें अनुवाद सम्बन्धी सम्पादन सम्बन्धी अनेकानेक त्रुटियां स्वाभाविक हैं, इस प्रकार मेरी सारी कठिनाईयां देखकर पाठक कृपा कर क्षमा करेंगे। उपर्युक्त मेरी परिस्थिति मेरी लाचारी को देखकर भी जो त्रुटि के लिए मुझे माफ नहीं करेंगे तो मेरे साथ उनका न्याय नहीं होगा।

अन्त में मैं उन विद्वानों, सन्तों तथा आचार्यों से भी क्षमा चाहता हूं, जिनकी मान्यताओं की मेरे द्वारा आलोचना की गई है, यह समीक्षा किसी के राग-द्वेष से नहीं बल्कि यहाँ मेरी भी विवशता व मेरी भी हार्दिक वेदना है। मैं कृष्ण भक्त हूँ, उक्त मान्यताओं से मेरी उपासना मेरी भावनाओं पर बड़ा आघात हुआ, अतः वेदनाओं के वशीभूत होकर ही कुछ लिखना पड़ा है, मुझे वे सन्त वे आचार्य क्षमा करेंगे और मुझे आशीर्वाद देंगे कि मुझे कृष्णानुराग में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिये सविशेषवाद पुरुषोत्तमवाद भक्त्युत्कर्ष वाद तथा गीता भागवत के सर्वोत्कृष्ट भक्ति सिद्धान्तवाद पर निष्ठा बढ़ती रहे—इति।

स्वाभाविक भेदाभेद एक वास्तविकता

पितृवर्यं रमानाथं सुभद्रां जननीं तथा।
पितृव्यं च जगन्नाथं गायत्रीमन्त्रदं नुमः॥ 1॥
ग्रामं घोघरडिहां नौमि जन्मभूमिं निजामहम्।
मिथिलायाः मुवो मात्रे स्थितां विप्रगणान्विताम्॥ 2॥

इस वैदान्तिक प्रस्थान में तीन तत्त्व पारमार्थिक मान्य हैं—चित्, अचित्, ईश्वर। इसमें **'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा त्रिविधं तत्त्वमेतत्'** प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, **'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः'** इत्यादि श्रुति वचन स्मृतिवचन, पुराणों के अनेकानेक वाक्य प्रमाण हैं, जिनका यहां लघु सम्पादकीय में उद्धरण संभव नहीं सम्प्रदाय के दार्शनिक ग्रन्थों में देखें जा सकते हैं।

१. चित् (जीव)—अणु, अनन्त सच्चिदानन्द घन-स्वरूप, विभु ज्ञानधर्मी, **२. अचित्** (प्राकृत-त्रिगुणात्मक परिणाम कालनियम्य) काल[२] (प्रकृति, प्राकृत-नियामक, नित्य अखण्ड उपाधिभेद से क्षणमुहुर्तादि व्यवहार हेतु) अप्राकृत[३] (प्रकृति कालातीत नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप धर्मतः ज्ञानहीन अतएव अचित् पदवाच्य परिणामादि विक्रियानर्ह अपरिच्छिन्न) **३. ईश्वर**—इन दोनों का नियामक शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप विग्रह निरतिशयगुण शक्तिपरिपूर्ण सर्वहेय प्रत्यनीक स्वभाव। भेद से पदार्थत्रय माने गये है, परन्तु ये पदार्थ-त्रय योगशास्त्रीय पदार्थत्रय जैसे स्वतन्त्र सत्ताश्रय नहीं, किन्तु एक ही स्वतन्त्र सत्ताश्रय

१. गोलोकवासी गुरुदेव प्रातः स्मरणीय पं० श्री भगीरथ झा जी के द्वैताद्वैत विवेक की प्रवर्तना से उद्धृत।

ईश्वर का इतरद्वय भिन्नाभिन्न स्वभाव अपृथक् सिद्ध शक्ति विशेष है, जैसे आकाश की शब्दशक्ति सूर्य की प्रकाश शक्ति। फलतः एक ही स्वतन्त्र सत्ताश्रय ईश्वर तत्त्व है उन्हीं के अधीन सत्ताश्रय अपृथक् सिद्ध भिन्नाभिन्न स्वभाव तदात्मक अन्य तत्त्वद्वय है यही वैदान्तिक वैष्णवसिद्धान्त का संक्षिप्त रूप है।

इस मत में ब्रह्म अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक कल्याणगुणगण निलय सार्वज्ञ्य सर्वशक्तिमत्वादि असंख्य आत्मगुण तथा सौन्दर्य माधुर्यादि विशिष्ट श्री कृष्णस्वरूप माना गया। असंख्येय दिव्य सच्चिदानन्दगुणान्वित भिन्नाभिन्न स्वभाव चिदचिच्छक्ति विशिष्ट ब्रह्म स्वरूप माना गया है, वह श्रीमद्भागवत के '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' "**कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्**" "**अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्**" गीता के अनुसार '**मत्तः परतरं नान्यत् अहं सर्वस्य प्रभवः मयि सर्वमिदं प्रोतम्**' महाभारत के अनुसार '**कृष्ण एव हि लोकानां भावनो मोहनस्तथा संहारकारकः**' तथा श्रीशंकराचार्य के अनुसार

'कृष्णो वै पृथगास्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा, मधसूदन सरस्वती के अनुसार कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने, महाप्रभु चैतन्य के अनुसार आराध्यो भगवान् व्रजेन्द्रतनयः। महाप्रभुवल्लभ के अनुसार "**कृष्णात् परं नास्ति तत्वं वस्तु -दोष-विवर्जितम्**" आदि आदि अनेकानेक आर्ष अनार्ष श्रौत स्मार्त वचन जिन भगवान् श्रीकृष्ण की परात्परता में विद्यमान हैं। श्रीनिम्बाकाचार्य के वही क्षराक्षरातीत गीतोक्त पुरुषोत्तम् श्रीराधाविहारी श्रीकृष्ण ब्रह्म आराध्य हैं। जैसाकि उनका उद्गार वचन है "**व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यम् ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्**" अस्तु।

उक्त तीनों तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में नाना मत हैं, कुछ लोग तत्त्वत्रय में केवल अभेद (अत्यन्ताभेद) मानते हैं, जैसे घटो घट में भेद किञ्चिन्मात्र नहीं सर्वथा एकत्व अत्यन्त अभेदवादियों में भगवान् श्री शंकराचार्य प्रसिद्ध हैं, अत्यन्त भेदवादियों में श्रीरामानुजाचार्य मध्वाचार्य आदि आचार्य माने जाते हैं। औपाधिक भेदाभेद में दो मत हैं, कुछ आचार्य औपाधिक भेदाभेद कुछ स्वाभाविक भेदभेद वादी हैं, औपाधिक भेदाभेदवादियों में भाष्कराचार्य स्वाभाविक भेदाभेदवादियों में भगवान् श्रीनिम्बाकाचार्य प्रसिद्ध हैं।

श्रुतियों में भेदपरक तथा अभेदपरक नाना श्रुतियां विद्यमान हैं[१]—कुछ भेद निन्दापरक भी हैं[१]— ये दोनों श्रुतियां षड्लिङ्गोपेत हैं जिसे आगे यहीं हम दिखायेंगे। इनमें केवल भेदवादी अभेद श्रुति की व्याख्या में बहुत मनमानी करते है, श्रुतियों को तोड़-मरोड़ करते

---

१. यदि कहें कि यह तो भगवान् का वचन है उनको तो भेद प्रत्यक्ष है तब तो और भी भेद पक्का हो जाता है वह भेद भगवत वचन द्वारा भी सिद्ध है।

हैं, इसी तरह केवल अभेदवादी भी भेदश्रुति का भी बड़ा मखौल उड़ाते हैं, जी-जान से उस श्रुति का तोड़-मरोड़ करते हैं। भेद श्रुति को व्यावहारिक दशा का वर्णन कहते है। भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है अतः प्रत्यक्षसिद्ध भेद का अनुवाद होने से भेद श्रुति दुर्बल, अभेद श्रुति से उसका बाध बताकर केवल अभेद की सिद्धि करते है। अभेद प्रत्यक्ष से असिद्ध है। अतः अभेद प्रतिपादक श्रुति बलवान् है, अतः केवलाद्वैत वाद या अत्यन्ताभेदवाद ही श्रौत सिद्ध है, इसके लिए उनके ब्रह्मास्त्र हैं, 'तत्त्वमसि अहं ब्रह्मस्मि सर्वं खल्विदं ब्रह्म महावाक्य। अभेदवादी तत्वमस्यादि वाक्यों में सामानाधिकरण्य के लिए महावाक्य में जहदजहल्लक्षणा तत् पद में एवं त्वं पद में सर्वज्ञत्वांश अल्पज्ञत्वांश का परित्याग करके शुद्ध चैतन्य में अभेद सिद्ध करते हैं, इसी प्रकार केवल भेदवादी अभेद श्रुति में त्वं का युष्मदर्थ अन्तर्यामी करके उसके साथ अभेद बताकर जीव के साथ भेद सिद्ध करते हैं। **'तत्त्वमसि'** के द्वारा गुरु शिष्य को बताते हैं कि हे शिष्य तुम तत् माने वहीं ब्रह्म हो, यहाँ तत् और त्वं दोनों प्रथमान्त हैं। ''सामानाधिकरण नामार्थयोरयेदातिरिक्त'' सम्बन्धोऽव्युत्पन्नः यह व्याकरण शास्त्र का सिद्धान्त है, ऐसी स्थिति में त्वं का तुम्हारा अन्तर्यामी अर्थ करके उसके साथ अभेदान्वय साधन उचित नहीं प्रतीत होता तब तो उक्त महावाक्य का अर्थ होगा। हे शिष्य त्वं माने तुम्हारा अन्तर्यामी ब्रह्म है, क्या ऐसा अर्थ उक्त महावाक्य का स्वारस्य प्रतीत होता है या संगत लगता है? इस अर्थ के लिए तो उनको भी शांकर सिद्धान्तानुसार लक्षणा ही करना पड़ेगा लक्षणा अगतिक गति है, शक्यार्थ संभव होने पर लक्षणा उचित नहीं मानी जाती इस प्रकार जबर्दस्ती भेद सिद्ध्यर्थ श्रुति को तोड़-मरोड़ उचित नहीं लगता। इसी प्रकार एक श्रुति को मानना दूसरी न मानना विरोधी श्रुति का तोड़-मरोड़ करना अर्धनास्तिकता है।

ऐसी स्थिति में भगवान् श्री निम्बार्काचार्य का स्वाभाविक भेदाभेदवाद का सिद्धान्त सर्वथा उपयुक्त एवं पूर्ण श्रौत सिद्धान्त प्रतीत होता है उनका कथन है कि जब दोनों प्रकार की श्रुतियां उपलब्ध हैं और वे सभी षड्लिङ्गोपेत हैं उदाहरणार्थ भेद श्रुति — ''द्वा सुपर्णा उपक्रम है, **'परमं साम्यमुपैति'** उपसंहार है **'तयोरन्यो ऽनश्नन् अभिचाकशीति'**, अभ्यास है और एक मात्र शास्त्र द्वारा ही ज्ञेय है ईश्वर प्रतियोगिक कालत्रयाबाधित भेद का शास्त्र के बिना अप्राप्ति ही अपूर्वता है। **'पुण्य पापे विधूय'** ही फल है। **'तस्य महिमानम्'** ही अर्थवाद है। **'अन्योऽश्नान्नभिचाकसीति'** यह उपपत्तित। इसी प्रकार **'सदेव सौम्येदमग्र आसी देकमेवाद्वितीयम्'** यह छान्दोग्य अभेद श्रुति भी षड्लिङ्गोपेत अभेद श्रुति है। अभेद—द्वितीय मुण्डक में **''पुरुष एवेदं विश्वम्''** **'ब्रह्मैवेदं सर्वम्'** तृतीय मुण्डक के अन्त में **'परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति। स योह वै तत्परं अभेदं भवति।'** उपसंहार में अभेद है। इसी प्रकार अन्तर्यामी ब्राह्मणश्रुति के ब्राह्मण श्रुति में भी छहों प्रकार में तात्पर्य निर्धारण लिङ्गों द्वारा भेद श्रुति भी भेद में प्रमाण है, **'वेत्थ त्वं कवाप्यन्तयार्मिणम्'** ऐसा उपक्रम है। **'एष**

ते आत्मा अन्तर्यामी' उपसंहार इस प्रकार इक्कीस बार उपंसहार है। अन्तर्यामित्व के अप्रामाण्य होने से अपूर्वता '**स वै ब्रह्मवित्**' ऐसा फल है ''**तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमविद्वान्सम्, तच्चान्तर्यामिणं तथा ब्रह्मगवीरुदज से मूर्धा ते विपतिष्यति**'' यह निन्दा रूप अर्थवाद है तथा तस्य पृथिवी शरीरम् यं पृथिवी न वेद इत्यादि उपपत्तियां हैं, इस प्रकार षड् लिङ्गोपेत भेद श्रुति से भेद भी प्रमाणित है।

यहाँ मायावादियों द्वारा यह कथन कि भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है इसलिये तत्प्रतिपादक श्रुतियों में अनुवादकता मात्र होने से भेद श्रुति उसमें दुर्बलता और अभेद किसी प्रकार सिद्ध नहीं होने के कारण अज्ञात ज्ञापकत्व होने से अभेद श्रुति प्रबल हैं उससे भेद श्रुतियों का बाध होगा अत: अभेद पक्ष ही अत्यन्ताभेदवाद ही श्रौत है, इसका उत्तर है कि भेद लौकिक दशा मात्र का पक्ष है, मोक्ष दशा का नहीं, इसलिए भेदश्रुति में अनुवादकता मात्र नहीं है, इसमें भी अज्ञात ज्ञापकत्व है। दूसरी बात ''**न त्वेवाहं जातु नासं नत्त्वं नेमे जनाधिपा**''[१] इस गीता वचन द्वारा भूतकालिक जनों में (जीवों में) बहुत्व प्रतिपादन है, बहुत्व भेद व्यापी होता है, एक में बहुत्वका प्रयोग नहीं होता भिन्न-भिन्न अनेक तत्त्वों में बहुत्वका प्रयोग होता है। यहां अतीत जीवों में भेद बताया है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है, अत: भेद श्रुति में अनुवादकता नहीं है, दूसरी बात प्रत्यक्ष में प्रमाणिकता है नहीं? यदि प्रामाणिकता है तब तो उसी से भेद की प्रामाणिकता सिद्ध हो गई यदि प्रामाणिकता नहीं तो अनुवादकता नहीं हुई। सारांश हुआ कि भेद अभेद दोनों की सिद्धि के लिये श्रुति समान प्रमाण है, इनमें एक को प्रमाणिक एक को अप्रामाणिक एक को प्रबल एक को दुर्बल एक को व्यावहारिक एक को पारमार्थिक कहना सर्वथा अर्धनास्तिकता है, अत: भगवान् सूत्रकार महर्षि वेदव्यास ने सूत्र में कहा—'उभय व्यप' देशात्त्वहिकुण्डलवत्, श्रुति में भेद अभेद दोनों व्यवहार होने से अहिकुण्डलवत् भेदाभेद है।

यहाँ यह भी बता दें कि हमारे न्याय वेदान्तोभय निष्णात आचार्य प्रवर पं० श्री माधव मुकुन्द देवजी ने तो तत्त्वमसि महावाक्य से भी भेद अभेद दोनों सिद्ध किया है, क्यों न हो इसका तो नाम ही महावाक्य है महावाक्य उसे ही कहते हैं जिसमें अनेक भाव समाविष्ट हो अभेद तो इसमें स्पष्ट है पर भेद भी इसमें सुगमता से ही सिद्ध हो जाता है, कहते है यहाँ ''तत्साहचार्यात् तद्व्यपदेश:'' है, जैसे भाष्यकार ने वसन्तादिभ्यष्ठक् जैसे सूत्र के महाभाष्य में कहा 'साहचर्यात्ताच्छब्दव्यं भविष्यति वसन्त सहचरिताध्ययनं वसन्त ऐसा व्यवहार होता है। जीव और ब्रह्म का साहचर्य द्वा सुपर्णा सयुजा श्रुति में प्रसिद्ध है इस प्रकार '**तत्त्वमसि**' का अर्थ तत्सहचरितस्त्वम् एकत्वम् अथवा तदाश्रितत्वात् तद् व्यपदेश है अर्थात् तदाश्रितत्स्त्व तत् त्वम्, न कि अभेद जैसे समर्थ पदविधि: सूत्र में भाष्यकार ने कहा—'समर्थपदाश्रितत्वात् पदविधि उपचारेण समर्थ इति पदेनउच्यते और यहां सर्वा:

प्रजा: सदायतना: ऐसा वाक्य शेष भी है अथवा '**ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद् मुखजातत्वहेतुतः**' इत्यादि की तरह तत् (ब्रह्म) से उत्पन्न होने के कारण यहां जीव के लिए ब्रह्म का अभेद उपदेश है। उदाहरण के लिए "**इग्यणः सम्प्रसारणम्**" यहां जिस प्रकार का "**का जाताः काकाः श्नेनाज्जातः शेनः एवं सम्प्रसारणाज्जातो वर्णः सम्प्रसारणम्**" इसी प्रकार बह्म से उत्पन्न होने के कारण जीव को ब्रह्म कहा गया है। यहां सन्मूला: सोम्येमा: सर्वाप्रणा: ऐसा वाक्य शेष भी है तथा इस सम्बन्ध में "ब्राह्मणोमुखमित्येव मुखजातत्वहेतुतः। यथावदचश्रुतिस्तद्वज्जीवो ब्रह्मेति वाग्भवेदिति स्मृतेश्च।" अथवा 'धान्यमसिधिनुहि' यहां जिस प्रकार तण्डुल में धान्य शब्द का तदधीन होने से प्रयोग हुआ है उसी प्रकार '**तत्वमसि**' में ब्रह्म के अधीन होने के कारण जीव को ब्रह्म कहा गया है। यहां '**प्राण बन्धनं सौम्यमनः**' ऐसा वाक्य शेष में जीव को ईश का अधीन कहा गया है। इस सम्बन्ध में '**यदधीना यस्यसत्ता तत्तदित्येव मन्यते**' ऐसा महाभारत का भी वचन है। अथवा '**तत्वमसि**' यह अतिदेश वचन है। यानी '**तत्त्वमसि**' का अर्थ में '**तद्वत्त्वमसि**

बहुगण वतु' इस सूत्र के भाष्य में भाष्यकार ने कहा— "बहुगणवतुडति" ये सभी संख्यावत् होते हैं। विना वति शब्द के प्रयोग भी अतिदेश अर्थ गम्यमान होता है। जैसे '**अब्रह्मदत्तं ब्रह्मदत्त इत्याह तेन वयं मन्यामहे ब्रह्म दयं भवतीति भाष्योक्तेः साररूप्यात्।**' यह जैमिनिसूत्र है सारूप्य से अभेद व्यपदेश होता है, जैसे आदित्यो यूपः, तदुगुणसारत्वात्तद् व्यपदेशः प्राज्ञवत् इस सूत्र में प्रकृत गुण योग से जीव में तत् का व्यपदेश है। इस सम्बन्ध में '**भिन्ना जीवाः परोभिन्न स्तथापिज्ञानरूपतः प्रोच्यन्ते ब्रह्मरूपेण वेदवादेषु सर्वशः**' ऐसा स्मृति वचन भी है ऐसा नहीं माने तो 'तत्त्वमसि' यह वाक्य अबोधक होगा जैसाकि–

महाभाष्य में कहा है—"**ये गामश्व इति ब्रूयात्, न जातुचित् सम्प्रत्ययः स्यात्।**" अथवा शाखा प्रदेश में स्थिति चन्द्रमा में शाखा शब्द के प्रयोग की तरह जीव के अन्तर्यामी होने के कारण जीव देश में स्थिति अन्तर्यामी ब्रह्म में त्वम् यह व्यपदेश है, जैसा श्रुति वचन है, "**य आत्मनि तिष्ठन्।**" अथवा जैसे ब्राह्मणो वै सर्वा देवता की तरह जीवाश्रय होने से ब्रह्म में त्वं का व्यपदेश है। अथवा ब्रह्म में सबका कर्ता होने से 'यजमान प्रस्तरः' की तरह तत्सिद्ध त्वं यह व्यपदेश है, इस प्रकार "**तदधीनात्ता द्वेश्यात् तात्स्थ्यातद्धर्म पूर्वकैः निमित्तै स्तत्त्वमस्यादि सामानाधिकरण्यं हि गीयते**" यह भाव है। अथवा शब्दो नित्यं शब्दत्वात् घटवत् जैसे शब्द का नित्यत्व सिद्ध कर रहे है और दृष्टान्त देते हैं अनित्य घट का यहां जैसे दृष्टान्त के आधार पर साध्य में अनित्यः ऐसा छेद करते हैं उसी प्रकार 'तत्त्वमसि' के उपदेश स्थल में छः छान्दोग्य प्रकरण

विशेष:– 'तत्त्वमसि' की भेदाभेदपरक व्याख्या एवं उसका प्रूफ भी अस्वस्थता के कारण मैं अच्छी तरह नहीं देख सका। इसकी भेदपरक व्याख्या विशेष जिज्ञासुओं को मूल में देखनी चाहिये– अच्छा विवेचन है।

सम्पादक

में दिये गये ९ भेद बोधक दृष्टान्त से 'तत्त्वमसि' के स्थान पर अतत्त्वमसि ऐसा पदच्छेद समझना चाहिये। छा० उ० भेद बोधक ९ द्रष्टान्त छा० में देखें अथवा इसी ग्रन्थ के मूल में देखें।

इस प्रकार सम्पूर्ण उपनिषदों का निष्पक्ष भाव से मन्थन करने पर तथा समस्त उपनिषदों को समानरूप से प्रमाण मानने पर स्वाभाविक भेदाभेद बाद के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं दीखता और इसीलिये वेदान्ताचार्य भगवान् व्यास ने अपने दो सूत्रों **'उभयव्यपदेशात्त्वहि कुण्डलवत् प्रकाशाश्रयवद् वातेजस्त्वात्'** द्वारा साफ लिख दिया है कि दोनों तरह की श्रुतियाँ होने से अहिकुण्डल की तरह स्वाभाविक भेदाभेदवाद है।

अब रही इनके सामानाधिकरण्य की बात प्रतिवादियों का कथन है कि भेद अभेद में तेजस्तिमिर की तरह विरोध होने से उनका सामञ्जस्य असंभव है। इसका समाधान है कि श्रौत भेदाभेद तार्किक भेदाभेद नहीं है, श्रौत भेद तादात्म्य परिपन्थित्वाभाव विशिष्ट विलक्षण कार्यकारिता तथा विलक्षण प्रतीति का निर्वाहक धर्म विशेष है जो लौकिक भेद में विलक्षण प्रतीति होती है पर तादात्म्य नहीं रहता श्रौत भेद में विलक्षण प्रतीति के साथ तादात्म्य भी रहता है अहिकुण्डल की तरह। इस विषय की विशेष जानकारी के लिये मिथिला के प्रसिद्ध दार्शनिक जन्म-जन्मान्तरीय कृष्णभक्त वेदान्त तत्त्व समीक्षा आदि अनेकानेक ग्रन्थों के निर्माता अभिनव वैष्णवाचार्य सद्गृहस्थ सन्त गोलोकवासी पण्डित प्रं० गुरु देव श्री भगीरथ झा के द्वैताद्वैतविवेक एवं वेदान्ततत्त्व समीक्षा आदि ग्रन्थ देखने चाहिए। यहां यह भी ज्ञातव्य है कि न्याय एवं वेदान्त की प्रक्रियाओं में नानामत भेद हैं न्याय ईश्वर को केवल निमित्तकारण मानता है वेदान्त अभिन्न निमित्तोपादान, निमित्त भी और उपादान भी। न्याय ब्रह्म को निराकार, वेदान्त साकार, वेदान्त ब्रह्म को अनन्त गुणगण निलय न्याय गुण के नाम पर केवल आठ गुण ही ब्रह्म में मानता है, न्याय समवाय मानता है वेदान्त नहीं, न्याय का मोक्ष प्रस्तरकल्प जड़ रूप है वेदान्त चिदानन्दरूप जिस प्रकार इतने भेद हैं न्याय वेदान्त में उसी प्रकार उसका भेद अभेद और वेदान्त का भेद अभेद भी विलक्षण है। श्रौत भेद में विलक्षण प्रतीति है, पर तादात्म्य का अभाव नहीं। श्रौत भेद को तार्किक भेद से विलक्षण नहीं मानने पर भेदवादी विशिष्टाद्वैतवादी भी भेद का समर्थन नहीं कर सकते, कारण, वे भी भेद कैसे सिद्ध कर सकते हैं इस तरह कहना न होगा कि स्वाभाविक भेदाभेद वाद अकाट्य सिद्धान्त है।[१]

इस वाद में प्रतिपक्षियों द्वारा दो प्रश्न उपस्थित किये जाते हैं कि इस सिद्धान्त में एक

१. टिप्पणी— 'तत्त्वमसि' महावाक्य में भेद साधन की यह प्रक्रिया वेदार्थसंग्रहोक्त प्रक्रिया से समीचीन प्रतीत होती है।

२. उक्त तीनों पुस्तकें मास्टर खिलाड़ी लाल कचौड़ी गली वाराणसी एवं श्री गंगेश झां ग्राम ढगा हरिपुर (मजरही टोल) मधुवनी, बिहार से उपलब्ध हो सकते हैं।

विज्ञान से सर्वविज्ञानवाद की सिद्धि एवं परस्पर विरुद्ध भेद अभेद का सामानाधिकरण्य कैसे? इस प्रश्न का विस्तारपूर्वक समाधान सविस्तार वेदान्तानुसार विवेचन हमारे पूज्य गोलोवासी श्रीगुरुदेव अपनी वेदान्त तत्त्व समीक्षा श्री युगमतत्व समीक्षा श्री भगवतत्व सुधानिधि का एवं द्वैताद्वैत विवेक[१] पुस्तक में किया है। वेदान्त तत्त्व समीक्षा श्रीगोपाल तापिनी उपनिषद् विस्तृत भाष्य है, इसके माध्यम से छान्दोग्यादि समस्त उपनिषदों, ब्रह्म सूत्रों तथा भगवद्गीता का मन्थन है। इसी प्रकार श्री भगवत्तत्व सुधानिधि नामक अतिविस्तृत ग्रन्थ में उपनिषत् तरङ्ग: नामक अध्याय में जहां ईशाद्यष्टोपनिषत् सहित छान्दोग्य, बृहदारण्यकोपनिषद् का गंभीर चिन्तन है, में भी द्वैताद्वैत एवं स्वाभाविक भेदाभेद का विवेचन है।

द्वैताद्वैत की विशेषता

स्वाभाविक भेदाभेद दर्शन का ही दूसरा नाम द्वैताद्वैत है। द्वैताद्वैत शब्द में कर्मधारय समास है। अर्थात् द्वैत भी है और अद्वैत भी। द्वैत का अर्थ है द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम् इतम् ज्ञातं द्वितम् द्वितमेव द्वैतम् स्वार्थ में अण् है, अर्थात् जो दो तरह से स्वतन्त्र सत्व एवं परतन्त्र सत्त्व से ज्ञात होता है, उसे द्वैत कहते हैं। जीव ब्रह्म में ब्रह्म स्वतन्त्र सत्त्व के रूप में तथा जीव परतन्त्र सत्त्व के रूप में ज्ञात है, विद्यमान है। इस तरह द्वैत है और अद्वैत का अर्थ है द्वैत विलक्षण द्वैत भिन्न नहीं कारण जहाँ द्वैतत्व है वहाँ द्वैतत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता का भाव रूप भेद नहीं रह सकता है जैसे अज्ञान शब्द में अज्ञान का अर्थ होता है ज्ञान विपरीत-विपरीत ज्ञान यदि वहां अज्ञान का अर्थ ज्ञानभिन्न करें तो अज्ञान शब्द का घट अर्थ में प्रयोग हो जाएगा, इसलिए द्वैत का अर्थ है द्वैत विलक्षण। अर्थात् जीव ब्रह्म स्वतन्त्र सत्त्व एवं परतन्त्र सत्त्व रूप में भिन्न है द्वैत है और द्वैत विलक्षण ब्रह्मात्मकत्व रूप से अद्वैत है अर्थात् जीव ब्रह्मात्मक होने से तो अद्वैत है एक है अभिनव है परन्तु स्वतन्त्र सत्व, परतन्त्र सत्त्वरूप से द्वैत है, भिन्न है इस प्रकार द्वैताद्वैत है।

[१]इस द्वैताद्वैत एवं स्वाभाविक भेदाभेद में सामानाधिकरण्य के लिए इन दोनों का नव्यन्याय की भाषा में विलक्षण परिष्कार हमारे गोलोक वासी पूज्य गुरुदेव ने अपने द्वैताद्वैत विवेक नामक ग्रन्थ में किया है कहना होगा कि भेदाभेद का इस प्रकार का परिष्कार सम्प्रदाय में अन्य किसी भाष्य एवं ग्रन्थ में नहीं हुआ है। इसके अलावा भेदाभेद

१. टिप्पणी :— इस द्वैताद्वैत या स्वाभाविक भेदाभेद वाद को प्राय: सभी वेदान्ताचार्यों ने स्वीकार किया है स्वयं श्री शंकराचार्य ने भी ब्रह्मसूत्र के अहिकुण्डलाधिकरण में भेदाभेद को स्वीकार किया है। ''तत्रैवमुभयव्यपदेशे सति यद्यभेद एवैकान्ततो गृह्यते भेदव्यपदेशो निरालम्बन एव स्यात् अत: उभय व्यपदेश दर्शनादत्र अहिकुण्डलवद्वयतत्तव भवितुमर्हति।''

विचार में भी आपने जगत् और ब्रह्म के भेदाभेद, जीव और ब्रह्म के भेदाभेद धाम एवं धामी के भेदाभेद सखी परिकर और ब्रह्म में भेदाभेद तथा प्रियाप्रीतम के भेदाभेद में भी तारतम्य का अद्भुत विश्लेषण किया है और उनको अपने पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ सन्दर्भों से भी पुष्ट किया है जो देखते ही बनता है उस द्वैताद्वैत विवेक के उस परिशिष्ट अंश का भी श्री सन्तदासजी महाराज निम्बार्ककुञ्ज मोतीझील वृन्दावन की प्रेरणा से मैंने हिन्दी में अनुवाद भी किया है जिसका प्रकाशन आचार्यपीठ सलेमाबाद से हो गया है।

उत्तरोत्तर भेद कम अभेद अधिक अथवा ऐसा समझें पूर्व पूर्व में भेद अधिक अभेद कम इस प्रकार प्रियाप्रीतम में भेद तो नाम मात्र का विहारोपयोगी ही है अन्यथा सर्वथा अभेद ही अभेद है द्वैताद्वैतविवेक ग्रन्थ का यह अविशिष्टांश (परिशिष्टांश) भी देखने योग्य है। ग्रन्थ परिचय इसी ग्रन्थ में देखा जा सकता है।

अगले सूत्र में कहा है "**यथा प्रकाशः सावित्रस्तदाश्रयश्च सविता नात्यन्तभिन्नौ, उभयोरपि तेजस्त्वाविशेषात्**" अर्थात् न अत्यन्तभिन्न ना ही अत्यन्त अभिन्न। फलितार्थ है भिन्नाभिन्न। इसी तरह विशिष्टाद्वैत मत में केवलाद्वैत अभीष्ट नहीं है, किन्तु विशिष्टाद्वैत। चित् अचित् विशेषण होने से भेदाभेद तो गुण गुणी के समान आ ही गया इस बात को स्वयं श्रीरामानुज भगवान् ने अपने 'पूर्ववद्वा के ३।२।२८।। ब्र० सूत्र' भाष्य में कहा है, "**विशिष्ट वस्त्व। देशेन अभेद व्यवहारो मुख्यः विशेष्यविशेषणयोः स्वरूपस्वभावेन भेदव्यवहारोऽपि ब्रह्मणो निर्दोषत्व रक्षितम्।**" इससे सिद्ध होता है कि भगवान् श्री रामानुज भी स्वा. भेदाभेदके पक्षपाती थे। इसी प्रकार श्री भगवान् वल्लभ प्रभु ने भी प्रकाशाश्रय सूत्र के भाष्य में कहा —"**एवं च ब्रह्मणः सच्चिदानन्दरुपेण सर्वेषां ब्रह्माभेदः ब्रह्मणस्तु कार्य लक्षणेन सर्वस्माद् भेदः**" यहां स्पष्ट रूप में उन्होंने भेदाभेद सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

इस प्रकार कहना न होगा कि इस श्रौत सिद्धान्त को सभी वैदान्तिक आचार्यों ने स्वीकार किया है।

अधिक जानकारी हेतु हमारे पूज्य गुरुदेव का वेदान्ततत्त्व समीक्षा ग्रन्थ देखा जा सकता है।

अन्ते —

मिथिलां मैथिलीं नौमि नौमि नौमि पुनः पुनः
वृन्दावनेश्वरं कृष्णं तथा वृन्दावनेश्वरीम्

—श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तु

उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों एवं भगवद्गीता एवं अठारहों पुराणों तथा महाभारतों साप्रदायिक दुराग्रहसे रहित होकर अययन करने से सविशेष वप्लप्राय, ससंबोधि-मोक्षवाद ही सिद्ध होता है इसी तरह अठारहों पुराणों के अध्ययन करने पर उपक्रम, उपसंहार आदि षड्विध ग्रंथ तात्पर्य निर्धारक सामग्रियों से पुराणों में विष्णु पारम्य ही सिद्ध होता और विष्णु रूपों के मूलरूप भगवान् श्रीकृष्ण तथा लक्ष्मी तत्त्व के मूल प्रकृति श्री राधा ही सिद्ध होती हैं तथा स्वाभाविक भेदाभेद ही निश्चित होता है। दुनिया के तटस्थ दार्शनिकों ने द्वैताद्वत सिद्धान्तों को औपनिषद् सिद्धान्त माना है, पर महान् दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आज कोई भी निम्बाकीयि संत महात्मा अपने इस अमूल्य दार्शनिक धरोहर की सुरक्षा एवं प्रचार पर कोई ध्यान नहीं देता नही अपने इस अमूल्य वेदान्तादि ग्रंथों का अवलोकन करता, नाही प्रचार कर रहा है।

द्वैताद्वैतवादसिद्धान्त के लिये शुभ संवाद है कि श्रीशंकराचार्य के समकालीन विश्वप्रसिद्ध पूर्वोक्त मीमांसक के धुरंधर विद्वान् मण्डन मिश्र के ब्रह्म सम्बन्धी विचार से ब्रह्मांश में हमारा विचार पुष्ट होता है। उनके विषय में आजतक लोग यही जानते थे कि उनके यहाँ शुकियां भी ब्रह्मविचार करती थीं और स्त्रियां भी संस्कृत भाषा में ही बात करती थीं और वे श्रीशंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित होकर उनका शिष्य सुरेश्वराचार्य बने। अब इसे महान् अप्रामाणिक शंकर विजय नामक शंकर द्विग्विना ग्रन्थ के द्वारा जालसाजी का पर्दाफाश मिथिला के मनीषियों द्वारा कर दिया है। शंकर और मण्डन के अद्वैत वेदान्त में महती भिन्नता है, यह बात अब सिद्ध हो गई है। जब तक मण्डन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि प्रकाशित नहीं हो चुकी थी तभी तक यह भ्रान्त धारणा लोगों में बनी रही। षड्दर्शन टीकाकार विश्व प्रसद्धि दार्शनिक वाचस्पति की जन्मभूमि के महान् चिन्तक एवं शंकर एवं मण्डन के सभी दार्शनिक ग्रन्थों के समीक्षात्मक अध्येता दिवंगत दार्शनिक पं० श्री सहदेव झा ने "अपने "मण्डनमिश्र और उनका अद्वैत वेदान्त" ग्रन्थ में सविस्तार सोदाहरण सिद्ध कर दिया है, जैसे—

१. श्रीशंकर निर्विशेष व्रतवादी मण्डन सविशेष ब्रह्मवादी। मण्डन ब्रह्म में ज्ञान, आनन्द आदि धर्म मानते है, पर धर्म धर्मी में तादात्म्य मानने से अद्वैत में कोई बाधा नहीं।

२. श्रीशंकराचार्य सन्यास से ही तथा ज्ञान से ही मोक्ष मानते थे जबकि मण्डन सन्यास से मोक्ष मानते हुए भी आजीवन गृहस्थाश्रम में रहते हुए वैदिक कर्मकाण्ड के साथ-साथ ज्ञानाभ्यास को श्रेष्ठ मानते थे और इस पद्धति से शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति मानते थे।

३. शंकर प्रारब्ध का भोग से ही ना मानते थे जबकि मण्डन "ज्ञानाग्निः सर्वकर्मणि

भस्मसात् कुरुतेर्जुन'' के पक्षपाती थे।

४. मण्डन गीता के अनुसार ज्ञान, कर्म, भक्ति त्रितय समुच्चयवादी थे शंकर ज्ञान मात्र के पक्षपाती थे।

५. श्रीमण्डन मीमांसक होते हुए भी ईश्वरवादी थे, अद्वैतवादी होते हुए सविशेषवादी।

६. शंकर ब्रह्म को अनिर्वचनीय मानते थे 'न सत् न असत् अनिर्वचनीय मण्डन सत्वादी थे। भावाद्वैतीर्थ आदि आदि इनके मतभेद थे इन दोनों में विशेष जानकारी के लिये मिथिला से प्रकाशित मण्डन मिश्र और उनका अद्वैत वेदान्त ग्रन्थ पढ़ना चाहिए।'

हमारे द्वैताद्वैत मत में ब्रह्म को सविशेष माना गया है, ब्रह्म में ज्ञान, इच्छा, आनन्द आदि अनन्त धर्म माने गये हैं और उनके साथ हमारे यहां स्वा० भेदाभेद माना गया, हमने इसी सम्पादकीय में यह दिखाया है कि हमारे श्रीगुरुदेव ने किस प्रकार चित् अचित् आदि का एवं ब्रह्म में धर्म धर्मी भाव एवं भेदाभेद सिद्ध किया है। वहाँ मण्डन मिश्रजी ने भी ब्रह्म एवं उसके धर्म में तादात्म्य मानकर भेदाभेद सिद्ध किया है, तादात्म्य भेट घटित होता है यह सिद्ध है, इस प्रकार मण्डन भी इस अंश में श्रीनिम्बार्काचार्य के सिद्धान्त से स्पष्ट प्रभावित दीखते हैं।

''जय मिथिला मैथिल मैथिली
जय व्रज व्रजस्थ वृषभानुलली''



35 वाँ आचार्य जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी



द्वारा प्रवर्तक अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के शिष्यों (द्वाराचार्यों के नाम)

01. श्रीस्वभूरामदेवाचार्य
02. श्रीपरशुरामदेवाचार्य
03. श्रीवोहितदेवाचार्य
04. श्रीमदनगोपालदेवाचार्य
05. श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्य
06. श्रीवाहुलदेवाचार्य
07. श्रीलपरागोपालदेवाचार्य
08. श्रीहृषीकेशदेवाचार्य
09. श्रीमाधवदेवाचार्य
10. श्रीकेशवदेवाचार्य
11. श्रीगोपालदेवाचार्य
12. श्रीमुकुन्ददेवाचार्य

12½. श्रीदेवी (अर्द्ध शिष्या)

नोट– उपर्युक्त आचार्यों की नामावली पं. प्रवर श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री द्वारा रचित सिद्धान्त मन्दाकिनी ग्रन्थ से उद्धृत है।

स्वाभाविक भेदाभेदवाद के प्रबलतम समर्थक
बीसवीं सदी के दो निम्बार्कीय विद्वान्
(एक परिचय)

१ . पं० श्री अमोलकरामजी शास्त्री— श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय उपासना प्रधान सम्प्रदाय है जैसाकि आद्याचार्य ने अपनी दशश्लोकी में कहा है ''उपासनीयं नितरां जनैः सदा'' इनकी आज्ञानुसार एक से एक रसोपासक आचार्य, सन्त एवं सद्गृहस्थ इस सम्प्रदाय में हुए हैं, जिनमें श्रीश्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यासदेवजी एवं स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज जगद् विख्यात सन्त हुए है। इनमें ज०गुरु श्री हरिव्यासदेवाचार्यजी ऐसे प्रभावशाली हुए कि जिनसे योगमाया श्रीदुर्गाजी ने भी दीक्षा ली जो बात परम प्रामाणिक ग्रन्थ भक्तमाल में वर्णित है। इसी प्रकार सम्प्रदाय में दार्शनिक आचार्य भी अनेक हुए हैं, जिन्होंने प्रस्थानत्रयी पर अपना मत स्वा० भेदाभेद स्थापित किया है। इस मत की पुष्टि के लिये आद्याचार्य ने ब्र० सू० वृत्ति के रूप में **वेदान्तपारिजात सौरभ**, श्रीश्रीनिवासाचार्य ने **वेदान्तकौस्तुभ** नामक ब्रह्म सूत्र भाष्य श्री देवाचार्य ने **सिद्धान्त जाह्नवी** श्री सुन्दर भट्ट देवाचार्य ने **सेतुका**, जगद् विजयी आचार्य श्री केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ने ब्र०सू० का विस्तृत भाष्य **वेदान्त कौस्तुभ प्रभा**, तत्पश्चात् न्याय धुंरधर प्रकाण्ड दार्शनिक पं श्री माधव मुकुन्द देवाचार्य ने **अध्यासगिरि-वज्र** नामक मायावाद खण्डनात्मक गूढ़ ग्रन्थ लिखा। सर्व पश्चात् बीसवीं सदी में मिथिला महीमण्डन जन्मजन्मान्तरीय कृष्ण भक्त दार्शनिक सार्वभौम सद् गृहस्थ सन्त गोलोकवासी गुरुदेव पं० श्री भगीरथ झा जी ने द्वैताद्वैत मतानुसारी वेदान्ततत्त्वसमीक्षा गोलाक तापिनि भाष्य **भगवतत्व सुधानिधि** एवं **श्रीयुग्मतत्त्व समीक्षा** नामक तीन अद्वितीय ग्रन्थ लिखे।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ दार्शनिक शैली में प्रौढ़ संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं, बिना संस्कृत व्याख्या या हिन्दी अनुवाद हुए इन सब ग्रन्थों का भाव सर्व साधारण के लिये अग्राह्य है, अतः सम्प्रदाय के अनन्य भक्त श्रीराधाकृष्ण युगल के अनन्य आराधक गोलोकवासी पं० तर्कतीर्थ पं० श्रीअमोलकरामजी शास्त्री ने उपर्युक्त सभी ग्रन्थों तथा इनके अलावा वेदान्त-तत्त्व-बोध, ईशाद्यष्टोपनिषद्, छान्दोग्य, बृहदारण्यक उपनिषद्, वेदान्त कौस्तुभ प्रभा अध्यास गिरिवज्र आदि सभी ग्रन्थों की सरल संस्कृत व्याख्या करके तथा उक्त सभी ग्रन्थों का अपने प्रयास से अर्थसञ्चय करके प्रकाशन भी करवा दिया यह उक्त पण्डितजी का सम्प्रदाय एवं वैष्णवजगत् के लिये उपकार हुआ है, इसका वर्णन वाणी द्वारा कथमपि संभव नहीं है।

श्रीशास्त्री जी जैसे उद्भट नैयायिक थे वैसे ही वेदान्ती थे, उसी प्रकार अनन्य वैष्णव थे। श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय में दीक्षित थे। निम्बार्क सम्प्रदाय की व्रज भूषणशरण देवाचार्य की

शाखा के रसिक सम्प्रदाय सन्त श्री हरिदास महाराज की परम्परा में रसिकशिरोमणि सन्त श्री स्वामिनी शरण जी के कृपापात्र रसिक सद्गृहस्थ सन्त थे। जिनकी उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों की व्याख्या के आदि में आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र से लेकर स्वामी श्री हरिदास जी तक की वन्दना करके बाद में उस परम्परा के अष्टाचार्यों सहित अपने गुरु स्वामिनी शरण तककी सर्वत्र वन्दना की है।

कहना न होगा कि सम्प्रदाय की शास्त्रीय सेवा में इतना बड़ा योगदान किसी विद्वान् का नहीं रहा पण्डित जी ने अपना जो परिचय लिखा है उसके अनुसार उनका जन्म हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र जनपदान्तर्गत पुण्डरीक ग्राम में हुआ था, उन्होंने नवद्वीप जाकर नव्यन्याय का गहन अध्ययन किया था, वृन्दावन में श्रीगिरिधारी जी के मन्दिर में वे रहते थे ऐसा मैंने किसी महात्मा के मुख से सुना था, आजीवन वृन्दावन में निवास करते हुए बिताये साथ ही जीवन पर्यन्त श्री निकुञ्जोपासना एवं सम्प्रदाय की साहित्यिक सेवा में बिताया। पर दुःख है कि ऐसे सम्प्रदाय सेवी रसिक उपासक आजीवन वृन्दावनवासी जिनका वृन्दावन में अपना कोई स्थान नहीं शिष्य नहीं, ऐसे सम्प्रदाय सेवी विद्वान् का कहीं कोई उत्सव नहीं जयन्ती नहीं, कहीं कोई चित्र नहीं श्री निम्बार्क महाविद्यालय में उनका एक चित्र था उसे उतार दिया गया, पता नहीं कहा फेंक दिया गया, यह बड़ी कृतघ्नता है घोर कृतघ्नता। जिस समप्रदाय में विद्वान् का आदर नहीं वह सम्प्रदाय कभी आगे नहीं बढ़ सकता है। इस विषय में श्रीरामानुज, श्रीवल्लभ आदि सम्प्रदायों से शिक्षा लेनी चाहिये जहाँ विद्वानों का विशिष्ट सम्मान है।

२. गोलोकवासी पं० श्री भगीरथझाजी —आपका जन्म आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व उत्तर विहार में मिथिलाञ्चल में मधुवनीजनपदान्तर्गत ढंगा हरिपुर ग्राम के विशुद्ध मैथिल ब्राह्मण कुल में हुआ था।

मिथिला में न्याय, वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा आदि सभी दर्शनों के अनेकानेक उद्भट विद्वान् हुए थे। छः दर्शनों में चार दर्शन न्याय, वैशेषिक, सांख्य, एवं मीमांसा का जन्म मिथिला में ही हुआ है। कहना न होगा कि इन दर्शनों के मिथिला में जैसे एक से एक उद्भट विद्वान् हुए वैसे भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं नहीं हुए, जिनमें मण्डन, वाचस्पति, उदयन, गंगेश, वर्धमान, पक्षधर, अयाची शंकर, महेश, बच्चाझा, बालकृष्ण मिश्र आदि भारत प्रसिद्ध है। परन्तु गुरु देव पं० श्री भगीरथजी झा का वैदुष्य आत्म निष्ठा इन सबसे विलक्षण एवं अद्भुत थी, जो उनके द्वारा विरचित एवं प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात हो सकता है। उनके द्वारा विरचित दर्जनों प्रकाशित पुस्तकों के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है। उन पुस्तकों में भी भगवत्तत्त्वसुधानिधि, श्रीवेदान्ततत्त्वसमीक्षा, श्री युग्मतत्त्वसमीक्षा एवं द्वैताद्वैत विवेक परम प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन तीनों ग्रन्थों के अध्ययन से ही कोई विद्वान्

जान सकता है कि उनका दार्शनिक ज्ञान, उनका सर्वतो मुखी पाण्डित्य, उनका वेदादि शास्त्रों का अनुशीलन कितना ऊँचा था।

वे बचपन से श्रीकृष्णानुरागी थे। जन्म-जन्मान्तरीय श्रीराधामाधव युगल रस रसिक थे। श्रीवल्लभाचार्य महाराज की किसी पुस्तक को देखकर जन्म याज्ञवल्क्य तथा गौतमद्वारा प्रवर्तित मैथिल समप्रदाय के अनुसार विदेहराजजनक द्वारा प्रवर्तित पिरपारीस गृहस्थ जीवन में रहकर ही भक्ति साधना का विचार बना लिया। पढ़ने का कोई शौक नहीं था पढ़कर धनोपार्जन या पद प्रतिष्ठा प्राप्त करना भी उनका कोई लक्ष्य नहीं था अध्ययन करने का एकमात्र उद्देश्य था कि श्रीराधाकृष्ण के सम्बन्ध में बहिर्मुख जनों द्वारा तथा साम्प्रदायिक पक्षपात से ग्रसित विद्वानों या भक्तों द्वारा अनर्गल प्रचार, असंभावना विपरीत भावनाएं एवं शास्त्र विरुद्ध मतवाद का निराकरण शास्त्रीय पद्धति से श्रीराधाकृष्ण युगल तत्त्व का निरूपण तथा वेद, उपनिषद्, गीता आदि शास्त्रों में स्वारस्य सिद्ध तात्पर्य का निरुपण केवल एतावन्मात्र उद्देश्य से ही उन्होंने सभी शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक समझा। इसके लिए उन्होंने सर्वप्रथम आवश्यक व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर नव्यन्याय का अध्ययन किया। यह शास्त्र सभी शास्त्रों में नितान्त गंभीर है। सभी वेदान्तादि शास्त्रों की जानकारी हेतु शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। नव्य न्याय एवं शांकर वेदान्त के सारे ग्रन्थ आपने मिथिला एवं काशी में रहकर गुरुमुख से अभ्यास किये थे। इन्हीं दोनों शास्त्रों के अध्ययन के बल से आपकी सभी शास्त्रों में अव्याहत गति हो गई थी। श्रीकृष्णभक्ति उनकी जन्मजन्मान्तर की देन थी, इसलिए इन्होंने भी शिष्य बनकर शास्त्रों के गहनाध्ययन से अपने युगल प्रियाप्रियतम श्रीराधामाधव का ही अन्वेषण किया। सारा जीवन उन्होंने प्रियाप्रीतम के अन्वेषण में ही बिता दिया जोकि उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों के अध्ययन से ही विदित होता है।

वे जन्मना नैयायिक थे। अद्वैत वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे, दोनों शास्त्रों के समग्र ग्रन्थ उनको कण्ठस्थ थे, परन्तु उनको न तो न्याय का अत्यन्त भेदवाद या आरम्भवाद अच्छा लगा, नाही शंकर के अत्यन्त अभेद या विवर्तवाद तथा निर्गुण निराकारवाद, न न्याय का केवल अष्ट गुणों वाला सगुण निराकरणवाद। सारी उपनिषदें आपको कण्ठथ थीं, भगवद्गीता उनका नित्य स्वाध्याय था। प्रस्थानत्रयी के आप प्रकाण्ड पण्डित थे। इन तीनों ग्रन्थो के आप मौलिक चिन्तक थे। वे टीकाओं एवं भाष्यों का कम सहारा लेते थे। उनके पास मैंने बम्बई से छपी १०८ उपनिषदों की गुटका पुस्तक देखी थी। जो सारा का सारा रंगा था। श्रीमद्भागवत का भी गुटका ही रखते थे। प्रायः भक्त धर्मशास्त्रों एवं कर्म काण्डों में कम प्रेम रखते है, पर उनका धर्मशास्त्रों का भी बड़ा अध्ययन था। वे कहा करते थे कि धर्मशास्त्रों में भी सर्वत्र हरिभक्ति का ही प्रतिपादन है। वे अठारहों पुरणों को एक ग्रन्थ मानते थे। एक एक पुराण उसका एक एक अध्याय मानते थे। उनका उपक्रम, उपंसहार आदि तात्पर्य निर्धारक सामग्रियों द्वारा अध्ययन करने से अठारहों पुराणों में

भगवान् व्यास का तात्पर्य विष्णुपारम्य में ही है, ऐसा आप मानते थे। वेदों के तात्पर्य निर्धारण के लिये इतिहास, पुराणों को बहुत महत्व देते थे। इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् निरुक्त, गृह्यसूत्र, नामसूत्र, आदि सभी शास्त्रों का आपको गहन अध्ययन था। इन सबका अध्ययन भी अपने आराध्य श्री युगल तत्त्व के रहस्यों को जानने उजागर करने एवं श्रुति स्मृति पुराणों द्वारा श्रीयुगल तत्त्व के परत्व निर्धारण करने के लिए ही किया था। वे कहा करते थे वेदे रामायणे चैव भारते पाञ्चरात्रके, आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते। प्रातः स्मरणीय गुरुदेवने इनका जुबानी जमा खर्च नहीं रहने दिया अपितु अपने प्रकाशित तीन ग्रन्थों में इसे करके दिखा दिया है।

आत्म परमात्व तत्त्व का निरूपण अनेकों विद्वानों ने किया है, ब्रह्म विचार बहुतों ने किया है, श्रुति प्रामाण्य का समर्थन भी अनेकों ने किया है, परन्तु वह ब्रह्म, वह परमात्मा इतना सरल, इतना आह्लादन, इतना प्रेमास्पद तथा भक्त भोग्य है, ऐसा निरूपण मैंने किसी का नहीं देखा। ब्रह्मसूत्र के अधिकांश भाष्य हमने पढे। अन्यान्य दर्शनों में सर्वप्रसिद्ध ईश्वरवादी दर्शन न्याय दर्शन ने उस परमात्मा को केवल निमित्त कारण माना शक्तिमान माना गुणों के नाम पर केवल आठ गुणों वाला सगुणसाकार माना, चेतन कहने के लिए उसे केवल ज्ञानाधिकरण माना, ज्ञान रूप नहीं आनन्द रूप नहीं, किसी ने उसे सजातीय विजातीय स्वगत नित्य भेदविवर्जित शुद्ध बुद्ध निर्विशेष माना निष्क्रिय माना निराकार माना, उदितास्तमितानन्द माना, वह निरतिशयब्रह्म सविशेष भी है साकार भी है, तरङ्गित भी है रसमय भी, रसिक भी है, भोग्य भी है भोक्ता भी है। अनन्त सौन्दर्य माधुर्य महावारिधि है, ऐसा परमात्मा केवल अपने पूज्य गुरुदेव की वेदान्त व्याख्या में देखा वेदान्त तत्त्वसमीक्षा में देखा, उनके गीता के श्रीपुरुषोत्तमवाद में देखा, उनके ब्रह्म के व्याख्या में देखा।

इस विगत शताब्दी (२०वीं) सदी में एक दो विभूतियां देखीं, एक ऐसा तपस्वी देखा, अप्रतिम मूर्तिमान् शास्त्र देखा धर्मसमूह देखा, जिनकी शास्त्रकाव्य, धर्मव्याख्या, धर्मकीर्ति, राजनीति व्याख्या से सारी दुनिया अचम्भित होती थी, जिनका प्रवचन मैं भी नित्य सुनने जाता था पर जब मैंने यह देखा जाना कि इन सबका प्रवचन स्वसिद्धान्त से नहीं पर सिद्धान्त से होता है, तब मेरा मोह भंग हो गया।

परन्तु परम पूज्य श्रीगुरुदेव का रससिद्धान्त, श्रीराधाकृष्ण युगलपरत्ववाद पर सिद्धान्त नहीं है, केवल निजसिद्धान्त नहीं उपनिषद् सिद्धान्त था, भावुकता नहीं। श्रीगुरुदेव सच्चे वैष्णव थे, केवल कण्ठीधारी नहीं, सच्चे वेदान्ती थे, कलौ वेदान्तिनः सर्वे नहीं, वे अन्तः शाक्ता वहिः शैवा सभा मध्ये च वैष्णवा नहीं हृदय से शास्त्र के समर्थक थे, सच्चे गीतानुयायी, कर्मज्ञान, भक्ति-त्रितय पक्षपाती थे पर थे पूरे रसिक श्रीराधामाधवयुगल के

जन्म-जन्मान्तरीय आराधकथे। उनके रोम-रोम में श्रीराधामाधव युगल अनुराग भरा था।

१९८२ ई० में आप ७६ वर्ष की आयु में गोलोकवासी हो गये। आपकी शिक्षा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पं० श्री बच्चा झा जी द्वारा स्थापित नवानी संस्कृत महाविद्यालय एवं काशी में हुई। आपका कर्मक्षेत्र गुजरात था। वल्लभ सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी प्रवर अनन्त व्रजरत्नलाल जी महाराज (सुरत) को अपने न्याय एवं वेदान्त में पारंगत बनाया श्रीकृष्ण मन्त्र की दीक्षा आपने श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के अनिकेत सन्त पं० श्री वैष्णवदासजी शास्त्री महाराज से श्री गिरिराज जी में ललिता कुण्ड पर ली थी। आपने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की। स्वोपार्जित द्रव्य से घर पर मिथिला में श्रीराधाकृष्ण का मन्दिर बनाया। उनकी अपनी कोई संतान नहीं थी, अत: उन्होंने अपने पितृव्य पुत्र के सुयोग्य पुत्र पं० श्री गंगेश झा एम.ए. आचार्य को धर्मपुत्र बनाकर अपनी समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया तथा श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा का सम्पूर्ण भार प्रदान किया जिनकी सेवा पुजा उनके दत्तक पुत्र श्री गंगेश जी आजकल करते हैं, उनकी रचनाएं :—

१. श्रीयुग्मतत्त्वसमीक्षा, इसमें पुराणों के आधार पर श्री राधाकृष्णयुगलतत्त्व परत्वका विवेचन है।

२. वेदान्ततत्त्वसमीक्षा, इसमें उपनिषदों, ब्राह्मणों एवं भगवद्गीता के आधार पर युगल तत्त्व विवेचन है साथ ही चित्, अचित्, ईश्वर। उनका स्वाभाविक भेदाभेद, एक विज्ञानं सर्वविज्ञानम्, प्रत्ययार्थवाद आदि का गंभीर विवेचन है।

३. श्रीभगवत्तत्त्वसुधानिधि, यह अथाहग्रन्थ है इसमें वेद, उपवेद, मंत्र, ब्राह्मण, भाष्कर उपनिषद्, प्रणवगायत्री, व्याकृति, समस्त धर्मशास्त्रों के आधार पर युगलतत्त्व चिन्तन है।

४. भागवततत्त्व संदर्भ हिन्दी, इसमें श्रीमद्भागवत की प्रामाणिकता पर अनेकानेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।

५. श्रीश्यामसुधानिधि मैथिली भाषा में पद्यमय रचना है। इसकी भूमिका में विद्यापति की वैष्णवता एवं श्रीराधाकृष्णभक्ति का प्रबलतम समर्थन है, उपर्युक्त ग्रन्थ में भी श्री राधाकृष्ण सम्बन्धी कोई भी जिज्ञास्य विषय ऐसा नहीं जिसका इसमें समाधान न किया गया हो।

श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तु

पं. वैद्यनाथ झा

श्री राधामाधव कुंज, मारुति नगर, वृन्दावन



श्रीसुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रप्रणीत

वेदान्त-दशश्लोकी

ज्ञानस्वरूपञ्च हरेरधीनं, शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं, ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः।।१।।

जीव अनन्त (असंख्य) हैं। वे ज्ञान (प्रकाश) स्वरूप और ज्ञानवान् भी हैं। शरीर के साथ उनका संयोग-वियोग होना ही उनका जन्म-मरण है। वे अणु (अत्यन्त सूक्ष्म) हैं और प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न हैं। सदा-सर्वदा हरि के आधीन रहते हैं ।।१।।

अनादिमायापरियुक्तरूपं, त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तं च बद्धं किलबद्धमुक्तं, प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्।।२।।

यह पता नहीं चलता कि जीवों के पीछे माया कब से लगी हुई है, इस अनादि माया से युक्त होने के कारण ही जीव अपने और परमात्मा के स्वरूप को नहीं पहचान सकते। जब प्रभु ही कृपा करें तब इस माया से छुटकारा हो और इन्हें स्वरूप का ज्ञान हो। वैसे तो जीव कई प्रकार के हैं, किन्तु मुक्त (नित्यमुक्त) भुक्त (बद्ध) और बद्धमुक्त संक्षेप में जीवों के ये तीन भेद हैं। वैसे इनके अनेक भेद हैं, जो वेदान्त रत्न मञ्जूषा में वर्णित है।

अप्राकृतं प्राकृतरूपकञ्च, कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं, शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।।३।।

अप्राकृत (भगवान् के चित्स्वरूपधाम आदि) प्राकृत = प्रकृति और उसका कार्य एवं काल, ये सब अचेतन माने जाते हैं। माया, प्रधान, अव्यक्त आदि प्रकृति के नाम हैं, शुक्ल, रक्त, पीतवर्ण वाले सत्व, रज और तम तीनों गुण भी उसी प्रकृति के हैं॥३॥

स्वभावतोऽपास्त- समस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परंवरेण्यं, ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।४।।

जो समस्त सद्गुणों के समुद्र हैं किन्तु किसी भी प्राकृतिक दोष में लिप्त नहीं है, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारों व्यूहों के अंगी[1] हैं। कमल के समान नेत्र वाले भक्तों के पाप दोषों एवं चित्तको चुराने वाले अतएव सेवा करने योग्य परब्रह्म श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं॥४॥

अङ्गेतुवामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितांसदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।५।।

उन प्रभू के समान ही सौन्दर्य माधुर्य युक्त (उनके) बायें अंग में विराजमान, हजारों सखियों से सेवित, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली उन वृषभानुनन्दिनी श्री किशोरी (राधा) जी का हम सदा स्मरण करते हैं॥५॥

उपासनीयं नितरां जनैः सदा, प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं, श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे।।६।।

इन श्रीराधाकृष्ण युगल किशोरात्मक परब्रह्मकी निरन्तर उपासना करते रहना चाहिये। उनके ध्यान मात्र से अज्ञानतम अविद्या की अनुवृत्ति क्षीण हो जाती है। हमारे (श्रीनिम्बार्काचार्यके) परम गुरु श्रीसनकादिकों ने अखिल तत्त्वज्ञ गुरुदेव श्रीनारद जी को यही सदुपदेश दिया था॥६॥

सर्वंहि विज्ञानमतोयथार्थकं, श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादितिवेदविन्मतं, त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता।।७।।

जड़-चेतनरूपी दृश्यमान यह समस्त विश्वविज्ञान (ब्रह्म) रूप ही है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। ब्रह्मात्मक होने से ही यह संसार यथार्थ (सत्) भी है। श्रुति और सूत्रग्रन्थों में भोक्ता, भोग्य और प्रेरक रूप से इस विश्व की त्रिरूपता भी यथार्थ ही समझना चाहिये॥७॥

नान्यागतिः कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्।।८।।

जिनकी शक्ति और आशय (बुद्धि) का किसी को पता ही नहीं लग सका, फिर भी वे भक्तों की इच्छा के अनुसार अनेक अवतार धारण करते हैं। जिनकी ब्रह्मा, शंकर आदि समस्त देवता वन्दन करते हैं, उन श्रीराधाकृष्ण के चरण-कमलों के अतिरिक्त दु:खी जीवों को कोई सहारा नहीं॥८॥

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते, यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः, सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा।।९।।

जिसमें दीनता (विनम्रता) आदि गुण हो उसी पर वे प्रभु कृपा करते हैं। उनकी कृपा से ही अनन्याधिपति श्री सर्वेश्वर प्रभु की प्रेम विशेष लक्षणा भक्ति मिल सकती है, उसी को "उत्तमाभक्ति" कहते हैं। श्रवण-कीर्त्तनादि साधन-रूपी-भक्ति "अपरा-भक्ति" कहलाती है॥९॥

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च, कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनोरूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः।।१०।।

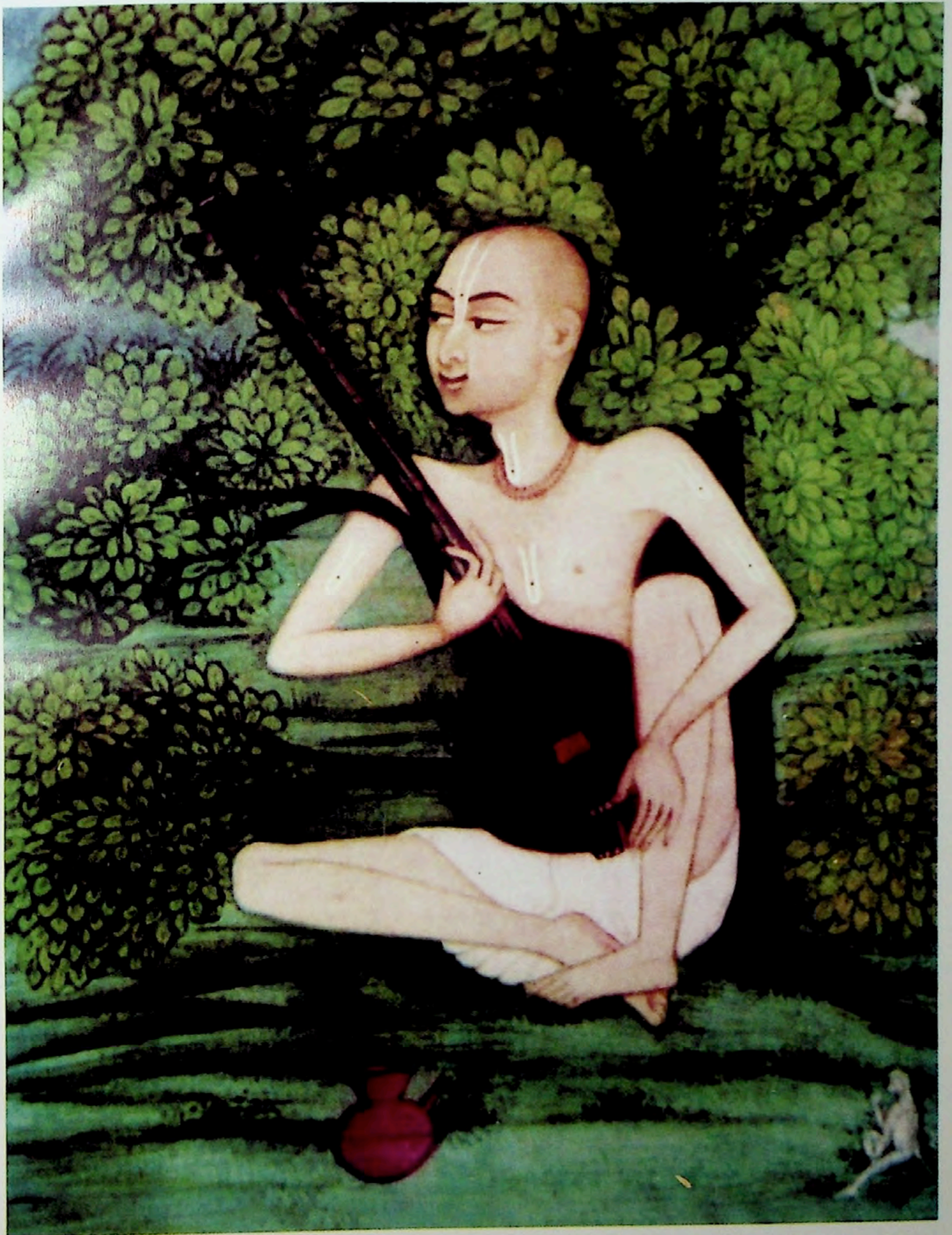
साधुओं (उपासकों) को चाहिए कि अपने उपास्य (ब्रह्मतत्त्व), उपासक (साधक जीव) और भगवत्कृपा का फल, भक्तिरस तथा भगवत्प्राप्ति एवं भक्ति के विरोधी इन पाँचों के स्वरूप को अच्छी प्रकार से जान लें॥१०॥



॥ उपोद्घातग्रन्थस्य विषयाः ॥

इत्युपोद्घातग्रन्थस्य विषयाः

विषय-सूची



श्रीनिम्बार्क-रत्न रसिक सम्राट स्वामी श्री हरिदास देव जी महाराज

श्रीश्रीराधासर्वेश्वरो विजयते
श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

अध्यासगिरिवज्रम्

वज्रोत्तेजिकायुतम्

श्रीमद्धंसकुमारांश्च देवर्षिं नारदं नुमः।
हृत्तमोनाशने शक्तं निम्बभानुं सुखाकरम्॥ १॥
श्रीनिम्बार्कमताम्भोधिसन्तारे भाष्यनौकरः।
श्रीश्रीनिवासवर्य्यस्तच्चारणौ शरणं वृणे॥ २॥
राधाकुञ्जविहारिणौ गुणाचयौ श्रीपीतनीलाम्बरौ।
वृन्दारण्यनिकुञ्जमञ्जुभवने देदीप्यमानौ सदा॥
विद्युन्मेघसमौ सुदीप्तरुचिरौ नित्यौ किशोरौ सदा।
भावाढ्यौ मनसा गिरा च शिरसा वन्दे प्रियावुज्ज्वलौ॥ ३॥
साक्रान्ता मथुरापुरी च यवनैर्बद्धं प्रचण्डं पुन-
र्यन्त्रं नाशकरं गुरुः परिवृढो ह्यागत्य पुर्यां कृती।
ध्वस्तो दण्डविपक्षमण्डलबुधः श्रीकेशवार्यस्सुहृत्॥
दुर्दान्तान् यवनान् जिगाय जगतां यन्त्रस्य विध्वंसकः॥ ४॥
आशुधीरमहं वन्दे भक्तिवैराग्यवारिधिम्।
स्मयमानमुखाम्भोजं माधुर्य्यभावदायकम्॥ ५॥
ज्ञानवैराग्यभावादिकल्याणगुणसागरम्।
पराभक्तिसमासक्तं हरिदासं नतोऽस्म्यहम्॥ ६॥
स्वामिनीशरणं नत्वा भावुकं परमं गुरुम्।
अध्यासगिरिवज्रस्योत्तेजिका क्रियते मया॥ ७॥

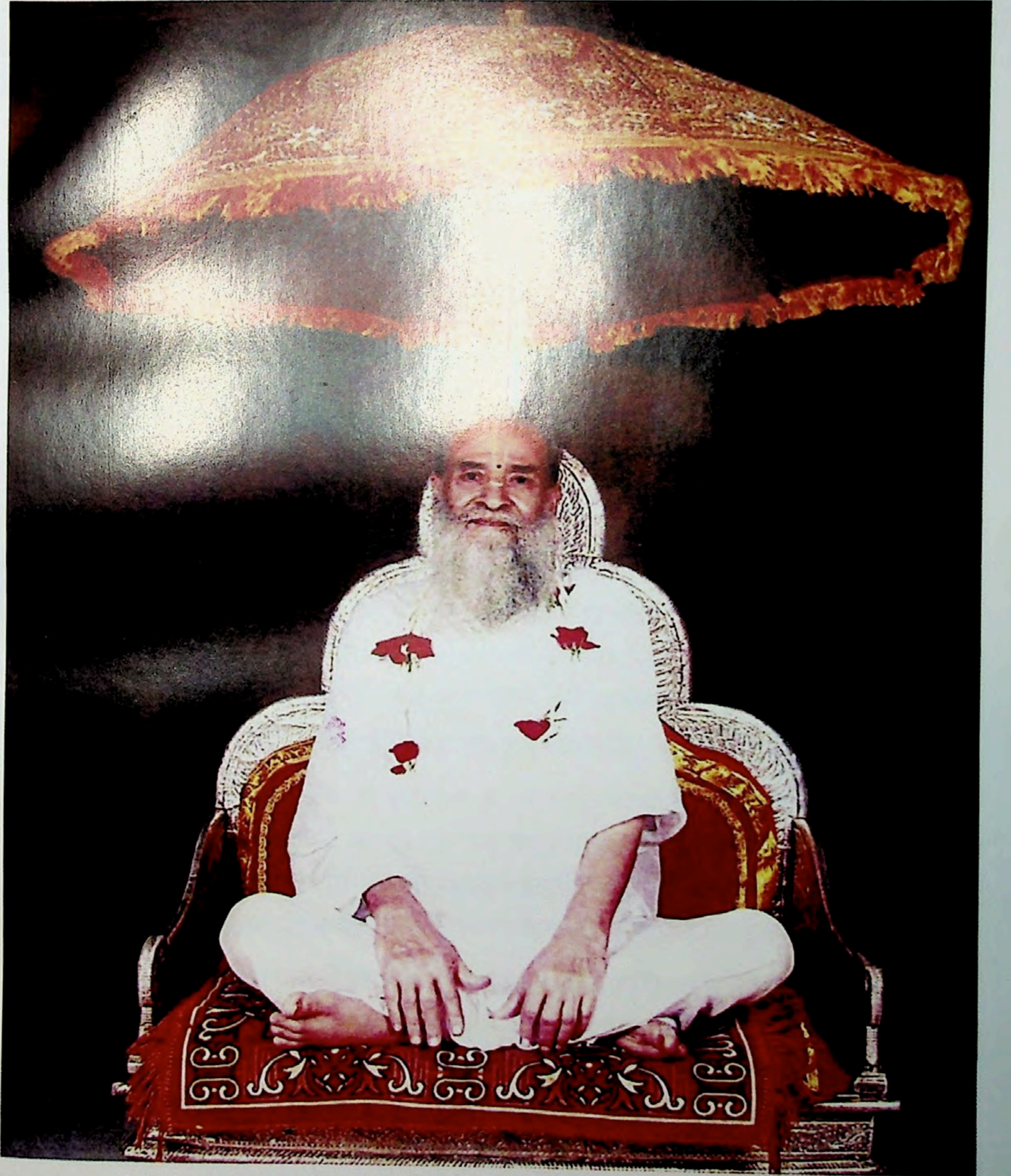
मङ्गलाचरणं भाषाकारस्यानुवादकस्य

श्रीमद्धंसं कुमारांश्च तथा श्री नारदं गुरुम्।
भू म विद्याप्रहातारं नमाभ्यादौ पुनः पुनः।।१।।
सायं स्वाश्रयमागताय यतयेऽप्यस्तं गते भास्करे,
निम्बक्षोणिरुहे प्रदर्श्य तरणिं येनाप्रमेयात्मना।
लोकेऽस्मिन् महिमाप्यदर्शि नियमेनानन्दयन् सज्जनान्,
सोऽयं निम्बविभावसुर्विजयतामाचार्यवर्यः सदा।।२।।
सर्वश्रुतीनां सुखकारिवादं स्वाभाविकाभेदविभेदवादम्।
व्यधाद्धि लोकाय महोपकारं तं निम्बभानुं गुरुमानमामि।।३।।
शङ्खावतारं किल माधवस्य, शिष्याग्रणीर्निम्बदिवाकरस्य
श्रीश्रीनिवासाख्यगुरुं वरेण्यम्, नमामितंकौस्तुभभाष्यकारम्।।४।।

वेदान्तकामधेन्वा वै दशश्लोक्याः बृहत्तमा
येनाकारि कृता टीका आचार्येण सुधीमता।।५।।
वेदान्तरत्नमञ्जूषा वेदान्तैरुपबृंहिता
पुरुषोत्तमाख्यमाचार्यं वन्दे तं भक्तिदं गुरुम्।।६।।
संसारे सर्वश्रेष्ठस्य ब्रह्मसूत्रस्य शोभनाम्,
सिद्धान्तजाह्नवी नाम्नीं व्याख्यां योव्यदधाच्छुभाम्।।७।।
देवाचार्यं महाचार्यं श्रीनिम्बार्कं पथानुगम्,
वेदान्त तत्त्ववेत्तारं गुरुं तं प्रणमाम्यहम्।।८।।
जाह्नव्या ब्रह्मसूत्रस्य व्याख्यातीव मनोहरा
सेतुकान्वर्थनाम्नी टीका येन कृताद्भुता।।९।।
अनेकग्रन्थकर्तारं मन्त्रव्याख्यापरं सुधीम्
तं सुन्दरभट्टाख्यं गुरुं नौमि पुनः पुनः।।१०।।
ततः परं सुविख्यातं भारते विश्वमण्डले
जगद्विजयिनं श्रेष्ठं काश्मीरी केशवं गुरुम्।।११।।
कौस्तुभस्य महाभाष्यं प्रभानाम्नीं सुविस्तृताम्
अद्वैतमत खण्डार्थं योऽकरोद् बहुविस्तृताम्।।१२।।
प्रभाकारं तमाचार्यं जगद्विजयितां गतम्
केशव काश्मीरि भट्टाख्यं निम्बार्ककवचं नुमः।।१३।।

ततः परम् आदिवाणीमहावाणीवाणीद्वयप्रवर्तकौ
आचार्यौ स्वसम्प्रदायस्य रसतत्वविदांवरौ।। १४।।
रसिकौ रसिकश्रेष्ठौ राधामाधवचिन्तकौ
श्रीभट्ट हरिव्यासाख्यौ वन्दे युगलप्रेमिणौ।। १५।।
ततः परं सदावन्दे स्वभूरामं विरागिनम्
आचार्यं श्री हरिव्यासशिष्यं शिस्यगणाग्रणीम्।। १६।।
स्वभूराममहाचार्यद्वारायामतिविश्रुतम्
व्रजे प्रसिद्धं नागाजी नाम्नाचतुरपूर्वकम्।। १७।।
यस्य कण्टकविद्धां वै जटां सुबहुपावनीम्
मोक्तुकामौ समायातौ प्रियाप्रियतमौ स्वयम्।। १८।।
नागाजी गुरुद्वारायां बहु कालादनन्तरम्
वीतरागतपोमूर्तिर्नानाशास्त्रविचक्षणः।। १९।।
दर्शनानेक ग्रन्थानां स्त्रष्टा वैष्णवदासकः
नाम्नाऽभून्मन्त्रतत्वज्ञोऽनिकेतो महान् बुधः
दादागुरुं तं परमं भूयोभूयो नमाम्यहम्।। २०।।
जन्मना न्यायशास्त्रज्ञं वेदान्ताद्वैतपण्डितम्
द्वैताद्वैतप्रियं किन्तु गुरुं नौमि भगीरथम्।। २१।।
वृन्दावने केशिघट्टे मन्त्रराजप्रदायकम्
आबाल कृष्णरसिकं गुरुं वन्दे भगीरथम्।। २२।।
सम्प्रदायानेकग्रन्थप्रकाशकमहोदयम्
एतद्ग्रन्थप्रकाशार्थंकृतभूरिपरिश्रमम्।। २३।।
निम्बार्ककुञ्जमाहान्तं (श्री नि) कुञ्जोपासनतत्परम्
श्री सन्तदासनामानं वन्दे श्रीगुरुभ्रातरम्।। २४।।
वन्दे महात्मनः सर्वान् युगलाराधनतत्परान्
वृन्दावनवास्तव्यानखिलानेव वैष्णवान्।। २५।।

वेदान्त शास्त्र निष्णातं न्यायशास्त्रधुरंधरम्
निर्विशेषाद्वैतवादखण्डने विश्वविश्रुतम् ।। २६ ।।
स्वाभाविकाभेदभेदद्वैताद्वैतमतं तथा
विद्वत्तया महत्यांच स्थापितंयेन धीमता ।। २७ ।।
माधवमुकुन्दनामानं श्री निम्बार्कानुयायिनम्
वैष्णवप्रवरं वन्दे राधाकृष्णानुरागिणम् ।। २८ ।।
निम्बार्कीयसमस्तानां ग्रन्थानां संस्कृते कृतान्
व्याख्यां विधाय यो विद्वानुपकारं कृतवान् भृशम् ।। २९ ।।
तं निम्बार्कीयबुधश्रेष्ठं राधाकृष्णानुरागिनम्
वृन्दावने सुविख्यातं वन्देऽमोलक पण्डितम् ।। ३० ।।
ततोऽग्रे विवर्तवादाध्यासवादैस्तथानिर्गुणवादतः
शंकराचार्य वर्याणां मिथ्यावादादिभिस्तथा ।। ३१ ।।
भक्तेर्विनाशमालक्ष्य दुःखी माधवपण्डितः
बङ्गीयो मैथिलो वापि न्यायशास्त्र धुरंधरः
अध्यासगिरिवज्राख्यं ग्रन्थं निर्मितवानमुम् ।। ३२ ।।
ग्रन्थेऽस्मिंस्तर्कजालैः श्रुतिजालैश्च भूरिशः
अध्यास मिथ्या वादस्य निर्विशेषस्यापि कृत्लशः ।। ३३ ।।
खण्डनं मर्दनं चापि मञ्जनंतर्जनस्तथा
कृतमस्तीति द्रष्टव्यं वैष्णवै र्भक्तिसाधकैः ।। ३४ ।।
परमस्यातिगभीरस्य तर्कभाषायुतस्य च
लाभो नैव भवेत्तेषां ये विदन्ति न संस्कृतम् ।। ३५ ।।
सुरभारत्यनभिज्ञानां वैष्णवानां हिताय वै
दार्शनिकानां च मोदाय भक्तिमार्गजुषामपि ।। ३६ ।।
वैद्यनाथेन विप्रेण वृन्दावननिवासिना
भाषा टीका कृता ह्यस्य केवलं भक्तिवृद्धये ।। ३७ ।।



जगद्गुरुश्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरुनिम्बार्काचार्य

श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी महाराज

श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किसनगढ़, राजस्थान

दूरभाष: ०१४९७-२२७६२१
फैक्स: २२७९२१

श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते



मिति...ज्येष्ठ कृष्णा ६
गुरुवार, वि॰ सं॰ २०७०

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः।।

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्यचक्रचूडामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश,
राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पुष्कर क्षेत्र, किशनगढ़, जि. अजमेर (राज.)-३०५८१५

क्रमांक

दिनांक...३०।५।२०१३

की

शुभाशीर्वादात्मक-मङ्गलकामना

परम विपश्चिद्वरेण्य श्रीमाधवमुकुन्द महानुभाव विरचित ''अध्यास (परपक्ष)-गिरिवज्र'' नामक ग्रंथ का जो प्रणयन किया है वह निश्चय ही अभूतपूर्व है। इस ग्रंथ में स्वाभाविक द्वैताद्वैत परक श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य के इस सिद्धान्त का विलक्षण विवेचन हुआ है और हमारे सम्प्रदाय के मूर्धन्य मनीषी श्री अमोलकरामजी शास्त्री तर्कतीर्थ तर्करत्न तर्क वागीश की ''**वज्रोत्तेजिका संस्कृत व्याख्या**'' अनुपम कृति है।

तत्पश्चात् प्रकाण्ड विद्वद्वरेण्य श्री वैद्यनाथ झाजी व्या॰ न्याय वेदान्ताचार्य जी ने सम्प्रति उक्त ग्रंथ का हिंदी भाषानुवाद करके इस ग्रंथ को विद्वज्जनों के हेतु सर्वसुलभ कर दिया है। आपने दीर्घकाल पर्यन्त श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय (वृन्दावन) के प्राचार्य पद पर रहकर सहस्रों सहस्रों शिक्षार्थियों को शिक्षा प्रदान की है जिसका परिवर्णन अशक्य है।

परम यशस्वी श्रीसन्तदासजी ने इस ग्रंथ के प्रकाशन में अपनी सर्वात्मना सेवा प्रदान की है, वे निश्चय ही पूर्णरूपेण साधुवादार्ह हैं। श्रीधाम वृन्दावन में निवास करते हुये सतत सम्प्रदाय की सेवा में अभिरत रहते हैं जिनका अनुसरण करना अनुकरणीय है। सभी महानुभावों के लिए श्री सर्वेश्वर राधामाधव भगवान् से सर्वविध अभ्युदय हेतु मङ्गलमयी अभ्यर्थना करते हैं।

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

मिति– ज्येष्ठ कृष्ण ६
गुरुवार, वि॰ सं॰ २०७०

"मङ्गलाचरणम्"

वेदान्तवेद्यं जगताञ्च हेतुं मुक्तोपसृप्यं द्रुहिणेशवन्द्यम्।
श्रीमन्मुकुन्दं ब्रजलोकप्रेष्ठं मुमुक्षुमृग्यं शरणं व्रजामि॥ १ ॥

वज्रोत्तेजिका—प्रारीप्सितस्य ग्रन्थस्याविघ्नपूर्व्वकसमाप्त्यर्थं स्मृतिशिष्टाचार-सिद्धसमुचितेष्टदेवतास्मरणरूपं मङ्गलमाचरति **वेदान्तेति**। न तावत्प्रत्यक्षप्रमाणेन ब्रह्मावगन्तुं शक्यतेऽतीन्द्रियत्वात् तथा चेन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमिति निर्विवादम्। इन्द्रियसन्निकर्षानर्हस्य तस्येन्द्रियार्थत्वाभावेन सुतरां तज्जन्यप्रत्यक्षविषयत्वाभावः। अनुमानस्य स्वतन्त्रप्रमाणत्वविरहेण नानुमानादिगम्यं ब्रह्म किन्तु शास्त्रैकसमधिगम्यमित्याह **वेदान्तेति**। वेदान्तैरुपनिषद्भिर्वेद्यम्। उपनिषत्प्रयोज्यज्ञानविषयीभूतमित्यर्थः। "तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति नमो वेदान्तवेद्याय। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। नताः स्मसर्व्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वतीत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः एतेन "**शास्त्रयोनित्वात्**" १।१।३ इति सूत्रार्थः प्रदर्शितः। तथा च शास्त्रैकप्रमाणकत्वे सति तदन्यप्रमाणागोचरत्वादित्यर्थः। सूत्रे यच्छास्त्रपदमुपन्यस्तं तस्यार्थो विवृतो **वेदान्तेति**। पुराणादीनां वेदार्थप्रतिपादकत्वेन वेदेत्युक्तौ तदर्थबोधकस्यापि तदन्तर्गतत्वात्। वेदशब्देन वेदतदविरुद्धार्थपुराणादीनां बोधश्शब्दार्थयोर्नित्यसम्बन्धादित्याशयः। स्पष्टञ्चैतत् छान्दोग्ये **श्रीनारदवाक्यम्** "सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वाणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदमिति"। तत्रैवाह **भगवान् सनत्कुमारः**—"इतिहासपुराणपञ्चम" इति। ऋग्यजुः सामाथर्वा च भारतं पञ्चरात्रकम्। मूलरामायणञ्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते। यच्चानुकूलमेतस्य तच्छास्त्रं परमं मतम्। अतोऽन्यो ग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं कुवर्त्म तदित्यादिस्मृतेश्च। जिज्ञास्यब्रह्ममुखेन निरूपयन्नाह **जगदिति**—जगत्प्राणिमात्रं तेषां हेतुरभिन्ननिमित्तोपादानकारणमिति तदर्थः। इदञ्च स्थितिप्रलययोरुपलक्षणम् एतेन "**जन्माद्यस्ययतः**" १।१।२ इति सूत्रार्थो विवृतः। तथा च श्रुतिः—"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म तद्विजिज्ञासस्वे" त्यादि। ननु "जीवाद्भवन्ति भूतानि" इति श्रुतिवचनेन कार्य्यमात्रं प्रति जीवस्यैव कारणत्वं स्यान्नतु ब्रह्मण इति चेन्मैवम्। "सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयमित्यादिना कारणस्यैकत्वप्रतिपत्तेः। प्रत्यगात्मनामानन्त्येन तेषां कारणत्ववादे बहुकारणत्ववादः प्रसज्येत। न शारीरस्य कारणत्वं किन्तु चतुर्मुखस्यैव। "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव" इति श्रुतेः। इत्यत आह **द्रुहिणेति**—"न सन्नचासच्छिव एव केवल" इत्यन्यनिषेधपुरस्कारेण शिवस्यैव जगत्कारणत्वं निश्चीयते। तस्यैव पूर्व्ववर्तित्वं-केवलत्वाभिधानात्। इत्यपि निरस्यति **ईशेति**—द्रुहिणश्चतुर्मुखः, ईशश्शिवस्ताभ्यामपि

वन्द्यो वन्दनार्हः। तदुक्तं भगवत्पादैराद्याचार्यैः "ब्रह्मशिवादिवन्दितात्" इति। "यं सर्वे नमस्यन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्गणोऽहं परमया स्तुत्या तोषयामी" त्यादिश्रुतेः। तथा वैष्णवेऽपि—"एते वयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं नासत्यदस्रौ वरुणस्तथैव च। इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः समीरणाग्निप्रमुखास्तथान्ये। सुराः समस्ताः सुरनाथकार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्व्वंआज्ञापयाज्ञां प्रतिपालयन्तस्तथैव तिष्ठाम सदास्तदोषा" इत्यादि वचनैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्य श्रीकृष्णस्यैव परतमत्वं प्रतिपाद्यते। **मुक्तोपसृप्यमिति**—संसारबन्धान्मुक्तैरुपसृप्यः प्राप्यस्तन्तथोक्तम्। एतेन "मुक्तोपसृप्य व्यपदेशादिति" सूत्रार्थः प्रदर्शितः। "क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे, यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति, नामरूपे विहाय तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति, दिव्यमिति। निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति, परात्परं पुरुषमुपैति" इति श्रुतिभ्यः। विशेष्यं निर्दिशति—**श्रीमन्मुकुन्दमिति।** श्रीमांश्चासौ मुकुन्दश्चेति श्रीमन्मुकुन्दस्तं तथोक्तम्। अत्र हि श्रीशब्देन परमसौन्दर्यं सम्पत्तिर्वा प्राणप्रेष्ठा श्रीराधा वा विवक्षिता। व्रजलोकप्रेष्ठमिति–व्रजलोकानां व्रजवासिनां प्रेष्ठमतिशयेन प्रेयांसम्। तदुक्तं श्रीमद्भागवते—"अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्" इति। एतेन भगवतः प्रेमवश्यत्वमुक्तं भवति। अत्र प्रेतिसंयुक्तात्पूर्व्ववर्तिनो लोक इति द्वितीयस्वरस्य प्रह्वेवेति विशेषविधानाल्लघुत्वं नातो भग्नवृत्तता। तदुक्तं छन्दोमञ्जर्य्याम्—"प्रह्वेवा" इति पिङ्गलमुनेर्विकल्पविधायकं सूत्रम् उदाहरणं यथा कुमारसम्भवे—"सा मङ्गलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतप्रत्युद्गमनीयवस्त्रा" इति। प्रे अथवा ह्वे परवर्तिनि सति पूर्व्वस्थितो लघुर्विभाषया गुरुः स्यादिति पिङ्गलसूत्रार्थः। उक्तोदाहरणे प्रेति संयुक्तात्प्राग्वर्तिनो गृहीतेति पदस्य तृतीयस्वरस्योक्तविभाषाबलेन लघुत्वाच्छन्दोभङ्गदोषानवसरः। **मुमुक्षुमृग्यमिति**—मुमुक्षुभिर्भगवद्भावापत्तिरूपमोक्षेच्छावद्भिर्मृग्यमन्वेषणीयमित्यर्थः। **शरणमिति**—मुमुक्षुभिः श्रीकृष्णचरणावेवोपायत्वेनोपेयत्वेन च वरणीयावित्यर्थः एतेन प्रपत्तव्यस्य माधवस्यासाधारणप्रपत्तिरेवेति निश्चयेन रक्ष्यमाणस्यात्मनोऽहं मम स्वाम्यादीनां भारस्य श्रीभगवति समर्पणमात्मनिक्षेप इति सूचितम्।

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै तं ह देवमात्मबुद्धि-प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये", "सर्व्वधर्म्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्व्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचे" ति श्रुतिस्मृतयोऽनुसन्धेयाः। यो ब्रह्माणमित्यादि मन्त्राभ्यां वेदमात्रार्थसंग्राहकाभ्यां ब्रह्मादिसकलजनकत्वतदुपदेष्टृत्व-सर्व्वबुद्ध्यादिप्रवर्त्तकत्वसर्व्वशरण्यत्वव्रजलोकप्रेष्ठत्वादिनिरूपणेन जगज्जन्मादिकारणं सर्ववेदान्तवेद्यश्चेतनाचेतनान्तरात्मा सर्व्वबुद्ध्यादिप्रवर्त्तकस्तत्प्रकाशको मुक्तप्राप्यः श्रीकृष्णदेवोऽस्याः प्रपत्तेः प्रतिपत्तव्य इति समुदितश्लोकार्थः। अत्र पुनरिदं ह्यनुसन्धेयम्।

व्रजलोकप्रेष्टत्वमुमुक्षुशरण्यत्वाभिधानादष्टादशाक्षरद्वादशाक्षरमन्त्रयोरर्थः प्रदर्शितः ।

प्रथमश्लोकेनानुबन्धचतुष्टयं शास्त्रप्रवृत्तिप्रयोजकं प्रदर्शितम् । तथाहि— सर्व्ववेदान्तवेद्यो जगज्जन्मादिकर्तृत्वाश्रयो ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिवन्द्यो व्रजलोकप्रेष्ठत्वाश्रयो मुक्तोपसृप्यो हेयप्रत्यनीककल्याणगुणगणाश्रयो भिन्नाभिन्नत्वाश्रयो भगवान्परब्रह्माख्यः श्रीकृष्णोऽस्य शास्त्रस्य विषयः । मुमुक्षुर्भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येदिति श्रुतेर्भगवद्भावापत्तिकामोऽस्य शास्त्रस्याधिकारी । प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः शास्त्रविषययोः सम्बन्धः । श्रीभगवद्भावापत्तिरेवास्य प्रयोजनम् । इति ।

अस्मिन्पद्ये पादत्रये हीन्द्रवज्रावृत्तस्य तुर्यपादे चोपेन्द्रवज्राख्यछन्दसोऽभिधानादुपजातिवृत्तम् । उपेन्द्रवज्रैकचरणोपन्यासेऽपि ह्युपजातिर्भवति । यथाच्युतचरित्रे—"काचिन्मुरारेर्वदनारविन्दसंक्रान्तमालोक्य जले नवोढा । व्यक्तं सलज्जापरिचुम्बितं तत्तदर्थमेवाम्भसि निर्ममज्ज" इति । अत्रेन्द्रवज्रायाश्चरणत्रयोपन्यासेन तत्वत्रयस्योपेन्द्रवज्राया एकचरणोपन्यासेन च भेदाभेदः सूचितस्तादृशवृत्तोपन्यासात् । स्वकीयग्रन्थनाम चाभिहितमिति प्रथमश्लोकार्थः ।।१ ।।

तत्रास्य न्यायविद्यया मैथिलत्वमपि संभाव्यते । न्यायस्य जन्मभूमिमिथिला । तत एवास्या विद्याया बङ्गे प्रचार इति विश्व प्रसिद्धिः ।।१ ।।

हिन्दी अनुवाद— जो अशेष वेदान्तवाक्यों के परम वेद्य हैं सम्पूर्ण विश्व के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं, मुक्तजनों के प्राप्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं के परम वंदनीय हैं तथा व्रजवासियों के परम प्रेमास्पद हैं, उन मुमुक्षुजन विमृग्य भगवान् श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।। १ ।।

---

1. श्री अमोलक पण्डितस्य भूमिकायां माधवमुकुन्दस्य जन्मभूमेरनिश्चयात् अयमप्येक ऊह एव न निश्चयात्मक इत्यव धेयम्

निखिलविद्याप्रदं हयग्रीवावतारं श्रीभगवन्तमनुसन्धत्ते ज्ञानप्रदमित्यादिनेति—

ज्ञानप्रदं विश्वगुरुं हयास्यं विज्ञानवात्सल्यदयादिसिन्धुम्।
प्रपन्नरक्षार्थनिबद्धकक्षं सर्वेश्वरं नित्यमहं स्मरामि॥ २॥

वज्रोत्तेजिका—ज्ञानं विद्या-स्वविषयकज्ञानं वा प्रकर्षेण ददातीति ज्ञानप्रदस्तं तथोक्तम्। श्रीभगवत्स्वरूपादिविषयकप्रत्यक्षानुभवप्रदमिति यावत्। "ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्" "मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च" इति श्रीमुखवचनेभ्यः। **विश्वगुरुमिति**—विश्वेषां चेतनमात्राणां गुरुरज्ञानान्धकारनिवर्त्तकस्तं तथोक्तम्। तदुक्तम्—"गुशब्दस्त्वन्धकाराख्यो रुशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारविरोधित्वाद्-गुरुरित्यभिधीयते", "गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परागतिः", "त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्" इति। **हयास्यमिति**—हयस्य तुरगस्यास्यमिवास्यं यस्य स तन्तथोक्तम्। हयग्रीवावतारमित्यर्थः। **विज्ञानदयादि-सिन्धुमिति**—विज्ञानं निखिलदेशकालवस्तु-विषयकप्रत्यक्षानुभवरूपम्। वात्सल्यं भृत्यदोषाननुसन्धानम्। निर्हेतुकपरदुःख-दुःखित्वे सति तन्निराचिकीर्षा दया। आदिपदेन शक्तिबलैश्वर्य्यवीर्य्यसौशील्यार्जव-सौहार्दसर्व्वशरण्यत्वौदार्य-धैर्य्यमाधुर्य्यमार्दवादयो ग्राह्याः। सूत्रिताश्चैते भगवता बादरायणेन—"विवक्षितगुणोपपत्तेश्चेति" परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति, सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सर्व्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः, सर्व्वस्य शरणं सुहृत्, विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रावोचत् यः पार्थिवानि विममे रजांसि न ते विष्णोर्जायमानो न जातो देवस्य महिम्नः पारं सहस्रधा महिमानः सहस्र इत्यादिना श्रूयन्ते च-शक्तिर्ज्ञानबलैश्वर्यतेजोवीर्याण्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिरिति। **प्रपन्नेति**—प्रपन्नानां शरणागतानां जनानां या रक्षा इष्टप्राप्तिपर्यन्तानिष्टनिवृत्तिलक्षणा तस्यै निबद्धा कक्षा येन स तम्। एतेनाश्रितसंरक्षणं स्वावतारप्रयोजनं दर्शितं भवति। श्रीरामायणेऽप्युक्तम्—अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणमिति। परित्राणाय साधूनामित्यादिश्रीमुखवचनेनाश्रितजन-संरक्षणमपि स्वावतारप्रयोजनं स्वयमेव प्रदर्शितम्। तच्चेतिहासपुराणादौ प्रसिद्धमेवेति। **सर्वेश्वरमिति**—सर्वेषां निखिलब्रह्माण्डादीनामिन्द्रकुबेरचतुर्मुखमहेश्वराणाञ्चेश्वरः—कारण-कारणम्। ईश्वरेश्वरो देवदेवो ब्रह्मरुद्रादिहेतुर्ब्रह्मादिगुरुः पुरुषोत्तमः श्रीकृष्ण एवेत्यर्थः। तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं स कारणं कारणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिप इतिश्रुतेः मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय। परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्तीत्यादिस्मृतेश्च नित्यमनवरतं स्मरामि। प्रागुक्त-विशेषणाभिन्नश्रीकृष्णविषयकस्मरणाश्रयीभूतैकत्वविशिष्टः श्रीग्रन्थकार इतिबोधः।।२।।

इस श्लोक में अखिल विद्या प्रदाता श्री हयग्रीव भगवान् की वन्दना करते हैं—

हिन्दी अनुवाद—जो सम्पूर्ण ज्ञान के प्रदाता हैं, विश्व के गुरु हैं, विज्ञान, वात्सल्य, दया आदि अशेष गुणों के आकार हैं, शरणागत भक्तों की रक्षा के लिये जो सदा कटिबद्ध रहते हैं, मैं उन सर्वेश्वर श्री हयग्रीव भगवान् का स्मरण करता हूँ।।२।।

सम्प्रति श्लोकद्वयेनाद्याचार्यं श्रीनिम्बार्कदेवं तन्नामनिरुक्त्या प्रपत्तव्यमानन्दप्रदं स्मरति—**नियामक इति।**

नियामको यो भवकारणेभ्यः स्वपादकञ्जं भजतां स्वकानाम्।
यस्मात्परानन्दमपास्तदोषं लब्ध्वा जनो याति भवाध्वपारम्॥ ३ ॥

वज्रोत्तेजिका— स्वकानां स्वीयानामत एव स्वस्य यत्पादकञ्जं पादौ कमलमिव **भजतां**—सेवतां—भक्तानां **भवस्य**—संसारस्य यानि कारणानि—अविद्यारागद्वेषमोहबहिर्मुखत्वादीनि तेभ्यो यो भगवानाद्याचार्यो **नियामकः** पोतवाहः। नियामकाः पोतवाहा इत्यमरः। उत्पथगामिनः सर्वान्नियन्तुं शक्त इत्यर्थः। **अपास्ता** निरस्ता अविद्यादयो यस्मात्तं परानन्दमुत्कृष्टमानन्दं, यस्मादाचार्याल्लब्ध्वा—प्राप्य। भवः संसारस्तस्याध्वामार्गस्तस्मात्पारं याति।।३।।

हिन्दी अनुवाद— सम्प्रति दो श्लोकों में आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य महाराज का उनके नाम का निर्वचन करते हुए उन प्रपन्नजन आनन्द प्रदाता का स्मरण करते हैं—

जो श्रीनिम्बार्क महाप्रभु अपने चरण कमलाश्रित भक्तों के भवबन्धनकारी विघ्न-बाधाओं को दूर कर देते हैं, तथा जिनकी कृपा से परमानन्दस्वरूप प्रभु को पाकर भक्तजन भवसागर को पार कर जाता है।। ३।।

तन्नामधेयं मनुजावतारं देवर्षिशिष्यप्रवरं गुणाब्धिम्।
श्रुत्यर्थवक्तारमचिन्त्यशक्तिं ह्याचार्य्यमाद्यं तमहं प्रपद्ये॥ ४॥

वज्रोत्तेजिका— **तन्नामधेयं—तत्**—उक्तश्लोकाभिहितं नामधेयं यस्याद्याचार्यस्य स तं—नियमा-नन्दमिति यावत्। तदर्थस्तु प्रागुक्तश्लोकेऽभिहितः। **मनुजावतारमिति**—मनुजेष्वव-तारस्तम् प्राकृतवैभवेष्ववतरणमवतारशब्दार्थः यद्वा मनुज इवावतारस्तम्। वस्तुतस्सच्चिदानन्द-परिपूर्णभगवद्रूपमित्यर्थः। **देवर्षिप्रवरं**—देवानां ऋषिः श्रीनारदो भगवान् तस्य ये शिष्यास्तेषु प्रवरः—श्रेष्ठस्तम्। **गुणाब्धिं** गुणाः वात्सल्यकारुण्यादयस्तेषामब्धिः—सागरस्तम्। **श्रुत्यर्थवक्तारं** श्रुत्यर्थानां प्रवचनकर्ता तं बादरायणीयसूत्र-वाक्यार्थरूपेण वेदान्तपारिजात-सौरभाख्यग्रन्थरचनया श्रुत्यर्थं व्याचकार इतिभावः। **अचिन्त्यशक्तिम्** अचिन्त्या—इयत्तया चिन्तयितुमनर्हाः शक्तयो यस्य स तं—लोकवेद-प्रसिद्धम्—आद्याचार्यं—नियमानन्दमहं-**प्रपद्ये**—शरणं व्रजामि। मुमुक्षुभिर्भगवदवतारस्याद्याचार्यस्य नियमानन्दस्य चरणावेवोपायोपेयत्वेन वरणीयावित्यर्थः।।४।।

हिन्दी अनुवाद— उन मनुष्य रूप में अवतीर्ण, अशेष गुण सागर, श्रुतियों के वास्तविक अर्थ के प्रवक्ता तथा अचिन्त्यशक्तिशाली उन आद्याचार्यपाद देवर्षिश्रीनारदजी के शिष्यों में श्रेष्ठ श्रीनिम्बार्क महाप्रभु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।।४।।

इत्थं श्लोकचतुष्टयेन स्वेष्टदेवतास्मरणं देशिकप्रपत्तिञ्च विधाय प्रणिनीषितनिवन्ध-प्रयोजनमभिदधान आचार्यप्रादुर्भावप्रयोजनमुपक्षिपति **इह खल्वित्यादिना**-

इह खलु ब्रह्मेशादिकिरीटकोटीडितपादपीठोऽनन्ताचिन्त्यस्वाभाविकशक्तिवैभवः सच्चिदानन्दस्वरूपोऽनन्ताचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानैश्वर्यादिकारुण्य-वात्सल्यदयातितिक्षादिकल्याणगुणालयो जगज्जन्मादिहेतुर्वेदान्तैकज्ञेयो मुक्तगम्यो मुमुक्षुध्येयो रमानिवासो विश्वभूतान्तरात्मा सर्वेश्वरो मुकुन्दः परब्रह्माख्यः श्रीभगवान् वासुदेवः श्रीपाराशर्यरूपेण सत्यवत्यामवतीर्य सर्वेषां तत्तत्पुरुषार्थ-सिद्धये स्वनिःश्वसितान् वेदान् ऋग्यजुःसामादिरूपेण विभज्य स्त्रीशूद्रजनोद्दिधीर्षया भारतादीन्विधाय मुमुक्षुजनानुकम्पया च शारीरकमीमांसाख्यं वेदान्तशास्त्रं सूत्रयामास। तस्य च कलावुच्छिन्नसम्प्रदायत्वापत्या तत्प्रवर्तयितुकामो नियमानन्दाख्यस्तद्व्याख्यानं वाक्यार्थरूपेण संगृहीतवान्॥ १॥

वज्रोत्तेजिका— श्रीभगवान् वासुदेवो मुमुक्षुजनानुकम्पया शारीरक-मीमांसानामकं वेदान्तशास्त्रं सूत्रयामासेत्यन्वयः किं कृत्वा पाराशर्यरूपेण सत्यवत्यामवतीर्य, स्वनिःश्वसितान् वेदान् ऋग्यजुःसामादिरूपेण, विभज्य कस्मै प्रयोजनाय सर्वेषां तत्तत्पुरुषार्थसिद्धये स्त्रीशूद्रजनोद्दिधीर्षया वेदानधिकारिणां स्त्रीशूद्रादीनामुद्धाराय, भारतादीनि पुराणानि विधाय निर्माय च। **ब्रह्मेत्यादिपरब्रह्माख्य** इत्यन्तानि भगवतो वासुदेवस्य विशेषणानि। **ब्रह्मा**—चतुर्मुखः **ईशो** महेश्वरस्तावादौ येषामिन्द्रादीनां **किरीटकोटिभिः**—किरीटाग्रभागैः, **ईडितं** स्तुतं पादपीठं यस्य स एतेन चतुर्मुखादिभ्यः परमतत्वं भगवतो दर्शितं भवति। ''तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतं स कारणं कारणाधिपाधिप'' इत्यादिश्रुतिभ्यो ब्रह्मरुद्रादिवन्दितचरणारविन्दः पुरुषोत्तमः श्रीकृष्ण एवेति तस्य ब्रह्मादिसेव्यत्वे हेतुगर्भविशेषणमाह—**अनन्ताचिन्त्येति**—अनन्ताः—परिच्छेदशून्याः अचिन्त्याः-चिन्तयितुमनर्हाः, स्वाभाविक्यः-स्वरूपवद्यावदात्मभाविन्योऽनादिसिद्धा अघटघटना-पटीयस्यः शक्तयो-वैभवा यस्य सः ''न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचे'' तिश्रुतेः। **सच्चिदानन्द-रूप इति**—सत्स्वरूपश्चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप इत्यर्थः ''सत्यस्य सत्यं चिद्घनः प्रज्ञानघनः सत्यं विज्ञानमानन्दं **ब्रह्मे त्यादिश्रुतिभ्यः।** परमतनिराकरणपूर्वकं तद्गुणान् प्रदर्शयन् तस्यावतारे हेतुमाह **अनन्तेति**-अनन्ता अचिन्त्याः स्वाभाविकाश्च ये ज्ञानादितितिक्षान्ताः कल्याणगुणास्तेषामालय-आधारभूत इत्यर्थः तत्र ज्ञानं प्रागुक्तार्थकम् ऐश्वर्यं नियमन-शक्तिः, आदिपदेन शक्तितेजोवीर्यसौशील्य-सौहार्दसर्वशरण्यत्वसौम्यधैर्यमाधुर्यमार्दवादयो ग्राह्याः। **वात्सल्यं**-भृत्यदोषाननुसन्धानम्। **दया**-निर्हेतुकपरदुःखदुःखित्वे सति तन्निराचिकीर्षा, **तितिक्षा**-

सर्वदुःखसहिष्णुत्वम्। आदिपदेन जगज्जन्मादिकारणत्व-शास्त्रयोनित्वमोक्षप्रदत्व-सर्वकामफलप्रदत्वविश्वाधारत्वसर्वव्यापित्व सर्वनियन्तृत्वनिरतिशयसूक्ष्मत्व-निरतिशयमहत्वेश्वरत्वसर्वानतिक्रमणीत्वादयो गृह्यन्ते। "जन्माद्यस्य यतः", "शास्त्रयोनित्वात्", "तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्", "अन्तस्तद्धर्मो पदेशात्", "**आकाशस्तल्लिङ्गात्**" "फलमत उपपत्तेरि त्यादिसूत्रेभ्यः कल्याणगुणानेवाह **जगज्जन्मादिहेतुरिति** निखिलजगदुद्भवस्थितिलयकारणम्। "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्तियत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीतिश्रुतेः। **वेदान्तैकज्ञेयः**— उपनिषदेकसमधिगम्यः "शास्त्रयोनित्वात्" "सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति" सूत्रश्रुतिभ्यः। **रमानिवासः**-रमा निखिलगुणगणयुता प्रेमाधिष्ठात्री श्रीवृषभानुजा तस्या निवासो वसतिस्थानम्। अङ्गे तु वामे वृषभानुजामित्युक्तेः। **विश्वभूतान्तरात्मेति**-विश्वे सर्वे ये भूताः प्राणिनस्तेषामन्तरात्मा। "कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासस्तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरेसर्पिरिवार्पितं यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ओषधिषु वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः। एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। "सर्वांल्लोकानीशतईशनीभिरितिश्रुतिभ्यः। **सर्वेश्वर इति**-सर्वेषां ब्रह्मरुद्रेन्द्रादीनामीश्वरः प्रभुः। तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्, तं देवतानां परमं च दैवतं, तदु नात्येति कश्चन, अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय इत्यादिप्रमाणेभ्यः। **मुकुन्दः** श्रीकृष्णः। **परब्रह्माख्यः** परब्रह्माख्या यस्य सः। परशब्देन चतुर्मुखादीनां व्यावृत्तिः। स्वरूपेण बृहद्गुणयोगाच्च यद् बृहत्तमं वस्तु तद् ब्रह्मशब्द-वाच्यम्। "बृंहति बृंहयते तस्मादुच्यते परं ब्रह्मेतिश्रुतेः एष प्रकृतिरव्यक्तः कर्ता चैव सनातनः। परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्माद्वृहत्तमोऽच्युतः।" बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मेत्यादि स्मृतेश्च। ब्रह्मन् शब्दो बृह बृहि वृद्धावित्यस्माद्धातोरौणादिकेन मन्प्रत्ययेन व्युत्पद्यते। एतावता शास्त्रस्यास्य विषयो व्याकृत उक्तस्वरूपस्य श्रीवासुदेवस्यैव वेदान्तशास्त्रविषयत्वात् **श्रीभगवान्**— षड्गुणसंपन्नः। ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गनेति पराशरोक्तषड्गुणाश्रय इत्यर्थः। **वासुदेव इति**—वसुदेवस्यापत्यं श्रीकृष्णः। वेदविभागप्रयोजनमाह। **सर्वेषां तत्तत्पुरुषार्थसिद्धय इति** धर्मार्थ-काम-मोक्ष-प्राप्त्यर्थमित्यर्थःसर्वेषामधिकारिणां स्वाभिमतपुरुषार्थनिष्पत्तिस्तत्प्रयोजनमितियावत्। अवतारप्रयोजनमाह **स्वनिःश्वसितान् वेदान् विभज्येति**—अवतारफलस्य वेदविभागस्यानन्यसाध्यत्वमावेदयितुं स्वनिःश्वसितानिति विशेषणं वेदानामुपात्तम्-भगवच्छ्वासरूपत्वादेव वेदानां तात्पर्यस्येतरानिर्णेयत्वादितिभावः। भारतादि-निर्माणप्रयोजनमाविष्करोति **स्त्रीशूद्रेति**—वेदानधिकारित्वात्तयोरुद्दिधीर्षामाश्रित्य बादरायणो भारतं निर्मम इति तात्पर्यम्। "तं होपनिन्येऽधीहि भगव" इति श्रुतेः-पुराणादावधिकृतस्य

शूद्रस्य **वेदानधिकारित्वमपशूद्राधिकरणे** निपुणं वक्ष्यते। एवं प्रासङ्गिकतया पाराशर्यावतारप्रयोजनं निरूप्य प्रकृतमनुसरति मुमुक्षुजनेति **शारीरकमीमांसाख्यम्**—शरीरे भवा: शारीरा: प्रत्यगात्मानस्तेषां क आनन्दरूप आत्मा परब्रह्माख्य: श्रीपुरुषोत्तम:। यद्वा शारीराणां क आनन्दो मोक्षलक्षणो यस्मात्स शारीरक:। "कं ब्रह्म एष आनन्द यातीति श्रुतेस्तस्य मीमांसा सैवाख्या यस्य तदित्यर्थ:। **वेदान्त-शास्त्रमिति** उपनिषद्भागरूपं शास्त्रमित्यर्थ:। **सूत्रयामास**—सूत्ररूपेण रचयामासेत्यर्थ:। सम्प्रति स्वाचार्याणां सहेतुकमवतारप्रयोजनं दर्शयँस्तस्य प्रवृत्तिप्रकारं व्यनक्ति तस्येत्यादिना। तत्र प्रयोजनमाह **कलाविति**-श्रीकृष्णावतरणसमानकालीन: किल भगवतो **निम्बादित्यदेशिकस्याविर्भाव:**—सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्ञप्तो जनिष्यति। निम्बादित्य इति ख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यतीति भविष्यपुराणे व्यासोक्ते:। पुराणेष्वितरेषु आरुणिरित्याख्या तस्योपलभ्यते "अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्चेति" श्रीमद्भागवते तत्पितृनामसंकीर्तनात्। "देशे तैलिङ्गके पुण्ये द्विजवर्यो महामना:। सुदर्शनाश्रमे पुण्ये भृगुवंशसमुद्भव:। नाम्नारुण इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारग इति भविष्यद्वचनाच्च। भगवत: श्रीकृष्णस्य लोकदृष्ट्या तिरोधानसमनन्तरं समया गिरिगोवर्धनं निम्बाख्ये ग्रामे दण्डिरूपमाश्रित: श्रीनारद: प्राप्तो भगवन्तमारुणिं व्याजहार विद्वन् यावदरुणोऽम्बरमारोहति तावद् बुभुक्षाबाधितं मामन्धसा तर्पयेति तदुक्तिमाकर्ण्यास्तमितेऽपि भगवत्यंशुमालिनि तेज: पुञ्जं निजसुदर्शनं पारिभद्रतरौ स्थापयित्वा श्रीनारदमर्कन्दर्शयन्नभ्यवहारयामासेति भगवत आरुणे: प्रभावं संवीक्ष्य श्रीनारदो निम्बेऽर्कदर्शनात्तस्य मुनेर्निम्बार्क इत्यभिधानं विदधे। अतएव निर्णयसिन्धौ व्रतनिर्णय-प्रस्तावे कपालवेधं प्रामाणिकमभिदधान: कमलाकरभट्ट: "उदयव्यापिनी ग्राह्या कुलेतिथिरुपोषणे। निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थफलप्रद" इति भविष्यवचनमुद्धृतवान्। स एव भगवान्निम्बार्को **नियमानन्द इति** व्यपदिश्यते तमेव निर्दिशति नियमानन्दाख्य इति नियमो देशकालवस्त्वपरिच्छिन्नं सद्वस्तु स चासावानन्दश्चेति नियमानन्द: समस्तदेशकालवस्तुव्यापक: सदानन्दरूप:। यद्वा नियमोऽत्र व्यभिचाराभाव ऐकान्त्यमितियावत् व्यभिचाररहित आनन्दो यस्य स तथोक्त: स एवाख्या नामधेयं यस्य स इति। व्युत्पत्तिरियमेव जाह्नवीव्याख्याकृद्भि: **श्रीदेवाचार्यपादैरुपदर्शिता** "नियमेन यदानन्दो जगद्भासयतेऽखिलम्। तमहं नियमानन्दं वन्दे कृष्णं जगद्गुरुमिति"। तद्व्याख्यानमिति बादरायणीयसूत्रव्याख्यानम् वेदान्तपारिजातसौरभाख्यम्॥ १॥

इस प्रकार उक्त चार श्लोकों द्वारा अपने इष्ट देवता का स्मरण तथा आचार्य पाद की शरण ग्रहण कर अपने प्रतिपाद्य अभिलषित ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए आचार्य के प्रादुर्भाव के प्रयोजन बताते हैं, इह खलु इत्यादि ग्रन्थ के सन्दर्भों से—

हिन्दी अनुवाद— ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवताओं के कोटि-कोटि शिर-मुकुटों द्वारा वन्दित पादारविन्द अनन्त अचिन्त्य स्वाभाविक शक्तिशाली, सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक शक्ति वैभव, सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक ज्ञान, ऐश्वर्यादि, कारुण्य, वात्सल्य, दया तितिक्षा आदि कल्याण गुणगणनिलय- अनन्त विश्व के उत्पत्ति, स्थिति, लय के एकमात्र कारण, वेदान्तवेद्य मुक्तगम्य, मुमुक्षुध्येय, रमानिवास, विश्वभूतान्तरात्मा सर्वेश्वर परब्रह्म परमात्मा भगवान् वासुदेव ने पराशर नन्दन भगवान् व्यास रूप में सत्यवती माँ के गर्भ से अवतार लेकर अकाम-सकाम समस्त जनों की कामनाओं (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की सिद्धि के लिये अपने निःश्वासभूत वेदों का ऋग्, यजु, साम तथा अथर्ववेद से विभाग करके पश्चात् स्त्री तथा शूद्र जनों के उद्धार के लिये महाभारत एवं अष्टादश पुराणों की रचना की। तदनन्तर मुमुक्षु जनों के कल्याण के लिये शारीरक मीमांसा नामक वेदान्त शास्त्र (ब्रह्मसूत्र) का प्रणयन किया।

इस वेदान्त शास्त्र की सम्प्रदाय परम्परा के कलियुग में उच्छिन्न होने के भय से उसकी परम्परा सुरक्षित रखने के लिये श्रीनियमानन्द आचार्य ने वाक्यार्थ रूप से अतिसंक्षिप्त व्याख्यान (वेदान्त पारिजात सौरभ नामक वृत्ति के रूप में) किया। अर्थात् वेदान्त पारिजात सौरभ नामक वृत्ति ग्रन्थ का निर्माण किया॥ १ ॥

तच्च, शास्त्रं शङ्खावतारो भगवाञ्छ्रीश्रीनिवासाचार्यो निगदं वभाषे तस्य च सौकर्येण तात्पर्यं जिग्राहयिषया स्वसाम्प्रदायिकानामाचार्याणां श्रीहरेश्च प्रीणनाय विदुषां कौतुकाय मुमुक्षूणां चोपकाराय परपक्षगिरिवज्राख्यः शारीरकहार्दसञ्चयो नाम ग्रन्थो निर्मीयते॥ २ ॥

वज्रोत्तेजिका— वभाषे इति-व्याख्यामुखेन विशदीचकार। नन्वेवं संचित प्राक्तनाचार्यप्रणीता भूयांसो निबन्धा वेदान्तार्थनिरूपणपरास्तैरेवसकलेष्टसिद्धौ कस्य हेतोरेष यत्न एतद्ग्रन्थ निर्माणे इत्याशङ्क्याह तस्यच सौकर्येणेति तस्य वेदान्तकौस्तुभस्य। **शारीरकहार्दसञ्चय इति** कुत्सितं शरीरं शरीरकं तस्यायं शारीरको जीवात्मा अभेदोपचाराच्चतुर्लक्षणी-सन्दर्भोऽपि शारीरकस्तस्य हार्दमभिप्रायस्तस्य सञ्चयो यस्मिन् स ग्रन्थो निर्मीयत इत्यर्थः ।। २ ।।

हिन्दी अनुवाद— उस संक्षिप्त वृत्ति ग्रन्थ का शंखावतार भगवान् श्रीनिवासाचार्य ने विस्तृत व्याख्या के रूप में वेदान्त कौस्तुभ नामक भाष्य की रचना की। उस वेदान्त कौस्तुभ भाष्य का स्पष्ट रूप से तात्पर्य ज्ञान, स्वसाम्प्रदायिक आचार्यों तथा भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता तथा विद्वानों के कौतुक एवं मुमुक्षुओं के उपकार के लिये शारीरक ब्रह्मसूत्र शास्त्र का मुख्य तात्पर्य संग्राहक '**परपक्षगिरिवज्र**' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया जाता है।।२ ।।

अथ शास्त्रमात्रारम्भस्यानुबन्धचतुष्टयसापेक्षत्वात् वेदान्तस्यापि शास्त्रत्वाविशेषात्तदनुबन्धास्तावत् समस्यन्ते तत्राधिकारिलक्षणं यद्यपि ''अर्थी समर्थो विद्वानधिकारी'' ति सूत्रितं भगवता जैमिनिना तथापि तस्य सर्वतन्त्रसामान्यादस्य शास्त्रस्य तु सर्वविलक्षणतयाऽधिकारिणाऽपि केनचिद् विलक्षणेनैव भाव्यम् तदुपायानां फलस्य च विलक्षणत्वश्रवणात्॥ ३॥

वज्रोत्तेजिका— अस्य शास्त्रस्य को विषयः किं फलं कोऽधिकारी कः सम्बन्ध इति जिज्ञासुमुपलभमानो ग्रन्थकारोऽनुबन्धचतुष्टयं शास्त्रारम्भप्रयोजकं न्यायेन निर्णेतुमारभते **अथेति** ''सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते। शास्त्रादौ तेन कर्तव्यमनुबन्धचतुष्टयम्। द्वैताद्वैताश्रयः कृष्णो विषयोऽस्य निरूप्यते, मुमुक्षुरधिकारी च, तद्भावाप्तिः प्रयोजनम्। इति प्रदर्शयितुं तत्र तावदधिकारिलक्षणमाह **तत्रेति** अनुबन्धचतुष्टयमध्ये इत्यर्थः। अधिकारिणः पारमर्षं लक्षणं निर्दिशति **अर्थीति।** अर्थी—प्रयोजनवान्। **समर्थः**—प्रयोजनसम्पादनसमर्थः **विद्वान्**—तत्साङ्गोपाङ्गस्वरूपवेत्ता। आद्येन विशेषणेन निष्प्रयोजनानामधिकारो वारितः। द्वितीयेन चासमर्थानाम्। तृतीयेन धर्मस्वरूपनिरूपणासमर्थानामधिकारो निराकृत इति विवेकः। शास्त्रसामान्यमुद्दिश्य महर्षिणा जैमिनिना निरुक्ताधिकारिलक्षणमभिहितम्। वेदान्तशास्त्रोपायानां तत्फलस्य च विजातीयत्वात्तदधिकार्यपि विजातीय इत्याह **तथापीत्यादिना। तस्येति** जैमिनिप्रणीतसूत्रस्येत्यर्थः। **सर्वतन्त्रेति**-सर्वशास्त्रसाम्यादिति तदर्थः। **अस्य** वेदान्तस्य। तुशब्दोभिन्नक्रमः। **सर्वविलक्षणेति**—वेदान्तशास्त्रमन्यशास्त्रेभ्यो विजातीयम्, अन्य शास्त्रापेक्षया विजातीयफलोपाय-प्रतिपादकत्वादितिप्रयोगः। अतएव वेदान्तशास्त्रस्याधिकार्यपि तदितरशास्त्राधिकार्यपेक्षया विलक्षण इत्यर्थः। **तदुपायानां**—वेदान्तशास्त्रोपायानां। पारमर्षं निरुक्तलक्षणमधिकारिसामान्यस्यैव न तु विशेषाधिकारिणः॥ ३॥

अधिकारी निरूपण

हिन्दी अनुवाद—शास्त्र मात्र का आरम्भ, अनुबन्ध सापेक्ष होता है। वेदान्त भी एक शास्त्र है। इसका भी अनुबन्ध चतुष्टय होना चाहिये। इसलिये अब इस शास्त्र का अनुबन्ध संक्षेप रूप से वर्णन करते हैं। अधिकारी का लक्षण यद्यपि भगवान् श्री जैमिनि ने 'अर्थी समर्थो विद्वानधिकारी' सूत्र द्वारा किया। अर्थात् जो प्रयोजनवान् हो, प्रयोजन सम्पादन में समर्थ हो तथा साङ्गोपाङ्ग स्वरूपवेत्ता हो, वह अधिकारी कहलाता है। तथापि यह लक्षण तो सकलशास्त्र साधारण है। वेदान्त शास्त्र सर्वोपरि शास्त्र है, इसलिये इसका अधिकारी भी कोई विलक्षण होना चाहिये। इसके (वेदान्त का) उपाय एवं फल भी विलक्षण बताये गये हैं॥ ३॥

अयं भावः सूत्रितलक्षणस्याधिकारित्वावच्छिन्नमेव लक्ष्यं, न तु कश्चिद्विशेषः शास्त्रमात्रस्याधिकारिमत्त्वात्। यथा 'स्वर्गकामो यजेते' त्यत्र काम्यधर्माधिकारिणः स्वर्गार्थित्वंतदिष्टसाधनभूतयागादिसम्पादनसामर्थ्यं तत्तत्साङ्गोपाङ्गधर्मस्वरूपादेर्विद्वत्त्वञ्च श्रूयते। एवमन्यत्रापि तदितरशास्त्राधिकारिभ्योऽत्यन्तविविक्तार्थित्वादिविशेषणसम्पन्नेनाधिकारिणाऽवश्यं भवितव्यम्। 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

वज्रोत्तेजिका— यद्यच्छास्त्रं तत्सर्वमधिकारिणमुद्दिश्यैव प्रवृत्तमिति नियममवलम्ब्य स्वोक्तार्थं विवृणोति अयं भाव इति उक्तलक्षणमुदाहरति—**यथेति। एवमिति। तदितरेति।** वेदान्तदर्शनेतरसाङ्ख्ययोगादिशास्त्रं तेषामधिकारिभ्य इत्यर्थः। **अत्यन्तेति**— अत्यन्तैकान्तसेवित्वमोक्षेच्छावत्वादिविशेषविशिष्टेनेत्यर्थः। अयमाशयः—वेदान्तेतर-साङ्ख्यादिशास्त्राधिकारिषु यादृशानि सामर्थ्यार्थित्वविद्वत्त्वानि निरूपितानि तेभ्यो

हिन्दी अनुवाद— जितने भी शास्त्र हैं, वे सभी किसी अधिकारी विशेष को उद्देश्य करके ही प्रवृत्त हुए हैं, इस नियम का अवलम्बन करके अपने कथन का स्पष्टीकरण करते हैं—'अयं भावः....' तात्पर्य यह है कि महर्षि जैमिनि द्वारा सूचित लक्षण—अर्थी, समर्थो, विद्वान् का अधिकारी मात्र लक्ष्य है—न कि किसी विशेष शास्त्र का अधिकारी। कारण, शास्त्र मात्र अधिकारी सापेक्ष है। जैसे ''स्वर्गकामो यजेत'' यहाँ काम्य धर्म के अधिकारी का स्वर्ग प्रयोजन है, स्वर्ग रूप इष्ट का साधन यागादि सम्पादन की सामर्थ्य तथा याग रूप धर्म का साङ्गोपाङ्ग विद्वत्ता श्रूयमान है। इसी प्रकार वेदान्त दर्शनेतर सांख्य योग आदि शास्त्रों के अधिकारी प्रयोजन आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। भाव है—जो वेदान्त से इतर सांख्य आदि शास्त्रों के अधिकारियों में जिस प्रकार के सामर्थ्य, विद्वत्ता आदि निरूपित हैं—वेदान्त दर्शन में इन सबसे भिन्न सामर्थ्य आदि हैं अर्थात् अन्य शास्त्रों की अपेक्षा इस शास्त्र के फल तथा साधन विलक्षण हैं—इसी बात को दिखाते हुए—इस शास्त्र (वेदान्त) के अधिकारी का वैलक्षण्य श्रुति प्रमाण द्वारा ही प्रकट करते हैं—''**आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः**'' इस श्रुति द्वारा वेदान्त शास्त्र के साधन—श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा उसका फल 'परमं साम्यमुपैति' 'तन्महिमानमेति' 'ब्रह्मणः सायुज्यमाप्नोति'

सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः' इत्यादिभिस्तस्य साधनानां ''परमं साम्यमुपैति तन्महिमानमिति ब्रह्मणः सायुज्यमाप्नोति जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेती'' त्यादिभिः फलस्य च वैलक्षण्यश्रवणात्॥ ४॥

वेदान्ताधिकारिषु सन्ति सामर्थ्यादीनि विभिन्नानीति। इतरशास्त्रापेक्षयाऽस्य शास्त्रस्य फलसाधनानि विजातीयानि-इति दर्शयन्नधिकारिवैजात्यं श्रुतिमुखेनाविष्करोति-**आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य इति। तस्य**—वेदान्तशास्त्रस्य। **साधनानां**—श्रवणमनननिदिध्यासनानां। श्रुत्या स्वोक्तमर्थं प्रमाणयति **परममिति॥ ४॥**

'जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति' अर्थात् साधन सम्पन्न जन ब्रह्म का परम साम्य प्राप्त करता है, उसकी महिमा को प्राप्त करता है, ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करता है, प्रेमपूर्वक उसकी सेवा करने से अमृतत्व को प्राप्त करता है—इत्यादि श्रुतियों द्वारा वेदान्त शास्त्र का फल भी विलक्षण बताया गया है॥ ४॥

को वाऽत्राधिकारीत्यपेक्षायाम् "मुमुक्षुर्भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्" इति श्रुतिर्मुमुक्षावतामेवाऽस्य शास्त्रस्याधिकारितां बोधयति। तथा च भगवद्भावापत्तिलक्षणमोक्षेच्छावत्त्वमेवास्यार्थित्वम् तद्वत्त्वेऽपि तत्प्राप्तिसाधनसम्पादनशक्त्यभावेऽर्थित्वस्याकिञ्चित्करत्वात्सामर्थ्यवत्वेन भाव्यमिति। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषां तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषा" मित्यन्वयव्यतिरेकश्रुतिभ्यः सामर्थ्यविद्वत्त्वयोः श्रवणादधिकारित्वसिद्धिः। तथाच भगवद्भावापत्ति-

वज्रोत्तेजिका— मुमुक्षुः—मोक्षविषयकेच्छावान्। मुमुक्षाशब्दार्थं निरूपयन् तदितरशास्त्रेभ्योऽस्य शास्त्रस्यार्थिनो वैलक्षण्यमाह–**तथाचेत्यादिना। तद्वत्वेपीति**–निरुक्तार्थित्त्ववत्त्वेपीत्यर्थः। सामर्थ्यं विनाऽर्थित्वमकिञ्चित्करमित्याह **तत्प्राप्तीति**—भगवद्भावापत्तिरूपमोक्षप्राप्ति-साधनसामर्थ्याभाव इत्यर्थः **अथेति** प्रकृतविषयान्तरपरिग्रहोऽथशब्दार्थः। **धीराः**—धीमन्तः। प्रत्यगात्मन्येव ध्रुवममृतत्वं विदित्वेह–संसारमण्डले–अध्रुवेषु—अनित्येषु पदार्थेषु कमपि न प्रार्थयन्ते। प्रत्यक्तत्वज्ञस्य सर्वं जिहासितव्यमितिभावः। परमात्मनः सर्वजीवगताहन्तास्पदत्वेन मुख्याहमर्थत्वात्प्रत्यक्त्वमस्तीति श्रुत्यर्थः। अत्र धीरा इत्यनेन

हिन्दी अनुवाद— इस शास्त्र का कौन अधिकारी है, इस अपेक्षा में कहते हैं—'मुमुक्षुर्भूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्येत्' मुमुक्षु होकर आत्मा में ही आत्मा को देखें। यह श्रुति मुमुक्षा से युक्त जनों को ही इस शास्त्र में अधिकारी बताती है। इस प्रकार भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष की इच्छा से युक्तत्व ही इस शास्त्र के अधिकारी की योग्यता है, परन्तु उक्त अर्थित्व होने पर भी भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष प्राप्ति के साधन की सामर्थ्य न होने पर केवल अर्थित्व के अकिञ्चित्कर होने से सामर्थ्य भी आवश्यक है।

'अथ धीराः'—वहाँ प्रकृत विशेष से भिन्न का परिग्रह अथ शब्द का अर्थ है। धीराः—धीमान् जन प्रत्यगात्मा में ही अमृतत्व जानकर इस संसार मण्डल में संसार के किसी अध्रुव—अनित्य पदार्थ की कामना नहीं करते। अर्थात् प्रत्यक् तत्त्व तत्त्वज्ञ को सब कुछ त्याग देना चाहिये। सर्व जीवगत अहन्तास्पद होने के कारण उसके मुख्य अहमर्थत्व होने से प्रत्यक् तत्त्व है, यह श्रुत्यर्थ है। यहाँ धीराः—इस कथन से ब्रह्मचर्यादि सहित श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि साधन सम्पन्न होने से सामर्थ्य एवं नित्य ज्ञानवान् होने से विद्वत्त्व द्योतित होता है। जो धीर प्रत्यक्ष आत्मस्थ पुरुष का दर्शन करते हैं, उन्हीं को सुख प्राप्त होता है, अन्य को नहीं। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेकि श्रुतियों से सामर्थ्य एवं विद्वत्त्व के श्रवण होने से अधिकारी की सिद्धि होती है। इस

लक्षणमोक्षकामो दर्शनश्रवणादीष्टसाधनसम्पादनसमर्थोऽभीष्टफलसाधनविषयकविद्वत्त्वाश्रयो वेदान्तशास्त्रस्याधिकारी तथाभूताधिकारसिद्धये श्रद्धोपसत्तिपूर्विका गुरूपसत्तिः वस्तुयाथात्म्यविवेको विरागो भगवत्प्रपत्तिस्तदनुग्रहप्रार्थनादीनि साधनानीति विवेकः ॥ ५ ॥

ब्रह्मचर्यादिश्रवणमननादिसाधनसम्पन्नत्वेन सामर्थ्यं निरुक्तज्ञानवत्त्वेन च विद्वत्त्वञ्च द्योतितम्। "एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं बीजं बहुधा यः करोतीति तमात्मस्थ" मिति **श्रुतेः पूर्वार्धभागः। अयमर्थः**—एकः साम्याधिकरहितः वशी—वश-इच्छा सोऽस्यास्तीति जगद्वशे वर्तते इत्युक्तरीत्या वशवर्तिप्रपञ्चकः। यद्वा "इमौ स्म मुनिशार्दूल किङ्करौ समुपस्थितौ" इत्युक्तरीत्या भक्तवश्य इत्यर्थः। "एकं बीजं तमः परे देवे मनस्येकीभवती" ति श्रुत्युक्तरीत्या स्वेनैकीभूताविभागावस्थं तमोलक्षणं बीजं महदादिबहुविधप्रपञ्चरूपेण यः करोति तं-य आत्मनि तिष्ठन्नित्युक्तरीत्या स्वान्तर्यामिणं ये पश्यन्ति तेषामेवमुक्तिरिति फलितार्थमाह-**तथाचेत्यादिना।** उक्तलक्षणसम्पन्नमधिकारि-स्वरूपं निरुच्य तथाविधाधिकारिसिद्ध्यर्थं तत्साधनानि विवेचयति-**तथाभूतेति।** अष्टविधमैथुनवर्जनरूपब्रह्मचर्येणास्तिक्यबुद्धिलक्षणया श्रद्धया युक्तेनाधिकारिणा भवितव्यमित्याह **श्रद्धेति** भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धयेति श्रुतिरनुसन्धेया। **गुरूपसत्तिः**—गुरुसमीपे गमनम्। **वस्त्विति** वस्तुनो यथार्थज्ञानमित्यर्थः। ब्रह्मैवामृतं ततोऽन्यदनित्यम्। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। अनित्यमसुखं लोकमिति। भजस्व मामिति श्रीमुखवचनमनुसन्धेयम्। विरागः। प्राकृतपदार्थेष्वासक्त्यभावः। **भगवत्प्रपत्तिरिति** वात्सल्यादिगुणरत्नाकरः सर्वशरण्यः सर्वाश्रयः प्रपन्नानस्मान् रक्षिष्यत्येवेतिनिश्चयो विश्वासः प्रपत्तिरित्यर्थः। रक्षिष्यत्यनुकूलान्न इति या सुदृढा मतिः। स विश्वासो भवेच्छक्र सर्वदुष्कृतनाशनः। योगक्षेमं वहाम्यहम्। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति भगवद्वचनादिति। तदनुग्रहः भगवदनुग्रहः ।।५।।

प्रकार भगवद्भावापत्ति मोक्षकामी दर्शन श्रवण आदि इष्ट साधन समर्थ अभीष्ट फल साधन विषय विद्वत्ता का आश्रय व्यक्ति वेदान्त शास्त्र का अधिकारी है। उक्त प्रकारक अधिकार सिद्धि के लिये, गुरु वेदान्त वाक्य में श्रद्धा, विधिपूर्वक श्रीगुरु चरण शरणागति, सदसद्विवेक, वैराग्य, भगवत्-शरणागति तथा भगवदनुग्रह प्राप्त्यर्थ प्रार्थना आदि साधन आवश्यक हैं।।५।।



निखिलशास्त्र पारावारीण स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त समर्थन कुशल
श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा-भूषण अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रन्थ-रचनाकार

पंडित श्रीमाधव मुकुन्द देव जी महाराज

श्रद्धान्वितो भव आचार्यदेवो भव स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ यो वै भूमा तदमृतं तदन्यदार्तम्। नास्त्यकृतः कृतेन प्लवाह्येतेऽदृढायज्ञरूपाः। यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्। मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर। संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो। केशव! क्लेशहरण! नारायण! जनार्दन! गोविन्द! परमानन्द! मांसमुद्धर माधव! इत्यादिश्रुतिभ्यः॥ ६॥

वज्रोत्तेजिका—उक्तार्थं श्रुतिप्रमाणेन दृढयति **श्रद्धेति**—एतेन श्रद्धोपसत्तिरुप-दर्शिता। गुरूपसत्तिमाह **सगुरुमेवेति**—यो निर्वेदमायात् स तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभि-गच्छेत्। एवकारेण नियम-विधित्वमवगम्यते। समित्पाणिः। न रिक्तपाणिः। रिक्तपाणिस्तु नोपेयाद्राजानं दैवतं गुरुमिति हि यत्स्मर्यते। **श्रोत्रियम्** श्रुतवेदान्तम्। **ब्रह्मनिष्ठम्**—ब्रह्मसाक्षात्कारवन्तम्। श्रुतवेदान्तोऽपि रुचिभेदाद् ब्रह्मनिष्ठो नोपगन्तव्य इति-भावः। अभिगच्छेदित्यन्वयः। वस्तुयाथात्म्यविवेकं श्रुतिमुखेन दृढयति **यो वा इति। भूमा**—परमात्मा। **तदमृतम्**—तदेवानन्याधीनममृतमुच्यते **ततोऽन्यदिति**—तद्भिन्नं सर्वमनित्यमित्यर्थः **॥ ६ ॥**

हिन्दी अनुवाद— उक्तार्थ में श्रुति प्रमाण है—श्रद्धान्वित हो, आचार्य देव हो, मुमुक्षु को गुरु की शरण में जाना चाहिये। गुरु श्रोत्रिय यानी वेदज्ञाता होना चाहिये। ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये। गुरु के समीप खाली हाथ न जाये और कुछ न हो तो उनके होमार्थ काष्ठ ही लेकर जाये। जिसके हृदय में ईश्वर एवं ईश्वर जैसा गुरुदेव भगवान् में पराभक्ति होती है, उसी के हृदय में वेदान्त विद्या का प्रकाश होता है। जो भूमा परमात्मा है, वह अमृत है, उससे भिन्न सब अनित्य है। कर्म से नित्य वस्तु मुक्ति या भगवत्तत्व की प्राप्ति नहीं होती। यज्ञस्वरूप ये नौकाएँ संसार सागर पार करने के लिये समर्थ नहीं है। जिस प्रकार इस लोक के कर्म द्वारा सम्पादित कृष्यादिलोक क्षय भाव को प्राप्त होता है, उसी प्रकार परलोक में पुण्य कर्म द्वारा सञ्चित स्वर्गादि फल नष्ट हो जाते हैं। मीमांसा एवं न्यायों द्वारा कर्म संचित लोकों की परीक्षा करके उससे निर्वेद (वैराग) को प्राप्त करें। मैं मुमुक्षु आपकी शरण ग्रहण करता हूँ उस परमात्मा को काम्य कर्म से रहित होकर जीव उनकी कृपा से उनकी महिमा को जानता है। वह परमात्मा जिसको अपनी अहैतुकी कृपा से स्वीयत्वेन वरण करता है, उसे ही परमात्मा प्राप्त होते हैं। परमात्मा प्रार्थना से ही प्राप्त होता है। प्रार्थना का स्वरूप है—हे श्रीकृष्ण, हे रुक्मिणीवल्लभ, हे गोपीजनवल्लभ, हे केशव, हे जगद्गुरो, हे नारायण, हे जनार्दन, हे गोविन्द, हे परमानन्द, हे माधव! मेरा उद्धार करें, इत्यादि श्रुति वचन है।।६।।

(१) विषयसम्बन्धगिरिनिपातः

वेदाध्ययनकर्मजिज्ञासानित्यनैमित्तिकादीनां विवेकादिसम्पत्त्यर्थत्वान्न स्वातन्त्र्येणाधिकारिसिद्धौ विनियोगः। "तमेतमात्मानं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेनतपसाऽनाशकेने" ति श्रुतेः। [ननु साम्प्रदायिकैरधीतषडङ्गवेदेनेत्यादिना वेदान्ताधिकारिणोऽन्यथैव प्रतिपादनात्

वज्रोत्तेजिका—नास्त्यकृत इति। **अकृतः**=नित्यः, **कृतेन**=अनित्येन कर्मणा। **प्लवाह्येत इति।** यज्ञरूपाः प्लवा नौका स्थानीया एत अदृढ़ाः, भवार्णवपारं तारयितुं नालं मध्ये भङ्गुरत्वादित्यर्थः। **कर्मणाचितः**—कर्मसम्पादितो लोकः क्षीयते-नश्यति। एवमेवामुत्र पुण्येन कर्मणा चितो नश्यतीत्यर्थः। **परीक्ष्य**-मीमांसान्यायैर्निरूप्य। **कर्मचितान्**-कर्मसंपादितान् लोकान्। प्रपत्तिमाह-**मुमुक्षुरिति। तमक्रतुरिति**-तं परमात्मानम्। अक्रतुः-काम्यकर्मादिरहितो **धातुः**-धारकस्य परमात्मनः **प्रसादात्**—अनुग्रहात्। आत्मनो महिमानं—महत्वसम्पादकं स्वसार्वज्ञ्यादि गुणाविर्भावहेतुभूतं परमात्मानं यदा पश्यति तदा वीतशोको भवतीत्यर्थः। तमक्रतुमितिपाठेऽक्रतुं-कर्मकृतोत्कर्षापकर्षरहितमित्यर्थः। धातुःप्रसादशब्दितभगवदनुग्रहशून्यस्य परमात्मतत्वमत्यन्तालौकिकत्वाद्दुरधिगममिति भावः। **यमेवैष इति।** एष-आत्मा

हिन्दी अनुवाद—वेदाध्ययन, नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान विवेक वैराग्य आदि के उत्पादन में उपयोगी है, इनका स्वतन्त्र रूप से अधिकारी सिद्धि में उपयोग नहीं है। कारण श्रुति स्पष्ट कहती है—उस परमात्मा को ब्राह्मण यज्ञ, दान, तप आदि के द्वारा जानने की इच्छा करे। यहाँ उक्त अधिकारी स्वरूप का वर्णन सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य किंवा आद्याचार्य द्वारा वर्णित अधिकारी स्वरूप लक्षण के विपरीत यह लक्षण प्रतीत होता है, ऐसी आशंका करते हुए कहते हैं—'ननु साम्प्रदायिकैरधीत........' इत्यादि। यदि कहें कि आद्याचार्य ने अपने वेदान्त पारिजात सौरभ वृत्ति में तो 'अधीतषडङ्ग वेद.........' इत्यादि वाक्यों द्वारा वेदान्त विद्या के अधिकारी का स्वरूप उक्त अधिकारी स्वरूप से भिन्न ही प्रतिपादित किया है, फिर यह लक्षण कैसे माना जाय, ऐसा मानने पर तो आद्याचार्य से विरोध होता है, स्वेच्छाचारिता की भी आपत्ति होती है, इस तरह तो अपसिद्धान्त का प्रसङ्ग होगा तो उसका उत्तर देते हैं—'सम्प्रदायोक्त विशेषण कदम्बस्य.......' अर्थात् सम्प्रदाय में उक्त विशेषण समूह विवेक वैराग्य आदि सिद्ध्यर्थ ही है, कर्म-जिज्ञासा आदि के बिना भी उसके परिणाम स्वरूप विवेक वैराग्य आदि

कथमुक्तलक्षणाधिकारिसिद्धिस्तथात्वे चाचार्योक्तिविरोधेन कामचारा-पत्त्याऽपसिद्धान्तप्रसङ्गादिति चेन्न, सम्प्रदायोक्तविशेषणकदम्बस्य विवेकादिसिद्ध्यर्थकत्वमेव, कर्मजिज्ञासादिकं विनाऽपि तत्फलभूतेषु विवेकविरागादिषु सत्सु कर्मज्ञानाद्यपेक्षाभावस्यैव विवक्षितत्वात्।

यं—साधकं प्रार्थयते तेन लभ्यः—प्रार्थनीयपुंसा लभ्य इत्यर्थः। तत्प्रार्थनीयत्वञ्च तत्प्रियतमस्यैव पुंसः। प्रियतमत्वञ्च—तत्प्रीतिमतएव। भगवद्विषयिण्युपासकस्य प्रीतिर्भगवत उपासके प्रीतिमुत्पाद्य तत्प्राप्तिहेतुर्भवतीति भावः। प्रार्थनास्वरूपं दर्शयति —**श्रीकृष्ण इति।** ननु वेदाध्ययनधर्मस्वरूपतज्ज्ञाननित्यकाम्यकर्मादीनामधिकारिसिद्धौ विनियोगश्रवणात् तच्चेहानुक्तेर्न्यूनत्वं स्यादित्य आह **वेदाध्ययनेति।** वेदाध्ययनादिना वस्तुयाथात्म्यविवेकादिरुत्पद्यते, नतु तेषां स्वातन्त्र्येणाधिकारिसिद्धौ विनियोग इत्यर्थः। उक्तार्थं श्रुत्या प्रमाणीकरोति—**तमेतमिति।** उक्तश्रुत्या यज्ञदानादिकरणकत्वं वस्तुयाथात्म्यज्ञानात्मकवेदनज्ञान एव बोध्यत इत्यर्थः। निरुक्ताधिकारिनिरूपणं साम्प्रदायिकाचार्य्यकथिताधिकारिनिरूपणाद्विरुद्धत्वं प्रतीयत इत्याशङ्कते-**नन्वित्यादिना।** तथात्वं इति निरुक्ताधिकारित्वस्वीकार इत्यर्थः। आचार्य्योक्तविशेषणानां विवेकादि सिद्धावेवोपयोगः, नतु स्वातन्त्र्येणाधिकारिसिद्धौ। सन्ति च यस्य पुंसः कर्मजिज्ञासा

होने से वहाँ भी कर्म-ज्ञान आदि की अपेक्षा का अभांव ही विवक्षित है, अतः आचार्योक्ति विरोध का अभाव होने से उक्त विरोध का अभाव है इसका तात्पर्य है कि सम्प्रदायाचार्य ने अधिकारी के अन्यान्य भी विशेषण दिये हैं, यह सत्य है, फिर भी कर्मों तथा उनके ज्ञान आदि को परम्परया ही साधन माना है। इस प्रकार यहाँ भी कर्म एवं ज्ञान को विवेक ज्ञान का कारण ही माना है, न कि कर्म विवेक आदि का समुच्चय जैसा कि भगवत्पाद आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् ने जिज्ञासाधिकरण—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र की व्याख्या में कहा—"अत एव जिज्ञासित कर्म" इत्यादि ग्रन्थ से, अतएव अर्थात् कर्म विवेक आदि का समुच्चय न होने से ही। "जिज्ञासित कर्मेति"—जिज्ञासा विषयीभूत जो कर्म उसके स्वरूप निर्णायक शास्त्र द्वारा प्राप्त विवेक, उसकी विधियों के लक्षण, स्वरूप, तत्सहकारी प्रमाणों के तत्त्व ज्ञान से निश्चित कर्म, उसका अनुष्ठान प्रकार हस्त लिप्यादि, उसका फल स्वर्गादि, तद्विषयक ज्ञान से युक्त पुरुष द्वारा कर्मज्ञान ब्रह्मज्ञान में क्रमशः सान्तत्व अनन्तत्त्व सातिशयत्व, निरतिशयत्व बोध होने पर कर्मफल में वैराग्य होता है। यह कहकर अधिकारी में

अत आचार्य्योक्तिविरोधाभावान्नोक्तविरोधाभावः। एतदुक्तं भवति साम्प्रदायिकचरणैरधिकारिविशेषणान्यन्यान्यपि प्रतिपादितानीति सत्यम्। तथापि कर्मणां तज्ज्ञानादेश्च परम्परयैव साधनत्वव्यपदेशात्। एवञ्चात्रापि कर्मतज्ज्ञानादेश्च विवेकज्ञानकारणत्वमेव निरूपितं, न तु कर्मविवेकादीनां

फलभूता विवेकविरागादयः स च कर्मजिज्ञासादीननपेक्ष्यैवाध्यात्मजिज्ञासायां प्रवर्तयितुं शक्नोत्येवेत्याशयेन समाधत्ते-**सांप्रदायिकेति। एतदुक्तं भवतीति**—यदुक्तं तदेतद्भवतीत्यर्थः। कर्मविधिस्वरूपे विचार्य्यमाणे तत्र कर्मणां स्वर्गादिफलकत्वं क्षयित्वञ्च ब्रह्मज्ञानस्य चाक्षयफलत्वं निर्णीय निर्वेदं मुमुक्षुताञ्च प्राप्य तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छति, ततो मुमुक्षुर्ब्रह्मजिज्ञासायां प्रवर्तत इति परम्परया मुमुक्षासिद्धावेव कर्मविचारस्योपयोगितेति परम्परयैव तेषां साधनत्वमभ्युपेयत इति न तेषां स्वातन्त्र्येणाधिकारिसिद्धौ विनियोग इत्यभिप्रेत्य समाधत्ते **तथापीति**। प्रकृते योजयति-**एवञ्चेति**। कर्मणस्तज्ज्ञानादीनां च परम्परया साधनत्वे सिद्धे चेत्यर्थः। कर्म विवेकादीनां समुच्चयो नास्तीत्यत्र भगवत्पादानामाचार्याणां सम्मतिप्रदानेनोक्तार्थं स्पष्टयति-**तथा चोक्तमिति। अतएवेति**-कर्म विवेकादीनां समुच्चयाभावादेवेत्यर्थः। **जिज्ञासितकर्मेति**=जिज्ञासाकर्मीभूतं यत्कर्म तस्य मीमांसाधर्मकर्मादिस्वरूपनिर्णायकं शास्त्रं तेन निष्पन्नो यो विवेकस्तद्विधीनां लक्षणस्वरूपतत्सहकारिप्रमाणानां तत्वज्ञानं तेन निश्चितं यत् कर्म अङ्गं तत्प्रकारः

विवेक वैराग्य विशेषण होने से यहाँ आद्याचार्य की उक्ति को ही स्वीकार किया गया। उनके विरुद्ध कुछ नहीं कहा गया है। इसी प्रकार समन्वयाधिकरण में आचार्यपाद ने कहा है—''क्रत्वङ्ग ब्रह्म'' अर्थात् ब्रह्म क्रतु के अङ्ग हैं—यह मीमांसा शास्त्र का कथन बालभाषित है। ब्रह्म समस्त कर्मों, कर्ता आदि कारकों के नियन्ता होने से स्वतन्त्र हैं और वही कर्म फलदाता है, बल्कि कर्म को ही ब्रह्म विविदिषा उत्पादन में कारण होने से उसके परम्परया ब्रह्म प्राप्ति के साधन ज्ञान की उत्पत्ति के उपकारक होने से समन्वय है ऐसा निश्चय किया जाता है—विविदिषा श्रुति के द्वारा। इस कथन के द्वारा ही विवरणकार से विरोध की आशङ्का का भी परिहार हो जाता है, कारण वहाँ भी ऐसा ही प्रतिपादन किया गया है। जैसा कि वहाँ के वाक्य हैं—'विधिप्राप्तोपनयनादि संस्कृताधीत.........' इत्यादि अर्थात् वैदिक विधि के अनुसार उपनयन संस्कार के पश्चात् षडङ्ग सहित चारों वेदों के अध्ययन अनन्तर पहले

समुच्चयस्तथा चोक्तम् श्रीभगवच्चरणैराद्याचार्य्यैर्जिज्ञासाधिकरणेअतएव जिज्ञासितकर्म मीमांसाविवेकनिश्चितकर्मतत्प्रकारतत्फलविषयकज्ञानवता कर्मब्रह्मज्ञानफलसान्तत्वानन्तत्वसातिशयत्वनिरतिशयत्वविषयक-व्यवसायजातनिर्वेदेनेत्यधिकारिविशेषणाभ्यां तदुक्तेरेवात्र नियामकत्वात्। तथैव समन्वयाधिकरणेऽपि क्रत्वङ्गं ब्रह्मेत्यपि बालभाषितम् तस्य

कर्मणामनुष्ठानप्रकारो हस्तक्रियादि "तत्फलं" तस्य कर्मणो यत्फलं स्वर्गादिकं तद्विषयकं यज्ज्ञानं तद्वतेत्यर्थः। **कर्मब्रह्मज्ञान-फलमिति**—कर्म च ब्रह्मज्ञानं चेति कर्मब्रह्मज्ञाने तयोः फलमित्यर्थः। सान्तत्वञ्चानन्तत्वञ्च सातिशयत्वञ्च निरतिशयत्वञ्चेति विग्रहः। एतद्विषयको यो व्यवसायो निश्चयस्तेन जातो निर्वेदो यस्य स तेन। कर्मफलानांसान्तत्वं नाम ध्वंसप्रतियोगित्वमनित्यफलकत्वमितियावत् "**तद्यथेह, कर्मचितः**" "**प्लवाह्येते**" "**अन्तवदेवास्य तद्भवति**" "**अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसा**" मित्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः। कर्मफलस्य सातिशयत्वं च ज्ञानफलादत्यन्तन्यूनत्वम्, वेदाध्ययनकर्मजिज्ञासातत्प्रकारकज्ञानादीनां कर्मणामल्पास्थिरफलकत्वस्य ब्रह्मज्ञानस्यानन्तनिरतिशयफलकत्वस्य च निश्चायकत्वेन निर्वेद एवोपयोगितेति भावः। तदुक्तेः-आद्याचार्य्योक्तेरित्यर्थः। **अत्र नियामकत्वादिति**-अत्र-कर्मतज्ज्ञानादेर्विवेकवैराग्यादिषु परम्परया साधनत्व इत्यर्थः। उक्तार्थं दृढयितुं समन्वयाधिकरणोक्तार्थप्रदर्शनेन स्पष्टयति-**तथैवेति।** भगवत्पादाद्याचार्य्योक्त्या समं स्वोक्तार्थविरोधं परिहृत्य स्वोक्तार्थे

धर्म जिज्ञासा होती है—जिससे कर्मफल विषयक संदेह दूर हो जाता है और यह निश्चय होता है कि कर्म का फल सातिशय एवं सान्त है तथा ब्रह्मज्ञान का फल निरतिशय एवं अनन्त होता है। इस प्रकार कर्मफल के सान्तत्व निश्चय होने एवं ब्रह्मज्ञान के फल में अनन्त निश्चय होने से भगवद् दर्शन की उत्कट इच्छा होती है—भगवत् प्राप्ति की लालसा उदित होती है, भगवत् प्राप्ति बिना गुरु कृपा के सम्पन्न नहीं है अतः गुरु शरणागति ग्रहण किया जाता है। इस गुरु-भक्ति सम्भव भगवद्भावापत्तिरूप मोक्षेच्छा सम्पन्न मुमुक्षु ही इस शास्त्र का अधिकारी होता है। ऐसा आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र ने कहा है। एतावता सिद्ध होता है कि आदि आचार्य के अधिकारी लक्षण से इस लक्षण में कोई विरोध नहीं है, आद्याचार्य ने भी भगवद्भावापत्ति को ही मोक्ष माना है और तादृश मोक्षकामी ही वेदान्त का अधिकारी है। एतादृश अधिकारी अध्यात्म जिज्ञासा में प्रवृत्त होता है। तत्पश्चात् भगवत् साक्षात्कार का अनुभव होने पर तद्भावापन्न होता है—अर्थात् भगवान् कृ

सर्वकर्मकर्त्रादिकारकनियन्तृत्वेन स्वातन्त्र्यात् फलप्रदातृत्वाच्च। प्रत्युत कर्मण एव विविदिषोत्पादनेन परम्परया तत्प्राप्तिसाधनीभूतज्ञानोत्पत्त्युपकारकत्वेन समन्वय इति निश्चीयते विविदिषाश्रुतेरित्यादिना। एतेन विवरणविरोधशङ्कापि निरस्ता। तत्रापि तथैवप्रतिपादनात्। विधिप्राप्तोपनयनादिसंस्कृताधीतषडङ्गश्रुतिजिज्ञासितधर्ममीमांसानिरस्तकर्मफलादिविषयकसन्देहकतत्फलनिर्विण्णभगवद्दिदृक्षालम्पटगुरुभक्तिसम्पन्नमुमुक्ष्वधिकारिकत्वेनेत्यादिना॥ ७॥

विवरणकारविरोधमपि परिहरति-**एतेनेति। विधिप्राप्तेति।** विधिना प्राप्त उपनयनादिसंस्कारस्तेन संस्कृत:, अतएवाधीत: षडङ्गो वेदो येन स तथा। तत एव जिज्ञासितधर्म मीमांसया निरस्त: कर्मफलादिविषयकसन्देहो यस्य स तथोक्त:। तत्फलनिर्विण्ण इति। कर्मफलस्य क्षयिष्णुत्वान्निर्वेदं प्राप्त इत्यर्थ:। "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिन: सुकृतं भवति" "अपाम सोमममृता अभूम" "तद्यथेह कर्मचित" इत्यादीनि परस्परविरुद्धप्रकारकाणि वचनानि दृष्ट्वा जातसंशयस्तन्निवृत्यर्थं धर्मजिज्ञासायां प्रवर्त्तते तेन कर्मस्वरूपविशेषा अङ्गिन:। प्रकारविशेषा अङ्गानि। पूर्वपक्षोक्तस्वरूपप्रकारत: सिद्धान्तितस्वरूपप्रकारयोर्वैषम्यमिति निर्णीयते। तत: कर्मफलस्यानित्यत्वं ब्रह्मज्ञानफलस्य नित्यत्वं निश्चित्य जातनिर्वेदो गुरूपसत्त्यादिसाधनसम्पन्नो मुमुक्षुरधिकारी अध्यात्मजिज्ञासायां प्रवर्त्तते।।७।।

सदृश ही रूप सौन्दर्य आदि विग्रहगुण एवं सार्वज्ञ्य आदि अनन्त आत्मगुण प्राप्त कर भगवान् के साथ अनन्तकाल तक भगवत् सुख का अनुभव करता है। जगत् सृष्टि कर्तृत्व तथा लक्ष्मी भोक्तृत्व को छोड़कर सर्वसुख सर्व सामर्थ्य प्राप्त करता है—यही भगवद्भावापत्ति मोक्ष कहलाता है और एतादृश मोक्षेच्छु आत्मा ही श्रीनिम्बार्कमत में अधिकारी माना गया है।।७।।

साधनप्रक्रियायाञ्च मुमुक्षायां सत्यां तत्साधने यतते ततः कर्मज्ञानादिसाधनेनाप्याराधितः श्रीपुरुषोत्तमः प्रसीदति परभक्तिज्ञानयोरेकतरं व्याजीकृत्यात्मानं दर्शयति तस्मै मुमुक्षवे ततः श्रीभगवत्साक्षात्कारानुभवेन तद्भावापन्नो भवतीत्यादिना, एवञ्च न कोऽपि कथमपि केनाप्यंशेन विरोधावकाश इति भावः। किञ्च यस्य विवेकविरागादयो न सन्ति तस्य तदर्थं धर्म्मजिज्ञासाद्यपेक्षा, तदभावे धर्म्माधर्म्मानुष्ठानादिकं विना बुद्धिशुद्ध्यभावेन विवेकादीनां दुर्घटत्वात्। यस्य तु विवेकादयो जातास्तस्य न तेषामपेक्षा, फलप्राप्तौ सत्यां साधनानामप्रयोजकत्वात्, तत्र प्रवृत्त्यनुपपत्तेश्च। तथाभूताधिकारिणा मुमुक्षुणा जन्मान्तरेषु धर्म्माचरितत्वेन तस्य संस्कारात्मना

वज्रोत्तेजिका—अन्यथेति—तथाभूतमुमुक्षुणा जन्मान्तरेषु धर्म्मार्जितत्वाभाव इत्यर्थः। ततो भगवत्साक्षात्कारानुभवे तद्भावापन्नो भवतीत्यर्थः। उक्तार्थं युक्त्यापि व्यवस्थापयति **किञ्चेति। तदर्थमिति**—विवेकविरागार्थमित्यर्थः। **तदभावेति**—धर्म्मजिज्ञासाया अभाव इत्यर्थः। **तेषामिति**—धर्म्मजिज्ञासाकर्म्मस्वरूपविचारधर्म्मानुष्ठानादीनामित्यर्थः। **तत्रेति**—साधन इत्यर्थः। **तथाभूतेति**—वैराग्यविवेकादिसम्पत्तिसमन्वितेनेत्यर्थः। **तस्य**—धर्म्मस्य। **तन्निरिति**—पूर्वमीमांसाविहितधर्मानुष्ठाननिरपेक्षत्वादित्यर्थः। अयमधिकारी जन्मान्तरानुष्ठितधर्म्मकः, ज्ञानवैराग्यविवेकादिसम्पत्तिमत्वात्, अद्वैतमते जनकादिवदिति प्रयोगो निष्पद्यत इति। ''अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत।

हिन्दी अनुवाद—'साधन प्रक्रियायाञ्च' अर्थात् साधन प्रक्रिया में मुमुक्षा होने पर जीव उसकी साधना में प्रवृत्त होता है। पश्चात् कर्म, ज्ञानादि साधन से भी आराधित प्रभु श्रीपुरुषोत्तम प्रसन्न होते हैं। परन्तु पराभक्ति तथा ज्ञान में अन्यतर साधन को व्याज बनाकर अपने स्वरूप का दर्शन कराते हैं। तब श्रीभगवत् साक्षात्कार के अपरोक्ष अनुभव से तद्भावापन्न होते हैं। इस प्रकार किसी प्रकार किसी भी अंश में विरोध वा अवकाश नहीं है। दूसरी बात जिसके हृदय में विवेक, वैराग्य आदि नहीं हैं, उसके लिये तन्निमित्त धर्म जिज्ञासा आदि की अपेक्षा होती है। क्योंकि धर्म जिज्ञासा के अभाव में धर्म-अधर्म के अनुष्ठान के बिना बुद्धि शुद्धि न होने से विवेक, वैराग्य आदि असंभव है। परन्तु जिसके हृदय में विवेक, वैराग्य आदि उत्पन्न हो चुके हैं, उसके लिये धर्म जिज्ञासा, कर्मस्वरूप विचार तथा धर्मानुष्ठान आदि की अपेक्षा नहीं होती। कारण फल प्राप्ति हो जाने पर साधनों की आवश्यकता नहीं होती और उसमें प्रवृत्ति की उत्पत्ति ही नहीं होती। इस प्रकार विवेक, वैराग्य आदि सम्पत्ति सम्पन्न अधिकारी

सत्त्वेनेदानीं तन्निरपेक्षत्वात्। अन्यथा विवेकादयो न स्युरित्यनुमीयते, कारणाभावे कार्य्याभावनियमात्। परमते जनकादिसंन्यासवदिति सम्प्रदायाशयः। उपनयनस्वाध्यायादेरपि सामान्यधर्म्मत्वेनाश्रमादिसम्पादनेनैव नैराकाङ्क्ष्यान्नाधिकारिविशेषसम्पादने तस्य स्वातन्त्र्यं, साक्षादनन्वयात्। तस्मात्पूर्वसम्प्रदायिसिद्धान्ताविरोधादुक्त-लक्षण एव वेदान्तशास्त्रस्याधिकारीति सिद्धान्तः। यदि

तमध्यापयेच्छ्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा उपाकृत्य यथाविधि। युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान्। स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'' इत्यदिवचनबोधितावुपनयनस्वाध्यायावपि न स्वातन्त्र्येण निरुक्तवेदान्तशास्त्राधिकारि-विशेषप्रतिपत्तावुपयुक्तौ भवतः, तयोः सामान्यधर्म्मत्वेनाश्रमादिसम्पादनेनैव गतार्थत्वादित्याह—**उपनयनेति**। तत्र हेतुमाह—**साक्षादिति**। उपसंहरति **तस्मादिति**। यद्येवमुच्यते तदा गीर्वाणानामपि वेदान्तशास्त्राधिकारित्वं प्रसज्येत, मोक्षविषयकाभिलाषस्य तेषामपि सत्वात्। इत्याशङ्कते—**यदीति**। **तस्या इति** मुमुक्षाया

मुमुक्षुओं द्वारा जन्मान्तरों के धर्माचरण होने से संस्कार रूप में उसकी सत्ता होने के कारण इस जन्म के पूर्व मीमांसा में विहित कर्मानुष्ठान की अपेक्षा नहीं होती। अन्यथा (पूर्व जन्म के धर्मानुष्ठान न मानने पर विवेक आदि नहीं हो सकते, ऐसा अनुमान किया जाता है। कारण, कारणाभाव में कार्याभाव का नियम है। अद्वैत मत में जनकादि के पूर्व जन्म के संन्यास धारण के अनुमान की तरह। इसी प्रकार 'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत' 'तमध्यापयेच्छ्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा उपाकृत्य यथाविधि। युक्ताश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।' 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इत्यादि वचनों द्वारा बोधित उपनयन तथा स्वाध्याय आदि भी स्वतन्त्र रूप से वेदान्त शास्त्र के अधिकार प्राप्ति में उपयोगी नहीं है, किन्तु ये दोनों सामान्य धर्म होने से आश्रम धर्म सम्पादन के मतार्थ होते हैं। इसलिये इनका वेदान्त शास्त्र के अधिकारी विशेष सम्पादन में कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार पूर्वाचार्य के सिद्धान्त से कोई विरोध न होने के कारण पूर्व प्रतिपादित अधिकारी ही वेदान्त शास्त्र का अधिकारी है—यह सिद्धान्त है। यदि कहें कि मुमुक्षा मात्र को वेदान्त का अधिकारी मानें तब तो देवताओं को भी वेदान्त में अधिकार हो जाएगा तो इसका उत्तर देते हैं—यह तो इष्ट ही है—

मुमुक्षामात्रस्यैवाधिकारित्वसम्पादकत्वं तर्हि देवादिष्वपि तस्याः सम्भवात्तेषामपि शास्त्राधिकारित्वप्रसङ्ग इति चेत्तथात्वस्येष्टत्वात्। ''यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणा'' मिति श्रुतेः ॥ ८ ॥

इत्यर्थः। **तेषाम्**—देवानामित्यर्थः। उक्तामाशङ्कामिष्टापत्या परिहरति—**तथात्वस्येति।** उक्तशास्त्राधिकारित्वस्येत्यर्थः। उक्तार्थं श्रुतिप्रमाणेन द्रढयति—**यो य इति।** देवानां तथर्षीणां मनुष्याणां च मध्ये यो यो हि प्रत्यबुद्धयत ब्रह्मसाक्षादकरोत्स एव ब्रह्मभावापन्नत्वेनातिष्ठदिति तदर्थः ।।८।।

अर्थात् देवताओं को वेदान्त में अधिकार है। जैसा कि श्रुति वचन है, ''यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्'' अर्थात् देवताओं एवं मनुष्यों में जिसने भी ब्रह्म साक्षात्कार किया वही ब्रह्मभावापन्न हो गया ।८।।

ननु पूर्व्वकाण्डेऽपि षष्ठेऽधिकारिमनुष्यस्यैव श्रौतस्मार्त्तकर्म्मस्वधिकारित्वनिर्णयात् ''स्वर्गकामो यजेते'' त्यत्र स्वर्गकामत्वश्रुतेः सामान्यात्तिर्य्यगादेरपि स्वर्गकामत्वे तत्राधिकारः सम्भवतीति प्राप्तेऽर्थित्वाद्यधिकारित्वहेतूनां तिर्य्यगादाव-सम्भवान्मनुष्यमात्रे स्वर्गकामपदस्य सङ्कोचं विधाय ''वसन्ते ब्राह्मणोऽ-ग्नीनादधीत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वैश्यः'' इति तेष्वपि त्रयाणा-

---

वज्रोत्तेजिका— मनुजानामेव श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाधिकारित्वं पूर्वमीमांसायां षष्ठाध्याये निर्णीतं, न तु देवानामित्याशङ्कते **नन्विति**। नहि स्वर्गकामत्वमात्रमधिकारित्वे तन्त्रम्। तथासति तिर्यगादीनामप्यधिकारितापत्तिः, किन्त्वर्थित्वसमर्थत्वविद्वत्वविशेषणविशिष्टस्य मानवस्यैवाधिकारित्वं ''**स्वर्गकामो यजेत**'' इति श्रुतावपि स्वर्गकामपदं मनुष्यपरतया संकोच्य पूर्वकाण्डे स्थापितमित्याह—**स्वर्गकाम इति**। पश्वादीनामधिकारशक्तत्व-विशेषणेन निराकृतेऽपि स्वर्गकामपदं मनुष्यपरतया संकोच्य मनुष्यस्याधिकारित्वे स्थापिते चातुर्वर्ण्यस्याधिकारित्वं प्राप्तमित्याशङ्कां परिहरन्नाह **वसन्तइति**। पूर्वकाण्डोक्तामधिकारिणो व्यवस्थां निर्णीयोत्तरकांडोक्तामपि तां प्रदर्शयन्नाह-**किञ्चेति**। **हृद्यपेक्षेति** अपरिच्छिन्नस्यापि तस्योपासनार्थमुपासकहृदिगतस्य तद्हृदयापेक्षयैवेदमङ्गुष्ठपरिमाणाभिधानम्। ननु प्राणिमात्रहृदयानां भेदादङ्गुष्ठमात्रत्वं

हिन्दी अनुवाद—'ननु पूर्वकाण्डे..........' इत्यादि। यदि कहें कि पूर्वकाण्ड मीमांसा शास्त्र में छठे अध्याय में श्रौत स्मार्त कर्मानुष्ठान का अधिकारी मनुष्यों को ही माना है, देवताओं को नहीं, यदि कहें कि ''स्वर्गकामो यजेत'' (स्वर्ग की कामना से यज्ञ करे) यहाँ तो केवल स्वर्गकामित्व मात्र ही अधिकारिता का प्रयोजक कहा गया है, तो कहते हैं कि नहीं—वहाँ स्वर्गकामित्व मात्र को ही अधिकारी नहीं माना गया है, क्योंकि तब तो तिर्यक् आदि (पक्षी आदि) में भी, अधिकारिता की आपत्ति हो जायेगी बल्कि अर्थित्व, समर्थत्व तथा विद्वत्त्व विशेषण विशिष्ट मनुष्य को ही अधिकारी माना है। 'स्वर्ग कामो यजेत' इस श्रुति में भी स्वर्ग कामपद को मनुष्यपरत्वेन संकुचित कर मनुष्य मात्र को अधिकारी स्थापित होने पर चातुर्वर्ण्य को अधिकारिता प्राप्त होने की आशंका का परिहार करने हेतु कहते हैं—'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ग्रीष्मे राजपद शरदि वैश्यः' अर्थात् वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय तथा शरद् ऋतु में वैश्य अग्नि का आधान करें इन वचनों से तीन वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा ही अग्न्याधान होने से मनुष्यों में भी तीन वर्णों का ही अधिकार स्थापित किया। तथा पूर्वकाण्डोक्त अधिकारी व्यवस्था का

मेवाग्न्याधानश्रवणात्तेषामेवाधिकार इति स्थापितम्। किञ्चोत्तर-काण्डेऽपि 'हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात्' (ब्र० सू० १।३।२५) इति सूत्रेण मनुष्यस्यैव शास्त्राधिकारित्वं निर्णीतं तथात्वे चोभयकाण्डविरोधात् कथं देवादीनामधिकार इति चेन्न, आपातोक्तेस्तथाहि न तावत्पूर्वकाण्डोक्तनिर्णयविरोधस्तस्याग्निसम्बन्धि कर्मविषयकत्वात्, अग्न्याधानश्रुतेरेवात्र नियामकत्वाच्च। नाप्युत्तरत्रोक्तसूत्रविरोधस्तस्य मनुष्याधिकारविधानमात्र एव प्रामाण्यात्

नोपपद्यत अतः समाधत्ते—**मनुष्याधिकारित्वादिति**। सामान्यतः प्रवृत्तमपि शास्त्रं मनुष्याणामेवोपासकत्वार्थित्वादिसम्भवात् तानेवाधिकरोतीति सूत्रार्थः। ततः किमित्यत आह **तथात्व इति**। मनुष्याधिकारित्व इत्यर्थः। **देवादीनामिति**। आदिपदेन पश्वादीनामृषीणांञ्च परिग्रहः। अनेन पश्वादीनां देवानामृषीणाञ्चाधिकारो निरस्तः, तत्र पश्वादीनां शास्त्रार्थज्ञानादिसामग्र्यभावात् कर्मण्यशक्तिः। इन्द्रादेः स्वोद्देश्य-देवताके कर्मणि स्वोद्देश्ये न द्रव्यत्यागायोगादशक्तिः ऋषीणामार्षेयप्रवणे ऋष्यन्तरा-भावादशक्तिरित्याशयः। परिहरति **नेति**। तत्र हेतुमाह—**आपातोक्तेरिति**। पूर्वकाण्डोक्तशङ्कां परिहरन्नुक्तहेतुमेव विवृणोति—**तथाहीत्यादिना**। **तस्येति**। पूर्वकाण्डस्येत्यर्थः। ननु पूर्वकाण्डस्याग्निसम्बन्धिकर्मविषयत्वे किं मानमित्यत आह—**अग्न्याधानश्रुतेरिति** ''वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत'' ''ग्रीष्मे राजन्यः'' ''शरदि वैश्य'' इति

निर्णय कर उत्तरकाण्ड (वेदान्त) को भी अधिकारी की व्यवस्था बताते हुए कहते हैं—उत्तर काण्ड के भी 'हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारित्वात्' (ब्र० सू० १।३।२५) इस सूत्र द्वारा मनुष्य को ही वेदान्त शास्त्र को अधिकारी निर्णय किया। ब्रह्म यद्यपि अपरिच्छिन्न है, फिर भी उपासना के लिये उपासक के हृदय में वर्तमान परमात्मा का मानव के हृदय की अपेक्षा से ही यहाँ यह अंगुष्ठ परिमाण का कथन है। यदि कहें कि प्राणीमात्र का हृदय भिन्न-भिन्न होने से अंगुष्ठाभिधान उपपन्न नहीं हो सकता, अतः इसके समाधान में कहते हैं—'मनुष्याधिकारित्वाद्' अर्थात् शास्त्र सामान्यरूप से प्रवृत्त होने पर भी उपासकत्व अर्थित्व आदि मनुष्य में ही संभव होने से—मनुष्य को ही अधिकार है। ऐसा इस सूत्र द्वारा निर्णय लिया गया है। इस प्रकार देवताओं को अधिकार के विषय में दोनों काण्ड 'पूर्व मीमांसा अर्थी, समर्थो, विद्वान्' यह मीमांसा शास्त्र की अधिकारी की परिभाषा है। उत्तर मीमांसा का विरोध होने से देवताओं आदि का ब्रह्मविद्या या वेदान्त में कैसे अधिकार हो सकता है। देवादीनां में आदि पद से पशु आदि एवं ऋषि आदि का परिग्रह है। इस प्रकार ब्रह्मविद्योक्त पशुओं आदि, देवताओं तथा ऋषियों के अधिकार का खण्डन

नेतरनिषेधेऽपीति। एतदुक्तं भवति देवादीनामनधिकारो निषेधाद्वा विधायकप्रमाणाभावाद्वा नाद्यः, निषेधादर्शनात्। न चासौ वा आदित्यो देवानां मध्विति मधुविद्यायामादित्यवस्वादीनां देवानामधिकारित्वनिषेधात्ब्रह्मविद्याया अपि विद्यात्वाविशेषेण तद्वदस्यामपि निषेधानुमानात् ''मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनि'' रिति सूत्रादिति वाच्यम्। तस्य मधुविद्यामात्रनिषेधेनैव

त्रयाणामेवाग्निसम्बन्धश्रवणात्तेषामेवाधिकार इति तत्र निर्णीतमित्यर्थः। हृद्यपेक्षयेति-सूत्रविरोधं परिहरति **नापीति।** तस्य सूत्रस्य। **नेतरनिषेधेति।** सूत्रस्यायोगव्यवच्छेदार्थकतया मनुष्यानधिकरोति, न त्वन्ययोगव्यवच्छेदार्थत्वम्। मनुष्यानेवेत्यर्थे नोक्तसूत्रस्य तात्पर्यम्। कथमन्यथा देवादीनां ब्रह्मविद्यायामधिकार इति बादरायण आचार्यो मन्यते। न च देवादीनामधिकारो न वक्तुं युक्तो देवतान्तराणामुद्देश्यानामभावात्, ऋषीणामपि ऋष्यन्तराभावान्नोपयुज्यते इति वाच्यम्। यतो ब्रह्मविद्यास्वधिक्रियमाणानामिन्द्रादिदेवानां महर्षीणाञ्चेन्द्राद्युद्देशेन किञ्चित्कृत्यं न ह्यालोचयामो, येन ब्रह्मविद्यासु तदनुष्ठानशक्तेरभावात्तत्राधिकारिता नोपपद्येत इत्याशयः। एतदुक्तंभवतीति यदुक्तं तदेतद्भवतीत्यर्थः। विकल्पयति। **देवानामिति।**

किया। इनमें पशुओं आदि का तो शास्त्रार्थ ज्ञान आदि सामग्री के अभाव के कारण कर्म में असमर्थ है, इन्द्र आदि देवता का स्वात्मक देवतोद्देश्यक कर्म में निज उद्देश्य द्रव्य त्याग योग न होने से अशक्ति है तथा ऋषियों के ऋषि उद्देश्यक कर्म में अन्य ऋषि के अभाव के कारण अशक्ति है। इस प्रकार देवताओं के अनधिकार का प्रसंग उपस्थित होने पर उसका खण्डन करते हुए कहते हैं—'आपातोक्तेः' अर्थात् पूर्व काण्ड में उक्त प्रमाण के आधार पर देवताओं का ब्रह्मविद्या के अनधिकार का समर्थन नहीं किया जा सकता—वहाँ का प्रसंग केवल अग्निसम्बन्धिकर्मविषयक है और इसमें अग्न्याधान श्रुति ही नियामक है और ना ही ''हृद्यपेक्षया मनुष्याधिकारित्वात्'' इस सूत्र से ही देवताओं के अधिकार का खण्डन किया जा सकता—कारण इस सूत्र का मनुष्याधिकार विधानमात्र में तात्पर्य है—इतर निषेध में नहीं।

इसका भाव यह है कि देवताओं का ब्रह्मविद्या में अनधिकार निषेध के कारण कहते हैं या विधायक प्रमाण के अभाव के कारण? पहला पक्ष नहीं कह सकते, क्योंकि निषेध कहीं नहीं देखा गया है। यदि कहें कि ''आदित्यो देवानां मधु'' इस मधुविद्या प्रकरण में आदित्य वसु आदि देवताओं के अधिकार का निषेध विद्यमान

नैराकाङ्क्ष्यात् नह्येकत्रानधिकारात्सर्वत्रानधिकारोऽनुमातुं, शक्यते व्यभिचारात्। तथाहि क्षत्रियवैश्ययोर्याजनाद्यनधिकाराद्यजनादावप्यनधिकारप्रसङ्ग इत्यर्थः। नापि द्वितीयः, तेषामधिकारविधायकप्रमाणस्य सद्भावात् "यो यो देवाना" मित्यादि श्रुतेरित्यभिप्रायवानाह सूत्रकृत् "तदुपर्य्यपि बादरायणः सम्भवात्" (ब्र० सू० १। ३। २६) इति। मनुष्याणामुपरि

आद्यविकल्पं दूषयति **नाद्य इति न चेति** परेणान्वयः। **असौ वा आदित्यइति।** देवानां मोदहेतुत्वान्मध्विव मधु भ्रामरमधुसारूप्यमाहास्य श्रुतिरित्यर्थः। मनुजा आदित्यं मधुतुल्यत्वेनोपासितुं प्रभवन्ति देवादीनामुपासकत्वेनाभ्युपगम्यमाने आदित्यः कथमादित्यमुपासीतेति मधुविद्यासु देवादीनामधिकाराभावस्तद्वद्-ब्रह्मविद्यायामपि। ब्रह्मविद्या देवादीन्नाधिकरोति विद्यात्वात् मधुविद्यावदिति प्रयोग इत्यर्थः॥ मध्वादिविद्यासु देवादीनामधिकाराभाव इति जैमिनिराचार्य्यो मन्यते कुतः "असम्भवात्" तास्वादित्यवस्वादीनामुपास्यत्वेन गृहीतानामुपासकत्वासम्भवादिति जैमिनिसूत्रार्थः। **तस्येति।** असौ आदित्यो देवानां मधु इति वचनस्येत्यर्थः निरुक्तानुमानं व्यभिचारेण निरस्यति तथाहीत्यादिना, विधायकप्रमाणाभावादिति द्वितीयविकल्पमपाकरोति नापि द्वितीय इति। तत्र श्रुतिं प्रमाणयति। यो यो देवानामिति। ब्रह्मविद्यायां देवानामधिकार इति सूत्रकारो मन्यते इत्याह। तदुपर्यपि बादरायणः **सम्भवादिति।** सूत्रार्थं विवृणोति **मनुष्याणामिति।** ननु भोगासक्तानां गीर्वाणानां मोक्षार्थित्वाभावान्नाधिकारितोपयुज्यत इत्यत आह-**तेष्विति।**

है। ब्रह्मविद्या भी तो विद्या ही है, फिर तो मधुविद्या की तरह ब्रह्मविद्या के भी निषेध का अनुमान होगा—(ब्रह्मविद्या देवान् नाधिकरोति विद्यात्वात् मधुविद्यावत्) क्योंकि 'मध्वादिष्वसंभवादनधिकारं जैमिनिः' ऐसा ब्रह्मसूत्र का वचन है (क्योंकि उन विद्याओं में आदित्य वसु आदि देवताओं के उपास्य होने से उनमें उपासकत्व संभव नहीं है—ऐसा जैमिनि सूत्र का अर्थ है) तो इसका उत्तर देते हैं—'असौ वा आदित्यो देवानाम्' इस वचन का मधु विद्या मात्र में निषेध से ही कृतार्थता हो जाती है—एक स्थान के अनधिकार कथन से सर्वत्र अनधिकार का अनुमान नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस अनुमान में व्यभिचार होता है। क्योंकि ऐसा अनुमान मानने पर क्षत्रिय और वैश्य को यजन में अनधिकार होने से यजन क्रिया के अनधिकार का प्रसंग हो जाएगा। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते, क्योंकि देवताओं के ब्रह्मविद्या में अधिकार समर्थन प्रमाण विद्यमान है। यथा—"यो यो देवानां

वर्तमानानां देवानामधिकारम्मन्यते भगवान् बादरायणस्तत्र हेतुः सम्भवात्। तेष्वप्यर्थित्वादीनामधिकारसम्पत्तिहेतूनां सम्भवात्। तत्र स्वर्गादिभोगानामनित्यत्वसातिशयत्वादिदोषग्रस्तत्वेन तदुपराम-सम्भवः। ब्रह्मभावापत्तेश्च निरतिशयत्वपरमानन्दत्वशाश्वतत्वश्रवणेन तदर्थित्वसम्भवः "यथेह कर्मचितो लोकस्तन्महिमानमिति वीतशोको नारायणे सायुज्यमाप्नोती" त्यादिश्रुतेः। किञ्च मन्त्रार्थवादेतिहास-पुराणादिभ्यस्तेषां विग्रहवत्त्वावगमाच्च समर्थत्वसम्भवः॥ ९॥

विकारित्वेनानित्यविषयसुखस्य क्षयासूयादि दोषदृष्ट्या निरतिशयसुखमोक्षार्थित्वं सत्वप्रकृतीनां देवानां सम्भवतीत्याह—तत्रेति, देवेष्वित्यर्थः। उक्तार्थं श्रुति प्रमाणेन दृढयति यथेति। नन्विन्द्राय स्वाहेत्यादौ चतुर्थ्यन्त-शब्दातिरिक्तविग्रहवती देवता नास्ति, शब्दस्य चासामर्थ्यान्नाधिकार इत्यत आह-**किञ्चेति**। "वसवो रुद्रा आदित्या मरुतः साध्याश्च पञ्चदेवगणाः। इन्द्रो ह वै देवानामभि प्रवव्राज विरोचनोऽसुराणामिति" छान्दोग्ये ८।७।८। स्मर्य्यते चादित्यः पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगामेत्यादिवचनैर्देवानां विग्रहवत्वादधिकारः सम्भवतीति भावः।।९।।

प्रत्यबुद्ध्यत स एव तदभवत् तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्" इत्यादि। इस श्रुति का समर्थक ब्रह्मसूत्र भी है—"तदुपर्यपि बादरायणः संभवात्" (ब्र० सू. १।३।२६) अर्थात् मनुष्यों के ऊपर विद्यमान देवताओं का अधिकार भगवान् बादरायण मानते हैं—इसके हेतु देते हैं संभवात्। यदि कहें कि भोगासक्त देवताओं में मोक्ष कामना के अभाव होने से उनमें अधिकारिता उपयुक्त नहीं है—तो इसके लिये कहते हैं—'ते स्वार्थित्वादीनाम्..........' अर्थात् देवताओं के अर्थित्व आदि अधिकारी सम्पत्तियों की संभावना है, क्योंकि स्वर्ग आदि भोगों के अनित्यत्व, सातिशयत्व आदि दोष ग्रस्त होने से उनमें उपराम संभव है। अर्थात् निरतिशय तथा शाश्वत सुख-मोक्षार्थित्व संभव है। ब्रह्मभावापत्ति (भगवद्भावापत्ति) मोक्ष के निरतिशयत्व, परमानन्दत्व तथा शाश्वतत्व श्रवण होने से देवताओं में भी तदर्थित्व का भी तत्कामत्व संभव है। इसी बात को श्रुति प्रमाण से सिद्ध करते हैं—'यथेह कर्मचितोलोकः तन्महिमानमेति वीतशोको नारायणे सायुज्यमाप्नोति' इत्यादि। यदि कहें कि देवताओं के शरीर न होने से समर्थत्व रूप अधिकार का अभाव है तो इसका उत्तर देते हैं—'किञ्च मन्त्रार्थवादेति हास.........' ग्रन्थ से अर्थात् 'वसवो रुद्रा आदित्याः मरुतः साध्याश्च पञ्चदेवगणाः इन्द्रोह वै देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्' (छा० उ० ८।७।८) इत्यादि श्रुति एवं 'आदित्यः पुरुषोभूत्वा कुन्तीमुपजगाम' इत्यादि स्मृति वचनों द्वारा देवताओं का विग्रह सिद्ध होने से अधिकार संभव है ।।९।।

न च मन्त्रादिजन्यज्ञानस्य मिथ्यात्वं वक्तुं शक्यम्। बाधकप्रत्यक्षादिप्रमाणान्तराभावात्। मन्त्रादेः कारणस्य श्रौतत्वेन दोषवत्वायोगात्। किञ्च ''विश्वानि देव वयुनानि विद्वानि'' त्यादिमन्त्रैस्तेषु विद्वत्वसम्भव इति विवेकः। अथ प्रजापतिविद्यायामिन्द्र-विरोचनयोर्जिज्ञासुत्वश्रवणादपि देवादीनां ब्रह्मविद्यायामधिकारनिश्चयः। ''य एषोऽक्षिण पुरुषो दृश्यते'', ''एष आत्मेति होवाच एतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति तद्यन्नैतत् सुप्तः समस्तः सम्पन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति एतदमृतमभयमेतद्-

वज्रोत्तेजिका— ननु मन्त्रजन्यज्ञानस्य भ्रमत्वादप्रामाण्यं मन्त्रादीनामित्याशङ्क्यापाकरोति **नचेति**। गीर्वाणानां विद्वत्त्वाश्रवणान्न तेषां ब्रह्मविद्याधिकारित्वमुपपन्नतरमित्यत आह **किञ्चेति**। ननु सुराणां जिज्ञासुत्वाभावान्नाधिकारित्वसम्भावनेत्यत आह **अथेति**। श्रुतितात्पर्यप्रदर्शनपुरःसरं सूत्रमेवावतारयितुमाह-**य एष इति**। सूत्रार्थं व्याचष्टे तु शब्द इति। अधिकारविधायकं वचनमुपन्यस्यति-**यो यो देवानामिति**। मनुजा-नामधिकारनियममपाकृत्य देवादीनामप्यधिकारो ब्रह्मविद्यायां समर्थितः। द्विजात्यधिकार-नियमापवादेन शूद्रस्याप्यधिकारो ब्रह्मविद्यायां कथं न स्यादित्याशङ्कते **नन्वेवमिति**। सूत्रार्थं विवृण्वन्

हिन्दी अनुवाद— यदि कहें कि मन्त्रजन्य ज्ञान भ्रम होने से मन्त्र अप्रमाण है तो इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि इसका बाधक कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। मन्त्र आदि कारण के श्रौत होने से उसके दोषवत्त्व का योग नहीं है। यदि कहें कि देवताओं में विद्वत्ता का अश्रवण होने से उनमें ब्रह्मविद्याधिकारिता नहीं होगी तो उसका उत्तर देते हैं कि ''विश्वानि देव वयुनानि'' इत्यादि मन्त्रों द्वारा देवताओं में विद्वत्ता संभव है। यदि कहें कि देवताओं के जिज्ञासुत्व का अभाव है; इसलिये उनके अधिकारित्व की संभावना नहीं हो सकती तो इसका उत्तर है—'अथ प्रजापति विद्यायाम्' अर्थात् प्रजापति विद्या में इन्द्र और विरोचन में जिज्ञासुत्व का श्रवण भी है अतः देवताओं का ब्रह्मविद्या में अधिकारित्व का निश्चय है।

''य एषोऽक्षिण पुरुषो दृश्यते'' 'एष आत्मेति होवाच एतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति तद्यन्नैतत् सुप्तः समस्तः सम्पन्नः स्वयं न विजानात्येष आत्मेति एतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति नाहं खल्वयमेवं सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्तीति नो एवेमानि भूतानि एवं त्वेव ते भूयोऽनु व्याख्यास्यामि एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः' इत्यादि श्रुतियों का तात्पर्य ग्रहण कर भगवान् सूत्रकार कहते हैं—

ब्रह्मेति नाहं खल्वयमेवं सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्तीति नो एवेमानि भूतानि एवं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुष'' इतिश्रुतेरिति तात्पर्यमादायाह भगवान् सूत्रकारः—''भावन्तु बादरायणोऽस्ति ही''ति (ब्र० सू० १।३।३३) तु शब्दो जैमिन्युक्तपक्षनिरासार्थः। ब्रह्मविद्यायां देवानामधिकारस्य सद्भावं भगवान् बादरायणो मन्यते, हि यस्मादुपनिषत्सु तदधिकारविधायकं वचनमस्तीति सूत्राक्षरार्थः। ''यो यो देवानामि'' त्यादि श्रुतेरिति संक्षेपः। नन्वेवं चेत्तर्हि शूद्रस्यापि मुमुक्षायाः सम्भवात्सोप्यत्राधिकारी स्यादिति चेन्न, तस्याग्निसम्बन्धोपनयनसंस्काराद्ययोगे नैकजातित्व-निश्चयान्निषेधदर्शनाच्च नात्राधिकारः। शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिर्न च

समाधत्ते—**तस्याग्निसम्बन्धेति**। तस्य-शूद्रस्य। उपनयनं=वेदग्रहणाङ्गं तच्च शूद्रस्य नास्तीत्यर्थः। **एकजातित्वनिश्चयादिति**-अनुपनीतत्वनिश्चयादित्यर्थः। **संस्कारपरामर्शादिति**। नास्ति शूद्रस्य विद्यायामधिकारिता तत्र हेतुः संस्कारपरामर्शात्। विद्याप्रदेशेषु—''तं होपनिन्ये'' इत्यादिषूपनयनसंस्कारपरामर्शात्, तर्हि शूद्रस्याप्युपनयनं कल्प्यतामित्यत आह—**तदभावेति**। न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हतीत्यादिना शूद्रस्योपनयनादि-संस्काराभावकथनादिति सूत्रार्थः। शूद्रो नाधिक्रियते, शूद्रसमीपे नाध्येतव्य इत्यादिना तस्य वेदान्तश्रवणादि प्रतिषेधादिति भावः।

''भावं तु बादरायणोऽस्तिही''ति यहाँ तु शब्द जैमिनी के उक्त पक्ष के निरास के लिये है। भाव है—ब्रह्मविद्या में देवताओं का अधिकार का सद्भाव बादरायण मानते हैं, क्योंकि उपनिषदों में देवताओं के अधिकार विधायक वचन है—ऐसा सूत्र का अक्षरार्थ है। जैसा कि पहले श्रुति का उदाहरण दिया था—'यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत' इत्यादि। यदि कहें कि फिर तो मुमुक्षा होने पर शूद्र को भी ब्रह्मविद्या में अधिकार हो जायेगा तो उसका उत्तर देते हैं—शूद्र को अग्नि सम्बन्ध तथा उपनयन आदि संस्कार न होने से शूद्र जाति को अधिकार नहीं हो सकता। दूसरी बात उसे श्रुति में स्पष्ट निषेध देखा गया है। शूद्र चतुर्थ वर्ण है, एक जाति है, उसका उपनयन आदि संस्कार नहीं होता। 'अथास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रं परिपूर्णं यद्युह वा एतत् श्मसानं यच्छूद्रः तस्माच्छूद्र समीपे नाध्येतव्यः' इसी प्रकार 'न शूद्राय मतिं दद्यात्' इत्यादि शास्त्रों द्वारा संस्कार सम्पन्न को ही ब्रह्मविद्या में अधिकार बताया गया है, शूद्रों का संस्कार होता नहीं, 'श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च' उसे श्रवण

संस्कारमर्हति। अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रं परिपूर्णं यद्युह वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रः तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यः। ''न शूद्राय मतिं दद्या'' दिति शास्त्रात् संस्कार परामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ''श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च'' इति सूत्रात्। न च विदुरधर्मव्याधादीनामेकजातित्वेऽपि विद्यासद्भावाद् व्यभिचार इति वाच्यम्। तेषां पूर्वजन्मकृतश्रवणादिभिरन्यस्मिन् जन्मन्यपि ज्ञानोदयस्यानुमानान्नोक्तदोषावकाशः। विदुरादेः पूर्वजन्मवृत्तिज्ञानं भारतादौ सुप्रसिद्धम्, तस्मादुक्तलक्षणो ब्राह्मणादित्रिक एव वेदान्तशास्त्राधिकारीति सिद्धम्॥ इत्यधिकारिनिरूपणम्॥ १०॥

शूद्रस्य वेदश्रवणं तदध्ययनं तदर्थज्ञानं तदुक्तधर्मानुष्ठानञ्च सुतरां निषिद्धमित्यर्थः। **स्मृतेश्चेति** न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्यव्रतमादिशेत्। न शूद्राय मतिं दद्यादितिस्मृतेश्चेत्यर्थः। व्यभिचारमाशङ्क्य निराकरोति **न चेति**। उक्तार्थमुपसंहरति—**तस्मादिति** तदितर-शास्त्राधिकार्यपेक्षया वेदान्तशास्त्रस्याधिकारिणो विजातीयत्वं निरूप्य अस्य विषयं निर्दिशति।। १०।।

एवं अध्ययन दोनों का प्रतिरोध है। यदि कहें कि संस्कार यदि आवश्यक है तो उनका (शूद्रों का) भी उपनयन संस्कार कर दिया जाये तो कहते हैं—'तदभावाभिलापाच्च' अर्थात् 'शूद्रे पातके किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति' शूद्र संस्कार के योग्य नहीं। शूद्र का वेद-श्रवण, अध्ययन, उसका अर्थज्ञान तथा वेदोक्त धर्मानुष्ठान सर्वथा निषेध है, क्योंकि स्मृति वचन है—'न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् तथा न शूद्राय मतिं दद्यात्' इत्यादि स्मृति वचन प्रमाण है (वज्रोत्तेजिका की टीका से) यदि कहें कि विदुर जी तथा धर्मव्याध आदि के शूद्र जातीय होने पर भी उनमें ब्रह्मविद्या का सद्भाव देखा गया है—फिर तो व्यभिचार हो गया तो इसका उत्तर देते हैं कि—उन सबका पूर्व जन्म में सम्पादित श्रवण, मनन आदि के द्वारा अन्य जन्म में भी ज्ञानोत्पन्न का ऐसा अनुमान करना चाहिये। इस प्रकार उक्त दोष का कोई अवकाश नहीं है। विदुर आदि के पूर्व जन्मार्जित ज्ञान की बात महाभारत आदि ग्रन्थ में प्रसिद्ध है। इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षण सम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि तीनों वर्ण ही वेदान्त शास्त्र के अधिकारी हैं—यह सिद्ध होता है।। १०।।

अथ सार्वज्ञ्यसर्वशक्त्यादिकारुण्यवात्सल्याद्यनन्तकल्याणधर्मनिलयो दोषलेशास्पृष्टसीमाभिन्नाभिन्नत्वाश्रयो भगवान् परब्रह्माख्योऽस्य विषयः। यः सर्वज्ञः स सर्ववित् स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। ''य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सुरपिपासः

वज्रोत्तेजिका— अथसार्वज्ञ्येति तस्य सर्वज्ञत्वे सर्वशक्तिमत्वे च श्रुतिं प्रमाणयति **सर्वज्ञ इति** तस्य कारुण्यादिगुणवत्वे सूत्रं मानमाह **विवक्षितेति** एतेन निर्विशेषनिर्गुणादिवादोऽप्यपास्तः, भगवतः श्रीकृष्णस्य शास्त्रविषयत्वे श्रुतिं प्रमाणतया उपन्यस्यति **सर्वे वेदा इति** स्वसिद्धान्ते शास्त्रस्याधिकारिविषयप्रयोजनसम्बन्धान् प्रमाणप्रदर्शनपुरस्सरं निरूप्य केवलाद्वैतवादिमते विषयस्य दुर्निरूप्यत्वेन शास्त्रारम्भ एव न सम्भवतीति प्रतिपादयन्नाह **अथ परमत इति** केवलाद्वैतवादिमत इत्यर्थः। ब्रह्मज्ञानाय विचारः कर्तव्य इति ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' इति सूत्रस्यार्थं मन्यमाना अद्वैतवादिनो रीत्यानया समर्थयन्ते किल शास्त्रविषयम्॥ तत्र ब्रह्मज्ञानं कर्तृत्वाद्यनर्थनिवर्तकतयोपयुज्यते। न तत्स्वतः फलरूपं भवति। तत्रानर्थस्य सत्यत्वे ज्ञानमात्रान्निवृत्ययोगादध्यस्तत्वं वक्तव्यमिति बन्धस्याप्यध्यस्तत्वमर्थात्सूचितं, विषयस्याध्यस्तत्वे शास्त्रस्य विषयप्रयोजनवत्त्वसिद्धिः। तथाहि—शास्त्रमारब्धव्यं, विषयप्रयोजनवत्त्वात् भोजनवदिति। शास्त्रं प्रयोजनवत्, बन्धनिवर्त्तक ज्ञानहेतुत्वाद्, रज्जुरियमित्यादिवाक्यवत्। बन्धो ज्ञाननिवर्त्यः अध्यस्तत्वात् रज्जुसर्पवदिति प्रयोजनसिद्धिः। एवमर्थाद् ब्रह्मज्ञानाज्जीवगतानर्थभ्रमनिवृत्तिं फलं सूचयज्जीवब्रह्मणोरैक्यं

इस प्रकार अधिकार निरूपण ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

हिन्दी अनुवाद— अब विषय निरूपण-विचार प्रारम्भ होता है

सार्वज्ञ्य, सर्वशक्त्यादि, कारुण्य, वात्सल्य आदि अनन्त कल्याण गुण गण निलय, दोषों के लेशमात्र से भी अस्पृष्ट (**स्वभावतोऽपास्त समस्तदोष**) स्वाभाविक भेदाभेदाश्रय भगवान् परब्रह्म वासुदेव श्रीकृष्ण ही इसका विषय है—क्योंकि श्रुति का स्पष्ट वचन है—'यः सर्वज्ञः स सर्ववित् स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च' वह परमात्मा सकल विषयक सामान्य रूप से एवं विशेष रूप से भी ज्ञाता है। उसमें ज्ञान और बल स्वाभाविक रूप से सदा रहते हैं (औपाधिक नहीं) ''यः आत्मा अपहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सुरपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः'' इत्यादि श्रुतियों द्वारा। इस श्रुति में बताया गया है कि परमात्मा—पाप, जरा, मृत्यु तथा शोक आदि से रहित है, उसमें भूख-प्यास नहीं, वह सत्यकाम एवं सत्य संकल्प है। इसी तरह भगवान् व्यास के सूत्र भी इस अर्थ में प्रमाण हैं—'विवक्षितगुणोपपत्तेश्च' तथा 'सर्वोपेता' अर्थात् उसमें अपेक्षित समस्त गुण विद्यमान है, वह अनन्त शक्तियों से युक्त है। 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' समस्त वेद

सत्यकामः सत्यसङ्कल्प'' इत्यादिश्रुतेः। ''विवक्षितगुणोपपत्तेश्च सर्वोपेताचे'' त्यादिसूत्रेभ्य इति संक्षेपः। सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीत्यादि-श्रुतिर्विषयत्वे प्रमाणं बोध्यम्। अथ

विषयमप्यर्थात्सूचयतीत्याशयेन तन्मतं प्रदर्शयन्नाह—**तथाहीत्यादिना।** विकल्पयति **तच्चेति।** तन्मते ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य निखिलस्यापि वस्तुनोऽध्यस्तत्व स्वीकारादैक्यस्याप्यध्यस्तत्वेन भवितव्यमित्याशयेनाह-**अध्यस्तमिति।** जीवब्रह्मणोरैक्यं मिथ्यारूपमिति तदर्थः। श्रुतिसमर्थितमैक्यं न मिथ्याभवितुमर्हति किन्तु पारमार्थिकमन्यथैक्यबोधकश्रुतेरप्रामाण्यापत्तिरित्यभिप्रेत्याह—**अनध्यस्तमिति।** प्रथमकल्पमपाकरोति **नाद्य इति।** यथा लोके शुक्ताविदं रजतमिति भ्रमस्तदुत्तरकाले नेदं रजतं किन्तु शुक्तिरियमित्यधिष्ठानसाक्षात्कारेण भ्रमो निवर्त्त्यते तथा प्रकृतेऽपि ब्रह्मसाक्षात्कारेणैक्यमपि निवर्त्तेत, एवञ्च जीवब्रह्मणोरैक्यं न वास्तविकं किन्तु तयोर्भेद इति भेदस्य पारमार्थिकत्वं प्रसज्जेतेत्याह। **अध्यस्तस्येति।**

नन्वैक्यस्य मिथ्यात्वे भेदस्य सत्यत्वं कुत इत्यतस्तत्र व्याप्तिमुपपादयति—**अध्यस्तस्येति।** यत्र यदध्यस्तं तत्र तद्विरोधि तज्ज्ञानाबाध्यमिति नियमाकारः। **यत्र शुक्तौ** यद्रूप्यत्वमध्यस्तं तत्र शुक्तौ तद्विरोधि अरूप्यत्वं तज्ज्ञानाबाध्यं शुक्तिज्ञानाबाध्यं दृष्टम्।

जिनका गुणगान करते हैं, उन उपनिषद् प्रतिपाद्य पुरुष को जानना चाहता हूँ—इत्यादि श्रुतियाँ सगुण ब्रह्म के शास्त्र विषयत्व में प्रमाण हैं।

अब केवलाद्वैतवादी मायावादी के मत में वेदान्त शास्त्र का विषय ही दुर्निरूप्य होने से शास्त्र का आरम्भ ही संभव नहीं है, इस बात को सिद्ध करने के लिये कहते हैं—'अथ परमते' इत्यादि। अर्थात् परमत यानी श्री शंकराचार्य जी के मत में वेदान्तशास्त्र के विषय का निरूपण ही संभव नहीं होने से शास्त्रारम्भ असंभव है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि इस मत में विषय विचार करने का विकल्प ही संभव नहीं है। उदाहरणार्थ उस मत में जीव और ब्रह्म का ऐक्य विषय कहा जाता है। यहाँ हम यदि प्रश्न करें कि वह ऐक्य अध्यस्त है या अनध्यस्त तो कोई संभव नहीं। यदि अध्यस्त कहें तो अध्यस्त पदार्थ के उत्तर काण्ड में बाध होने से भेद तात्त्विक हो जायेगा। यदि कहें कि ऐक्य के मिथ्या होने से भेद का सत्यत्व कैसे होगा, इसपर व्याप्ति बताते हैं अध्यस्तक तत्त्व निश्चित रूप से बाधित होने से भेद की तात्त्विकता होगी। कारण जिसमें जो वस्तु अध्यस्त होती है उसमें उसका विरोधी उसके अध्यस्त के ज्ञान से अबाध्य होता है, ऐसी व्याप्ति है। उदाहरणार्थ जिस शुक्ति में जो रजतत्व अध्यस्त है, उस शुक्ति में रजतत्व विरोधी अरजतत्व शुक्ति ज्ञान से अबाध्य होता है। इसी प्रकार ब्रह्म में ऐक्य अध्यस्त है, उस ब्रह्म में ऐक्य का विरोधी भेद ब्रह्मज्ञान से अबाध्य होगा। यहाँ अन्य

परमते विषयस्य दुर्निरूप्यत्वेन शास्त्रारम्भोऽसम्भव एव विकल्पासहत्वात् तथाहि तन्मते जीवब्रह्मैक्यं विषयस्तच्चैक्यमध्यस्तमनध्यस्तं वा, नाद्यः अध्यस्तस्यावश्यं बाध्यत्वेन भेदस्य तात्त्विकतापत्तेः।

एवं **ब्रह्मण्यैक्यमध्यस्तं** तत्र ब्रह्मणि तद्विरोधी भेदो ब्रह्मज्ञानाबाध्यः। अत्र व्याप्त्यन्तरमपि **द्रष्टव्यं तथाहि**—यत्र यदैक्यमध्यस्तं तत्र तद्भेदस्तज्ज्ञानाबाध्यः। यथा चूते पनसैक्यमध्यस्तं तत्र चूते तेन पनसेन भेदश्चूतज्ञानाबाध्यो दृष्टः। एवं ब्रह्मणि जीवेनैक्यमध्यस्तमिति तेन जीवेन भेदो ब्रह्मज्ञानाबाध्यः। यत्र यदध्यस्तं तत्र तद्विरोधि तात्विकं, यथा ब्रह्मण्यनृतत्वस्याध्यस्तत्वे सत्यत्वं तात्विकमेवञ्चैक्यमध्यस्तं तद्विरोधिभेदस्तात्विक इति। श्रुतिसमर्थिता यद्येकता भेदाभावो यदि चैकत्वसङ्ख्या, यदि वा ज्ञानात्मकत्वं, यदि वा अन्य एकत्वनामा कश्चिद् धर्म्मोऽभ्युपेयते। यद्येकत्वं सङ्ख्या तदा गुणगुणिभावादद्वैतक्षतिः। यदि वा विश्वस्य सम्वेद्यस्य सम्वेदनैक्यं तर्हि विज्ञानवादवद् ग्राह्यस्य **ग्राहकभेदादद्वैतव्याघात** एव। यद्येकत्वं घटपटादीनां परस्परभेदो धर्म्मस्तदपि धर्म्मवत्वं सोढुं न शक्नोत्यद्वैतव्याघातादेवेति। विकल्पत्रयं वहिरेवदूषयित्वा भेदाभावरूपं विकल्पं दूषयति-**ऐक्यप्रतियोगिकभेदस्येति**। ऐक्यस्य प्रतियोगी यो भेदस्तस्येति विग्रहः। अत्र स्वार्थे कः प्रत्ययः। ऐक्यस्य भेदाभावस्य प्रामाणिकत्वात्तत्प्रतियोगिनो भेदस्यापि पारमार्थिकत्वेऽद्वैतव्याघातापत्तिरित्यर्थः।

व्याप्ति देखी जा सकती है, जहाँ जिसका ऐक्य अध्यस्त होता है, वहाँ उसका भेद उसके ज्ञान से अबाध्य होता है। जैसे आम्र में पनस का ऐक्य अध्यस्त है, उस आम्र में पनस का भेद आम्र ज्ञान से अबाध्य देखा गया है। इसी प्रकार ब्रह्म में जीव का ऐक्य यदि अध्यस्त है, तो जीव के साथ भेद ब्रह्मज्ञान से बाह्य नहीं होगा। जहाँ जो अध्यस्त होता है, वहाँ उसका विरोधी तात्त्विक होता है, जैसे ब्रह्म के अनृतत्व के अध्यस्त होने पर सत्यत्व तात्त्विक है। इसी प्रकार यदि ऐक्य अध्यस्त होगा तो उसका विरोधी भेद तात्त्विक होगा। अब द्वितीय विकल्प की समीक्षा करते हैं—एकता भेदाभाव अनध्यस्त है, यह दूसरा विकल्प है। यहाँ एकता के सम्बन्ध में विकल्प करते हैं कि एकता भेदाभाव रूप है, या एकत्व संख्या है किंवा ज्ञानात्मक है अथवा अन्य ही एकत्व नाम का कोई धर्म विशेष है। यदि एकत्व संख्या माने तो गुण गुणीभाव होने से अद्वैत व्याघात होता है, यदि संवेद्य विश्व का संवेदनात्मक ऐक्य हो तो विज्ञानवाद की तरह ग्राह्य का ग्राहक के साथ भेद होने से अद्वैत का व्याघात ही है। यदि एकत्व धर्म ही रहे तो वह भी नहीं रह सकते क्योंकि यहाँ भी अद्वैत का व्याघात ही है। यहाँ तीन

द्वितीये ऐक्यप्रतियोगिकभेदस्य पारमार्थिकत्वप्रसङ्गात्। नन्वैक्यस्य ब्रह्मभेदो नाभ्युपगम्यत इति चेन्न। ऐक्यस्य निर्विशेषब्रह्माभिन्नत्वे तत्त्वं-पदार्थपराणां ''सत्यं ज्ञानमनन्तं, विज्ञानघनमानन्दमि'' त्यादीनामैक्य-परमहावाक्यैकवाक्यत्वाभावेन वैयर्थ्यं स्यात्। न चैक्यस्य स्वप्रकाश-

''ब्रह्मैवेदं सर्व्वमि'' ति श्रुत्यर्थेन सहैक्यमापन्नमैक्यं ब्रह्मैवस्यात्। ''विज्ञानमानन्दंब्रह्मे'' ति श्रुत्या च ज्ञानात्मकतया व्यवस्थापनादित्याशङ्कते-**नन्विति**। ब्रह्मतदैक्येऽभिन्ने ''ब्रह्मैवेदं सर्व्वमि'' ति श्रुतिबोधितत्वादिति प्रयोगः। ब्रह्मणः स्वयं प्रकाशत्वेन ज्ञातत्वादैक्यमपि तदनतिरेकितया ज्ञातमेवेति न जिज्ञासा स्यात्। तदभावे च न ब्रह्मज्ञानाय वेदान्ताः पठ्येरन्, अपित्वविवक्षितार्था जपमात्रे उपयुज्येरन्। एवं ''सत्यं ज्ञानमनन्तमि'' त्यादिस्वरूपपरवाक्यानां ''तत्वमसी'' ति महावाक्यैकवाक्यत्वापादनमपि निष्प्रयोजनकं प्रतिभातीत्याशयेन परिहरति-**नेति।** यदि जीवब्रह्मणोरैक्यं ब्रह्मातिरिक्तं स्यात्तदा ब्रह्मात्मैकत्वप्रतिपत्तये ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'' ति श्रुत्यर्थेन सह महावाक्यैकवाक्यतामापन्नाः सर्व्वे वेदान्ता आरभ्येरन्। न त्वेवं यत ऐक्यस्य निर्विशेषब्रह्माभिन्नत्वेन निरपेक्षत्वात्तेषां वैयर्थ्यं दुर्वारमित्यर्थः। **एकवाक्यतेति**—ऐक्यापेक्षितजीवब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादकत्वेन तदेकवाक्यत्वं

विकल्पों को बाहर से ही दूषित करके भेदभाव रूप विकल्प को दूषित करते हैं—'द्वितीये ऐक्यप्रतियोगिकभेदस्वग्रन्थे द्वारा अर्थात् यदि ऐक्य अनध्यस्त है और ऐक्य है भेदाभाव रूप तो ऐक्य भेदाभाव रूप ऐक्य का प्रतियोगी भेद के भी पारमार्थिक होने पर अद्वैत व्याघात रूप आपत्ति है। कारण भेदाभाव रूप ऐक्य के प्रामाणिक होने पर उसका प्रतियोगी भेद भी पारमार्थिक होगा[१] यदि कहे कि 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' इस श्रुति के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त ऐक्य भी ब्रह्म ही होगा और 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इस श्रुति से उसे ज्ञानात्मक कहा गया है। इसी आशय से आशङ्का करते हैं कि 'नन्वैक्यस्य ब्रह्म भेदो' अर्थात् ऐक्य का अर्थ है ब्रह्म भेद स्वीकार नहीं करते तो ऐसा नहीं कह सकते। कारण मानें तो भाव यह है कि 'ब्रह्म तदैक्येऽभिन्ने ब्रह्मैवेदं सर्वम्' 'इति श्रुति बोधितत्वात्' इस अनुमान द्वारा ब्रह्म और तदैक्य में एकता होने पर ब्रह्म के स्वयं प्रकाश होने से ज्ञात होने के कारण उसका ऐक्य भी ज्ञात ही है, फिर उसकी जिज्ञासा क्यों होगी और जिज्ञासा के अभाव में ब्रह्मज्ञान के लिये वेदान्त का अध्ययन नहीं होगा। इसी प्रकार 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि स्वरूपपरक वाक्यों का 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों द्वारा एक वाक्यत्वापादन भी निष्प्रयोजन प्रतीत होता है, इसी आशय से परिहार करते हैं। चेन्न शब्द से अर्थात् यदि जीव ब्रह्म का ऐक्य ब्रह्मातिरिक्त होता तब तो ब्रह्मात्मैकत्व प्रतीति के लिये 'सत्यं ज्ञानमनन्तं

ब्रह्माभिन्नत्वेन स्थितिप्रतीत्यादौ निरपेक्षत्वेऽपि यथा लक्षितार्थभेदभ्रम-निवर्त्तकवृत्तिजनने पदार्थसापेक्षत्वेन स्वरूपपरवाक्यानामेकवाक्य-तायाः सत्वात्, भेदरूपप्रतियोगिसापेक्षत्वेन तत्र सापेक्षत्वव्यवहार इति

ब्रह्मानतिरेकिण ऐक्यस्य निरपेक्षत्वेन तत्र स्यादित्यर्थः। यथा समस्तजातिः स्वस्थितये व्यक्तिमपेक्षते विशिष्टप्रतीतौ च विशेषणज्ञानविधया जात्यादेरपेक्षा तथा ब्रह्मणि विद्यमानस्य ब्रह्माभेदरूपैक्यस्य निरपेक्षब्रह्मस्वरूपत्वान्न तदैक्यं स्वस्थितौ स्वप्रतीतौ च कमपि पदार्थमपेक्षते किन्तु लक्षितार्थभेदभ्रमोऽभेदज्ञानेनैव निवर्त्यते। तच्चाभेदज्ञानं वेदान्तवचनैरेवोत्पत्तुमर्हति नान्यथेति वेदान्ता आरभ्यन्ते। तथा सति ऐक्यापेक्षितजीवब्रह्मस्वरूपप्रतिपादकत्वेन "सत्यं ज्ञानमनन्तमि" त्यादि श्रुत्या सह महावाक्यरूपतत्त्वमस्यादिश्रुतीनामेकवाक्यत्वं सार्थकमेव प्रतिभातीत्याशङ्कां परिहरति—**न चैक्यस्येति। लक्षितार्थेति।** परमते ब्रह्म लक्षितार्थो लक्षणावृत्या प्रतिपाद्यो न तु शक्यार्थस्तथात्वे मिथ्यात्वं स्यात्। तस्मिन्यो भेदभ्रमस्तन्निवर्त्तिका या वेदान्तवाक्यजन्या वृत्तिस्तस्या जननेत्यर्थः। **पदार्थ-सापेक्षत्वेनेति।** ऐक्यापेक्षित-जीवब्रह्मस्वरूपप्रतिपादकस्वरूपपरवाक्यैकवाक्यतापन्नमहावाक्याधीनाखण्डार्थ-बोधात्मको यः पदार्थस्तत्सापेक्षत्वेनेत्यर्थः। प्रतियोगिनो भेदस्य सापेक्षत्वादैक्येऽपि

ब्रह्म' इस श्रुत्यर्थ के साथ महावाक्य के साथ एकवाक्यता प्राप्त सभी वेदान्त आरम्भ किये जाते, पर ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐक्य निर्विशेष ब्रह्म से अभिन्न होने से निरपेक्ष होने के कारण उनका (वेदान्तका) वैयर्थ्य अनिवार्य है। 'एकवाक्यतेति' जैसे समस्त जाति (घटत्वादि) अपनी स्थिति के लिये व्यक्ति की अपेक्षा करती है, विशिष्ट प्रतीति ये विशेषण ज्ञान विद्यमान जाति आदि की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार ब्रह्म में विद्यमान ब्रह्माभिन्न रूप ऐक्य निरपेक्ष ब्रह्म स्वरूप होने से उसका ऐक्य अपनी स्थिति तथा अपनी प्रतीति में किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं करता किन्तु लक्षितार्थ भेदभ्रम अभेद ज्ञान से ही निवृत्त होता है। और वह अभेद ज्ञान वेदान्त वचनों द्वारा ही उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं—इसलिये वेदान्त का आरम्भ करते हैं। इस प्रकार ऐक्य ज्ञान में अपेक्षित जीव ब्रह्म स्वरूप के प्रतिपादक होने से 'सत्यं ज्ञानमनन्तं' इस श्रुति के साथ महावाक्य स्वरूप "तत्त्वमसि" आदि श्रुतियों की एकवाक्यता सार्थक ही प्रतीत होती है—इस आशङ्का का परिहार करते हैं—'न चैक्यस्य स्वप्रकाश ब्रह्माभिन्नत्वे......' इस ग्रन्थ से अर्थात् यदि कहें कि ऐक्य पदार्थ का स्वप्रकाश ब्रह्म से अभिन्न होने से स्थिति, प्रतीति आदि के निरपेक्ष होने पर भी जैसे लक्षितार्थ भेदभ्रम का निवर्तक वृत्ति के उत्पादन से पदार्थ के सापेक्ष होने से स्वरूप पर वाक्यों में एकवाक्यता होने से भेदरूप प्रतियोगी सापेक्ष

वाच्यम्। निर्विशेषब्रह्माभिन्नैक्यस्य कुत्रापि निरपेक्षत्वाभावात्। अभावसादृश्यादेः सप्रतियोगिकत्ववत् ऐक्यस्य सापेक्षतायाः स्वाभाविकत्वात्॥ ११ ॥

सापेक्षत्वव्यवहार इत्याह—**भेदरूपेति**। भेदाभावात्मकैक्यरूपब्रह्मणो भेदरूपो यःप्रतियोगी तत्सापेक्षत्वेनेत्यर्थः। **सापेक्षत्वव्यवहार इति** जीवब्रह्मणोरभेद इत्यादौ प्रतियोगिघटितरूपेण व्यवहार इत्यर्थः। यद्यैक्यं निर्विशेषब्रह्मस्वरूपं तदा तस्य सापेक्षत्वं न घटते ब्रह्मातिरिक्तश्चेत्तस्य सापेक्षत्वमभावसादृश्यादिवद् दुर्वारमित्याशयेनोक्तशङ्कां समाधत्ते—**निर्विशेषब्रह्माभिन्नेति**। अभेदरूपैक्यस्य भेदरूपप्रतियोगि सापेक्षत्वान्न तस्य निरपेक्षब्रह्मस्वरूपत्वं वक्तुमपि शक्यमत ऐक्यं जीवब्रह्मणोर्भेदनिषेधरूपं ब्रह्मणोऽतिरिक्तमेव वक्तव्यं तथा सति भेदस्य पारमार्थिकत्वं दुर्वारमेवाद्वैतव्याघातश्च। ऐक्यस्य मिथ्यात्वे तत्परस्य ''तत्वमसी'' त्यादेरतत्त्वावेदकत्वं भेदस्य सत्यता च स्यादित्यादिप्रागुक्तदोषाणां दुष्परिहरत्वादिति भावः। **एतेनेति**। वक्ष्यमाणदोषेणेत्यर्थः ।।११।।

होने से सापेक्ष व्यवहार है तो उसका उत्तर देते हैं—निर्विशेष ब्रह्म से अभिन्न जीव ब्रह्मैक्य कहीं भी निरपेक्ष नहीं होता है। जैसे अभाव एवं सादृश्य यत्किञ्चित् प्रतियोगिक होता है। उसी प्रकार ऐक्य (जीव ब्रह्मैक्य) की सापेक्षता स्वाभाविक है। (भाव यह है कि परमत के (शांकर मत) ब्रह्म लक्षितार्थ, लक्षणावृत्ति का प्रतिपाद्य, शक्यार्थ नहीं—शक्यार्थ मानने पर उसमें मिथ्यात्व आ जायेगा, उसमें जो भेद का भ्रम है, उसका निवर्तक जो वेदान्त वाक्यजन्य वृत्ति, उसकी उत्पति से ऐक्य में अपेक्षित जीव ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादन स्वरूप परवाक्यैकवाक्यतापन्न महावाक्याधीन अखण्डार्थ बोधात्मक जो पदार्थ (तत्सापेक्षत्वेन) प्रतियोगी के भेद का सापेक्ष होने से ऐक्य के भी सापेक्षत्व व्यवहार है, यही बात कहते हैं। भेदरूप प्रतियोगिसापेक्षत्वेन इस ग्रन्थ से। भेदाभावात्मक कैवल्य रूप ब्रह्म को भेदरूप जो प्रतियोगी उसके सापेक्ष होने से सापेक्षत्व व्यवहार है अर्थात् जीव ब्रह्मणोरभेद इत्यादि स्थलों में प्रतियोगी घटित रूपेण व्यवहार है, यह अर्थ है। यदि कहें कि ऐक्य निर्विशेष ब्रह्मरूप है, तब तो उसकी सापेक्षता नहीं घटती और यदि ऐक्य ब्रह्मातिरिक्त है तब तो अभाव एवं सादृश्य की तरह सापेक्षत्व दुर्वार है—इस आशय से उक्त शङ्का का समाधान करते हैं—'निर्विशेष ब्रह्म भिन्नेति' अर्थात् अभेद रूप ऐक्य का भेदरूप प्रतियोगी सापेक्ष होने से उसे निरपेक्ष ब्रह्मस्वरूप नहीं कहा जा सकता, अतः ऐक्य जीव ब्रह्म में भेद निषेध रूप ब्रह्म से अतिरिक्त ही कहना होगा। तब तो भेद का पारमार्थिकत्व दुर्वार ही हो जायेगा तथा अद्वैत का व्याघात भी हो जायेगा। ऐक्य के मिथ्यात्व मानने पर तत्प्रतिप्रादक 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों में अतत्त्वावेदकत्व (अप्रामाणिकत्व) तथा भेद की सत्यता भी हो जायेगी—इत्यादि पूर्वोक्त दोष अपरिहार्य हो जायेंगे ।।११।।

एतेन मन्मतेऽविद्यानिवृत्त्यद्वैतयोः सापेक्षयोरपि ब्रह्मैक्यमस्तु। तत्राभावत्वसापेक्षत्वादेर्मायिकत्वेन विरोधाभावात्तव तु सापेक्षत्व-निरपेक्षत्वयोस्तात्त्विकत्वेन विरोधस्य दुष्परिहरत्वादिति निरस्तम्। त्वदभिमताद्वैतश्रुतिबोध्यस्याभावत्वादेः कल्पितत्वायोगात्। अन्यथा श्रुतेरप्रामाण्यापत्त्याद्वैतनिवृत्त्यादेरसिद्ध्यापत्तेः। ज्ञानस्य ज्ञानत्वेन दण्डादेः

वज्रोत्तेजिका— अविद्यानिवृत्तिजीवब्रह्मैक्ययोः सापेक्षत्वस्याविद्यकतया तात्त्विकनिरपेक्षत्वविरोधित्वा-भावेनाभेदरूपैक्यस्य ब्रह्मस्वरूपत्वे न किञ्चिद्बाधकमित्याह—**मन्मत इति।** केवलाद्वैत-वादिमत इत्यर्थः। **सापेक्षयोरिति।** प्रतियोगिसापेक्षयोरित्यर्थः। **तत्रेति।** ब्रह्मणीत्यर्थः। **अभावत्वसापेक्षत्वेति।** ब्रह्मनिष्ठभेदाभावरूपैक्यवृत्ति यदभावत्वं तस्य भेदरूप-प्रतियोगसापेक्षत्वमित्यर्थः। **मायिकत्वेनेति।** आविद्यकतयेत्यर्थः। ब्रह्मवृत्तिनिरपेक्षत्वन्तु तात्त्विकं सापेक्षत्वन्त्वतात्त्विकं तथा च न तयोर्विरोध इत्यर्थः। **तव त्विति।** भेदाभेदवादिमत इत्यर्थः। विपक्षे बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति।** अभावत्वस्य कल्पितत्व इत्यर्थः। भेदाभावरूपैक्यं श्रुत्यैव समर्थनीयम्। तच्च नाविद्याव्यवस्थितं किन्तु पारमार्थिकमेवान्यथा श्रुतेरतत्वावेदकत्वेनाप्रामाण्यतया द्वैतनिवृत्तिरशक्यसम्पादनीया स्यात्तथा च तव मतेऽपि भेदाभावात्मकैक्यस्य भेदसापेक्षत्वं तात्त्विकमेव वक्तव्यम्। ब्रह्मवृत्तिनिरपेक्षत्वस्यापि तात्त्विकत्वेन तयोर्विरोधस्य दुष्परिहरत्वमेव। एवञ्च प्रतियोगिसापेक्षं भेदनिषेधरूपैक्यं न निरपेक्षब्रह्मस्वरूपं भवितुमर्हति किन्तु तदरिक्तमेव। तथा सति भेदस्य पारमार्थिकत्वं दुर्वारमेवाद्वैतव्याघातश्चेति भावः। तात्त्विकयोरपि सापेक्षत्वनिरपेक्षत्वयोरेकस्मिन्धर्म्मिणि

हिन्दी अनुवाद— 'एतेन मन्मते.........' अर्थात् वक्ष्यमाण दोष के कारण अविद्या निवृत्ति एवं जीव ब्रह्मैक्य में सापेक्षत्व अविद्यक होने के कारण तात्त्विक निरपेक्षत्व रूप विरोध का अभाव होने के कारण भेदाभाव रूप ऐक्य की ब्रह्मस्वरूपता में कोई बाधक नहीं है—यही बात कहते हैं—'मन्मते ग्रन्थ द्वारा' अर्थात् केवलाद्वैतवादी मेरे मत में अविद्या निवृत्ति एवं अद्वैत में सापेक्षत्व होने पर भी (प्रतियोगी सापेक्ष होने पर भी) जीव ब्रह्मैक्य हो, क्योंकि ब्रह्म में ब्रह्मनिष्ठ भेदाभाव रूप ऐक्य वृत्ति जो अभावत्व ही उसमें भेदरूप प्रतियोगी सापेक्षत्व आदि के अविद्यक होने से कोई विरोध नहीं है, क्योंकि ब्रह्मवृत्ति निरपेक्षत्व तो तात्त्विक है और सापेक्षत्व अतात्त्विक है और आप भेदाभेदवादीके मत में सापेक्षत्व निरपेक्षत्व दोनों तात्त्विक होने से विरोध अपरिहार्य है—यह मत निरस्त होता है, क्योंकि आपका अभिमत अद्वैत शुक्ति द्वारा ज्ञेय अभावत्व आदि में कल्पितत्व नहीं है। विपक्ष में बाधक तर्क कहते हैं—'अन्यथा श्रुतेरप्रामाण्यापत्त्या' अर्थात् अभाव के कल्पित होने पर। भेदाभाव रूप ऐक्य का श्रुति द्वारा ही समर्थन होगा—

कारणत्वेनाभावसादृश्येच्छादेस्तत्वेन सापेक्षत्वेऽपि प्रमेयत्वदण्डत्वादिना निरपेक्षत्ववद्भेदत्वेन सापेक्षत्वेऽपि घटत्वादिना निरपेक्षत्वोपपत्तेः। न ह्यस्माकमेकरूपेणाङ्गीकार इत्यर्थः। ननु तवाभिमते सार्वज्ञाद्यनन्तविशेषाश्रये भिन्नाभिन्ने च ब्रह्मण्यपि भेदस्य सत्वात्तथात्वे च तत्स्वरूपादयो वक्तव्याः। तस्य तु विकल्पासहत्वेन वक्तुमशक्यत्वात्,

संयोगतदभावयोरिवावच्छेदकभेदेनैवोपपत्तेर्नास्माकं मते विरोधलेशावकाशः। युक्तञ्चैतत्केनचिद्रूपेण निरपेक्षस्यापि केनचिद्रूपेण सापेक्षताया दृष्टत्वादित्याशयेन स्वमते विरोधं परिहरन्नाह-**ज्ञानस्येति**। अभावादेः प्रमेयत्वेन प्रतीतौ प्रतियोग्यादि-सापेक्षत्वाभावेऽपि अभावत्वादिना प्रतीतौ सापेक्षत्वं, दण्डत्वादिना निरपेक्षस्यापि दण्डादेः कारणत्वेन प्रतीतौ निरूपकसापेक्षत्वात्। अस्येदं कारणमिति हि प्रतीतिः। तथा च सन्ति च ब्रह्मणि ह्यनन्तधर्म्मा ज्ञानत्वब्रह्मत्वभेदाभावत्वादयः। ब्रह्मत्वेन विषयनिरपेक्षस्यापि ब्रह्मणो ज्ञानरूपत्वेन भेदाभावत्वेन च प्रतीतौ विषय-**प्रतियोग्यादिसापेक्षत्त्वमित्यर्थः।** नन्वेवं सर्व्वस्यापि पदार्थस्य केनचिद्रूपेण प्रतियोग्यादिसापेक्षत्वनिरपेक्षत्वादेः सम्भवेनेदं सप्रतियोगिकमिदं निष्प्रतियोगिकमिति व्यवस्था कथमुपपद्यत इति चेन्मैवम्, यदसाधारण्येन स्ववाचकपदप्रवृत्तिनिमित्ततावच्छेदेन प्रतीतौ प्रतियोगिप्रतीतिसापेक्षं तत्सप्रतियोगिकमन्यत्तु निष्प्रतियोगिकमिति सप्रतियोगिकनिष्प्रतियोगिकव्यवस्थोपपत्तेः। यथाऽभाववाचकं यत्पदं तस्य तत्प्रवृत्तिनिमित्तमभावत्वं तदवच्छेदेन प्रतीतौ प्रतियोगि-

वह अविद्या द्वारा व्यवस्थित नहीं है—किन्तु पारमार्थिक ही है—अन्यथा श्रुति में असत्य का बोधक होने से अप्रामाणिकता आ जाने से द्वैतकी निवृत्ति का सम्पादन अशक्य हो जायेगा—तब आपके मत में भी भेदाभावात्मक ऐक्य का भेद सापेक्षत्व तात्त्विक ही कहना पड़ेगा। और ब्रह्मवृत्ति निरपेक्षत्व भी तात्त्विक होने से उन दोनों का विरोध अपरिहार्य ही हो जायेगा। इस प्रकार प्रतियोगिसापेक्ष भेद निषेध रूप ऐक्य निरपेक्ष ब्रह्म स्वरूप नहीं होगा, किन्तु उससे भिन्न ही होगा—फिर तो भेद के पारमार्थिकत्व को कोई रोक नहीं सकता और अद्वैत का व्याघात भी अपरिहार्य होगा। सापेक्षत्व और निरपेक्षत्व तात्त्विक होने पर भी एकधर्मी में संयोग और उसके अभाव की जैसे अवच्छेदक भेद से उत्पत्ति होती है उसी तरह हमारे मत के विरोध के लेश का भी अभाव है। और यह युक्त भी है, किसी रूप से निरपेक्ष होने पर भी किसी रूप से सापेक्षता देखी गई है अपने मत के विरोध का परिहार करते हुए कहते हैं—'ज्ञानस्य ज्ञानत्वेन' अर्थात् ज्ञान का ज्ञानत्वेन, दण्ड आदि का कारणत्वेन तथा अभाव, सादृश्य एवं इच्छा आदि का अभावत्वादि रूप से सापेक्ष होने पर भी घटत्व आदि रूप से निरपेक्षत्व की उत्पत्ति हो सकती है। भाव यह है कि अभाव आदि का प्रमेयत्वेन प्रतीति में

तथाहि भेदः किमधिकरणस्वरूपस्तद्भिन्नो वा। नाद्यः सापेक्षस्य भेदस्य निरपेक्षाधिकरणेनैक्यासम्भवात्। न द्वितीयः, भेदोऽपि भिन्नस्तद्भेदोऽपि

सापेक्षत्वात्तत्सप्रतियोगिकं घटादिपदं घटादिवाचकपदप्रवृत्तिनिमित्तभूतघटत्वाद्यवच्छेदेन प्रतीतौ प्रतियोग्यादिनिरपेक्षत्वान्निष्प्रतियोगिकमिति सर्व्वं सुस्थितमिति।

द्वैताद्वैतवादिनां मते द्वैतस्य तात्त्विकतया तत्स्वरूपस्य दुर्निरूप्यत्वेन वक्तुमशक्यत्वमित्याशङ्कते **नन्विति**। तथात्वे च उक्तब्रह्मणि भेदस्य सत्वे चेत्यर्थः। **तत्स्वरूपादय इति**। भेदस्वरूपादय इत्यर्थः। तस्य-भेदस्य। किं भेदोऽधिकरणादतिरिच्यते नातिरिच्यते वेति विकल्पयति-**तथाहीत्यादिना**। सजातीययोरेक्यं नतु विजातीययोरितिनियमात् प्रतियोगिसापेक्षस्य घटभेदस्य न निरपेक्षाधिकरणस्वरूपत्वमित्यभिप्रेत्याद्यकल्पं निराकरोति-**नाद्य इति। सापेक्षस्येति**। प्रतियोगिसापेक्षस्येत्यर्थः। यद्यधिकरणस्वरूपाद्भेदोऽतिरिच्यते तदा तद्भेदोऽप्यतिरिक्तः सोऽप्यतिरिक्त इत्यनवस्था स्यादिति दूषणेन द्वितीयकल्पं निरस्यति-**न द्वितीय इति**। दूषणान्तरमाह **कुम्भस्येति**। कुम्भःस्तम्भाद्भिन्न इति भेदावगाहिप्रतीतौ कुम्भभिन्नत्वेन स्तम्भरूपप्रतियोगिज्ञानं कारणम्। निरुक्तज्ञाने कुम्भभिन्नत्वांशे कुम्भात्मकप्रतियोगिज्ञानस्यापेक्षा तज्ज्ञाने च पुनःस्तम्भभिन्नत्वेन कुम्भरूपप्रतियोगिज्ञानं कारणमिति परस्परसापेक्षत्वादन्योन्याश्रयः। माभूदधिकोभेदोऽधिकरणस्वरूपत्वमेव तस्येष्यत इत्युक्तदोषं परिहरति—**नेति**। घटभेदाधिकरणे भूतले धर्मद्वयमस्ति, भूतलत्वमधिकरणत्वञ्च, तत्र भूतलत्वेन भूतलस्य निरपेक्षत्वेऽप्यधिकरणत्वेन

प्रतियोगी आदि के सापेक्षत्व का अभाव होने पर भी अभावत्वेन प्रतीति में सापेक्षत्व है, दण्डत्व आदि रूप में निरपेक्ष होने पर भी दण्ड आदि का कारणत्वेन प्रतीति होने पर निरूपक सापेक्षता होती है—अर्थात् 'किं निरूपित कारणता' इसका यह कारण है, यह प्रतीति है। इस प्रकार ब्रह्म में अनन्त धर्म हैं—ज्ञानत्व, ब्रह्मत्व, भेदाभावत्व आदि। यहाँ ब्रह्मत्वेन विषय निरपेक्ष होने पर भी ज्ञानरूपत्वेन तथा भेदाभाव रूपत्वेन प्रतीति में विषय एवं प्रतियोगी आदि की अपेक्षा है।

अब शंका करते हैं कि द्वैताद्वैतवादी आपके मत में द्वैत तात्त्विक है, परन्तु उसका स्वरूप दुर्निरूप्य होने के कारण आप नहीं कह सकते—इसी आशय से शङ्का करते हैं—'ननु तवाभिमते............' इस वाक्य द्वारा अर्थात् कहते हैं कि आप द्वैताद्वैतवादी के मत में भी सार्वज्ञ्य आदि अनन्त गुणाश्रय भिन्नाभिन्न स्वभाव ब्रह्म में भी भेद है ही—तो आपको भी तो भेद का स्वरूप बताना होगा। हम पूछेंगे कि वह भेद क्या अधिकरण स्वरूप है या उससे भिन्न है? पहला पक्ष नहीं कह सकते कारण सापेक्ष भेद का निरपेक्ष ब्रह्मरूप अधिकरण के साथ ऐक्य है अथवा नहीं है। (कारण सजातीय में ऐक्य होता है न कि विजातीय में) दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते तब वह भेदाभेद भी

भिन्न इत्यनवस्थाप्रसङ्गात्। कुम्भस्य स्तम्भाद् भेद प्रतीतौ प्रतियोगित्वेन तज्ज्ञानम्, तज्ज्ञाने च स्तम्भस्य कुम्भाद् भेदप्रत्यय इत्यन्योन्यश्रयाच्चेति चेन्न, भूतलत्वादिनानिरपेक्षत्वेऽप्यधिकरणत्वेन सापेक्षत्वे क्षतेरभावात्। न च भेदत्वभेदमादायानवस्थायोगः, तद्भेदस्याप्यधिकरणस्वरूपत्वात्॥१२॥

सापेक्षत्वमिति न तस्य घटभेदस्वरूपत्वे बाधकम्। अभावस्याधिकरणात्मकतया भूतलवृत्तिघटभेदस्य भूतलानतिरिक्तत्वेऽपि भूतलवृत्तिघटभेदत्वं तु भूतलादतिरिच्यते तदप्यतिरिक्तं तदपि भिन्नमित्यनवस्थामा-शङ्क्यपरिहरति **न चेति**। भेदत्वस्य भेदोऽधिकरणस्वरूपान्नातिरिच्यत इत्याह-**तद्भेदस्येति**। भेदत्वस्य भेदेत्यर्थः। भेदाभेदमादाय शङ्किताम‌नवस्थां परिहरति—**नचेति**। भूतले भेदद्वयं वर्त्तते, भूतलं घटो नेति प्रतीतिसिद्ध एकोभेदः, भूतलं भेदो नेत्यपरस्तथा च भेदत्वेन रूपेण सकलभेदानां सङ्ग्रहान्नानवस्थेत्याशयेन समाधत्ते—**भूतलादाविति**। भूतलवृत्तिघटप्रतियोगिकभेद-भेदप्रतियोगिकभेदयोः सामनैयत्येनैक्यान्नानवस्थाप्रसंग इत्याह-**भूतल इति**। उक्तार्थं दृष्टान्तेन समर्थयति-**तार्किकवदिति**। तार्किकाणांमते यथा घटे रूपरसादिप्रतियोगिकसमवायस्य प्रतियोगितावच्छेदकभेदेऽप्यभेदस्तद्वदत्रापि घटत्वादिप्रतियोगितावच्छेदकभेदेऽपि भूतलवृत्तिनिखिलभेदोऽप्यभिन्न एवेत्यर्थः ।।१२।।

अतिरिक्त—और वह भी अतिरिक्त इस प्रकार अनवस्था दोष का प्रसङ्ग होगा। दूसरा यहाँ अन्योन्याश्रय दोष होगा। जैसे कुम्भः स्तम्भाद् भिन्नः इस भेदावगाही प्रतीति में कुम्भभिन्नत्वेन स्तम्भरूप प्रतियोगी ज्ञान कारण है और इस निरुक्त ज्ञान में कुम्भभिन्नत्वांश में कुम्भात्मक प्रतियोगी ज्ञान की अपेक्षा और उसके ज्ञान के पुनः स्तम्भभिन्नत्वेन कुम्भरूप प्रतियोगी ज्ञान कारण, इस प्रकार परस्पर अपेक्षा के कारण अन्योन्याश्रय दोष होगा। इस आपत्ति का निराकरण करते हुए कहते हैं—'न भूतलत्वादिना निरपेक्षत्वेऽत्यधिकरणत्वेन सापेक्षत्वे क्षतेरभावात्' अर्थात् भेद यहाँ अधिकरण स्वरूप ही है। भूतलत्व आदि रूप से निरपेक्ष होने पर भी अधिकरणत्वेन सापेक्ष होने पर कोई क्षति नहीं। (भाव यह है कि घटभेद के अधिकरण भूतल में दो धर्म हैं—भूतलत्व एवं अधिकरणत्व। यहाँ भूतलत्वेन भूतल निरपेक्ष हैं—अधिकरणत्वेन भूतल सापेक्ष है—इस प्रकार भूतल का घटभेद स्वरूपता में कोई बाधक नहीं है। अभाव के अधिकरण रूप होने के कारण भूतल वृत्ति घटभेद भूतल से अनतिरिक्त होने पर भी भूतल वृत्ति घटभेदत्व भूतल से अतिरिक्त और घटभेदत्व का भेद भी अतिरिक्त—उनका भी भेद अतिरिक्त इस प्रकार अनवस्था की आशङ्का करके उसका परिहार करते हैं—'नच भेदत्व भेदमादाय' अर्थात् भेदत्व का भेद भी अधिकरण स्वरूप है इसलिये अनवस्था का प्रसंग नहीं है ।।१२।।

न चैवं भेदभेदमादायानवस्था, भूतलादौ घटत्वावच्छिन्ननिरूपितमेकं भेदत्वावच्छिन्ननिरूपितञ्चैकं भेदत्वमित्यनवस्थाप्रसंगाभावात्। भूतल-निष्ठघटनिरूपितभेदत्वस्य स्वनिरूपितभेदत्वेनाप्युपपत्तेश्च। तार्किकवत् समवायनिरूपकभेदेन भेदस्याऽभिन्नत्वात्। नाप्यन्योन्याश्रयः। भेदप्रत्यक्षे प्रतियोगितावच्छेदकस्तम्भत्वादिप्रकारकज्ञानस्यैव हेतुत्वात्। न तावत्

वज्रोत्तेजिका— अनवस्थां परिहृत्यान्योन्याश्रयं परिहरति-**नाप्यन्योन्याश्रय इति।** घटभेदबुद्धौ घटत्वेन रूपेण घटप्रतियोगिज्ञानं कारणं, न तु पटभिन्नत्वेन रूपेण घटप्रतियोगिज्ञानं, येनान्योन्याश्रयदोषः प्रसज्जेतेतिभावः। भेदबुद्धिम्प्रति स्तम्भत्वेनैव स्तम्भज्ञानं हेतुर्न तु कुम्भभिन्नत्वेनेत्यत्र किं विनिगमकमित्यतो विपक्षे बाधकतर्कमाह-**अन्यथेति।** भेदबुद्धावपरप्रतियोगिभिन्नत्वेन प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुत्व इत्यर्थः। जीवानुयोगिकब्रह्मप्रतियोगिकाभेदप्रतीतौ प्रतियोगिमुद्रया जीवभिन्नत्वेन ब्रह्मज्ञानं कारणं, तत्र ब्रह्मभिन्नत्वेन जीव इति ज्ञानं कारणमितिपरस्परसापेक्षत्वादन्योन्याश्रयो भवन्नयेऽपि समान इत्याह-**जीवस्येति।** अनुयोगित्वं षष्ठ्यर्थः। ब्रह्मैक्यप्रतीतौ=ब्रह्माभिन्नप्रतीतौ। तथाचान्योन्याश्रयनिरासाय भेदप्रत्यक्षे प्रतियोगितावच्छेदकरूपेण प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वं वाच्यम्। न त्वपरप्रतियोगिभिन्नत्वेन प्रतियोगिज्ञानस्येति। अन्योन्याश्रयदोषस्योत्पत्तौ भेदस्य ज्ञाने वा बाधकतेत्याशङ्कते—**किञ्चेत्यादिना।** यदि भेद उत्पद्येत स्यात्तदा तस्य बाधकता, तदेव तु न, तस्य नित्यत्वादित्यत आद्यविकल्पं निरस्यति-**नाद्य इति।** द्वितीयमपाकरोति-**न द्वितीय इति।** तव-मायावादिनः। विपक्षे बाधकतर्कं दर्शयति-

हिन्दी अनुवाद— यदि कहें कि भेद के भेद को लेकर अनवस्था होगी तो कहते हैं नहीं यह अनवस्था भी नहीं होगी, अर्थात् भूतल में दो भेद हैं—भूतल घट नहीं हैं, यह प्रतीति प्रसिद्ध एक भेद तथा भूतल भेद नहीं है—यह दूसरा भेद—यहाँ भेदत्वेन एकल भेदों का संग्रह हो जाने से अनवस्था नहीं होगी। अथवा भूतल वृत्ति घट प्रतियोगिक भेद तथा भेद प्रतियोगिक भेद के समनियत होने के कारण एक होने से अनवस्था का प्रसङ्ग नहीं होगा। इस विषय को दृष्टान्त द्वारा समर्थित करते हैं—तार्किकों की तरह। अर्थात् तार्किकों के मत में जैसे घट में रूप, रसादि प्रतियोगिक समवाय का प्रतियोगितावच्छेदक के भेद होने पर भी अभेद होता है, उसी प्रकार घटत्वादि प्रतियोगितावच्छेदक भेद होने पर भी भूतल वृत्ति समग्र भेद भी अभिन्न ही है। अन्योन्याश्रय भी नहीं होगा, क्योंकि भेद के प्रत्यक्ष में प्रतियोगितावच्छेदक स्तम्भत्व आदि प्रकारक ज्ञान ही हेतु है। अर्थात् घट भेद बुद्धि में घटत्वेन रूपेण घट रूप प्रतियोगी का ज्ञान कारण है, न कि पट भिन्नत्वेन रूपेण—

भेदप्रत्यक्षे भेदाश्रयाद्भिन्नत्वेन प्रतियोगिज्ञानं हेतुः। अन्यथा जीवस्य ब्रह्मैक्य प्रतीतौ ब्रह्मणो जीवैक्यधीरित्यन्योन्याश्रयापत्तेः। किञ्चान्योन्याश्रय उत्पत्तौ बाधकः। ज्ञप्तौ वा। नाद्यः। भेदस्याजन्यत्वात्। न द्वितीयः। भेदप्रतीतेस्तवाप्यावश्यकत्त्वात्। अन्यथा भेदभ्रमनिरासाय श्रवणाद्य-

अन्यथेति। भेदाप्रतीतावित्यर्थः। **भेदभ्रमेति।** यद्यन्योन्याश्रयभिया भेदप्रतीतिरेव नोदेति तदा कमपनेतुं वेदान्तश्रवणे श्रद्दधीतेत्यर्थः। अपि च युक्ति-कदम्बैस्तन्निराकरणं नोपपद्येतेत्याह-**भेदाप्रतीताविति।** भेदनिरसनयुक्तीनां भूषणयुक्त्य-भेदेन स्वव्याघातकत्वं समानमित्याशयेनाह-**स्वपरेति। दूषणमेव भूषणं,** भेदसाधक-मित्यर्थः। ननु भेदखण्डनयुक्तीनां तत्त्वतो भेदनिवारकत्वेऽपि व्यावहारिकभेदस्यानिरा* करणेन स्वव्याघातकत्वोपपत्तिरितिचेत्तत्राह-**ब्रह्मण्येति। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे"** तिश्रुतौ सत्यादिपदानां स्वरूपपरत्वे पर्यायतापत्तिः। प्रवृत्तिनिमित्तभेदाभावेन सामानाधिकरण्यलक्षणहानिप्रसङ्गादेवेतरपदवैयर्थ्यप्रसङ्गश्च, तद्वारणाय सत्यादिपदानि तत्तत्पदार्थविरोधिव्यावृत्तिमात्रपराणीति भवतां राद्धान्तो न सम्भवदुक्तिकः। भेदात्मकनलिनस्यान्योन्याश्रयग्राहेण ग्रस्तत्वात्, कथं वा सत्यादिपदेनासद्व्यावृत्तिः, ज्ञानपदेन जडादिव्यावृत्तिर्वा कर्तुं शक्यते। ब्रह्मण्यनृतभेदस्यापि तत्त्वतो निषेधे ब्रह्मण्यनृततादात्म्यापत्तिः, स्वस्मिन् स्वाभेदोऽपि मिथ्याभूतः स्यादिति-भावः। भेदमन्तरेणनित्यानित्यवस्तुविवेकाभावेन ब्रह्मजिज्ञासानुदयाच्छास्त्रवैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्य-कामेनापि भेद आवश्यक इत्याह-**नित्यानित्येति।** अत्रेदमवधेयम्-भेदप्रतीतिरेव नास्तीत्युच्यते, किम्वा सा न कारणजन्या, आहोस्विद्बाध्यविषया। नाद्यः

जिससे अन्योन्याश्रय दोष का प्रसंग होता। भेद बुद्धि के प्रति स्तम्भत्वेन रूप से ही स्तम्भ ज्ञान कारण हैं, न कि कुम्भ भिन्नत्वेन—इसमें क्या विनिगमक है—इसलिये यहाँ विपक्ष के बाधक तर्क उपस्थित करते हैं—अन्यथा—अर्थात् भेद बुद्धि में अपर प्रतियोगिक भिन्नत्वेन प्रतियोगी ज्ञान को हेतु मानने पर जीव के ब्रह्मैक्य प्रतीति में अर्थात् जीवानुयोगिक ब्रह्म प्रतियोगिक भेद की प्रतीति में प्रतियोगी मुद्रा से जीव भिन्नत्वेन ब्रह्मज्ञान कारण और ब्रह्म भिन्नत्वेन जीव यह ज्ञान कारण—इस प्रकार यहाँ भी परस्पर सापेक्ष होने के कारण अन्योऽन्याश्रय आपके मत में भी (केवलाद्वैतवादी के मत में भी) अन्योऽन्याश्रय समानरूप से होगा। दूसरी बात हम पूछते हैं कि अन्योऽन्याश्रय उत्पत्ति में बाधक है या भेद के ज्ञान में—(किञ्चान्योऽन्याश्रयः) यहाँ प्रथम पक्ष नहीं कह सकते, कारण यदि भेद की उत्पत्ति होती, तभी उसमें बाधकता होती, भेद तो अजन्य है, उसकी उत्पत्ति ही नहीं होती।

*स्वावतार रक्षणरुपव्यवहारकाले भेदानुच्छेदकत्वेनेति यावत्

योगात्। भेदाप्रतीतौ बहुयत्नैस्तन्निरासायोगाच्च, स्वपरपक्षदूषण-भूषणादिसर्वविप्लवापत्तेः। ब्रह्मण्यनृतजडपरिच्छन्नादिभेदस्यासिद्ध्या-

भेदभ्रमनिरासाय वेदान्तश्रवणायोगात्, भेदाप्रतीतौ तन्निराकरणप्रयासानुपपत्तेः, भेदः स्वरूपं, धर्मो वेति विकल्पासङ्गतेश्च। द्वितीये कारणाजन्यत्वमजन्यत्वेन, अकारणजन्यत्त्वेन वा। नाद्यः—भेदप्रतीतेर्नित्यत्वापत्या ब्रह्मज्ञानानिवर्त्यत्वापत्तेः, मायावादिनः प्रतिकूलाचरणापाताच्च। न द्वितीयः—व्याघातात्। तृतीये किं शुष्कतर्कैरेव भेदस्य बाध्यत्वाध्यवसायः, श्रुत्यादिना वा। नाद्यः—ऐक्यस्य ब्रह्मस्वरूपत्वेन तद्वन्निरपेक्षत्वापातात्, वेदान्तानामभेदपरत्वं दर्शयितुमिदं शास्त्रं प्रवृत्तं, न तर्कशास्त्रवत्केवलाभिर्युक्तिभिः कञ्चित्सिद्धान्तं साधयितुमिति त्वयैवोक्तत्वाच्च। न द्वितीयः—श्रुतेः साक्षिप्रत्यक्षाद्यबाधकत्वस्योक्तत्वादिति। ननु भेदबाधकस्य भेदाभावविषयकज्ञानस्य सद्भावाद् भेदप्रतीतिर्नोदीयादित्यत आह—**अपि चेति।** बाधकज्ञानस्य भेदोविषयश्चेत्तर्हि भेदबाधकत्त्वाभावाद्भेदसाधकत्त्वं तस्य **दुरपन्वहम्।** बाधकज्ञानस्य यद्यभेदोविषयस्तदापि भेदविषयिताया अनपगमाद् भेदप्रतीतिर्निराबाधा, तथाहि—अभेद इत्यत्र न भेद इति विग्रहवाक्ये नञ् शब्दस्य तदन्योऽर्थश्चेत्तर्हि भेदान्य इत्यर्थः फलितोभवति, यथा, अब्राह्मणोऽयमित्य-त्राब्राह्मणशब्दस्य ब्राह्मणभिन्नोऽर्थे। निष्पद्यते, तद्वदत्रापि, भेदभिन्नोऽभेदपदार्थ इत्यवगम्यते, तथासति

दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते, क्योंकि भेद की प्रतीति आप मायावादी के मत में भी आवश्यक है। अन्यथा भेद की प्रतीति न मानने पर वेदान्त श्रवण में क्यों प्रवृत्ति होती? दूसरी बात तर्क समूहों द्वारा उसका निराकरण भी उपपन्न नहीं होगा। और भेद खण्डन में प्रदत्त युक्तियों का भूषण स्वरूप युक्तियों से अभेद होने से स्वव्याघातकत्व समान है—इसी आशय से कहते हैं—'स्व परपक्ष दूषण भूषणादि सर्व विप्लवापत्तेः' तब तो दूषण ही भूषण होगा, अर्थात् भेद साधक होगा। यदि कहें कि भेद खण्डन युक्तियों के तात्त्विक भेद निवारक होने पर भी व्यावहारिक भेद का निराकरण न होने से स्वव्याघातकत्व की उपपत्ति होगी तो इस पर कहते हैं—'ब्रह्मण्यनृत' इत्यादि, अर्थात् तब ब्रह्म में अनृत, जड़ तथा परिच्छिन्न आदि भेद की असिद्ध्यापत्ति भी होगी। (भाव है कि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस श्रुति में सत्य आदि पदों के स्वरूपपरक मानने पर पर्यायतापत्ति होगी, प्रवृति-निमित्त के भेद का अभाव होने से समानाधिकरण लक्षण की हानि के प्रसङ्ग से ही इतर पद का वैयर्थ्य प्रसङ्ग भी होगा—इसके निवारणार्थ सत्य आदि पद तत् तत् पदार्थ विरोधि व्यावृत्ति मात्र परक है। यह जो आपका सिद्धान्त है—यह सम्भव नहीं होगा, क्योंकि भेदात्मक नलिन अन्योऽन्याश्रयरूपी ग्राह से ग्रस्त है और सत्य आदि पदों से असत्

पत्तेश्च। नित्यानित्यवस्तुविवेकासिद्धेश्च। अपि च भेदबाधकज्ञानं किं विषयकं, निर्विषयकज्ञानासम्भवाद्भेदमेव विषयीकरोति, अभेदं, वा यत्किञ्चिद् वेति वक्तव्यम्। नाद्यः-भेदावगाहिनो भेदबाधकत्वायोगात्,

---

बाधकबुद्धेर्भेदविषयकत्वेन भेदसाधकत्वमेव, न तु बाधकत्वम्। एवं नञो विरोधार्थकत्वेऽभावार्थकत्वे चापि बाधकत्वेनाभिमतस्याभेदज्ञानस्य भेदविषयकतया भेदबाधकत्वं न सिध्यति, अपितु तत्साधकत्वम्। न च विरोधाभावयोर्नञर्थत्वे। बाधधियोर्न भेदो विषय इति शङ्क्यम्; तयोस्तद्भेदव्याप्यत्वात्। यत्र यत्र तद्विरोधित्वं तद्भावत्वंच वर्तते तत्र तद्भेदोऽस्तीति सिद्धान्तितो नियमः, **दृष्टश्चैतत्**—घटाभावे, अस्ति तत्र घटविरोधित्वघटाभावत्वाभ्यां सार्धं घटभिन्नत्वम्, एवं भेदाभावे तिष्ठद्भ्यां भेदविरोधित्वभेदाभावत्वाभ्यां समं भेदभेदोऽस्त्येवेत्यर्थेषु त्रिष्वपि नञो भेदविषयकताया बाधधियो दुष्परिहरतयाऽनपोद्यं भेदसाधकत्वमिति। तदन्य इत्यादौ तच्छब्दत्रयेण भेदस्य परामर्शाद् भेदान्य इत्यादिरर्थोऽवगन्तव्यः। तदनन्यत्व

की व्यावृत्ति भी कैसे होगी और कैसे ज्ञान पद से जड़ आदि की व्यावृत्ति ही कर सकते हैं। ब्रह्म में अनृत के भेद का भी तत्त्वतः निषेध करने पर ब्रह्म में अनृत के तादात्म्य की आपत्ति होगी स्व में स्व का अभेद भी मिथ्या हो जाएगा। भेद के विना नित्यानित्य वस्तु का विवेक न होने से ब्रह्म जिज्ञासा का अनुदय होने से शास्त्र के वैयर्थ्य का प्रसङ्ग भी होगा—इसलिये बिना इच्छा के भी भेद आवश्यक है इसीलिये कहते हैं—नित्यानित्य वस्तु विवेक की सिद्धि भी नहीं होगी।

यदि कहें कि भेद बाधक भेदाभाव विषयक ज्ञान के सद्भाव से भेद की प्रतीति ही नहीं उदित होगी—इस पर कहते हैं—'अपि च भेदबाधकज्ञानम्' अर्थात् बाध्यज्ञान का यदि भेदविषय होगा तब तो भेद के बाधक के अभाव से उसमें भेद साधकत्व कठिन है। बाध्यज्ञान का यदि अभेद विषय होगा, तब भी भेद विषयिता के अनपगम होने से भेद की प्रतीति अवश्य होगी। अर्थात् अभेदः यहाँ न भेदः ऐसा विग्रह वाक्य करने पर नञ् शब्द का तदन्य अर्थ यदि करें तब अभेद का अर्थ होगा भेदान्य। जैसे अब्राह्मणोऽयं यहाँ अब्राह्मण शब्द का ब्राह्मण भिन्न अर्थ होता है, उसी प्रकार यहाँ भी भेद भिन्न अभेद पदार्थ होगा, ऐसा होने पर बाधक बुद्धि के भेदविषयक होने पर भेद साधक ही होगा, न कि बाधक। इसी प्रकार नञ् के

प्रत्युत भेदसाधकत्त्वात्। न द्वितीयः। तत्र नञस्तदन्यस्तद्विरोधी तदभावो वार्थोऽभिमतः। त्रिष्वप्यर्थेषु भेदो दुर्निवारः। तदनन्यत्वे, तद्विरुद्धतदभावत्वयोरयोगात्॥ १३॥

इति। तदभिन्नत्व इति तदर्थः। **अयोगादिति।** अयमाशयः—बाधकज्ञानविषयीभूतो योऽभेदः स च तदनन्यत्वरूपश्चेत्तदाऽभेदघटकनञ् शब्दार्थौ तद्विरोधितदभावत्वे न संगच्छेयाताम्। दृश्यते च घटानन्यत्वेन सहावर्तमानं घटे घटविरोधित्वमिति तदन्यत्व-रूपंनञर्थमादायाभेदशब्दार्थेन भेदभिन्नत्वेन साकं भेदविरोधिभेदाभावत्वे सङ्गमनीये। तथाच बाधकधीविषयतावच्छेदकस्य भेदात्यन्ताभावत्वादेर्भेदभेदं विनाऽनुपपत्तेस्तत्सिद्धिरिति भावः ।।१३।।

विरोधार्थक मानने पर या अभावार्थक मानने पर बाधकत्वेन अभिमत अभेद ज्ञान का भेद विषयक होने से भेद बाधकत्व सिद्ध नहीं होता अपितु भेद साधकत्व ही होगा। यदि कहें कि विरोध तथा अभाव के अनर्थ मानने पर बाध एवं धी का भेद विषय नहीं होगा तो कहते हैं ऐसी शङ्का नहीं कर सकते—क्योंकि वे दोनों भेद व्याप्य हैं। क्योंकि जहाँ-जहाँ भी यह विरोधित्व है एवं तदभावत्व है—वहाँ उसका भेद है—यह सैद्धान्तिक नियम है। यह बात घटाभाव में देखा गया है। वहाँ घट विरोधित्व एवं घटाभाव के साथ घट भिन्नत्व है इसी प्रकार भेदाभाव में स्थित भेद विरोधि एवं भेदाभावत्व के साथ भेद का भेद भी है ही—इस प्रकार तीनों अर्थों में नञ् की भेदविषयकता में बाध बुद्धि अनिवार्य होने से भेद साधकत्व अखण्डनीय है—तीनों अर्थों में भेद दुर्निवार है। तदनन्यत्वे अर्थात् उससे अभिन्न होने पर तद्विरुद्ध एवं तदभावत्व का सम्भव नहीं है। भाव यह है कि बाधक ज्ञान का विषयीभूत जो अभेद है, वह यदि तदनन्यत्व रूप होगा तब अभेद घटक नञ् शब्दार्थ तद्विरोधी एवं तदभाव ये दोनों अर्थ संगत नहीं होंगे। देखा जा रहा है—जो घटानन्य के साथ अवर्तमान घट में घट विरोधित्व। तदन्यत्वरूप नञर्थ को लेकर अभेद शब्दार्थ रूप भेद भिन्नत्व के साथ भेद विरोधी एवं भेदाभाव संगमनीय है—समन्वय योग्य है। इस प्रकार बाधक बुद्धि विषयतावच्छेदक रूप भेदात्यन्ताभावत्व आदि का भेद के भेद बिना अनुपपत्ति होने से उसकी सिद्धि होगी ।।१३।।

भेदाभावग्राहिणाऽपि प्रतियोगिविलक्षणतयैवाभावस्य ग्रहणाच्च, न तृतीयः, औदासीन्येन प्रवृत्तस्य इदमिति ज्ञानवदबाधकत्वात्। किञ्च बाधकज्ञानं त्रिविधम्। नायं भेद इति, नास्त्यत्र भेद इति, अन्यदेव भेदात्मनाऽभादिति वा। तत्र नेदं रजतं, नास्त्यत्र रजतम्, अन्यदेव रजतात्मनाऽभादितिवत्तदेतत्सर्वथा भेदावगाहीति कथं भेदमात्रबाधकम्। किञ्च बाधज्ञानं भेदाद्भिन्नतया स्वार्थावगाहि न वेति। आद्ये भेदस्थितिः। द्वितीये भेदबाधासम्भवः। तस्मात्क्लृप्तविषयत्वान्नान्योन्याश्रयत्वादेरुत्थानम्, उत्थितस्य च भेदाभासत्वम्। न च निर्वचनीयो भेदोऽङ्गीक्रियते तत्र स्वरूपान्तर्भावबहिर्भावाभ्यां सदसत्त्वाभ्यां वाऽन्येनापि धर्मेण वा निर्वचनीयत्वमिष्टमेवेति वाच्यम्। तर्कबाध्यत्वमात्रेणानिर्वाच्यस्य त्वदभि-मतैक्यानिर्वचनीयत्वं सुशकम्।

वज्रोत्तेजिका— भेदाभावग्राहिणापीति। भेदाभावविषयकेनापि बाधकज्ञानेनेत्यर्थः। **प्रतियोगिविलक्षणतयैवेति।** प्रतियोगिभूतभेदभेदव्याप्येन भेदाभावत्वादिनेत्यर्थः। अभावस्य—भेदाभावस्य। प्रागेव प्रकटीकृतोऽयमाशयः। यत्किञ्चिद्वेति तृतीयविकल्पं निरस्यति—**औदासीन्येनेति।** भेदाभावत्वादिकमविषयीकृत्येत्यर्थः। **अबाधकत्वादिति।** उदासीनतया प्रवृत्तस्य बाधकज्ञानस्य बाधकत्वाभावादित्यर्थः। तथाच भेदाभाव-त्वादेर्बाधकधीविषयतावच्छेदकत्वमावश्यकमिति तात्पर्यम्। भेदबाधकज्ञानं विशिष्य दर्शयति—**किञ्चेत्यादिना।** नायं भेद इत्यादि। अयं सद्रूप आत्मा न भेद इति धीः 'भेदः सन्निति ज्ञाने बाधिका' ''नात्र भेदः'' इति धीः 'अत्र भेदः' इत्यत्र बाधिका।

हिन्दी अनुवाद— भेदाभावग्राहिणापि—अर्थात् भेदाभाव विषयक बाध ज्ञान से प्रतियोगि विलक्षण तयैव यानी प्रतियोगी भूत भेद भेद व्याप्य भेदाभावत्व आदि से भेदाभाव का ग्रहण है। अब यत् किञ्चित् इस पूर्वोक्त तृतीय विकल्प का खण्डन करते हैं—'औदासीन्येनप्रवृत्तस्य इति' अर्थात् भेदाभावत्व आदि को विषय किये बिना प्रवृत्त ज्ञान किसी का बाधक नहीं होता। इस तरह भेदाभावत्व आदि का बाधक बुद्धि विषयतावच्छेदकत्व आवश्यक है यह तात्पर्य है। अब भेदबाधक ज्ञान का विशेष रूप से स्वरूप बताते हैं—'किञ्च बाधक ज्ञानं त्रिविधम्' द्वारा अर्थात् बाधक ज्ञान तीन प्रकार के होते हैं—१. नायं भेद—यह भेद नहीं है, २. नास्त्यत्र भेद—इसमें भेद नहीं है। यहाँ नायं भेद अर्थात् सद्रूप आत्मा भेद नहीं, यह बुद्धि भेद है। यह बुद्धि सत् ज्ञान की बाधिका है। नायं भेदः यह बुद्धि अथ भेदः इस बुद्धि की बाधिका है—तीसरा विकल्प है—अन्यदेव भेदात्मनाऽभात्। अन्यत् माने भेदान्यत् जो भेदात्मना प्रतीत हुआ—वह ब्रह्म भेद भिन्न ही है। यहाँ नेदं रजतम् नास्त्यत्र रजतम् अन्यदेव रजतात्मनाऽभात्—ये तीनों प्रतीतियाँ भेदावगाही हैं—ये भेद के

नन्वैक्यस्य ब्रह्मस्वरूपत्वात्तद्बाधे शून्यत्वापत्तिरिति चेन्न; भेदस्याप्यधिकरणात्मकतया तन्मात्रबाधे शून्यत्वापत्तेस्तुल्यत्वात्। ननु भेदस्य घटस्वरूपत्वे तन्निरूपकप्रतियोगिनोऽपि तत्स्वरूपतापत्तिः, नहि भेदरूपमात्रं घटः किन्तु पटप्रतियोगिकभेदरूप इति चेन्न, भेदप्रतियोगिन उपलक्षणत्वेन स्वरूपतायामनन्वयात्। अन्यथा दुःखनिवृत्तेः पुमर्थतया दुःखस्यापि पुमर्थत्वं, अनृतव्यावृत्त्यज्ञाननिवृत्त्योर्ब्रह्मस्वरूपत्वेऽनृतादीनामपि तद्रूपत्वं, अज्ञान-निवृत्तेर्मोक्षत्वेऽज्ञानस्य मोक्षत्वञ्च स्यात्। किञ्च स्वरूपस्याज्ञानाधिष्ठनतया सदैव

'नायं भेद' इति ज्ञानमेव भेदभ्रमानुवादेनाप्याह—अन्यदेवेत्यादि। अन्यत्—भेदान्यत्। भेदात्मना यत्प्रत्यभात्, तद् ब्रह्म भेदभिन्नमेवेत्यर्थः। बाधकत्वेनाभिमतस्योक्तज्ञानत्रयस्य भेदविषयकत्वात्कथं भेदबाधकत्वमित्याशयेन परिहरति-**एतत्सर्वथाभेदावगाहीति।** एतत्—पूर्वोक्तज्ञानत्रयम्। तथाचोक्तबाधकज्ञानस्य भेदविषयकत्वाद् भेदबाधक-त्वानुपपत्तेर्भेदसिद्धिरिति भावः। नन्वेकमेवानेकात्मनाप्रत्यभादिति ज्ञानं बाधकमिति चेन्न, एकानेकयोर्वस्तुनो भेदाभावे वैलक्षण्याग्रहणे च बाधकत्वायोगात्। एवञ्च बाधधीर्भेदाद्भिन्नतया स्वार्थमवगाहते न वा? आद्ये, भेदः स्थिरः। अन्त्ये, भेदबाधिका न स्यादित्याह-**किञ्चेति।** उपसंहरति-**तस्मादिति।** यस्तु पदार्थान्निरुच्य व्यवस्थापयति तं प्रति अधिकरणस्वरूपो वा धर्मो वा भेद इति दूषणं शोभते, नास्मास्वनिर्वचनीयवादिषु, प्रतिभासमानोऽयं भेदःस्वरूपान्तरभावबहिर्भावाभ्यां

बाधक कैसे होंगे? दूसरी बात यदि पूछें कि बाध बुद्धि भेद से भिन्न रूप में स्वार्थ का अवगाहन करती है या नहीं? प्रथम पक्ष में भेद स्थिर होगा—अन्तिम पक्ष में भेद बाधिका नहीं होगी—इसलिये कहते हैं 'किञ्च बाधज्ञानं भेदाद् भिन्नतया स्वार्थावगाहि न वा' इसलिये निश्चित विषय होने के कारण यहाँ अन्योऽन्याश्रय आदि दोषों का उत्थान संभव नहीं है। उत्थित अन्योऽन्याश्रय के भेदाभासत्व है। अब यहाँ खण्डनकार के समाधान का अनुवाद करके उसका खण्डन करते हैं—'नच निर्वचनीयो भेदोऽङ्गी क्रियते'........से लेकर 'सुशकं वक्तुम्' पर्यन्त खण्डनकार का कथन है कि जो पदार्थों का निर्वचन कर व्यवस्था करते हैं, उनके प्रति ही यह दोष हो सकता है कि भेद अधिकरणस्वरूप है, या भेद धर्मरूप हम लोग तो अनिवर्चनीयवादी है—हमें यह दोष नहीं हो सकते, क्योंकि प्रतिभा समान यह भेद स्वरूपान्तर्भाव बहिर्भाव यानी सत् असत् से अन्य धर्म से भी अनिवर्चनीय है—तो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि तर्क से अबाध्यत्व मात्र से अनिर्वाच्य का आप द्वारा सम्मत ऐक्यानिवर्चनीयत्व संभव है। यदि कहें कि जीव ब्रह्मैक्य ब्रह्म स्वरूप होने से उसके बाधित होने पर शून्यत्व की आपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि भेद के भी अधिकरण

भानादुपदेशवैयर्थ्यात्स्वरूपज्ञानस्य भेदादिज्ञानाविरोधित्वाच्च, न हि भूतलमिति ज्ञानं घटवत्वस्य घटवद्भेदस्य वा धियो बाधकमिति भावः ॥ १४ ॥

सदसत्वाभ्यामन्येनापि धर्मेणानिर्वाच्य इत्यङ्गीकारादिति खण्डनकारसमाधिमनूद्य दूषयति नचेत्यारभ्य सुशकं वक्तुमित्यन्तेन। **भेदस्यापीति।** यदि भेदमात्रं घटः स्यात्तर्हि घटप्रतियोगकिभेदस्यापि घटस्वरूपतापत्तिस्तद्वारणाय पटविशिष्टभेदस्यैव घटस्वरूपत्वं वाच्यम्। तथा सति पटस्यापि घटस्वरूपत्वापत्तिः। न चेष्टापत्तिर्घटपटयोरभेदे ''घटमानय'' इत्युक्तौ पटस्याप्यानयनप्रसङ्गात्। तथा च न भेदस्याधिकरणस्वरूपत्वं, येन तद्बाधे शून्यतापत्तिः स्यादित्यभिप्रेत्याशङ्कते-**नन्विति।** यदि पटस्य प्रतियोगित्वसम्बन्धेन भेदांशे विशेषणत्वं स्यात्तदा पटस्य घटस्वरूपत्वं स्यान्नत्वेवमित्याशयवान्परिहरति—**नेति।** यतः प्रतियोग्युपलक्षणमतः घटस्वरूपतायां न तस्योपयोग इत्यर्थः। विपक्षे बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति।** दुःखविशिष्टनिवृत्तेः पुमर्थत्वे दुःखस्यापि पुरुषार्थत्वं स्यात्तन्निरासायदुःखस्य निवृत्यंश उपलक्षणत्वं तदर्थः। **सदेवेति।** मोक्षदशायामज्ञानदशायाञ्चैकरूपेणैव भानादुपदेशस्य वैयर्थ्यं स्यादित्याशयः। **नहि भूतलमिति।** यथा घटभेदबुद्धिं भूतलमिति ज्ञानं न प्रतिबध्नाति तथैव स्वरूपज्ञानमपि भेदबुद्धिमित्यर्थः ।।१४।।

स्वरूप होने के कारण उसके बाध होने पर शून्यत्वापत्ति समान है। यदि कहें कि यदि भेदमात्र घट होगा तो घट प्रतियोगिक भेद का भी घटरूपता की आपत्ति होगी—इस के निवारणार्थ परविशिष्ट भेद में ही घटरूपता कहेंगे—ऐसा होने पर पट में भी घटस्वरूपत्वापत्ति होगी। इसे इष्टापत्ति नहीं कह सकते, घटपट के अभेद मानने पर 'घटमानय' कहने पर पट के भी आनयन का प्रसंग हो जाएगा। इस तरह भेद अधिकरण स्वरूप नहीं माना जा सकता, जिससे उनके बाध होने पर शून्यतापत्ति होगी—इसी अभिप्राय से आशंका करते हैं—'नन्वैक्यस्य ब्रह्मस्वरूपत्वात्' अर्थात् भेद के प्रतियोगी के उपलक्षण होने से स्वरूपता में उसका अन्वय नहीं होगा। यहाँ विपक्ष में बाधक तर्क उपस्थित करते हैं—'अन्यथा इति' अर्थात् दुःख निवृत्ति पुरुषार्थ होने के कारण दुःख भी पुरुषार्थ हो जाएगा और अनृत व्यावृत्ति तथा अज्ञान निवृत्तियों के ब्रह्मस्वरूप होने से अनृत आदि में भी तद्रूपता तथा अज्ञान निवृत्ति को मोक्ष स्वरूप मानने पर अज्ञान में भी मोक्षरूपता हो जाएगी और दूसरी बात स्वरूप के अज्ञान का अधिष्ठान होने से उसकी मोक्ष दशा एवं अज्ञान दशा दोनों दशाओं के एक रूप से ही मान लेने के कारण उपदेश का वैयर्थ्य हो जाएगा। इसी तरह स्वरूप ज्ञान भेदादि विज्ञान के अविरोधी होने के कारण भी भूतलम् यह ज्ञान घटवत्ता या घटवद्भेदरूपबुद्धि का ही बाधक नहीं होता, यह भाव है ।।१४।।

किञ्च त्वन्मते ब्रह्मण्यनृतादिभेदो ब्रह्मज्ञानाबाध्यो वक्तव्यः, शून्याद्यनात्मकघटादौ शून्यादितः स्वज्ञानाबाध्यभेददर्शनात्। ननु अविचारितमिदं, दृष्टान्तवैषम्यात्। ब्रह्मणः स्वेतरसर्वाधिष्ठानत्वे-नानृतादिभेदस्तज्ज्ञानबाध्य एव। घटस्य त्वनधिष्ठानत्वान्न तज्ज्ञानं भेदबाधकमिति चेन्न, यत्र तादात्म्येन यदध्यस्तं तत्र तत्प्रतियोगिकभेदं प्रति तस्याधिष्ठानताया व्याहतत्वात्, कल्पितघटप्रतियोगिकभेदस्य वास्तव घटे वास्तवत्वात्। न चास्मन्मते भेदमात्रस्य

वज्रोत्तेजिका— यद्यदनात्मकं तज्ज्ञानं तद्भेदस्याबाधकमिति नियमः। यद्घटादि शून्यानात्मकं भवति तद्घटादिज्ञानं शून्यादिभेदस्याबाधकं, तथाऽनृतदुःखपरिच्छिन्नाद्यनात्मके ब्रह्मण्यनृतादिव्यावृत्तिर्ब्रह्मज्ञानाबाध्येत्याह— **किञ्चेति।** यत् यस्याधिष्ठानं तत्तदधिष्ठानसाक्षात्कारबाध्यमिति व्याप्तिमभिप्रेत्योक्तदोषं निरस्यति-**नन्विति। स्वेतरेति।** स्वं=ब्रह्म। **तज्ज्ञानमिति।** घटज्ञानमित्यर्थः। तथा च घटे उक्तहेतोरभावेन न साध्यासत्वमिति भावः। यत्र तादात्म्येनेति। यत्र=शुक्त्यादौ। यत्-रजतादि। **तत्प्रतियोगिकेति।** रजत-प्रतियोगिकभेदमित्यर्थः। **तस्य**=शुक्त्यादेः वास्तवघटस्य कल्पितघटप्रतियोगिक भेदाधिष्ठानतया हेतोः सत्वाद्

हिन्दी अनुवाद— दूसरी बात और कहते हैं कि जो वस्तु यदनात्मक होती है— उसका ज्ञान उसके भेद का अबाधक होता है—यह नियम है। जो घटादि शून्यात्मक से भिन्न होता है—वह घटादि ज्ञान शून्यादि भेद का अबाधक होता है—उसी प्रकार अनृत, दुःख, परिच्छिन्नाधनात्मक ब्रह्म में अनृत आदि की व्यावृत्ति ब्रह्मज्ञान से अबाध्य होगी—यही बात कहते हैं—'किञ्च त्वन्मते।' यदि कहें कि जो जिसका अधिष्ठान होता है, वह उस अधिष्ठान के साक्षात्कार से बाह्य होता है—ऐसी व्याप्ति है—तब उक्त दोष नहीं होगा—तो उसका उत्तर देते हैं—दृष्टान्त वैषम्यात्—यह दृष्टान्त विषम दृष्टान्त है, ब्रह्म अपने से भिन्न सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठान होने से अनृत आदि का भेद उसके ज्ञान से बाह्य ही होगा। घट तो अधिष्ठान नहीं है, इसलिये उसका ज्ञान भेद का बाधक नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि जिस शुक्ति आदि में जो रजत आदि अध्यस्त

कल्पितत्वेनाभेदस्यैव वास्तवत्वमिति वाच्यम्। भेदाभावे गुरुशिष्यादिव्यवस्थानुपपत्तेः। ननु तात्त्विकभेदाभावेऽपि गुरुशिष्यस्वपरपक्षदूषणभूषणसत्यानृतादीनां कल्पितभेदगतत्वेन व्यवस्था सुगमेति चेन्न; कल्पितभेदेनाकल्पिताभेदकार्यप्रतिबन्धासम्भवात्। ननु नायं नियमः, कल्पितकान्तया विश्लेषकार्यमिव कल्पिताज्ञानेन स्वप्रकाशरूपब्रह्मकार्यं प्रतिबध्यत इति

घटाधिष्ठानसाक्षात्कारेण भेदनिवृत्तेरावश्यकत्वादित्यभिप्रेत्य परिहरति-**नेति। कल्पितेति।** वास्तविकघटे कल्पितघटप्रतियोगिकभेदो वास्तविक इत्यर्थः। **ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य** सर्वस्यापि मिथ्यात्वेन भेदस्यापि कथं वास्तविकत्वमित्याशङ्क्य परिहरति **न चेति**! तात्त्विकभेदाभावेऽपि काल्पनिकभेदमादाय सर्वव्यवस्थोपपत्तिरित्याह—**नन्वित्यादिना। व्यवस्थेति।** भेदात्मकदोषैर्भेदस्यैव साधनमभेदप्रमाणैरभेदस्यैव साधनमिति व्यवस्थेत्यर्थः। न च "परस्परविरुद्धयो" रिति न्यायेन भेदाभेदयोस्तात्त्विक भेदाभावेऽतात्त्विकभेद आवश्यक इति वाच्यम्। उक्तव्यवस्थार्थं भेदाभेदयोस्तात्त्विक भेदानङ्गीकारात्। व्यावहारिकभेदेनोक्तव्यवस्थोपपत्तेरिति भावः। **अकल्पिताभेद कार्येति**-अकल्पितो योऽभेदस्तस्य यत्कार्यं व्यवस्थाभावस्तत्प्रतिबन्धासम्भवादित्यर्थः कल्पितेनापि तात्त्विककार्यदर्शनान्नोक्तनियमः साधीयानित्यभिप्रेत्याह-**नन्विति।** अज्ञानेन— अविद्यया। स्वप्रकाशरूपं ब्रह्मणः कार्यं। कल्पितकान्ताया ज्ञानं विश्लेषकार्यप्रतिबन्धकं, न तु सेत्यतो दूषयति—**दृष्टान्तवैकल्यादिति।** व्यावहारिक-

होता है उसमें रजतादि प्रतियोगिक भेद के प्रति उसकी अधिष्ठानता व्याप्त होती है। कल्पित घट प्रतियोगिक भेद वास्तव घट के वास्तव हैं। यदि कहें कि मुझ मायावादी के मत में भेदमात्र कल्पित है—अभेद ही वास्तव हैं तो ऐसा नहीं कह सकते यदि भेद नहीं होता तो गुरु शिष्य आदि की व्यवस्था ही उपपन्न नहीं हो सकती। यदि कहें कि तात्त्विक भेद का अभाव होने पर भी कल्पित भेद के आधार पर गुरु शिष्य, स्वपक्ष परपक्ष, दूषण भूषण, तथा सत्य-अनृत आदि व्यवस्था सम्भव है तो ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि कल्पित भेद से अकल्पित अभेद कार्य का प्रतिबन्ध सम्भव नहीं है। यदि कहें ऐसा कोई नियम नहीं है, तो उसे लोक में कल्पित कान्ता से वियोगजनित कार्य की तरह कल्पित अज्ञान से स्वप्रकाश से ब्रह्म कार्य का प्रतिबन्ध हो सकता है तो

चेन्न; दृष्टान्तवैकल्यात्। परमार्थसद्रूपस्याकल्पितकान्ताज्ञानस्यैव विश्लेषकार्यं प्रति हेतुत्वान्न कल्पितकान्ताया इति बोध्यम्। किञ्च भेदस्य व्यावहारिकसत्वार्थं त्वयाऽप्यन्योन्याश्रयादिदोष उद्धरणीयः,

भेदरक्षार्थमन्योन्याश्रयादिदोषपरिहारस्तवाप्यावश्यक इत्याशयेनाह **किञ्चेति। परस्परसापेक्षेणेति।** न ह्यन्योन्याश्रयदुष्टस्य भेदस्य व्यावहारिकतेत्याशयः। ननु व्यावहारिकेऽन्योन्याश्रयदोषो नेतिचेत्तत्राह—**न हीति।** मृत्सापेक्षो घटस्तत्सापेक्षत्वामृदो न भवतीति, नान्योन्याश्रयः। आकाशवाय्वादेरेवान्योन्यमुपादानाधिष्ठानत्वे, स्यातामित्यज्ञानब्रह्मणोस्तेन कल्प्येस्यातामित्यापत्तिभिया *तत्रेष्टापत्तिः कर्तुमशक्या। अन्योन्याश्रयादिदुष्टस्यापि भेदस्याविद्यासामर्थ्याद् व्यावहारिकता चेत्तर्हीश्वरसामर्थ्यात्ता-दृशस्यापि पारमार्थिकतैवास्त्वित्याशङ्क्य-निषेधति—**नेति।** एतावता प्रबन्धेन सामान्यरूपेण भेदस्य पारमार्थिकत्वमुपपाद्य विशेषतस्तमेवार्थं पुनर्व्युत्पादयति शङ्कोत्तरभावेन। शङ्कते—**नन्विति।** अविद्यादिरूपो यो द्वितीयः—द्वितीयशब्दाभिधेयः तस्य निवृत्तिरूपात्यन्ताभावश्च ब्रह्मैक्यंचादिर्यस्येति विग्रहः। अविद्यानिवृत्तित्वादिना ज्ञानमविद्याधीसापेक्षम्। अत्यन्ताभावश्च प्रतियोगि सापेक्षः। जीवब्रह्मैक्यं-भेदाभावः स च भेदरूपप्रतियोगिसापेक्षः। आदिना ब्रह्माभेदस्यास्तिब्रह्मेत्यादौ कालसापेक्ष-स्यास्तित्वस्य परिग्रहः। अविद्यानिवृत्त्यादयो यावन्तः पदार्थास्सन्ति ते सर्वेऽपि सापेक्षा दृश्यन्ते यथा तेषां निरपेक्ष ब्रह्मस्वरूपत्वमवश्यं वाच्यम्। अन्यथाऽद्वैतहान्यापत्तेः। तथा प्रतियोगिसापेक्षस्य भेदस्य निरपेक्षघटादिस्वरूपत्वे न

उसका उत्तर देते हैं—यह दृष्टान्त सही नहीं है परमार्थ सद्रूप अकल्पित कान्ता का ज्ञान ही विश्लेष कर्म के प्रति हेतु होने से कल्पित कान्ता के ज्ञान विश्लेष कार्य का हेतु संभव नहीं। दूसरी बात व्यावहारिक भेद की रक्षा हेतु अन्योऽन्याश्रय दोष के परिहार आपके लिये भी आवश्यक है, परस्पर सापेक्ष होने पर व्यवहार भी सम्भव नहीं है। यदि कहें कि व्यावहारिक में अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं है तो इस पर कहते हैं—'नहि व्यावहारिक मृदादेः........' इत्यादि व्यावहारिक मृत्तिका आदि में स्वजन्य घटादि सापेक्षत्व नहीं है—मृत्तिका सापेक्ष घट है—घट सापेक्ष मृत्तिका नहीं होती—इसलिये वहाँ अन्योऽन्याश्रय नहीं है। यदि कहें कि हमारे केवलाद्वैतवादी के मत में अविद्या की महिमा सभी अनुपपत्तियों का परिहार सम्भव है तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि तब तो अविद्या सहित

*मृदो घटसापेक्षत्वे।

परस्परसापेक्षेण व्यवहारस्याप्यसम्भवात्, नहि व्यावहारिकमृदादेः स्वजन्यघटादिसापेक्षत्वम्। ननु ममाविद्यासामर्थ्यात् सर्वानुपपत्ति-परिहार इति चेन्न; अविद्यासहितप्रपञ्चम्प्रत्यविद्याया एवाधिष्ठानत्वा-पत्तेः, तथात्वेचात्माश्रयो दुर्वारः, दोषस्याविद्यासामर्थ्येनैव निरासात्॥ १५॥

किञ्चिद्बाधकमस्तीत्यर्थः। सापेक्षत्वनिरपेक्षत्वयोर्विरोधं परिहरन्नाह—**अविद्यानिवृत्त्यादेरिति।** अविद्यानिवृतिवृत्तिसापेक्षत्वं काल्पनिकम्, ब्रह्मवृत्तिनिरपेक्षत्वन्तु तात्त्विकं तयोर्विरोधो न घटते समसत्ताकत्वाभावादित्यर्थः। उत्तरकाले बाधनिश्चयेन पूर्वज्ञानस्य काल्पनिकत्वं निश्चीयते। यथा नेदं रजतमिति ज्ञानेन शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानं काल्पनिकं प्रतीयते। बाधनिश्चय एव काल्पनिकत्वे मानं, नात्र बाधनिश्चयो येन अविद्यानिवृति-वृत्तिसापेक्षत्वस्य काल्पनिकत्वं स्यादित्याशयेनोक्तशङ्कां परिहरति—**नेति।** विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** बाधनिश्चयं विनाप्यविद्यकत्वस्वीकार इति तदर्थः। यदि च निरपेक्षाज्ञाननिवृत्तिरूप एकोत्यन्ताभावोऽपरश्च। कल्पिताज्ञाननिवृत्तिस्वरूपोत्यन्ताभाव इत्युच्यते तदाप्याह—**अपरश्चेति। व्याघात इति।** अयं प्रथमाभावोऽयं द्वितीयाभाव इति वदतस्तव सिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातः। यद्यभावद्वयं सिद्धं तदा भेदोऽपि सिद्धः। यदि न सिद्धं तदा नेष्टसिद्धिरित्याशयः। तस्यैव—अविद्यानिवृत्तिरूपात्यन्ताभावस्यैव। द्वितीयत्वात्—भिन्नत्वात्। तथाच भेदःसिद्ध इति भावः ।।१५।।

समस्त प्रपञ्च के प्रति अविद्या में सर्वाधिष्ठानत्व की आपत्ति हो जाएगी—फिर तो आत्माश्रय दोष अपरिहार्य हो जाएगा। दोष का अविद्या की सामर्थ्य से ही खण्डन हो जाएगा।

यहाँ तक के ग्रन्थ से सामान्य रूप से भेद का पारमार्थिकत्व का उपपादन करके विशेष रूप से उसी बात का (भेदसिद्धिक) उपपादन करते हैं—'ननु अविद्यादि द्वितीय..........' इत्यादि ग्रन्थ से ।।१५।।

नन्वविद्यादिद्वितीयनिवृत्यन्ताभावब्रह्मैक्यादेः सापेक्षस्य निरपेक्षब्रह्मात्मकत्वं यथा, तथा सापेक्षस्य भेदस्य निरपेक्षघटादिरूपत्वं युक्तम्, अविद्यानिवृत्यादेः सापेक्षस्याविद्यकतया वास्तवनिरपेक्षत्त्वाविरोधित्त्वादितिचेन्न, निवृत्यादिवृत्ति सापेक्षत्वस्य बाधकाभावेनाविद्यकत्वे मानाभावात्। नहि निवृत्त्यादिकं प्राक्

वज्रोत्तेजिका— द्वितीयत्वे हेतुमाह—**आविद्यकत्वाच्चेति**। यतोऽऽविद्यकोऽतएव द्वितीयाभाव इत्यर्थः। द्वितीयाभावस्य ब्रह्मस्वरूपत्व आपत्तिं दर्शयति—**अविद्यानिवृत्तीति**। **तस्यापि**—अविद्यानिवृत्तिरूपद्वितीयाभावस्यापि। उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**नहीति रजतेति**। रजतस्यायोऽभावस्तस्मादभिन्नाया शुक्तिस्तस्याः स्फुरण इत्यर्थः। अभावस्याधिकरणस्वरूपत्वाभिप्रायेणेदम्। **तत्वेन**—प्रपञ्चाभावत्वेन। ब्रह्मत्वेन च। इदं ब्रह्मेति प्रतीताविन्दन्त्वेनैव ब्रह्मस्फुरणं न तूक्तरूपेणेत्याह—**किन्त्विति**। समाधत्ते—**तत्वेदन्त्वयोरिति**। तत्त्वेदन्त्वयोर्ब्रह्मणाऽनतिरिक्तत्वात् ब्रह्मस्वरूपत्वं वाच्यमन्यथा निर्धर्मिकत्वव्याघातापत्तेरिति भावः। ऐक्यस्य ब्रह्मस्वरूपभिन्नत्वेऽद्वैतहानिः। मिथ्यात्वे तत्परस्य "तत्वमस्यादे" रतत्वावेदकत्वं—भेदस्य सत्यत्वञ्च स्यादिति प्रागभिहितम्। तत्रैक्यस्य मिथ्यात्वे भेदस्य सत्यत्वं कुत इत्यत्र व्याप्तिरूपप्रमाणमुपन्यस्यति—**अपि**

हिन्दी अनुवाद— ७यदि कहें कि अविद्यादि रूप जो द्वितीय शब्दाभिधेय है, उसका निवृत्ति रूप अत्यन्ताभाव तथा ब्रह्मैक्य जिसकी आदि में है, ऐसा विग्रह है। अविद्या निवृत्तित्व आदि द्वारा ज्ञान अविद्या बुद्धि सापेक्ष है और अत्यन्ताभाव प्रतियोगी सापेक्ष है। जीव ब्रह्मैक्य-भेदाभाव है—वह भेदरूप प्रतियोगी सापेक्ष है। यहाँ 'आदि पद से ब्रह्माभेदक अस्ति ब्रह्म इत्यादिके' काल सापेक्ष अस्तित्व का परिग्रह है। अविद्या निवृत्ति आदि जितने पदार्थ हैं—वे सभी सापेक्ष दिखाई देते हैं, जिस प्रकार उनका निरपेक्ष ब्रह्म स्वरूपत्व अवश्यवाच्य है। अन्यथा अद्वैत की हानि होगी, उसी प्रकार प्रतियोगी सापेक्ष भेद का निरपेक्ष घटादि स्वरूप होने में कुछ भी बाधक नहीं है। यहाँ सापेक्षत्व निरपेक्षत्व में विरोध का परिहार करते हुए कहते हैं—'अविद्या निवृत्त्यादेः'। अविद्या निवृत्ति वृत्ति सापेक्षत्व काल्पनिक है, परन्तु ब्रह्मवृत्ति निरपेक्षत्व तात्त्विक है—उन दोनों का विरोध नहीं घटता, क्योंकि वहाँ समसत्ताकत्व का अभाव है। उत्तर काल में बाध का निश्चय होने से पूर्व ज्ञान का काल्पनिकत्व निश्चित होता है। जैसे 'नेदं रजतं' इस ज्ञान से शुक्ति के 'इदं रजतं'

सापेक्षमिदानीं नेति बाधधीः कदाप्यस्ति। नापि बाधं विनाविद्यकत्वे मानं दृश्यते अन्यथा त्वदभिमतं ब्रह्माप्यसत्, श्रुत्युक्तं सत्वञ्च तस्याविद्यकमिति स्यात्।

अपरञ्चाविद्यादिनिवृत्तिद्वितीयात्यन्ताभावादिनिष्ठसापेक्षत्वस्याविद्यकत्वेऽप्यविद्यानिवृत्तिद्वितीयाभावादेर्व्याघातः, तस्यैवाद्वितीयत्वात्,

---

चेत्यादिना। यत्र=शुक्तौ। यत्=रूप्यत्वं। अध्यस्तम् तत्र=शुक्तौ। तद्विरोधि=अरूप्यत्वं, तज्ज्ञानाबाध्यम्, तदेवोपपादयति **यथेति।** एवं ब्रह्मण्यैक्यमध्यस्तं तत्र ब्रह्मणि तद्विरोधि भेदो ब्रह्मज्ञानाबाध्य इत्यर्थः व्याप्त्यन्तरमाह—**यत्रेति।** यत्र=चूते ऐक्येन=पनसैक्येन। अध्यस्तं=पनसमध्यस्तम्। तत्र=चूते। **तद्भेदः**=पनसभेदः। तज्ज्ञानाबाध्यः= चूतज्ञानाबाध्यः। तमुदाहरति—**दूरस्थवृक्षयोरिति।** व्याप्त्यन्तरं दर्शयति—**यत्रेति।** उदाहरणप्रदर्शनेन तं स्फुटयति—**यथेति।** यदि भेदस्य धर्मिस्वरूपत्वमभ्युपेयते तदा; शुक्तिस्वरूपे दृष्टे रजताद्भेदो गृहीत इत्यभेदारोपो न स्यात् न स्याच्च दूरादनभिव्यक्तकर-चरणादिपुरुषस्वरूपे दृष्टे स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशय इति यदुक्तं तं दूषयितुमनुवदति—**यदुक्तमिति।** तथात्वे—भेदस्याधिकरणस्वरूपत्वे। धर्मिज्ञानं संशयकारणं, तज्ज्ञानेन तदभिन्नस्य भेदस्य ग्रहणाद् भेदज्ञानस्य च संशयादिविरोधित्वात्संशयो न स्यादित्याह—

यह ज्ञान काल्पनिक प्रतीत होता है। काल्पनिकत्व में बाध का निश्चय ही मान है। यहाँ बाध का निश्चय नहीं है, जिससे अविद्या निवृत्ति के सापेक्षत्व में काल्पनिकत्व हो—इस आशय से उक्त शङ्का का परिहार करते हैं—'नेति'—अविद्या निवृत्ति आदि वृत्ति सापेक्षत्व के आविद्यकत्व में किसी बाधक के अभाव से कोई प्रमाण नहीं है। निवृत्ति आदि पहले सापेक्ष थी—इस समय नहीं है—ऐसी बाधक बुद्धि कभी है और बाध विना आविद्यकत्व में मान नहीं दिखता। अन्यथा—अर्थात् बाधनिश्चय के बिना आविद्यकत्व स्वीकार करने पर आपका अभिमत ब्रह्म भी असत् हो जाएगा। श्रुति में कथित ब्रह्म का सत्त्व भी आविद्यक होगा। यदि कहें कि एक अत्यन्ताभाव निरपेक्ष अज्ञान निवृत्ति रूप है—और दूसरा कल्पित अज्ञान निवृत्ति अत्यन्ताभाव है—तब भी कहते हैं—"अपरंचेति" अर्थात् अविद्या निवृत्ति रूप द्वितीय अत्यन्ताभाव निष्ठ सापेक्षत्व के आविद्यक होने पर भी अविद्या निवृत्ति रूप द्वितीय अभाव आदि का व्याघात होगा, अर्थात् यह प्रथम अभाव है और यह द्वितीय अभाव हो ऐसा बोलने पर आपको सिद्धि और असिद्धि से व्याघात होगा। यदि दोनों अभाव सिद्ध हुए तब भेद भी सिद्ध होगा—यदि सिद्ध नहीं हुआ तब इष्ट सिद्धि नहीं होगी। यह

आविद्यकत्वाच्च। अविद्यानिवृत्ति द्वितीयाभावादे र्ब्रह्माभिन्नत्वे ब्रह्मस्फुरणे तस्यापि स्फुरणात्त द्विरोधिप्रपञ्चस्फुरणानुपपत्तेश्च नहि रजताभावाभिन्नशुक्तिस्फुरणे रजतस्फुरणं घटते दृश्यते वा। नच

संशयाभाव इति। अयमर्थ: अस्ति यज्ञदत्ते दृष्टे कदाचिद् दृष्टचरदेवदत्तस्यायं देवदत्तो न वेति संशयो भेदाग्रहात्। स न स्यात्। स्वरूपग्रहे तन्मात्रवृत्तिभेदस्यापि गृहीतत्वात्। भेददर्शने च सन्देहानवकाशात्। **भेदाज्ञानाभावादिति।** भेदज्ञानाभावाभावो भेदज्ञानस्वरूपोऽतो भेदज्ञानस्य सत्वादित्यर्थ:। यदि भेदस्य ज्ञानं नास्ति चेत्तदा संशयहेतोरभावात् संशयो न स्यादित्याह—**भेदाज्ञान इति।** सामान्यधर्मेणाज्ञातेऽपि विशेषधर्मपुरस्कारेण ज्ञानात् संशय उपपद्यत इत्याह—**भेदत्वेनेति। घटत्वेति।** घटे धर्मद्वयं भेदत्वं घटत्वञ्चेति, घटत्वेन ज्ञानात् संशय इत्यर्थ:। न भेदमात्रं संशयविपर्ययोर्विरोधि, किन्त्वारोप्यारोपविषयगतधर्मयोरन्योन्यस्मिन्नभावदर्शनम्, आरोप्यधर्मस्यारोप्यविषये व्यतिरेकदर्शनं वा, भेदत्वेन भेददर्शनं वा, आरोप्यधर्माधिकरणारोपविषययोरन्योन्याभावदर्शनं वा तथैवावधारणादित्यभिसन्धि:।

आशय है—'तस्यैवाद्वितीयत्वात्' अर्थात् अविद्या निवृत्ति रूप अत्यन्ताभाव में भिन्नत्व है। इस प्रकार भेद सिद्ध है। भिन्नत्व में हेतु कहते हैं—"आविद्यकत्वाच्च"—जिस हेतु आविद्यक है—अतएव द्वितीय का अभाव। द्वितीयाभाव में ब्रह्म स्वरूपत्व मानने पर आपत्ति दिखाते हैं। 'अविद्या निवृत्ति द्वितीयाभावादे......' अर्थात् अविद्या निवृत्ति द्वितीय अभाव आदि के ब्रह्म से अभिन्न मानने तथा ब्रह्म स्फुरण मानने पर अविद्या निवृत्ति रूप द्वितीयाभाव का भी स्फुरण होने से तद्विरोधि प्रपञ्च के स्फुरण की अनुपपत्ति होगी। रजताभाव भिन्न रूप शुक्ति के स्फुरण होने पर रजत का स्फुरण नहीं सम्भव होता ना ही कहीं देखा जाता, यह कथन अभाव के अधिकरण स्वरूप के अभिप्राय से है। और ना ही वैसा ग्रहण करने वालों में भ्रान्तत्व ही होता है। ना ही भ्रमकाल में प्रपञ्च भाव एवं ब्रह्म का प्रपञ्चाभावत्वेन स्फुरण होता है, बल्कि इदन्त्वेन। इदं ब्रह्म इस प्रतीति में इदन्त्वेनैव ब्रह्म का स्फुरण होता है—उक्त रूप से नहीं, ऐसा नहीं कह सकते—कारण तत्त्व और इदन्त्व ब्रह्म से अभिन्न होने पर भाव सम्भव नहीं है—ऐसा विद्वानों को सोचना चाहिए। उसे ब्रह्मस्वरूप ही कहना पड़ेगा, अन्यथा ब्रह्म में निर्धर्मकत्व का व्याघात होगा।

तद्ग्रहीतुर्भ्रान्तत्वम्। न च भ्रमकाले प्रपञ्चाभावब्रह्मणोर्न तत्वेन स्फुरणं, किन्तु इदन्त्वेनेति वाच्यम्। तत्वेदन्त्वयोर्भासमानब्रह्माभिन्नत्वे भावासम्भवादिति विद्वद्भिर्विचारणीयम्। अपिच यत्र यदध्यस्तं तत्र तद्विरोधितज्ज्ञानाबाध्यं, यथा शुक्तावरूप्यत्वम्। यत्र यदैक्येनाध्यस्तं तत्र तद्भेदस्तज्ज्ञानाबाध्यः। यथा दूरस्थवृक्षयोर्भेदः। यत्र यदध्यस्तं तत्र

प्राक् चैतन्ये स्वयं भातेऽपि तदभिन्नैक्यस्य द्वितीयाभावानच्छिन्नस्यानन्दस्य प्रकाशो भविष्यतीति निर्विशेषवादेरनुपपन्नमित्याह—**प्रत्युत इति**। जीवैक्यञ्च द्वितीयाभावानवच्छिन्नानन्दश्चादिर्यस्येति विग्रहः। विशेषरहिते चैतन्ये निरुक्तानन्दादिमत्त्वं नोपपद्यते अन्यथा सविशेषत्वं प्रसज्जेत इतिभावः। यदि जीवब्रह्मणोरैक्यं प्रकाशते तदा तत्र वादिनां विप्रतिपत्तिर्न स्यात् तदुपदेशानर्थक्यञ्च स्यादिति यद्याशङ्केत तन्निराकुर्वन्नाह—**ऐक्यादीनामिति**। नहि ब्रह्माभिन्नैक्यस्याज्ञानतत्कार्यसंशयादीन् प्रति प्रतिबन्धकत्वं, येन तेषामनुपपत्तिः स्यात् किन्तु तद्गोचरवृत्तेरेव तथात्वमित्यर्थः, तस्य स्वप्रकाशब्रह्माभिन्नैक्यस्य। अज्ञानाधिष्ठानशुद्धब्रह्मविषयकवृत्तेरपि सत्वात् संशयाद्यनुपपत्तितादवस्थ्यमित्याशयेन परिहरति **अज्ञानाधिष्ठानस्येति**। चक्षुरिन्द्रियसंयुक्तशुक्तिरूपाधिष्ठानसत्वे चक्षुरिन्द्रियजन्याध्यस्तज्ञानस्य सत्वं तदभावे

ऐक्य को ब्रह्मस्वरूप से भिन्न मानने पर अद्वैत हानि। मिथ्या मानने पर 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों में अप्रामाणिकत्व एवं भेद की सत्यता भी हो जाएगी ऐसा पहले कहा गया है। ऐक्य के मिथ्या होने पर भेद कैसे सत्य होगा—इस व्याप्ति रूप प्रमाण को प्रस्तुत करते हैं—'अपि च ......' इत्यादि ग्रन्थ से।

अर्थात् जिस शुक्ति में जो रजतत्व अध्यस्त है, उस शुक्ति में रजतत्व विरोधी अरजतत्व—उसके ज्ञान से अबाध्य होता है जैसे शुक्ति में अरूप्यत्व। इसी प्रकार ब्रह्म में ऐक्य अध्यस्त है—उस ब्रह्म में ऐक्य विरोधी भेद ब्रह्मज्ञान से अबाध्य है—यह भाव है। इसमें अन्य व्याप्ति भी कहते हैं। जिस आम्र में पनस का अध्यास, उस आम्र में पनस का भेद—आम्र ज्ञान से अबाध्य होता है। इस पर उदाहरण देते हैं—'यथा दूरस्थ वृक्षयोर्भेदः' जैसे दूरस्थित दो वृक्षों के भेद। जिसके जो अध्यस्त होता है—उसमें उसका विरोधी तात्त्विक होता है जैसे ब्रह्म में अनृतत्व के अध्यस्त होने पर सत्यत्व तात्त्विक होता है—यह व्याप्ति ही इसमें प्रमाण है।

अब यहाँ पहले जो कहा गया है कि यदि भेद को धर्मीस्वरूप मानें तब शुक्ति स्वरूप दृष्ट होने पर रजत का भेद गृहीत होता है—इस प्रकार अभेद का आरोप नहीं

तद्विरोधि तात्विकं यथा ब्रह्मण्यनृतस्याध्यस्तत्वे सत्यत्वं तात्विकमिति व्याप्तेरत्र मानत्वात्। ननु यदुक्तं भेदस्याधिकरणात्मकत्वं तदयुक्तम्। तथात्वे संशयाभावः। धर्मिज्ञाने भेदाज्ञानाभावात् भेदाज्ञाने धर्मिज्ञानस्यैव संशयबीजस्याभावेन सुतरां संशयाभाव इति चेन्न, भेदत्वेनाज्ञातेऽपि घटत्वदण्डत्वादिना ज्ञाने संशयानुपपत्त्यभावात्। प्रत्युत चैतन्ये स्वप्रकाशे सदाभासमाने तदभिन्नस्य जीवैक्यद्वितीयाभावानवच्छिन्नानन्दादेरप्रकाशस्य निर्विशेषवादेरनुपपत्तेः। न चैक्यादीनां स्वप्रकाशब्रह्माभिन्नत्वे,

---

तदभाव इत्यन्वयव्यतिरेकमभिप्रेत्याह—**तत्तदैन्द्रियकाधिष्ठानमिति**। यदि भेदस्याधिकरणस्वरूपत्वमभ्युपेयते तदा एकतरपरिशेषापत्त्या घट इति भेद इति विलक्षणव्यवहारो न सिद्ध्येदिति शङ्कते—**नन्विति**। तथात्वे—उभयोरेकतरपरिशेषत्वे। एकतरपरिशेषशब्दस्य कोऽर्थोऽत्राभिप्रेतः! किम्वस्तु भेदो न स्यात् किन्त्वेकमेव स्यात्। किम्वा घट इति भेद इति व्यवहारो वा, नाद्य, इष्टापत्तेः। नापि द्वितीयः। प्रवृत्तिनिमित्तभेदेन तदुपपत्तेरित्याशयेन परिहरति—**नेति**। घटशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं घटत्वं, भेदशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं, भेदत्वं तयोर्भेदात् घट इति भेद इति विलक्षणव्यवहार उपपद्यत इत्यर्थः। प्रवृत्तिनिमित्तं नाम—वाच्यत्वे सति वाच्यवृत्तित्वे सति वाच्योपस्थिति प्रकारत्वम्। यदि भेदशब्दस्यप्रवृत्तिनिमित्तं भेदत्वमुच्यते तच्च

होगा और ना ही दूर से अस्पष्ट कर, चरण वाले पुरुष स्वरूप के देखने पर यह स्थाणु है या पुरुष यह संशय भी नहीं होगा—यह जो पहले कहा गया था—उसे दूषित करने के लिये उसका अनुवाद करते हैं—'ननु यदुक्तं' इत्यादि ग्रन्थ से—अर्थात् कहते हैं कि आपने जो कहा भेद अधिकरणात्मक है यह अयुक्त है, क्योंकि भेद तो अधिकरण स्वरूप मानने पर संशय का अभाव होगा। कारण धर्मी ज्ञान संशय का कारण होता है—उसके ज्ञान से, उसके अभिन्न भेद का ग्रहण होने से और भेदज्ञान संशय के विरोधी होने के कारण संशय नहीं होगा। इसका यह भाव है—कभी यज्ञदत्त के दर्शन होने पर किसी समय कभी देवदत्त को देखने वाले व्यक्ति को यह देवदत्त है या नहीं यह संशय हो जाता है। भेदाग्रह के कारण, अब वह नहीं होगा। कारण स्वरूप ग्रहण होने पर तन्मात्रवृत्ति भेद का भी ग्रहण हो जाने से भेद दर्शन होने पर तो संदेह का अवकाश ही नहीं होता। 'धर्मिज्ञाने भेदाज्ञानाभावात्' अर्थात् धर्मीज्ञान में भेद के अज्ञान के अभाव के कारण भेद के अज्ञान में संशय के कारण धर्मीज्ञान के अभाव से स्वतः संशय का अभाव होगा तो ऐसा नहीं कह सकते—'भेदत्वेन अज्ञातेऽपि' अर्थात् भेदत्वेन अज्ञात होने पर भी घटत्व दण्डत्व आदि

तस्याज्ञानतत्कार्यविप्रतिपत्त्यादीन् प्रति विरोधाभावेन तद्गोचरवृत्तेरेव विरोधित्वादिति वाच्यम्। अज्ञानाधिष्ठानस्य शुद्धस्य वृत्तेरपि सत्वात्। तत्तदैन्द्रियकाधिष्ठानं विना तत्तदिन्द्रिय-जन्याध्यस्त ज्ञानाभावात्। ननु

निर्वक्तुमशक्यमित्याशयेन शङ्कते—**नन्विति।** आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति। सामान्यादीति।** अनवस्थारूपजातिबाधकसत्वात् सामान्यत्वं न जातिः तथा भेदे भेदत्वं न जातिरनवस्थारूपबाधकस्यविद्यमानत्वादित्यर्थः। अन्योन्याश्रयापत्तेरिति। भेदत्वशरीरे तादात्म्यं निविष्टं, तच्च भेदविरहरूपत्वं तस्य प्रतियोगिकुक्षौ भेदस्य प्रवेशस्तज्जिज्ञासायां पुनर्भेदत्वं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं वाच्यमित्यन्योन्याश्रय इत्यर्थः। तृतीयपक्षमपि निरस्यति—**तन्निष्ठेति।** भेदनिष्ठासाधारणधर्मरूपेति इति तदर्थः। **तादात्म्यावच्छिन्नेति।** तादात्म्यवान्नास्तीति प्रतीतिसिद्धाभावेऽतिव्याप्तिः तदभावीयप्रतियोगितावच्छेदकतायास्तादात्म्ये सत्त्वात्तस्य भेदविरहरूपत्वेनासाधारणधर्मस्य भेदत्वस्य निरुक्तात्यन्ताभावे सत्त्वादित्यर्थः। तस्य=भेदत्वस्य। स्वरूपत्वे= अधिकरणस्वरूपत्वे। अयं भेदोऽयं भेद इति व्यवहारोऽनुगतधर्ममन्तरा नोपपद्येतेत्यर्थः। समाधत्ते—**भेदत्वादेरिति।** अतएव बौद्धाधिकारशिरोमणौ अभावत्वान्योन्याभावत्वसंसर्गाभावत्वध्वंसत्वप्रागभावत्वादयः प्रतीतिविशेषसाक्षिका अखण्डोपाधय इत्युक्तं सङ्गच्छते। यदि धर्मभेदो न स्यात्तदा सत्यं ज्ञानमित्यादिविलक्षणव्यवहारो नोपपद्येत,

रूपेण ज्ञान होने से संशय की अनुपपत्ति का अभाव होगा। यानी घट में दो धर्म हैं—भेदत्व और घटत्व। घटत्वेन ज्ञान होने से संशय होगा यह भाव है। अर्थात् भेद मात्र संशय विपर्यय का विरोधी नहीं है, किन्तु आरोप्य एवं आरोप विषयगत धर्म में परस्पर अभाव दर्शन, अथवा आरोप्य धर्म का आरोप्य विषय में व्यतिरेक दर्शन किंवा भेदत्वेन भेददर्शन अथवा आरोप्य धर्माधिकरण एवं आरोप विषय में अन्योऽन्याभाव दर्शन—क्योंकि ऐसा ही अवधारण है—यह तात्पर्य है। प्राक् चैतन्य के स्वयं भासमान होने पर भी—उससे अभिन्न ऐक्य रूप द्वितीयाभावानवच्छिन्न आनन्द का प्रकाश होगा। इस तरह निर्विशेषवाद अनुपपन्न होगा—यही बात कहते हैं—'प्रत्युत चैतन्ये' यदि कहें कि ऐक्य आदि के स्वप्रकाश ब्रह्म से अभिन्न होने पर, उसका अज्ञान एवं उसके कार्यविप्रतिपत्ति आदि के प्रति विरोध का अभाव होने के कारण वह केवल तद्गोचर वृत्ति का ही विरोधी होगा तो ऐसा नहीं कह सकते अज्ञान के अधिष्ठान शुद्ध वृत्ति की भी सत्ता विद्यमान है। तत् तत् ऐन्द्रियक अधिष्ठान के बिना तत् तत् इन्द्रियजन्य अध्यस्तज्ञान का अभाव है। यदि भेद को अधिकरण स्वरूप मानें तब यह घट है, यह विलक्षण व्यवहार सिद्ध नहीं होगा—यही शंका

भेदस्याधिकरणात्मकत्वे घटभेदयोरेकतरपरिशेषापत्तिस्तथात्वे घट इति विलक्षणव्यवहारो नस्यादिति चेन्न, घटत्वभेदत्वादीनां प्रवृत्तिनिमित्तानां

तदन्यथानुपपत्त्या धर्मभेद आवश्यक इत्याह—**अथेति**। सत्यत्वज्ञानत्वात्मक-कल्पितधर्मभेदमादाय तदुपपत्तिमाशङ्क्य निराकरोति **न चेति**। ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'' तिश्रुतिबोध्यानां सत्यत्वादीनां कल्पितत्वमिति वक्तुं न शक्यते, तथासति श्रुतेरतत्वावेदकत्वापत्तेः। इत्याह—**श्रुतिबोध्यानामिति**। यदि श्रुत्युपदिष्टाः सत्यत्वादयो धर्माः कल्पिता एव भवद्भिरभ्युपेयन्ते तदा श्रुतेरखण्डार्थबोधकत्वं न घटेत इत्याशयेन हेत्वन्तरं निर्वक्ति—**श्रुतेरखण्डार्थकत्वानाशाच्चेति**। ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'' त्यादि वाक्यानामखण्डार्थत्वं नाम, संसर्गागोचरब्रह्मस्वरूपमात्रविषयक प्रमितिजनकत्वम्। तदुक्तं, संसर्गासङ्गिसम्यग्धीहेतुता या गिरामियम्। उक्ताखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थता इति। श्रुतेः कल्पितधर्मबोधकत्वे उक्ताखण्डार्थबोधकत्वं व्याहन्येत इत्यर्थः। यद्यत् कल्पितं तत्सर्वं बाध्यते, इति नियमात् सत्यत्वादीनामपि बाधः

करते हैं—'ननु भेदस्याधिकरणत्वे' इत्यादि ग्रन्थ से तो इसका उत्तर है कि घटत्व एवं भेदत्व रूप प्रवृत्ति निमित्त के भेद से एक परिशेषाभाव विलक्षण व्यवहार आदि की उपपत्ति हो जाएगी। यहाँ विचारणीय है कि एकतर परिशेष शब्द का यहाँ क्या अर्थ अभिप्रेत है? क्या वस्तु भेद नहीं है, किन्तु एक ही है, किंवा यह घट है, यह भेद है, यह व्यवहार यहाँ पहला पक्ष नहीं कह सकते—यह इष्टापत्ति है—दूसरा भी नहीं कह सकते—उसकी प्रवृत्ति निमित्त के भेद से उपपत्ति होगी—इसी आशय से परिहार करते हैं—'घटत्व भेदत्वादीनामिति' घट शब्द का प्रवृत्ति निमित्त है घटत्व और भेद शब्द का प्रवृत्ति निमित्त है भेदत्व—उन दोनों में भेद है—इसलिये घट इति भेद इति यह विलक्षण व्यवहार उपपन्न होगा प्रवृत्ति निमित्त कहते हैं—'वाच्यत्वे सति वाच्यवृत्तित्वे सति वाच्योपस्थितीय प्रकारताश्रयत्वम्।' यदि भेद शब्द का प्रवृत्ति निमित्त भेदत्व कहें तो उसका निर्वचन नहीं कर सकते—इसी आशय से शंका करते हैं—'ननु भेदत्वं नाम किं जातिर्वा.......' इत्यादि। अर्थात् भेदत्व क्या जाति है? अथवा तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभावत्व रूप उपाधि है? अथवा तन्निष्ठ उपाधि रूप है? पहला पक्ष नहीं कह सकते क्योंकि जैसे अनवस्था रूप जातिबाधक होने से सामान्यत्व जाति नहीं, उसी प्रकार भेद से

भेदादेकपरिशेषाभावविलक्षणव्यवहाराद्युपपत्तेः। ननु भेदत्वं नाम किं जातिर्वा, तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वादिरूपोपाधिर्वा, तन्निष्ठासाधारणधर्मरूपं वा, नाद्यः, सामान्यादिसाधारणत्वात्। न द्वितीयः। तादात्म्यस्याभेद-रूपत्वेऽन्योन्याश्रयापत्तेः। तन्निष्ठासाधारणधर्मरूपत्वे तादात्म्यावच्छिन्न-प्रतियोगिताकात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तेः तस्यापि स्वरूपत्वेऽनुगत-व्यवहारानुपपत्तेरितिचेन्न; भेदत्वादेरखण्डोपाधित्वात्। अथ निर्विशेषवादे

स्यान्नत्वेवमित्याह—**नहीति**। येन= बाधकेन। नहि कल्पितत्वे बाधमन्तरेणान्यत्प्रमाणमस्ति नास्त्यत्र बाधो येन सत्यत्वादीनां कल्पितत्वसिद्धिस्स्यादित्तिभावः। श्रुतेः=सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति श्रुतेः। तत्र=पारमार्थिक-सत्यत्वे। **तात्पर्याभावः**, न चेत्यन्वयः। श्रुतेः पारमार्थिकसत्यत्वे तात्पर्य्यं नास्ति चेत्तदा प्रपञ्चे पारमार्थिकसत्यत्वप्रतिद्वन्द्विव्यावहारिकसत्यत्वं न सिद्ध्येत् तस्माद्व्यावहारिक सत्यत्व सिद्ध्यन्यथानुपपत्या सत्यं ज्ञानमितिश्रुतेः

भेदत्व जाति नहीं हो सकती, क्योंकि यहाँ भी अनवस्था रूप जातिबाधक दोष विद्यमान है। दूसरा पक्ष तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिता का भावत्वरूप भी नहीं कह सकते—इसमें अन्योऽन्याश्रय दोष है—कारण भेद शरीर में तादात्म्य पड़ा है—तादात्म्य है भेद विरह रूप—इससे प्रतियोगी कुक्षि में भेद का प्रवेश है—उसकी जिज्ञासा होगी—यह भेद क्या? उसके लिये पुनः कहेंगे—तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता का भाव इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय होगा। अब तृतीय पक्ष का भी निरास कहते हैं—"तन्निष्ठासाधारण धर्मरूपत्वे......." ग्रन्थ से। अर्थात् भेदनिष्ठ असाधारण धर्म रूप मानने पर तादात्म्यावच्छिन्न प्रतियोगिताक सम्बन्ध अत्यन्ताभाव में अतिव्याप्ति होगी। अर्थात् तादात्म्यवान्नास्तीति प्रतीति सिद्ध अभाव में अति व्याप्ति होगी। क्योंकि इस अभावीय प्रतियोगितावच्छेदकता तादात्म्य में है—उसके भेद विरहरूप होने से असाधारण धर्म रूप भेदत्व का निरुक्त अत्यन्ताभाव में विद्यमान है। भेदत्व को अधिकरण स्वरूप मानने पर अयं भेद अयं भेद यह व्यवहार अनुगत धर्म के बिना उपपन्न नहीं होगा, तो ऐसा नहीं कह सकते भेदत्व अखण्डोपाधि है। इसीलिये बौद्धाधिकार शिरोमणि में अभावत्व, अन्योऽन्याभावत्व, संसर्गाभावात्व ध्वंसत्व, प्रागभावत्व आदि प्रतीति विशेष के साथी अखण्डोपाधि है—यह कथन संगत होता है। यदि धर्म भेद न हो तब सत्यं, ज्ञानम् इत्यादि विलक्षण व्यवहार उपपन्न नहीं होंगे। उसकी अन्यथा अनुपपत्ति से धर्म भेद आवश्यक है—यही कहते हैं—'अथ निर्विशेष.........' इत्यादि यदि कहें कि सत्यत्व, ज्ञानत्वात्मक

सत्यं ज्ञानमित्यादिविलक्षणव्यवहारानुपपत्तिः। नच कल्पितधर्माङ्गीकारेऽपि विलक्षणव्यवहारसिद्धिरिति वाच्यम्। श्रुतिबोध्यानां कल्पितत्वासम्भवात्। श्रुतेरखण्डार्थकत्वनाशाच्च। न हि ब्रह्म सत्यादिरूपं नेति बाधकमस्ति, येन सत्यत्वादेः कल्पितत्वं स्यात्। नाप्यारोपे बाधं विनाऽन्यत् प्रमाणमस्ति। न च

पारमार्थिकसत्यत्वे तात्पर्यमावश्यकं, तथासति धर्मभेदोऽभ्युयेय इति भावः। **यजमानः प्रस्तर इति।** प्रस्तरः=दर्भमुष्टिः। यजमानः प्रस्तर इतिवाक्येन यजमानप्रस्तरयोरभेदो बोध्यते, अतस्तस्य यजमानप्रस्तरयोर्भेदबोधने यद्यपि तात्पर्यं नास्ति तयोर्व्यावहारिकभेदस्तथापि सिध्यत्येवेत्यर्थः। धर्मिप्रतियोगिवस्तु प्रतिपत्तिमन्तरेण भेदो न प्रत्येतुं शक्यत इत्याशयेन शङ्क्ते—**नन्विति।** धर्मिप्रतियोगिघटितत्वेनभेदज्ञाने आधारत्वप्रतियोगित्वनिरूपकत्वेन। प्रतियोगित्वाकारमुल्लिखन्ती प्रतियोगित्वस्मृतिरधिकरणत्वेनाधिकरणप्रतीतिश्च भेदप्रतीतिहेतुरित्याशयः। तथात्वे—भेदप्रतीतेर्धर्मिप्रतियोगिघटितत्वे। अन्योन्याश्रयमुपपादयति—धर्मिप्रतियोगिज्ञान इति। प्रतियोगित्वप्रकारकज्ञाने सति भेदज्ञानं=आधारत्वप्रतियोगित्वप्रकारकप्रत्यक्षम्।

कल्पित धर्म भेद लेकर उसकी उपपत्ति होगी—तो कहते हैं—ऐसा भी नहीं कह सकते 'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति बोधित सत्यत्व आदि को कल्पित नहीं कह सकते, तब तो श्रुति में अतत्त्वावेदकत्व की (असत्य अर्थ से ज्ञापकत्व की) आपत्ति होगी और श्रुति बोध्य पदार्थ में कल्पितत्व संभव नहीं है। दूसरी बात यदि श्रुति उपदिष्ट सत्यत्व आदि धर्म को आप कल्पित जानेंगे तो श्रुति में अखण्डार्थ बोधकत्व घटित नहीं होगा—अखण्डार्थकत्व का नाश भी होगा। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वाक्यों में अखण्डार्थता है—'संसर्गागोचरब्रह्मस्वरूपमात्रविषयकप्रमितिजन्यत्व'। जैसाकि कहा गया है—"संसर्गासङ्गि सम्यग्धी हेतुता या गिरामियम्। उक्ताखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थता"। श्रुति में कल्पित धर्म बोधकत्व मानने पर उक्त अखण्डार्थ बोधकत्व का व्याघात होगा। क्योंकि जो-जो कल्पित होता है—वह सभी बाधित होता है—ऐसा नियम होने से सत्यत्व आदि में भी बाध होगा, पर ऐसा नहीं है—ब्रह्म सत्य ज्ञानादि रूप नहीं है ऐसा बाधक नहीं है—जिससे कि सत्यत्व आदि में कल्पितत्व होगा। कल्पित होने से बाध के बिना और कोई प्रमाण नहीं है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति का पारमार्थिक सत्यत्व में तात्पर्य का अभाव है। यदि श्रुति का पारमार्थिक सत्यत्व में तात्पर्य नहीं हो तब तो प्रपञ्च के पारमार्थिक सत्यत्व प्रतिद्वन्द्वी व्यावहारिक सत्व सिद्ध नहीं होगा—इसलिये व्यावहारिक सत्यत्व सिद्धि



भगवान् श्री निम्बार्काचार्य परम्परानुवर्ती पण्डितवरवरिष्ठ

श्रीअमोलकराम जी शास्त्री

श्रुतेस्तत्र तात्पर्याभावः, व्यावहारिकस्य सत्यत्वादेरसिद्धिप्रसङ्गात्। नहि यजमानः प्रस्तर इति वाक्यतात्पर्याविषयो यजमानप्रस्तरभेदो व्यावहारिकः सिद्ध्यति। ननु भेदप्रतीतेरिदम-स्माद्भिन्नमिति वाऽस्यामुष्माद्भेद इति वा? धर्मिप्रतियोगिघटितत्वेनैव भाव्यम्। तथात्वे चान्योन्याश्रयस्यावश्यकत्वात्। धर्मिप्रतियोगिज्ञाने भेदज्ञानं तस्मिंश्च धर्मिप्रतियोगिज्ञानमिति॥ १६ ॥

तस्मिन्= भेदज्ञाने। धर्मिप्रतियोगिज्ञानम्=अस्यामुष्माद्भेद इति विलक्षणधर्मिप्रतियोगिज्ञानम्। घटादिप्रतियोगितायाः पटादिनिष्ठाधारतायाश्च निरूपकत्वेन भेदस्य प्रत्यक्षं प्रति कारणत्वं तादृशप्रतियोगित्वादि प्रकारकप्रत्यक्षं प्रत्याधारत्वप्रकारकधीरुपनयविधया कारणत्वञ्चावश्यकं, तादृशबुद्धौ च प्रतियोग्यनुयोगिनोर्भेदज्ञानं कारणम्। पटो घटाभिन्न एव घटाभिन्नो नवेति भेदव्यतिरेकसंशयनिश्चयसत्वे उक्तबुद्धेरनुपपत्तेः। यदभावसंशय निश्चयौ यत्र प्रतिबन्धकौ तन्निश्चयः तद्धेतुरितिन्यायात्। तथाचोक्तबुद्धेः कारणं भेदज्ञानं, तस्याः कार्यं प्रत्यक्षमेव वाच्यम्; भेदज्ञानान्तरस्याननुभवादित्यन्योन्याश्रय इति भावः ।। १६ ।।

की अन्यथा अनुपपत्ति से सत्यं ज्ञानमनन्तं इस श्रुति की पारमार्थिक सत्यता में तात्पर्य आवश्यक है—तब धर्मभेद स्वीकरणीय होगा—यह भाव है। 'यजमानः प्रस्तरः प्रस्तरमाने धर्ममुष्टि यजमानः प्रस्तर' इस वाक्य से यजमान और प्रस्तर में अभेद बोधित होता है। इसलिये यद्यपि उस वाक्य का यजमान प्रस्तर के भेद बोधक के तात्पर्य नहीं है, तथापि उन दोनों में व्यावहारिक भेद सिद्ध होता है। यदि कहें कि भेद की प्रतीति इदमस्माद् भिन्नम् अथवा अस्य अमुस्माद् भेद (यह इससे भिन्न अथवा इसका उससे भेद है) इत्याकारक धर्मी प्रतियोगी वस्तु के ज्ञान के बिना भेद का ज्ञान संभव नहीं है—इस तरह भेद प्रतीति को धर्मी प्रतियोगि घटित होने से—अन्योऽन्याश्रय दोष अनिवार्य होगा—कारण धर्मी प्रतियोगि ज्ञान के भेद ज्ञान और भेद ज्ञान में प्रतियोगी इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय होगा ।।१६।।

घटपटौ भिन्नाविति घटपटविशेषणतया तयोर्भेद इति, तद्विशेष्यतया वा ग्रहणेऽपीतरेतराश्रय एव। घटपटप्रतीतौ तद्विशेष्यत्वादिना भेदग्रहः। भेदग्रहे च द्वित्वावच्छिन्न घटपटयोः प्रतीतिरिति चेन्न; व्यावहारिकभेदप्रतीतेस्त्वयाप्यङ्गीकारात्। अपिच-'अस्तीदं न जानामि''सर्वं खल्विदं ब्रह्मे' त्यादिषु साक्षिसिद्धकाल न च कल्पितभेदज्ञानस्य

वज्रोत्तेजिका— घटपटविशेषणतया—घटप्रतियोगिकभेद इति· प्रतीतौ प्रतियोगितासम्बन्धेन घटस्य भेदांशे विशेषणत्वं, पटप्रतियोगिकभेदे पटस्य विशेषणत्वमित्यर्थः। तयोः=घटपटयोः। तद्विशेष्यतया=घटपटविशेष्यतया। अनुयोगितासंसर्गेण भेदस्य विशेषणत्वं घट इत्यर्थः। इतरेतराश्रयं विवृणोति—**घटपटप्रतीताविति**। घटपटोभयत्वेन प्रतीताविति तदर्थः। तद्विशेष्यत्वादिना तदुभयविशेषणकस्तदुभयविशेष्यकश्च भेदग्रहो बोद्धव्यः। व्यासज्यवृत्तिधर्मप्रत्यक्षे आश्रयाणां भेदग्रहस्य हेतुत्वात् स्वकार्यभूतं प्रत्यक्षमेव द्वित्वप्रत्यक्षे कारणं वाच्यम्, भेदज्ञानान्तराननुभवात् यद्यपि द्वित्वस्य परोक्षज्ञानं भेदज्ञानानपेक्षम्, तथापि

हिन्दी अनुवाद— घट-पटौ भिन्नौ..........यहाँ घट प्रतियोगिक भेद इस प्रतीति में प्रतियोगिता सम्बन्धेन घट भेदांश में विशेषण है और पट प्रतियोगिक भेद में पट विशेषण है और दोनों का भेद इसमें अथवा घट-पट को विशेष बनाकर अनुयोगिता सम्बन्ध से भेद में विशेषणत्व है घट में यह अर्थ है। इस प्रकार मानने पर अन्योऽन्याश्रय ही है। इसी अन्योऽन्याश्रय का विश्लेषण करते हैं—घट पट प्रतीतौ तद् विशेष्यत्वादिनेति अर्थात् घट पटोपमत्वेन प्रतीति में उभय विशेषणक तथा उभय विशेष्यक भेद ग्रह समझना चाहिये। व्यासज्य वृत्ति धर्म के प्रत्यक्ष में आश्रयों का भेदग्रह हेतु है—इसलिये स्वकार्य भूत प्रत्यक्ष ही द्वित्व प्रत्यक्ष के प्रति कारण कहना होगा, अन्य भेद ज्ञान का अनुभव नहीं होने से यद्यपि द्वित्व का परोक्ष ज्ञान भेद ज्ञान की अपेक्षा से रहित है, तथापि परोक्ष सामग्री न रहने पर प्रत्यक्ष से उसकी अपेक्षा है—इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय अपरिहार्य है। यह भाव है। तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि व्यावहारिक भेद प्रतीति आप भी मानते हैं। अब कहते हैं—जैसे 'सर्वम्' इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञान में सर्वपदार्थ का ज्ञान साक्षीमात्र ग्राह्य है, उसी प्रकार साक्षि सिद्ध प्रतियोगी के साथ ही भेद की प्रतीति उत्पन्न होती है, न कि व्यासज्य वृत्ति बुद्धि में प्रतियोगित्वादि बुद्धि कारण है, और ना ही उसमें भेद ग्रह है—इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय नहीं है। इसी आशय से कहते हैं—'अपि च अस्तीदमित्यादि अस्ति इदम्' यहाँ साक्षि सिद्ध प्रतियोगी के साथ ही विषय के साथ अज्ञान की तरह 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' यहाँ सब के साथ अभेद की तरह यहाँ भी साक्षि सिद्ध प्रतियोगी के साथ ही व्यावृत्ति की प्रतीति होने से अन्योऽन्याश्रय

धर्मिप्रतियोगिभावद्वित्वाच्छिन्ननिर्वाहकस्य तात्त्विकाभेदज्ञान प्रतिबन्धकत्वं नास्तीति वाच्यम्। विषमसत्ताकभेदज्ञानाभेदज्ञान-योर्विरोधाभावेन भेदज्ञानस्यानुच्छेदप्रसङ्गात्। भेदमिथ्यात्वसिद्धौ बाधकाभावाज्जीव-ब्रह्मणोर्वास्तवैक्यसिद्धिस्तत्सिद्धौ भेदरूपमिथ्यात्वसिद्धि-

परोक्षसामग्र्यसत्वे प्रत्यक्षं तदपेक्षमित्यवश्यमन्योन्याश्रय इति भावः। व्यावहारिकभेदप्रतीतेस्त्वयाप्यङ्गीकारात्तवाप्यायं दोष इति साम्यमित्याशयेन परिहरति—**नेति**। यथा सर्वमित्यादिवाक्यजन्यज्ञाने सर्वस्य भानं साक्षिमात्रग्राह्यंतद्वत् साक्षिसिद्धेन प्रतियोगिना सहैव भेदप्रतीतिरुपपद्यते। न तु व्यावृत्तिबुद्धौ प्रतियोगित्वादिधीः कारणम्, न वा तस्यां भेदग्रह इति नान्योन्याश्रय इत्याह—**अपि चेति**। अस्तीदमित्यत्र साक्षिसिद्धेन विषयेण सहेव, कालेन सहेव वस्तुन इव, न जानामीत्यत्र साक्षिसिद्धेन विषयेण सहाज्ञानस्य इव, सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यत्र सर्वेण सहेवाभेदस्य, इहापि साक्षिसिद्धेन प्रतियोगिना सहैव व्यावृत्तिप्रतीतेर्नान्योन्याश्रय इत्यर्थः। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। साक्षिसिद्धप्रतियोगिना भेदग्रहोपपत्तेरनभ्युपगम इति तदर्थः। **दोषस्य**= अन्योन्याश्रयदोषस्य। त्वन्मतेऽपि बिम्बब्रह्मजीवानां प्रतिबिम्बब्रह्माभेदे, इदमनेन भिन्नमस्यामुष्मादभेदः एतयोरभेद, इत्येवं प्रतीतिः स्यात्। तथाच

नहीं होगा—यह अर्थ है। यहाँ विपक्ष के बाधक तर्क कहते हैं—'अन्यथा दोषस्य तत्रापि तुल्यत्वात्.....' अर्थात् साक्षि सिद्ध प्रतियोगी से भेदग्रह की उपपत्ति स्वीकार न करने पर (यह अर्थ है) अन्योऽन्याश्रय दोष बराबर है। आपके मत से भी बिम्ब ब्रह्म जीवों में प्रतिबिम्ब ब्रह्म में अभेद मानने पर इदम् अनेन भिन्नम् अस्य अमुष्माद् भेद—इन दोनों के अभेद—इसी प्रकार की प्रतीति होगी। इसी प्रकार धर्मी प्रतियोगी भाव बुद्धि और द्वित्वावच्छिन्न बुद्धि भी भेद ज्ञान के अनधीन है—इसलिये उसके विरुद्ध अभेद ज्ञान की अनुपपत्ति होगी—इस आशय से कहते हैं—'इदमनेन भिन्नम् अस्यामुष्माद् भेद......... 'इत्यादि। अर्थात् उक्त प्रतीति से जीव ब्रह्म के ऐक्य प्रतीति होने पर धर्म प्रतियोगित्व ज्ञान तथा द्वित्वावच्छिन्न ज्ञान भेदज्ञानाधीन है—इस तरह उसके विरुद्ध अभेद ज्ञान असंभव हो जाएगा। उसके विरुद्ध माने भेद ज्ञान विज्ञान न च कल्पित।

तात्त्विक अभेद ज्ञान के प्रति काल्पनिक भेद ज्ञान के प्रतिबन्धक न होने से काल्पनिक भेद से सब का निर्वाह होता है। तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण अन्यून सत्ताक विषयत्वेन ज्ञायमान की ज्ञानों में ही प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भाव आपका सम्मत है—तब अभेद से न्यून सत्ताक होने से भेद बुद्धि अभेद ज्ञान से बाध्य नहीं हो सकती—इस प्रकार भेद ज्ञान सिद्ध ही होता है, अर्थात् विषम सत्ताक भेदज्ञान और अभेद ज्ञान के विरोध का अभाव होने से भेद ज्ञान उच्छेद नहीं होगा। दूसरी बात जीव

रित्यन्योन्याश्रयाच्च। ननु नाभेदज्ञाने धर्मिप्रतियोगिज्ञानापेक्षा, तस्य निष्प्रतियोगिकवस्तुरूपत्वात्। सप्रतियोगिकत्वव्यवहारस्तु निरूपक-भेदस्य प्रतियोगिसाध्यत्वादिति चेन्न निष्प्रतियोगिकस्याभावाभावत्वेन भाने सप्रतियोगिकत्वात्। अन्यथा महावाक्यार्थाभेदप्रतियोगिसमर्पक-सत्यादिवाक्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः। निरपेक्षवस्त्वभिन्नस्य भेदस्य निरपेक्षत्वम्।

धर्मिप्रतियोगिभावधीर्द्वित्वावच्छिन्नधीश्च भेदज्ञानाधीनेति तद्विरुद्धाभेदज्ञानानुपपत्तिरित्याशयेनाह—**इदमनेनेति। तद्विरुद्धेति।** भेदज्ञानविरुद्धेत्यर्थः। तात्त्विकाभेदज्ञानं तात्त्विकाभेदज्ञानं प्रति काल्पनिकभेदज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वाभावेन काल्पनिकभेदेन सर्वं निर्वहतीत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति।** अन्यूनसत्ताकविषयत्वेन ज्ञायमानयोरेव ज्ञानयोः प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावो भवतां सम्मतः। तथाऽभेदन्यूनसत्ताकत्वेन भेदधीर्नाभेदज्ञानेन प्रतिबध्या भवितुमर्हति। तस्माद्भेदज्ञानं सिध्यत्येवेत्याह—**विषमसत्ताकेति। भेदज्ञानस्यानुच्छेद-प्रसङ्गादिति।** भेदज्ञानस्य नोच्छेदप्रसक्तिः, किन्तु तत्सत्त्वमितियावत्। जीवब्रह्मणोरैक्यसिद्धौ भेद एव बाधकोऽतस्तस्य मिथ्यात्वं सम्पादनीयम्। तस्य मिथ्यात्वसिद्धौ सत्या-मैक्यसिद्धिस्तत्सिद्धौ भेदस्य मिथ्यात्वं सिध्यतीति परस्परसापेक्षत्वाद् भवत्यन्योन्याश्रय इत्याह—**भेदमिथ्यात्वसिद्धाविति।** तत्सिद्धौ=जीवब्रह्मणोरैक्यसिद्धौ। यद्यभेदज्ञाने

और ब्रह्म के ऐक्य की सिद्धि में भेद ही बाधक है—अतः पहले भेद का मिथ्यात्व सिद्ध करना होगा। उसके मिथ्यात्व सिद्ध होने पर ऐक्य की सिद्धि होगी और ऐक्य की सिद्धि होने पर भेद का मिथ्यात्व सिद्ध होगा। इस तरह परस्पर सापेक्ष होने से अन्योऽन्याश्रय दोष भी है। यदि कहें कि यदि अभेद के ज्ञान में धर्मी प्रतियोगी के ज्ञानी की अपेक्षा हो तभी तो अन्योऽन्याश्रय दोष होगा। अभेद तो निष्प्रतियोगी वस्तु है। यदि कहें कि अभेद को निष्प्रतियोगिक वस्तु कहेंगें तो सप्रतियोगित्व व्यवहार अनुपपन्न होगा, तो उसका उत्तर है—सप्रतियोगिकत्व व्यवहार तो निरुपक भेद के प्रतियोगि साध्य होने से होता है—तो यह भी नहीं कह सकते कारण निष्प्रतियोगिक ब्रह्म का भेदाभाव रूप से यदि मान होगा, तब उसमें सप्रतियोगिकत्व आ जाएगा—क्योंकि भेदाभाव भेदरूप प्रतियोगी सापेक्ष है। विपक्ष के बाधक तर्क कहते हैं—अन्यथा यानी अभेद को सप्रतियोगिकत्व स्वीकार न करने का अभेद स्वरूप ब्रह्मात्म्यैक के प्रमाण का (साधक) 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि महावाक्य ही है और वाक्य तो पदार्थ ज्ञान के द्वारा ही अर्थ बोधक होता है, इस तरह तत् त्वं पदार्थ का प्रकृत वाक्यार्थ के अनुरूप में अन्य किसी प्रकार से असिद्ध होने के कारण वे दोनों तत् त्वं पदार्थ भी शास्त्र द्वारा ही ज्ञेय होंगे। महावाक्यार्थ बुद्धित्वावच्छिन्न के प्रति

सापेक्षत्वव्यवहारस्त्वभेदरूपप्रतियोगिसापेक्षत्वादित्यापत्तेश्च ब्रह्म-स्वरूपमात्रैक्यज्ञानस्य भेदज्ञानाविरोधित्वापत्तेश्च। भेदः किं भिन्ने वर्तते, उताभिन्ने? आद्ये आत्माश्रयोऽन्योन्याश्रयो वा, द्वितीये विरोध इति चेन्न, तव मतेऽपि साम्यात्। अभेदोऽभिन्ने वर्तते, भिन्ने वा? आद्ये, आत्माश्र-

धर्मिप्रतियोगिज्ञानस्यापेक्षा स्यात्तदाऽन्योन्याश्रयो दोष उद्भावयितुं शक्यतेऽभेदस्य निष्प्रतियोगिकवस्तुस्वरूपत्वादिति शङ्कते **नन्विति। तस्य**=अभेदस्येत्यर्थः। **निष्प्रतियोगि-केति**। निष्प्रतियोगिकं वस्तुब्रह्म तद्रूपत्वादित्याशयः। यद्यभेदस्य निष्प्रतियोगिक-वस्तुस्वरूपत्त्वमुच्यते तदा तत्र सप्रतियोगिकत्त्वव्यवहारोऽनुपपन्न इत्यत आह—**सप्रतियोगिकत्वेति**। निष्प्रतियोगिकस्य ब्रह्मणो भेदाभावत्वेन भानं चेत्तदासतियोगिकत्वं तत्राव्याहतं, भेदाभावस्य भेदरूपप्रतियोगिसापेक्षत्वादित्याशयेन परिहरति **नेति**। विपक्षे बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति**। अभेदस्य सप्रतियोगिकत्वानङ्गीकार इति तदर्थः। अभेदरूपस्य ब्रह्मात्मैक्यस्य प्रमापकं "तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मी" त्यादि वेदान्त-महावाक्यमेव। वाक्यञ्च पदार्थज्ञानद्वारै वार्थबोधकमिति तत्त्वंपदार्थयोः प्रकृतवा-क्यार्थानुकूलतयाऽन्यतोऽसिद्धत्वात्तावपि शास्त्रेणैव प्रमातव्यौ। महावाक्यार्थ-बुद्धित्वावच्छिन्नम्प्रति अवान्तरवाक्यार्थज्ञानं कारणम्। तेन तत्पदार्थशोधकेन सत्यं ज्ञानमनन्तं

अवान्तर वाक्यार्थ ज्ञान ही ज्ञान है—तत्पदार्थ शोधक सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि एवं 'त्वं' पदार्थ शोधक 'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः' इत्यादि वचनों से अवान्तर वाक्यार्थ बोध के बाद 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यार्थ बोध होता है—यह उनका सिद्धान्त है। वह यदि अभेद को निष्प्रतियोगिक माने तो उपपन्न नहीं होगा—फिर तो महावाक्य का वैयर्थ्य होगा, अर्थात् जीव ब्रह्म का अभेद जीव प्रतियोगिक तथा ब्रह्म प्रतियोगिक भेद सापेक्ष है अन्यथा तत्पदार्थ त्वं पदार्थ शोधक वाक्यों का वैयर्थ्य हो जायेगा। अभेद ज्ञान में धर्मी के प्रतियोगी ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती कारण अभेद निष्प्रतियोगि ब्रह्म स्वरूप है। उसके सप्रतियोगिकत्व व्यवहार तो निरूपक भेद के सप्रतियोगिकत्व के कारण है, इस प्रकार अन्योऽन्याश्र दोष परिहार के लिये जैसा आपने कहा, उसी प्रकार निरपेक्ष वस्तु से अभिन्न भेद में निरपेक्षत्व है, सापेक्षत्व व्यवहार तो अभेदरूप प्रतियोगी सापेक्षत्वेन है, ऐसा भी हो सकता है—ऐसा भी मानकर उक्त समाधान का निराकरण करते हैं—निरपेक्ष वस्तु से अभिन्न भेद में निरपेक्षत्व है, सापेक्षत्व व्यवहार तो प्रतियोगी सापेक्षत्व से है—ऐसी आपत्ति होगी। ब्रह्मस्वरूप मात्र ऐक्य ज्ञान भेद ज्ञान के अविरोधित्व की आपत्ति भी होगी। भेद क्या भिन्न में रहता है या अभिन्न में, अर्थात् घट से भिन्न पट रूप धर्मी में तथा पटरूप प्रतियोगी से भिन्न घट में, यह भाव है। भिन्न में भेदान्तर

यादिदोषात्। द्वितीये विरोधात्। एवमप्यनिर्वाच्यत्वं तद्वति वर्तते तदभाव-वति वा। आद्ये आत्माश्रयादिप्रसक्तेः। द्वितीये विरोधात्। न चाभेदे

ब्रह्मेत्यादिना, त्वंपदार्थशोधकेन ''योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुष'' इत्यादिना चावान्तर्वाक्यार्थबोधोत्तरं तत्त्वमसीत्यादिना महावाक्यार्थबोधो जायत इति तेषां राद्धान्तः। स चाभेदस्य निष्प्रतियोगिकत्वे नोपपद्येतेत्याशयेनाह—**महावाक्यार्थेति**। जीवब्रह्मणोरभेदो जीवप्रतियोगिकब्रह्मप्रतियोगिकभेदसापेक्षोऽन्यथा तत्पदार्थत्वंपदार्थशोधकवाक्यानां वैयर्थ्यं प्रसज्जेतेत्यर्थः। अभेदज्ञाने न धर्मिप्रतियोगि-ज्ञानापेक्षा, अभेदस्य निष्प्रतियोगिकब्रह्मस्वरूपत्वात्। तत्र सप्रतियोगिकत्वव्यवहारस्तु निरूपकभेदसप्रतियोगिकत्वेनेत्यन्योन्याश्रयदोषपरिहाराय यथा भवताऽभिहितं तथा निरपेक्षवस्त्वभिन्नस्य भेदस्य निरपेक्षत्वं सापेक्षत्वव्यवहारस्त्वभेदरूपप्रतियोगि-सापेक्षत्वेनेत्यपि स्यादिति प्रतिबन्धाप्युक्तसमाधानं निरस्यति—**निरपेक्षवस्त्वभिन्नस्येति। भेद इति**। घटाद्भिन्ने पटे धर्मिणि, पटाच्च प्रतियोगिनो भिन्ने घटे धर्मिणीत्यर्थः। भिन्ने भेदान्तरस्वीकारस्य वैयर्थ्यादभिन्ने भेदस्थितिरितिपक्षान्तरमाह-**उताभिन्नइति**। अभिन्नमेव धर्मिणं संसृज्य भेदः प्रतियोगिनं भिनत्तीत्यर्थः। प्रतियोगिनो भिन्ने धर्मिणि भेदो निविशत इत्याद्यपक्षे दोषमाह—**आद्य इति**। येन भेदेन वैधर्म्याश्रययोर्घटपटयोर्भिन्नत्वं, सोऽपि भेदत्वाद्द्वितीयभेदवद्भिन्ने निविशेत। तथा च स्वस्माद्भिन्ने स्वस्थितिरुत द्वितीय-भेदवद्भिन्ने

का स्वीकार का वैयर्थ्य होने से अभिन्न में भेद की स्थिति यह दूसरा पक्ष कहते हैं अभिन्ने। अर्थात् अभिन्न धर्मी की ही रचना कर भेद प्रतियोगी का भेदन करता है, यह अर्थ है। प्रतियोगी से भिन्न धर्मी में भेद का प्रवेश होता है यह आदि पक्ष में दोष कहते हैं—प्रथम पक्ष में आत्माश्रय दोष या अन्योऽन्याश्रय दोष होगा। अर्थात् जिस भेद को वैधर्म्याश्रय घट और पट में भिन्नता है, वह भी भेद होने से द्वितीय भेद की तरह भिन्न में निवेश करेगा—इस प्रकार स्व से भिन्न में स्व की स्थिति है या द्वितीय भेद की तरह भिन्न में किंवा भेदान्तर से भिन्न में? प्रथम द्वितीय पक्ष आत्माश्रय अन्योऽन्याश्रय से अनुपपन्न है, तृतीय विकल्प में अनवस्था होगी यह भाव है। भेद और अभेद परस्पर विरुद्ध होने से इनमें एक का निषेध करने पर दूसरे का विधान आवश्यक होने से प्रकारान्तर असंभव है। परस्पर विरोध में प्रकारान्तर की स्थिति नहीं होती है, यह भाव है इसी अभिप्राय से द्वितीय विकल्प का अपाकरण करते हैं अत्यन्त अभेदवादी के पक्ष में भी यह प्रश्न होगा कि अभेद क्या अभिन्न में रहता है किंवा भिन्न में इत्यादि विकल्पों का समाधान प्रकृति में भी बराबर है—इसी अभिप्राय से परिहार करते हैं—चेन्न यह दोष आप के मत में तुल्य है। जिस अभेद से अभेदाश्रय दो वस्तुओं में अभिन्नता है, वह अभेद भी अभेद होने से द्वितीय अभेद की तरह अभिन्न में निवेश करेगा। इस प्रकार क्या स्वभिन्न में स्व स्थिति है।

विकल्पावकाशाभावस्तस्य स्वरूपत्वात्, अनिर्वाच्यत्वादावस्य विकल्प-स्यानिर्वाच्यत्वप्रयोजकस्य ममाप्यनुकूलत्वादितिवाच्यम्। भेदस्याप्यधि-करणस्वरूपत्वादिकल्पनासाम्यात् उक्तविकल्पप्रतिघातेन व्यावहारिका-

किम्वा भेदान्तरेण भिन्नो। प्रथमद्वितीयावात्माश्रयान्योन्याश्रयाभ्यामनुपपन्नौ तृतीयविकल्पेऽनवस्थेतिभावः। भेदाभेदयोः परस्परविरुद्धत्वेनान्यतरनिषेधेऽन्यतर-विधानस्यावश्यकत्वेन प्रकारान्तरस्यासम्भवात्। परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थिति-रितिन्यायादित्यभिप्रेत्य द्वितीयकल्पमपाकरोति **द्वितीयइति।** अत्यन्ताभेदवादिनां मतेऽप्यभेदः किमभिन्ने वर्तते, किम्वा? भिन्ने इत्यादिविकल्पसमाधानं प्रकृतेऽपि तुल्यमित्यभिप्रेत्य **परिहरति नेति।** येनाभेदेनाभेदाश्रयवस्तुनोरभिन्नत्वं सोऽप्यभेदत्वाद् द्वितीयाभेदवदभिन्ने निविशेत। एवञ्च स्वभिन्ने स्वस्थितिः, किम्वा द्वितीयाभेदवदभिन्ने, उताभेदान्तरेण वाऽभिन्ने? प्रथमद्वितीयावात्माश्रयान्योन्याश्रयाभ्यां दुष्टौ। तृतीयकल्पेऽन-वस्थेत्याशयेनाद्यकल्पं निरस्यति—**आद्य इति।** तेजस्तिमिरयोरिव भेदाभेदयोः परस्पर-विरोधादभेदसत्वे कथं भेदः स्थास्यति, भेदसत्वे कथं वाऽभेद इत्यतो द्वितीयविकल्पं निराकरोति-द्वितीय इति। अनिर्वाच्यत्वपक्षं दूषयितुं विकल्पयति—**एवमिति।** तद्वति= अनिर्वाच्यत्त्ववति। तदभाववति=अनिर्वाच्यत्त्वाभाववति। अनिर्वाच्यत्ववत्यनिर्वाच्यत्व-स्वीकारे तदप्यनिर्वाच्यत्वात्तद्वति वर्तत इतिपरस्परसापेक्षत्वादात्माश्रय इत्याह—**आद्य इति।** अनिर्वाच्यत्वाभावानिर्वाच्यत्वयोः परस्परविरोधान्न तदभाववत्यनिर्वाच्यत्वं वर्तते इत्यतो द्वितीयपक्षं निरस्यति। **द्वितीय इति।** अभेदस्य धर्मत्वे भिन्ने धर्मिणि निवेश उताभिन्ने?

किंवा द्वितीय अभेदवत् अभिन्न में अथवा अभेदान्तर से अभिन्न में। प्रथम द्वितीय पक्ष आत्माश्रय एवं अन्योऽन्याश्रय रूप दोष से इष्ट हैं। तृतीय विकल्प में अनवस्था, इसी आशय से आदि विकल्प को दूषित करते हैं। आदि में आत्माश्रय आदि दोष। द्वितीय विकल्प को तेज और तिमिर की तरह भेदाभेद का परस्पर विरोध होने से अभेद को भेद कैसा? तथा भेद होने पर अभेद हो सकता—इस प्रकार द्वितीय प्रश्न के विरोध है। अब अनिर्वाच्य पक्ष को दूषित करने के लिये विकल्प करते हैं—कहते हैं कि अनिर्वाच्यत्व अनिर्वाच्यवत् में रहता है या तदभाववत् में? अनिर्वाच्यत्ववत् में अनिर्वाच्यत्व स्वीकार करने पर वह भी अनिर्वाच्य होने से अनिर्वाच्यवत् रहेगा, इस प्रकार परस्पर सापेक्ष होने से आत्माश्रय दोष की प्रसक्ति। द्वितीय पक्ष के अनिर्वाच्यत्वाभाव एवं अनिर्वाच्यत्व में परस्पर विरोध होने से अनिर्वाच्यत्वाभाववान् में अनिर्वाच्यत्व रह सकता है। यदि कहें कि अभेद ब्रह्मस्वरूप होने से अभेद में विकल्प का अवकाश नहीं। आत्माश्रय आदि दोष के प्रसङ्ग से अभेद भिन्न में रहता है या अभिन्न में ऐसा निर्वचन अशक्य होने से यह दोष अनिर्वाच्यत्ववादियों के

निर्वाच्यत्वासिद्धिप्रसङ्गात्। तथात्वे च मिथ्यात्वोपपादकतर्कहततत्ववतामीक्षणानन्तत्वादीनामसम्भवेनेक्षत्याद्यधिकरणानामुच्छेदप्रसङ्गात्। अथ निर्विशेषस्य सन्मात्रस्य वस्तुनः सन् घट इत्यादिना प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमादधिकस्यानभ्युपगमाच्च परमते विषयासम्भव एव। महावाक्यार्थो

इत्यादिविकल्पदोषपरम्परा स्यान्नत्वेवं किन्त्वभेदस्य ब्रह्मस्वरूपत्वमिष्यतेऽतोनोक्तदोषावऽकाश इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति। तस्य**=अभेदस्य। आत्माश्रयादिदोषप्रसङ्गेनाभेदोऽभिन्ने वर्तते भिन्ने वेति निर्वक्तुमशक्यत्वादिति दूषणमनिर्वचनीयत्ववादिनां भूषणमेवोक्तविकल्पेनाभेदस्यनिर्वाच्यत्वसिद्धेरित्याह—**अनिर्वाच्यत्वादाविति।** यदि भेदस्याधिकरणस्वरूपादतिरिक्तत्वमभ्युपेयते तदा भिन्ने धर्मिणि भेदो वर्तते उताभिन्न इत्यादिविकल्पस्य प्रसक्तिः स्यान्नत्वेवं किन्तु भेदस्याधिकरणस्वरूपत्त्वमिष्यत इत्याह—**भेदस्येति।** अनिर्वाच्यत्वं तद्वति वर्तते तदभाववति वेति विकल्पेन पराहतत्वाद् व्यावहारिकमनिर्वाच्यत्वं न सिध्येत्तथासति मिथ्योपपादकतयैर्ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्यापि तत्त्वस्य हतत्वात् ''तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति, स ऐक्षत लोकान्नुसृजा, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'' त्यादि श्रुतिप्रतिपाद्यानामीक्षणादीनां तथात्वात्तदुपपादकेक्षत्याद्यधिकरणानामुच्छेदः प्रसज्जेतेत्याह–**उक्तविकल्पप्रतिघातेनेति।** तथात्वे=व्यावहारिकानिर्वाच्यत्वासिद्धौ सन् घट इति प्रतीतौ सदित्यधिष्ठानभूतं निर्विशेषं ब्रह्ममात्रं भासते, न तु जीवब्रह्मणोरैक्यम्। तथाचात्यन्ताभेदवादिनां

लिये भूषण ही है, क्योंकि उक्त विकल्प से अभेद का अनिर्वाच्यत्व सिद्ध होता है। इसी आशय से कहते हैं—'अनिर्वाच्यत्वादौ अस्य विकल्पस्य' अर्थात् अनिर्वाच्यत्व आदि में यह अनिर्वाच्यत्व प्रयोजक विकल्प मेरे लिये अनुकूल ही है, तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि भेद में अधिकरण स्वरूपत्व आदि की कल्पना की साम्यता है। यदि भेद को अधिकरण स्वरूप से अतिरिक्त स्वीकार करते हैं, तदा भिन्न धर्मी में भेद है या अभिन्न में इत्यादि विकल्प की प्रसक्ति होगी, पर ऐसा नहीं होता, किन्तु भेद को अधिकरण स्वरूप मानते हैं। यही बात कहते हैं—'भेदस्याप्यधिकरण स्वरूपत्वादि.......अनिर्वाच्यत्व तद्वत् में रहता है या तदभाववत् में इस विकल्प से पराहत होने से व्यावहारिक अनिर्वाच्यत्व की सिद्धि नहीं होगी—ऐसी स्थिति में मिथ्योपपादक तर्कों द्वारा ब्रह्म व्यतिरिक्त सभी तत्त्वों के खण्डित होने से 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' 'स ऐक्षत लोकान्नुसृजा' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति प्रतिपादित ईक्षण आदि मेरी खण्डित होने से ईक्षत्याधिकरण आदि अधिकरणों का उच्छेद हो जाएगा—यही बात कहते हैं—'उक्तविकल्प प्रतिघातेन' से। व्यावहारिक अनिर्वाच्यत्व की असिद्धि होने पर। सन् घटः इस प्रतीति के सत् रूप अधिष्ठानभूत

निर्विशेषसन्मात्रादधिकपरो न वा? आद्ये सखण्डार्थतापत्तेः, द्वितीये शास्त्रारम्भस्य वैयर्थ्यादिति भावः। तस्मादुक्तलक्षणः श्रीपुरुषोत्तम एव वेदान्तशास्त्रस्य विषय इति सङ्क्षेपः। एतेनैव सम्बन्धानुपपत्तिरपि सिद्धा, विषयाभावे सम्बन्धस्य सुतरामभावः॥ १७॥

इति श्रीमाधवमुकुन्दचरणेन विरचिते अध्यासगिरिवज्राख्ये शारीरकहार्दसञ्चये पराभिमतविषयसम्बन्धगिरिनिपातः॥ १॥

सिद्धान्तेऽस्य शास्त्रस्य जीवब्राह्मणोरैक्यं विषय इति न सिद्धमित्याह—**अथेति**। तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यमहावाक्यार्थबोधे यदि निर्विशेषब्रह्मातिरिक्तमैक्यं भासते तदा न तस्याऽखण्डार्थबोधजनकत्वमुपपद्यते, यदि तेन निर्विशेष सन्मात्रं विषयीक्रियते, तदा त्वदभिमतविषयो न सिद्ध्यतीत्युभयतःपाशारज्जुः। तथा च विषयस्य त्वन्मतेऽसिद्ध्या शास्त्रारम्भो निष्प्रयोजनक इत्याह **महावाक्यार्थ इति**। तवाभिमतविषयस्यासिद्धत्वात् प्रागुक्तलक्षणः श्रीपुरुषोत्तम एवास्य शास्त्रस्य विषय इत्युपपादयन्नुपसंहरति—**तस्मादिति**। यदि शास्त्रस्य विषयस्त्वन्मते सिद्ध्येत्तदा शास्त्रविषययोः सम्बन्धो वक्तुं शक्यते तदभावे तदभाव इत्याह—**एतेनेति**। प्रागुपदर्शितप्रकारेणेत्यर्थः ।।१७।।

इतिपराभिमतविषयसम्बन्धगिरिनिपातस्य व्याख्या॥ १॥

निर्विशेष ब्रह्ममात्र भासित होता है—न कि जीव ब्रह्म का ऐक्य। इस प्रकार अत्यन्त अभेदवादी के सिद्धान्त में इस शास्त्र का जीव ब्रह्म का ऐक्य विषय नहीं सिद्ध हुआ—यही कहते—'अथ निर्विशेषस्य सन्मात्रस्यवस्तुनः सन् घट' इत्यादि इस ग्रन्थ से।

'तत्वमसि' आदि महावाक्यजन्य महावाक्यार्थ बोध में यदि निर्विशेष ब्रह्म के अतिरिक्त ऐक्य भासित होता है—तब उसमें अखण्डार्थ बोध जनत्व की उपपत्ति नहीं होगी—यदि उससे निर्विशेष सत् मात्र ब्रह्म विषय होता है, तब आपको अभिन्न विषय की सिद्धि नहीं होती—इस प्रकार उभयतः पाशा रज्जुः इस प्रकार आपके मत में विषयी की सिद्धि नहीं होने से शास्त्रारम्भ भी व्यर्थ यही विषय कहते हैं—"महावाक्यार्थो निर्विशेषः.......... ?" इत्यादि ग्रन्थ से।

इस प्रकार पूर्व में प्रतिपादित श्रीपुरुषोत्तम ही वेदान्त शास्त्र का विषय है—इति संक्षेपः इसी से सम्बन्ध की अनुपपत्ति भी सिद्ध हो जाती है। क्योंकि विषय के अभाव होने से सम्बन्ध का अभाव स्वतः सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार श्रीमाधवमुकुन्द देव द्वारा विरचित अध्यासगिरिवज्र नामक शारीरिक हार्दसञ्चय में पराभिमत विषय सम्बन्ध गिरिनिपात का पं० वैद्यनाथ झा कृत अनुवाद समाप्त हुआ ।।१७।।

(२) प्रयोजनाधिकारिगिरिनिपातः

अथ श्रीभगवद्भावापत्तिलक्षणो मोक्षोऽस्य शास्त्रस्य प्रयोजनं "मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागता" इति श्रीमुखोक्तेः। भावपदञ्च स्वयमेव व्याख्यातं श्रीमुखेन "इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागता" इति श्लोकेन। स

वज्रोत्तेजिका— प्रयोजनमनभिसन्धाय मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते इति वचनाच्छास्त्रस्य प्रयोजनं निर्वक्ति—**श्रीभगवद्भावापत्तिरिति।** भगवद्भावापत्तिरूपमुक्तौ पराभिमतार्थप्रतिकूलार्थं स्मृतिवचनं दर्शयति-**मद्भक्त एतदिति।** एतत्=क्षेत्रयाथात्म्यं—क्षेत्रज्ञस्य प्राप्त्युपायं क्षेत्रज्ञस्वरूपयाथात्म्यञ्च विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते=मम यो भावः साधर्म्यं तत्प्राप्तये योग्यो भवतीत्यर्थः। बहव इति। बहवः=भक्ताः, ज्ञानतपसा=मज्जन्मकर्मविषयकज्ञानमेव तपः सर्वकर्म्मभर्जकं "ज्ञानाग्निः सर्वकर्म्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन" इति वचनात्, तेन पूताः=निरस्ताज्ञानतत्कार्य्यशुभाशुभवासनाः सन्तो मम यो भावः=अपरिच्छिन्नज्ञानानन्दवत्त्वे सत्यप्राकृतप्रकाशानन्दविग्रहवत्त्वं, तमागताः=प्राप्ताः। स्वरूपभेदेसति "सर्वं ह पश्यः पश्यती" ति श्रुतौ सार्वज्ञ्ययोगोक्तेः सार्वज्ञ्यादिधर्माविर्भावेन विग्रहसाम्येन चाभेदं तादात्म्यलक्षणं भेदाभेदम्प्राप्ता इत्यर्थः। "भेदसहिष्णुरभेदस्तादात्म्यमिति" पतञ्जल्युक्ततादात्म्यलक्षणसमन्वयात्। ननु

हिन्दी अनुवाद—

मुक्ति स्वरूप

इस शास्त्र का प्रयोजन श्री भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष है। इस मत में पराभिमत प्रतिकूल स्मृति वचन है—"**मद्भक्तः एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।**" अर्थात् श्रेत्र, क्षेत्रज्ञ, आदि का वास्तविक स्वरूप जानकर मद्भाव यानी मेरे साधर्म्य की प्राप्ति के योग्य होता है। बहुत सारे भक्त मेरे ज्ञानरूपता से पवित्र होकर मेरे भाव को प्राप्त होते हैं। यहाँ ज्ञान का अर्थ है—भगवान् के जन्य कर्म विषयक ज्ञान। वह ज्ञान ही तप है—सर्व कर्म भञ्जक है—ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। तेनपूताः का अर्थ है—उसके द्वारा अज्ञान एवं तत्कृत शुभाशुभ वासना भोग से रहित होकर मेरे भाव को प्राप्त करता है, अर्थात् मत् सादृश्य को प्राप्त करता है—भगवत् सादृश्य का अर्थ है—जैसे भगवान् अपरिच्छिन्न ज्ञान एवं आनन्द से युक्त हैं, चिन्मय आनन्द स्वरूप विग्रह से युक्त हैं—वैसा स्वरूप हो जाता है। स्वरूप भेद के साथ "सर्वं हि पश्यः पश्यति" इस श्रुति के द्वारा जीव में मुक्ति दशा में सार्वज्ञ्य योग का प्रतिपादन है। जीव में उस काल में सार्वज्ञ्य आदि धर्मों के आविर्भाव एवं विग्रह की समानता से अभेद यानी तादात्म्य लक्षण अभेद अर्थात्

एव सायुज्यब्रह्मामृतमहिमादिशब्दैरभिधीयते ''निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति'' ''नारायणे सायुज्यमाप्नोति'', ''ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति'' ''जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति तन्महिमानमेति वीतशोक'' इत्यादिश्रुतिभ्यः। परमते प्रयोजनं दुर्निरूप्यमसम्भवात्। तथा हि यस्मै ब्रह्मभावापत्ति

'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवती' त्यनुरोधादैक्यापत्तिरेव भावशब्दार्थ इत्यत आह—**भावपदंचेति।** इदं ज्ञानमिति। इदं=वक्ष्यमाणं ज्ञानमुपाश्रित्य अनुष्ठाय, मम साधर्म्यमागताः=मत्साधर्म्यम्प्राप्ता इत्यर्थः। एवं साधर्म्यवचनेन मुक्तौ स्वरूपैक्यवादः केवलभेदवादो बहुवचनेनात्मैक्यवादश्च स्पष्टं निरस्तः। तदैक्यश्रुतेः पतिकूलार्थां साम्यश्रुतिमुक्तार्थे प्रमाणतयोपन्यस्यति '**निरञ्जन**' इति। निरञ्जनः=निर्दुःखः सन्प्रत्यगात्मा, अत्र साम्यशब्दः सादृश्यरूपार्थमेव प्रतिपादयति नत्वैक्यम्। ऐक्यस्य मुख्यार्थत्वाऽभ्युपगमेऽपि स्वारस्याभावात्समशब्दस्य सादृश्यार्थ एव भूरि प्रयोगदर्शनान्नोक्तार्थत्वमिति भावः। **ब्रह्मेति।** यः कश्चिद् ब्रह्मवित् स ब्रह्मैव भवति। ध्वस्तावरणप्रभाविशिष्टदीपवदाविर्भूतबृहज्ज्ञानगुणविशिष्टोभवतीत्यर्थः। एतेन ब्रह्मभावापत्तिः सूचिता। **जुष्ट इति।** तेन परमात्मना जुष्टः प्रीत्या विषयीकृतः सन्नमृतत्वं भगवद्भावापत्तिरूपं मोक्षमेति प्राप्नोतीत्यर्थः। **तन्महिमानमिति।** वीतशोकः सन् तस्य

भेद सहिष्णुतादात्म्यरूप (पतञ्जलि प्रोक्त) अर्थात् भेदाभेद को प्राप्त हो जाता है। यदि कहें कि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' के अनुसार ऐक्यापत्ति की भाव शब्दार्थ है तो ऐसा नहीं है—भाव शब्द की व्याख्या भगवान् के स्वयं श्रीमुख से किया है—'मम साधर्म्यमागताः' अर्थात् भगवान् के साधर्म्य को प्राप्त होता है अर्थात् भगवान् के जो-जो धर्म है, सभी मुक्तात्मा में आ जाते हैं। साधर्म्य शब्द से मुक्ति के स्वरूपैक्य वाद, केवलाभेदभाव तथा बहुवचन में आत्मैक्यवाद का स्पष्ट निराकरण है। इसी को सायुज्य, ब्रह्म, अमृत, महिमा आदि शब्दों से कहा गया है। ऐक्य भावापत्ति स्वरूपा मुक्ति के प्रतिकूल साम्य शक्ति का उदाहरण है—''निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति। निरञ्जनः'' यानी सर्वविध दुःखरहित होकर साम्य शब्द सादृश्य अर्थ का ही प्रतिपादन करता है, न कि सर्वथा ऐक्यभाव का। इस अर्थ के प्रमाण है—''निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति, नारायणे सायुज्यमाप्नोति'' ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति—यहाँ इव अर्थ में एव का प्रयोग है। इससे ब्रह्मभावापत्ति का सूचन होता है। ''जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति।'' अर्थात् परमात्मा द्वारा प्रीतिविषय होकर अमृतत्व भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। ''तन्महिमानमेति वीतशोकः।'' अर्थात् मुक्ति में जीव सभी प्रकार के शोकों से रहित होकर भगवन्महिमा सर्वज्ञ्यादि लक्षण साम्यको प्राप्त होता है। यहाँ

लक्षणोमोक्षः प्रयोजनत्वेनाभ्युपगम्यते, तस्य चेतनस्यैकत्वमनेकत्वम्वा ? नाद्यः, चैत्रमैत्रादीनाम्भोगसाङ्कर्य्यप्रसङ्गात्। न चौपाधिकभेदस्य तन्नियामकत्वान्नोक्तदोषावकाश इति वाच्यम्,

ब्रह्मणो महिमानं सार्वज्ञ्यादिलक्षणं साम्यमेति प्राप्नोतीत्यर्थः ''आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनंमुने। विकार्यमात्मनः शक्त्या लोहमाकर्षको यथा''। आत्मभावं=आत्मनः स्वभावम्। भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च, **मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाच्च**, ''य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्व्वेषु लोकेषु कामचारो भवति, ब्रह्मविदाप्नोति परं, सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चिता, एतमानन्दमात्मानमुपसङ्क्रम्य इमाँल्लोकान्कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन् स तत्र पर्य्येति, रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवतीति श्रुतिसूत्रस्मृत्यादयोऽत्रानुसन्धेयाः''। ननु ''नारायणे सायुज्यमि'' ति श्रुतौ सायुज्यशब्देन मुक्तावभेद एवोच्यत इति चेन्न। सायुज्यशब्दस्य समानगुणयोगवाचित्वात्। युज्यत इति युक्शब्दो गुणपरः, धर्म्मिणि गुणःसम्बध्यते

भोगमात्र साम्यलिङ्गाच्च, 'मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाच्च' ''य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति, 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता।' 'एतमात्मानमुपसंक्रम्य इमाँल्लोकान् कामान्नी कामरूपी अनुसञ्चरन् स तत्र पर्य्येति' रसोवैसः रसं ह्येवायं लब्धाऽऽनन्दी भवति' इत्यादि श्रुति सूत्रों का अनुसंधान करना चाहिये। ये सारी श्रुतियां एवं सूत्र ससंबोधि मोक्षवादके समर्थक है न कि निःसम्बोधि मोक्ष के यदि कहें कि ''नारायणे सायुज्यमेति इस श्रुति में तो सायुज्य शब्द से मुक्ति में अभेद ही कहा गया है—तो ऐसा नहीं कह सकते—सायुज्य शब्द समानगुणयोगवाची है। ''युजिर्योगे'' इति धातो युज्यते सम्बध्यते इति युक्त इस व्युत्पत्ति से युक् शब्द गुणपरक है, धर्मों में गुण सम्बद्ध होता है। समानोगुणो यस्य इस व्युत्पत्ति से सयुक् का अर्थ हुआ समानगुणक समान गुण वाला। तस्य भावः सायुज्यम्। इस प्रकार नारायणे सायुज्यमेति का अर्थ हुआ कि नारायण के समान गुणवाला हो जाता है—निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति। यदि कहें कि सम्बन्धार्थक युजिर्योगे इस रौधादिक धातु का कर्ता में युज्यते यह रूप नहीं होता। समाधि अर्थ में युज् धातु का कर्त्ता में ऐसा रूप से भव होनेपर भी उस अर्थ की प्रकृत में संगति नहीं है। युजिर्योगे इस धातु से 'ऋत्विगादि' सूत्र से क्विन् अथवा 'सत्सुद्विष' इत्यादि सूत्र से अथवा 'क्विपपृच्छ' इस सूत्र से क्विप् कर्त्ता से विहित होने से कर्म में असंभव है—तो ऐसा नहीं कह सकते।

हस्तपादाद्युपाधिभेदेऽप्यनुसन्धानदर्शनात्। न चान्तः करणभेदोऽविद्याभेदो वा तन्नियामक इति वाच्यम्, चैतन्यैक्ये चक्षुरादिभेदवदन्तःकरणभेदस्याप्यनुसन्धानप्रयोजकत्वाभावात्। नन्वन्तःकरणभेदस्य

समानगुणकः सयुक् तस्य भावः सायुज्यमिति। न च सम्बन्धार्थकस्य ''युजिर् योगः'' इत्यस्य रौधादिकस्य कर्त्तरि युज्यत इति रूपाभावः। समाध्यर्थकस्य युजेः कर्त्तर्य्येतद्रूपसम्भवेऽपि तस्यार्थस्य प्रकृतासङ्गतिः। 'युजिर् योग' इत्यत ऋत्विगादिसूत्रेण क्विनो वा ''सत्सूद्विषे'' त्यादिना ''क्विप् चे'' त्यनेन वा क्विपः कर्तरि विहितत्वेन कर्मण्यसम्भव इति वाच्यम्, यतो युज्यतेऽनेनेति कर्त्तर्य्येव क्विन्, पच्यतेऽनेनेति पाचक इतिवत्तस्य सहशब्देन सदृशवाचिना बहुव्रीहिः। अस्ति च सहशब्दस्य सदृशपर्य्यायत्वं, यथा सदृशः सख्या ससखीति तस्यास्वपदविग्रहोऽयं बहुव्रीहिः। समानं युक् गुणजातमस्येत्यर्थ। तत्र ''वोपसर्जनस्ये'' ति सहस्य सभाव इति बोध्यम्। अत्यन्ताभेदवादिमते प्रयोजनस्य दुर्न्निरूप्यत्वमाह **परमत इति।** तदेवोपपादयति। **तथा हीत्यादिना।** तस्य—चेतनस्य। **भोगसाङ्कर्य्येति** चैत्रेण भुक्ते मैत्रस्यापि तृप्तिः स्यात्। चैत्रस्य दुःखनिवृत्तौ मैत्रस्यापि तत्प्रसङ्ग इत्यर्थः। चेतनस्यैकत्वेऽपि तत्तदुपाधीनां शरीराणां भेदान्नभोगसाङ्कर्य्यमित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति। तन्नियामकत्वादिति।** सुखदुःखादिभोग-

मायावादी मत में प्रयोजन का दुर्निरूप्यत्व.......

युज्यत अनेन इस व्युत्पत्ति से यहाँ कर्त्ता में ही क्विन् है—जैसे पच्यते अनेन इति पाचकः उसी तरह धर्मिणा सम्बध्यते अनेन इस व्युत्पत्ति से सयुक् शब्द गुणवाची हो सकता है। उस सदृशवाची सह शब्द से बहुव्रीहि समास है। सह शब्द सदृशवाची ही है जैसे सदृशः सख्या इति ससखिः यह अस्वपद विग्रह बहुव्रीहि समास है। सह समानं गुणजातकस्य यह अर्थ है। यहाँ वोपसर्जनस्य सूत्र से सह शब्द को सभाव हुआ।

अब मायावादी के मत में प्रयोज़न दुर्निरूप्य है, इसका विचार करते हैं। प्रश्न है कि जिसके लिये (जीव के लिये) ब्रह्मभावापत्ति मोक्ष प्रयोजन रूप में स्वीकार किया जाता है, वह चेतन (जीव) एक है या अनेक? एक माननेपर भोग में सांकर्य है—चैत्र के भोजन करनेपर मैत्र की तृप्ति होगी, चैत्र की दुःखनिवृत्ति होने पर मैत्र की दुःखनिवृत्ति होगी। यदि कहें कि चेतन के एक होनेपर भी उपाधि शरीरों के भेद से भोग सांकर्य नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते, यदि उपाधि भेद से एक को अनुसंधान तथा अन्य को अनुसंधान होने से उक्त दोष का यहाँ अवकाश नहीं है, ऐसा कहें तो वह भी नहीं कह सकते—हस्त, पाद आदि उपाधि में होने पर भी समान अनुसंधान देखा जाता है। यदि कहें कि अन्तःकरण का भेद या

प्रयोजकत्वेऽपि तदैक्याध्यासापन्नान्तः करणभेदस्याननुसन्धाने प्रयोजकताङ्गीकारान्नोक्तदोषयोग इति चेन्न, निर्विशेषस्वप्रकाशे ज्ञाताज्ञातविभागहीने चेतनेऽन्तःकरणादेस्तादात्म्यारोपासम्भवात्।

नियामकत्वादित्यर्थः। यद्युपाधिभेदादेकस्यानुसन्धानमन्यस्याननुसन्धानमित्युच्यते तदा शरीरावयवहस्तपादाद्युपाधिभेदसत्वेऽप्येकस्य पुंसोऽनुसन्धानं जायते, तस्माच्छरीरावयवभेद इव शरीरभेदोऽपि न तन्नियामक इत्याह—**हस्तपादादीति।** बाल्यशरीरेणानुभूतस्य स्थविरे स्मरणं न स्यात्, बाल्यादिशरीररूपोपाधिभेदस्य सत्वादित्यपि दूषणं बोध्यम्। अन्तःकरणभेदेनाविद्याभेदेन वा सुखदुःखादिभोगव्यवस्थोपपद्यत इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**—यथा चक्षुरादिभेदो नानुसन्धानप्रयोजकस्तथान्तःकरणभेदोऽपि न तथेत्याह—**चैतन्यैक्य इति।** एकजीववाद इति तदर्थः। शङ्कते—**नन्विति।** मा भवतु चक्षुरादीनां सुखदुःखानुसन्धानं प्रति प्रयोजकत्वम्, चैतन्यैक्याध्यासापन्नस्यान्तःकरणभेदस्य तथात्वं ब्रूमो नातो भोगसाङ्कर्यमित्यर्थः। तेषां मते सर्वमध्यस्तमिति स्वीकारेण चैतन्येऽन्तः-करणमप्यध्यस्तमिति भावः। भवद्भिर्निर्विशेषं चिन्मात्रं स्वप्रकाशं चेतनमभ्युपेयते, तत्रेदं ज्ञातमिदमज्ञातमिति विभागो न सम्भवति, नापि तत्रान्तःकरणादेस्तादात्म्यारोपः

अविद्या का भेद उसका नियामक होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते चैतन्य के एक होनेपर चक्षु आदि के भेद की तरह अन्तःकरण भेद भी अनुसंधान का प्रयोजक नहीं होगा। यदि कहें कि चक्षु आदि के साथ दुःख आदि के अनुसंधान में प्रति प्रयोजकत्व मत हो। चैतन्य के साथ ऐक्याध्यासापन्न अन्तःकरण का भेद प्रयोजक होगा फिर तो भोग सांकर्य नहीं होगा। (उसके मत में सब कुछ अध्यस्त है—ऐसा स्वीकार है, अतः चैतन्य में अन्तःकरण भी अध्यस्त है, यह भाव है) तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि निर्विशेष स्वप्रकाश तथा ज्ञाताज्ञातविभागहीन चेतन में अन्तःकरण आदि का तादात्म्याध्यास असंभव है। आप तो निर्विशेष चिन्मात्र स्वप्रकाश चेतन (ब्रह्म) स्वीकार करते हैं—उसमें यह ज्ञात है—यह अज्ञात है ऐसा विभाग सम्भव नहीं और न हीं उसमें अन्तःकरण आदि का तादात्म्यारोप कर सकते। कहेंगे कि अध्यास की महिमा से सब कुछ हो सकता है, अध्यास का तो हम आगे विस्तार से खण्डन करेंगे। दूसरी बात—प्रतिदिन अन्तःकरण उत्पन्न होता है और लयभाव को प्राप्त होता है—ऐसा सुषुप्ति के अनुरोध से स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में अन्तःकरण के भेद होने से पूर्व दिन में अनुभूत पदार्थ का दूसरे दिन स्मरण नहीं होगा। कारण अनुभव और स्मरण में सामानाधिकरण्य से कार्यकारण

उपरिष्टादध्यासस्य विस्तरेण निराकरिष्यमाणत्वाच्च, अविद्याद्यारोपेणावस्थादिदोषाणां वक्ष्यमाणत्वाच्च। किञ्च प्रतिदिनं सुषुप्तावन्तःकरणस्य लयः, तस्य तु सुषुप्त्यन्यथानुपपत्त्याऽकामेनापि

कर्त्तुं शक्यते इत्यर्थः। अध्यासमहिम्ना सर्वमुपपन्नं भविष्यतीत्यत आह—**अध्यासेति** प्रतिदिनमन्तःकरणमुत्पद्यते लीयते इति त्वया सुषुप्त्यनुरोधेनाभ्युपेयते। तथा सत्यन्तःकरणभेदात्पूर्वदिनानुभूतस्य परेद्युः स्मरणं न स्यादनुभवस्मरणयोस्सामानाधिकरण्येन कार्यकारणभावादित्याह—**किञ्चेति। अननुसन्धान प्रसङ्गादिति।** तथा च तत्रान्तःकरणभेदे सत्यप्यनुसन्धानसद्भावाद्व्यभिचार इतिभावः। तत्रान्तःकरणस्य संस्कारात्मनावस्थितस्य सत्त्वात्पूर्व्वदिनानुभूतस्य वस्तुनः परेद्युः स्मरणमुपपद्यत इति शङ्कते-**नन्विति। भेदाभावादिति।** तत्रान्तःकरणभेदो नास्तीति न व्यभिचार इति भावः। वास्तविकान्तःकरणस्य सत्त्वमेव स्मरणानुभवप्रयोजकं न तु संस्कारात्मनावस्थितस्य, तथात्वे च सुषुप्तावपि स्मरणानुसन्धानापत्तेरित्याशयेनोक्तशङ्कां परिहरति—**नेति।** विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति-**अन्यथेति।** संस्कारात्मनावस्थितस्यान्तःकरणस्यापि स्मृतिं प्रति प्रयोजकत्वाभ्युपगम इति तदर्थः।

भाव है फिर तो अन्तःकरण भेद रहने पर भी अनुसंधान का सद्‌भाव होने से व्यभिचार होगा—यह भाव है। यदि कहें कि संस्काररूप में अन्तःकरण के रहने से पूर्व दिन में अनुभूत वस्तु का दूसरे दिन स्मरण हो सकता है, उसमें अन्तःकरण का भेद नहीं है, इसलिये व्यभिचार नहीं होगा ऐसा नहीं कह सकते, कारण वास्तविक अन्तःकरण की सत्ता ही स्मरण अनुभव का प्रयोजक होता है, न कि संस्कार रूप में स्थित अन्तःकरण, ऐसा माननेपर सुषुप्ति में भी स्मरण के अनुसंधान की आपत्ति होगी। विपक्ष में बाधक तर्क उपस्थित करते हैं, अन्यथा संस्काररूप में अवस्थित अन्तःकरण को भी स्मृति के प्रति प्रयोजक माननेपर सुषुप्ति में भी अनुभव और स्मरण की उत्पत्ति होगी। स्मृति के प्रति मनस्त्वेन ही अन्तःकरण की हेतुता है न कि संस्कारात्मत्वेन अवस्थित का यह भाव है। यदि कहें कि अन्तःकरण के भेद में सुख-दुःख आदि के अनुसंधान में प्रयोजकता मत हो किन्तु अनेक अविद्या के सम्बन्ध के भेद में ही अनुसंधान प्रयोजकता हम कहते हैं—इस पर कहते हैं कि दुःखानुसंधानरूप अनेक अविद्या सम्बन्धस्वरूप अनर्थ विशिष्टवृत्ति है या शुद्धगत है? पहला पक्ष नहीं कह सकते—इस पक्ष में बन्धमोक्ष में वैयधिकरण है—अनर्थ अविद्यावच्छिन्न चैतन्यवृत्ति है और मोक्ष शुद्ध चैतन्यवृत्ति—इस तरह दोनों में वैयधिकरण है। द्वितीय पक्ष में सांकर्य दोष, कारण चैत्र और मैत्र उभय सम्बन्धी

त्वया स्वीकार्यत्वात्तथात्वे च पूर्वदिनानुभूतस्याननुसन्धानप्रसङ्गात्। ननु संस्कारात्मनावस्थितस्यैव पुनरुद्बोधेन तत्रान्तःकरणस्य भेदभावान्नोक्तदोष इति चेन्न, संस्कारात्मनावस्थितस्यानुभवस्मृत्याद्यनुपयोगात्। अन्यथा सुषुप्तावपि

तदुत्पत्तिः—स्मरणस्यानुभवस्य चोत्पत्तिः। स्मृतिं प्रति मनस्त्वेनैवान्तःकरणस्य हेतुता न तु संस्कारात्मत्वेनावस्थितस्येति भावः। मास्त्वन्तःकरणभेदस्य सुखाद्यनुसन्धाने प्रयोजकता किन्त्वनेकाविद्यासम्बन्ध भेदस्यैवानुसन्धानप्रयोजकत्वं ब्रूम इति शङ्कां निरसितुमाह—**अथेति**। आद्यपक्षं निरस्यति-**नाद्य इति**। **वैयधिकरण्यादिति**। अनर्थस्याविद्यावच्छिन्नचैतन्यवृत्तितया मोक्षस्य शुद्धचैतन्यगतत्वादिति वैयधिकरण्यादित्यर्थः। द्वितीयकल्पमपि साङ्कर्य्यदोषप्रदर्शनमुखेन दूषयति—**अन्त्ये चेति**। चैत्रीयमैत्रीयचैतन्ययोरैक्यादितिभावः। दुःखानुसन्धातृत्वस्योपहितचैतन्यवृत्तितयाऽविद्यानिवृत्तिरूपमोक्षस्य च शुद्धचैतन्यगतत्वान्नोक्तदोषावकाश इतिशङ्कते—**नन्विति**। तदापादकत्वम्। दुःखापादकत्वम्। उपहितचैत्रीयमैत्री-यचैतन्ययोरविद्याभेदेन भेदान्नोक्त साङ्कर्य्यावकाश इति भावः। उक्तव्यवस्थायां स्वीकृतायामपि बन्धमोक्षयोस्सामानाधिकरण्यं नोपपद्यत इत्याशयेन निरस्यति—**नेति**। तेषां मते चरमवृत्त्युपलक्षितात्मनोऽज्ञानहानिरूपो मोक्षो न तु बन्धनिवृत्तिमात्रं, तथात्वे उपहितस्य निवृत्तत्वात् कस्य मोक्षस्स्यादित्याह—**बद्धस्येति**। यत्कल्पितं तन्निवर्त्तते

चैतन्य तो एक ही है—इसलिये सांकर्यता तादवस्थ्य है।

यदि कहें कि दुःखानुसंधातृत्व तत्त्व उपहित चैतन्यवृत्ति और अविद्या निवृत्तिरूप मोक्ष शुद्ध चैतन्यगत है—इस प्रकार उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, उक्त व्यवस्था स्वीकार करने पर भी बन्ध मोक्ष का सामानाधिकरण्य उत्पन्न नहीं होगा कारण दुःख आदि के अनुसंधानरूप अनर्थ उपहित निष्ठ होने से बन्ध मोक्ष का वैयधिकरण्य पूर्ववत् ही रहेगा। कारण उनके मत में चरणवृत्ति उपलक्षित आत्मा के अज्ञान की हानिरूप ही मोक्ष है न कि बन्ध निवृत्ति मात्र—कारण वैसा माननेपर उपहित के निवृत्त होने से किसका मोक्ष होगा—यही कहते हैं—'बद्धस्य निवृत्तिरेव' यदि कहें कि जो कल्पित हैं—वह निवृत्त होता है—जो अकल्पित है—उसकी निवृत्ति नहीं होती, इस प्रकार बन्ध मोक्ष में सामानाधिकरण्य होगा अर्थात् उपधेय माने उपाध्यवच्छिन्न चैतन्य। उपाधि मात्र की निवृत्ति होगी, न कि चैतन्य क्योंकि वह अकल्पित है। जिसका बन्धन है, उसी का मोक्ष है—इस प्रकार सामानाधिकरण्य है यह भाव है—तो यह भी नहीं कह सकते, कारण शुद्ध से भिन्न रूप में आपके द्वारा अभिमत विशिष्ट तत्त्व के मिथ्या होने से मोक्ष का अन्वय संभव नहीं है। विशिष्ट चैतन्य शुद्ध चैतन्य से भिन्न है, यह आपका सिद्धान्त है। इससे

तदुत्पत्तिः स्यात्। अथ चानेकाविद्यासम्बन्धस्य दुःखानुसन्धानरूपस्याऽनर्थस्य च विशिष्टवृत्तित्वं शुद्धगतत्वं वा ? नाद्यः, बन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यात्। अन्त्ये च यच्छुद्धं चैत्रीयदुःखानुसन्धातृ तदेव मैत्रीयदुःखानुसन्धात्रिति

यच्चाकल्पितं तन्न निवर्त्तते इत्यभिप्रेत्य बन्धमोक्षयोस्सामानाधिकरण्यमुपपादयति—**नन्विति**। उपाधेयस्य-उपाध्यवच्छिन्नचैतन्यस्य। उपाधि मात्रस्य निवृत्तिर्न तु चैतन्यस्य तस्याकल्पितत्वात्। यस्यैव बन्धस्तस्यैव मोक्ष इति सामानाधिकरण्यमुपपन्नमिति भावः। मोक्षान्वयित्वम्—मोक्षसम्बन्धित्वम्। विशिष्टचैतन्यं शुद्धचैतन्याद्भिद्यत इति भवतां राद्धान्तस्तत्र विशिष्टस्य सत्यत्वं मिथ्यात्वम्वेति विकल्पद्वयमभिप्रेत्याद्यपक्षं दूषयति—**नेति। मोक्षान्वयासम्भवादिति**। तस्य कल्पितत्वेन मिथ्यात्वात् मोक्षसम्बन्धाभावादिति तदर्थः। वस्तुनः सत्त्वावस्थायामेव सम्बन्धो घटते न तु तदसत्व इति भावः। द्वितीयपक्षमपि निरस्यति—**विशिष्टस्येति**। सर्व्वं मिथ्या दृश्यत्वादित्यनुमाने दृश्यत्वं हेतुस्तस्य मिथ्यात्वाभाववति विशिष्टचैतन्ये सत्त्वाद्व्यभिचारित्वं स्यादित्यर्थः। तत्र=विशिष्टचैतन्ये। दुःखानुसन्धातृत्वमुपहिते स्वीकृत्य बन्धमोक्षयोस्सामानाधिकरण्यमुपपादयति—**नन्विति**। तत्रैव=शुद्धब्रह्मण्येव। तयोः=बन्धमोक्षयोः पुनरपि तयोः सामानाधिकरण्यपक्षं दूषयति—**नेति**। यत्र=उपहितचैतन्ये। स एव=उपहितचेतन एव। तस्यैव=उपहितचेतनस्यैव। अविद्यावच्छिन्नत्वेन शुद्धेऽपि दुःखानुसन्धानमिति बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरण्यमाशङ्क्य परिहरति—**नापीति**। यदि शुद्धेऽपि दुःखानुसन्धान्तृत्वमिष्यते

विशिष्ट सत्य है या मिथ्या? इस प्रकार के विकल्पद्वय की संभावना करके आदि पक्ष का निराकरण करते हैं—मोक्षान्वयासंभंवात् कारण उसके कल्पित होने से मिथ्या होने के कारण मोक्ष सम्बन्ध का अभाव है। क्योंकि वस्तु के सत्तावस्था में ही सम्बन्ध घटित होता है, न कि उसकी असत्तायें द्वितीय पक्ष का भी खण्डन करते हैं—'विशिष्ट सत्यत्वे' अर्थात् सर्वं मिथ्या दृश्यत्वात् इस अनुमान में दृश्यत्व हेतु है, मिथ्यात्वामाववत् विशिष्ट चैतन्य में होने से व्यभिचारित्व होगा। अब दुःखानुसन्धातृत्व उपहित चैतन्य में स्वीकार करके बन्ध-मोक्ष का सामानाधिकरण्य का उपपादन करते हैं—"ननु दुःखानुसंधानाद्..." अर्थात् यदि कहें की दुःखानुसंधान उपहित चैतन्य के होनेपर भी अविद्यारूप बन्धन शुद्धवृत्ति होने से उसी में मोक्ष होगा, इस प्रकार दोनों में वैयधिकरण्य का अभाव है तो यह भी नहीं कह सकते—कारण दुःख आदि के अनुभवद्वारा ही अविद्या में अनर्थत्व है। जिसमें दुःखानुसंधान है, वही बद्ध है—उसका मोक्ष उचित है। अविद्यावच्छिन्नत्वेन शुद्ध में भी दुःख का अनुसंधान होता है, इस तरह बन्ध मोक्ष में सामानाधिकरण्य की आशङ्का करके

साङ्कर्य्यस्य तादवस्थ्यात्। नन्वविद्यात्मकबन्धनिवृत्त्यात्मकमोक्षस्य शुद्धगतत्वेऽपि दुःखानुसन्धातृत्वस्योपहित गतत्वान्न शुद्धे तदापादकत्वमिति चेन्न, दुःखाद्यनुसन्धानरूपानर्थस्योपहितनिष्ठत्वेन बन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यस्य तादवस्थ्यात्। बद्धस्य निवृत्तिरेव न तु मोक्ष इत्यापत्तेश्च। ननूपाधेः कल्पितत्वान्निवृत्तावपि उपधेयस्याकल्पितत्वेन

तदाऽवस्थात्रयातीतत्वरूपं शुद्धत्वं व्याहन्येतेत्याह—**दुःखानुसन्धातुरिति।** उपाधीनां नानात्वात्प्रत्येकोपाधिनिवृत्तौ मोक्षः, सर्वेषामुपाधिनिवृत्तौ वेति विकल्पयितुमाह—**अथेति।** प्रतिदिनमेकैकस्योपाधेरुपरमात्सदा मुक्तिरेवोररीकृता स्यादित्याशयेनाद्यपक्षं निरस्यति**आद्यइति।** सर्वेषामुपाधीनामुपरमाभावान्न कस्यापि मुक्तिरुपपद्येतेत्यभिप्रायेण द्वितीयपक्षेऽपिदोषमुद्घाटयति-**द्वितीय इति।** सर्वेषामुपाधीनामुपरमे तु संसारोच्छेदःस्यादिति भावः। यस्य संसारिणो यदुपाध्यवच्छिन्नत्वं तस्य तदुपाध्यपगमे मोक्षो भवतीति प्रत्यगात्मनां नानात्वान्नोक्तदोषावकाश इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति।** प्रत्यगात्मनां ब्रह्मणा सहभेदः पारमार्थिकः, औपाधिको वेति विकल्पयति-**तथाहीति।** यदि भेदस्य पारमार्थिकत्वमभ्युपेयते तदाऽद्वैतसिद्धान्तो व्याहन्येतेति प्रथमपक्षमपाकरोति—**आद्य इति।** ब्रह्मणा सह स्वाभाविकोभेदो न भवतां राद्धान्ते

परिहार करते हैं—''नापि-अविद्यावच्छिन्नद्वाराऽवस्थात्रयातीतेत्यादि'' अर्थात् दुःख के अनुसंधानकर्ता में अवस्थात्रय से अतीत्व असंभव है। कारण यदि शुद्ध में भी दुःख का अनुसंधातृत्व स्वीकार करते हैं तो उसमें अवस्थात्रयातीतत्वरूप शुद्धत्व का व्याघात होगा। अब उपाधियों के नाना होने से प्रत्येक उपाधि की निवृत्ति में मोक्ष मानते हैं या सभी उपाधियों की निवृत्ति में? ऐसा विकल्प करते हुए कहते हैं— ''अथ चोपहितस्य...'' इत्यादि अर्थात् उपहित के उपाधिकृत होने से उपाधि शुद्ध गत ही कहना होगा। तब क्या प्रत्येक की उपाधि निवृत्ति से मोक्ष मानेंगे या सभी की उपाधि निवृत्ति पर मोक्ष मानेंगे? प्रथम पक्ष में प्रतिदिन एक-एक की उपाधि के उपराम होने से सदा मुक्ति ही होगी न कि बन्धन यह दोष होगा। द्वितीय पक्ष में सभी उपाधियों की उपराम के अभाव के कारण किसी की भी मुक्ति नहीं होगी। सभी की उपाधि के उपराम माननेपर तो संसार का ही उच्छेद हो जायेगा यह भाव है।

यदि कहें कि जो संसारी जीव जिस उपाधि से अवच्छिन्न है—उस जीव का उस उपाधि के अपगम होनेपर मोक्ष होता है और प्रत्यगात्मा तो नाना है—फिर उक्त दोष का अवकाश नहीं है—इस प्रकार आशंका करके कहते हैं—''न च जीवानामनेकत्वात्'' इत्यादि तो यह भी नहीं कह सकते, कारण इसमें विकल्प होनेपर उसका कोई उत्तर नहीं है। जैसे जीव नानात्व वाद में जीवात्मा का ब्रह्म के साथ भेद वास्तविक है या

निवृत्त्ययोगाद् मोक्षान्वयित्वमिति चेन्न, शुद्धभिन्नतया भवदभिमतस्य विशिष्टस्य मृषात्वेन मोक्षान्वयासम्भवात्, विशिष्टस्य सत्यत्वे तत्र दृश्यत्वादेर्व्यभिचारापत्तेः। ननु दुःखाद्यनुसन्धानमुपहितगतमप्यविद्यारूपबन्धस्य शुद्धवृत्तित्वात्तत्रैव मोक्ष

तदभ्युपगमे त्वस्मत्पक्षो प्रविष्टा भवन्त इत्याह—**तवेति।** जीवेश्वरयोरुपाधिप्रयुक्तभेदोवस्तुतोऽभेद इति द्वितीयकल्पं निरसितुमाह—**द्वितीय इति।** एकस्योपाधेर्विनिर्मोकेऽपि शुद्धस्य चैतन्यस्य द्वितीयोपाध्यवच्छिन्नत्वात्कदापिं मुक्तिर्न स्यादित्याह—**एकोपाधीति।** एकजीववादे उपाध्यवछिन्नानवच्छिन्नचैतन्ययोर्भेदो नास्तीत्याह—**भग्नोपाधेश्चेति।** एकजीववादे मुक्तेः सामञ्जस्यमुपपादयन् शङ्कते—**नन्विति।** एकजीववादेऽविद्याया एकत्वेनैकस्य मुक्तत्त्वे सम्प्रति प्रपञ्चानुपलम्भापत्तेः। यदि चासृष्टेः कस्यापि मुक्तिर्नासीदित्युच्यते तदा वामदेवादिमुक्तिप्रतिपादकवाक्यानो विरोधः प्रसज्येत, वामदेवादीनामुत्पन्नसाक्षात्काराणामप्यमुक्तार्वाचीनानामाषाढवाते चलति द्विपेन्द्रे चक्रीवतो वारिधिरेव काष्ठेति नियमेन मुक्तिर्दूरोत्सारिता स्यादित्याशयेन

औपाधिक? प्रथम पक्ष में आपको अद्वैतवाद से हाथ धोना पड़ेगा—जो आपको स्वीकार नहीं, फिर तो हमारा पक्ष आ जायेगा। द्वितीय पक्ष में—एक उपाधि से विनिर्मुक्त होनेपर भी शुद्ध आत्मा का अन्य उपाधि से अवच्छिन्न होनेपर। कदापि मुक्ति सम्भव नहीं होगा। भग्न उपाधिवाले चेतन की अन्य उपाधि से उपहित जीवों से भिन्नता नहीं है। एकजीववाद में उपाधि से अवच्छिन्न तथा अनवच्छिन्न चैतन्य में भेद नहीं है।

अब एकजीववाद में मुक्ति के सामञ्जस्य का उपपादन करते हुए कहते हैं—ननु माभूदनेकजीवादे...इत्यादि कहते हैं कि अनेक जीववाद में भले ही मुक्ति का सामञ्जस्य न हो, एकजीववाद में अविद्या के एक होने से एक के मुक्त होने पर प्रपञ्च के अनुपलम्ब की आपत्ति होगी। यदि कहें कि सृष्टि से लेकर आजतक किसी की मुक्ति नहीं हुई है—ऐसा मानें तो तब तो शुक आदि महापुरुषों के मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का वैयर्थ्य हो जायेगा—फिर तो इस मत की अप्रामाणिकता होगी और दुःखानुसंधान की भी अव्यवस्था हो जायेगी।

यदि जीवन्मुक्तों के तत्त्व साक्षात्कार से पारमार्थिकत्व सम्पादन में पटुतर शक्ति विशेष विशिष्ट ज्ञान के नाश होनेपर भी प्रतिभासिकत्व सम्पादन पटुशक्ति विशेष विशिष्ट ज्ञान की निवृत्ति न होने के कारण देह धारण उचित है—ऐसा यदि अद्वैतवादी कहें, तब भी कहते हैं—''किञ्चोपाधेरेकदेशेन...'' इत्यादि अर्थात् उपाधि का एक देश से सम्बन्ध है या सर्वावयवेन? प्रथम पक्ष में आपके मत में स्वाभाविक आशंका

इति तयोर्वैयधिकरण्याभाव इति चेन्न, दुःखाद्यनुभवद्वारेणैवाविद्याया अनर्थत्वात्, यत्रदुःखानुसन्धानं स एव बद्धस्तस्यैव मोक्षौचित्यात्। नाप्यविद्यावच्छिन्नद्वाराऽवस्थात्रयातीते शुद्धेप्यनुसन्धानमिष्टमितिवाच्यम्। दुःखानुसन्धातुरवस्थात्रयातीतत्वासम्भवात्। अथ चोपहितस्योपाधि-कृतत्वेनोपाधेः शुद्धगतत्वमेव वक्तव्यम्। तथात्वे च किमेकैकोपाध्यपगमे मोक्षः ? उत सर्वोपाध्यपगमे ? आद्ये, सदामुक्तिरेव न तु बन्ध इत्यापातात्। द्वितीये, अधुना बन्ध एव न कस्यापि मुक्तिरित्यङ्गीकृतं स्यात्। न च

परिहरति—**नेति**। जीवन्मुक्तानां तत्त्वसाक्षात्कारात् पारमार्थिकत्वसम्पादनपटीयश्शक्तिविशेषविशिष्टाज्ञानस्य नाशेऽपि प्रातिभासिकत्वसम्पादनपटीयश्शक्तिविशेषविशिष्टाज्ञानस्यानिवृत्तेर्देहधारणं युक्तमित्यद्वैतवादी यदि ब्रूयात्तदाप्याह—**किञ्चेति**। तथात्वे=औपाधिकत्वे। अनवस्था-प्रसङ्गः=एकदेश औपाधिकः सोऽप्यौपाधिक इत्येवं परम्परयाऽनवस्था प्रसङ्गः। द्वितीयकल्पमपि निरस्यति—**अन्त्य इति**। जीवब्रह्मणोरौपाधिकभेदे कथं न भेदकतेति जिज्ञासायां हेतुमुपन्यस्यति—**कृत्स्नस्यैवेति**। तन्मते भेदो द्विविधः सोपाधिको

अभाव होने से औपाधिक ही कहना पड़ेगा—फिर तो अनवस्था का प्रसङ्ग होगा। एक देश औपाधिक और वह भी औपाधिक—इस प्रकार अनवस्था का प्रसंग होता है। द्वितीय विकल्प भी नहीं कह सकते—कारण इसमें भेदकता नहीं है, क्योंकि सारा का सारा उपाधि से ग्रस्त है। उस मत में भेद दो प्रकार के होते हैं—सोपाधि और निरुपाधिक। इनमें उपाधि सत्ता से व्याप्य सत्ताकत्व सोपाधिक भेद होता है और उससे भिन्न निरुपाधिक होता है, इसमें पहला जैसे एक ही आकाश का घटादि उपाधि भेद से भेद—इसमें दोष उपस्थित करते हैं—'गगनादावपि अर्थात् गगन में औपाधि देश स्वीकार करनेपर अनवस्था सभी प्रदेश में उपाधि सम्बन्ध माननेपर भेदकत्व नहीं होगा।' यह आशय है। यदि कहें कि सभी विकल्प असम्भव होनेपर मिथ्याभूत उपाधि को ही मिथ्याभेद का प्रयोजक मान लेंगे तो ऐसा नहीं कह सकते हैं—'उत्तरा स्फूर्तौ' यह परमत का उपसंहार करते हुए कहते हैं—''प्रधान सम्वित्योः'' प्रधान माने माया सम्वित् का अर्थ है—ज्ञान। सांख्यमत के विकल्प संभव न होने से प्रधान में और बौद्धमत के संवित् में जगत् कारणत्व सिद्ध नहीं होता। कारण मिथ्याभूत होनेपर भी सांख्य तथा बौद्ध मत का व्यावहारिक रूप में स्वीकार है—अन्यथा उस मत का खण्डन संभव नहीं—यही बात कह रहे हैं। ''मृषाभूतस्यापि'' इस ग्रन्थ का भाव यह है कि सांख्य द्वारा 'सदेव सौम्येदमग्र

जीवानामनेकत्वाद्येनोपाधिना यस्य परिच्छिन्नत्वं तस्मिंश्चेतने तदुपाध्यपगमे मोक्ष इति वाच्यम्, विकल्पासहत्वात्। तथाहि—जीवनानात्ववादे चेतनभेदो वास्तव औपाधिको वा? आद्येऽद्वैतवादो दत्ततिलाञ्जलिः स्यात्, तवानङ्गीकारात्, अस्मत्पक्षप्रवेशाच्च। द्वितीय एकोपाधिविनिर्मुक्तस्यापि शुद्धस्योपाध्यन्तरावच्छिन्नत्वेन कदापि मुक्तेरसम्भवात्, भग्नोपाधेश्चेतनस्योपाध्यन्तरोपहितेभ्यो भिन्नत्वाभावात्। ननु माभूदनेकजीववादे मुक्तेः सामञ्जस्यम्, एकजीववादे तु सर्वोपाध्यपगमान्मोक्ष इति चेन्न शुकादिमोक्षविधायकशास्त्रस्य बाधापत्त्या

निरुपाधिकश्च। तत्रोपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वं सोपाधिकत्वं, तद्भिन्नत्वं निरुपाधिकत्वम्। तत्राद्यो यथा—एकस्यैवाकाशस्य घटाद्युपाधिभेदेन भेद इति तं दूषयति **गगनदावपीति।** गगन औपाधिकदेशाङ्गीकारेऽनवस्था। सर्वप्रदेशे उपाधिसम्बन्धे न भेदकत्वमित्याशयः। परमतमुपहसन्नाह—**उत्तरास्फूर्त्ताविति।** प्रधानं=माया। सम्वित्=ज्ञानम्। साङ्ख्यमते विकल्पासहत्वेन हेतुना प्रधाने बौद्धमते सम्विदि च जगत्कारणत्वं न सिद्ध्यति। मिथ्याभूतस्यापि साङ्ख्यबौद्धयोर्मतस्य व्यावहारिकत्वेनाङ्गीकारादन्यथा तन्मतनिरासोऽनुपपन्न इत्याह—**मृषाभूतस्येति।** अयमर्थः—साङ्ख्येन "सदेव सोम्येदमि" ति वाक्ये प्रकृतिरेव जगज्जन्मादिकारणत्वेन प्रतिपाद्येत्यभिहिते (ईक्षतेर्नाशब्दम् १।१।५) इति त्वया दूषिते सति साङ्ख्यस्योत्तरास्फूर्त्तावस्मान्प्रति त्वमिव त्वां प्रति तेनापि प्रकृतेर्दौर्घट्यं भूषणमिति सुवचत्वेन त्वया तन्मतनिरासायोगात्। तथा बौद्धेनापि सम्वित्तेरेव जगत्कारणत्वेऽभिप्रेते तद्दूषणेन सम्वित्तावनुपपन्नायां सत्यां तस्योत्तरास्फूर्त्तौ दौर्घट्यं भूषणमित्युक्त्या सोऽपि कृती स्यात्। अतस्तव तन्निराकरणमनुपपन्नमिति। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—

आसीत इस श्रुति वाक्य में सत् शब्द से जगत् कारणत्वेन प्रकृति ही विवक्षित हैं—इस कथन को 'ईक्षतेर्नाशब्दम' इस अधिकरण में आप द्वारा दूषित करनेपर सांख्य को कोई उत्तर स्फूर्ति न होनेपर हमारे प्रति आप द्वारा दिये गये उत्तर की तरह आपके प्रति सांख्य द्वारा प्रकृति का दौर्बल्य भूषण ही है—यह कहा जा सकता है—फिर तो आप द्वारा उस मत का खण्डन नहीं हो सकता। इसी तरह बौद्ध द्वारा संवित् (ज्ञान) को जगत् कारण मानने पर उसके दोष का उद्‌भावन कर संवित् वाद के अनुपपन्न होने पर वहाँ भी उसके किसी उत्तर की अस्फूर्ति में दौर्बल्य भूषण है—यह कहकर बौद्ध भी कृतकृत्य हो जायेगा। इसलिये आपका निराकरण उपपन्न नहीं होगा। अब

तन्मतस्यैवाप्रामाणिकत्वात्। दुःखानुसन्धानस्याव्यवस्थापकत्वाच्च। किञ्चोपाधेरेकदेशेन सम्बन्धः कृत्स्नेन वा? आद्ये त्वन्मते स्वाभाविकांशाभावेनौपाधिकत्वमेव वाच्यम्, तथात्वे चानवस्थाप्रसङ्गः। अन्त्ये न भेदकता कृत्स्नस्योपाधिनैव ग्रस्तत्वात्, गगनादावपि स्वाभाविकांशाभावे घटाद्युपाधिसम्बन्धो न स्यादेव। न च सर्व्वविकल्पासहत्वेन मिथ्याभूतस्यैवोपाधेर्मिथ्याभेदप्रयोजकत्वमिति वाच्यम्। उत्तरास्फूर्त्तौ प्रधानसम्वित्योर्विकल्पाद्यसहत्वमिति साङ्ख्यबौद्धाभ्यामपि वक्तव्यत्वेन तन्निरासासम्भवात्, मृषाभूतस्यापि व्यावहारिकस्य त्वया व्यवस्थाङ्गीकारात्। अन्यथा जीवजडयोर्विश्वकर्तृत्वान्तर्यामित्वादिकं निरस्येश्वरे तत्समर्थयतः समन्वयाध्यायस्योच्छेदापत्तेः। तव मते परमेश्वरकर्तृत्वस्यापि व्यावहारिकत्वात्। तस्माद्बद्धमुक्तदुःखाद्यनुसन्धानानुपपत्त्या चितो वास्तवभेदोऽवश्यमभ्युपेतव्य इति सिद्धं भेदस्य पारमार्थिकत्वम्॥ १८॥

अन्यथेति। मृषाभूतस्य व्यावहारिकव्यवस्थानङ्गीकार इति तदर्थः। प्रधाने जीवे च जगज्जन्मादिकर्त्तृत्वं निरस्य मिथ्यात्वं च सम्पाद्य व्यावहारिकत्वं तयोरङ्गीकृतमित्यर्थः। औपाधिकभेदं निरस्य स्वमतसिद्धान्तमुपसंहरन्नाह—**तस्मादिति। बद्धमुक्तेति।** कश्चिज्जीवो बद्धः कश्चिन्मुक्त इति बद्धमुक्तव्यवस्थया जीवानां परस्परभेद सिद्धौ सुतरामीश्वरे स्वाभाविको भेदः सिद्ध्यति। यदि बद्धमुक्तयोर्भेदो न स्यात्तदा बद्धस्य दुःखानुसन्धानेन मुक्तस्यापि तदापत्तिः। मुक्तस्य दुःखाननुसन्धानेन बद्धस्यापि तदनापत्तिरिति भावः। एतेनौपाधिकभेदनिरसनमुखेन भेदस्य पारमार्थिकत्वं समर्थितं भवति।।१८।

विपक्ष में बाधक तर्क कहते हैं—"अन्यथा जीवजड़योर्विश्वः" मिथ्या पदार्थ में व्यावहारिक व्यवस्था सम्पादकत्व न माननेपर जीव तथा जड़ में विश्व कर्तृत्व एवं अन्तर्यामित्व आदि का खण्डन कर ईश्वर के जगत् कर्तृत्व आदि का समर्थन करनेवाले समन्वयाध्याय का उच्छेद हो जायेगा। आपके मत में परमेश्वर कर्तृत्व भी व्यावहारिक ही है। इसलिये बद्ध, मुक्त तथा दुःखानुसंधान आदि की अनुपपत्ति के कारण जीव का वास्तविक भेद अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार पारमार्थिकत्व भली-भाँति सिद्ध होता है।। १८।।

ननु बन्धमोक्षादिव्यवस्थायाः स्वप्नवद्यावदविद्यमुपपद्यमानत्वमेवेति चेन्न; तस्मिन्नेकस्मिन्नपि सुप्ते सर्वजगदप्रतीत्यापत्तेः। ननु समष्ट्यभिमानिनोऽस्वापान्नोक्तदोष इति चेन्न, सृष्टिमारभ्याप्रलयमप्रसुप्तत्वस्य जीवेऽसम्भवात्, जीवैक्याङ्गीकारेऽहंत्वमयमिति प्रत्यक्त्वपराक्त्वप्रत्ययानामुच्छेदापत्तेश्च, न हि देवदत्तं प्रति त्वमिति धीविषयस्य तमेव प्रत्यहमिति धीविषयत्व युक्तमित्यर्थः। ननु नायं दोषो भिन्नभिन्नान्तःकरणभेदाध्यासेन तत्तदन्तःकरणमादायाहंत्वमादिप्रत्ययानां सविषयत्वव्यवस्थोपपत्तेरितिचेन्न, योगिनः कायव्यूहे नानान्तःकरणतादात्म्या-

---

वज्रोत्तेजिका— स्वप्नस्य यथा यावदविद्यमवस्थानं तथा बन्धमोक्षगुरुशिष्यादिव्यवस्थोपपद्यत इति शङ्कते—**नन्विति**। एकजीवपक्षमभिप्रेत्य परिहरति-**नेति**। पुनःशङ्कते—**नन्विति**। न च समष्ट्यभिमानिनो हिरण्यगर्भादेः स्वीकारान्नोक्तदोष इति वाच्यम्। सर्वाभिमानिनो हिरण्यगर्भस्य जीवत्वस्वीकारे तस्य कल्पान्तरे मुक्त्या सर्वमुक्त्यापत्तेः। दूषणान्तरमाह **प्रत्यक्त्वेति**। प्रत्यक्त्वं=स्वस्मै भासमानत्वम्। पराक्त्वं=परस्मा एव भासमानत्वम्। तदेवोपपादयति-**न हीति**। अन्तःकरणानां नानात्वमङ्गीकृत्यैकजीववादेऽहं त्वमादिव्यवहारमुपपादयन् शङ्कते—**नन्विति**। सौभरिप्रभृतिषु नानाशरीरधारणं पुराणेषु श्रूयते, तत्र नानान्तःकरणसत्त्वेप्यहमित्येव प्रतीतिरित्याशयेन दूषयति—**योगिन इति**। तत्रान्तःकरण भेदसत्वेऽपि त्वमहमयमिति व्यवहाराभावाद्व्यभिचार इतिभावः।

हिन्दी अनुवाद— यदि कहें कि जिस प्रकार स्वप्न का अविद्यापर्यन्त अवस्थान होता है, उसी प्रकार बन्ध, मोक्ष तथा गुरु शिष्यादि व्यवस्था उपपन्न होती तो ऐसा नहीं कह सकते—एक जीववाद में एक के सुप्त होनेपर जगत् की अप्रतीति की आपत्ति हो जायेगी, क्योंकि आपके मिथ्या पदार्थ में भी व्यावहारिक व्यवस्था सम्पादकत्व माना है।

यदि कहें कि समष्टि के अभिमानी के अस्वाप के कारण उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते; सृष्टि से लेकर प्रलयपर्यन्त असुप्तत्व जीव में असंभव है। यदि कहें कि समष्टि अभिमानी हिरण्यगर्भ आदि को स्वीकार करने से उक्त दोष नहीं होगा, तो ऐसा नहीं कह सकते, सर्वाभिमानी हिरण्यगर्भ में जीवत्व स्वीकार करनेपर कल्पान्तर में उसकी मुक्ति होने से सबकी मुक्ति की आपत्ति हो जायेगी। दूसरा दोष कहते हैं—जीव का ऐक्य पथ स्वीकार करनेपर अहं, त्वम्, अयम् इत्यादि प्रत्यक्त्व तथा पराक्त्व आदि प्रतीतियों का उच्छेद हो जायेगा। त्वम् इस ज्ञान के विषय देवदत्त के प्रति अहम् ऐसी प्रतीति युक्त नहीं है। अपने लिये

रोपेऽप्यहमित्येव प्रतीतेः। न च तत्रान्तःकरणस्यैकत्वमेवेति वाच्यम्। बाह्यकरणानामप्यैक्यापत्त्या कायव्यूहस्यैवासम्भवात्। किञ्च त्वन्मते एकस्यैव चितः सर्वान्तःकरणैरभेदाध्यासेन चैत्रस्य शुक्तिसाक्षात्कारेण रूप्यभ्रमनिवृत्तावन्येषामपि निवृत्त्यापत्तेः। अन्तःकरणस्य भेदाद्यव्यवस्थापकत्वात्। अन्यथा योगिकायव्यूहे देहोऽपिभोक्तृभेदकः स्यात्। अथचैक एव जीवः सर्व्वकल्पकस्तेनैव सर्व्वमिदं कल्पितमिति चेन्न, जीवस्य कारणतां निषिद्ध्यपरमेश्वरकारणत्वबोधकानां श्रुतीनां बाधापत्तेः, सार्वज्ञ्यबोधकश्रुतीनां निर्विषयत्वापत्तेश्च, जीवभिन्नेशाभावाज्जीवे सार्व्वज्ञ्यस्यानुभवविरोधाच्च। न च समष्ट्यभिमानिनो

कायव्यूहे=नानाशरीरे। तत्र=कायव्यूहे। तत्र हेतुमाह—**बाह्यकरणानामिति**। एकजीववादे दोषान्तरमाह–**किञ्चेति**। तत्तन्मनोऽवच्छिन्ननानादेहाभिमानिनश्चैतन्यस्यैक्यादित्यर्थः। अन्तःकरणस्य भेदाद्‌व्यवस्थोपपद्यत इत्यत आह—**अन्तःकरणस्येति**। यद्यन्तःकरणस्यैव भेदनियामकता न तु देहस्येत्यत्र किं नियामकमित्याह—**अन्यथेति**। कायव्यूहे देहभेदेऽपि भोक्ता एक एवेत्याशयः। एकजीववादी पुनः प्रत्यवतिष्ठते—**अथेति**। सर्वम्=प्रपञ्चमात्रं, न तु तदन्यः परमात्मेति जीवैक्यवादिन आशयः। परिहरति—**नेति**। **जीवभिन्नेशाभावादिति**। इदमेक-जीववादप्रकरणाल्लभ्यत इत्याशयः। तस्यैव=प्रसिद्धभिन्नसर्व्वज्ञस्य।

भासमानता प्रत्यक्त्व है और दूसरों के लिये भी भासमानता को पराक्त्व कहते हैं। अब अन्तःकरणों का नानात्व स्वीकार कर एक जीववाद में 'अहम्' 'त्वम्' आदि व्यवहारों का उपपादन कर शंका करते हैं—"ननु ...नायं दोषो भिन्नान्तःकरणानाम् इत्यादि ग्रन्थम्" यानी यदि कहें कि भिन्न-भिन्न अन्तःकरण के भेदाध्यास से तत् तत् अन्तःकरण को लेकर अहम् त्वम् आदि प्रतीतियों की विषय व्यवस्था की उपपत्ति हो जायेगी तो ऐसा नहीं कह सकते। योगी के कायव्यूह में नाना अन्तःकरण के साथ तादात्म्य के आरोप होनेपर भी केवल अहम् ऐसी ही प्रतीति होती है। पुराणों में सौभरि आदि ऋषियों का नाना शरीर धारण सुना जाता है, उनके नाना अन्तःकरण होनेपर भी (अहम् ऐसी ही प्रतीति होती है) यदि कहें कि वहाँ अन्तःकरण एक होता है, तो ऐसा नहीं कह सकते, फिर तो बाह्यकरणों में भी एकत्व की आपत्ति हो जायेगी, तब तो कायव्यूह ही असंभव हो जायेगा। एक जीववाद में दूसरा दोष देते हैं—'किञ्चत्वन्मते...' अर्थात् एक ही चित् (जीव) का सभी अन्तःकरणों के साथ अभेद का अध्यास होने से चैत्र को शुक्ति का साक्षात्कार होने से रजत भ्रम की निवृत्ति होनेपर अन्य लोगों की भी भ्रम की

जीवस्यैव सार्व्वज्ञ्यादियोगोऽभ्युपगम्यत इतिवाच्यम्, लोके जीवत्वेन प्रसिद्धेषु सार्व्वज्ञ्यादेः प्रत्यक्षादिना बाधितत्वात्। प्रसिद्धभिन्नस्य सार्वज्ञ्यस्वीकारे तस्यैवेश्वरत्वेनेष्टापत्तेः। न चान्तःकरणभेदाध्यासात्त-दनुभवविपरीतानुभवयोरुभयोरुपपत्तिरिति वाच्यम्, सर्वज्ञस्याधिष्ठानत्वं जानतस्तदध्यासासम्भवात्, भ्रान्तिसार्व्वज्ञ्ययोरेकत्र व्याहतत्वाच्च। "तान्यहं वेद सर्व्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तपे" ति स्मृत्या जीवानभिमानिनः सर्वज्ञताविधानाच्चालं विस्तरेण॥ १९॥

तदनुभवः=सार्वज्ञ्यानुभवः। **विपरीतेति**। सार्वज्ञ्यविपरीतानुभव इत्यर्थः। न हि जीवः सर्वज्ञ इत्यत्र श्रीमुखवचनं प्रमाणतयोपन्यस्यति—तान्यहमिति। इत्येक जीववादनिराकरणम्।।१९।।

निवृत्ति हो जायेगी—यह आपत्ति होगी। अन्तःकरण के भेद से व्यवस्था की उपपत्ति होगी—इस पर कहते हैं—"अन्तःकरणरूप भेदाद्यव्यस्थापकत्वात्" यदि अन्तःकरण ही भेद नियामक हो देह नहीं इसमें क्या नियामक? इस पर कहते हैं—"अन्यथा योगिकायव्यूहे" अन्यथा योगि के कायव्यूह में देह ही भोक्ता का भेदक हो जायेगा। कायव्यूह में देह भेद होनेपर भी भोक्ता एक ही होता है। यह आशय है। अब पुनः एक जीववादी शङ्का करते हैं—यदि कहें कि एक ही जीव सबका (प्रपञ्चमात्र) कल्पक है—उससे भिन्न परमात्मा नहीं—उसी ने ही यह सारा प्रपञ्च कल्पित किया है तो ऐसा नहीं कह सकते तब तो जीव की कारणता का निषेधकर परमेश्वर के कारणत्व बोधक श्रुतियों का बाध हो जायेगा, सार्वज्ञ्य बोधक श्रुतियां निर्विषय हो जायेगी तथा जीव भिन्न ईश्वर के अभाव से जीव में सर्वज्ञता अनुभव विरुद्ध भी है। यदि कहें कि समष्टि अभिमानी जीव में ही सार्वज्ञ्य आदि का योग स्वीकार करते हैं, तो यह भी नहीं कह सकते, कारण लोक के जीवरूप में प्रसिद्ध तत्त्वों में सार्वज्ञ्य आदि गुण प्रत्यक्ष से बाधित है, प्रसिद्ध से भिन्न में सर्वज्ञता स्वीकार करनेपर उसी में ईश्वरत्व होगा। यदि कहें कि अन्तःकरण के भेदाध्यास से उसमें अनुभव एवं विपरीत अनुभव दोनों की उपपत्ति हो जायेगी तो ऐसा नहीं कह सकते—सर्वज्ञ ब्रह्म के अधिष्ठानत्व जाननेवालों को उसका अध्यास सम्भव नहीं है, कारण भ्रान्ति एवं सर्वज्ञता एक में बाधित है (एक व्यक्ति सर्वज्ञ भी हो और उसे भ्रम भी हो—यह संभव नहीं) जीव सर्वज्ञ नहीं हैं, इसमें श्रीमुख का वचन प्रमाण है—"तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप"। इस प्रकार एक जीववाद का निराकरण पूरा हुआ।।१९।।

द्वितीये चेतनानेकत्वपक्षे तद्भेदस्यौपाधिकत्व उक्तदोषाणां योगः। किञ्चौपाधिकभेदाङ्गीकार उपाधिगमनकाले तदवच्छिन्नस्य कौटस्थ्याद् गत्यभावेन पदे पदे बन्धमोक्षौ स्याताम्। अनादिबद्धस्याऽकस्मात्साधनं विनैव मोक्षः कूटस्थनित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्याकस्मान्निष्कारणमेव बन्ध इत्यर्थः। कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गाच्च, स्वाभाविकत्वे चास्मत्पक्षप्रवेशोऽद्वैतभङ्गश्च। ननु माभूदुपाध्यवच्छिन्नस्योक्तदोषकदम्वाज्जीवत्वं, किन्तु चेतनप्रतिबिम्ब एव जीवस्तस्याविद्याया अन्तःकरणस्य वोपाधेः कल्पितत्वेन तन्नाशे जीवब्रह्मैक्यसिद्धिरिति चेन्न, प्रतिबिम्बभावे उपाधेर्बिम्बस्य च सावयवत्वरूपवत्त्वप्रमाणविषयत्वादीनां तत्कारणानामभावात्। तथाहि-

---

वज्रोत्तेजिका— यस्मै ब्रह्मभावापत्तिलक्षणो मोक्षःप्रयोजनत्वेनाभ्युपगम्यते तस्य चैतन्यस्यैकत्वमनेकत्वम्वेति यत्प्रागुक्तं तत्र चैतन्यस्यैकत्वपक्षमेतावता प्रबन्धेन निरस्य सम्प्रति द्वितीयपक्षं निरसितुमाह-**द्वितीय इति।** द्वितीयशब्दार्थं स्फुटयति-**चेतनानेकत्वपक्ष इति।** तद्भेदस्य=चेतनभेदस्य। **उक्तदोषाणामिति।** उपहितस्योपाधिकृतत्वे उपाधेः शुद्धगतत्वमेव वक्तव्यं तथात्वे च किमेकैकोपाध्यपगमे मोक्ष उत सर्व्वोपाध्यपगमे ? आद्ये सदा मुक्तिरेव न तु बन्ध इत्यापातादित्यादिग्रन्थेनोक्ता दोषा अनुसन्धेया इत्यर्थः। दोषान्तरमाह-**किञ्चेति।** पदे पदे=क्षणे क्षणे। उपाधिसंयुक्तस्यात्मन आकर्षणाभावादनुक्षणमुपाधिसंयुक्तब्रह्मप्रदेशभेदात् क्षणे क्षणे बन्धमोक्षौ स्यातामित्यर्थः। ब्रह्मण उपाधिविशिष्टतया कृत्स्नस्याकर्षणं स्यात्, निरंशस्य

हिन्दी अनुवाद—

प्रयोजन का दुर्निरूप्यत्व अनेक जीववाद में

जिसके लिये ब्रह्माभावापत्ति स्वरूप मोक्ष प्रयोजन रूप में स्वीकार करते हैं—वह चेतन एक है या अनेक ? इसमें चेतन के एकत्व पक्ष का यहाँ तक के ग्रन्थ में खण्डन करके सम्प्रति द्वितीय पक्ष का निराकरण करते हैं—''द्वितीये चेतनानेकत्वपक्षे''

चेतन में अनेकत्व पक्ष में चेतन के भेद को औपाधिक मानने पर पूर्वोक्त दोषों की आपत्ति—अर्थात् उपहित को उपाधिकृत माननेपर आपको उपाधि शुद्ध गत ही कहना पड़ेगा, तब प्रश्न होता है कि एक उपाधि के अपगम होने से मोक्ष होता है या सभी उपाधियों के अपगम में होनेपर प्रथम पक्ष में सदा मुक्ति ही होगी न कि बन्ध—ये 'आपातात्' इत्यादि ग्रन्थ के द्वारा कहे गये पूर्वोक्त दोष होंगे। दूसरा दोष कहते हैं—'किञ्च से अर्थात् औपाधिक भेद स्वीकार करनेपर उपाधि के गमन

बिम्बरूपो रूपी प्रत्यक्षविषयोऽवयववान्न वा ? निष्प्रमाणविषयो निरवयवो वा ? नाद्यः, अनङ्गीकाराद्, अन्यथा निर्विशेषाद्वितीयवादभङ्गापत्तेः। न द्वितीयोऽसम्भवात्। नीरूपस्य च रूपस्य प्रत्यक्षगोचरस्वाश्रय द्रव्यविशिष्टस्यैव सावयवे प्रत्यक्षगोचर एव द्रव्ये प्रतिबिम्बभावापत्ति दर्शनान्न केवलस्यातो न तत्र व्यभिचारः शङ्कनीयः। न चाकाशस्य निरवयवनीरूपस्यापि प्रतिबिम्बदर्शनाद् व्यभिचार इति वाच्यम्,

व्यापिन आकर्षणं न सम्भवतीति चेत्तर्हि उपाधिरेव गच्छतीति पूर्व्वोक्त एव दोष इत्याशयः। तदेवोपपादयति—**अनादिबद्धस्येति। कृतनाशेति।** यत्कृतं=श्रवणादिकं साधनादितस्य नाशः। अकृतस्य सुखदुःखादेरुत्पादस्यादित्यर्थः। अनेकजीववादेऽपि स्वाभाविक एव भेद इति भङ्ग्यन्तरेणाह—**स्वाभाविकत्व इति।** एतावता प्रबन्धेनावच्छिन्नजीववादो निरस्तः। सम्प्रति प्रतिबिम्बवादं निरसितुं तन्मतमनूद्यते—**नन्विति।** एकमेव चैतन्यं बिम्बत्वाक्रान्तमीश्वरचैतन्यं, प्रतिबिम्बत्वाक्रान्तं जीवचैतन्यं, बिम्बप्रतिबिम्बभावकल्पनोपाधिश्चैकजीववादेऽविद्या। अनेकजीववादेऽन्तःकरणान्येव। अविद्यान्तःकरणोपाधिप्रयुक्तोजीवेश्वरयोर्भेदः, तस्य चोपाधिकल्पितत्वेन तन्नाशेजीव-ब्रह्मणोरैक्यं रूपादिहीनस्य ब्रह्मणो न प्रतिबिम्बसम्भव इत्यर्थः। रूपादिमत एव तथात्वं दृश्यत इत्यत आह—**प्रतिबिम्बभाव इति।** प्रतिबिम्बभावे यानि कारणानि सन्ति तेषामभावान्न प्रतिबिम्बभावःसम्भवति। तानि विकल्प्य दूषयितुमाह—**तथा हीत्यादिना।** रूपवत्त्व—प्रत्यक्षविषयत्व-सावयवत्वादिकं प्रतिबिम्बभावप्रयोजकं ब्रह्मण्यस्ति न वा? अस्ति चेन्निर्विशेषचिन्मात्रवादस्य भङ्गःस्यात्, नास्ति चेत्तदा

काल में तदवच्छिन्न चेतन में कूटस्थ होने से उसकी गति न होने के कारण पद-पद पर बन्ध और मोक्ष की आपत्ति। अनादिकाल से बद्धजीव का अकस्मात् साधन के बिना ही मोक्ष तथा कूटस्थ, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव चेतन का निष्कारण बन्धन हो जायेगा। अर्थात् उपाधि संयुक्त आत्मा में आकर्षण का अभाव होने से अनुक्षण उपाधि संयुक्त ब्रह्मप्रदेश के भेद के क्षण-क्षण में बन्ध मोक्ष होगा। ब्रह्म के उपाधि विशिष्ट होने से सम्पूर्ण आकर्षण होगा, कहें कि निरवयव तथा व्यापक चेतन का आकर्षण संभव नहीं तब तो उपाधि ही चलती है, ऐसा कहना होगा। इस तरह पूर्वोक्त ही दोष हो जायेगा, इसी बात को स्पष्ट करते हैं—"अनादि बद्धस्य अकस्मात्..." इत्यादि ग्रन्थ से तथा कृतनाश एवं अकृताभ्यागम दोष का प्रसंग भी होगा—किये हुए श्रवण आदि साधन का नाश तथा अकृत सुख-दुःख आदि की उत्पत्ति हो जायेगी। अनेक जीववाद में भी स्वाभाविक ही भेद है—यह प्रकारान्तर

पञ्चीकृतस्याकाशस्य सावयवत्वरूपित्व-चाक्षुषत्वादीनां सत्त्वेन प्रतिबिम्बस्याविरुद्धत्वात्। अपञ्चीकृतस्य केवलस्य तु प्रत्यक्ष गोचरत्वाभावेन प्रतिबिम्बकल्पनाया अप्रामाण्यात्। अन्यथा कालधर्म्मादीनां शब्दस्पर्शादौ वायुपिशाचादीनां चाक्षुषाणां कालादौ प्रतिबिम्बनापत्तेः। तस्य दृष्टिश्रुत्यगोचरत्वादनुपपन्नत्वाच्च। किञ्च

कारणाभावात्प्रतिबिम्बभावो न सिद्ध्येदित्याशयेनाद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति।** अनङ्गीकारादिति। रूपवत्त्व-प्रत्यक्षविषयत्वसावयवत्वादीनां निर्विशेषे ब्रह्मण्यनङ्गीकारादित्यर्थः। विपक्षे बाधकतर्कं दर्शयति—**अन्यथेति।** रूपादिमत्त्व इति तदर्थः। नीरूपत्वप्रमाणविषयत्व-निरवयवत्वादिधर्म्माणां निर्विशेषे ब्रह्मण्यसम्भवाद् द्वितीयपक्षोऽपि हेय इत्यभिप्रेत्याह—**न द्वितीय इति।** गुणे गुणानङ्गीकारान्नीरूपस्यापि रूपस्य प्रतिबिम्बदर्शनाद् व्यभिचारमाशङ्क्य तं निरस्यति—**नीरूपस्येति। स्वाश्रयेति।** स्वं रूपमित्यर्थः। रूपादिमतो द्रव्यस्यैव प्रतिबिम्बो दृश्यते न तु केवलस्य रूपस्य, द्रव्यातिरेकेण केवलस्य रूपस्य कुत्रापि प्रतीतेरदृष्टत्वात्तथाच न तत्र व्यभिचारशङ्काकलङ्कावकाश इत्यर्थः। पुनरप्याकाशे व्यभिचारमाशङ्क्य परिहरति—**न चेति।** पञ्चीकृताकाशे सावयवत्वादीनां सत्त्वान्न तत्र व्यभिचारावसरस्तद्रहिते तु गगने न प्रतिबिम्बस्य सम्भावना भवतीत्याशयेनाह—**पञ्चीकृतस्येति।** बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** नीरूपस्यापिप्रतिबिम्बाभ्युपगम इत्यर्थः। नीरूपाणां कालधर्म्माणां चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञानाविषयाणां वायुपिशाचादीनाञ्च शब्दादौ कालादौ च प्रतिबिम्बभावापत्तिरित्याह—**कालादाविति।** प्रकारान्तरेणाप्युक्तव्यभिचारं व्युदस्यति—

से कहते हैं—स्वाभाविक माननेपर हमारे पक्ष का प्रवेश होता है और अद्वैत का भङ्ग। अब प्रतिबिम्बवाद का खण्डन करने के लिये उनके मत का अनुवाद करते हैं— "ननु ...." एक ही चैतन्य बिम्बत्वाक्रान्त ईश्वर चैतन्य, प्रतिबिम्बत्वाक्रान्त जीव चैतन्य बिम्ब प्रतिबिम्बभाव कल्पना की उपाधि एक जीववाद में अविद्या और अनेक जीववाद में अन्तःकरण हैं। अविद्या और अन्तःकरण उपाधि प्रयुक्त जीव ईश्वर में भेद है, यह भेद उपाधि कल्पित है, इसलिये उपाधि के नाश होने पर जीव ब्रह्म में ऐक्य सिद्ध हो जायेगा तो ऐसा नहीं कह सकते—प्रतिबिम्ब हेतु उपाधि तथा बिम्ब में सावयवत्व, रूपवत्त्व एवं प्रमाण विषयत्व आदि गुण कारण है—इनका अभाव होने से प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। यहाँ हम पूछेंगे बिम्ब रूपवान्, प्रत्यक्ष विषय तथा सावयव है या नहीं? अथवा निष्प्रमाण विषय निरवयव है? पहला पक्ष नहीं कह सकते, क्योंकि आप ब्रह्म को रूपवान्, प्रत्यक्ष विषय एवं सावयव नहीं मानते—यदि रूपवान् आदि मानेंगे तो आपका निर्विशेष अद्वितीयवाद

सूर्य्यचन्द्रादिप्रभामण्डलयुक्तस्यैवाकाशस्य प्रतिबिम्बभावापत्तिर्न केवलस्य, अन्यथान्धकारेऽपि तद्दर्शनापत्तेरतो न तत्र व्यभिचारावकाशः। ननु "एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्" "उपमा सूर्य्यकादिवत्" इति श्रुतिसूत्रमानात्प्रतिबिम्बवादोऽवश्यमभ्युपगन्तव्य इति चेन्न,

---

किञ्चेति। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** सूर्य्यचन्द्रादिप्रभामण्डलयुक्तस्याकाशस्य प्रतिबिम्बभावानङ्गीकार इत्यर्थः। प्रतिबिम्बवादं प्रमाणीकर्त्तुं श्रुतिं सूत्रञ्चोदाहरति—**नन्विति।** परिहरति—**नेति। उक्तशास्त्रस्येति।** यथा सूर्य्यः स्वप्रभाव्याप्त्या जले तिष्ठन्न तद्गतशैत्यादिगुणैर्लिप्यते प्रत्युत जलमेव सोष्मणा प्रकाशेन चोष्णीकृत्यावभासयति। चन्द्रश्च तथैव स्वकरनिकरव्याप्त्या जलमेव भासयँस्तच्छैत्यं वर्द्धयति, न तु तद्गतद्रवत्वेन लिप्त्वाऽऽर्द्रीभावं प्राप्नोति, तद्वत्परमात्माऽपि विश्वस्मिन्पदार्थे आत्मनैव व्याप्त्यावस्थितोऽपि तद्धर्म्मास्पृष्ट एव विश्वं प्रकाशत इति श्रुति-सूत्रयोरर्थः। नात्र प्रतिबिम्बवादवातगन्धस्पर्शावकाशः। विकल्पयति—**किञ्चेति।** नहि शिल्पिसहस्रेणापि नीलस्य पीतत्वं कर्तुंशक्यत इति स्वाभाविकस्योपाधिसम्बन्धस्य निराकर्त्तुमशक्यतया मोक्षाभावापत्तेरिति नाद्यः पक्षः साधीयानित्याह—**नाद्य इति।** अविद्यासम्बन्धऔपाधिकः सोऽप्यौपाधिक इत्येवं परम्परयाऽनवस्था प्रसज्जेतेति

भङ्ग होगा। दूसरा पथ भी नहीं कह सकते, क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म में नीरूपत्व, प्रमाण विषयत्व तथा निरवयवत्व आदि धर्म भी संभव नहीं। यदि कहें कि नीरूप रूप का प्रतिबिम्ब कैसे होता है तो उसका उत्तर है कि नीरूप रूप का प्रत्यक्ष गोचर स्वाश्रय द्रव्य विशिष्ट का ही सावयव प्रत्यक्ष गोचर द्रव्य में ही प्रतिबिम्ब होता है केवल रूप का प्रतिबिम्ब नहीं होता इसलिये वहाँ व्यभिचार नहीं यदि कहें कि आकाश तो नीरूप एवं निरवयव है और उसका प्रतिबिम्ब होता है तब तो फिर व्यभिचार होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते, आकाश के पञ्चीकृत् होने से उसमें सावयवत्व, रूपत्व तथा चाक्षुषत्व आदि धर्मों के होने से उसमें प्रतिबिम्ब होने में कोई विरोध नहीं। अपञ्चीकृत् केवल आकाश का प्रत्यक्ष गोचर न होने से उसकी प्रतिबिम्ब की कल्पना अप्रामाणिक है। अन्यथा काल धर्म आदि का शब्द स्पर्श आदि के तथा वायु, पिशाच आदि का काल आदि में प्रतिबिम्ब की आपत्ति होगी, ऐसा न देखा गया न सुना ही गया है और नहीं यह उपपन्न हो सकता है। बल्कि सूर्य, चन्द्र आदि के प्रभा मण्डल से युक्त आकाश का ही प्रति बिम्बभाव होता है न कि केवल आकाश का अन्यथा अन्धकार में उसके दर्शन की आपत्ति होगी, इसलिये वहाँ कोई व्यभिचार का अवकाश नहीं है। यदि कहें कि "एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्" इत्यादि श्रुतियों एवं "उपमा सूर्यकादिवत्" आदि सूत्रों

उक्तशास्त्रस्यान्तर्यामिनिर्लेपप्रतिपादनपरत्वात्। किञ्चोपाधिसम्बन्धो जीवे स्वाभाविक औपाधिको वा ? नाद्यः, त्वन्मतेऽनिर्मोक्षप्रसङ्गात्। न द्वितीयः,

द्वितीयपक्षमपि निरस्यति—**न द्वितीय इति। अन्योन्याश्रयाच्चेति।** उपाधिसंसर्गाज्जीवस्य सत्त्वं, जीवसत्त्वादुपाधिसंसर्गसत्त्वमित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः। उपाधिसंसर्गोत्पत्तावुपाधिरेव हेतुरिष्यत इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति। आत्माश्रयादिति।** स्वोत्पत्तौ स्वस्यापेक्षणादात्माश्रय इत्यर्थः। उपाधौ बिम्बसमसत्ताकत्वं प्रतिबिम्बतायां प्रयोजकं न तु बिम्बविषमसत्ताकत्वमिति नियममनुसृत्याह—**वस्तुतस्त्विति। अविद्याद्युपाधीनामिति।** जीवैक्यानेकवादाभिप्रायेणेदमभिहितम्। एकजीववादेऽविद्याया उपाधित्वमनेकजीववादेऽन्तःकरणस्योपाधित्वमिति परेषां कल्पनेत्याशयः। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** उपाधिबिम्बयोः समसत्ताकत्वाभाव इत्यर्थः। बिम्बसमानसत्ताक उपाधावेव प्रतिबिम्ब इति नियमे व्यभिचारमाशङ्क्य परिहरति—**न चेति।** मुखप्रतिबिम्बताप्रयोजकबिम्बसमसत्ताकत्वस्य दर्पणे सत्त्वात्तत्र मुखस्य प्रतिबिम्बस्तत्र वर्तमानं यन्नेत्रं तत्र प्रतिबिम्बितमुखादिदर्शने व्यभिचारो दर्पणस्थनेत्ररूपोपाधौ बिम्बसमसत्ताकत्वाभावादित्यर्थः। दर्पणस्थनेत्रे जायमानमिदं

के प्रमाण के आधार पर प्रतिबिम्बवाद अवश्य स्वीकार के योग्य है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, उक्त शास्त्र वचनों का तात्पर्य परमात्मा के अन्तर्यामित्व एवं निर्लेपत्व प्रतिपादन में है, अर्थात् जैसे सूर्य अपनी प्रभा की व्याप्ति से जल में रहते हुए भी जलगत शैत्य आदि गुणों से लिपायमान नहीं होता, बल्कि जल को ही अपनी उष्णता एवं प्रकाश से उष्ण बनाकर प्रकाशित करता है, इसी प्रकार चन्द्र भी अपनी किरण समूहों की व्याप्ति से जल को ही प्रकाशित करता हुआ उसकी शीतलता को बढ़ाता है न कि चन्द्र जलगत द्रवत्व से आर्द्रभाव को प्राप्त होता, उसी प्रकार परमात्मा भी विश्व के समस्त पदार्थों को व्याप्त कर अवस्थित होनेपर भी उसके धर्म से स्वयं सर्वथा अस्पृष्ट होते हुए विश्व को प्रकाशित करता है, यह श्रुति एवं सूत्र का अर्थ है न कि यहाँ प्रतिबिम्बवाद को गन्ध का भी स्पर्श है। दूसरी बात यही हम यहाँ विकल्प करें कि उपाधि का सम्बन्ध जीव में स्वाभाविक है या औपाधिक? प्रथम पक्ष नहीं कह सकते स्वाभाविक मानने पर जीव के अनिर्मोक्ष का प्रसंग होगा। जैसे शिल्पी सहस्र मिलकर भी नीले रंग को पीला नहीं कर सकते, इसी तरह स्वाभाविक उपाधि सम्बन्ध को कोई हटा नहीं सकता, इस प्रकार जीव का मोक्ष असंभव हो जायेगा। अविद्या सम्बन्ध औपाधिक, वह औपाधिक भी औपाधिक, इस प्रकार अनवस्था। तथा उपाधि संसर्ग में जीव की सत्ता एवं जीव

अनवस्थानादन्योन्याश्रयाच्च। न चोपाधिरेव स्वसम्बन्धहेतुरिति वाच्यम्, आत्माश्रयात्। वस्तुतस्तु बिम्बान्यूनसत्ताक एवोपाधौ लोके प्रतिबिम्बदर्शनात् प्रकृतेऽविद्याद्युपाधीनां ब्रह्मन्यूनसत्ताकत्वान्नेष्टसिद्धिः। अन्यथा मृगमरीचिकाजलेऽपि सूर्य्यादिप्रतिबिम्बदर्शनापत्तेः॥ २०॥

मुखमिति ज्ञानं भ्रम एव, न तु मुखस्य प्रतिबिम्बस्तथा च तत्र नोक्तनियमस्य व्यभिचारावकाशो यद्येवमाशङ्क्येत तन्निराकुर्वन्नाह—**सोपाधिकारोप इति।** आरोपोद्विविधो निरुपाधिकसोपाधिकभेदात्। आत्मन्यहङ्कारारोप आद्यः, द्वितीयस्तावदेकस्मिन्नेव ब्रह्मण्युपहिते जीवेश्वररूपेण भेदावभासः। तदुक्तं—"दोषेण कर्म्मणा वापि क्षोभिताज्ञानसम्भवः। तत्त्वविद्याविरोधी च भ्रमोऽयं निरुपाधिकः"। उपाधिसन्निधिप्राप्तक्षोभाविद्याविजृम्भितम्। उपाध्यपगमापोह्यमाहुः सोपाधिकं भ्रममिति परेषां पन्थाः। सोपाधिकारोपे जाते उपाधिर्न ज्ञायते, तेन सोपाधिकारोप उपाधिज्ञानं प्रति प्रतिबन्धक इति कल्प्यत इत्याह—**स्वबाध्यौपाधिकत्वस्येति।** स्वेनारोपेण बाध्योऽप्रतीत उपाधिर्यस्यारोपस्य तत्कत्वमित्यर्थः ।।२०।।

की सत्ता से उपाधि संसर्ग, इस तरह अन्योऽन्याश्रय दोष भी हो जायेगा। यदि कहें कि उपाधि से संसर्ग की उत्पत्ति में उपाधि ही हेतु है तो नहीं कहा जा सकता, तब तो आत्माश्रय दोष होगा। वास्तव में तो उपाधि में बिम्ब एक सत्ताकत्व ही प्रतिबिम्बता का प्रयोजक है न कि बिम्ब विषय सत्ताकत्व। इस प्रकार प्रकृति के अविद्या आदि उपाधि के ब्रह्मन्यून सत्ताकत्व होने से इष्ट सिद्धि नहीं होगी—(प्रतिबिम्बभाव नहीं हो सकता। यह कथन जीव के ऐक्यवाद एवं अनेकवाद के अभिप्राय से है। एक जीववाद में अविद्या उपाधि तथा अनेक जीववाद के अन्तःकरण उपाधि है—ऐसी प्रतिवादियों की कल्पना है। अन्यथा उपाधि तथा बिम्ब में समसत्ताकत्व के अभाव में प्रतिबिम्ब मानने पर मृगमरीचिका के जल में भी सूर्य आदि के प्रतिबिम्ब की आपत्ति हो जायेगी ।।२०।।

न च दर्पणस्थनेत्रप्रतिफलितमुखादिदर्शने व्यभिचारः सोपाधिकारोपे दृष्टस्य स्वबाध्यौपाधिकत्वस्य तत्रासत्त्वेन नेत्रदेशावच्छेदेन तन्मुखप्रतिफलनमित्यङ्गीकारात्तत्राप्युभयोः प्रतिबिम्बयोः प्रतिबिम्बभावेन स्थितत्वेऽपि बिम्बसमसत्ताकोपाध्युपहितत्वस्य नियामकत्वान्न व्यभिचार इति। किञ्चोपाधिर्बिम्बान्यदेशावस्थान एव

वज्रोत्तेजिका— दर्पणस्थनेत्रे मुखारोपस्य नेत्ररूपोपाधिप्रतीतिं प्रति प्रतिबन्धकत्वाभावान्न तत्र सोपाधिकारोपत्वसम्भावनापीत्यर्थः। तत्र- दर्पणस्थनेत्रप्रतिफलितमुखादिदर्शने। स्वबाध्यौपाधिकत्वस्यासत्त्वेनेत्यर्थः। एतेन तत्रारोपो निरस्तः। **नेत्रदेशावच्छेदेनेति**। यथा वृक्षस्याग्रावच्छेदेन संयोगज्ञानं तथात्रापि नेत्रदेशावच्छेदेन दर्पणोपाधौ मुखस्य प्रतिबिम्बान्तर एवाभ्युपेतव्यो न तु मुखस्यारोप इत्यर्थः। एतेन मुखप्रतिबिम्बतायां नेत्रदेशोऽवच्छेदको न तूपाधिरितिस्फोरितम्। तत्रापि— दर्पणेऽपि। उभयोः—दर्पणे मुखस्यैकः प्रतिबिम्बो दर्पणे नेत्रप्रदेशावच्छेदेन मुखस्य

हिन्दी अनुवाद— अब बिम्ब समान सत्ताक उपाधि में ही प्रतिबिम्ब होता, इस नियम में व्यभिचार शङ्का करते हैं—''न च दर्पणस्थनेत्रेत्यादि'' यदि कहें कि दर्पण में स्थित नेत्र में प्रतिबिम्बित मुख आदि दर्शन में उक्त नियम का व्यभिचार है, क्योंकि दर्पणस्थ नेत्र रूप उपाधि में बिम्बसमसत्ताकत्व नहीं है, कारण दर्पणस्थ नेत्र में जायमान इदं में मुखम् यह ज्ञान भ्रम है पर मुख का प्रतिबिम्ब भ्रम नहीं है। इस प्रकार उक्त नियम में व्यभिचार है ऐसा कहें तो यह भी नहीं कह सकते हैं **''सोपाधिकारोपे...''** अर्थात् आरोप दो प्रकार के होते हैं निरुपाधिक और सोपाधिक आत्मा में अहंकार का आरोप सोपाधिक है, दूसरा आरोप है—एक ही उपहित ब्रह्म में जीव ईश्वर रूप से भेद का अवमास जैसाकि कहा है **''दोषेण कर्मणा वापि क्षमिता ज्ञान संभवः। तत्वविद्या विरोधी सः भ्रमो यं निरुपाधिकः। उपाधि सन्निधि प्राप्त क्षोमा विद्या विजृम्भितम्। उपाध्यपगमापोहमाहुः सोपाधिकं भ्रमम्''** यह दूसरों का मार्ग है। सोपाधिक आरोप होने पर उपाधि ज्ञायमान नहीं होती। इसलिये सोपाधि आरोप उपाधि ज्ञान का प्रतिबन्धक होता है, ऐसी कल्पना की जाती है, यही कहते हैं **''स्वावध्यौपाधिकत्वस्यं''** अर्थात् अपने आरोप से बाध्य

प्रतिबिम्बभावो नत्वेकत्रैव प्रकृते तदभावादिष्टासिद्धिः। अयम्भावः, उपाधिर्ब्रह्मैकदेशवृत्ति र्व्याप्यवृत्तिर्वा? नाद्यः, ब्रह्मणः सदेशत्वापत्तेर्निर्विशेषत्वहानिः। द्वितीये सर्वस्याप्युपाधिमत्त्वे

प्रतिबिम्बोऽपरश्चेत्यर्थः। **बिम्बसमसत्ताकेति।** बिम्बेन मुखेन समा सत्ता यस्यैवम्भूत उपाधिर्दर्पणादिस्तदुपहितत्वं तद्विशिष्टत्वं तस्येत्यर्थः। **नियामकत्वादिति।** प्रतिबिम्बतायां प्रयोजकत्वादित्यर्थः। देशविशेषस्थत्वं बिम्बोपाध्योराभिमुख्यंप्रतिबिम्बतायां प्रयोजकमिति नियममनुसृत्याह—**किञ्चेति।** बिम्बान्यदेशभूतलादिस्थिते दर्पणादौ मुखस्य प्रतिबिम्बो दृश्यते यथा तथा प्रकृते नास्ति बिम्बे ब्रह्मण्येवोपाधिभूताया अविद्याया अवस्थानात्र तत्र ब्रह्मणः प्रतिबिम्बो घटत इत्यर्थः। ननु चैतन्याविद्ययोर्व्यापकत्वादाभिमुख्यमस्तीत्यत आह—**अयम्भाव इति।** उपाधिर्ब्रह्मण एकांशेवर्तते सर्वांशे वेति विकल्पयति—**उपाधिरिति। इतरथेति**—अन्यथेत्यर्थकम्। उपाधेर्बिम्बान्यदेशेऽवस्थानत्वं प्रतिबिम्बताप्रयोजकमिति नियमानङ्गीकार इति तदर्थः। **तदस्तीति।** प्रतिबिम्बोऽस्ति। **तथेति।**

माने अप्रतीति जिसकी उपाधि ही एतादृश औपाधिकत्व का दर्पणस्थ नेत्र में मुख के आरोप का नेत्र रूप उपाधिक के प्रति प्रतिबन्धकत्व के अभाव से उसमें सोपाधिक आरोपकत्व की सम्भावना भी नहीं है, इसलिये दर्पणस्थ नेत्र प्रतिफलित मुख आदि के दर्शन के अभाव होने से नेत्र देशावच्छेदेन उसमें मुख का प्रतिफलन है। ऐसा अंगीकार करने से दर्पण के भी उभय प्रतिबिम्ब का (दर्पण में मुख का एक प्रतिबिम्ब दर्पण के नेत्रप्रदेशावच्छेदन मुख का दूसरा प्रतिबिम्ब) प्रतिबिम्ब भाव से स्थिति होने पर बिम्ब समसत्ताक उपाधि से उपहितत्व के नियामकत्व होने से व्यभिचार नहीं होगा। दूसरी बात उपाधि के बिम्ब से अन्य देश में रहने पर ही प्रतिबिम्बभाव होता है न कि एक स्थान में रहने पर प्रकृत में ऐसा नहीं होने से इष्टसिद्धि नहीं हो सकती। लोक में बिम्ब से अन्य देश भूतल आदि में स्थित दर्पण आदि में मुख का प्रतिबिम्ब होता है, प्रकृत में ऐसा नहीं है, बिम्ब ब्रह्म के उपाधिभूत अविद्या का अवस्थान होने से वहाँ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता यह अर्थ है। यदि कहें कि चैतन्य और अविद्या के व्यापक होने से आभिमुख्य है,

प्रतिबिम्बनासिद्धेः सुतरां शुद्धत्वहानिश्च। इतरथा जलनिमग्नानामपि जलौकसां प्रतिबिम्बो दृश्येत, न तु तदस्ति, तथा प्रकृतेऽपि बोध्यम्। तस्माद्बिम्बप्रतिबिम्बवज्जीवब्रह्मैक्यं वक्तुमशक्यत्वात्सर्वथाऽनुपपन्नमिति सिद्धम्॥ इति बिम्बप्रतिबिम्बवज्जीव-ब्रह्मैक्यनिरसनम्॥२१-२२॥

प्रतिबिम्बप्रयोजकीभूताया अविद्याया ब्रह्मणोऽन्यत्रावस्थानत्वाभावान्न प्रतिबिम्बवादः कथमप्युपपद्यत इत्यर्थः। फलितार्थं प्रदर्शयन्नुपसंहरति—**तस्मादिति**।। इति बिम्बप्रतिबिम्बवज्जीवब्रह्मैक्यस्य निरसनम् ।। २१-२२।।

इसलिये कहते हैं—''अयंभाव उपाधिः'' अर्थात् उपाधि ब्रह्म के एक अंश में है या सर्वांश में पहला पक्ष नहीं कह सकते, इस पक्ष में ब्रह्म में सदेशत्वापत्ति होने से निर्विशेषत्व की हानि। द्वितीय पक्ष में सम्पूर्ण के उपाधि युक्त होनेपर प्रतिबिम्बन सिद्ध नहीं होगा, इस प्रकार शुद्धत्व हानि तो स्पष्ट हो जायेगी अन्यथा उपाधि के बिम्ब से अन्य देश में अवस्थितियों प्रतिबिम्बता प्रयोजकरूप नियम नहीं माननेपर जलमें निमग्न जलजन्तुओं का भी जल में प्रतिबिम्ब दिखाई देना चाहिये पर ऐसा नहीं होता, इसी प्रकार प्रकृत में भी समझना चाहिये। इसलिये बिम्ब प्रतिबिम्ब के सदृश जीवब्रह्म का ऐक्य संभव नहीं होने से जीव ब्रह्मैक्य सर्वथा अनुपपन्न है—यह सिद्ध होता है ।।२१-२२।।

अथ च ''आचार्य्यवान् पुरुषो वेदे'' ति श्रुतेरेकजीववादे ह्युपदेष्टव्यादन्यस्य चेतनस्याभावादुपदेष्टुरभावे तत्त्वज्ञानासम्भवः, तदसम्भवे च मोक्षासम्भवः। ननु सत एवोपदेष्टुः कल्पितस्योपदेष्टृत्वघटनादिति चेन्न, आपातरमणीयत्वात्। न ह्युपदेष्टृत्वं कल्पितमात्रस्य, किन्तु शास्त्रोक्तलक्षणलक्षितस्यैव तथात्वश्रवणात्। ''स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमि'' त्यादिश्रुतेः। न च स्वाप्नस्य गुरोरिवोपदेष्टृत्वेऽपि क्षत्यभावेन तथात्वोपपत्तिरिति वाच्यं, स्वाप्नस्य गुरोरज्ञाननिवर्तकत्वादर्शनात्। अन्यथा ''यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूही''

वज्रोत्तेजिका— सिंहावलोकन्यायेनैकजीववादं दूषयितुमाह-**अथ चेति**। यःकल्पकोजीवस्तस्यापि भावितत्त्वज्ञानमुपदेशसाध्यमित्याह-**आचार्य्यवानिति**। न चान्यस्तत्त्वविद्गुरुरस्तीत्याशयेनाह-**एकजीववाद इति**। स्वप्रवत्तत्त्ववित्त्वेनैवान्यो गुरुः कल्पित इत्याशङ्कामपाकरोति—**तथात्वश्रवणात्**=उपदेष्टृत्वश्रवणात्। **न चेति**। स्वप्ने तु शब्दविशेषवक्तृत्वेनैव गुरुकल्पना न तूपदेशसाध्यज्ञानविषयतत्त्वविशेषवित्त्वेन, तथा च स्वाप्नस्य गुरोर्नाज्ञाननिवर्त्तकत्वमित्याह—**स्वाप्नस्येति**। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति-**अन्यथेति**। स्वाप्नगुरोरप्यज्ञाननिवर्त्तकत्व इत्यर्थः। तत्वदर्शिनः=

हिन्दी अनुवाद— इस प्रकार जीव ब्रह्मरूप का खण्डन समाप्त हुआ सिंहावलोकन न्याय से एक जीववाद को दूषित करने के लिये कहते हैं—''अथ च'' ''आचार्यवान् पुरुषो वेद''। इत्यादि अर्थात् श्रुति कहती है—आचार्यवान् पुरुषो वेद। अर्थात् गुरु के द्वारा ही पुरुष ब्रह्मतत्त्व को जानता है। एकजीववाद में शिष्य के अलावा अन्य कोई चेतन नहीं होने से उपदेशक गुरु के अभाव होनेपर तत्त्वज्ञान सम्भव नहीं और तत्त्वज्ञान के असंभव होनेपर मोक्ष असंभव होगा। यदि कहें स्वप्न की तरह कल्पित उपदेष्टा द्वारा उपदेष्टृत्व सम्भव होगा तो बोलो यह तो आपातरमणीय है—सर्वथा असंभव है—कल्पित में उपदेष्टृत्व संभव नहीं है, किन्तु शास्त्रोक्त लक्षण सम्पन्न गुरु में ही गुरुत्व या उपदेष्टृत्व संभव है, कारण—'स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' अर्थात् मुमुक्षु साधक गुरु की ही शरण में जाय, गुरु वेदवेत्ता ही ब्रह्मनिष्ठ हो। गुरु के पास खाली हाथ न जाये, कुछ न हो तो होम के लिये समिधा ही ले-ले, या कोई फल-फूल ले-ले। यदि कहे कि स्वप्न में गुरु की तरह कल्पित गुरु के उपदेश होने में भी कोई क्षति नहीं होने से तत्त्वज्ञान की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते स्वप्न के गुरु से अज्ञान की निवृत्ति नहीं हो

ति श्रुतेः।''उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन'' इति स्मृतेश्चव्याकोपात्। अस्मन्मते तु शास्त्रप्रमितस्यैवोक्तलक्षणसम्पन्नस्य गुरोरुपदेष्टृत्वावगमात्, गुरुत्वाज्ञाननिवर्तकत्वयोः सुसामञ्जस्यान्न किञ्चिद्विरोधलेशशङ्कावकाशः, त्वन्मते तु शिष्येण गुरौ सार्वज्ञ्यारोपेऽपि वास्तवसार्वज्ञ्याभावेन शिष्यं स्वाज्ञानकल्पितं कल्पकं वा जानतो गुरोरुपदेशप्रवृत्त्यनुपपत्तेः, स्वप्ने तु तथाऽज्ञानादुपदेशे प्रवृत्त्युपपत्तेः, प्रकृते गुरुशिष्ययोः कल्पितत्वस्यापि तत्त्वान्तर्गतत्वेन तत्त्वविदस्तज्ज्ञानावश्यकत्वात्, अथ कल्पको निश्चिताद्वैततत्त्वो न वा। आद्येशास्त्रप्रणयनवैयर्थ्येन तत्र प्रवृत्त्यसम्भवात्, द्वितीये-तत्प्रणीतशास्त्रस्याप्रमामूलकत्वापत्तेः। ननु शास्त्रस्य प्रमामूलक-

---

शास्त्रार्थभूततत्त्वसाक्षात्काराश्रयाः, ते=तुभ्यं। **ज्ञानम्**-जीवेश्वरस्वरूपयाथात्म्यम्। उपदेक्ष्यन्ति। तत्त्वदर्शिभिरेवोपदिष्टे ज्ञाने सर्वं कर्मान्तर्भवति, न त्वन्योपदिष्ट इत्यर्थः। कल्पितस्य गुरोरुपदेष्टृत्वं कथमपि नोपपद्यत इति परमतं निरस्य स्वसिद्धान्तेन श्रुतिवचनानां समन्वयं दर्शयन्नाह—**अस्मन्मते त्विति**। परमते गुरुशिष्यभावस्य काल्पनिकत्वमिति जानतशिशिष्यस्य तादृशगुरोरुपदेशे प्रवृत्तिरेव दुर्घटा तत्त्वज्ञानस्य प्रत्याशा तु दूरोत्सारिता स्यादित्याह—**त्वन्मत इति**। तज्ज्ञानावश्यकत्वात्=गुरुशिष्ययोः कल्पितत्वज्ञानावश्यकत्वात्। विकल्पयति—**अथेति**। इदानीं

सकती, ऐसा कहीं देखा नहीं गया है। अन्यथा यदि स्वप्न गुरु से भी अज्ञान निवृत्ति होती तो ''यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि''—इत्यादि श्रुतियों एवं ''उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'' इत्यादि स्मृतियों का वैयर्थ्य हो जायेगा।

हमारे मत में तो शास्त्र समस्त पूर्वोक्त लक्षण सम्पन्न गुरु में ही उपदेशकत्व बताया गया है। इसलिये हमारे मत में गुरुत्व एवं अज्ञान निवर्तकत्व के सर्वथा सामञ्जस्य होने से किसी प्रकार का कोई भी विरोध का लेश भी नहीं है।

परमत में गुरुशिष्य भाव काल्पनिक है, यह जाननेवाले शिष्य की उक्त प्रकार गुरु के उपदेश में प्रवृत्ति ही नहीं होगी। तत्त्वज्ञान की आशा तो ऐसे गुरु से दूर की बात है, यही बात कहते हैं—''त्वन्मते तु—आपके मत में शिष्य के द्वारा गुरु में सर्वज्ञता का आरोप करनेपर भी वास्तविक सार्वज्ञ्य के अभाव के कारण शिष्य को अपने अज्ञान से कल्पित या कल्पक जानते हुए गुरु की उपदेश प्रदान में प्रवृत्ति नहीं होगी, स्वप्न में तो वैसा ज्ञान न होने से उपदेश के प्रवृत्ति की उपपत्ति हो सकती

त्वाभावेऽप्यबाधितविषयकत्वेन प्रामाण्योपपत्तेरिति चेन्न, पौरुषेय-वाक्यानां प्रमामूलकत्वाभावेऽबाधितार्थकत्वासम्भवात्। "सोऽमुक" इति निश्चयाभावे बह्वायाससाध्यमोक्षप्रवृत्त्यनुपपत्तेश्च, अपि चोपदेशकाभावेन मोक्षार्थप्रयत्नासम्भवात्। किञ्चानादिसंसारे कस्यचित्तत्त्वज्ञानं मोक्षश्चाभून्न वा? आद्ये जीवस्यैकत्व इदानीं संसारानुपलब्धिप्रसङ्गात्। द्वितीये सम्प्रदायाभावेन तत्त्वज्ञानस्य मोक्षस्य चासम्भवात्। ननु ज्ञानसामग्र्येव ज्ञानहेतुर्न सम्प्रदाय इति चेन्न तस्यापि तात्पर्यज्ञानजन्यतत्त्ववित्त्वेन सामग्र्यन्तर्भूतत्वादिति चेन्मैवं, तत्ववित्त्वेन श्रुत्यादिसिद्धानां शुकवामदेवादीनां त्वदभिमतगौड़पादादीनाञ्च मुक्तिर्नाभूत्, मम तु कथं

संशयाभावेनाद्वैतप्रतिपादकशास्त्रप्रणयनं व्यर्थं स्यादित्याशयेनाद्यविकल्पं निरस्यति— **आद्य इति**। तत्र=शास्त्रप्रणयने। द्वितीयमपि विकल्पं परिहरति—**द्वितीय इति**। तत्प्रणीतशास्त्रस्य=अद्वैतनिश्चयाभाववत्पुरुषप्रणीतशास्त्रस्य। अबाधितविषयकत्वेन शास्त्रस्य प्रामाण्यं शङ्कते—**नन्विति**। प्रमामूलकत्वेनैवाबाधितविषयत्वं, न तु तदभावेनेत्याशयेन परिहरति—**नेति**। कल्पकजीवस्य किं नामेति निश्चयाभावे कथं मोक्षे प्रवृत्तिरित्याह—**सोऽमुक इति**। एकजीववादे दूषणान्तरमाह—**किञ्चेति**। जीवस्यैकत्वे=एक एव जीव: स च मुक्तो जीवान्तराभावात् कस्य संसार: स्यादिति

है। प्रकृत में गुरु शिष्य को कल्पितत्व का भी तत्त्वान्तर्गत होने से तत्त्ववेत्ता को गुरुशिष्य में कल्पितत्त्व ज्ञान आवश्यक है।

अब विकल्प करते हैं कि कल्पक को अद्वैत तत्त्व का निश्चय है या नहीं, प्रथम पक्ष में संशय के अभाव से अद्वैत प्रतिपादक शास्त्र प्रणयन का वैयर्थ्य होने से शास्त्र प्रणयन में प्रवृत्ति असंभव। द्वितीय पक्ष में अद्वैत का निश्चय नहीं होने से तादृश पुरुष द्वारा प्रणीत शास्त्र में अप्रमात्मकता की आपत्ति। यदि कहें कि शास्त्र प्रमामूलक न होनेपर भी उसका विषय बाधित नहीं होने से उसमें प्रामाण्य की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते, पौरुषेय वाक्यो में प्रमामूलकत्व के अभाव होनेपर उसमें अबाधितत्व सम्भव नहीं है। कल्पक जीव का क्या नाम है? ऐसा निश्चय न होनेपर मोक्ष में कैसे प्रवृत्ति होगी, यही कहते हैं—"सोऽमुक:......" अर्थात् वह अमुक व्यक्ति हैं—ऐसा निश्चय के अभाव में बहुत प्रयास से साध्य मोक्ष में प्रवृत्ति की अनुपपति होगी और उपदेश के अभाव से मोक्षार्थ प्रयत्न सम्भव नहीं है। एक जीववाद में दूसरा दोष देते हैं—"किञ्चानादि संसारे... अर्थात् इस

भविष्यतीति शङ्कया वेदान्तश्रवणादौ प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। न च शास्त्रप्रामाण्यदार्ढ्यात्प्रवृत्त्युपपत्तिः श्रुतिप्रमाणदार्ढ्यादेव सदासिद्धो जीवभेदः श्रुतिप्रमिता केषाञ्चिन्मुक्तिश्च कुतो नाङ्गीक्रियते ''यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्'' ''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः'' ''नित्यो नित्यानाम्'' इत्यादिश्रुतिभ्यः ''बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः। इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः''। ''अतीतानागताश्चैव यावन्तः सहिताः क्षणाः।

तदर्थः। **सम्प्रदायाभावेनेति**। तदभावेनोत्तरोत्तरतत्त्वज्ञानासम्भवान्मोक्ष एव न स्यादिति भावः। तस्य=सम्प्रदायस्य। **तत्त्ववित्त्वेनेति**। तृतीयायाः प्रकारत्वमर्थः, अन्वयश्चास्य सामग्र्याम्। तथा च तत्त्ववित्त्वप्रकारिका या तत्त्वज्ञानवदादिघटिता सामग्री तस्याम्। अन्तर्भूतत्वात्= तत्कुक्षिनिविष्टत्वात्। **सामग्रीति**। एतेन कस्यचिन्मुक्तिर्नाभूदिति द्वितीयकल्पो निर्दुष्ट इति सिद्धम्। द्वितीयकल्पं दूषयति—**मैवमिति। यो यो देवानामिति**। देवानां मध्ये यो यो देवः ब्रह्म प्रत्यबुध्यत स एव तथा=तज्ज्ञानानुसारेण सर्वात्मभूतपरमात्मकोऽभवत्, तथा ऋषीणां तथा मनुष्याणां मध्ये यो यः ऋषिर्यो यो मनुष्यो यथा तत्प्रत्युबुध्यत तथा=तज्ज्ञानानुसारेण तदभवदिति सम्बन्धः, इति श्रुत्या

वाद में प्रश्न है कि अनादि संसार में किसी को तत्त्वज्ञान तथा मोक्ष हुआ या नहीं? प्रथम पक्ष में जब एक ही जीव है वह जब मुक्त हो गया तब दूसरा जीव तो है नहीं तो किसका संसार होगा? द्वितीय पक्ष में सम्प्रदाय के अभाव से तत्त्वज्ञान तथा मोक्ष असम्भव होगा। यदि कहें कि ज्ञान की सामग्री ही ज्ञान का हेतु है न कि सम्प्रदाय तो ऐसा भी नहीं कह सकते, सम्प्रदाय में भी तात्पर्य ज्ञान जन्य तत्त्ववित्त्व होने से सम्प्रदायान्तर्गतत्व है, ऐसा कहें तो ऐसा भी नहीं कह सकते, फिर तो जब तत्त्ववेत्ता के रूप में श्रुत्यादि शास्त्रों में प्रसिद्ध शुक, वामदेव आदि तथा आपके मत के तत्त्ववित्रूप में सिद्ध गौडपाद आदि आचार्यों की मुक्ति नहीं हुई, फिर मेरे जैसे लोगों की मुक्ति कैसे होगी, इस शङ्का से वेदान्त श्रवण आदि में प्रवृत्ति की अनुपपति होगी। यदि कहें कि शास्त्र प्रामाण्य की दृढ़ता के कारण प्रवृत्ति की उपपत्ति होगी, फिर तो शास्त्र व श्रुति के प्रामाण्य के आधार पर सदा सिद्ध जीवभेद तथा श्रुति समर्थित कतिपय जनों की मुक्ति आप क्यों नहीं स्वीकार करते? जैसाकि श्रुति वचन है ''यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्'' अर्थात् देवताओं में जो-जो देवता ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया वह-वह उस ज्ञान के

ततोऽप्यनन्तगुणिता जीवानां राशयः पृथक्''। इत्यादि स्मृतिभ्यश्च। परमते तु श्रुतस्वाभाविकभेदस्य मोक्षादिव्यवस्थायाश्च त्यागस्याश्रुतमोक्षाभावादिकपोलकल्पनायाश्च प्रसङ्ग इत्यादिदूषणापातात् प्रयोजनासिद्धिः। अस्माकन्तु भेदस्य स्वाभाविकत्वं जीवानां प्रतिदेहभिन्नत्वेनासङ्ख्येयत्वं श्रुत्यादिप्रमाणसिद्धमतो न कोऽपि बन्धमोक्षादिव्यवस्थानुपपत्तिकलङ्कगन्धावकाशः। ''अविद्यायामन्तरे वर्तमाना'' इत्यादावनादिसंसृतिमूलभूतकर्मात्मकाज्ञानं, ज्ञानाभावो वा ''रमणीया''मित्यादौ कर्मसम्बन्धः ''सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामह'' इत्यादिषु सुषुप्तिः ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था'' इत्यादिना तत्त्वज्ञानं,

---

निश्चीयते तेषां मुक्तिरभूदिति। प्रत्यगात्मनां भेदप्रतिपादिकां श्रुतिमुदाहरति—अजो ह्येक इति। एकोऽन्यो नित्यानामिति पदानां निर्देशाज्जीवानां बहुत्वं बोध्यते। चेतनश्चेतनानामिति निर्धारणस्य ''अजोऽन्य'' इत्यत्र भेदस्य च बोधनादुक्ताभिश्श्रुतिभिर्भेदस्य तात्त्विकत्वं समर्थितमिति भावः। उक्तार्थं स्मृतिप्रमाणेनापि दृढयति—**बहव इति।** बहव इति बहुवचननिर्देशाज्जीवानां बहुत्वं निश्चीयते परमते श्रुतस्यार्थस्य परित्यागोऽश्रुतस्य परिकल्पनापत्तिरित्याह—**परमत इति।** मायावादिनां मत इत्यर्थः। एकजीववादाभिप्रायेणाह-अश्रुतमोक्षाभावादीति। स्वसिद्धान्ते तु न कोऽपि दोषावकाश

अनुसार सर्वात्मा परमात्मा के तादात्म्य हो गये, ज्ञान ऋषियों एवं मनुष्यों में भी जो-जो ब्रह्मवित् हुए वे सभी तादात्म्य हो गया ''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः।'' 'नित्यो नित्यानां' इत्यादि श्रुतियों एवं 'बहवो ज्ञान तपसा पूता मद्भावमागताः इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।' ''अतीतानागताश्चैव यावन्तः सहिताः क्षणः ततोऽप्यनन्त गुणिताः जीवानां राशयः पृथक्'' इनमें जीवात्माओं की भेद प्रतिपादिका श्रुति है ''नित्यो नित्यानाम्'' यहाँ 'एकः अन्यः' तथा 'नित्यो नित्यानां' इत्यादि पदों के निर्देश से जीवों का बहुत्व सिद्ध होता है ''चेतनश्चेतनानां'' इससे निर्धारण तथा '....' पद से भेद का बोधक होने से उक्त श्रुतियों से भेद की तात्त्विकता सिद्ध होती है। इसी बात को श्रुति प्रमाण को समर्थित करते हैं—'बहवो ज्ञानतपसा' आदि वचनों द्वारा परमत (मायावादी) में उक्त प्रमाणों द्वारा सिद्ध स्वाभाविक तथा मोक्षादि की व्यवस्था का त्याग तथा एकजीववादानुसार अश्रुत मोक्षभाव आदि की कपोलकल्पना का प्रसंग इत्यादि

परामृतात्परिमुच्यन्तीत्यादिना मुक्तिश्चेतनधर्मत्वेन प्रतिपाद्यत इति सर्वं समञ्जसमित्यलं विस्तरेण। ननु "अविनाशी वा अरेऽयमात्मा", "देही नित्यमबध्योऽयमि" त्यादिश्रुतिस्मृतिभिरेकत्वस्यापि दर्शनात्कथमविरोध इति चेन्न, तासां "ब्राह्मणो न हन्तव्य" इतिवत्सामान्यपरत्वेन नैराकाङ्क्ष्यान्नोक्तबाधशङ्कावकाशः। "नित्यो नित्यानां द्वासुपर्णा" "अंशो ह्येष परस्य" "अंशो नाना व्यपदेशात्" "न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे

इत्युपपादयति—**अस्माकन्त्वित्यादिना। अविद्यायामिति।** वर्तमानत्वं कर्मात्मकाज्ञानप्रयुक्तदुःखानुभवितृत्वं जीवस्येत्यर्थः। **रमणीयामिति।** रमणीयचरणा रमणीयां योनिं कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्त इति श्रुत्या जीवस्य कर्मसम्बन्धादेवोत्तमाधमयोनिषु सम्बन्ध इति प्रतीयते। **सति सम्पद्य इति।** सुप्तस्य जीवस्यैव स्वकारणे लयः श्रूयते। सुनिश्चितार्थत्वमपि जीववृत्तिरेवेत्याह—**वेदान्तेति।** मुक्तिरपि तस्यैवेत्याह—**परेति।** अत्यन्ताभेदवादी पुनः प्रत्यवतिष्ठते—**नन्विति।** "ब्राह्मणो न हन्तव्य" इति वचनं हिंसासामान्यनिषेधकम्, अन्यथा "मा हिंस्यात्सर्व्वाभूतानी"

दोषों की आपात से परमत के प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। हमारे मत के भेद का स्वाभाविकत्व, जीवों का प्रतिदेहकत्व तथा असंख्येयत्व आदि श्रुत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है। इसलिये हमारे मत में बन्धमोक्ष आदि की व्यवस्था की अनुपपत्तिरूप की गन्ध का भी अवकाश नहीं है।

"अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः" यहाँ अविद्या शब्द से अनादि संसार मूलभूत कर्मात्मक अज्ञान अथवा ज्ञानाभाव ग्राह्य है। अविद्या के वर्तमानत्व का अर्थ है—जीव को अनादि कर्मात्मक अविद्या प्रयुक्त दुःख का अनुभव होता है। "रमणीयाम्" अर्थात् 'रमणीयचरणः रमणीयां योनिम् कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते' इस श्रुति से जीव को कर्म सम्बन्ध से ही उत्तम अधम योनि के सम्बन्ध की प्रतीति होती है। 'सति सम्पद्य न विदः सति सम्पद्यामहे' इत्यादि श्रुतियों में सुषुप्ति का वर्णन है सुप्त जीवकादि अपने चरण में लय सुना जाता है। वेदान्त-विज्ञान सुनिश्चितार्थाः इत्यादि श्रुतियों द्वारा तत्त्वज्ञान तथा 'परामृतात् परिमुच्यन्ति' इत्यादि श्रुतियों द्वारा मुक्ति को चेतन (जीव) धर्म रूप में ही कहा जाता है—इस प्रकार हमारे मत में सबका सामञ्जस्य है—अब इस विषय में विस्तार व्यर्थ है।

अब अत्यन्त अभेदवादी पुनः शङ्का करते हैं कि "अविनाशी वाऽ अरेऽयमात्मा"

जनाधिपाः''''मम साधर्म्यमागताः''''पूता मद्भावमागता''इति कण्ठरवेणैव सर्वावस्थागतभेद-विधायकशास्त्रकदम्बात्। एवं च भगवद्भावापत्तिलक्षणपरम-निःश्रेयससिद्धौ न कोऽपि विरोधः। तस्माच्छास्त्रारम्भो युक्त एव॥ २३॥

ति वचनेन विरोधापत्तेः। तद्वदत्रापि आत्मत्वेन रूपेण सर्वेषामात्मनां बोधे श्रुतिस्मृत्योस्तात्पर्यमित्याशयेन विरोधं परिहरति—**तासामिति**। उदाहृतश्रुतीनामित्यर्थः। एकत्वप्रतिपादनेन प्रत्यगात्मनां भेदस्य बाधो नेति भावः। तत्र हेतुं श्रुतिप्रदर्शनमुखेन निर्वक्ति-**नित्यो नित्यानामित्यादिना**। उपसंहरति—**तस्मादिति॥ २३॥**

''देही नित्यमवध्योऽयम्'' इत्यादि श्रुतियों एवं स्मृतियों द्वारा जीव में एकत्व का ही श्रवण है, फिर आपके मत में अविरोध कैसे? आप जीव नाना मानते हैं और उक्त श्रुति स्मृति में जीव का एकत्व प्रतिपादित है तो ऐसा नहीं कह सकते, ''ब्राह्मणो न हन्तव्य'' जैसे ब्राह्मण शब्द सामान्य जातिपरक है। उसी तरह यहाँ सामान्यपरक होनेसे उक्त बाध की शङ्का का अवकाश नहीं है। ''नित्यो नित्यानाम्'' परमात्मा नित्य अनेक जीवों में भी नित्य है। ''द्वा सुपर्णा'' शरीररूपी वृक्ष में दो पक्षी-जीवात्मा और परमात्मा है। ''अंशो ह्येष परस्य'' यह जीवात्मा परमात्मा का अंश है। ''अंशो नानाव्यपदेशात्'' ''नत्वे वाहं जातु नासं नत्वं नेमे जना धिपा'' (पहले मैं नहीं था, तुम भी पहले नहीं थे, ये राजा लोग भी नहीं थे, ऐसा नहीं। ''मम साधर्म्यमागताः। (अनेक जीव मेरे साधर्म्य को प्राप्त हुए)'' ''पूताः मद्भावमागताः। भक्ति एवं ज्ञान से पवित्र हुए अनेक जीव मेरे भाव को प्राप्त हुए। इत्यादि शास्त्रों द्वारा जीवों का नानात्व, जीव परमात्मा में सर्वाव्वस्थागत भेद सिद्ध होता है। इस प्रकार हमारे मत में भगवद्भावापत्तिरूप परममोक्ष की सिद्धि को कोई विरोध नहीं है। इसलिये हमारे मत में उक्त कल्याण मोक्ष रूप प्रयोजन सिद्धि के लिये शास्त्रारम्भ समीचीन है ।।२३।।

परमते तु मोक्षस्य स्वरूपत्वेन सदैव स्वत एव प्राप्तत्वाद्, बन्धस्य चाविद्यकत्वेन मृगतृष्णाकल्पितोदकेन स्वभावशुष्कमरुभूमि-वत्कदाऽप्यस्पृष्टत्वात्तन्निवृत्तये शास्त्रप्रणयनस्य श्लेष्मविलोडनमात्रत्वेन सुतरां वैयर्थ्यात्, शुद्धस्य नित्यमुक्तत्वाद्बद्धस्य च तुच्छत्वात्कस्य मुक्तये प्रयासविशेषो मुमुक्षोरेवासिद्धेः। तस्मात्प्रयोजनासिद्धेश्शास्त्रारम्भो व्यर्थ एवेति सङ्क्षेपः। ननु पूर्वोक्तवाक्यानां सर्वलोकभ्रमसिद्धभेदानुवादपराणां भ्रमगृहीतग्राहित्वात् स्वार्थे प्रमाणाभाव इति चेन्न, बाधकाभावेन भेदधियो भ्रमत्वायोगात्। न च भेदनिषेधवाक्यस्यैव

वज्रोत्तेजिका— परमतमाक्षिपति—**परमत इति**। अत्यन्ताभेदवादिमत इत्यर्थः। **स्वरूपत्वेनेति**। ब्रह्मस्वरूपत्वेन प्राप्तत्वादित्यस्य शास्त्रप्रणयनस्य च वैयर्थ्यादित्यनेनान्वयः। बन्धस्य कदाप्यस्पृष्टत्वादित्यन्वयः। तत्र हेतुमाह—**आविद्यकत्वेनेति**। तत्र दृष्टान्तमाह—**मृगतृष्णेति**। स्वभावशुष्कमरुभूमौ मृगतृष्णाकल्पितोदकस्य कदापि न स्पर्शस्तद्वत्स्वप्रकाशे ब्रह्मणि तेजसि तम इवाविद्यकबन्धस्य कदापि न स्पर्श इत्याशयः। ''नित्यो नित्यानां'' ''द्वासुपर्णा सयुजा''— इत्यादिवचसां प्रत्यक्षसिद्धभेदानुवादकानां गृहीतग्राहित्वान्न स्वार्थबोधने प्रामाण्यमगृहीतग्राहित्वस्यैव प्रमाणत्वादिति शङ्कते—**नन्विति**। न चात्र बाधकमस्ति येन भेदबुद्धेर्भ्रमत्वमापद्येतेत्याशयेन परिहरति—**नेति**। ''नेह नानास्ति किञ्चने'' त्यादिवचनानां भेदनिषेधकानां भेदबुद्धौ बाधकत्वमित्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। पूर्व्वोदाहृतवचसां न वस्तुनिषेधे तात्पर्य्यमपितु

हिन्दी अनुवाद— परमत (अत्यन्ताभेदवादी) के मत में मोक्ष तो जीव का स्वरूप ही है, जो उसे स्वतः प्राप्त ही है और बन्धन भी आविद्यक है, जैसे मृगतृष्णारचित जल से स्वभावतः शुष्क मरुभूमि कभी भी स्पृष्ट नहीं होती, उसी तरह अविद्या कल्पित बन्धन से जीव कभी भी स्पृष्ट नहीं होता, फिर उसकी निवृत्ति के लिए शास्त्र प्रणयन श्लेष्मा का विलोडनमात्र होने से सर्वथा व्यर्थ है, इसलिये संक्षेप कहते हैं।

यदि कहें कि पूर्वोक्त भेद समर्थक सर्वलोक प्रसिद्ध भ्रमसिद्ध भेदानुवाद पर वाक्यों के भ्रम से गृहीत भेदग्राही होने से स्वार्थ में प्रमाण नहीं होंगे, क्योंकि अज्ञात तत्त्व का ज्ञान वाक्य में प्रमाणत्व होता है, तो ऐसा नहीं कह सकते, इस विषय में बाधक के अभाव होने से भेद बुद्धि को भ्रम नहीं कहा जा सकता यदि कहें कि ''नेह नानास्ति किञ्चन'' इत्यादि भेदनिषेध वाक्य ही भेद बुद्धि में बाधक है तो यह नहीं कह सकते, उक्त श्रुति का ब्रह्म भिन्न स्वतन्त्र सत्तावत् कोई अन्य तत्त्व नहीं है— एतावन्मात्र तात्पर्य है, अर्थात् उक्त श्रुति का ब्रह्मभिन्न वस्तु के निषेध में तात्पर्य नहीं बल्कि स्वतःसत्त्वावच्छिन्न वस्तु भेद के निषेध में तात्पर्य है, यानी स्वतन्त्र सत्ताशाली

तद्बाधकत्वादिति वाच्यम्, तस्य स्वतन्त्रसत्त्वावच्छिन्नभेदनिषेधपरत्वेन वस्तुस्वरूपनिषेधपरत्वाभावात्। अपृथक्सिद्धतायाश्चेष्टत्वात्। नाप्यभेदवाक्यानां तद्बाधकत्वं, तेषां ब्रह्मतादात्म्यसम्बन्धविधायकत्वेन नैराकाङ्क्ष्यात्। नाप्यनयोरितरेतरविरोधित्वेन सामानाधिकरण्यासम्भवश्शङ्कनीयो, भिन्नविषयत्वात्। तथाहि—भेदवाक्यानां पदार्थस्वरूपादिविधानपरत्वेन नैराकाङ्क्ष्यं स एव तेषां विषयः। अभेदवाक्यानान्तु पदार्थकदम्बस्य ब्रह्मतादात्म्यसम्बन्धविधायकत्वेन कृतार्थत्वं, तादात्म्यसम्बन्ध एव तेषां विषयः। एवञ्च नेतरेतरबाध्यबाधक-

स्वतन्त्रसत्त्वावच्छिन्नभेदनिषेधेऽस्तीत्याह—**तस्येति। स्वतन्त्रसत्तेति।** स्वतन्त्रसत्त्वेन भेदो नास्तीत्यत्र तात्पर्य्यं न तु भेदत्वेन भेदो नास्तीत्यत्रेति भावः। तद्बाधकत्वम्=भेदबाधकत्वम्। यान्येव भेदप्रतिपादकानि वचनानि तानि ब्रह्मतादात्म्यसम्बन्धबोधकत्वेन स्वार्थं प्रमापयन्तीत्याह—**तेषामिति।** अभेदवचनानामित्यर्थः। अनयोः=भेदप्रतिपादकाभेदप्रतिपादकवचसोः। भेदाभेदवचसां

एकमात्र ब्रह्म ही है, अन्य जीव जगत् आदि तत्त्व उसी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र ब्रह्म का अपृथक् सिद्ध तदधीन शक्ति विशेष है, फलतः एक ही स्वतन्त्र तत्त्व सिद्ध दोष है—नेह नानास्ति का तात्पर्य ब्रह्मभिन्न कोई पृथक् स्वतन्त्र तत्त्व नहीं—इस तरह स्वतन्त्र नाना तत्त्व पृथक् तत्त्व भिन्न तत्त्व का निषेध ही उक्त श्रुति का तात्पर्य है न कि द्वितीय वस्तु का निषेध तात्पर्य है। ब्रह्म से अपृथक् सिद्ध तत्त्वान्तर इष्ट हैं। अभेद प्रतिपादक वाक्य भी, भेद का बाधक नहीं, अभेद प्रतिपादक वाक्य केवल वस्तुमात्र में ब्रह्म

टिप्पणीः—अभेदवादी कहते हैं कि भेद प्रतिपादक वाक्य लोकसिद्ध भेद का विधान करते हैं, इसलिये वे ..... अभेद प्रतिपादक के वचन लोकासिद्ध अभेदका प्रतिपादन करते हैं, वे अपूर्व वचन हैं, अतः भेद प्रतिपादक वचनों से अधिक प्रमाण अभेद प्रतिपादक वचन है, यह युक्ति संगत नहीं, एक तो भेदश्रुति भेद विधान नहीं करते जैसे तत्त्वमसि सर्वं खल्विदं आदि वाक्य को विधान करते हैं, भेदश्रुति तो केवल स्वरूप कथनमात्र है, इसलिये दोनों वाक्यों में एतावत् कथनमात्र से उनकी आकांक्षा पूरी हो जाती है, वस्तु स्वरूप के निषेध में नहीं, अर्थात् ब्रह्म से भिन्न तत्त्व तो है पर स्वतन्त्र नहीं बल्कि ब्रह्मात्मक, ब्रह्मव्यास, ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्तिक ही है। भेद अभेद परस्पर विरोधी होने से इनमें सामानाधिकरण्य सम्भव नहीं है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। उक्त प्रतिपादक वचनों का भिन्न-भिन्न विषय है, भेद वाक्य केवल वस्तुस्वरूप आदि की सत्ता अर्थात् जीव जगत् आदि की पृथक् सत्ता है, ये भी पृथक् तत्त्व है, इस कथन से उनकी आकांक्षा पूरी हो जाती है, यही उनका विषय है और अभेद प्रतिपादक श्रुति वाक्यों का तात्पर्य है, जीव-जगत् आदि तत्त्व समूह ब्रह्मात्मक ही, ब्रह्म के साथ इनका तादाम्य है, ये सभी तत्त्व ब्रह्मात्मक है, यही इनका विषय है। इस प्रकार इनमें परस्पर

भावस्तस्मान्नोक्तदोषावकाशः। त्वन्मते तु "सर्व्वप्रत्ययविषयभूतब्रह्म-भिन्नभेदाद्यभावेनाभेदवाक्यानामेवानुवादपरत्वात्स्वार्थासिद्धि" रिति विचारणीयं पण्डितम्मन्यैरित्यलंप्रासङ्गिकेन, वाक्यबलाबलविचारसमये विस्तरिष्यमाणत्वात्॥ २४-२५॥

परस्परप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावात्सत्प्रतिपक्ष इव न तत्त्वनिश्चायकत्वमित्यभिप्रायेणाह—**इतरेतरविरोधित्वेनेति।** समानविषय एव प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावो न तु भिन्नविषय इत्याह—**भिन्नविषयत्वादिति।** भिन्नविषयत्वमेवोपपादयति—**तथाहीति॥ २४-२५॥**

तादात्म्य है, इतना ही विधान करते हैं।

यहाँ ज्ञातव्य है कि सन्दिग्धत्व एवं सप्रयोजनत्व का व्याप्य होता है—जिज्ञास्यत्व और जिज्ञास्यत्व का व्यापक है सन्दिग्धत्व सप्रयोजत्व यानी जो सन्दिग्ध या सप्रयोजन होता है, उसी की जिज्ञासा होती है, जो सन्दिग्ध नहीं होता या जिसका कोई प्रयोजन नहीं होता, उसकी जिज्ञासा नहीं होती, जैसा स्फीत आलोकवर्ती घट एवं करट के दांत में यहाँ असन्दिग्धत्व निष्प्रयोजनत्व की उपलब्धि है। इस स्थिति में व्यापक की निवृत्ति होने से व्याप्य की निवृत्ति अवश्य होगी, फिर तो ब्रह्म जिज्ञासास्पद नहीं होगा। इस प्रकार अहं जानामि अहं पश्यामि—इत्यादि प्रतीति में सदा अवभास ब्रह्म है, फिर तो वह अहंत्व प्रकार के संदेह निवर्तक विचार विषय नहीं है, क्योंकि वह अहंत्वेन निश्चित हो चुका है, जो जब जिस प्रकार से निश्चित किया जाता है, वह तब तत्प्रकारक संदेह निवर्तन विचार का विषय नहीं होता, जैसे समनस्केन्द्रिय सन्निकर्षक के साथ स्पष्ट प्रकाश के मध्य में रहनेवाला घट-संदेह निवर्तक विचार का विषय नहीं होता। दिन के प्रकाश में आँखों के सामने घड़ा विद्यमान हो तो क्या उसके विषय में किसी को संदेह होता है या जिज्ञासा होती है, यह क्या है कि यहाँ अनुमान का आकार होगा, अहमिति सदावभासमान ब्रह्म नाहन्त्वप्रकारक सन्देह निवर्तक विचार विषय अहन्त्वेन निश्चीयमानत्वात् यो यदा येन प्रकारेण निश्चीयते सतथा न तत्प्रकार सन्देह निवर्तक विचार विषयः समनस्केन्द्रिय-सन्निकर्षेस्फीतालोकमध्यवर्तितादशायां घटः ।।२४-२५।।

बाह्यबाधक नहीं, इस भिन्न उक्त दोष का अवकाश नहीं। विरोध तो इनका तब होता, यदि अभेद प्रतिपादक श्रुति कहती कि दूसरा कोई तत्त्व नहीं और भेद प्रतिपादक श्रुति यह कहती है कि ब्रह्म नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व है पर ऐसा दोनों श्रुतियों में कोई नहीं कहती। अत्यन्ताभेदवादी के मत में ही अभेद..... क्योंकि सिद्ध की अनुवादकता है, क्योंकि अभेद पहले से ही गृहीत है, उसमें ही गृहीत ग्राहिता है, यही कह रहे हैं—" त्वन्मते तु—आपके मत में सर्व प्रतीति विषयभूत ब्रह्म से भिन्न के भेदादिक अभाव से अभेद वाक्य में ही अनुवादकता है, इसलिये आपके स्वार्थ (अभेद) की असिद्धि होती है, यह आप जैसे पण्डित को विचार करना चाहिये, अब इसपर विचार करना व्यर्थ है, इसके बलाबल के विषय में आगे विस्तार से विचार करेंगे।

ननु श्रीवाचस्पतिमिश्रैर्विषयादीनामाक्षेपमुखेन निपुणं निर्णीतत्वान्नोक्तदोषप्रसक्तिस्सम्भावनीया। तथाहि—यद्यपि जीव एव ब्रह्म स चाहमिति ज्ञाने भासत एवेति सन्दिग्धत्वाभावान्न शास्त्रस्य विषयः। नाप्यविद्यानिवृत्तिः प्रयोजनमुक्तरीत्यात्मनि ज्ञायमानेऽपि तदनिवृत्तेः। तथापि वेदान्तवाक्यैर्ज्ञानानन्दैकरसाद्वितीयोदासीनस्वभाव आत्मोपक्रमादिभिः प्रतिपाद्यते, प्रत्यक्षेण तु

वज्रोत्तेजिका— अत्यन्ताभेदवादिनां मत एवाभेदवाक्यानामेवानुवादकता गृहीतग्राहित्वादित्याह—**त्वन्मत इति**। सन्दिग्धत्व-सप्रयोजनत्वयोर्व्याप्यं जिज्ञास्यत्वं भवति, तद्विरुद्धे चासन्दिग्धत्व-निष्प्रयोजनत्वे, तयोरुपलब्धिस्ततश्च व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यनिवृत्तेरवश्यम्भावान्न जिज्ञासास्पदं ब्रह्म, एवञ्चाहमिति सदावभासमानं ब्रह्म नाहन्त्वप्रकारकसन्देहनिवर्तकविचारविषयः, अहन्त्वेन निश्चीयमानत्वाद्, यो यदा येन प्रकारेण निश्चीयते स तदा न तत्प्रकारकसन्देहनिवर्तकविचारविषयः। यथा समनस्केन्द्रियसन्निकर्षे स्फीतालोकमध्यवर्त्तितादशायां ''घट'' इति प्रयोगः। न च प्रतियोग्यप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिर्दोषः, साध्यप्रसिद्धिं विनापि घटे सामान्यव्याप्तिग्रहोपपत्तेः। विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानरूपायाः

हिन्दी अनुवाद—

वाचस्पति मिश्र के मत में शास्त्रारम्भ की आवश्यकता

यदि कहें कि इस विषय में भामतीकार श्री वाचस्पति मिश्र ने अपनी भामती में उक्त शंका उठाकर उसका निराकरण करते हुए तत्सम्बन्धी समीचीन निर्णय किया, इसलिये उक्त दोष के प्रसंग की यहाँ सम्भावना नहीं है, भामती का वहाँ का प्रसंग इस प्रकार है, प्रश्न उठाया है कि जब जीव ही ब्रह्म है, वह तो अहम्, इस प्रतीति से भासित होता ही है, फिर तो उससे कोई सन्देह नहीं है, जब सन्देह नहीं तो वह शास्त्र का विषय नहीं हो सकता, कहेंगे अविद्या निवृत्ति रूप अपवर्ग प्रयोजन है, वह भी नहीं कह सकते, अविद्या निवृत्ति तो आत्मज्ञान से होगी, अनादि अविद्या तो ....आत्मा के यथार्थ ज्ञान के साथ-साथ आ रही है, फिर कैसे उसकी निवृत्ति होगी ? तो कहते हैं—यह तो ठीक है कि अहम् इस प्रतीति के—जीवरूप में ब्रह्म ही अवभासित होता है, फिर भी वेदान्त वाक्यों द्वारा जैसा ब्रह्म प्रतिपादित है वैसा अहम् इस प्रतीति में भासित नहीं होता। वेदान्त में उपक्रम उपसंहार आदि ग्रन्थ तात्पर्य निर्णायक सामग्रियों द्वारा ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप,

प्रादेशिकोऽनेकविधशोकदुःखादिप्रपञ्चोपप्लुतो गृह्यतेऽत आरभ्यो विचारः। न चाक्षविरोधादप्रामाण्यं श्रुतेः, यतः प्रत्यक्षं हि सम्भावितदोषमपौरुषेयेणागमेन बाध्यतेऽतो वेदान्तवेद्यः शुद्धो नाहं प्रत्यये भातीति विषयादिसिद्धिस्तथात्वे च शास्त्रमारम्भणीयमिति चेन्न, निर्विशेषे भाताभातविभागस्यासम्भवात्। आभासमानत्वेन देहात्मनोर्भेदस्य

प्रतियोगिविशिष्टाभावरूपसाध्यविशिष्टानुमितेरहन्त्व-प्रकारकत्वसन्देहनिवर्तकविचारविषयत्वयोर्विशकलितप्रसिद्ध्या विशेष्ये विशेषणं तत्र च विशेषणान्तरमित्युक्तरूपविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानसामग्र्युपपत्तेः। न च प्रतियोग्यप्रसिद्धिरपि, देहेन्द्रियादिषु तत्प्रसिद्धेः सुलभत्वात्। एवञ्चाहम्वा नाहम्वेति सन्देहाभावान्नाहमेवेति विपर्य्यासाभावाच्च न ब्रह्म प्रेक्षावत्प्रतिपित्सागोचरस्तथा च नारब्धव्यं वेदान्तशास्त्रप्रणयनमिति श्रीवाचस्पतिमिश्रैः स्वप्रणीतायां भामत्यां शास्त्रारम्भौपयिकानां सन्देहप्रयोजनविषयादीनामाक्षेपमुखेन प्रदर्शनान्नोक्तदोषः प्रसज्जत इत्याशङ्कते—**नन्विति**। आक्षेपमेव स्पष्टयति **तथाहीत्यादिना**। इदङ्कारास्पदेभ्यो देहेन्द्रियमनोबुद्धिविषयेभ्यो व्यावृत्तः स्फुटतराहमनुभवगम्य आत्मा संशयाभावादजिज्ञास्य इत्याशयेनाह—**जीव एवेति**। संशयश्च

एकरस, अद्वितीय तथा उदासीन स्वभाव आत्मतत्त्व (ब्रह्म) प्रतिपादित है पर अहम् प्रत्यक्ष में तो प्रादेशिक, अनेकविध शोक, दुःखादि धर्मों से युक्त आत्मा की प्रतीति होती है, इसलिये वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्मरूप जानने के लिये शास्त्र का आरम्भ आवश्यक है, ब्रह्म जिज्ञासा समुचित है। यदि कहें कि प्रत्यक्ष से विरुद्ध होने से श्रुति अप्रमाण है, तो ऐसा नहीं कह सकते, जीव प्रत्यक्ष भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषों से युक्त है, अतः अनादि अपौरुषेय वेदवाक्य (शब्द प्रमाण) इसका बाध होता है। इसलिये वेदान्तवेद्य शुद्ध (निर्धर्मक) ब्रह्म 'अहम्' इस प्रतीति से नहीं भासित होता, इसलिये विषय, प्रयोजन आदि सिद्ध है, इसलिये शास्त्रार्थ (वेदान्त विचार) आवश्यक है। इस प्रकार वाचस्पति मिश्र ने शास्त्रार्थ का समर्थन किया है, पर वह ठीक नहीं, जब ब्रह्म निर्विशेष है, उसमें कोई धर्म नहीं, अंश नहीं, तो इतना अंश कल्पि, यह अंश नहीं, जो अंश कल्पि नहीं, उसके लिये शास्त्रारम्भ अवश्य, यह कथन भी संभव नहीं है, कारण निर्विशेष में ज्ञात, अज्ञात विभाग अनुपपन्न है, ऐसा मानने पर सविशेषत्वापत्ति।

यहाँ विकल्प करते हैं—"आभासमानत्वेन देहात्मनोर्भेदस्य" इत्यादि। यहाँ

कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यभावस्य जीवब्रह्माभेदस्य द्वितीयमात्राभावस्य वा त्वदभिमतस्यात्मनोऽभिन्नत्वं सत्यमसत्यम्वेति विवेचनीयम्। नाद्यः, अद्वैतहानिप्रसङ्गात्। द्वितीये तद्बोधक-श्रुतेरप्रामाण्येन बाधापत्तेः। शरीरभेदादेः सत्यत्वापत्तेश्च। न चाभावो द्वितीयो मयाऽङ्गीक्रियते, न तु भावः, येनोक्तदोषप्रसङ्ग इति वाच्यम्; अभावत्वाधेयत्वाधारत्वादीनामपि सत्यत्वापत्तेः। सप्रतियोगिकस्य-भावापेक्षयातिशयेनाद्वैतविरोधित्वात्।

शास्त्रारम्भप्रयोजकस्तस्यासत्त्वान्न शास्त्रमारब्धव्यं तदभावे सुतरां शास्त्रस्य विषयो न सिद्ध्यतीत्यर्थः। अविद्यानिवृत्तिरपवर्ग इह प्रयोजनं विवक्षितं, सा चात्मयाथात्म्यज्ञानेन निर्वर्तनीया। अनाद्यविद्या तु आत्मयाथात्म्यज्ञानेन सहानुवर्त्तते कुतोऽस्या निवृत्तिरित्याह—**नापीति। तदनिवृत्तेः**=अविद्याया अनिवृत्तेः। भवेत्तदेवं यद्यहमित्यनुभव आत्मतत्त्वं प्रकाशेत न त्वेतदस्ति, समस्तोपाध्यनवच्छिन्नानन्तानन्दचैतन्यैकरसमुदासीनमेकमेवाद्वितीयात्मतत्त्वं श्रुत्यादिषु प्रतिपाद्यते, अहमनुभवस्तु प्रादेशिकमनेकविधशोकदुःखादिप्रपञ्चोपप्लुतमात्मानं दर्शयन् कथमात्मतत्त्वगोचरः, कथम्वा विपर्य्यासशून्यः, अत आरभ्यो वेदान्तविचार इत्याह—**तथापीति। प्रत्यक्षेण प्रादेशिक इति।** अहमिहैवास्मि सदने जानान इति प्रयुञ्जानो लौकिकः शरीराद्यभेदग्रहादात्मनः प्रादेशिकत्वं मन्यत इत्यर्थः। प्रत्यक्षप्रमाणेनाहमर्थ आत्मा प्रादेशिकानेकविधदुःखादिप्रपञ्चोपप्लुतो गृह्यते। आम्नायेन तु समस्तोपाध्यन-वच्छिन्नानन्तानन्दैकरसस्यात्मनो बोधनादिति

'आभासमानत्वेन'—इसका 'देहात्मनोर्भेदान्' इत्यादि पद चतुष्टय के साथ सम्बन्ध है। यह आत्मा से अभिन्नत्व में हेतु है, इस प्रकार देह और आत्मा का भेद आदि के आभासमात्र होने से मायावादी द्वारा अभिमत आत्मा के अभिन्नत्व सत्य है या असत्य—यह योजना है। प्रथम पक्ष नहीं कह सकते, इसमें अद्वैत हानि है, द्वितीय पक्ष में अभेद बोधक श्रुति के अप्रमाण्य होने से बाध की आपत्ति और शरीर भेद की सत्यत्वापत्ति।

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों में अद्वितीय पद का अर्थ आपने द्वितीय का अभाव है, स्वीकार किया है, वह अभाव आत्मा से यदि भिन्न है तो सद्वितीयत्वापत्ति और ऐसा होनेपर अद्वैतव्याघात, इस पूर्व प्रदर्शित दोष का उद्धार करते हैं—'न चाभावो' अर्थात् अद्वितीय का अर्थ हम द्वितीय का अभाव नहीं करते, बल्कि अद्वितीय पद से द्वितीय के भाव का निषेध करते हैं। जिससे उक्त दोष अद्वैत हानिरूप दोष का प्रसंग होगा तो नहीं कह सकते, अभाव को अतिरिक्त माननेपर अभावत्व आदि को भी अतिरिक्त अवश्य कहना पड़ेगा, फिर तो उक्त दोष तदवस्थ ही रहेगा।

द्वितीयमात्रनिषेधकर्त्तुरद्वितीयपदस्य भावमात्रनिषेधपरत्वसङ्कोचे स्वतन्त्रद्वैतनिषेधपरत्वेनैव सङ्कोचापत्तेः। अखण्डार्थेन वेदान्तेन ब्रह्माभावयोर्द्वयोरसिद्धेश्च। देहादीनां भासमा-नात्माभिन्नत्वे मानाभावात्। न च मिथ्या भूतेन द्वितीयाभावादिनोपलक्षित आत्मा शास्त्रवेद्यः स च सत्य इतिवाच्यम्। स्वप्रकाशत्वे न नित्यसिद्धात्म-नोऽवबोधार्थमुपलक्षणोक्त्ययोगात्। गृहेकाकोत्थाप्योत्तृणत्वादिवत्त-दुत्थाप्य धर्मस्य ब्रह्मण्यसत्त्वेन धर्मान्तरमुत्थाप्य व्यावर्तकत्वरूपोपलक्षण-

---

प्रत्यक्षविरुद्धार्थाभिधायित्वेनाम्नायस्य प्रत्यक्षणसमं विरोध इत्याशङ्क्य तं परिहरति-**न चेति।** प्रत्यक्षविरोधाच्छ्रुतेर्ना प्रामाण्यमित्यन्वयः। **सम्भावितदोषमिति।** भ्रमः, प्रमादो, विप्रलिप्सा, करणापाटवञ्चेति जीवे चत्वारो दोषाः सन्ति, तेन तत्प्रत्यक्षमपि दुष्टमित्यर्थः। इदमत्राकूतं सर्व्वप्रमाणेषु प्राथम्यात्प्रत्यक्षमेव प्रबलं प्रमाणमित्याधुनिका मन्यन्ते। नैतद्युक्तं, यतो नहि प्राथम्यन्तावत्प्रबलत्वे मानम्, अपित्वबाधितविषयकत्वं, तस्य तु व्यभिचारस्तत्र तत्र दृश्यते। तथा च मायामूर्द्धादिप्रत्यक्षे बाधितविषयकत्वं सुव्यक्तं, सूर्य्यादिमण्डलपरिमाणविषये, इदं रजतमितिप्रतीतौ चायथार्थविषयकत्वं शास्त्रसिद्धं लोकसिद्धं चेति भगवत्स्वरूपगुणादीनामचिन्त्यानन्तालौकिकतया प्रत्यक्षादिप्रमाणविषयानर्हत्वात्। तत्प्रतिपादने तु श्रुतेरेव सामर्थ्यात्तस्यैव प्राबल्यमिति। **अपौरुषेयेणेति।** अपौरुषेयतया निरस्तसमस्तदोषाशङ्कस्य बोधकतया स्वतःसिद्धप्रमाणभावस्यागमस्य प्राबल्यं, तेन दुर्बलं प्रत्यक्षं बाध्यते। ततः किमित्यत

अभाव में अभावत्व, आधेयत्व तथा आधारत्व आदि धर्मों के सद्भाव से द्वितीय मानना पड़ेगा। द्वितीय के अभाव को प्रामाणिक माननेपर उसके प्रतियोगी द्वितीय का भी प्रामाणिकत्व स्वीकार करना पड़ेगा। उससे अद्वैत का विरोध होगा, यही बात कहते हैं—सप्रतियोगि ग्रन्थ से। अर्थात् अद्वैत विरोधी द्वितीय की प्राप्ति होनेपर वेदान्त द्वारा अद्वैत नहीं जाना जा सकता है, यह भाव है।

पद से यदि कहें कि अद्वितीय पहले द्वितीयमात्र का निषेध करते हैं, न कि अभावातिरिक्तभाव, इस पर कहते हैं—द्वितीयमात्र के निषेधक अद्वितीय पद का भावमात्र का निषेध परत्व के संकोच करनेपर स्वतन्त्र द्वैत निषेध परत्वेन भी संकोच होगा। अर्थात् अद्वितीय का अर्थ है—द्वितीय का अभाव। द्वितीय का अभाव माने स्वतन्त्र द्वितीय का अभाव। स्वतन्त्र द्वितीय तत्त्व हम निम्बार्कीय वैष्णव भी नहीं मानते। अखण्डार्थमात्र बोधक वेदान्त द्वारा अभाव ब्रह्म है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अखण्डार्थ वेदान्त से ब्रह्म और अभाव दोनों की सिद्धि नहीं होगी। प्रातिपदिकार्थमात्र पर्यवसायित्व का मात्र अखण्डार्थत्व है। उभय सिद्धि में



श्रीगोलोकधामवासी प्रातःस्मरणीय

महान्त श्रीनरहरिशरणजी महाराज

श्रीनिम्बार्काश्रम–श्रीवैजनाथ महादेव, वल्लभीपुर, गुजरात

त्वासम्भवात्। स्वप्रकाशस्याप्यविद्यावशादभानाङ्गीकारे जगदान्ध्यापत्तेः। तमेवभान्तमनुभातिसर्वमिति व्याकुर्वता त्वया जगद्भानस्य ब्रह्माधीनप्रकाशत्वाङ्गीकाराच्छुद्धस्यैव ब्रह्मणो व्यावहारिकप्रपञ्चाधिष्ठानत्वाङ्गीकारेण तद्भानं विनाध्यस्तस्य विश्वस्य भानायोगाच्च। न च स्वरूपचितः प्रकाशेऽपि तस्याज्ञानाविरोधित्वाद्विरोधिन्यावृत्तेरभावेनाविद्यावृतत्वात् सन्दिग्धत्वमिति वाच्यम्। स्वरूपचितोऽज्ञानाविरोधित्वे तद्वेद्ये दुःखादावज्ञानप्रसङ्गात्,

---

आह—**अत इति। वेदान्तवेद्य इति।** कर्त्तृत्वभोक्तृत्व दुःखशोकमोहमयमात्मानमवगाहमानेऽहंप्रत्यये शुद्ध आत्मा न चकास्ति। अतश्चतुर्लक्षणी ब्रह्ममीमांसा आरब्धव्या। ब्रह्मज्ञानमेव समस्तदुःखोपशमनानन्दैकरसरूपं परं प्रयोजनम्, तमर्थमधिकृत्य प्रेक्षावन्तः प्रवर्त्तन्तेतराम्। संशयश्च मीमांसारम्भं प्रयोजयति। तथा च शास्त्रे प्रेक्षावप्रवृत्तिहेतुसंशयप्रयोजनसूचनाच्छास्त्रमारम्भणीयमिति तैः सिद्धान्ततया समर्थितमित्यभिसन्धिः। तन्मतं दूषयति—**नेति। निर्विशेष इति।** निर्विशेषचिन्मात्रे ब्रह्मणि हीदं भातमिदञ्चाभातमिति विभागोऽनुपपन्नः। तथात्वे सविशेषत्वमापद्येतेत्यर्थः। विकल्पयति—**आभासमानत्वेनेत्यादिना।** आभासमानत्वेनेत्यस्य देहात्मनोर्भेदस्येत्यादि पदचतुष्टयेन सममन्वयः। आत्मनोऽभिन्नत्वे हेतुरिदम्। तथाच देहात्मनोर्भेदादेराभासमानत्वेन मायावाद्यभिमतस्यात्मनोऽभिन्नत्वं सत्यमसत्यं वेति योजना। आत्माऽभिन्नत्वस्य सत्यत्वं निरस्यति—**नाद्य इति।** अभिन्नत्वस्यासत्यत्वं निराकरोति-**द्वितीय इति। तद्बोधकेति।** अभेदबोधकेत्यर्थः। हेत्वन्तरमाह—शरीरेति। "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मे" तिश्रुतावद्वितीय पदस्यद्वितीयाऽभावार्थकत्वमभ्युपगतं स

वेदान्त अखण्डार्थ बोधक है—इस नियम का भङ्ग होगा। देह आदि का भासमात्र आत्मा से भिन्नत्व में मान नहीं है।

यदि कहें कि द्वितीय अभावविशिष्ट आत्मा शास्त्र प्रतिपाद्य नहीं है, जिससे उक्त दोष की प्रसक्ति होगी, किन्तु उससे उपलक्षित आत्मा वेदान्त वाक्यों द्वारा प्रतिपादित होता है। वह सत्य है तो ऐसा नहीं कह सकते, नित्यसिद्ध आत्मा के स्वप्रकाश होने से उसके अवबोध के लिये उपलक्षण का कथन युक्त नहीं है, अर्थात् उपलक्षणीभूत की प्रतीति कराकर उसकी व्यावृत्ति के समय सत्य के अभाव से अकाक में यह काक की तरह है, यह वाक्य जैसे अप्रमाण होता है, उसी प्रकार उपलक्षणीभूत द्वितीयाभाव आदि के मिथ्या होने से उसके ब्रह्म में अभाव होने के कारण तद्बोधक वेदान्त वाक्यों का अप्रामाण्य होगा, यह भाव है। द्वितीयाभाव में

दुःखाद्याकारवृत्त्यङ्गीकारे चेतनस्य ज्ञानत्वे मानाभावापत्तेः, सुखादेः क्षणमज्ञातत्वापत्तेश्च। न चाहं प्रत्यये विशिष्टमेव भाति न शुद्धमिति वाच्यम्, विशिष्टभाने विशेष्यभानावश्यकत्वेनात्मनोऽसन्दिग्धत्वेन विषयत्वासम्भवात्। ननु यथा षड्जादयो गान्धर्वशास्त्राभ्यासात् प्रागविस्फुरन्तस्तद्रूपेणानुल्लिखिता न श्रोत्रेण व्यज्यन्ते, व्यज्यन्ते तु शास्त्रवासितेन तेन, एवं वेदान्तवाक्यजन्यब्रह्मैक्याकारवासितान्तःकरणे तद्भावाभिव्यक्तिर्न तु ततः प्रागिति चेन्न। तत्र प्रागस्फुरतः पश्चाच्चस्फुरतः

चाभाव आत्मनो भिन्नश्चेत्तदा सद्वितीयत्वापत्तिः, तथात्वेऽद्वैतव्याघातः इति प्रागुपदर्शितदोषमुद्धरति—**अभाव इति**। अद्वितीयपदेनाभावातिरिक्तो भावो निषिध्यते, इतिभावः। येन=द्वितीयाभावेन, **उक्तदोष**-प्रसङ्गः=अद्वैतहानिदोषप्रसङ्गः, अभावस्यातिरिक्तत्वाभ्युपगमेतु अभावत्वादीनामप्यतिरिक्तत्वमवश्यं वाच्यम्। तथा सत्युक्तदोषतादवस्थ्यमित्याह—**अभावत्वेति**। अभावेऽभावत्वाधेयत्वाधारत्वादीनां सत्त्वेन द्वितीयत्वमङ्गीकारणीयं स्यादित्यर्थः। द्वितीयाभावस्य प्रामाणिकत्वे तत्प्रतियोगिनो द्वितीयस्यापि प्रामाणिकत्वमभ्युपगन्तव्यं, तेनाद्वैतस्य विरोधःस्यादित्याह—**सप्रतियोगिकस्येति**। अद्वैतविरोधिद्वितीयत्वप्रसक्तौ न वेदान्तैरद्वैतं प्रतिपत्तुं शक्यत इति भावः। अद्वितीयपदेन द्वितीयमात्रं निषिध्यते न तु अभावातिरिक्तो भाव इत्याह—**द्वितीयमात्रेति**। **स्वतन्त्रेति**—विनिगमकाभावेन स्वतन्त्रद्वैतनिषेधपरत्वेनापि सङ्कोचःस्यादित्यर्थः। वेदान्तवचनेरभावो ब्रह्म चेति बोधयितुं न शक्यते तेषामखण्डार्थमात्रबोधकत्वादित्याह—**अखण्डार्थेनेति**। प्रातिपदिकार्थमात्र-

उपलक्षण के निरास के लिये कहते हैं—'गृहे काकोत्थाप्य' इत्यादि अर्थात् काक के द्वारा उत्थाप्य जो ऊर्ध्वतृणत्व है, वह गृह के ऊपर है, उससे अन्य गृह की व्यावृत्ति की तरह उपलक्षणीभूत द्वितीयाभाव से उत्थाप्य धर्म का ब्रह्म में अभाव होने से उसमें उपलक्षणत्व नहीं होगा। स्वयं-प्रकाश परमात्मा अविद्या के कारण प्रकाशित नहीं होता, ऐसा मानने पर तो जगत् अन्धकार में हो जायेगा, यह बड़ी आपत्ति होगी। लोक में प्रकाशमानता देखी गई है। आप से तो अप्रकाशमान द्वितीयाभाव में ही उपलक्षणतया तथा तटस्थतया अज्ञान विषयत्व अङ्गीकार होने से अदृष्ट कल्पना होगी। इसलिये आत्मा के प्रकाशमान होने तथा अन्य के आविद्यक होने से अविद्या विषयत्व नहीं होगा। जैसा कि कहा है—''निर्विशेषे स्वयं भाते किमज्ञानावृतं भवेत्। मिथ्या विशेषोऽप्यज्ञानासिद्धिमेवह्यपेक्षते'' दूसरी बात विषय सम्बन्धि न्यून अविद्या से अधिक ब्रह्म का आवरण कैसे होगा? यदि कहें कि न्यून अंगुलि से अपने से अधिक सूर्य का आच्छादक देखने से न्यून अविद्या से अपने से अधिक

षड्जादिजातिविशेषस्येव प्रकृते तदभावात्, अत एव प्रयोजनस्याप्यसम्भवः। न च कण्ठस्थस्य नित्यप्राप्तस्य विस्मृतस्य मणेरुपदेशवन्नित्यप्राप्तस्वरूपोपदेशः सार्थक इति वाच्यम्। मण्युपदेशस्य

पर्य्यवसायित्वमखण्डार्थत्वम्। उभयसिद्धौ वेदान्तानामखण्डार्थबोधकत्वमिति नियमभङ्गप्रसङ्गः स्यादितिभावः। ननु द्वितीयाभावविशिष्ट आत्मा न शास्त्रप्रतिपाद्यो येनोक्तदोषः प्रसज्जेत किन्तु तदुपलक्षित आत्मा वेदान्तवचनैः प्रतिपाद्यत इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति। उपलक्षणोक्त्ययोगादिति।** उपलक्षणीभूतस्य प्रत्याय्यव्यावृत्तिसमये सत्वाभावादकाके काकवदिति वाक्यं यथाऽप्रमाणमेवमुपलक्षणीभूतद्वितीयाभावादेर्मिथ्यात्वेन ब्रह्मण्यभावात्तद्बोधकवेदान्तानामप्रामाण्यं स्यादिति भावः। द्वितीयाभावस्योपलक्षणत्वं निरसितुमाह—**गृह इति। काकोत्थाप्योत्तृणत्वादिवत्**=काकेनोत्थाप्यं यदुत्तृणत्व-मूर्द्ध्वतृणत्वं तच्च गृहोपरिवर्तते, तेनान्यगृहस्य व्यावृत्तिर्जाता तद्वत्। **तदुत्थाप्यधर्मस्य**= उपलक्षणीभूतद्वितीयाभावोत्थाप्यधर्मस्य यथा गृहे काकोत्थाप्योद्ध्वर्तृणत्वादिधर्मो गृहान्तरव्यावर्तकोऽस्ति तथा ब्रह्मण्युपलक्षणीभूतद्वितीयाभावोत्थाप्यधर्मस्याभावान्न तस्योपलक्षणत्वमित्यर्थः इदं, पुनरिहावधेयम्। विशेषणमुपलक्षणं वा यो द्वितीयाभावः स्तत्त्वावेदकमानवेद्यश्चेत्तदा ब्रह्मणः सद्वितीयत्वं तेनैवस्यात्। यदि द्वितीयाभाव-उक्तमानावेद्यः, तदा तत्प्रतियोगी प्रपञ्चरूपोद्वितीयः सत्यो वाच्यः भावाभावयोरेकस्य-मिथ्यात्वेऽपरस्य सत्यत्वनियमात्। तथा च ब्रह्मणस्तात्त्विकप्रपञ्चवत्त्वापत्तिरिति। स्वयंप्रकाशरूप आत्माऽविद्यासम्बन्धान्न प्रकाशते तथा सति **जगदान्ध्यापत्तेरित्याह—**

ब्रह्म का आवरण हो जायेगा तो ऐसा नहीं कह सकते। अंगुलि से पुरुष सम्बन्धी चक्षु का आवरण होने से विषय सम्बन्धी आवरण असंभव है, यह अनुसंधेय है। अब पूर्वोक्त अर्थ को स्पष्ट करते है—"तमेव भान्तमनुभाति..." इत्यादि अर्थात् "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" (उसी परमात्मा के प्रकाश से समस्त जगत् प्रकाशित होता है।) इस श्रुति की व्याख्या करते हुए आपने जगत् में ब्रह्माधीन प्रकाश स्वीकार कर शुद्ध ब्रह्म को ही व्यावहारिक प्रपञ्च का अधिष्ठान मानने से शुद्ध ब्रह्म के भान के बिना विश्व का भान नहीं होगा। यदि कहें कि स्वरूप चैतन्य का प्रकाश होनेपर भी उसके अज्ञान का अविरोधी होने से विरोधी वृत्ति के अभाव होने के कारण अविद्या से आवृत हो जाने से सन्दिग्ध होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि स्वरूपभूत चैतन्य के अज्ञान का अविरोधी होने पर उसके द्वारा साक्षिवेद्य दुःख आदि में अज्ञान का प्रसङ्ग होगा, अर्थात् साक्षिवेद्य चैत्र के सुख-दुःख आदि के जैसे मैत्र का अज्ञान है, उसी प्रकार चैत्र को भी अज्ञान होगा। साक्षिवेद्य सुख

हि सुखं दुःखाद्यभावश्च फलम्, न च त्वन्मते स्वरूपभिन्नं प्राप्यं किञ्चिदस्ति, स्वप्रकाशात्मकस्य नित्यप्राप्तत्वात्। किञ्च मणेर्देहादिभिन्नत्वेनाहन्तानास्पदत्वाद्विस्मरणविषयत्वं वक्तुं शक्यं, ब्रह्मणस्तु स्वरूपत्वेन विस्मरणासम्भवान्नोक्तदृष्टान्तसिद्धिः। किञ्च

स्वप्रकाशस्येति। लोके ज्ञानविषयस्य प्रकाशमानत्वं दृष्टम्, त्वया त्वप्रकाशमानस्यैव द्वितीयाभावस्योपलक्षणतया तटस्थतया चाऽज्ञानविषयत्वस्वीकाराददृष्टकल्पना स्यात्तस्मादात्मनः प्रकाशमानत्वादन्यस्य चाविद्यकत्वान्नाविद्याविषयत्वम्। तदुक्तम्— ''निर्विशेषे स्वयं भाते किमज्ञानावृतंभवेत्। मिथ्याविशेषोप्यज्ञानसिद्धिमेव ह्यपेक्षते'' अपि च न्यूनयाऽविद्यया विषयसम्बन्धिन्या कथमधिकब्रह्मावरणम्। न च न्यूनयाङ्गुल्यास्वाधिकसूर्याच्छादकत्वदर्शनात्प्रकृतेऽपिन्यूनयाऽविद्यया स्वाधिकब्रह्मावरणं भविष्यतीतिवाच्यम्, अङ्गुलेः पुरुषसम्बन्धिचक्षुराद्यावरणत्वेन विषयसम्बन्ध्यावरणत्वा-सम्भवादिति पुनरिहानुसन्धेयम्। पूर्वोक्तार्थं विशदयति श्रुतिमुखेन—**तमेव भान्तमिति।** तद्भानं—शुद्धब्रह्मभानम्। **स्वरूपचित इति।** चैतन्यस्येत्यर्थः। **तस्याज्ञानाविरोधित्वादिति।** न च चैतन्यस्याज्ञानाविरोधित्वेऽज्ञाननिवृत्तिरेव न स्यान्निवर्तकान्तराभावादिति वाच्यम्, अविद्यानिवृत्तेरात्ममात्रविषयकनिष्प्रकारकचरमवृत्तिविशेषादेवोपपत्तेः। ननु वृत्तिचितोरुभयोरपि आत्ममात्रविषयकत्वाविशेषाद्वृत्तेरेवाज्ञानविरोधित्वं न चैतन्यस्येति

आदि में अज्ञान का निवारण दुःखाकारवृत्ति से ही होगा, इसपर कहते हैं— दुःखाद्याकारवृत्ति स्वीकार करनेपर चेतन ज्ञान के मानाभाव की आपत्ति होगी। यदि कहें कि सुख आदि के विषय में साक्षी से अन्य अज्ञान के विरोधी के अभाव होने एवं साक्षी के उसका अविरोधी होने से चैत्र की तरह मैत्र में भी अज्ञता होगी, यही कहते हैं सुख आदि का क्षण में अज्ञाततत्व की आपत्ति होगी।

यदि कहें कि अहं जानामि अहं सुखी इस प्रतीति से सुख-दुःख विशिष्ट चैतन्य भासित होता है, न कि शुद्ध चैतन्य तो ऐसा नहीं कह सकते, विशिष्ट के मान में विशेष्य का भान आवश्यक होने से आत्मा का निश्चितरूप में विषयत्व सम्भव नहीं है। यानी सर्वानुभूत आत्मा सन्दिग्ध नहीं है, जिससे वह जिज्ञासा होकर विचार का विषय हो, इस तरह वेदान्त फिर भी स्वार्थ से प्रच्युत होगा, यह भाव है।

यदि कहें कि जैसे गान्धर्व शास्त्र के अभ्यास से सञ्चित संस्कार सहित श्रोत्रेन्द्रिय से षड्ज आदि स्वर, ग्राम, मूर्छना आदि के भेद का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, उसके बिना नहीं, उसी प्रकार वेदान्तार्थ ज्ञान के अभ्यास से प्राप्त संस्कार से ब्रह्मभाव से भावित अन्तःकरण की वृत्ति में जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है तो ऐसा नहीं कह सकते, उक्त दृष्टान्त विषम दृष्टान्त है, वहाँ तो गान्धर्व शास्त्र के अभ्यास से पूर्व कुछ

मणेःस्वल्पपदार्थस्य देहैकदेशवृत्तित्वेन ताटस्थ्ययोगेन विस्मृत्यर्हत्वं भवेत्, आत्मनस्तु सर्वगतत्वेन स्वरूपत्वेन च तस्य तत्रासम्भवाद्दृष्टान्तस्यात्यन्तवैषम्यमेव। किञ्च सर्वो ह्यात्मास्तित्वं प्रत्येति,

विशेषः कथमिति चेन्न सौरालोकस्य, अयं घट इति ज्ञानस्य च घटविषयकत्वाविशेषेऽपि सौरालोकस्यैवान्धकारनिवर्तकत्वं न घटज्ञानस्य, यथा वा सौरप्रकाशस्य बहिर्निःसृतचक्षुः किरणरूपचाक्षुषप्रकाशस्य च घटविषयकत्वाविशेषेऽपि सौरप्रकाशस्यैवान्धकारनिवर्तकत्वम्, न चाक्षुषप्रकाशस्य, चाक्षुषप्रकाशे सत्यपि रात्रेरन्धकारानिवृत्तेर्दृष्टत्वात्। **सन्दिग्धत्वमिति।** सन्दिग्धत्वे च ब्रह्मणो जिज्ञास्यत्वं प्राप्तं तथा सति मीमांसा शास्त्रमारब्धव्यमितिभावः। यदि साक्षिणः स्वविषयकाज्ञानविरोधित्वं न स्यात्तदा दुःखादावज्ञानमापद्येत तत्र वृत्तेरभावादित्याशयेनोक्तशङ्कां परिहरन्नाह—**स्वरूपचित्तइति।** तद्वेद्ये=साक्षिवेद्ये। साक्षिवेद्ये चैत्रसुखदुःखादौ यथा मैत्रस्याज्ञानमस्ति तथा चैत्रस्याप्यज्ञानं स्यादित्यर्थः। साक्षिवेद्ये सुखादावज्ञाननिवारणं दुःखाद्याकारवृत्यैव भविष्यतीत्याह—**दुःखाद्याकारेति।** सुखादिविषये साक्ष्यन्यस्याज्ञानविरोधिनोऽभावात्। साक्षिणश्च तदविरोधित्वात् चैत्रस्येव मैत्रस्याप्यज्ञत्वं स्यादित्याह—**सुखादेरिति।** न च साक्षिविषये सुखादावज्ञानप्रसक्तिरेव नास्तीति न तद्वारकापेक्षा। वृत्तिस्तु स्वविषये प्रसक्ताज्ञान-निवर्तिकेतिवाच्यम्, ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वादज्ञानस्य प्रसक्तेरभावात्, तथा च वेदान्तजन्यचरमवृत्तेरात्माज्ञाननिवर्तकत्वं त्वयोच्यमानं न सिद्ध्येत्। तथा चात्मा नाज्ञानप्रसक्तिमान् सदा प्रकाशमानत्वादिच्छादिवदित्यनुमानं द्रष्टव्यम्। न चात्र

भी षड्ज आदि का स्फुरण नहीं होता, प्रकृत में ऐसा नहीं है, यहाँ तो वेदान्त शास्त्र के अभ्यास से पूर्व भी अहं सुखी अहं दुःखी, इस प्रकार अनुभव सार्वजनीन है। इतिहास पुराण आदि शास्त्रों में आत्मा का श्रवण है। इस प्रकार सर्वान्तर्यामी भगवान् के सन्देह का अभाव होने से किसका निरूपण किया जाय? यह भाव है। इसलिये आपके मत में प्रयोजन भी सम्भव नहीं है।

यदि कहें कि कण्ठ में स्थित नित्यप्राप्त मणि को भूल जाने से उसके खो जाने का भ्रम होने से जैसे व्यक्ति मणि को ढूँढने लगता है, तब उसे कोई आप्तजन बताते हैं, अरे पगले, मणि तुम्हारे गले में है देखते नहीं, ढूँढते हो? उसी प्रकार हमारे नित्य प्राप्त स्वस्वरूप की अविद्या के कारण अप्राप्ति का भ्रम होनेपर भ्रम निवारणार्थ गुरु उपदेश सार्थक हो तो ऐसा भी नहीं कह सकते, मणि उपदेश का फल तो सुख एवं दुःखाभाव है और आपके मत में तो स्वरूप से भिन्न कोई प्राप्तव्य नहीं है और स्वरूप स्वप्रकाशात्मक होने से नित्य प्राप्त है। दूसरी बात मणि दृष्टान्त भी विषय

न नाहमस्मीति। यदि हि नात्मास्तित्वप्रसिद्धिः स्यात् सर्वोऽपि लोको नाहमस्मीति प्रतीयादित्यन्वयव्यतिरेकपूर्वकभाष्योक्तिविरोधात्।

साक्षिवेद्यत्वमुपाधिः, इच्छादौ साध्यव्यापकत्वम्। आत्मनि साधनाव्यापकत्वं तस्य साक्षिरूपत्वेन तद्वेद्यत्वं नास्ति कर्तृकर्म विरोधात्तर्हि तस्याप्रामाणिकत्वन्तु नाशङ्कनीयम्, स्वप्रकाशत्वेनात्मनस्सिद्धत्वात्, तथा चात्माऽज्ञानप्रसक्तिमान् साक्षिवेद्यत्वात् घटवदिति सत्प्रतिपक्ष उक्तो भवतीति वाच्यम्। प्रचण्डप्रकाशे मार्तण्डेऽन्धकारस्येव स्वयं प्रकाशे ब्रह्मण्यज्ञानाप्रसक्तेर्न्याय्यत्वात्, अन्यथा यथा घटादेः स्वयमज्ञानाविरोधित्वात्स्वव्यवहारे स्वातिरिक्तालोकापेक्षास्त्येवं चितोऽप्यज्ञानाविरोधित्वात्तत्राज्ञानप्राप्त्या स्वस्वरूपव्यवहारो न स्यात्, तदर्थं स्वातिरिक्तसम्विदन्तरमपेक्षेत। तथा च द्वितीयानुमानेऽप्रकाश-रूपत्वमुपाधिस्तद्विपर्य्ययेण साध्याभावसाधने स्थापनानुमानमेव पर्य्यवसितमिति ध्येयम्। अहं जानाम्यहं सुखीति प्रतीतौ सुखदुःखविशिष्टचैतन्यं भासते न तु शुद्धमित्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। विशेष्यभानमन्तराविशिष्टप्रतीतिरेवानुपपन्नेत्याह—**विशिष्टभान इति। आत्मनोऽसन्दिग्धेति**। न च सर्वानुभवसिद्ध आत्मा सन्दिग्धो येन जिज्ञास्यः सन् विचारं प्रयुञ्जीतेति पुनरपि वेदान्ताः स्वार्थात्प्रच्युता इति भावः। गान्धर्वशास्त्रार्थाभ्या-साहितसंस्कारसचिवश्रोत्रेन्द्रियेण षड्जादिस्वरग्राममूर्छनाभेदप्रत्यक्षमनुभवति, एवं वेदान्तार्थज्ञानाभ्यासाहितसंस्काराज्जीवस्य ब्रह्मभावान्तःकरणवृत्तौ ब्रह्मसाक्षात्कारो जायते, इत्याशयेन शङ्कते—**नन्विति**। दृष्टान्तवैषम्यमुपपाद्य दूषयति—**नेति। तत्रेति**। गान्धर्व-शास्त्राभ्यासात्पूर्वं न किञ्चिदपि षड्जादीनां स्फुरणं भवति प्रकृते तु वेदान्त-शास्त्राभ्यासात्प्रागपि अहं सुखी, अहं दुःखीत्यनुभवः सार्वजनीनः। श्रूयते चेतिहास-पुराणादावात्मेति सर्वान्तर्यामिणि भगवति सन्देहाभावात्किं निरूपणीयमित्यभिसन्धिः। अतएव=शास्त्रविषयस्यासम्भवादेव। प्रवृत्तिहेत्विच्छाविषयत्वं प्रयोजनत्वं, तच्च विषयमन्तरा न सम्भवतीत्यर्थः। चैतन्यं प्राप्तमपि अनाद्यविद्यावशादप्राप्तमिव लब्धं

दृष्टान्त है, मणि देहादि से भिन्न होने के कारण अहन्तास्पद न होने से उसका तो विस्मरण हो सकता है, ब्रह्म तो जीव का स्वरूप है, उसका कभी विस्मरण संभव नहीं है, इसलिये मणि का दृष्टान्त संभव नहीं। दूसरी बात मणि छोटा-सा पदार्थ है, वह तो एक देश में रहनेवाला है, इसलिये वह तटस्थ-सा है, वह तो विस्मृति योग्य है, पर आत्मा तो सर्वगत है, हमारा स्वरूप है, उसका विस्मरण तो संभव नहीं, उसे तो विद्वानों की बात ही क्या, धूल भरे हरवाहे चरवाहे भी जानते हैं, क्योंकि सबकी आत्मा है, आत्मा के अस्तित्व पर सभी विश्वास करते हैं, ऐसा कोई नहीं कहता कि मैं नहीं हूँ। यदि आत्मा के अस्तित्व की प्रसिद्धि न हो तो सभी लोक ऐसा कहते कि मैं नहीं हूँ, इस प्रकार अन्वयव्यतिरेकिपूर्वक भाष्योक्ति का विरोध होगा।

एतेनाधिकार्य्युपपत्तिरपि निरस्ता, प्रयोजनाभावेऽर्थित्वाभावस्तदभावे च सामर्थ्यविद्वत्त्वयोरकिञ्चित्करत्वादप्रयोजकत्वमिति सङ्क्षेपः ॥ २६-२७ ॥

॥ इति पराभिमतप्रयोजनाधिकारिगिरिनिपातः ॥ २ ॥

भवति। यथा स्वग्रीवागतमपि ग्रैवेयकं कुतश्चिद्भ्रमान्नास्तीति मन्यमानः परेण प्रतिपादितमप्राप्तमिव प्राप्नोतीत्याशयेन पुनराशङ्कते—**कण्ठस्थस्येति**। यदाशङ्कितं तदपि दृष्टान्तवैषम्येण निराकरोति—**नचेति**। तस्य=विस्मृत्यर्हत्वस्य। तत्र=ब्रह्मणि। पांशुलपादकस्य हालिकस्यापि ब्रह्मास्तित्वप्रसिद्धिः, कुतः? आत्मत्वात्। एतदेव स्फुटयति—**सर्वोहीति**। प्रतीतिमेवाप्रतीतिनिराकरणेन द्रढयति—**न नेति**। नाहमस्मीति न प्रत्येति किन्तु प्रत्येत्येवेति योजना। नन्वहमस्मीति च ज्ञास्यति मा च ज्ञासीदात्मानमित्यत आह—**यदीति**। अहमस्मीति न प्रतीयात्। अहङ्कारास्पदं हि जीवात्मानं चेन्न प्रतीयात्, अहमिति न प्रतीयादित्यर्थः। **विरोधादिति**—आत्मनोविस्मृतत्व उच्यमाने उक्तभाष्यस्य विरोधः स्पष्टः प्रतिभातीत्यर्थः। वेदान्तशास्त्रस्याधिकारिणं निरस्यति—**एतेनेति**। विषयप्रयोजनाभावेनेत्यर्थः। तदेवोपपादयति—**प्रयोजनाभाव इति**। तदभावे=अर्थित्वाभावे ।।२६-२७।।

इति पराभिमतप्रयोजनाधिकारिगिरिनिपातस्य व्याख्या॥ २ ॥

वज्रोत्तेजिका- इतरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यवहारा लौकिका वैदिकाश्च प्रवृत्ता इति तेषां राद्धान्तः तथा च विषयप्रयोजनाधिकारिणां

इस तरह विषय और प्रयोजन की सिद्धि के अभाव में अधिकारी की उपपत्ति भी निरस्त हो गई, आपके मत के अधिकारी भी नहीं हो सकते। जब कोई प्रयोजन ही नहीं है तो अर्थी कैसे होगा, जब अर्थी कोई नहीं होगा तब सामर्थ्य और विद्वत्त्व के अकिञ्चित्कर होने के कारण वेदान्त अध्ययन का कोई प्रयोजन नहीं होगा, फिर तो आपके मत के वेदान्ताध्ययन ही व्यर्थ हो जायेगा।

इस प्रकार मायावादी मत के प्रयोजन एवं अधिकारीरूपी गिरि का निपात हुआ (अर्थात् मायावादी मत के प्रयोजन तथा अधिकारी सिद्धि नहीं होने से शास्त्रारम्भ का वैयर्थ्य सिद्ध हुआ।) ।।२६-२७।।

(३) अथ अध्यासगिरेरधिष्ठानशिखरनिपातः

नन्वस्मत्सिद्धान्ते सर्वस्याधिकार्यादिकथनस्याज्ञानप्रयुक्ताध्यास-पूर्वकप्रमाणप्रमेयादिव्यवहारान्तर्गतत्वान्नोक्तदोषावकाशोऽध्यास-माहात्म्येनैवाखिलविरोधस्य परिहरणीयत्वादिति चेन्न, अधिष्ठानारोप्य-

---

प्रमाणप्रमेयादिव्यवहारान्तर्गतत्वात्सर्वमध्यासमहिम्ना व्यवस्थापयितुं शक्यते, तथा च शास्त्रस्य विषयप्रयोजनादीनां सिद्धिः। तथाहि शास्त्रमारब्धव्यं विषयप्रयोजनवत्त्वाद् भोजनादिवत्, इत्याशयं हृदि निधाय पुनः प्रतिवादी प्रत्यवतिष्ठते—**नन्विति**। परिहरति—**नेति**। यदि विश्वमध्यस्तं स्यादिति वक्ष्यमाणतर्केऽप्रयोजकत्वशङ्कां परिहरन्नाह-**अधिष्ठानेति**। अधिष्ठानञ्चारोप्यञ्च लक्षणञ्च प्रमाणञ्च सामग्री चादिर्येषां ते तदादयस्तेषामभावेनेति विग्रहः। तथा चाधिष्ठानाभावेना-ध्यासो न सिद्ध्यति, एवमारोप्यासिद्ध्याऽध्यासलक्षणाभावेन चाध्यासप्रमाणाभावेन तत्सामग्र्यभावेन

हिन्दी अनुवाद—

चिदचित् सम्बन्ध अध्यासासिद्धि

चित् ब्रह्म में अचित् जगत् का अध्यास मायावादी मानते हैं—इसका खण्डन करते हैं कि—इन दोनों में किसी सम्बन्ध का निरुपण ही जब सम्भव नहीं है तो चित् में अचित् का अध्यास कैसे सम्भव होगा। ज्ञानज्ञेय में संयोग सम्बन्ध हो नहीं सकता, क्योंकि द्रव्य द्रव्य का ही संयोग होता है। समवाय भी नहीं होगा। वेदान्तियों के मत में ज्ञान आत्मा का गुण नहीं मन का है। विषय-विषयिभाव कहेंगे तो वह भी नहीं कह सकते, विषयित्व विषयत्व रूप उक्त सम्बन्ध का—एकैकमात्रनिष्ठ होने से उसके द्विनिष्ठ सम्बन्धात्मकत्व का अभाव है—इस प्रकार परमत में उन दोनों का सम्बन्ध निरूपण न होने से अध्यास की सिद्धि नहीं होती। इस पर कहते हैं कि—उनमें अनाध्यासिक सम्बन्ध न होने पर भी आध्यासिक सम्बन्ध मान लेंगे—कारण समस्त दृश्य प्रपञ्च का ज्ञान के (ब्रह्म में) अध्यस्त होने से उन दोनों की आध्यासिक सम्बन्ध का योग होने पर किसी एक का मिथ्यात्व होगा। दृश् (ज्ञान) का मिथ्यात्व असम्भव होने से दृश्य (प्रपञ्च) का मिथ्यात्व होगा, इसलिये उनमें आध्यासिक सम्बन्ध मान लेंगे तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि आपके मत में (मायावादी के मत में) दृश्य प्रपञ्च का ब्रह्मरूप दृक् में अध्यस्त होने पर भी किसी का किसी पुरुष के प्रति प्रकाश के लिये आपको भी तत्

लक्षणप्रमाणसामग्र्याद्यभावेन दृग्दृश्ययोराध्यासिकसम्बन्धानुपपत्त्यादेश्चाध्यासस्यैवासम्भवात्। तथाहि-इदं विश्वं यद्यध्यस्तं स्यात्तर्हि साधिष्ठानं स्यान्न तु तथास्ति सामान्यतो ज्ञातत्वे सति विशेषेणाज्ञातत्व-

---

चाध्यासो न साधयितुं शक्यत इत्यर्थः। ज्ञानज्ञेययोराध्यासिकसम्बन्धस्यानुपपन्नत्वान्नाध्यासः सिद्ध्यतीत्याह—**दृग्दृश्ययोरिति।** अध्यासाभावसाधकं तर्कं दर्शयति—**इदमिति।** अत्राध्यस्तत्वमापादकं साधिष्ठानत्वमापाद्यम्। आपाद्यव्यतिरेकनिश्चयेनापादकाभावस्य सिद्धिस्तर्कफलं

तत् सन्निकृष्ट इन्द्रिय जन्य तत्तदाकार वृत्ति आवश्यक है—इस प्रकार इन्द्रियजन्य वृत्तिद्वारक सम्बन्ध अनावृत्त ज्ञान में आपको स्वीकार होने से उसका सत्य अर्थ में भी वृत्ति द्वारा सम्भव होने से आध्यासिक सम्बन्ध अध्यास में प्रयोजक नहीं होगा।

यहाँ अत्यन्त अभेदवादी-मायावादी की ऐसी प्रक्रिया है जैसे तालाब का जल नहर के द्वारा खेतों में जाकर चौकोर आकार का हो जाता है—अथवा जैसा खेत का आकार होता है—वैसा होता, उसी प्रकार तैजस अन्तःकरण चक्षु के द्वारा निकलकर विषयाकार बन जाता है—उसीको वृत्ति कहते हैं। उस वृत्ति का अन्तःकरणोपाधिक जीव चैतन्य ही प्रकाशक है।

इस मत के असङ्ग चैतन्य का विषयोपराग सम्भव न होने से व्यक्ति विशेष मात्र के द्वारा जाति की तरह वृत्ति के उपराग से वृत्ति द्वारा विषय का प्रकाशन होता है। दृक् और दृश्य के अध्यास में भी किसी का किसी प्रति प्रकाश के लिये, तत् तत् सन्निकृष्ट इन्द्रियजन्य तत् तदाकार वृत्ति आवश्य भेद आपको विज्ञानवादियों की तरह तत् वस्तु के ज्ञान में तत् तत् अर्थ का अध्यास स्वीकार नहीं है, क्योंकि शुद्ध ज्ञान का स्व से भेद का अभाव है। उपाधि विशिष्ट चित् का भेद होने पर भी घट आदि की तरह उसके मिथ्या होने से उसमें अधिष्ठात्व सम्भव नहीं है। यदि कहें कि वृत्ति से पूर्व आध्यासिक सम्बन्ध होने पर भी प्रकाश नहीं होगा, क्योंकि वृत्ति के द्वारा आवरण भङ्ग होने से ही चित् को प्रकाशकत्व होता है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते। चरम साक्षात्कार से पहले शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होने तथा अभिव्यक्त घटावच्छिन्न चैतन्य के मिथ्या होने से आत्माश्रय दोष की आपत्ति आने से उसमें अधिष्ठानत्व सम्भव नहीं है। यदि कहें कि शुद्ध विषयक तूला अविद्या

स्याधिष्ठानत्वे प्रयोजकतया ज्ञातविशेषवत्त्वस्य तत्प्रयोजकत्वासम्भवात् पुरुषो न वेति संशयधर्मिणः स्थाणोरप्यन्यत्र ज्ञातस्थाणुत्वरूपविशेष-

---

प्रकृतेसाधिष्ठानत्वाभावेनाध्यस्तत्वाभावो विश्वस्मिन् सिद्ध्यति। एतेन मिथ्यात्वसाधकानुमानमपाकृतं भवति। **न तु तथास्तीति।** साधिष्ठानं न त्वस्तीत्यर्थः। अधिष्ठानत्वप्रयोजकरूपाभावेधिष्ठानत्वाभावं साधयति—**सामान्यत इति।** ब्रह्म यदि सामान्येन ज्ञातं सद्विशेषेणाज्ञातं स्यात्तदाऽधिष्ठानं स्यात्, दृष्टञ्चैतत्—इदंरजतमित्यत्रेदन्त्वरूपसामान्यधर्मो रजतत्वस्य साधकः शुक्तौ वर्तते, शुक्तित्वञ्च विशेषधर्मो तस्य बाधक इति तस्या अधिष्ठानत्वमुपपद्यते नैवं ब्रह्मणि सम्भवति।

की निवृत्ति होने पर भी घटाकार वृत्ति से तूला अविद्या की निवृत्ति से घट प्रकाश की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते। घटाकार वृत्ति द्वारा विषयीकृत चेतन को सत्य मानने पर दृश्यत्व का व्यभिचार होगा और मिथ्यात्व होने पर उसमें अध्यस्त से अधिक सत्ता का अभाव होने से उसका अधिष्ठानत्व सम्भव नहीं होगा क्षुद्र अज्ञान की निवृत्ति होने पर भी महान् अज्ञान से आवृत्त का प्रकाशत्व भी नहीं होगा। दूसरी बात प्रकाशक चैतन्य में प्रमात्व है या तद्भिन्नत्व में? ऐसी आशंका होती है—प्रथम पक्ष में चित् के दोष से अजन्य होने से उस विषय के सत्यत्व की आपत्ति से वह असत्य के प्रति अधिष्ठान नहीं होगा।

द्वितीय पक्ष में उसे दोषजन्य होने से उसमें स्वयं अधिष्ठानत्व का योग नहीं होगा यदि कहें कि दोषजन्यत्व प्रमात्व में प्रयोजक नहीं है, क्योंकि चित् सर्वत्र दोषजन्य है, किन्तु दोषाजन्यवृत्त्यवच्छिन्नत्व प्रमात्व में प्रयोजक है, प्रकृत में उसका अभाव होने से विषय में सत्यता नहीं होगी तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण दोष से अजन्यवृत्त्यवच्छिन्न के मिथ्या होने पर घटादि के अध्यास का असम्भव होने के कारण वह घटादि का प्रकाशक नहीं होगा यदि कहें कि ज्ञान और ज्ञेय में निश्चित संयोग समवाय आदि सम्बन्ध के अभाव होने से कोई कल्पित सम्बन्ध ही स्वीकार करना होगा, वह सम्बन्ध आध्यासिक ही होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण ज्ञान और ज्ञेय के प्रसिद्ध सम्बन्ध से अतिरिक्त सम्बन्ध स्वीकार करने पर अपने ही न्याय का विरोध होगा, यही कहते हैं—**''ध्वंसादेः''** इस ग्रन्थ से। अपने न्याय के विरोध का उदाहरण देते हैं—'अतीतादिना'

वत्त्वात्। ननु तत्राज्ञातविशेषवत्त्वमप्रयोजकं विशेषवत्त्वेनाज्ञातत्वस्यैव लाघवेन प्रयोजकत्वात्, तस्मात् स्वरूपेण ज्ञातात् पूर्णानन्दत्वादिनाऽज्ञा-

सामान्यतो ज्ञातत्वे सति विशेषेणाज्ञातत्वं यदधिष्ठानत्वप्रयोजकमभिहितं तद्विरुद्ध-योर्नि:सामान्यत्वनिर्विशेषत्वयोर्धर्मयोस्सत्वादिति भाव:। स्वरूपेण ज्ञातत्वे सति विशेषेणाज्ञातत्वमेवाधिष्ठानत्वे प्रयोजकं न तु ज्ञातविशेषवत्त्वं तस्य संशयधर्मिण्यति-प्रसक्तत्वादित्यभिप्रायमनुसृत्याह—**ज्ञातविशेषवत्त्वस्येति।** तत्प्रयोजकत्वासम्भवात्= अधिष्ठानप्रयोजकत्वासम्भवात्। यद्युक्तरूपस्याधिष्ठानत्वे प्रयोजकत्वं स्यात्तदा स्थाणावपि पुरुषत्वस्याध्यासापत्तिरित्याह—**पुरुषो न वेति।** यत्र धर्मिणि यस्याध्यासस्तत्र धर्मिणि तस्याज्ञातविशेषवत्त्वमधिष्ठानत्वे न प्रयोजकमित्याशङ्कते—**नन्विति।** यद्यपि स्थाणुत्वमन्यस्मिन्स्थाणौ ज्ञातमपि संशयधर्मिणि स्थाणावज्ञातमित्यज्ञातविशेषवत्त्वमक्षतम्, तथापि भ्रमधर्मिणि ज्ञातविशेषस्यान्यत्राज्ञातत्वेऽपि भ्रमानुपपत्तेस्तत्राज्ञातेत्यवश्यं वाच्यं तथा च गौरवमिति भाव:। यदुक्तं स्वरूपेण ज्ञातत्वे सति विशेषरूपेणाज्ञातत्वमधिष्ठानत्वप्रयोजकं रूपं तदेव प्रकृते दर्शयति—**तस्मादिति।** स्वरूपस्य विशेषानतिरेकान्निर्विशेषस्य ब्रह्मण: स्वरूपेण ज्ञातत्वे

यहाँ से लेकर सम्बन्धेन इत्यन्त ग्रन्थ से इस प्रकार अतीतादिना ध्वंसादे: सम्बन्धेन ऐसी योजना है, मिथ्यात्व लक्षणान्तर्गतस्य का भाव है कि प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्।

परस्पर अध्यासमूलक सभी प्रमाण प्रमेय व्यवहार प्रवृत्त हैं—यह मायावादियों का सिद्धान्त है, इस प्रकार विषय प्रयोजन, अधिकारी, इनका प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार से अन्तर्गत होने से इन सबकी अध्यास की महिमा से व्यवस्था हो सकती है, फिर तो शास्त्र का विषय प्रयोजन आदि की सिद्धि होगी, फिर तो शास्त्रम् आरब्धव्यम् विषय प्रयोजनत्वात् भोजनादिवत् की तरह, ऐसा सोचकर प्रतिवादी शङ्का करता है।

(यदि कहें कि हमारे सिद्धान्त के अधिकारी आदि समस्त व्यवहार अज्ञानप्रयुक्त अध्यासपूर्वक प्रमाण प्रमेय व्यवहार के अन्तर्गत होने से उक्त हों सका तो, कोई अवकाश नहीं है, हमारे यहाँ अध्यास के माहात्म्य से ही सभी विरोधों का समाधान हो जाता है, तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि अधिष्ठान, आरोप्य, लक्षण, प्रमाण आदि सामग्री के अभाव तथा दृक तथा दृश्य के आध्यासिक सम्बन्ध की अनुपपत्ति आदि के कारण भी अध्यास संभव नहीं है। अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय के आध्यासिक सम्बन्ध अनुपपन्न होने से अध्यास सिद्ध नहीं होगा। अब यहाँ अध्यास

तादधिष्ठानत्वं उपपन्नमिति चेन्न, स्वरूपतो ज्ञातस्य निर्विशेषस्य विशेषेणाज्ञातत्वासम्भवात्॥ २८॥

विशेषेणाज्ञातत्वमसम्भवादुक्तिकं ज्ञातत्वाज्ञातत्वयोर्विरोधात् तथा चोक्तस्याधिष्ठानत्वप्रयोजकरूपस्य ब्रह्मण्यसत्त्वान्न तस्याध्यासाधिष्ठानतोपपद्यत इत्याशयेन परिहरति—**नेति**। निर्विशेषे ब्रह्मण्यज्ञातविशेषधर्मवत्त्वं तव मते नोपपद्यत इत्यर्थः ।।२८।।

के अभाव का साधक तर्क प्रस्तुत करते हैं—इदं विश्वं यदि अध्यस्तं स्यात् तर्हि साधिष्ठानं स्यात्। यदि यह विश्व अध्यस्त होता तो अधिष्ठान सहित होता। अधिष्ठान में अध्यास होता है, अध्यस्तत्व का आपादक साधिष्ठानत्व आपाद्य है। आपाद्य के व्यतिरेक के निश्चय से आपादकाभाव की सिद्धि तर्क का फल है। प्रकृत में साधिष्ठानत्व के अभाव से विश्व में अध्यस्तत्वाभाव सिद्ध होता है। एतावता मिथ्यात्व साधक अनुमान अप्राकृत होता है। यहाँ अधिष्ठान नहीं है, कारण सामान्यरूप से ज्ञात होकर जो विशेषरूप से अज्ञात होता है, वही अध्यास का अधिष्ठान होता है, ब्रह्म यदि सामान्यरूप से ज्ञात हो, विशेषरूप से अज्ञात तब वह अधिष्ठान हो सकता, जैसे 'इदं रजतम्' यहाँ शुक्ति में सामान्य धर्म है—इदन्त्व विशेष धर्म है, शुक्तित्व उसका जो विशेष धर्म है—शुक्तित्व अज्ञात है, तभी भ्रम होता है। शुक्तित्व का ज्ञान हो जाय तब इदं रजतम् भ्रम हो नहीं सकता। इस प्रकार यहाँ तो शुक्ति अधिष्ठान सही है, ऐसा ब्रह्म में संभव नहीं है। सामान्य तो ज्ञातत्व होकर विशेषण अज्ञातत्व जो अधिष्ठानत्व प्रयोजन धर्म है, वे दोनों धर्म ब्रह्म के नहीं है, बल्कि उसके विरुद्ध निःसामान्यत्व तथा निर्विशेषत्व धर्म ब्रह्म के है, क्योंकि आप मायावादी के मत में ब्रह्म में कोई धर्म मान्य नहीं, ब्रह्म निर्विशेष है। ज्ञात विशेषवत्त्व में प्रयोजकत्व संभव नहीं। अन्यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वा यहाँ संशयधर्मी (संशयाधार) स्थाणु के अन्यत्र अर्थात् सन्देहाभाव स्थल के जहाँ स्थाणुत्व का निश्चय है। ज्ञात स्थाणुत्वरूप विशेषवत्त्व है, फिर तो यहाँ संदेह स्थल में भ्रमत्वापत्ति होगी। यदि कहें कि अज्ञात विशेषवत्त्व प्रयोजक नहीं, किन्तु विशेषवत्त्वेन अज्ञातत्व ही लाघवतया प्रयोजक हैं, इस तरह ब्रह्म स्वरूपतः ज्ञात है, पर पूर्णानन्दत्व आदि रूप में अज्ञात होने से उसमें अधिष्ठानत्व भली-भाँति हो सकता है तो ऐसा नहीं कह सकते। स्वरूपतः ज्ञात निर्विशेष तत्त्व का विशेषतया अज्ञातत्व असंभव है, क्योंकि उसमें कोई विशेष है ही नहीं ।।२८।।

न च स्वरूपतो ज्ञातस्य धर्मविषयकमेवाज्ञानं स्थाणुत्वादेर्व्यक्त्यन्तरे ज्ञातत्वेऽपि भ्रमस्य विशेषव्यक्तिनिष्ठत्वेनाज्ञातत्वात् स्थाणौ पुरुषत्वोपपत्तिः। स्वरूपेतरस्वप्रकाशत्वादेस्तव पक्षे ब्रह्मण्यसम्भवात्। ननु स्वप्रकाशत्वादिकं कल्पितव्यक्तिभेदेन सामान्यं पूर्णानन्दत्वादिर्विशेष

वज्रोत्तेजिका— एकस्य वस्तुनो ज्ञातत्वमज्ञातत्वञ्च नोपपद्यते तयोर्विरुद्धत्वादिति यत् प्राग् दूषणमभिहितं तदुद्धरति-**स्वरूपत इति**। स्वरूपेण ज्ञाते ब्रह्मणि धर्मविशेषो न ज्ञायत इति विशेषधर्मस्य ज्ञानाभाव उपपद्यते, अतस्तस्याधिष्ठानत्वं सम्भवति, अमुमर्थं दृष्टान्तेन परबुध्यारूढंकरोति—**स्थाणुत्वादेरिति**। अन्यत्र स्थाणुत्वस्य ज्ञातत्वेऽपि भ्रमविषयीभूततद्धर्मिण्यज्ञातत्वेन तस्य भ्रमं प्रत्यधिष्ठानतोपपत्तिरित्यर्थः। न चेत्यस्य पुरुषत्वोपपत्तिरित्यत्रान्वयः। न हि त्वन्मते स्वरूपातिरिक्तंस्वप्रकाशत्वादिकमस्ति, अन्यथा निर्विशेषत्वं व्याहन्येत, तथा च स्वरूपतो ज्ञात इत्युक्तौ विशेषतो ज्ञात इत्युक्तप्रायमित्यर्थः। सन्ति च ब्रह्मणि कल्पिताःसामान्यधर्मा विशेषधर्माश्च तानादाय ब्रह्मणोऽधिष्ठानत्वमुप-पन्नमिति शङ्कते—**नन्विति**। बाधज्ञानीयविषयतावच्छेदकं, यद्रूपं तद्रूपेणाज्ञातत्वमेव भ्रमाधिष्ठानतायां प्रयोजकं, तद्रूपञ्च शुक्तित्वादिकमेव प्रकृते चाधिष्ठानताप्रयोजकता-वच्छेदककोटौ कल्पितस्वयंप्रकाशत्वादिकं तच्च न बाधज्ञानीयविषयतावच्छेदकं

हिन्दी अनुवाद— अब पहले जो कहा गया था कि एक ही वस्तु में ज्ञातत्व एवं अज्ञातत्व नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें विरोध है उस दोष का परिहार करते हैं— 'न च स्वरूपतः' इत्यादि से अर्थात् स्वरूप से ज्ञात ब्रह्म में धर्मविशेष नहीं जाना जाता, इस प्रकार विशेष धर्म का ज्ञानाभाव उपपन्न होता है, अतः उसका अधिष्ठानत्व संभव है, इस बात को दृष्टान्त द्वारा दूसरे को समझाने का प्रयास करते हैं— 'स्थाणुत्वादे व्यक्त्यन्तरे' अर्थात् स्थाणुत्व अन्यत्र ज्ञात होनेपर भी भ्रम के विषयीभूत धर्मी में अज्ञात होने से उसका भ्रम के प्रति अधिष्ठानत्व संभव है तो ऐसा भी नहीं कह सकते। आपके मत में स्वरूप से इतर स्वप्रकाशत्व आदि धर्म ब्रह्म में असंभव है, अन्यथा निर्विशेषत्व का व्याघात होगा, इस प्रकार स्वरूपतः ज्ञात है, इतना कहने से विशेषरूप से ज्ञात है, यह आपसे आप स्पष्ट हो जाता है। अब कहते हैं कि हमारे यहाँ ब्रह्म में कल्पित सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म है, उन्हें लेकर ब्रह्म में अध्यासाधिष्ठानत्व संभव है। स्वप्रकाशष्वादिकम् ननु इत्यादि। तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि बाधज्ञानीय विषयतावच्छेदक जो रूप होता है, उस रूप से अज्ञातत्व ही भ्रमाधिष्ठानता में प्रयोजक होता है, वह रूप है, शुक्तित्व आदि प्रकृत में अधिष्ठानता प्रयोजकतावच्छेदक कोटि में है, कल्पित स्वयं प्रकाशत्वादि, वह

इति चेन्न, अज्ञानकल्पितस्याज्ञानतत्त्वज्ञानयोरविषयत्वाद् बाधकज्ञानेन विषयीकर्तव्यस्याज्ञातधर्मस्यैवाधिष्ठानत्वे प्रयोजकत्वाच्च। स्वप्रकाशत्वाद्यारोपं प्रति स्वप्रकाशत्वाद्यन्तरस्य प्रयोजकत्वेऽनवस्था प्रसङ्गाच्च। पूर्वपूर्वाज्ञानकल्पितं ब्रह्मोत्तरोत्तराज्ञानाश्रयो विषयश्चेति ब्रह्मणोऽपि

यच्च बाधज्ञानीयविषयतावच्छेदकं तात्त्विकं स्वप्रकाशानन्दपरिपूर्णत्वादिकं तच्च नाधिष्ठानत्व प्रयोजकतावच्छेदकमित्येकरूपाभावान्नकथमपि ब्रह्मणो भ्रमाधिष्ठानत्वं सिद्ध्यति, तदसिद्धावध्यासासिद्धिः, तदसत्त्वे विषयप्रयोजनादीनामसिद्धिः, तदसिद्धौ च नारब्धव्यं मीमांसाशास्त्रमित्याशयेनोक्तशङ्कांपरिहरति—**नेति**। यथा शुक्तित्वप्रकारकज्ञानेन शुक्तित्वाप्रकारकज्ञानं निवर्त्यते, न च तथा प्रकृते सम्भवति न हि तात्त्विकस्वप्रकाशत्वज्ञानेन कल्पितस्वप्रकाशत्वज्ञानस्य निवृत्तिर्दृष्टचरा श्रुता वा, अन्यूनसत्ताकत्वेनैव विपरीतज्ञान योर्निवर्त्यनिवर्तकभावस्य सिद्धत्वादिति भावः। स्वप्रकाशत्वाद्यारोपं प्रति स्वप्रकाशत्वस्य प्रयोजकत्वे आत्माश्रयापत्तिः, स्वप्रकाशत्वान्तरस्य प्रयोजकत्वे त्वनवस्थाप्रसङ्गः। कल्पितसामान्यधर्मसिद्धौ सत्यामधिष्ठानतासिद्धिस्तत्सिद्धौ कल्पितसामान्यधर्मसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयापत्तिश्चेत्याह—**स्वप्रकाशत्वाद्यारोपं प्रतीति**। ननु कल्पितसामान्यविशेषाणां प्रवाहतोऽनादित्वमभ्युपेयमिति नोक्तदोषः पदमादधातीत्यत आह—**पूर्वेति**। भ्रमाधिष्ठानत्वे प्रयोजकान्तरमाशङ्क्य परिहरति—**न चेति**।

बाधज्ञानीय विषयतावच्छेदक नहीं है। जो बाधज्ञानीय विषयतावच्छेदक है, तात्त्विक, स्वप्रकाशानन्द परिपूर्णत्वादि, वह अधिष्ठान प्रयोजकतावच्छेदक नहीं है, इस प्रकार एकरूपता नहीं होने से ब्रह्म किसी भी हालत में भ्रम का अधिष्ठान सिद्ध नहीं होता। अधिष्ठान सिद्ध नहीं होनेपर अध्यास की सिद्धि नहीं होगी, अध्यास के अभाव के विषय प्रयोजन आदि की असिद्धि होगी, विषयादि के अभाव में मीमांसा शास्त्र के आरम्भ का वैयर्थ्य होगा, जैसे शुक्तित्वप्रकारक ज्ञान से शुक्तित्वाप्रकारक ज्ञान की निवृत्ति होती है, वैसा प्रकृत में संभव नहीं है, तात्त्विक स्वप्रकाश ज्ञान से कल्पित स्वप्रकाशत्व ज्ञान की निवृत्ति न कहीं देखी गई है ना ही सुनी गई है। अन्यूनसत्ताकत्व रूप से ही विपरीत ज्ञानद्वय में निवर्त्य निवर्तक भाव सिद्ध है यहभाव है। स्वप्रकाशत्व आदि आरोपों के प्रति स्वप्रकाशकत्व को प्रयोजक माननेपर आत्माश्रय दोष की आपत्ति, स्वप्रकाशत्वान्तर को प्रयोजक माननेपर अनवस्था का प्रसंग होगा।

कल्पित सामान्य धर्म की सिद्धि होनेपर अधिष्ठानता की सिद्धि और अधिष्ठानता की सिद्धि होनेपर कल्पित सामान्य धर्म की सिद्धि इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति भी होगी, यह कह रहे हैं—"स्वप्रकाशत्वाद्यारोपं प्रति---अनवस्था

कल्पितत्वानित्यत्वादिप्रसङ्गाच्च। ननु पूर्णानन्दत्वेनाज्ञातं स्वरूपेण ज्ञातमिति चेन्न, अज्ञानाकल्पितपूर्णानन्दत्वादेस्तु वास्तवत्वात्। न च भ्रमविरोधिज्ञानाभावस्तत्र तन्त्रं न तु विशेषाज्ञानमवच्छेदकधर्मदर्शनादेश्च, व्यावृत्ताकारस्यैव भ्रमविरोधित्वात्। नहि बाधकधीविषयो भ्रमकालेऽज्ञातो

तत्र=अधिष्ठानत्वे। तन्त्रम्=प्रयोजकम्। तत्र हेतुमाह—**अवच्छेदकेति**। आत्मत्ववान्, देहत्वाभाववान्, आत्मत्ववानात्मा इत्याकारकावच्छेदकधर्मदर्शनस्येत्यर्थः। तथा चात्मविशेष्यकदेहत्वप्रकारकभ्रमं प्रत्यात्मत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितदेहाभावत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयविशिष्टात्मत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितात्मत्वावच्छिन्न विशेष्यताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य प्रतिबन्धकता वाच्या भ्रमविरोधिनस्तज्ज्ञानस्येदानीं सत्त्वान्न ब्रह्मणो भ्रमाधिष्ठानत्वमुपपद्यत इति भावः। यथा शुक्तिविशेष्यकरजतत्वप्रकारकभ्रमं प्रति शुक्तित्ववान् रजतत्वाभाववानित्याकारकनिश्चय विशिष्टशुक्तित्ववती शुक्तिरित्याकारकनिश्चयस्य विरोधिता, एवं रजतत्वात्यन्ताभाव प्रकारकशुक्तिधर्मिकनिश्चयस्य, रजतत्वाभावव्याप्यवत्तानिश्चयस्य चोक्तभ्रमं प्रति विरोधिता,

प्रसङ्गाच'' ग्रन्थ से। यदि कहें कि कल्पित सामान्य और विशेष धर्मों का प्रवाह रूप से अनादित्व स्वीकार कर उक्त दोष नहीं होगा, इसपर कहते हैं कि पूर्व-पूर्व अज्ञान कल्पित ब्रह्म उत्तरोत्तर अज्ञान का आश्रय और विषय होने पर ब्रह्म में भी कल्पितत्व और अनित्यत्व आदि दोषों का प्रसङ्ग होगा। यदि कहें कि ब्रह्म पूर्णानन्दत्वेन अज्ञात है और स्वरूपेण ज्ञात है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, अज्ञान से अकल्पित पूर्णानन्दत्व आदि तो वास्तव है। यदि कहें कि भ्रम विरोधी ज्ञानाभाव अधिष्ठानत्व का प्रयोजक है न कि विशेष का अज्ञान। इसमें हेतु कहते हैं—''अवच्छेदकधर्मदर्शनादेश्च'' अर्थात् आत्मत्ववान् देहत्वाभाववान् आत्मत्ववान आत्मा इत्याकारक अवच्छेदक धर्मदर्शन का यह अर्थ है। इस तरह आत्मविशेष्यक देहत्व प्रकारक भ्रम के प्रति आत्मत्वनिष्ठ प्रकारतानिरूपित देहाभावात्वावच्छिन्न् विशेष्यताशाली निश्चय विशिष्ट आत्मत्व निष्ठ प्रकारतानिरूपित आत्मत्वावच्छिन्न विशेष्यताशाली निश्चयत्वावच्छिन्न में प्रतिबन्धकता कहनी पड़ेगी। भ्रम विरोधी उस ज्ञान के इस समय होने से ब्रह्म में भ्रम का अधिष्ठानत्व नहीं उपपन्न होता है। जैसे शुक्ति विशेष्यक रजतत्व प्रकारक भ्रम के प्रति शुक्तित्ववान् रजतत्वाभाववान् इत्याकारक निश्चय विशिष्ट शक्तित्ववती शुक्तिः इत्याकारक निश्चय विरोधी है, इसी प्रकार रजतत्वान्ताभाव प्रकारक शुक्ति धार्मिक निश्चय तथा रजतत्वाभावव्याप्यवत्ता निश्चय भी उक्त भ्रम के प्रति विरोधी है, इसी प्रकार आत्म

धर्मो ब्रह्मणि तवास्ति, तत्रासद्विशेषज्ञानाभावस्य बाधकालेऽपि सत्त्वात्तस्मादधिष्ठानस्य दुर्निरूप्यतया तत्प्रयोज्याध्यासस्य सर्वथाऽसिद्धिरेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीपराभिमताध्यासगिरेरधिष्ठानशिखरनिपातः ॥ ३ ॥

तद्वदात्मविशेष्यकदेहत्वप्रकारकभ्रमं प्रत्यात्मविशेष्यकदेहत्वाभावप्रकारकनिश्चयस्येव देहत्वाभावव्याप्यवत्तानिश्चयस्यापि विरोधित्वमिति सूचनायावच्छेदकधर्म-दर्शनादेरित्यत्रादिपदमुपात्तम्। शुक्तौ रजतत्वस्य बाधकं नेदं रजतमितिज्ञानं किन्त्वियं शुक्तिरिति ज्ञानं, तद्विषयीभूतश्शुक्तित्वरूपो धर्मो भ्रमकालेऽज्ञातः शुक्तौ यथा वर्तते तथा बाधकज्ञानीयविषयतावच्छेदकधर्मो भ्रमकालेऽज्ञातो निर्विशेषे ब्रह्मणि तव मते नास्ति येन तस्याधिष्ठानत्वमुपपद्येतेत्याह—**नहीति**। नन्वसद्विशेषाज्ञानस्यैव भ्रमकारणत्वं वक्तव्यमित्यत आह—**तत्रेति**। बाधकालव्यावृत्तभ्रमकालीनाधिष्ठानत्वेऽसद्विशेषाज्ञानं न प्रयोजकं बाधकालेऽप्यसद्विशेषाज्ञानस्यैव सत्त्वेन तदानीमप्यधिष्ठानत्वव्यवहारः स्यादित्यर्थः ।।२९।।

इति पराभिमताध्यासगिरेरधिष्ठानशिखरनिपातस्य व्याख्या ॥ ३ ॥

विशेष्यक देह प्रकारक भ्रम के प्रति आत्मविशेष्य देहत्वाभाव निश्चय की तरह देहत्वाभावव्याप्यवत्ता निश्चय के विरोधित्व है, इसी बात को सूचित करने के लिये अवच्छेदकधर्मदर्शनादेः यहाँ आदि पद का उपपादन किया है।

शुक्ति में रजततत्व का बाधक 'न इदं रजतम्' यह ज्ञान नहीं, किन्तु यह शुक्ति है, यह ज्ञान बाधक है, इस ज्ञान का विषयभूत शुक्तित्वरूपधर्म-भ्रमकाल में शुक्ति में जैसे अज्ञात होता है, उस प्रकार बाधक ज्ञानीय विषयेतावच्छेदधर्म भ्रम काल में अज्ञात होकर निर्विशेष ब्रह्म आपके मत में नहीं है, जिससे कि वह भ्रम का अधिष्ठान हो सके। यदि कहें कि असत् विशेष अज्ञान को ही भ्रम का कारण मान लेंगे इसपर कहते हैं कि बाधकाल व्यावृत्त भ्रमकालीन अधिष्ठानत्व में असत् विशेषाज्ञान प्रयोजक नहीं होगा, क्योंकि असत् विशेष का अज्ञान बाधकाल में भी विद्यमान है, उस काल में भी अधिष्ठानत्व व्यवहार होगा। इस प्रकार मायावादी के मत के अधिष्ठान का निरूपण ही असंभव होने से तज्जन्य अध्यास की सर्वथा असिद्धि ही है।

इस प्रकार मायावादी सम्मत अध्यासरूपी गिरि के अधिष्ठानरूपी शिखर का निपात हुआ ।।२९।।

हिन्दी अनुवाद—

आरोप्य की असिद्धि से अध्यास की असिद्धि

(४) तस्यैवारोप्योपपत्ति शृङ्गनिपातः

अथारोप्यासिद्ध्याप्यध्यासासिद्धिः, यद्यदारोपितं तत्तत्सप्रधानं दृष्टं शुक्तिरूप्यादिवत्, यन्नैवं तन्नैवं शशशृङ्गवदित्यन्वयव्यतिरेकव्याप्तेः सर्ववादिसम्मतत्वात्। ननु प्रधानं सजातीयमस्त्येव

वज्रोत्तेजिका— अध्यासस्याधिष्ठानासिद्ध्याध्यासस्य सिद्धिर्निरस्ता सम्प्रत्यारोप्यासिद्धिनिबन्ध-नामध्यासस्यासिद्धिं व्युत्पादयितुं तर्कान्तरमुपन्यस्यति— **यद्यदारोपितमिति। तत्सप्रधानमिति**—आरोप्यप्रपञ्चस्य सत्तापेक्षयाऽधिकसत्ताकं सत्यभूतमिति यावत्। यथा शुक्तौ रूप्याध्यासार्थमर्थक्रियाकार्यापणस्थं रजतं प्रधानं सत्यमङ्गीक्रियते, एवमस्य प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वाङ्गीकार एतत्प्रपञ्चासाध्यार्थक्रियाकारिप्रपञ्चान्तरमङ्गीकार्यं तस्य सत्यभूत प्रपञ्चान्तरस्य त्वन्मतेऽसत्त्वान्न विश्वस्मिन् कल्पितत्वं सिध्यतीति भावः। उक्ततर्के सप्रधानत्व इष्टापत्तिमाह—**नन्विति।** प्रधानं नाम सजातीयं तच्च पूर्वपूर्वप्रपञ्चसजातीयस्योत्तरोत्तरप्रपञ्चे सत्त्वात्तदध्यासो ब्रह्मण्युपपादयितुं शक्यत एवेति भावः। सत्यो योऽर्थस्तद्विषयकसंस्कारोऽध्यासे कारणं तव मते सत्यस्य प्रपञ्चस्याभावेन तद्विषयकसंस्कारानुपपत्तेरित्यत आह—**अध्यास इति।** प्रमाणजन्य एव संस्कारो

अधिष्ठान की असिद्धि से अध्यास की सिद्धि का खण्डन हुआ। अब आरोप्य की सिद्धि न होने से अध्यास की असिद्धि का वर्णन करते हैं, इस बात को तर्क से खण्डन करते हैं—कहते हैं—यत् यत् आरोपितम् तत् तत् सप्रधानम् दृष्टम् शुक्तिरूप्यादिवत् यन्नैवं तन्नैवम्—यह अन्वयव्यतिरेकिव्याप्ति सर्ववादिसम्मत है। अर्थात् आरोप्य प्रपञ्च की सत्ता की अपेक्षया अधिक सत्तावाला सत्यभूत होता है, उदाहरण के लिये शुक्ति में रजत के अध्यास के लिये अर्थक्रियाकारी आपण बाजार में स्थित एक सत्य रजत स्वीकार करते हैं, अर्थात् कहीं एक सत्य रजत है, जिसका शुक्ति में अध्यास होता है—इसी प्रकार इस प्रपञ्च का मिथ्यात्व स्वीकार करनेपर ब्रह्म में प्रपञ्च के अध्यास के लिये अर्थक्रियाकारी कोई अन्य सत्य प्रपञ्च मानना पड़ेगा, ऐसा आपके मत में नहीं है, इसलिये विश्व का कल्पितत्व सिद्ध नहीं होता है। यदि कहें कि प्रधान अर्थात् सजातीय, वह तो उत्तरोत्तर प्रपञ्च के पूर्व-पूर्व सजातीय हैं ही, फिर तो ब्रह्म में अध्यास हो ही सकता है। यदि कहें कि सत्य विषयक संस्कार अध्यास का कारण है, आपके मत में सत्य प्रपञ्च है ही नहीं, इसलिये उससे संस्कार की उपपत्ति नहीं हो सकती। यदि कहें कि अध्यास अपने कारण के रूप में संस्कार

पूर्वपूर्वप्रपञ्चसजातीयस्योत्तरोत्तरप्रपञ्चाध्यासाङ्गीकारात्। अध्यासो हि स्वकारणतया संस्कारमपेक्षते न तु संस्कारविषयस्य सत्यत्वमनुपयोगात्। न हि प्रमाणजन्यस्यैव संस्कारस्याध्यासहेतुत्वमिति नियम इति चेन्न, अनाद्यविद्यादेरध्यस्तत्वासम्भवेन तात्त्विकत्वप्रसङ्गात्। न चाविद्याध्यासस्य प्रधानं विनैवाङ्गीकारान्नोक्तदोषयोग इति वाच्यम्। ब्रह्मणोऽपि प्रवाहानाद्यरोपापत्तेः। न च विश्वाधिष्ठानत्वेन ब्रह्मणः सत्यत्वमिति

भ्रमहेतुरतो विषयस्य सत्यत्वमावश्यकमित्यत आह—**प्रमाणेति**। संस्कारो नार्थजन्यो येन धानमपेक्षेत किन्त्वर्थज्ञानजन्यः, ज्ञानञ्च प्रमेव भ्रमोपीति भावः। अनाद्यविद्यायाः साजात्यं न कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वेति न तस्या अध्यासो ब्रह्मणि भवितुमर्हति तस्याः पारमार्थिकत्वं प्रसज्जेत, न चेष्टापत्तिर्द्वैतभङ्गभङ्गापत्तेरित्याह—**अनाद्यविद्येति**। अविद्यातिरिक्ताध्यासे प्रधानसजातीयत्वमपेक्षते न तु तदध्यास इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। उक्तनियममनादृत्य यथाऽविद्याया आरोपस्समर्थितस्तथा ब्रह्मणोऽप्यविद्यायां प्रपञ्चे वाऽऽरोपःस्यात्तथा सति तस्यासत्त्वमापद्येतेत्याह—**ब्रह्मणोऽपीति**। यद्यद्भ्रमाधिष्ठानं तत्तत्सत्यमितिनियममवलम्ब्योक्तशङ्कां परिहरन्नाह—**विश्वाधिष्ठानत्वेनेति**। सदधिष्ठानानङ्गीकारे शून्यवादस्य प्रसक्तिः स्यादिति भावः।

की अपेक्षा करता है न कि संस्कार की विषय की सत्यता का कोई उपयोग नहीं यदि कहें कि प्रमाण जन्य संस्कार ही भ्रम का हेतु होता है, अतः विषय की सत्यता आवश्यक है, इसपर मायावादी का कहना है कि प्रमाणजन्य संस्कार अध्यास का हेतु होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है, इन सबका खण्डन करते हुए कहते हैं, ऐसा नहीं कह सकते—'अनाद्यविद्यादे....' इत्यादि अनादि अविद्या आदि में अध्यस्त संभव नहीं होने से जगत् में तात्त्विकत्व का प्रसंग होगा, क्योंकि अनादि अविद्या का साजात्य ना ही कहीं देखा या सुना ही गया है, इस तरह उसका ब्रह्म में अध्यास नहीं हो सकता। जिसका अध्यास हो, उसका संस्कार होना चाहिए। संस्कार के विषय की सत्यता नहीं, संस्कार असत्यकामी हो सकता है। पूर्व-पूर्व अध्यस्त प्रपञ्च का संस्कार है, अतः वह आरोप्य हो सकता है। इस प्रकार पारमार्थिकत्व का प्रसंग होगा। इष्टापत्ति कह नहीं सकते अद्वैतभङ्ग की आपत्ति होगी। यदि कहें कि अविद्या के अतिरिक्त अध्यास में प्रधान (सत्य) सजातीय की अपेक्षा होती है, न कि अविद्या के अध्यास के अनादि अविद्या का अध्यास प्रधान के बिना ही होता

वाच्यम्। आरोपेऽधिष्ठानस्यैव हेतुत्वान्न तु तस्यापि, येन सत्त्वमपेक्षेत, अन्यथा शुक्त्यादेरपि सत्यत्वापत्तेः। न चाधिष्ठानस्य ज्ञानद्वारा भ्रमाहेतुत्वेऽप्यज्ञानद्वारा भ्रमहेतुत्वेन सत्त्वसिद्धिः, भ्रमोपादानाज्ञानविषयो ह्यधिष्ठानमज्ञानेन तु स्वाकल्पितं सत्त्वमेव विषयीक्रियत इति वाच्यम्;

आरोपेऽधिष्ठानमात्रं हेतुर्नसत्त्वमित्याह—**आरोप इति।** तस्यापि=सत्वस्यापि। येन=हेतुना। **अन्यथेति**—सत्यत्वाङ्गीकारे। अधिष्ठानसाक्षात्कारादृभ्रमस्य निवृत्तिर्जायतेऽतस्तं प्रति न तस्य हेतुता किन्त्वज्ञानद्वारेत्याह—**अधिष्ठानस्येति।** सत्त्वसिद्धिः=असतो हेतुत्वं नोपपद्यतेऽतोऽधिष्ठानस्य सत्यत्वं सिद्ध्यति। अधिष्ठाने सिद्धं यत्सत्त्वं तच्चाज्ञानाकल्पितमित्याह—**भ्रमोपादानेति।** अज्ञानकल्पितं वस्तु नाज्ञानस्य विषयो भवितुमर्हतीत्याह स्वकल्पितस्येति। तथा च ब्रह्मण आरोपापत्तिर्दुर्वारैवेति भावः। एकत्र विद्यमानस्य वस्तुनोऽन्यत्रारोपो भवतीति नियमेन प्रधानस्य सत्त्वमावश्यकमित्याशयेनाह—**अपिचेति।** असतः=तुच्छस्य। उक्तनियमानभ्युपगमे बाधकं दर्शयति—**नहीति। तद्विषयकप्रतीतिमात्रमिति**—आरोपविषयकप्रतीतिमात्रमित्यर्थः। मात्रपदं स्वयं व्याचष्टे **नत्विति।** तद्विषयस्य=आरोपविषयस्य। **असत इति।** ज्ञानत्वं सद्विषयत्वव्याप्यमिति नियमेनासतो ज्ञानविषयत्वं न घटते, प्रतीतेः पूर्वं विषयस्यासत्त्वेन न कथमपीन्द्रियसन्निकर्षश्चेत्यर्थः।

है, तो ऐसा नहीं कह सकते। इस प्रकार तो जैसे अविद्या के आरोप (अध्यास) का समर्थन किया है, उसी प्रकार ब्रह्म के भी अविद्या या प्रपञ्च के अनादि अध्यास के आरोप की आपत्ति होगी। इस प्रकार असत्ता की आपत्ति होगी। यदि कहें कि ब्रह्म विश्व का अधिष्ठान है, इसलिये ब्रह्म सत्य है, क्योंकि जो-ज़ो भ्रम का अधिष्ठान होता है, वह-वह सत्य होता है, यह नियम है। सत् अधिष्ठान स्वीकार न करनेपर शून्यवाद की आपत्ति होती है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण आरोप में अधिष्ठान ही हेतु है, सत्यता नहीं। अर्थात् आरोपाधिष्ठान को सत्य होना जरूरी नहीं। अन्यथा शुक्ति आदि में सत्यता की आपत्ति होगी। यदि कहें कि अधिष्ठान का ज्ञान द्वारा भ्रम का अहेतु होनेपर भी अज्ञान द्वारा भ्रम का हेतु होने से सत्त्व की सिद्धि होगी, भ्रम का उपादान अज्ञान विषय अधिष्ठान अज्ञान से तो अपने द्वारा अकल्पित सत्त्व को ही विषय करता है तो ऐसा नहीं कह सकते, स्वकल्पित वस्तु का स्वद्वारा

स्वकल्पितस्य स्वेन विषयीकरणासम्भवेऽपि पूर्वपूर्वाज्ञानाकल्पितस्य ब्रह्मणो ह्युत्तरोत्तराज्ञानेन विषयीकरणसम्भवात्। अपि चासत आरोपासम्भवादेकत्र सत एवान्यत्रारोपनियमात्, न हि स्वरूपेणासतः शशशृङ्गादेरारोपोऽदृष्टश्रुतत्वात्। न चारोपे तद्विषयक-

---

दोषात्मककारणादेव प्रतीतिरुदेति नत्वर्थस्य सत्त्वमपेक्षत इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति।** दोषात्मकं कारणं सद्रूपम्? असद्रूपं वा? आद्येऽद्वैतव्याघातः। द्वितीये कारणत्वानुपपत्तिरित्यभिप्रेत्याह—**दोषात्मककारणेति।** सदेव कार्योत्पादकं नासदित्यत्र व्यभिचारमाशङ्क्य निराकरोति—**न चेति।** असच्चोपपादकमिति व्याहतम्, असतः कार्यकालेऽन्यतो विशेषे शून्यत्वहानिः, अविशेषे न नियमेन कार्यजन्म स्यादिति तदुक्तं श्रीमदुदयनाचार्य्यैः कुसुमाञ्जलौ प्रथमस्तवके—"अनुपाख्यस्य हेतुत्वे प्रागपि सत्त्वप्रसक्तौ पुनः सदातनत्वापत्तेरिति" अधिकन्तु तत्रैव द्रष्टव्यम्। असति

विषयीकरण असंभव होनेपर भी पूर्व-पूर्व अज्ञान से अकल्पित ब्रह्म का उत्तरोत्तर अज्ञान से विषयीकरण संभव है। इस प्रकार ब्रह्म के आरोप की आपत्ति दुर्वार ही होगी यह भाव है।

दूसरी बात असत् (तुच्छ) वस्तु का आरोप असंभव है। कहीं एक जगह सत् वस्तु का ही अन्यत्र आरोप होता है, यह नियम है। स्वरूप से असत् शशशृङ्ग गगन कुसुम आदि का आरोप (अध्यास) न कहीं देखा गया है, न ही सुना गया है। यदि कहें कि आरोप में तद्विषयक प्रतीतिमात्र अपेक्षित है, न कि उसकी सत्यता तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि असत् की प्रतीति संभव नहीं है। (कारणं ज्ञानत्वं सद्विषयव्याप्यम्) ऐसा नियम है। अतः असत् में ज्ञान विषयत्व घटित नहीं होता कारण विषय के असत् होने से उससे किसी प्रकार इन्द्रिय सन्निकर्ष नहीं होगा। दोषात्मक कारण से ही प्रतीति उदित होती है, इसलिये अर्थ की सत्ता की अपेक्षा नहीं होती, इसे ही कह रहे हैं—'न च रज्जौ' अर्थात् यदि कहें कि रज्जु के सर्प की प्रतीति की तरह प्रपञ्च की प्रतीति के भी दोषात्मक कारण मात्र अपेक्षित है, न कि विषय की सत्ता। तो ऐसा भी नहीं कह सकते, आपके मत के दोषरूप कारण भी तो असत्य ही है, इस प्रकार आपके पक्ष में असत् कारण से प्रतीति लक्षण कार्य की उत्पत्ति असंभव है। कार्य में कारण सापेक्षत्व नियम है और असत् वस्तु का कहीं

प्रतीतिमात्रमेवापेक्षितं न तु तद्विषयस्य सत्यत्वमपीति वाच्यम्। असतः प्रतीतेरेवासम्भवात्। न च रज्जौ सर्पप्रतीतेरिव प्रपञ्चप्रतीतेरपि दोषमात्रमेव कारणमपेक्षितं न तु विषयसत्त्वमपीति वाच्यम्। दोषात्मककारण-स्याप्यसत्त्वसाम्येन तव पक्षे प्रतीतिलक्षणकार्योत्पत्तेरसम्भवात्। कार्यस्य कारणसापेक्षत्वनियमात् कुत्राप्यसतः कारणत्वासम्भवाच्च। न

कार्यानुकूलशक्तिमत्त्वलक्षणं कारणत्वमेव दुर्घटमित्याह—**स्वरूपेणेति**। अन्यथा कार्यानुकूलशक्त्यधिकरणत्वेन सद्रूपत्वं तस्य प्रसज्जेत इति भावः। उक्त व्यभिचारं निरस्यति—भ्रमस्थल इति। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। असतः सर्पस्य कारणत्वस्वीकार इति तदर्थः। कथं पुनरसतः कारणत्वमवसेयमिदमस्मान्नियतं प्राक् सदिति यत्र बुद्धिस्तत्कारणत्वेन व्यवह्रियते तच्च त्वया नानुमन्यत इत्याह—**कारणमात्रस्येति**।

भी कारणत्व संभव नहीं है। यदि कहें कि असत् सर्प से भयकम्प आदि देखा गया है, फिर तो कार्य के लिये कारण की सत्तापेक्षत्व नियम का व्यभिचार हो गया तो ऐसा नहीं कह सकते, स्वरूप से असत् वस्तु में कार्योत्पत्त्यनुकूल शक्तिमत्त्व लक्षण कारणत्व संभव नहीं है। भ्रम स्थल में भी कल्पित सर्प विषयक ज्ञान ही भयकम्प आदि का हेतु है न कि विषय। कारण सर्प के ज्ञान से रहित बालक का सत् सर्प दर्शन में भी भय आदि नहीं देखा जाता, बल्कि सर्प ग्रहण में उसकी प्रवृत्ति देखी जाती है, अन्यथा कारणमात्र में असत्त्व स्वीकार करनेपर कार्य की उत्पत्ति की कथा ही समाप्त हो जायेगी। ज्ञान के प्रति विषय की कारणता आवश्यक है, क्योंकि उत्कृष्ट सर्प आदि के दर्शन से भयानक भय आदि देखे जाते हैं, विषय को कारण न माननेपर तत्प्रयुक्त उत्कर्ष विधानरूप कार्य नहीं होगा, इसलिये ज्ञान के प्रति विषय को कारण मानने से ही उपपत्ति हो जाने से असद्विषयक ज्ञान को अतिरिक्त कारण की कल्पना में गौरव है, यही शङ्का करते हैं—''ननु असतो रज्जु सर्पादेः''

चासतोऽपि सर्पस्य भयकम्पादिकार्यदर्शनात्कार्यस्य कारणसत्तासापेक्षत्वनियमे व्यभिचार इति वाच्यम्। स्वरूपेणासतः कार्योत्पत्त्यनुकूलशक्तिमत्त्व-लक्षणकारणत्वासम्भवात्। भ्रमस्थलेऽपि कल्पितसर्पविषयकज्ञानस्यैव भयादिहेतुत्वं न विषयस्येति सर्पज्ञानाभाववतो बालस्य सत्सर्पदर्शनेऽपि भयाद्यदर्शनात्, प्रत्युत सर्पग्रहणे प्रवृत्तिदर्शनाच्च। अन्यथा कारणमात्रस्यासत्त्वाङ्गीकारे-कार्योत्पत्तिकथाया एवानवसरात्। नन्वसतो रज्जुसर्पादेस्तज्ज्ञानकारणत्वोपपत्तिरपि सुकरा भिन्नकारणाङ्गीकारे गौरवादिति चेन्न, तत्रापि दोषस्यैवासद्विषयकज्ञानकारणत्वेन भ्रमस्थलेऽप्यसद्विषयस्य सर्पस्य कारणत्वाभावात्। तस्मात्तव मत आरोप्यासिद्ध्याप्यध्यासासम्भवस्यावश्यकत्वादिति संक्षेपः॥ ३०॥

इति श्रीपराभिमताध्यासगिरेरारोप्यश‍ृङ्गनिपातः॥ ४॥

ज्ञानं प्रति विषयस्य कारणत्वमावश्यकमुत्कृष्टसर्पादिदर्शनाच्चोत्कृष्टभयादि दृश्यते विषयस्याकारणत्वे तदुत्कर्षानुविधानं कार्य्यं न स्यादिति ज्ञानं प्रति विषयस्य कारणत्वेनैवोपपत्तावसद्विषयकज्ञानस्य कारणान्तरत्वकल्पने गौरवमिति शङ्कते—**नन्विति**। असद्विषयकज्ञानं प्रति दोषस्यैव कारणत्वं न त्वसतो विषयस्य तस्यासतः कारणत्वासम्भवात्, अतः प्रपञ्चप्रतीतावपि दोषमात्रं कारणं यथा तद्वत् सर्पादिभ्रमं प्रत्यपि दोषकारणतयैवोपपत्तावसद्विषयस्य कारणत्वकल्पने मानाभावादित्याशयेन परिहरति—**नेति**। तत्रापि=प्रपञ्चप्रतीतावपि। दोषात्मककारणस्यासत्त्वसाम्येन तव पक्षे प्रतीतिलक्षणकार्योत्पत्तेरसम्भवात् कार्यस्य कारणसत्तासापेक्षत्वनियमादिति भावः। उपसंहरति—**तस्मादिति॥ ३०॥**

इति पराभिमताध्यासगिरेरारोप्यश‍ृङ्गनिपातस्य व्याख्या॥ ४॥

इत्यादि ग्रन्थ द्वारा, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, प्रपञ्च की प्रतीति में भी दोष के ही असत् विषयक ज्ञान के कारण होने से भ्रमस्थल में भी असत् विषय सर्प के कारणत्व का अभाव है। इसलिये आपके मत के आरोप्य की असिद्धि से ही अध्यास असंभव है, संक्षेप में इतना ही। इस प्रकार अध्यासरूपी गिरि आरोप्यरूपी शिखर का निपात हुआ ।।३०।।

(५) अध्याससामग्र्युपपत्तिशिखरनिपातः

अथाध्याससामग्र्यभावादपि तदसिद्धिः संस्कारसादृश्यसम्प्रयोगादीनामध्यासेह्यावश्यकानामभावेन कथमध्यासोपपत्तिरिति भावः। तत्र संस्कारस्यानादित्वेऽधिष्ठानसमसत्ताकत्वेन तस्य तात्त्विकतापत्तेर्दुर्वारत्वम्। न च स्वेनाध्यस्त एव स्वारोपहेतुरिति वाच्यम्। भ्रमात्पूर्वं कार्यानुमेय-

---

वज्रोत्तेजिका— यदि विश्वं कल्पितं स्यात्तदा प्रधानाधिष्ठानसादृश्योपेतं स्यान्न च तदङ्गीकर्तुं शक्यं, सादृश्यं हि गुणादिना वाच्यम्, तथा च जगदारोपाधिष्ठानस्य ब्रह्मणः प्रधानसादृश्यं वक्तव्यं तन्न सम्भवति निर्गुणे ब्रह्मणि गुणादिकृतसादृश्यं योगादतः प्रधानप्रतियोगिक-सादृश्यादिकारणसामग्र्यभावान्न विश्वाध्यासस्य ब्रह्मणि सम्भावनेत्याशयेनाह—**अथेति**। तदसिद्धिः=अध्यासासिद्धिः। सम्प्रयोगः=सम्यक् चक्षुः सन्निकर्षः। ननु कल्पादौ तत्पूर्वं प्रधान विश्वान्तराभावेन तद्भ्रमजन्यसंस्काराभावेन कल्पाद्ये भ्रमो न स्यात्, कल्पान्तरीयजगद्भ्रमजन्यसंस्कारात्कल्पाद्ये भ्रम उत्पद्यत इत्येवं परम्परया

हिन्दी अनुवाद—

अध्यास सामग्री के अभाव से

अब अध्यास की सामग्री के अभाव से भी अध्यास की असिद्धि दिखाते हैं।

तात्पर्य है कि यदि विश्व कल्पित होता तो अध्यास में प्रधान अधिष्ठान (ब्रह्म) के सादृश्य से युक्त होता, ऐसा स्वीकार कर नहीं सकते। कारण सादृश्य गुण आदि के द्वारा कहेंगे, वह निर्गुण ब्रह्म में संभव नहीं है, इस प्रकार प्रधान प्रतियोगिक सादृश्य आदि सामग्री के अभाव होने से ब्रह्म में विश्व का अध्यास संभव नहीं है। अध्यास के लिये संस्कार, सादृश्य, सम्प्रयोग आदि कारण आवश्यक है, इन सबका अभाव होने से अध्यास की उपपत्ति कैसे होगी? यह भाव है। सम्प्रयोग का तात्पर्य है, सम्यक् प्रकार से चक्षुःसन्निकर्ष। यहाँ भाव यह है कि जिसका संस्कार पहले से होता है, उसी का अध्यास होता है। सर्प का संस्कार पहले से है, अतः सर्प का अध्यास रज्जु में हो जाता है। कल्प के आदि में उससे पूर्व प्रधान विश्वान्तर के अभाव के तद्भ्रमजन्य संस्कार के अभाव के कारण कल्प के आदि में भ्रम नहीं

संस्कारस्याध्यस्तत्वाभावेनाध्यासकारणत्वासम्भवात्। न च संस्कारोऽ-ज्ञातो व्यावहारिकः स्वेनारोपितः स्वाध्यासहेतुरस्त्येवेति वाच्यम्। अज्ञातस्याध्यस्तत्वे मानाभावेन पारमार्थिकत्वप्रसङ्गात्॥ ३१॥

संस्कारस्यानादित्वं वाच्यम्, स च संस्कारोऽधिष्ठानगतएवातएवाधिष्ठानसमसत्ताकस्तथा सति तस्य सत्यत्वं स्वीकार्यं तथात्वेऽद्वैतव्याघात इत्याशयेनाह—**तत्रेति**। तेषु मध्य इत्यर्थः। संस्कारारोपं प्रति संस्कारेणाध्यस्तः संस्कार एव हेतुः न तस्य सत्यत्वमित्याशङ्क्य निरस्यति—**न चेति**। भ्रमरूपकार्ये सति यः संस्कारः पूर्ववृत्तस्तस्य संस्कारस्य कार्यानुमेयत्वं, कार्योन्नेयधर्माणां यथा कार्यमुन्नयनादिति वचनात्तथा चारोपात्प्राक् कार्यानुमेयस्य संस्कारस्याध्यत्वाभावेन कारणत्वं नोपपद्यत इत्याह—**भ्रमात्पूर्वमिति**। अनाहार्यस्मर्य-माणनिरुपाधिकभ्रमात्पूर्वं संस्कारस्य कारणत्वेन सत्यत्वं वाच्यं न तु तस्याध्यस्तत्वमिति भावः ।।३१।।

होगा, तब तो कल्पान्तरीय जगद् भ्रमजन्य संस्कार से कल्प के आदि में भ्रम उत्पन्न होता है, इस प्रकार परस्पर संस्कार का अनादित्व कहेंगे। वह संस्कार अधिष्ठान (ब्रह्म) गत ही है (क्योंकि आपके मत में जीव ब्रह्म ही है। इसलिये वह संस्कार अधिष्ठान समसत्ताक है। क्योंकि ब्रह्म अनादि और वह भ्रमजन्य संस्कार भी अनादि) इस प्रकार संस्कार के ब्रह्मरूप सत्ताक अनादि होने से उसकी सत्यता माननी होगी, फिर तो अद्वैत व्याघात स्पष्ट है। संस्कारस्यानादित्वे समसत्ताकत्वेन तात्त्विकतापत्ते... संस्कार की तात्त्विकता हो जायेगी, संस्कार एक पारमार्थिक तत्त्व हो जायेगा और अद्वैत का व्याघात होगा। यदि कहें संस्कार के आरोप के प्रति संस्कार से अध्यस्त संस्कार ही हेतु है, अर्थात् वह अनादि संस्कार भी तो अध्यस्त ही है, तब उसकी सत्यता कैसे होगी? अद्वैत व्याघात कैसे होगा? संस्कार सत्य होता तो अद्वैत व्याघात होता? तो ऐसा नहीं कह सकते, भ्रम से पूर्व कार्य से अनुमेय संस्कार में अध्यस्तत्व के अभाव होने से उसमें अध्यास कारणत्व संभव नहीं है। अर्थात् अनाहार्य स्मर्यमाण निरुपाधिक भ्रम से पूर्व संस्कार के कारण होने से उसका सत्यत्व कहना होगा, उसमें अध्यस्तत्व नहीं, यह भ्रम है ।।३१।।

किञ्च को वा संस्काराश्रयः शुद्धं ब्रह्म वा? जीवो वा? नाद्यः शुद्धत्वभङ्गात्, न द्वितीयस्तस्याध्यासकार्यत्वेनोत्तरभावित्वात्। किञ्च स्मर्यमाणारोपे सादृश्यज्ञानस्यापि हेतुत्वात् प्रकृते तु निर्विशेषस्याधिष्ठानस्य सादृश्याभावात्कथमध्यासः ''न तस्य प्रतिमाऽस्तीहे'' तिनिषेधश्रवणात्। न च कल्पितधर्मेण सादृश्यमिति

वज्रोत्तेजिका— भ्रमात्प्रागज्ञातस्य संस्कारस्य व्यावहारिकत्वमभ्युपगम्यतेऽतो नोक्तदोषावकाश इत्याह—**संस्कार इति**। ज्ञातस्यैवाध्यासो भवति न त्वज्ञातस्येत्याह— **अज्ञातस्येति**। को वा संस्काराश्रय इति विकल्प्य दूषयति—**किञ्चेत्यादिना**। आद्यं पक्षं निरस्यति—**नाद्य इति**। तस्य=जीवस्य। अध्यासोत्तरभाविनो जीवस्य पूर्वसिद्धसंस्काराश्रयता नोपपद्यत इत्यर्थः। संस्कारस्याध्यासहेतुतामपाकृत्य सादृश्यस्य तद्धेतुतां निराकरोति— **किञ्चेति**। शुक्तिरजतयोः सादृश्यमस्तीति शुक्तौ रजतारोप उपपद्यते निर्विशेषे ब्रह्मणि तु गुणक्रियाकृतसादृश्याभावात्कथं तस्मिन्नविद्यायाः संस्कारादीनाञ्चाध्यास उपपद्यत इत्यर्थः। सादृश्याभावे वचनं प्रमाणयति—**न तस्येति**। तस्य=ब्रह्मणः। प्रतिमा=प्रतिमानं सदृशमिति यावत् नास्तीत्यर्थः। काल्पनिकधर्ममभ्युपेत्य ब्रह्मणि सादृश्यमुपपन्नं भवतीत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। तस्य=कल्पितधर्मस्य। **अन्योन्याश्रयापत्तेरिति**।

हिन्दी अनुवाद—

सादृश्य का अभाव

यदि कहें कि भ्रम से पूर्व अज्ञात संस्कार को व्यावहारिक स्वीकार करते हैं और वह अपने द्वारा आरोपित स्वीय अध्यास का हेतु होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, अज्ञात के अध्यस्तत्व में प्रमाण न होने से उसमें पारमार्थिकत्व का प्रसङ्ग होगा। दूसरी बात संस्कार का आश्रय कौन है? शुद्ध ब्रह्म या जीव? शुद्ध ब्रह्म हो नहीं सकता यदि शुद्ध ब्रह्म भ्रमात्मक संस्कार का आश्रय होगा तो फिर ब्रह्म का शुद्धत्व भङ्ग होगा। दूसरा जीववाला पक्ष भी नहीं कह सकते, जीवत्व तो अध्यासोत्तर वस्तु है, उसके पूर्व सिद्ध संस्काराश्रयता नहीं हो सकती। अब संस्काररूप अध्यास हेतु का खण्डन कर, सादृश्य हेतु का खण्डन करते हैं कहते हैं कि अध्यास का सादृश्य ही कारण होता है, रजत का सादृश्य, चाकचिक्य शुक्ति में होने से शुक्ति

वाच्यम्। निर्धर्मके ब्रह्मणि तस्याध्यासाधीनत्वेनान्योन्याश्रयाद्यापत्तेः। न चानाद्यविद्यारोपेन सादृश्यापेक्षेति वाच्यम्। ज्ञानाज्ञानद्वाराधिष्ठानस्याप्यनपेक्षापत्त्या तस्य सत्यत्वापत्तेः। न च पीतःशङ्ख इति सादृश्यं विनापि भ्रमः प्रतीयत इति वाच्यम्। द्रव्यत्वादिना तत्रापि सादृश्यधियः सत्त्वात्। न च प्रधानमात्रवृत्तितया प्रागवगतमध्यासकाल एवाधिष्ठानवृत्तितया गृहीतं यत्तदेव सादृश्यं तत्र

अध्याससिद्धौ सत्यां कल्पितधर्मेण सादृश्यसिद्धिः। कल्पितधर्मेण सादृश्यसिद्धौ सत्यामध्याससिद्धिरिति परस्परसापेक्षत्वादन्योन्याश्रयः। नन्वविद्याध्यासे न सादृश्यापेक्षा, तस्यानादित्वेन कारणानपेक्षत्वादित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति। अनाद्यविद्यारोप इति**— अनादिर्योऽविद्याया आरोपस्तस्मिन्निति विग्रहः। अविद्याध्यासस्यानादित्वेनाधिष्ठानाद्यनपेक्षत्वात्सत्यत्वं स्यादित्याह—**ज्ञानाज्ञानेति।** अधिष्ठानस्याज्ञानद्वारा भ्रमं प्रति हेतुत्वम्। तस्य ज्ञानद्वारा भ्रमनिवृत्तिं प्रति हेतुत्वमिति सूचनाय ज्ञानाज्ञानेत्युक्तम्। ज्ञानद्वाराऽज्ञानद्वारेति तदर्थः। तस्य=अनाद्यविद्यारोपस्य। न च निरुपाधिके भ्रमे सादृश्यस्य हेतुता, पीतः शङ्ख इति भ्रमे व्यभिचारादित्याशङ्क्य निराकरोति—**न चेति।** तत्रापि=पीतः शङ्ख इति भ्रमेऽपि। भ्रमात्प्रागेव

में रजत का अध्यास होता है, प्रकृत में अध्यास का अधिष्ठान निर्विशेष है, उसमें कोई धर्म नहीं और सादृश्य धर्ममूलक होता है, इसलिये उसका कहीं सादृश्य नहीं, श्रुति भी कहती है। ''न तस्य प्रतिमास्तीह'' यहाँ स्पष्ट ब्रह्म सादृश्य का निषेध है, फिर अध्यास कैसे होगा? निर्विशेष ब्रह्म में गुण तथा क्रियाकृत सादृश्य का अभाव होने से उसमें कैसे अविद्या एवं संस्कार आदि का अध्यास होगा और आप अध्यस्त संस्कार द्वारा ही अध्यास मानते हैं, इस प्रकार संस्कार एवं सादृश्य दो मुख्य कारणों में अभाव से अध्यास असंभव है। यदि कहें कि ब्रह्म में कल्पित धर्म से सादृश्य हो जायेगा तो वह भी संभव नहीं है, कारण कल्पित धर्म अध्यास से ही होगा और अध्यास धर्म सादृश्य से होगा फिर तो अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति स्पष्ट है। यदि कहें कि अविद्या के अध्यास सादृश्य की अपेक्षा नहीं होती, वह अनादि है, उसमें कारण की अपेक्षा नहीं होती तो यह भी नहीं कह सकते। अविद्या के अध्यास के अनादि होने से उसके अधिष्ठान आदि की अपेक्षा न होने के कारण तो उसमें सत्यता की आपत्ति होगी। यदि कहें कि 'पीतः शङ्खः' इस अध्यास में सादृश्य के बिना ही अध्यास होता है, उसी तरह यहाँ भी अध्यास हो जायेगा तो

हेतुः, न तु प्रागेव प्रधानाधिष्ठानोभयवृत्तितया गृहीतं तस्य सांशयिकत्वात्, द्रव्यत्वन्तूभयवृत्तितया प्रागेवावगतमिति वाच्यम्। चाकचिक्यादेः शुक्तिरूप्योभयवृत्तितया प्रागेवावगतत्वेऽपि शुक्तौ रूप्यत्वाद्यारोपदर्शनात्। आरोप्यविरोधिकोट्यन्तरोपस्थित्यभावेन सांशयिकत्वासम्भवात्। न च सादृश्यज्ञानस्य न संस्कारोद्बोधकतया भ्रमहेतुत्वनियमः। तदभावेऽपि तददृष्टादिना तदुद्बोधसम्भवादिति वाच्यम्।

प्रधानाधिष्ठानोभयवृत्तितया गृहीतं यत्सादृश्यं तन्न भ्रमप्रयोजकं किन्तु प्रधानमात्रवृत्तितया गृहीतमित्याशङ्क्य वारयति **न चेति**। तस्य=उभयवृत्तितया गृहीतस्य। **सांशयिकत्वादिति**— यथा धूमवत्तदितरवृत्तितया गृहीतस्य वह्नेर्ज्ञानात् पर्वतो धूमवान्नवेति संशयो जायते तथात्रापि प्रधानाधिष्ठानोभयवृत्तितया गृहीतस्य द्रव्यत्वस्य ज्ञानाच्छङ्खः पीतो न वेति संशय एव स्यान्नतु शङ्खांशे पीतत्वस्य भ्रम इति भावः। उक्तशङ्कां निरस्यति—**चाकचिक्येति। आरोप्येति।** आरोप्यं=रजतत्वादि तस्य विरोधिकोट्यन्तरं रजतत्वाभावस्तस्योपस्थित्यभावेनेत्यर्थः। तथा चोभयसाधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानजन्य-कोटिद्वयोपस्थितिः सन्देहं प्रति प्रयोजिका, न तूभयसाधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानमिति मतेनेदमिति भावः। सादृश्यं न साक्षाद्भ्रमं प्रति कारणमपि तु संस्कारोद्बोधेन सामग्रीसम्पादनद्वारा। संस्कारोद्बोधश्च न सादृश्यैकनियतोऽदृष्टादिनापि तत्सम्भवात्।

ऐसा भी नहीं कह सकते, वहाँ भी दृश्यत्व आदि धर्म से सादृश्य है। यदि कहें कि भ्रम से पहले ही प्रधान और अधिष्ठान उभयवृत्ति तथा गृहीत जो सादृश्य है, वह भ्रम (अध्यास) का प्रयोजक नहीं है, किन्तु जो प्रधानमात्र के ही पहले वृत्तितया अवगत है, तथा अध्यासकाल में ही अधिष्ठान वृत्ति तया गृहीत सादृश्य है, वही भ्रम का हेतु है, तथा क्योंकि वह सन्देहजनक है। द्रव्यत्व तो उभय वृत्तितया गृहीत सादृश्य है, वही भ्रम का हेतु है, क्योंकि वह सन्देहजनक है, द्रव्यत्व तो उभय वृत्तितया पहले ही अवगत है। इसलिये द्रव्यत्वेन सादृश्य भ्रमजनक नहीं हो सकता तो ऐसा भी नहीं कह सकते, चाकचिक्य रूप धर्म शुक्ति तथा रजत उभय वृत्तितया पहले से अवगत होनेपर भ्रम का कारण होता देखा गया है। वहाँ आरोप (अध्यास) विरोधी अन्यकोटि की उपस्थिति के अभाव होने के कारण संशयात्मत्व नहीं है, यदि कहें कि सादृश्य ज्ञान संस्कार के उद्बोधकरूप में भ्रम का हेतु है, ऐसा नियम नहीं है, कारण सादृश्य ज्ञान के अभाव में भी उसके अदृष्ट द्वारा संस्कार उद्बोधन संभव है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते। कारण अदृष्ट फल द्वारा अनुमेय होता है,

फलानुमेयस्याज्ञातस्यादृष्टस्यारोपात्प्राक् सत्त्वे मानाभावात्। नन्वारोपस्य दोषानपेक्षोत्पत्तिस्वीकारे तन्निष्ठस्याप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वमापद्येतेति चेन्न। अनाद्यविद्याध्यासस्य दोषानपेक्षत्वात्। साद्यध्यास्याविद्यादोषजन्यत्वान्नाप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वम्। न चाविद्याध्यासस्यानादित्वेन दोषानपेक्षावदधिष्ठानस्याप्यनपेक्षापात इति वाच्यम्, जनकत्वेनानपेक्षत्वेऽप्यध्यासमात्रस्य

तदुक्तम् "सदृशादृष्टचिन्ताद्याः स्मृतिबीजस्योद्बोधकाः" इत्याशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। तदभावे=सादृश्याभावे। कार्यात्कारणमनुमीयते तथा चादृष्टमपि फलदर्शनादनुमीयते तस्यारोपात्प्राक् नियतपूर्ववृत्तित्वकल्पने प्रमाणाभावइत्यत आह—**फलानुमेय इति**। ननु सादृश्याद्यध्याससामग्र्यभावेऽप्यविद्यादिदोषबलाज्जगदध्यासोपपत्तिः, न चाविद्यादिदोषाध्यासे दोषान्तरस्य हेतुत्वेनवाच्यतयाऽनवस्थापत्तिरिति वाच्यम्, किञ्चिद्दूरङ्गतस्य कस्यचित्पुरुषस्य दोषाभावेऽपि भ्रमाङ्गीकारादित्यत आह—**नन्विति**। **स्वतस्त्वमिति**—अस्मन्मत इव तव मतेप्यप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वाभावाद् विनापि दोषमप्रामाण्योपपत्तौ तस्य स्वतस्त्वापातेन वेदजन्यज्ञानेऽप्यप्रामाण्यापत्तिरिति भावः। परिहरति—**नेति**। साद्यध्यासं प्रत्यविद्यादोषस्य हेतुत्वेऽप्यनाद्यविद्याध्यासं प्रति न दोषस्य कारणत्वं दोषं विनाप्यनाद्यविद्याया अध्यास उत्पद्यत इत्याह—**अनाद्यविद्याध्यासस्येति**।

आरोप से पहले उसकी सत्ता के प्रमाण का अभाव है। यदि कहें कि सादृश्य आदि अध्यास सामग्री के अभाव में भी अविद्या आदि दोषवशात् अध्यास की उपपत्ति होगी, यदि कहें कि अविद्या आदि दोष के अध्यास के दोषान्तर के हेतु के कहनेपर अनवस्थापत्ति होगी तो ऐसा नहीं हो सकता, कुछ दूर तक चले गये किसी पुरुष का दोष के अभाव से भी भ्रम अङ्गीकार किया जाता है, इसलिए कहते हैं कि यदि कहें कि आरोप (अध्यास) के दोष के बिना ही उत्पत्ति स्वीकार करनेपर तन्निष्ठ अप्रामाण्य के स्वतस्त्व (स्वतोग्राह्यत्व) की आपत्ति होगी तो उसका उत्तर देते हैं, अनादि अविद्या के अध्यास के दोष की अपेक्षा नहीं होती। सादि अध्यास के अविद्यारूपी दोषजन्य होने से अप्रामाण्य के स्वतस्त्व की आपत्ति नहीं होगी। यदि कहें कि अविद्या का अध्यास अनादि होने से उसमें दोष की अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार अधिष्ठान में दोष की अनपेक्षा की आपत्ति होगी, यदि कहें कि अध्यासत्व साधिष्ठानकत्व व्याप्य होता है, जहाँ-जहाँ अध्यासत्व होगा वहाँ-वहाँ कोई न कोई अधिष्ठान अवश्य होगा, बिना अधिष्ठान का अध्यास नहीं होगा,

साश्रयत्वदर्शनात्तदाश्रयतया तदपेक्षणादिति चेन्न। अध्यासमात्रस्य दोषजन्यत्वदर्शनादविद्याध्यासस्याप्यनादित्वासम्भवात्। किञ्च यत्राध्यासत्वं तत्र सादित्वं शुक्तिरूप्यादिवत् यत्रानादित्वं तत्र नाध्यासत्वमात्मवदित्यन्वयव्यतिरेकव्याप्तिवदनाद्यध्यासे व्याप्त्यदर्शनात्॥३२॥

अध्यासत्वं साधिष्ठानकत्वव्याप्यमिति व्याप्त्या स्वाश्रयत्वेनाविद्याध्यासोऽधिष्ठानमपेक्षते न तु जनकत्वेनेत्याह—**जनकत्वेनेति**। सर्वस्यैवाध्यासस्य दोषजन्यत्वनियतत्वेना-विद्याध्यासस्यापि दोषं विना नोत्पत्तिरित्याशयेन परिहरति—**नेति**। भ्रममात्रं प्रति दोषादीनां जनकत्वादविद्याध्यासोऽपि क्लृप्तकारणेन विना कथं भवितुमर्हतीत्याह—**अध्यास-मात्रस्येति**। व्याप्तिप्रदर्शनपुरस्कारेण साद्यध्यासं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**किञ्चेति**॥३२॥

इस व्याप्ति से स्वाश्रयत्वेन अविद्याध्यास अधिष्ठान की अपेक्षा करता है न जनकत्वेन, इस पर कहते हैं कि जनकत्वेन अपेक्षा न होनेपर भी अध्यासमात्र साश्रय (साधिष्ठान) देखा जाता है, इसलिये अध्यास को आश्रयरूप में अपेक्षा होगी तो ऐसा भी नहीं कह सकते, अध्यास दोषजन्य देखा गया है, इसलिये अविद्याध्यास में भी अनादित्व संभव नहीं है।

दूसरी बात जहाँ-जहाँ अध्यासत्व होता है, वहाँ-वहाँ सादित्व होता है, शुक्ति रूप्यादि के समान, जहाँ-जहाँ अनादित्व है वहाँ अध्यासत्व नहीं, आत्मा की तरह, इस अन्वय व्यतिरेकि व्याप्ति की तरह अनादि अध्यास में कोई व्याप्ति नहीं है ।।३२।।

अपि च पुरोवर्तिनीन्द्रियसंयुक्त एव विषये विषयान्तराध्यासदर्शनात्कथमविषये चेतनेऽध्यासः सम्भवतीति। ननु न तावदयमेकान्तेनाविषयोऽस्मत्प्रत्ययगोचरत्वात्, तत्त्वञ्चास्मत्प्रत्ययोऽहमित्यध्यासस्तत्र भासमानत्वम्। अस्मदर्थश्चिदात्मा प्रतिबिम्बत्वेन यत्र प्रतीयते सोऽस्मत्प्रत्ययोऽहङ्कारस्तत्र भासमानत्वमिति चेन्न, अध्यासे सति भासमानत्वं तस्मिंश्च सत्यध्यास इत्यन्योन्याश्रयत्वापत्तेः। न चानादित्वान्नोक्तदोष इति वाच्यम्। अनादित्वस्य हेतोर्निरस्तत्वात्।

वज्रोत्तेजिका— इन्द्रियाणां विषयेण सह समीचीनो योगोऽप्यध्यासे कारणं तदभावान्न ब्रह्मणि विश्वारोपः कल्पयितुंशक्यत इत्याह—**अपि चेति**। न तावदिति। अयमात्मा नियमेनाविषयो न भवतीत्यर्थः। अत्र हेतुमाह—**अस्मदिति**। तदर्थमेव विवृणोति—**तत्त्वञ्चेत्यादिना**। तत्त्वञ्च=अस्मत्प्रत्ययगोचरत्वञ्च। तत्र=अहमित्यध्यासे। यत्र=अहङ्काराध्यासे। अमुंपक्षमन्योन्याश्रयेण दूषयति—**अध्यास इति**। **निरस्तत्वादिति**—अध्यासमात्रस्य जन्यत्वमित्यादिना। उक्तार्थं निरस्यति-**किञ्चेति**। प्रागहङ्कारस्याभावादध्यासे कथं तस्य प्रतीतिरस्मत्प्रत्ययस्याहङ्काराध्यासोत्तरभावित्वादित्यत

हिन्दी अनुवाद—

३. सम्प्रयोग का अभाव

इन्द्रियों का विषय के साथ समीचीन भी अध्यास में कारण है—इसमें अभाव के कारण भी ब्रह्म में विश्व अध्यास (आरोप) की कल्पना नहीं की जा सकती—यही बात अब कह रहे हैं—"अपि च पुरोवर्तिनीन्द्रिय संयुक्त एव........" इत्यादि ग्रन्थ से, अर्थात् लोक में पुरोवर्ती (सामने विद्यमान) इन्द्रिय संयुक्त प्रत्यक्ष विषय में ही विषयान्तर का अध्यास देखा गया है, फिर कैसे इन्द्रियाविषय ब्रह्म में प्रपञ्च का अध्यास सम्भव है? यदि कहें कि यह आत्मा (ब्रह्म) सर्वथा इन्द्रिय का अविषय कहाँ है? अहम् अहम्—इस रूप में अस्मत् प्रत्यय गोचर सब को होता है। अस्मत् प्रत्यय गोचरत्व है—अहम् प्रत्यय अहंकार, उस अहम्, इस अध्यास में भासमानत्व अस्मत् का अर्थ चिदात्मा, प्रतिबिम्ब रूप में जहाँ प्रतीत होता है, वह अस्मत् प्रत्यय अहंकार, उसमें भासमानत्व है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते। कारण अध्यास होने पर भासमानता होगी और भासमानता के बाद अध्यास इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति होगी। यदि कहें कि अनादि होने से उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते—अनादित्व हेतु को पहले ही निरस्त कर दिया गया है—

किञ्चास्मत्प्रत्ययस्याहङ्काराध्यासोत्तरभावित्वेनाद्याध्यासे कथं प्रतीतिरित्याशङ्काया निरूढत्वाद् भासमानत्वस्याहङ्काराध्यास-जन्यत्वेनाध्याससमये भासमानतायां मानाभावादित्यर्थः। किञ्चात्मनो विषयत्वाङ्गीकारे ''न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचे'' त्यादिश्रुती-नामात्माऽविषयत्वरूपव्याख्यानस्य भवतां सिद्धान्तितस्य भङ्गात्। भवतां सिद्धान्ते विषयस्य मिथ्यात्वाङ्गीकारेणात्मनो मिथ्यात्वस्यावश्यम्भावाच्च। आत्मा मिथ्याऽस्मत्प्रत्ययगोचरत्वात् तव मतेऽहङ्कारवदित्यनुमानात्। किञ्च शुक्तिरूप्यादिभ्रमस्थले सर्वत्र दोषसम्प्रयोगसंस्कारादीनामधिष्ठान-

---

आह—**अस्मत्प्रत्ययस्येति**। प्रागुक्तार्थं स्वयं विवृणोति—**भासमानत्वस्येति**। अध्यासान्यथानुपपत्याऽऽत्मनो विषयत्वं त्वयाङ्गीकृतं तच्च भवत्सिद्धान्तप्रतिकूलमित्याह—**किञ्चेति**। रूप्याद्यध्यासे दोषादीनामधिष्ठान-समसत्ताकत्वं दृष्टं प्रकृते तथात्वाभावात्कथमध्यास इत्याह—**किञ्चेति**। रूप्याद्यध्यासे दोषादीनामधिष्ठानसमसत्ताकत्वं दृष्टं प्रकृते तथात्वाभावात्कथमध्यास इत्याह—**किञ्चेति**। यदाशङ्कितं तदाक्षिपति—**नन्विति**। पुरोवर्तिनी=अग्रवर्तिनी। अप्रत्यक्षे=इन्द्रियाग्राह्ये। बालानाम्=अविवेकिनाम्। तलम्=इन्द्रनीलकटाहकल्पम्। तथा चाधिष्ठानाधिष्ठेययोरेकेन्द्रियग्राह्यत्वानियतिरिति भावः। परिहरति—**नेति**।

अध्यास मात्र जन्य होता है, इत्यादि ग्रन्थ से। दूसरी बात अस्मत् प्रत्यय (अहम्) अहंकाराध्यासजन्य होने से अध्यास के समय में उसकी मानता में कोई प्रमाण नहीं है। और आत्मा को विषय मानने पर ''न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा'' इत्यादि श्रुतियाँ आत्मा को अविषय मानती है, यह सिद्धान्त स्वरूप व्याख्या का भंग हो जाएगा। आपके सिद्धान्त में जो विषय होता है, वह मिथ्या होता है, ऐसी मान्यता होने से—विषय मानने पर आत्मा का मिथ्यात्व अवश्य होगा। यहाँ अनुमान होगा, आत्मा मिथ्या अस्मत् प्रत्यय गोचरत्वात्, आपके मत में अहंकार की तरह। (इस प्रकार आत्मा के अविषयत्व सिद्ध होने पर पुरोवर्ती विषय में ही विषयान्तर का अध्यास होता है इस नियम के अनुसार अध्यास असम्भव हो जाएगा।) दूसरी बात शुक्ति रूप्य आदि भ्रमस्थल में सर्वत्र दोष, सम्प्रयोग (सन्निकर्ष) संस्कार आदि में अधिष्ठान समसत्ताकत्व तथा अध्यस्त से अधिक सत्ताकत्व देखने से यहाँ अध्यास कैसे होगा? यदि कहें कि पुरोवर्ती विषय के साथ इन्द्रिय संयोग होने पर ही इन्द्रिय संयुक्त विषय में विषयान्तर का अध्यास होता है—ऐसा कोई नियम नहीं है,

समसत्ताकत्वस्याध्यस्ताधिकसत्ताकत्वस्य च दर्शनात्कथमध्यासः, ननु पुरोवर्तिनीन्द्रियसंयुक्त एव विषये विषयान्तराध्यास इति नास्ति नियमोऽप्रत्यक्षेऽप्याकाशे बालानां तलमलिनताद्यध्यासदर्शनात्तथा प्रकृतेऽपि युक्तोऽध्यास इति चेन्न, असिद्धत्वाद्धेतुदृष्टान्तयोः। आकाशस्य पञ्चीकृतत्वेन रूपादिमत्वस्याविरोधात्तत्र नीलादिप्रत्ययस्य यथार्थत्वे-नाध्यस्तत्वाभावात् प्रत्यक्षयोग्यत्वाच्च, तस्मादनेन हेत्वाभासेन नोक्तदोषादुद्धारः। अतोऽध्याससामग्र्यभावान्नाध्याससम्भवः कारणाभावे कार्याभावनियमादिति सङ्क्षेपः॥ ३३॥

इति पराभिमताध्यासगिरेस्सामग्र्युपपत्तिशिखरनिपातः॥ ५॥

असिद्धत्वादिति—गगनं रूप्येव पञ्चीकृतभूतत्वात् पृथिव्यादिवदित्यनुमानेनापि गगने रूप्यादिमत्त्वसिद्धिः, तथा चेन्द्रियाग्राह्यत्वरूपहेतोर्गगनेऽसत्त्वात्स्वरूपासिद्धत्वं दृष्टान्तवैषम्यञ्चेत्यर्थः। फलितार्थं दर्शयति—**तस्मादिति**। नोक्तदोषादुद्धार इति। रूप्यादीनामध्यासे दोषादीनामधिष्ठानसमसत्ताकत्वं दृष्टं प्रकृते तथात्वाभावात्कथमध्यास इति दोषादित्यर्थः। उपसंहरति—**अत इति॥ ३३॥**

इति पराभिमताध्यासगिरेस्सामग्र्युपपत्तिशिखरनिपातस्य व्याख्या॥ ५॥

क्योंकि अप्रत्यक्ष आकाश में भी बालकों को तल (नील कटाहरूप) तथा मलिनता आदि का अध्यास देखा गया है, इस प्रकार प्रकृत में भी ब्रह्म में आत्मा में अध्यास समीचीन है तो ऐसा नहीं कह सकते—यह हेतु एवं दृष्टान्त दोनों यहाँ असिद्ध है—कारण आकाश पञ्चीकृत होने से उसमें रूपादि युक्तत्व का अविरोध है, अर्थात् उसमें रूपादि हैं—उसमें नीलादि की प्रतीति यथार्थ है। अतः वहाँ अध्यस्तत्व का अभाव है और उसमें प्रत्यक्षयोग्यता है। गगनं रूप्येव पञ्चीकृत् भूतत्वात्, पृथिव्यादिवत्, इस अनुमान से गगन में रूपादिमत्व सिद्ध होने पर इन्द्रियाग्राह्यत्व रूप हेतु का गगन में अभाव होने से उक्त अनुमान में स्वरूपासिद्धि तथा दृष्टान्त वैषम्य है, यह अर्थ है। इसलिये इस हेत्वाभास से पूर्वोक्त दोष का उद्धार नहीं हो सकता। इसलिये अध्यास की सामग्री के अभाव से अध्यास संभव नहीं है, कारण के अभाव में कार्य का अभाव शाश्वत् नियम है इस प्रकार संक्षेप हैं।

इस प्रकार अध्यास गिरि के सामग्री की उपपत्तिरूपी शिखर का ध्वंस सम्पन्न हुआ।।३३।।

(६) पराभिमताध्यासिकसम्बन्धोपपत्ति गिरिनिपातः

अथ चिदचितोः सम्बन्धस्यापि दुर्निरूप्यत्वादध्यासासिद्धिः। ननु सर्वस्याऽपि दृश्यस्य दृशि ह्यध्यस्तत्वात्तयोस्त्वाध्यासिकसम्बन्ध-योगेऽन्यतरस्य मिथ्यात्वं भाव्यम्, दृशो मिथ्यात्वासम्भवेन दृश्यस्यैव मिथ्यात्वम्, तस्मादाध्यासिकसम्बन्धस्यैवोपपत्तिरिति चेन्न, तव पक्षे दृश्यस्य ब्रह्मरूपदृगध्यस्तत्वेऽपि कस्यचित्कदाचित्प्रकाशाय त्वयाऽपि तत्तत्सन्निकृष्टेन्द्रियजन्यवृत्तिद्वारकसम्बन्धस्यानावृतदृशि स्वीकारात् तस्य सत्येप्यर्थे वृत्तिद्वारासम्भवेनाध्यासिकसम्बन्धस्याप्रयोजकत्वात्। न हि

वज्रोत्तेजिका— ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धः संयोग इति वक्तुं न शक्यते गुणादावात्मनः संयोगाभावाद्-द्रव्ययोरेव संयोगात्। नापि समवायः। वेदान्तिनां मते ज्ञानस्यात्मगुणत्वाभावात्। किन्तु मनसः, न च विषयविषयिभावः सः, तस्य विषयित्वविषयत्वरूपस्यैकैकमात्रनिष्ठत्वेन द्विनिष्ठसम्बन्धात्मकत्वाभावात्। संयोगस्य द्विनिष्ठत्वेनोभयवादिसम्मतत्वात्। इत्यालोच्याह—**चिदचितोः सम्बन्धस्येति।** परमते तयोस्सम्बन्धस्य वक्तुमशक्यत्वादध्यासो न सिद्ध्यतीत्यर्थः। अनाध्यासिकसम्बन्धासत्वेऽपि दृग्दृश्ययोराध्यासिक एव सम्बन्ध आस्तामिति शङ्कते—**नन्विति।** दृश्यस्य=प्रपञ्चस्य। दृशि=ज्ञाने। तयोः= दृग्दृश्ययोः। परिहरति—**नेति।** अत्रात्यन्ताभेदवादिनामेषा प्रक्रिया यथा तडागोदकं छिद्रान्निर्गत्य कुल्यात्मना केदारान् प्रविश्य चतुष्कोणाकारं भवति। एवं तैजसमन्तःकरणं चक्षुरादिना निर्गत्य विषयाकारं

हिन्दी अनुवाद—

चिदचित् सम्बन्ध अध्यास सिद्धि

चित् ब्रह्म में अचित जगत् का अध्यास मायावादी मानते हैं—इसका खण्डन करते हैं कि इन दोनों में किसी सम्बन्ध का निरूपण ही जब सम्भव नहीं है तो चित् में अचित् का अध्यास कैसे स[illegible]व हो[illegible] ज्ञेय में संयोग सम्बन्ध हो नहीं सकता, क्योंकि द्रव्य द्रव्य का ही संयोग होता है। समवाय भी नहीं होगा। वेदान्तियों के मत में ज्ञान आत्मा का गुण नहीं मन का है। विषय-विषयिभाव कहेंगे तो वह भी नहीं कह सकते, विषयित्व विषयत्व रूप उक्त सम्बन्ध का एकैक[illegible]ात्र निष्ठ होने से उसके विनिष्ठ सम्बन्धात्मकत्व का अभाव है—इस प्रकार परमत में उन दोनों का सम्बन्ध निरूपण न होने से अध्यास की सिद्धि नहीं होती। इसपर कहते हैं कि उनमें अनाध्यासिक सम्बन्ध न होने पर भी आध्यासिक सम्बन्ध मान

तव विज्ञानवादिनामिव तत्तज्ज्ञाने तत्तदर्थाध्यासस्वीकारः, शुद्धदृशः स्वतो भेदाभावात्। उपाधिविशिष्टायाश्च चितो भेदेऽपि घटादिवत्तस्य मिथ्यात्वेनाधिष्ठानत्वासम्भवात्। न च वृत्तेः पूर्वमाध्यासिकसम्बन्धे सत्यपि न प्रकाशः, वृत्या भग्नावरणचित एव प्रकाशकत्वादिति वाच्यम्। चरमसाक्षात्कारात्प्राक् शुद्धस्यानभिव्यक्तत्वादभिव्यक्तस्य च

भवति सैव वृत्तिरित्युच्यते। तस्याश्च प्रयोजनमनावृत्तमन्तःकरणोपाधिकं जीवचैतन्यमेव प्रकाशकमिति मते चैतन्यस्यासङ्गस्य विषयोपरागासम्भवेन जातेर्व्यक्तिविशेषमात्रेणेव वृत्त्युपरागेण वृत्तिद्वारा विषयप्रकाशनम्। दृग्दृश्ययोरध्यासेऽपि कस्यचित् कञ्चित्पुरुषं प्रति प्रकाशाय, तत्तत्सन्निकृष्टेन्द्रिय-जन्यतत्तदाकारवृत्तिस्तवाप्यावश्यकी, एवञ्चावश्यकेनानेन सम्बन्धेनैवोपपत्तावाध्यासिक सम्बन्धकल्पने न किञ्चित्प्रयोजनमस्तीत्याशयेनाह—**दृश्यस्येति।** न वयं ब्रह्मात्मकानावृतैकदृगध्यस्तत्वमभिदध्महे येन तस्य सर्वान् प्रत्यवशिष्टत्वात्सर्वदा सर्वं प्रकाशेतेत्यतिप्रसङ्गभङ्गाय तत्तदाकारवृत्तिद्वारकसम्बन्धापेक्षा ममाप्यावश्यकी स्यात्। किन्तु घटाद्यधिष्ठानभूतानां चैतन्यानां भेदाङ्गीकारेण तत्तदर्थास्तत्तदधिष्टानभूतेषु चैतन्येष्वेवाध्यस्ता इत्युच्यन्ते, एवञ्च वृत्तिं विनैतादृशेन चैतन्येनैव घटादेः साक्षादेव सम्बन्धाङ्गीकारेण तेनैव प्रकाशो घटते, अतोऽतिप्रसङ्गाभावान्न तदर्थं वृत्तिद्वारकसम्बन्धानुसरण-मित्याशङ्क्यपरिहरति—**नहीति।** यथाऽऽहुर्विज्ञानवादिनः तत्तज्ज्ञानेषु ते तेऽर्था अध्यस्ता इति नो मतम्, तथा त्वया ते

लेंगे—कारण समस्त दृश्य प्रपञ्च का ज्ञान में (ब्रह्म में) अध्यस्त होने से उन दोनों की आध्यासिक सम्बन्ध का योग होने पर किसी एक का मिथ्यात्व होगा, दृश् (ज्ञान) का मिथ्यात्व असम्भव होने से दृश्य (प्रपञ्च) का मिथ्यात्व होगा, इसलिये उनमें आध्यासिक सम्बन्ध मान लेंगे तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि आपके मत में (मायावादी के मत में) दृश्य प्रपञ्च का ब्रह्मरूप दृक् में अध्यस्त होने पर भी किसी का किसी पुरुष के प्रति प्रकाश के लिये आपको भी तत् तत् सन्निकृष्ट इन्द्रिय जन्य तत्तदाकार वृत्ति आवश्यक है—इस प्रकार इन्द्रियजन्य वृत्ति द्वारा सम्बन्ध

1. यहाँ अत्यन्त अभेदवादी–मायावादी की ऐसी प्रक्रिया है जैसे तालाब का जल नहर के द्वारा खेतों में जाकर चौकोर आकार का हो जाता है अथवा जैसा खेत का आकार होता है, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार तेजस अन्तःकरण चक्षु के द्वारा निकलकर विषयाकार बन जाता है—उसी को वृत्ति कहते हैं। उस वृत्ति का अनावृत अन्तःकरणोपाधिक जीव चैतन्य ही प्रकाशक है।

घटावच्छिन्नस्य मिथ्यात्वादात्माश्रयापत्या चानधिष्ठानत्वात्। न च शुद्धविषयकमूलाज्ञानानिवृत्तावपि घटाद्याकारवृत्त्या तूलाज्ञानानिवृत्त्या घटप्रकाशोपपत्तिरिति वाच्यम्। घटाकारवृत्त्या विषयीकृतस्य चेतनस्य सत्यत्वे दृश्यत्वस्य व्यभिचारापत्तेः। मिथ्यात्वे चाध्यस्ताधिक सत्ताकत्वाभावेनाधिष्ठानत्वासम्भवात्। क्षुद्राज्ञाननिवृत्तावपि महाज्ञानावृत्तस्याप्रकाशकत्वाच्च। किञ्च चितोदृशः प्रमात्वमप्रमात्वं वा ?

तेऽर्थास्तेषु तेष्वनेकेष्वधिष्ठानचैतन्येष्वध्यस्ता इति न ह्युच्यन्ते। किन्तु ब्रह्मात्मकाज्ञानावृत्तैकदृगध्यस्तत्वमेव, तत्राप्यतिप्रसङ्गपरिहाराय वृत्तिरनुसरणीयैवेति भावः। ननु विज्ञानवादिमत इव मम मतेऽपि घटादेस्तदधिष्ठानचैतन्येष्वनेकेष्वध्यासोऽस्तु, अतो न वृत्तिरपेक्षितेत्यत आह—**शुद्धदृश इति। उपाधि विशिष्टाया इति**—इदमत्राकूतम्। अनेकेष्वधिष्ठानेषु त्वन्मतेऽध्यासायोगात्। तथाहि अध्यासाधिष्ठानभूता अनेके चैतन्यब्रह्मदृशः किं सत्यभूतशुद्धब्रह्मरूपाः? उत घटाद्युपाधिविशिष्टाः? अथवोपाध्युपलक्षिताः? नाद्यः, "एकमेवाद्वितीयमित्या" दिश्रुतिविरोधेन तत्र भेदाभावात्। न द्वितीयः, उपाधि-विशिष्टानां चैतन्यरूपब्रह्मदृशां भेदेऽपि विशिष्टानां घटादिवन्मिथ्यात्वेनाधिष्ठानत्वायोगात्। अध्यस्ताधिकसत्ताकत्वस्यैवाधिष्ठानत्वौपयिकत्वात्। न तृतीयः, यद्यप्युपलक्षिताया ब्रह्मचैतन्यदृशः सत्यत्वमस्ति, उपाधेरुपलक्षणमात्रत्वात्, तथा चाधिष्ठानत्वमुपपद्यते तथाप्युपाध्युपलक्षिताया अधिष्ठानभूतायाः सत्याया दृशोऽभेदस्य "एकमेवाद्वितीय" मित्यादिश्रुतिसिद्धत्वान्नानेकत्वमुपपद्यते, तथा चानावृतैकदृगध्यस्तत्वे वाच्ये तत्रोक्तातिप्रसङ्गवारणाय वृत्तिरपेक्षणीयैवेति। उपाध्युपलक्षिते उपाधिकृतभेदोऽस्तीति न वृत्तिरपेक्षितेति चेन्न, कथञ्चिद्भेदेपि

अनावृत ज्ञान में आपको स्वीकार होने से उसका सत्य अर्थ में भी वृत्ति द्वारा सम्भव होने से आध्यासिक सम्बन्ध अध्यास में प्रयोजन नहीं होगा।

इस मत में असङ्ग चैतन्य का विषयोपराग सम्भव न होने से व्यक्ति विशेष मात्र के द्वारा जाति की तरह वृत्ति के उपराग से वृत्ति द्वारा विषय का प्रकाशन होता है। दृक् और दृश्य के अध्यास में भी किसी का किसी पुरुष के प्रति प्रकाश के लिए तत् तत् सन्निकृष्ट इन्द्रियजन्य तत् तदाकार वृत्ति आवश्यक है आपको विज्ञानवादियों की तरह तत् वस्तु के ज्ञान में तत् तत् अर्थ का अध्यास स्वीकार नहीं है क्योंकि शुद्ध ज्ञान का स्व से भेद का अभाव है। [२]उपाधिविशिष्ट चित् का भेद होने पर भी घट आदि की तरह उसके मिथ्या होने से उसमें अधिष्ठानत्व संभव नहीं है। यदि कहें कि वृत्ति से पूर्व आध्यासिक सम्बन्ध होने पर भी प्रकाश नहीं होगा। क्योंकि वृत्ति के द्वारा आवरण भङ्ग होने से ही चित् में प्रकाशकत्व होता है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते। चरम साक्षात्कार से पहले

आद्ये तस्यादोषाजन्यत्वेन तद्विषयस्यसत्यत्वापत्यासत्यंप्रत्यधिष्ठानत्वायोगात्। द्वितीये दोषजन्यत्वेन सुतरामधिष्ठानत्वायोगाच्च। ननु दोषाजन्यत्वस्य न प्रमात्वे प्रयोजकत्वम्, चितः सर्वत्र दोषाजन्यत्वात्। किन्तु दोषाजन्यवृत्त्य-वच्छिन्नत्वम्, प्रकृते तदभावान्न विषयस्य सत्यत्वमिति चेन्न, दोषाजन्य-वृत्त्यवच्छिन्ने मृषाभूते घटाध्यासासम्भवेन तस्य घटाद्यप्रकाशकत्वात्। ननु ज्ञानज्ञेययोः क्लृप्तसंयोगसमवायादिसम्बन्धाभावात्कल्पित एव कश्चित्सम्बन्धः

वृत्तिरावश्यक्येव। तथाहि तत्तदर्थानां तत्तदधिष्ठानचैतन्येष्वध्यासमंगीकृत्यास्मदभिमतवृत्तिद्वारकसम्बन्धानङ्गीकारे त्वन्मतेऽस्मदभिमतवृत्तिद्वारकसम्बन्धात्प्रागेव घटादीनां तत्तदधिष्ठानचैतन्ये स्वत एवाध्यस्तत्वेनाध्यासिकसम्बन्धस्य सत्वाद् घटादिरूपदृश्यप्रतीतिः सर्वदा स्यादेवातोऽध्यस्तत्वसम्बन्धे सत्यपि दृश्यप्रतीतेरतिप्रसङ्गवारणाय वृत्तिद्वारकसम्बन्धोऽङ्गीकार्य एवेत्याशयेनाह—**वृत्तेरिति**। समाधत्ते—**चरमेति**। आत्माश्रयापत्या=स्वावच्छिन्नस्य स्वाधिष्ठानत्वे स्वस्याधिष्ठानप्रसङ्गे नात्माश्रय इदमुपलक्षणम्। अन्योन्याश्रयोऽपि, तथाहि—घटस्वरूपसिद्धौ चैतन्यस्य घटावच्छिन्नत्वं, तदवच्छिन्ने चैतन्ये सत्याधिष्ठानलाभेन घटादेरध्यास इति। अनधिष्ठान-त्वात्=घटाद्यप्रकाशकत्वात्। अज्ञानं द्विविधम्, मूलाज्ञानं तूलाज्ञानञ्च, तूलाज्ञानमावरण-विक्षेपशक्तियुक्तं ब्रह्मज्ञानान्यज्ञाननाश्यम्, मूलाज्ञानन्तु तादात्म्यापन्नज्ञानं यथा प्रतिभटगमनक्षण एव भीरुभटापसरणं तथा वृत्त्युत्पत्तिक्षण एवावरणाभिभवो यथा वा हस्तसंयोगोत्पत्त्युत्तरं कटस्य वेष्टनं तथा वृत्त्युत्पत्तिक्षणोत्तरकाल आवरणाभिभव इत्याशयेनाह—**शुद्धविषयकेति**। मूलाज्ञानन्तु ब्रह्मज्ञानेनैव निवर्तते। **घटाकारेति**—

शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होने तथा अभिव्यक्त घटावच्छिन्न चैतन्य के मिथ्या होने से आत्माश्रय दोष की आपत्ति आने से उसमें अधिष्ठानत्व संभव नहीं है। यदि कहें कि शुद्ध विषयक मूला अविद्या की निवृत्ति होने पर भी घटाकार वृत्ति से तूला अविद्या की निवृत्ति से घट प्रकाश की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते। घटाकार वृत्ति द्वारा विषयीकृत् चेतन को सत्य मानने पर दृश्यत्व का व्यभिचार होगा और मिथ्यात्व होने पर उसमें अध्यस्त से अधिक सत्ता का अभाव होने से उसमें अधिष्ठानत्व संभव नहीं होगा। क्षुद्र अज्ञान की निवृत्ति होने पर भी महान् अज्ञान से आवृत का प्रकाशत्व भी नहीं होगा। दूसरी बात प्रकाशक चैतन्य में प्रमात्व है या तदभिन्नत्व में? ऐसी आशंका होती है—प्रथम पक्ष में चित् के दोष से अजन्य होने से उस विषय के सत्यत्व की आपत्ति से वह असत्य के प्रति अधिष्ठान नहीं होगा।

स्वीकार्यः स चाध्यासिक एवेति चेन्न, ध्वंसादेरतीतादिना मिथ्यात्वलक्षणान्तर्गतस्यात्यन्ताभावस्य प्रतियोगिना शक्तेःशक्येनाज्ञानस्याज्ञेयेनेच्छाया इष्यमाणेन व्यवहारस्य व्यवहर्तव्येन वाक्यस्यार्थेन वृत्तिरूपज्ञानस्य ज्ञेयेनसम्बन्धो नेति

मिथ्यात्वाभाववति घटाकारवृत्या विषयीकृते चेतने दृश्यत्वहेतोस्सत्वान्मिथ्यात्व-साधकानुमाने व्यभिचार इत्यर्थः। घटप्रकाशिकाया दृशो घटवन्मिथ्यात्वेनाध्यस्त-सत्ताधिकसत्ताकत्वाभावान्न तस्याधिष्ठानता घटत इत्याह—**मिथ्यात्व इति।** प्रकाशक-चैतन्यस्य प्रमात्वं तद्भिन्नत्वं वेत्याशङ्कते—**किञ्चेति।** प्रथमविकल्पं दूषयति—**आद्य इति।** तस्याः=चितः। **अधिष्ठानत्वायोगाच्चेति**—घटाधिष्ठानचैतन्यं घटप्रकाशकमिति मते मिथ्याभूतस्य घटवद्पटाधिष्ठानत्वाभावेन घटाप्रकाशकत्वात्सत्त्यमेव घटाधिष्ठानचैतन्यरूपं ज्ञानं घटप्रकाशकमिति वक्तव्यं तस्य च सत्यत्वेन दोषाजन्यतयाऽबाधितार्थविषयकत्वरूपप्रमात्त्वयोगित्वेन तद्विरुद्धं यत्स्वविषयमिथ्यात्वापादनशीलं स्वविषयं प्रत्यधिष्ठानत्वं तन्न संभवतीत्यर्थः। **द्वितीय इति**—अप्रमात्व इति तदर्थः। **दोषजन्यत्वेनेति**—घटप्रकाशिकाया दृशो दोषजन्यत्वेन मिथ्यात्वाद्घटाधिष्ठानत्वानुपपत्तिरित्यर्थः। अयम्भावः—घटप्रकाशिकाया दृशो घटवन्मिथ्यात्वेन न घटाधिष्ठानत्वं, सत्यत्वे दोषाजन्यत्वेन प्रमात्वात्सत्यं स्वविषयं प्रति नाधिष्ठानत्वमित्युभयतः पाशारज्जुः। यदि दोषाजन्यत्वं प्रमात्वे प्रयोजकं स्यात्तदोक्तापत्तिस्स्यादेव तदेव तु न सम्भवतीत्याह—**नन्विति।**

द्वितीय पक्ष में उसे दोष जन्य होने से उसमें स्वयं अधिष्ठानत्व का योग नहीं होगा यदि कहें कि दोषजन्यत्व प्रमात्व में प्रयोजक नहीं है, क्योंकि चित् सर्वत्र दोषजन्य है, किन्तु दोषाजन्य वृत्यवच्छिन्नत्व प्रमात्व में प्रयोजक है, प्रकृत में उसका अभाव होने से विषय में सत्यता नहीं होगी तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण दोष से अजन्य वृत्यवच्छिन्न के मिथ्या होने पर घटादि के अध्यास का असंभव होने के कारण वह घटादि का प्रकाशक नहीं होगा यदि कहें कि ज्ञान और ज्ञेय में निश्चित संयोग समवाय आदि सम्बन्ध के अभाव होने से कोई कल्पित सम्बन्ध ही स्वीकार करना होगा—वह सम्बन्ध आध्यासिक ही होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण ज्ञान और ज्ञेय में प्रसिद्ध सम्बन्ध से अतिरिक्त सम्बन्ध स्वीकार करने पर अपने ही न्याय का विरोध होगा, यही कहते हैं—"ध्वंसादेः" इस ग्रन्थ से। अपने न्याय के विरोध का उदाहरण देते हैं—'अतीतादिना' यहाँ से लेकर 'सम्बन्धो न' इत्यन्त ग्रन्थ से इस प्रकार 'अतीतादिना ध्वंसादेः सम्बन्धेन' ऐसी योजना ही मिथ्यात्व लक्षणान्तर्गतस्य का भाव है कि 'प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्' यह पराभिमत लक्षण। यहाँ निषेध का प्रतियोगी

त्वद्वाक्योक्तसम्बन्धाभावस्य ज्ञानेनाध्यासिकसम्बन्धाभावेऽपि सम्बन्धान्तरवज्ज्ञानज्ञेययोरपि सम्बन्धान्तरसम्भवात्॥ ३४॥

तदभावात्=दोषाजन्यवृत्त्यवच्छिन्नत्वाभावात्। दोषाजन्यवृत्त्यवच्छिन्नत्वस्य प्रमात्वप्रयोजकस्याभावेन प्रमात्वाभावस्तदभावे न विषयस्य सत्यत्वमित्यभिसन्धिः। प्रमात्वप्रयोजकोक्तरूपाभावादप्रमात्वं समायातं तथा सति घटाधिष्ठानत्वमेव तस्य नोपपद्यत इत्याशयेन परिहरति—**नेति।** विशेषणविशेष्यविषयविशिष्टाधीर्विशेषणविशेष्य सम्बन्धविषयिका विशिष्टधीत्वाद् दण्डीतिविशिष्टधीवदित्यनुमानमेव ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धसत्त्वे मानम्, तत्र संयोगादीनां बाधादाध्यासिकसम्बन्धस्य सिद्धिरित्याशयेन शङ्कते—**नन्विति।** ज्ञानज्ञेययोः प्रसिद्धसम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धाङ्गीकारे स्वन्यायविरोधमाह—**ध्वंसादेरिति।** स्वन्यायविरोधोदाहरणं दर्शयति—अतीतादिनेत्यारभ्यसम्बन्धो नेत्यन्तेन ग्रन्थेन। तथा च अतीतादिना ध्वंसादेः सम्बन्धो नेति योजना। **मिथ्यात्वलक्षणेति**—प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वरूपस्य मिथ्यात्वस्य पराभिमतं लक्षणं तत्र निषेधस्य प्रतियोग्यंशे निरूपितत्वं **सम्बन्ध इत्यर्थः।** अज्ञानस्य=तमसः। अज्ञेयेन=ब्रह्मणा। तन्मतेऽज्ञानाश्रयोब्रह्म एव। तदुक्तम्—"आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला। पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर" इति। **त्वद्वाक्योक्तसम्बन्धाभावस्येति**—ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धाभावं प्रतिपादयितुं ज्ञानस्य ज्ञेयेन सम्बन्धो नास्तीति प्रागुक्तं तव वाक्यं तेन तत्प्रतिपाद्यस्य सम्बन्धाभाव रूपार्थस्यैतद्वाक्यजन्यज्ञानस्य च सम्बन्धोऽस्ति। अन्यथा वाक्यप्रयोगरूपक्रियाया विरोधो मूकोऽहमितिवत्स्यात्, यथा ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धो नास्तीत्येतद्वाक्यस्यज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धाभावरूपार्थेन सम्बन्ध आवश्यकस्तथा ध्वंसप्रतियोग्यादिषु नाध्यासिकसम्बन्धः किन्त्वन्य एव सिद्धः। अन्यथा ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धो नास्त्यस्ति चेति मम माता बन्ध्येतिवत्स्ववचनविरोधः प्रसज्जेति इति भावः ।।३४।।

अंश भी निरूपितत्त्व सम्बन्ध है, अर्थात् मिथ्यात्व लक्षणान्तर्गत अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी से, शक्ति का शक्य से, अज्ञान का अज्ञेय से, इच्छा का इष्यमाण पदार्थ से, व्यवहार का व्यवर्हतव्य से, वाक्य का अर्थ से तथा वृत्ति रूप ज्ञान का ज्ञेय के साथ सम्बन्ध नहीं है, यह जो आपने पूर्व में कहा था, उस वाक्य से सम्बन्धाभावरूप अर्थ का तथा इस वाक्यजन्य ज्ञान का सम्बन्ध है—अन्यथा वाक्य प्रयोग रूप क्रिया का भूमोऽहम् इस वाक्य की तरह होगा जैसे ज्ञान और ज्ञेय का सम्बन्ध नहीं है—इस वाक्यजन्य ज्ञान, ज्ञेय का सम्बन्धाभाव रूप अर्थ के साथ सम्बन्ध आवश्यक है, उसी प्रकार ध्वंस के प्रतियोगी आदि में आध्यासिक सम्बन्ध नहीं है, किन्तु अन्य सम्बन्ध सिद्ध है अन्यथा ज्ञान, ज्ञेय में सम्बन्ध है भी नहीं भी ऐसा, मेरी माँ वन्ध्या है, इस कथन की तरह स्व वचन विरोध होगा, यह भाव है ।।३४।।

न च मिथ्याजगदन्तर्गतत्वादुक्तसम्बन्धानामपि मिथ्यात्वमिति वाच्यम्। जगन्मिथ्यात्वसिद्ध्या सम्बन्धमिथ्यात्वसिद्धिस्तन्मिथ्यात्वसिद्धौ जगतो मिथ्यात्वसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयापत्तेः। चरमवृत्तौ ब्रह्मणोऽध्यासासम्भवेन ज्ञेयाध्यासनियमभङ्गाच्च। न च तत्र ज्ञानमेव ज्ञेयेऽध्यस्तं ज्ञानज्ञेययोरन्यतरस्मिन्नन्यतराध्यासनियमादिति वाच्यम्। विकल्पासहत्वात्, ब्रह्मण्यध्यस्तधियो ब्रह्मत्वमङ्गीक्रियते न वा। आद्ये

वज्रोत्तेजिका— उक्तामापत्तिं परिहर्तुकाम आह—**मिथ्येति**। अन्योन्याश्रयदोषेणोक्तार्थं निरस्यति—**जगन्मिथ्यात्वसिद्ध्येति**। ज्ञानज्ञेययोः सर्वत्राध्यासनियमे व्यभिचारं शङ्कते—**चरमवृत्ताविति**। चरमवृत्तौ ब्रह्मणोऽध्यासाभावेऽपि साक्षात्कारश्रवणादिक्रियायां ब्रह्मणोऽध्यासोऽङ्गीक्रियत इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। विकल्पमेव स्फुटयति **ब्रह्मणीति। आद्य इति**—सर्वस्यापि ब्रह्मण्यध्यस्तत्वेन घटसाक्षात्कारस्यापि ब्रह्मण्यध्यस्तत्वात्तज्ज्ञानेनैव मोक्षः स्यादित्यर्थः। **अनिर्मोक्षप्रसङ्गादिति**—ब्रह्मण्यध्यस्ते ब्रह्मसाक्षात्कारे ब्राह्मीयत्वाभावे मोक्षानुपपत्तिरित्यर्थः। घटादिज्ञाने चरमवृत्त्यध्यासविशेषशुद्धब्रह्मविषयताप्रयोजको नास्तीति नापत्तिरित्याह **अध्यासविशेष इति**। ज्ञानज्ञेययोर्विषयतानियामको नाध्यासविशेषोऽपि तु करणविषय-योरिन्द्रियसंनिकर्षजन्यवृत्तिद्वारकसम्बन्धविशेष इत्याशयेन समाधत्ते—**करणविषय-योरिति**। यदि शुद्धे ब्रह्मणि चरमज्ञानस्याध्यासस्स्यात्तदा सोऽध्यासविशेषः शुद्धब्रह्मविषयताप्रयोजको घटादिबुद्धौ नास्तीत्युक्तिः सङ्गता स्यान्न त्वेवमित्याह-

हिन्दी अनुवाद— यदि कहें कि मिथ्या जगत् के अन्तर्गत होने से उक्त सम्बन्धों में भी मिथ्यात्व हो जाएगा तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि जगत् के मिथ्यात्व सिद्ध होने पर सम्बन्ध में मिथ्यात्व सिद्धि और सम्बन्ध में मिथ्यात्व सिद्ध होने पर जगत् की मिथ्यात्व सिद्धि होगी इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति होगी। दूसरी बात अन्तिम वृत्ति में ब्रह्म के अध्यास का असंभव होने से ज्ञेयाध्यास के नियम का भङ्ग हो जाएगा। अब यहाँ चरमवृत्ति में ब्रह्म में अध्यास के अभाव होने पर भी साक्षात् का श्रवण आदि क्रिया में ब्रह्म का अध्यास स्वीकार करते हैं—ऐसी आशंका करके परिहार करते हैं—यदि कहें कि वहाँ ज्ञान ही ज्ञेय में अध्यस्त है, क्योंकि ज्ञान-ज्ञेय के एक दूसरे में अध्यास का नियम है—तो ऐसा नहीं कह सकते। इस विषय में विकल्प होने पर उसका कोई उत्तर नहीं है, हम पूछेंगे कि ब्रह्म में अध्यस्त बुद्धि-ब्रह्म बुद्धि है या नहीं? प्रथम पक्ष में ब्रह्म में अध्यस्त घट बुद्धि में भी ब्रह्मज्ञानत्व की आपत्ति के कारण—उसी से मोक्ष की आपत्ति होगी, द्वितीय पक्ष

घटधियोऽपि तत्राध्यस्ताया ब्रह्मधीत्वापत्त्या तत एव मोक्षापत्तेर्द्वितीये चानिर्मोक्षप्रसङ्गात्। न चाध्यासविशेषशुद्धब्रह्मविषयतायाः प्रयोजको घटादिबुद्धौ नास्तीति वाच्यम्। करणविषययोः सम्बन्धविशेषस्यैव ज्ञानज्ञेययोर्विषयतानियामकत्वेन ज्ञानज्ञेयसम्बन्धस्य विषयता-समानयोगक्षेमस्य विषयत्वानियामकत्वात्। अथ चरमज्ञान-

---

अथेति। यज्ज्ञेयं तज्ज्ञानेऽध्यस्तमिति ज्ञानज्ञेययोराध्यासिकनियमे व्यभिचारं दर्शयति—**परोक्षज्ञान इति।** पर्वतो वह्निमानिति ज्ञान इत्यर्थः। तत्र वह्न्यंशेऽन्तःकरणवृत्तिनिर्गमनाभावेन वह्न्यवच्छिन्नचैतन्यस्य प्रमाणचैतन्यस्यपरस्परं भेदात्, तदंशे परोक्षत्वमेवं स्मृतावपि बोध्यमिति भावः। ननु स्मर्यमाणमपि स्मृतावेवाध्यस्तं स्मृतेश्चैतन्यरूपत्वादिति चेन्न, स्मृतेरन्तःकरणवृत्त्यात्मकत्वात्तत्र चैतन्यप्रतिफलनादेरभावात्। उक्तस्थलेऽधिष्ठानविषयकवृत्त्यभिव्यक्त-चैतन्यांशेऽध्यासस्वीकारान्नोक्तापत्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति।** परोक्षस्थलेऽपि विषयांश एव ज्ञानत्वं न त्वभिव्यक्तचैतन्यांश इत्याशयेन समाधत्ते—**अभिव्यक्त-चैतन्यस्येति।** तत्रहेतुमाह-**ज्ञानभिन्न इति।** ज्ञानज्ञेययोरेवाध्यासो न तु चैतन्येचैतन्य-स्याध्यासो भवितुं युक्तं इति भावः। ननु घटाकारवृत्तिप्रतिबिम्बितं चैतन्यं घटप्रकाशक-मित्यत आह—**ज्ञानज्ञेययोरिति।** यथा परोक्षस्थले विषयाध्यासो न भवति तथाऽपरोक्षस्थलेऽपि स्यादित्याह—**परोक्षइवेति।** अधिष्ठानस्याध्यस्तात्पूर्वं सत्त्वमिति नियमस्तस्मात्प्रातिभासिकाद्रूप्यात्प्राक् प्रातिभासिकस्य तज्ज्ञानस्य सत्त्वमयुक्तं रूप्यस्य प्रतिभासमात्रशरीरत्वेन तयोरेककालीनत्वात्। इतोऽपि रूप्यस्य न ज्ञानेऽध्यासस्तथात्वे तन्मतविरोधः स्यादित्यभिप्रेत्याह—**रूप्यादिकमिति।** इदमंशे=शुक्त्यवच्छिन्ने। तेन= चैतन्येन। अविद्याप्रतिबिम्बितेन चैतन्येन रूप्यादिकं भास्यत इति योजना। तथा च रूप्याकाराविद्या प्रतिबिम्बितचैतन्य एव रूप्यज्ञानमित्यर्थः। रूप्यज्ञानाधिष्ठानयोर्भे-

---

में—अनिर्मोक्ष का प्रसंग होगा। ब्रह्म में अध्यस्त ब्रह्म साक्षात्कार ही ब्रह्मत्व के अस्वीकार करने पर—मोक्ष की अनुपपत्ति होगी। यदि कहें कि घट आदि के ज्ञान में चरम वृत्ति रूप अध्यास विशेष शुद्ध ब्रह्म विषयता प्रयोजकत्व नहीं होने से उक्त आपत्ति नहीं होगी तो ऐसा नहीं कह सकते कारण ज्ञान और ज्ञेय में विषयता नियामक कोई अध्यास विशेष नहीं है, अपितु करण (इन्द्रिय) और विषय में इन्द्रिय सन्निकर्षजन्य वृत्तिद्वारक सम्बन्ध विशेष है—यही बात कहते हैं—'करण विषययोः विषयत्वा नियामकत्वात्' ग्रन्थ में। यदि शुद्ध ब्रह्म में चरम ज्ञान का अध्यास होगा तब वह अध्यास विशेष, शुद्ध ब्रह्म विषयता प्रयोजक घटादि बुद्धि में नहीं है, यह कथन संगत होता ऐसा तो है नहीं—यही कह रहे हैं 'अथ चरम

स्यान्तःकरणावच्छिन्न एवाध्यासो न शुद्धचिन्मात्रेऽहं जानामीति प्रतीतेः, शुद्धं जानातीत्यप्रतीतेश्च परोक्षज्ञाने स्मृतौ प्रातीतिकज्ञाने च विषयाध्यासाभावेन ज्ञानज्ञेययोराध्यासिकसम्बन्धनियमभङ्गाच्च। प्रातीतिकज्ञानस्य त्वया मिथ्यात्वाङ्गीकारात्। न च नित्यपरोक्षस्थले स्मृतिस्थले च वृत्तावनध्यासेऽप्यधिष्ठानविषयकवृत्त्यभिव्यक्तचैतन्य एवाध्यास इति न काप्यनुपपत्तिरितिवाच्यम्। अभिव्यक्त चैतन्यस्य परोक्षस्थले ज्ञानत्वाभावात्। ज्ञानभिन्ने ज्ञेयाध्यासे

दात्र रूप्यादेः स्वज्ञानेऽध्यास इति भावो रूप्यादेः स्वज्ञानेऽध्यस्तत्वस्वीकारे प्रसक्तामापत्तिं दर्शयति—**स्वज्ञान इति।** रूप्यज्ञानेन रूप्यभ्रमनिवृत्तिप्रसङ्ग इत्याह—**रूप्यज्ञानस्येति।** न चेष्टापत्तिः, ज्ञानस्य ज्ञातैकसत्वेन तदज्ञानायोगादिति भावः। उक्तार्थमेव युक्त्या दृढयति—**अधिष्ठानेति।** उक्तापत्तिं निरसितुमाशङ्कते—**नन्विति।** तच्च इदमंशावच्छिन्न चैतन्यम्। एतावता=द्वयोः, चैतन्ययोरभेदेपि। तदपेक्षा—रूप्याकारवृत्त्यवच्छिन्नत्वेन चैतन्यस्यापेक्षा तस्य=इदमंशावच्छिन्नचैतन्यस्य। अस्य भ्रमविरोधिशुक्तित्वाद्याकारेणज्ञानमित्यत्रान्वयः। उपाधिभेदादुपहितं भिद्यत इति न तज्ज्ञाने रूप्यस्याध्यासः कर्तुंशक्य इत्याशयेन परिहरति—**नेति।** विषयवृत्त्योरूपोपाध्योर्भेदात्तदुपहितं चैतन्यं भिद्यत इति न वृत्त्यवच्छिन्ने ज्ञाने विषयस्याध्यास इत्यर्थः। दृग्दृश्ययोराध्यासिकसम्बन्धातिरिक्तो विषयविषयिभावसम्बन्ध इत्युपपादयन्नाह—**अपि चेति।** यदि दृग्दृश्ययोर्वृत्तेः प्रागप्याध्यासिकसम्बन्धस्य

ज्ञानस्य०' इत्यादि ग्रन्थ द्वारा। अर्थात् यदि कहें कि चरम ज्ञान का अन्तःकरणावच्छिन्न में ही अध्यास होता है न कि शुद्ध चिन्मात्र के कारण 'अहं जानामि' ऐसी प्रतीति होती है, और 'शुद्धं जानाति' ऐसी प्रतीति नहीं होती, परोक्ष ज्ञान स्मृति में तथा प्रातीतिक ज्ञान में विषय के अध्यास का अभाव होने से ज्ञान और ज्ञेय में आध्यासिक सम्बन्धरूपी नियम का भंग भी हो जाता है और आपके प्रातीतिक ज्ञान (प्रतीत होनेवाला) को मिथ्या माना है। उक्त स्थल में अधिष्ठान विषयक वृत्ति में अभिव्यक्त चैतन्यांश में अध्यास स्वीकार करने से उक्त आपत्ति नहीं होगी ऐसी आशंका करके उसका परिहार करते हैं—'न च परोक्ष स्थले...' इत्यादि ग्रन्थ द्वारा अर्थात् यदि कहें कि नित्य परोक्ष स्थल में और स्मृति स्थल के वृत्ति में अध्यास न होने पर भी अधिष्ठान विषयक वृत्ति में अभिव्यक्त चैतन्य में ही अध्यास है—इस प्रकार कोई अनुपपत्ति नहीं होगी तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि परोक्ष स्थल में अभिव्यक्त चैतन्य में ज्ञानत्व का अभाव है—कारण ज्ञान से भिन्न ज्ञेयाध्यास के कोई

मानाभावात्त्वयानङ्गीकारात्। ज्ञानज्ञेययोराध्यासिकसम्बन्धाभावेऽपि विषयप्रकाश आध्यासिकसम्बन्धस्यातन्त्रत्वापाताच्च, परोक्ष इवापरोक्षज्ञानेऽपि विषयानध्यासापाताच्च। परोक्षस्थलेऽभिव्यक्तापरोक्षैकरसचैतन्यस्य ज्ञानत्वे विषयापरोक्षापाताच्च। रूप्यादिकमिदमंशावच्छिन्ने चैतन्येऽध्यस्तं भास्यते चाविद्याप्रतिबिम्बितेन तेनेति विषयिणि ज्ञाने विषयाध्यासाभावाच्च। रूप्यादेः स्वज्ञानेऽध्यासे रूप्यज्ञानस्याज्ञाने भ्रमोत्पत्तिस्तज्ज्ञाने च तन्निवृत्तिरित्यापत्तेश्च।

सत्त्वाद्विषयभानापत्तिस्तदुपपत्तये वृत्तिरवश्यमभ्युपेया तत्सत्त्वे विषयप्रकाशस्तदभावे विषयप्रकाशाभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यांवृत्तेरेव ज्ञानत्वमभ्युपेयम्। तथा च वृत्तेरेव ज्ञानत्वात्तस्याश्च घटेन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्वेन वृत्तेः पूर्वं घटस्य सत्त्वान्न तस्य ज्ञानेऽध्यासोऽतो ज्ञानविषयोः सत्यो विषयविषयिभाव एव सम्बन्ध इत्यर्थः। **न चेति**। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**इतरथेति**। वृत्तिभिन्नज्ञानानभ्युपगमइति तदर्थः। मानाभावेन=साधकाभावेन। तस्य=विषयस्य। येन पुरुषेण घटो ज्ञातस्तं प्रति तस्याज्ञातत्वमसम्भवदुक्तिकमिति प्रागज्ञानमेव न सिद्ध्यतीत्याह—**तत्पुरुषस्येति**। आध्यासिकसम्बन्ध इत्यस्य कोऽर्थो भवतामभिप्रेतः किं कश्चित्सम्बन्धएवाध्यस्तः, किम्वा तदध्यस्तत्वमेव सम्बन्धः? इति विकल्पयति—**किञ्चेति**। आद्यपक्षे दोषमुद्भावयति—**आद्य इति**। सम्बन्धिनो दृशः पारमार्थिकत्ववत् सम्बन्धित्वाविशेषाद्विषयस्यापि पारमार्थिकत्वं स्यात्ततश्च न दृश्यस्य मिथ्यात्वं सिद्ध्यतीत्यर्थः। अध्यस्तस्यसम्बन्धत्वपक्ष एकस्यापरत्राध्यासो वक्तव्यस्तत्र न

प्रमाण नहीं होने से उसे आपने स्वीकार नहीं किया है। यदि कहें कि घटाकार वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य घट का प्रकाशक है। इसलिये कहते हैं—"ज्ञान ज्ञेययोः" अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय में आध्यासिक सम्बन्ध के अभाव में भी विषय का प्रकाश मानने पर आध्यासिक सम्बन्ध में अकारणत्व की आपत्ति होगी, परोक्ष की तरह अपरोक्ष ज्ञान में भी विषय के अनध्यास की आपत्ति होगी, तथा परोक्ष स्थल में अभिव्यक्त अपरोक्ष एकरस चैतन्य को ज्ञान मानने पर—विषय में अपरोक्ष की आपत्ति तथा रजतादि शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य में अविद्या प्रतिबिम्बित चैतन्य से रजतादि भाषित होता है—इस प्रकार विषयी ज्ञान से विषय के अध्यास का अभाव भी होगा—एवं रजत आदि का अध्यासरूप स्वीयज्ञान में रजतज्ञान का अज्ञान में भ्रम की उत्पत्ति—और उसके ज्ञान में उसकी निवृत्ति इत्याकारक आपत्ति भी हो जाएगी—कारण अधिष्ठान के अज्ञान एवं ज्ञान से अध्यास का जन्म एवं निवृत्ति

अधिष्ठानाज्ञानज्ञानाभ्यामध्यासजन्मनिवृत्त्योर्नियतत्वात्। नन्विदमंशावच्छिन्नचैतन्यं रूप्याधिष्ठानं तच्च दैवाद्रूप्याकारवृत्त्यवच्छिन्नमपि नैतावता भ्रमाधिष्ठानत्वे तदपेक्षा तस्य भ्रमविरोधिशुक्तित्वाद्याकारेणाज्ञानं भ्रमहेतुस्तेनाकारेण ज्ञानं भ्रमविरोधीति चेन्न, उपाधिभेदेनोपहित-भेदावश्यकत्वेनेदमंशावच्छिन्नभिन्ने रूप्याकारवृत्त्यवच्छिन्ने रूप्यज्ञाने

तावज्ज्ञानं ज्ञेयेऽध्यस्तं ज्ञेयस्य मिथ्यात्वेन ज्ञानं प्रत्यधिष्ठानत्वाभावादित्याशयेन द्वितीयकल्पं निराकरोति—**द्वितीय इति।** तत्र ज्ञाने। अवच्छेदिकायाः=अवच्छिन्नत्वसम्बन्धेन विशेषणीभूतायाः। तत्र=चैतन्ये। ज्ञेयस्य ज्ञानेऽध्यासो वाच्यः स न युक्तो व्यावहारिकस्य घटादेर्मिथ्याभूतवृत्यवच्छिन्नचैतन्येऽनध्यासात् यदि, वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्य व्यावहारिकत्वमङ्गीकृत्याध्यासोपपत्तिरित्युच्यते तदपि न, व्यावहारिके तज्ज्ञानेऽनध्यासात्। प्रातिभासिकस्य रूप्यादेः प्रातिभासिके तज्ज्ञानेऽनध्यासवदित्याशयेनोक्तशङ्कां व्युदस्यति—**वृत्त्यवच्छिन्नस्येति।** तत्र=वृत्त्य-वच्छिन्नचैतन्ये। तस्य=वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्य। **व्यभिचारापत्तेरिति।** वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्ये मिथ्यात्वरूपसाध्याभाववति दृश्यत्वरूपहेतोस्सत्वाद्व्यभिचार इत्यर्थः। अध्यासातिरिक्तो विषयविषयिभावः सम्बन्धः सिद्ध्यतीति यदुक्तं तदयुक्तमित्याशङ्क्य परिहरति—**न**

निश्चित है। अब उक्त आपत्ति के निराश हेतु शंका करते हैं—"नन्विदमंशावच्छिन्नचैतन्यम्...." से, अर्थात् यदि कहें कि इदमंशावच्छिन्न चैतन्य रजताध्यास का अधिष्ठान है, वही संयोगवशात् रजताकार वृत्यवच्छिन्न भी है, इस प्रकार उभय चैतन्य में अभेद होने पर भी भ्रम के अधिष्ठान में रजताकार वृत्यवच्छिन्नत्वेन चैतन्य की अपेक्षा नहीं होगी, इदमंशावच्छिन्न चैतन्य का भ्रम के अविरोधी शुक्तित्व आदि आकार से अज्ञान भ्रम का हेतु है, शुक्तित्वाद्याकारेण ज्ञान भ्रम विरोधी है—तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण उपाधिभेद से उपहित का भेद आवश्यक होने से इदमंशावच्छिन्न से भिन्न रजत का वृत्यवच्छिन्न रजत ज्ञान में रूप्य को अध्यास की सिद्धि नहीं होगी। विषय वृत्ति रूप दोनों उपाधियों में भेद होने से तदुपहित चैतन्य भिन्न होता है—इसलिये वृत्यवच्छिन्न ज्ञान में विषय का अध्यास नहीं होगा, यह भाव है। अब कहते हैं कि दृक् और दृश्य में आध्यासिक सम्बन्ध से अतिरिक्त विषय-विषयिभाव सम्बन्ध—इसी का उपपादन करते हुए कहते हैं—"अपि च वृत्युदयात् प्राक्..." इत्यादि। अर्थात् वृत्ति के उदय से पहले

रूप्याध्यासासिद्धेः। अपि च वृत्त्युदयात्प्रागध्यासिकसम्बन्धस्य सत्वेऽपि विषयप्रकाशाभावादन्वयव्यतिरेकाभ्यां वृत्तिरेव ज्ञानं तत्राध्यासिकसम्बन्धाभावादन्य एव सत्यः सम्बन्धो वक्तव्यः। न च वृत्त्युदयात्प्रागज्ञातार्थसिद्ध्यर्थं वृत्तिभिन्नं ज्ञानमवश्यमभ्युपेयम्, इतरथा मानाभावेन तस्य तुच्छतया सन्निकर्षतज्ज्ञानहेतुत्वेन प्राक्सत्वकल्पना प्रामाणिकी न स्यादिति वाच्यम्। तत्पुरुषस्य तज्ज्ञाने तं प्रति तस्याज्ञातत्वासम्भवात्। किञ्चाध्यासिकसम्बन्धो नाम, अध्यस्तसम्बन्धो

चेति। तस्य वाच्यमित्यनेनान्वयः। सम्बन्धस्य=दृग्दृश्ययोः सम्बन्धमात्रस्य। सम्बन्धिभ्यां भिन्नत्वे=स्वसम्बन्धिभिन्नत्वे। **अनवस्थापत्तिरिति**—घटतद्दृशोर्भिन्नो सम्बन्धे सम्बन्धान्तरं तत्रापि सम्बन्धान्तरमित्यनवस्थापत्तिरित्यर्थः। **अभिन्नत्व इति**—सम्बन्धस्य सम्बन्ध्यभिन्नत्वे सम्बन्धिन एव सत्त्वं प्राप्तं न तु सम्बन्धस्येत्यर्थः। आध्यासिकसम्बन्धस्यभिन्नत्वेऽनवस्थाया अभिन्नत्वे सम्बन्धत्वासिद्धिरिति दोषः तवापि समान इत्याह—उक्तेति। तस्य=आध्यासिकसम्बन्धस्य। सौगतेनापीति—भवतस्तन्निरासप्रयासोऽनुपपन्नस्तेनापि व्यावहारिकमायया सर्वदोषनिराकरणादिति सौगतेनेत्युक्त्या सूचितम्। मम मतेऽप्यचिन्त्यभगवच्छक्त्यैव सर्वं भवितुं युक्तमित्याह—**ममापीति।** ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धस्य मिथ्यात्वं भवतु नाम तयोरमिथ्यात्वमुदाहरणेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**अपि चेति।** तयोः=असंयुक्तवृक्षयोः। सम्बन्धिनोः=दृग्दृश्ययोः। नहि केषाञ्चिन्निर्वचनाशक्तिमात्रेण वस्तुनां मिथ्यात्वं कल्पयितुं शक्यते तथात्वे तु

आध्यासिक सम्बन्ध होने पर भी विषय का प्रकाश न होने से अन्वयव्यतिरेक के द्वारा वृत्ति ही ज्ञान है उसने आध्यासिक सम्बन्ध के अभाव होने से अन्य ही कोई सत्य सम्बन्ध कहना होगा, तात्पर्य है कि यदि दृक् और दृश्य में वृत्ति से पहले आध्यासिक सम्बन्ध होने से विषय के भान की आपत्ति होगी—उसकी उपपत्ति के लिये वृत्ति अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी, उसमें रहने पर विषय का प्रकाश एवं उसके अभाव में विषय प्रकाश का अभाव—इस अन्वय व्यतिरेक द्वारा वृत्ति को ही ज्ञान मानना पड़ेगा। इस प्रकार वृत्ति के ही ज्ञान होने से—और उस वृत्ति के इन्द्रिय सन्निकर्षजन्य होने से वृत्ति से पूर्व घट के रूपक होने से उसका ज्ञान में अध्यास नहीं हो सकता, इसलिये ज्ञान और विषय का सत्य विषय-विषयिभाव ही सम्बन्ध है यह अर्थ है। यदि कहें कि वृत्ति के उदय से पूर्व अज्ञात अर्थ की सिद्धि के लिये

वा ? अध्यस्तत्वमेव वा ? आद्ये सम्बन्धस्य मिथ्यात्वेऽपि सम्बन्धिनो दृश इवामिथ्यात्वापत्तिः। द्वितीये ज्ञानस्याप्यध्यस्तत्वेन तत्रेतराध्यासानुपपत्तेः। न च वृत्त्यवच्छिन्नं ज्ञानं तत्रावच्छेदिकावृत्तेर्जडाया अध्यस्तत्वेऽप्यवच्छेद्यस्य चैतन्यस्यानध्य-स्तत्वेन तत्र दृश्याध्यासापत्तिरिति वाच्यम्। वृत्त्यवच्छिन्नस्य मिथ्यात्वेन तत्र व्यावहारिकघटाध्यासासम्भवात्। तस्य सत्वे दृश्यत्वादेस्तत्र व्यभिचारापत्तेः। न च सम्बन्धस्य सम्बन्धिभ्यां भिन्नत्वेऽनवस्था-

आनन्दत्वादीनां खण्डनकारोक्तरीत्या दुर्वचत्वेन ब्रह्मणोऽप्यानन्दरूपता न स्यादित्याह—**किञ्चेति**। ब्रह्मणो दुर्निरूप्यत्वस्य त्वयोक्तत्वात्तस्याप्यनिर्वाच्यत्वं स्यादित्याह—**त्वयैवेति**। तत्=प्रत्यगात्मस्वरूपम्। कीदृक्=कीदृशमिति चेत् पृच्छसि तर्हि। तादृक्=तादृशम्। ईदृक्=ईदृशमिति निरूपणं यत्र न प्रसरति तद्वस्तु प्रत्यगित्यवधार्यतामित्यनेन दुर्निरूप्यत्वस्याभिधानाद्-ब्रह्मणोऽप्यसत्वं प्रसज्जेत इत्यर्थः। दुःखादिप्रत्यनीकत्वम्=दुःखादिविरोधित्वम्। तत्र= निर्विशेषे ब्रह्मणि। उक्तदोषस्य—दुर्वचत्यत्वापत्तिरूपस्य। उपसंहरति—**तस्मादिति**। सखण्डम्=बहुपदार्थघटितत्वम्। अखण्डम्=बहुपदार्थाघटितत्वम्। **प्रमाणबलादिति**=अभाववद्भूतलं ज्ञातो घट दृष्टो घटो घटस्याभाव इत्यादिकाः परस्परासंयुक्ता धीः समवेतविशेषणविशेष्यतासम्बन्धविषयिका विशिष्टधीत्वात्,

वृत्ति भिन्न ज्ञान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा वृत्ति भिन्न ज्ञान के स्वीकार न करने पर कोई साधक न होने के कारण विषय की तुच्छता होने से सन्निकर्ष का ज्ञान हेतु रूप से उसकी प्राक् सत्ता की कल्पना प्रामाणिक नहीं होगी—तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण जिस पुरुष ने घट को जाना उसके प्रति यह कहना कि उसे वह विषय ज्ञात नहीं है—यह कथन असंभव है—इसलिये पहले अज्ञान ही सिद्ध न होता। दूसरी बात—आध्यासिक सम्बन्ध से आपका क्या अभिप्राय है? क्या कोई सम्बन्ध ही अध्यस्त है अथवा वह अध्यस्तत्व ही सम्बन्ध है? प्रथम पक्ष में सम्बन्ध को मिथ्या मानने या सम्बन्धी ज्ञान की तरह उसमें अमिथ्यात्व (सत्यत्व) की आपत्ति होगी अर्थात् सम्बन्धी ज्ञान के पारमार्थिकत्व की तरह सामान्य रूप से सम्बन्धित्व होने से विषय में पारमार्थिकत्व हो जाएगा—फिर तो दृश्य का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा—यह भाव है। अध्यस्त के सम्बन्धत्व पक्ष में—एक का अन्यत्र-अन्यत्र अध्यास कहना होगा—ऐसी स्थिति में पहले तो ज्ञान ज्ञेय में अध्यस्त नहीं होगा—कारण ज्ञेय के मिथ्या होने से ज्ञान के प्रति उसमें अधिष्ठानत्व का अभाव है—

पत्तिरभिन्नत्वे सम्बन्धत्वहानिरिति वाच्यम्। उक्तदोषस्याध्यासिक-सम्बन्धेऽपि साम्यात्। न च तस्य मायिकत्वेन नोक्तदोष इति वाच्यम्। मायायाश्च घटादिभ्यो घटादेर्मृदादेश्चोत्पत्त्यापत्तेः। व्यावहारिकमर्यादा-यास्त्वज्ज्येष्ठेन सौगतेनापि स्वीकार्यत्वाच्च। ममाप्यचिन्त्यातर्क्याघट-घटनापटीयस्येश्वरशक्त्यैव सत्यसम्बन्धोपपत्तेः। यादृशविषयत्वं तव वृत्तिं प्रति शुद्धे ब्रह्मणि तादृशविषयत्वमेव वृत्तिं प्रति घटादिष्वस्तु। न च वृत्तौ ब्रह्मानध्यासेऽपि वृत्तेरेव तत्राध्यास इति वाच्यम्। घटादिषु ज्ञानस्याध्यासापत्तेः। अपि च दूरस्थासंयुक्तवृक्षयोः संयुक्ततया

दण्डीति विशिष्टधीवत्। परस्परासंयुक्तेति पक्षः। अभाववद्भूतलमित्यादि तद्विवरणरूपम्। संयोगसमवायाभ्यामर्थान्तरतापरिहाराय पक्षे परस्परासंयुक्तेति पदमुपात्तम्। दृष्टान्ते संयोगमादाय पर्य्यवसानम्, पक्षे तु संयोगसमवायातिरिक्तविषयतासम्बन्धमादाय तथात्वमिति विवेकः। उक्ता जन्यप्रमा विशेषणविशेष्यसम्बन्धनिमित्तिका, अबाधितविशिष्टधीजन्यत्वात् सम्मतवत्। ईश्वरप्रमामादाय बाधवारणाय जन्येत्युक्तम्। अबाधितपदाभावे इदं रजतमिति भ्रमे व्यभिचारः शुक्तौ रजतत्वसंयोगसमवाययोर्बाधेन साध्याभावात्, हेतोः सत्त्वात्, अतस्तन्निवेशितम्। ईश्वरधियां व्यभिचारवारणाय हेतौ जन्यपदम्। विमता धीरबाधित विशेषणविशेष्यसम्बन्धविषयिका, अबाधितविशिष्टधीत्वात् दण्डीतिप्रमावत्। अत्रापि पदानां प्रयोजनं

इसी आशय से द्वितीय विकल्प का निराकरण करते हैं कि द्वितीय पक्ष में ज्ञान के भी अध्यस्त होने से उसमें इतर अध्यास की उपपत्ति नहीं होगी। यदि कहें कि वृत्ति से अवच्छिन्न ज्ञान है—उस ज्ञान में अवच्छिन्नत्व सम्बन्ध से विशेषणीभूत जड़ात्मिका वृत्ति के अध्यस्त होने पर भी अवच्छेद्य चैतन्य के अनध्यस्त होने से उसमें दृश्य के अध्यास की आपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—क्योंकि वृत्यवच्छिन्न के मिथ्या होने से उसमें व्यावहारिक घटादि का अध्यास सम्भव नहीं है, वृत्यवच्छिन्न चैतन्य में वृत्यवच्छिन्न चैतन्य की व्यभिचारापत्ति होगी, अर्थात् वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य में मिथ्यात्वरूप साध्याभाव में दृश्यत्व रूप हेतु के सद् भाव से व्यभिचार की आपत्ति होगी। अब अध्यास से अतिरिक्त विषय-विषयिभाव सम्बन्ध सिद्ध होता है—ऐसा जो कहा गया, वह युक्त नहीं है—ऐसी आशंका करके परिहार करते हैं—'न च सम्बन्धस्य सम्बन्धिभ्याम्...' इस ग्रन्थ से अर्थात् कहते हैं कि सम्बन्ध को सम्बन्धी से भिन्न मानने पर अनवस्थापत्ति तथा अभिन्न मानने पर सम्बन्ध की हानि

गृह्यमाणयोः संयोगस्य मिथ्यात्वेऽपि तयोरमिथ्यात्ववत्प्रकृतेऽपि सम्बन्धस्य मिथ्यात्वेऽपि सम्बन्धिनोरमिथ्यात्वोपपत्तेः। किञ्च सम्बन्धस्य निरुक्त्यभावेन मिथ्यात्वाङ्गीकारे ब्रह्मण आनन्दत्वज्ञानत्वसत्यत्वस्वप्रकाशत्वादीनां खण्डनोक्तरीत्या दुर्वचत्वेन ब्रह्मतत्त्वतोऽनानन्दादिरूपं त्वयैव कीदृक् तत्प्रत्यगिति चेत् तादृगीदृगिति द्वयं न प्रसरत्येतत् प्रत्यगित्यवधारयेति ब्रह्मणोर्दुर्वचत्वमुक्तमिति तस्याप्यसत्त्वं स्यात्। न चानन्दत्वादिधर्मवत्तया दुर्निरूप्यत्वेऽपि दुःखादिप्रत्यनीकत्वाद्युप-लक्षितस्वरूपत्वेन सुनिरूपमिति वाच्यम्। तत्र

पूर्वानुमानप्रयोगवदनुसन्धेयम्। एतान्यनुमानानि विषयविषयिभाव-सम्बन्धप्रमाणतयाऽनुसन्धेयानि। तेषां बलादेव ज्ञानज्ञेययोः संयोगसमवायातिरिक्तो द्विष्ठो विषयत्वरूपसम्बन्धः सिद्ध्यतीत्याशयः। ननु संयोगादेरेव सम्बन्धत्वात्तस्य च ज्ञानज्ञेयादिष्वभावात्तत्र सम्बन्धानुमानं बाधितमिति चेन्न, यतः संयोगसमवायाद्यतिरिक्त सम्बन्धसाधकं व्याकरणमहाभाष्यमेव तथाहि ''षष्ठी स्थाने योगे'' त्यत्र महाभाष्ये। एकशतं षष्ठ्यर्था इति ते स्वस्वामिभावादयः सम्बन्धाः षष्ठी दण्डके पठिता इत्युक्तं

होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—उक्त दोष तो आध्यासिक सम्बन्ध में समान है। यदि कहें कि आध्यासिक सम्बन्ध मायिक होने से उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते—ऐसा कहने पर माया का घटादि से और घट आदि का मृत्तिका आदि से उत्पत्ति की आपत्ति होगी, व्यावहारिक मर्यादा तो बौद्धों ने भी स्वीकार की है। इसलिये आपका उसके निरास का प्रयास युक्त नहीं है। कारण व्यावहारिक माया से सभी दोषों का निराकरण तो बौद्ध कर लेते हैं और मेरे (वैष्णवमत) में भी भगवान् की अचिन्त्य अर्थात् शक्ति से सब कुछ सम्भव होता है। जैसी विषयता आपकी वृत्ति के प्रति शुद्ध ब्रह्म में है वैसी ही विषयता वृत्ति के प्रति घट आदि में है। यदि कहें कि वृत्ति में ब्रह्म का अध्यास न होने पर भी वृत्ति का ब्रह्म में अध्यास होता है तो ऐसा नहीं कह सकते, तब तो घट आदि में ज्ञान के अध्यास की आपत्ति होगी और जैसे दूर में स्थित असंयुक्त वृक्ष भ्रमवश संयुक्त रूप से प्रतीत होने पर उनका संयोगि मिथ्या होने पर भी दोनों वृक्षों में मिथ्यात्व नहीं होता उसी प्रकार प्रकृत में सम्बन्ध में मिथ्यात्व होने पर भी सम्बन्धियों में दृक्दृश्य में अमिथ्यात्व की

दुःखादिप्रत्यनीकत्वादीनां त्वयानङ्गीकारेणोक्तदोषस्य तादवस्थ्यात्। तस्मादिक्षुक्षीरमाधुर्यादिवद्दुर्वचमपि विषयत्वं सखण्डमखण्डं वा सत्यमेव सम्बन्धः प्रमाणबलात्स्वीकार्यः। इतरथोक्तदोषयोगादितिज्ञानज्ञेययोराध्यासिकसम्बन्धानुपपत्त्याऽप्यध्यासासिद्धिरिति सिद्धम्॥ ३५॥

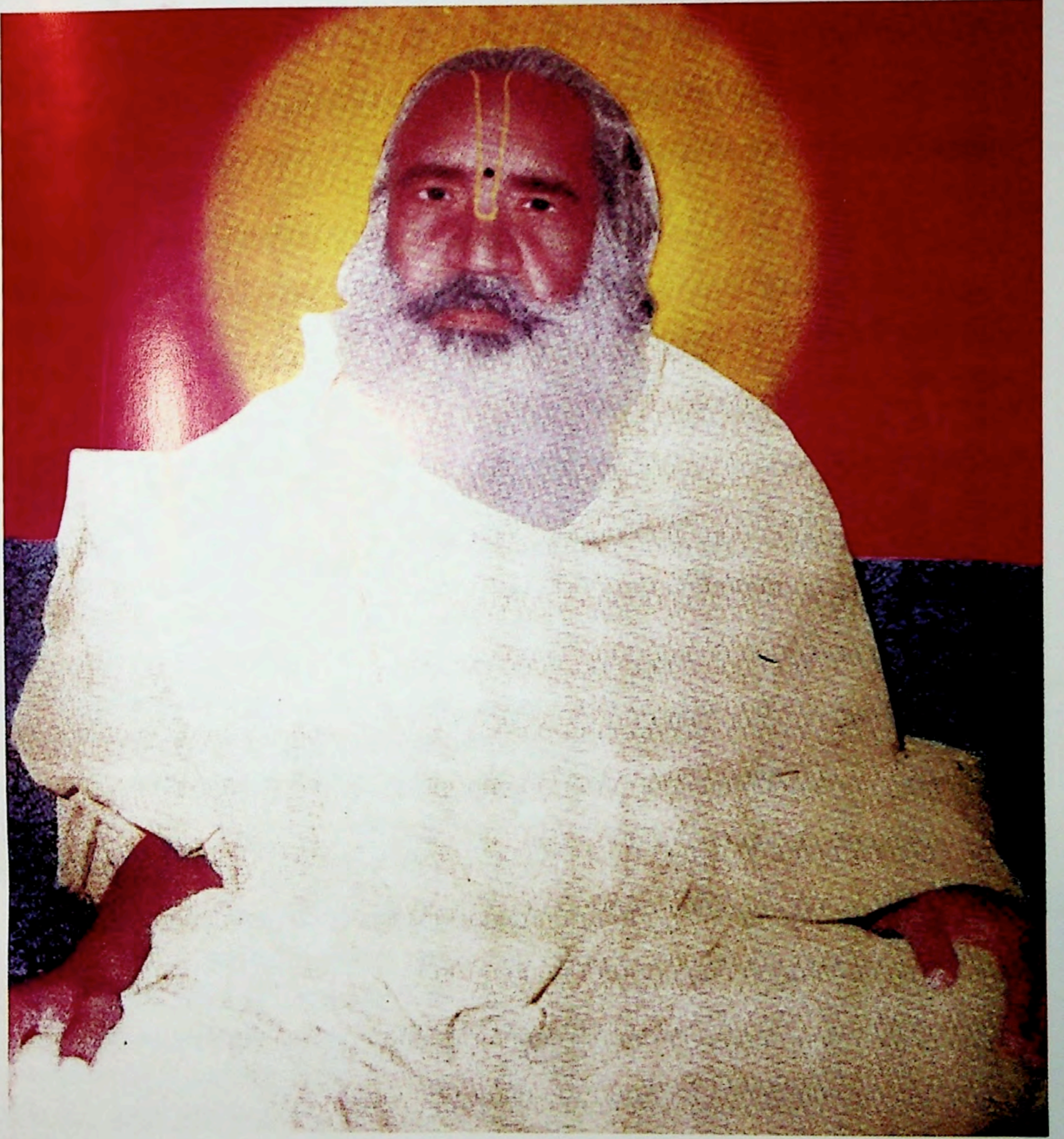
इति पराभिमताध्यासगिरेराध्यासिकसम्बन्धोपपत्तिशिखरनिपातः॥ ६॥

कैयटे। षष्ठीदण्डको नाम ग्रन्थविशेषः। प्रमितवस्त्वनुसारेण हि प्रक्रिया कल्प्या न तु स्वकल्पितप्रक्रियानुरोधेन प्रमितत्याग इति भावः। इत्याध्यासिकसम्बन्धनिरासः ।।३५।।

इति पराभिमताध्यासगिरेराध्यासिकसम्बन्धोपपत्तिशिखरनिपातस्य व्याख्या॥ ६॥

आपत्ति होगी। दूसरी बात किन्हीं वस्तुओं का निर्वचन न होने मात्र से उन वस्तुओं के मिथ्यात्व की कल्पना नहीं की जा सकती—सम्बन्ध के निर्वचन के अभाव से मिथ्यात्व का स्वीकार मानने पर ब्रह्म के आनन्दत्व, ज्ञानत्व, सत्यत्व तथा स्वप्रकाशत्व आदि धर्मों का खण्डनाकार के अनुसार दुर्निरूप्य होने से ब्रह्म में भी आनन्दरूपता सिद्ध नहीं होगी। ब्रह्म दुर्निरूप्य है—ऐसा आपने कहा है, इसलिये ब्रह्म भी अनिर्वाच्य हो जाए। वह प्रत्यगात्म स्वरूप कैसा है ऐसा यदि आप पूछें तब वह कैसा है या ऐसा है—इस प्रकार का उसका निरूपण हो सके, वह वस्तु प्रत्यगात्मा है—इस प्रकार इसके द्वारा दुर्निरूप्यत्व के अभिधान से ब्रह्म के अभाव का प्रसंग हो जाएगा। यदि कहें कि आनन्दत्व आदि धर्म-विशिष्टत्वेन निरूपण असंभव होने पर भी दुःखादि विरोधित्वोपलक्षित स्वरूपत्वेन निरूपण संभव है तो ऐसा भी नहीं कह सकते—क्योंकि ब्रह्म में दुःखादि विरोधित्वादि धर्म आप नहीं मानते अतः उक्त दोष पूर्ववत् बना रहेगा। इसलिये इक्षु (ईख) तथा क्षीर के माधुर्य आदि की तरह असम्भव होने पर भी विषयत्व सखण्ड हो या अखण्ड प्रमाण के बल से सत्य सम्बन्ध स्वीकार करना होगा। अन्यथा पूर्वोक्त दोष की आपत्ति होगी—इसलिये ज्ञान और ज्ञेय में आध्यासिक सम्बन्ध की अनुपपत्ति से भी अध्यास की सिद्धि नहीं होगी—यह सिद्ध है।।३५।।

इस प्रकार मायावादी सम्मत अध्यासरूपी गिरि का आध्यासिक सम्बन्धोपपत्तिरूप शिखर का भी निपात हुआ॥ ६॥



विद्वद्वर वरिष्ठ श्रीगोलोकधाम निवासी

श्रीभीमाचार्य जी महाराज

गुरु–नैयायिक श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री

स्थान - कर्दमाश्रम (कर्दमवाड़ी) विन्दुसरोवर रोड़, सिद्धपुर (गुजरात)

(७) पराभिमताध्यासलक्षणगिरिनिपातः

अथ लक्षणासिद्ध्यापि तदसिद्धिः किं तावदध्यासलक्षणमित्यपेक्षायां केचिदाहुः। यत्र यस्याध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्वकल्पनमध्यासः। यत्राधिष्ठाने शुक्त्यादौ तस्यैवाधिष्ठानस्य विपरीतधर्मकल्पनं विपरीतो विरुद्धो धर्मो यस्य तद्भावस्तस्य रजतादेरत्यन्तासतः कल्पनमित्यर्थः। असदेव रजतमभादिति प्रतीतेः। अन्ये तु असतो भानासम्भवादन्यत्र धर्मावभासोऽध्यासः अन्यत्र शुक्त्यादौ बाह्योऽन्यधर्मस्य स्वावयवधर्मस्य

वज्रोत्तेजिका— अध्यासलक्षणखण्डनेनाध्याससिद्धिं निरस्यति—**अथेति**। तदसिद्धिः=अध्यासा-सिद्धिः। अध्यासस्य लक्षणं पृच्छति-**किन्तावदिति**। शून्यवादिनो माध्यमिकस्य लक्षणं निर्वक्ति-**यत्रेति**। लक्षणार्थं स्वयं विवृणोति—**यत्राधिष्ठान इति**। उक्तार्थं प्रतीत्या द्रढयति—**असदिति**। अन्यथाख्यातिवादिनां तार्किकाणां मतरीत्या लक्षणमाह-**अन्येत्विति** शून्यवादिमतं निरस्यति-**असत इति**। शुक्तौ विषये इदमात्मनावभासमानंरजतं किमसत्? उत सत्? नाद्यः, अपरोक्षभासानुपपत्तेर्नह्यसदिन्द्रियसन्निकृष्टं सम्विद्भिन्नं वा। ननु विषयस्य समस्तसामर्थ्यविरहेऽपि पूर्वविज्ञानसामर्थ्यादुपजातं विज्ञानमेवासतः प्रकाशस्तस्यैष स्वभावः यदसतः प्रकाशयतीति। अत एवाहुः। असत्प्रकाशनशक्तिरेवास्याविद्येति।

हिन्दी अनुवाद—

शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध एवं नैयायिकों के अध्यास लक्षण का खण्डन

अब अध्यास का कोई लक्षण सिद्ध नहीं होने से भी अध्यास संभव नहीं है। इसका उपपादन करते हैं। हम पूछते हैं—अध्यास का क्या लक्षण है? इस सम्बन्ध में शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध कहते हैं। "यत्र यस्याध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्व कल्पनमध्यासः" अर्थात् जिस अधिष्ठान में (शुक्ति आदि में) उसी के विपरीत धर्मविरुद्ध धर्म की कल्पना हो, वह अध्यास है। विपरीत धर्मत्व कल्पना का तात्पर्य है—अधिष्ठान के विरुद्ध जिसका धर्म है—ऐसे रजत आदि अत्यन्त असत् पदार्थ की कल्पना—यही अध्यास है, क्योंकि असत् ही रजत प्रकाशित हुआ, ऐसी प्रतीति होती है। अन्य लोग असत् का मान असंभव होने से 'अन्यत्र धर्मावभासोऽध्यासः' ऐसा लक्षण करते हैं, अर्थात् अन्यत्र यानि शुक्ति आदि के अन्य धर्म यानि देशान्तरस्थ रजत आदि के अवभास को अध्यास कहते हैं, यानी

देशान्तरस्थरूप्यादेरवभासोऽध्यास इत्यन्यथाख्यातिवादिन आचक्षते तन्न देशान्तरस्थस्य देशांतरभाने सम्बन्धाभावेनासम्भवात्। अन्यत्र बाह्ये शुक्त्यादौ बुद्धिरूपात्मनो धर्मस्य रजतस्यावभास इत्यात्मख्यातिवादिनो वदन्ति। आख्यातिवादिनस्तु यत्र यदध्यासस्तद्विवेकाग्रहणनिबन्धनं भ्रम इत्याहुः यत्र शुक्त्यादौ यस्य रूप्यादेरध्यासो लोकसिद्धस्तयोरर्थयो-स्तद्धियोश्चभेदाग्रहे सति तन्मूलो भ्रम इत्यर्थः। मायावादिनस्तु स्मृतिरूपः

अत एव चानुभवः, असदेवेदं रजतमभादिति। तस्मादसदेवाध्यासविषय इति चेन्न, शक्याभावेन शक्तेरेवानुपपत्तेः। असदेवास्याः शक्यमिति चेत्किमेतत्कार्यम्? उत ज्ञाप्यम्? न तावत्कार्यमसतः कार्यत्वानुपपत्तेः। द्वितीयेऽपि किं ज्ञानान्तरद्वारा विज्ञानमसत्प्रकाशयति, उत विज्ञानमेव तत्प्रकाशः। नाद्यः, ज्ञानान्तरानुपलब्धेरनवस्थापाताच्च। न द्वितीयः, सदसतोः सम्बन्धानिरूपणात्। न ह्यसम्बद्धं वस्तु विज्ञानानि प्रकाशयतीति। असदधीननिरूपणत्वं सतो विज्ञानस्यासता विशेषेण सम्बन्ध इति चेन्न, असतो निरूपकत्वसम्भवात्। नापि स्वभावः सम्बन्धः सन्मात्रनिष्ठस्य कार्यकारणभावस्याविनाभावस्य वा स्वभावस्य सदसतोरयोगात्तस्मान्नाध्यस्तमसदिति भावः। लक्षणं निर्वक्ति—**अन्यत्रेति।** लक्षणार्थं

अपने अपधर्म का अवभास—रजत से अन्य शुक्ति में अन्य रजत के धर्म रजतत्व का अवभास अध्यास है—ऐसा अन्यथाख्यातिवादी नैयायिक लोग कहते हैं, यह ठीक नहीं है, क्योंकि देशान्तर में स्थित रजत का सम्बन्ध के अभाव के कारण देशान्तर में भान असंभव है, कारण हम पूछते हैं कि देशान्तरवर्ती रजत असन्निकृष्ट होनेपर भी भ्रम में भासित होता है, ऐसा अभिमत है अथवा सन्निकृष्ट, पहला पक्ष नहीं कह सकते—सन्निकर्ष के अभाव होनेपर तद्घटित प्रत्यक्ष सामग्री का विरह है, कारण प्रत्यक्ष में उद्भूत रूपावच्छिन्न आलोक सम्बन्धावच्छिन्न महत्त्वावच्छिन्न विषय के साथ चक्षुः सन्निकर्ष कारण माना गया है। विशेष्य के साथ सन्निकर्ष की तरह विशेषण सन्निकर्ष भी प्रत्यक्ष में कारण है। घट प्रत्यक्ष में योग सन्निकर्ष घटक प्रत्यक्ष में इन्द्रिय से युक्त समवाय सन्निकर्ष होता है, ऐसा नहीं मानने पर दण्ड के अभाव में भी दण्डी पुरुषः इत्याकारक विशिष्ट प्रत्यक्ष की आपत्ति हो जायेगी। यदि कहें कि पूर्व में दण्ड विशिष्टत्वेन ज्ञात (दृष्ट) पुरुष ने दण्डाभाव में भी दण्डी ऐसा संभव होने से विशेषण सन्निकर्ष हेतु नहीं है तो ऐसा नहीं कह सकते, वहाँ भी

परत्र पूर्वदृष्टावभासोऽध्यास इत्याहुः। एतदुक्तं भवति अत्र परत्रावभास इत्येव लक्षणं शिष्टं पदद्वयन्तु तदुपपादकम्। तथाहि अवभास्यत इत्यवभासो रजताद्यर्थः। तस्यायोग्यमधिकरणं परत्रपदार्थः। तत्त्वञ्चारोप्यात्यन्ताभावत्वम्, तद्वत्वं वा। तथा चैकावच्छेदेन स्वसंसृज्यमाने स्वात्यन्ताभाववति अवभास्यत्वमध्यस्तत्वमित्यर्थः। इदञ्च साद्यनाद्यध्यास-

---

विवृणोति। **अन्यत्रशुक्त्यादाविति।** अस्ति तावत्पुरोवर्तिनि इदं रजतमिति सामानाधिकरण्यव्यपदेशो रजतार्थिप्रवृत्तिश्चेति सार्वजनीनम्, तदेतन्न भेदाग्रहमात्राद्भवितुमर्हति, सुषुप्तौ तत्प्रसङ्गात्। नाप्युपस्थितेष्टभेदाग्रहात्, तस्याभावतया गुरुत्वेनाभेदज्ञानस्यैव सत्यरजतस्थले हेतुत्वेन क्लृप्तत्वात्। नाप्यगृहीतेष्टभेदपुरोवर्तिविषयागृहीतेष्टज्ञानभेदज्ञानं तत् प्रवर्तकम्। उपस्थितेष्टाभेदाग्रहवत्। अगृहीतेष्टभेदपुरोवर्तिविषयत्वविशिष्टगृहीतेष्टज्ञानभेदज्ञानापेक्षया पुरोवर्तिविशेष्य तावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वस्य लघुत्वेनाभेदग्रहस्य १ तेनैव सत्यस्थले प्रवृत्तिकारणताग्रहात्। न २ चातिरिक्तविशिष्टज्ञानकल्पनं दोषः। कारणताग्रहदशायां ३ तत्कल्पनस्यानुपस्थितत्वात्। ४ उपस्थितस्य तर्कित ५ गौरवस्य ६ सकलप्रमाणप्रवृत्त्यप्रतिबन्धकत्वेनापरिपन्थित्वात् फलमुखस्य ७ चोपजीव्यकारणताप्रतिबन्धत्वशङ्कानवकाशात्। न च विषयानिरूपणान्मिथ्याज्ञानाभावः सत एव रजतस्य देशान्तरवर्तिनः पुरोवर्तिज्ञाने विषयत्वात्। नापि रजतज्ञानसामग्रीविरहः यथार्थप्रत्यक्षमात्रे

आपके मत में (नैयायिक मत) में ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति से चक्षु का गमन होने के कारण विशेषण सन्निकर्ष है।

द्वितीय पक्ष भी संभव नहीं है। प्रश्न है कि क्या चक्षु इन्द्रिय का रजत के साथ लौकिक सन्निकर्ष है या अलौकिक? पहला नहीं कह सकते, इन्द्रिय (चक्षु) का रजत के साथ संयोग समवाय आदिलौकिक सम्बन्ध का अभाव अलौकिक सन्निकर्ष कहेंगे तो क्या सामान्य लक्षणा प्रत्यासत्ति है या ज्ञान लक्षण? सामान्य लक्षणा में भी प्रमेयत्व रूप सामान्य से (प्रमेयत्वेन) रजत ग्रहण नहीं मान सकते। कारण तब उस ज्ञान में प्रमेयत्व प्रकारकत्व की आपत्ति होगी और न ही रजतत्वेन (रजतत्वरूप सामान्य से) ग्रहण कह सकते कारण इन्द्रिय संयुक्त पुरोवर्ती पदार्थ (शुक्ति में) रजतत्त्व का अभाव है, प्रत्यासत्तित्व तो इन्द्रिय सन्निकृष्ट सामान्य में ही होता है।

अब विज्ञानवादी योगाचार मत सिद्ध अध्यास का लक्षण कहते हैं। योगाचार आत्मख्यातिवादी है—"अन्यत्र शुक्त्यादौ बुद्धिरूपात्मनो धर्मस्य रजतस्यावभासः

साधारणम्। संयोगेऽतिव्याप्तिवारणायैकावच्छेदेनेति। संयोगस्य स्वसंसृज्यमाने वृक्षे स्वात्यन्ताभाववत्यवभासमानत्वेऽपि स्वस्वात्यन्ताभाव-

सन्निकर्षस्यहेतुत्वेनासन्निकृष्टस्यापि रजतस्थदोषवशाद्भानोपपत्तेः। इत्यक्षपादमतानुयायिनामाशयः। तन्मतं दूषयितुमाह—**तन्नेति।** किं देशान्तरवर्तिरजतमसन्निकृष्टमपि भ्रमे भासत इत्यभिमतम्? सन्निकृष्टं वा? नाद्यः, सन्निकर्षाभावेन तद्घटितप्रत्यक्षसामग्रीविरहात्। विशेष्यसन्निकर्षवद्विशेषणसन्निकर्षस्यापि प्रत्यक्षे हेतुत्वात् अन्यथा व्यवहितदण्डे पुंसि दण्डीति-विशिष्ट प्रत्यक्षापत्तेः न च दण्डविशिष्टत्वेन पूर्वं ज्ञाते पुंसि दण्डाभावेऽप्ययं दण्डीति ज्ञानसम्भवेन कथं विशेषणसन्निकर्षस्य हेतुत्वमिति वाच्यम्। तत्रापि त्वन्मते ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्त्या चक्षुषोर्गमनेन विशेषणसन्निकर्षसत्वात्। द्वितीयेऽपि किमिन्द्रियस्य रजतेन साकं लौकिकः सन्निकर्षः? अलौकिको वा? नाद्यः, इन्द्रियस्य तेन संयोगसमवायादेरभावात्। अलौकिकं किं सामान्यं प्रत्यासत्तिः? उत ज्ञानम्? तत्रापि न तावत्प्रमेयत्वेन रजतग्रहः। तस्य तत्प्रकारकत्वापत्तेः। नापि रजतत्वेन इन्द्रियसंयुक्ते पुरोवर्तिनि तस्याभावेनासन्निकृष्टत्वात्। सन्निकृष्टसामान्यस्यैव प्रत्यासत्तित्वाभ्युपगमात्। किञ्च न तावत्सामान्यं प्रत्यासत्तिः, प्रमाणाभावात्। व्याप्तिग्रहस्य

अध्यासः'' अर्थात् अन्यत्र बाह्य शुक्ति आदि में बुद्धिरूप आत्मधर्म रजत का अवभास अध्यास है। संस्कृत टीकाकार न्यायमार्तण्ड पं० श्री अमोलक राम शास्त्री जी ने विस्तार से इसका उपपादन कर खण्डन किया है।[१] (संस्कृत टीका देखें)

अब अख्यातिवादी मीमांसकों का एतत् सम्बन्धी विचार बताते हैं। इनके मत में कोई गलत ज्ञान होता ही नहीं। अन्य में अन्य का अवभास नहीं होता—इदं रजतम्, यह इदं पदार्थ शुक्ति के रजतत्व प्रकारक ज्ञान नहीं है। यहाँ इदम् अलग ज्ञान है—रजतं अलग, इदम् प्रत्यक्ष ज्ञान है, रजतम्—स्मरणात्मक—परन्तु इन दो ज्ञानों का भेद नहीं मालूम होने से भेदाग्रह प्रयुक्त इदं रजतम् यह भ्रम है। इसी बात को कहते हैं—'अख्यातिवादिनस्तु' इनके मत में 'यत्र यदध्यासस्तद् विवेकाग्रह निबन्धनं भ्रमः'

नोटः—

१. यहाँ नैयायिक होकर भी श्री अमोलकराम शास्त्री जी ने सामान्य लक्षण प्रत्यासत्ति का विस्तार से खण्डन किया है।

२. असत् ख्याति, अन्यथा ख्याति, आत्म ख्याति, अख्याति, अनिर्वचनीय ख्याति।

३. शून्यवादी माध्यमिक एवं योगाचार सम्मत अध्यास का संस्कृत टीका में जोरदार खण्डन है।

योर्मूलाग्रावच्छेदकभेदान्नातिव्याप्तिः। पूर्वं स्वाभाववति भूतले पश्चादानीतो घटो भातीति घटेऽतिव्याप्तिवारणाय स्वसंसृज्यमानेति पदम्।

सिद्धान्ते सन्निकृष्टधूमादिव्यक्तिमात्रविषयकत्वेन सर्वधूमाविषयकतया सामान्यप्रत्यासत्तिकल्पकत्वायोगात्। धूमो वह्निव्यभिचारी न वेति संशयस्य च तत्तद्धूमत्वेन वह्निसामानाधिकरण्यनिश्चयेऽपि प्रसिद्धधूम एव सम्भवेनाप्रसिद्ध-धूमाविषयकत्वात्। समानप्रकारकनिश्चयस्यैव संशयविरोधित्वात्। अत एव घटत्वेनेतरभेदनिश्चयेऽपि पृथिवीत्वेन घटे तत्संशय इति तवापि राद्धान्तस्तस्मान्न सामान्यप्रत्यासत्तिरित्याशयः। विज्ञानवादिनो योगाचारस्य मते सिद्धं लक्षणं निर्वक्ति— **अन्यत्रेति।** इदमत्राकूतम् ननु रजतादिकं ज्ञानाभिन्नम्, इन्द्रियसम्प्रयोगमन्तरेणापरोक्षत्वात्, ज्ञानवत्। न च विशेषणासिद्धिः, इन्द्रियेण सह संयोगाभावात्। ज्ञानस्य प्रत्यासत्तेरभावादिति चेन्न, तस्य ज्ञानाभिन्नत्वे रजतं जानामीति भेदानुभवविरोधात्। प्रतिपत्तुः प्रत्ययानतिरेकेणाहं रजतमिति प्रतिभासापत्तेः। अनुभवः प्रमाणमिति चेत्? किमिदं रजतमिति प्रत्ययो रजतस्यान्तरत्वे प्रमाणम्? बाधकप्रत्ययोवा? अर्थापत्तिर्वा? न तावदाद्यः, तस्यान्तरत्वेऽप्रमाणत्वात्। इदं रजतमितीदन्त्वरजतत्वसामानाधिकरण्यविषयत्वेन तत्रैव प्रमाणत्वाच्च। अत एव न द्वितीयः। नहि बाधकज्ञानं रजतस्य ज्ञानाकारतामवगाहते किन्तु पुरोवर्तिद्रव्ये रजतभेदम्।

मायावादियों के मत का निरसन

मायावादी श्री शंकराचार्य के मत में "स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभास अध्यासः" ऐसा अध्यास का लक्षण कहा गया है। भाव है कि यहाँ 'परत्रावभासः' इतना ही लक्षण है, अवशिष्ट स्मृतिरूपः तथा पूर्वदृष्ट पद उसका उपपादक है। यहाँ अवभास्यते इति अवभास इस कर्म व्युत्पत्ति से अवभास रजत पदार्थ है। उसका अयोग्य अधिकरण है। परम पदार्थ, अर्थात् रजतावभास के लिये शुक्ति अयोग्य अधिकरण है, क्योंकि शुक्ति रजत नहीं है, शुक्ति में रजतत्त्व नहीं है, शुक्ति में रजतावभास की अयोग्यता है, उसने आरोप्य रजत का अत्यन्ताभाव अथवा आरोप्य रजतत्त्व में अत्यन्ताभावाधिकरणत्व यानी शुक्ति में रजतत्त्व का अत्यन्ताभाव है। अब फलित लक्षण कहते हैं—'तथा चैकावच्छेदेः' स्व सृज्यमाने यहाँ स्व का अर्थ है—आरोप्य प्रपञ्चमात्र एवं रजतत्त्व आदि तस्य संसृज्यमाने का मतलब है—तत्प्रतियोगिक संसर्गवति अर्थात् प्रपञ्च प्रतियोगिक

विशेष :— क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार के मत में आत्मा क्षणिक विज्ञान स्वरूप है, विज्ञान दो तरह के होते हैं आलय विज्ञान, प्रवृत्ति विज्ञान। अयं घटः अयं पटः इत्यादि प्रवृत्ति विज्ञान है, आत्म रूप ज्ञान आत्म विज्ञान है, घट पट आदि समस्त संसार ज्ञान का ही आकार विशेष है, क्षणिक ज्ञान रूप आत्मा ही जगदाकार रूप में भाषित होता है प्रपञ्च नाम की कोई अलग वस्तु नहीं है शंकराचार्य की तरह।

तेन स्वाभावकाले प्रतियोगिसंसर्गस्य वर्तमानत्वमुच्यत इति नातिव्याप्तिः। भूत्वावच्छेदेनावभास्यमाने गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय स्वात्यन्ताभाववतीति पदम्। शुक्ताविदन्त्वावच्छेदेन रजतसंसर्गकालेऽत्यन्ताभावोऽस्तीति नाव्याप्तिः। ननु शुक्तौ रजतस्य सामग्र्यभावेन संसर्गासत्त्वादसम्भवः। न

न तृतीयः, बाधकप्रत्ययस्य रजतभेदतद्धर्मात्यन्ताभावविषय-त्वेनार्थापत्त्यनवकाशात्। इदन्त्वप्रतिषेधे हि बाधितं बाह्यरजतमान्तर एवज्ञाने व्यवतिष्ठत इत्यर्थापत्तिः स्यात् न इदन्त्वेन प्रतीतिसिद्धस्य रजतस्य देशान्तरसत्वेनाप्युपपत्तेः। किञ्च ज्ञानस्य रजताकारत्वं स्वाभाविकम्? हेत्वन्तराधीनं वा? नाद्यः, सर्वज्ञानानां रजताकारत्वप्रसङ्गात्। न द्वितीयः, विज्ञानमात्रवादात्। किञ्च न तावद्रजतमान्तरं बाह्ये शुक्तिशकलादावध्यस्यते। विज्ञानवादिमते बाह्यस्यालीकत्वे न तत्राध्यासायोगात्। नत्वान्तरे रजते बहिष्ट्वाध्यासायोगात्। अत एव बाधोऽपि तन्मात्रविषयो लाघवात्, न तु रजतविषयस्तथा सति रजतस्य तद्धर्मस्य चेदन्ताया बोध इति गौरवप्रसङ्गादिति चेन्न, रजतस्यापि बाधितत्वेन तत्र बहिष्ट्वाध्यासायोगात्। बाधस्य च नेदं रजतमिति विशिष्टरजतविषयस्यानुभवसिद्धत्वेन तत्कल्पनाभावात्। अत एव नेदं रजतं किन्तु शुक्तिरिति बाह्याधिष्ठानावधिको बाधः। अन्यथा रजतमिदं न किन्त्वान्तरमिति स्यात्। तस्मादान्तरं रजतमध्यासविषय इत्युक्ते बाह्यप्रत्यक्षेऽपि तद्रजतं किं पुरोवर्ति? देशान्तरवर्ति वा? आद्येऽपि रजतं पुरोवर्तिद्रव्यस्य परिणामः। अविद्याया वा? नाद्यः,

किंवा रजतत्त्व प्रतियोगिक संसर्गाधिकरण अर्थात् 'इदं रजतम्' यहाँ इदन्त्वावच्छेदेन यानी शुक्त्यवच्छेदेन रजतत्त्व प्रतियोगिक संसर्गकाल में शुक्ति में रजतत्त्व का अत्यन्ताभाव है। इसी प्रकार प्रपञ्च से संसर्ग काल में आत्मत्वावच्छेदेन आत्मा में प्रपञ्च का अत्यन्ताभाव है। इस प्रकार लक्षण समन्वय है यह अध्यास लक्षण आदि एवं अनादि उभय विध अध्यास का लक्षण है। कार्याध्यास अनादि अविद्यात्मक होने से उसमें कार्याध्यास में अनादित्व है। अध्यास से संस्कार और उससे अध्यास यह नैसर्गिक अध्यास का प्रवाह है, इससे भिन्न रजतादि का अध्यास सादि अध्यास है। अब लक्षण के पदों का प्रयोजन बताते हैं। यहाँ संयोग में अतिव्याप्ति वारण के लिये एकावच्छेदेन कहा, अन्यथा वृक्षः कपिसंयोगवान् यह ज्ञान का अध्यास हो जायेगा, कारण यहाँ कपिसंयोग मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभाववत् वृक्ष के अवभासित है। (वृक्षः कपिसंयोगी यह ज्ञान भ्रम ही है) जब एकावच्छेदेन कहते हैं, तब उक्त स्थल में अतिव्याप्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ मूलावच्छेदेन जहाँ कपिसंयोगाभाव है, वहाँ कपिसंयोगी प्रतीति नहीं है। यहाँ कपिसंयोगात्मवान् वृक्ष में कपिसंयोग अवभासित होनेपर स्व (कपिसंयोग) तथा स्वाभाव कपिसंयोगाभाव का अवच्छेदक भेद होने से अतिव्याप्ति नहीं होगी। इसी तरह जहाँ पहले घटाभाव था, पश्चात् वहाँ घट लानेपर घटो भाति यह प्रतीति होती है, वह

च स्मर्यमाणस्य सत्यरजतस्यैव तत्रावभास इति वाच्यम्। अन्यथाख्यातिप्रसङ्गादित्याशङ्क्याह—स्मृतिरूप इति। स्मर्यत इति स्मृतिसत्यरजतादिस्तस्य रूपमिव रूपमस्येति स स्मर्यमाणसदृश इत्यर्थः।

शुक्त्यवयवोत्पन्नस्य रजतस्य शुक्तिवत्पारमार्थिकत्वेन बाधानुपपत्तेः। ननु दोषसापेक्षतदवयवोत्पन्नस्य रजतस्य दोषापगमान्नाशेन बाधोपपत्तिरिति चेन्न, दोषस्य निमित्तकारणमात्रत्वेन तदपगमस्य रजताविनाशकत्वात्। न हि दण्डापाये घटापायो दृष्टः। ततश्च रजतं न पुरोवर्तिद्रव्यपरिणामः। अविद्यापरिणामपक्षेऽपि न केवलाविद्यापरिणामः, दोषरहितस्यानुद्बुद्धरजतसंस्कारस्यापि पुरुषस्य तत्प्रसङ्गात्। नापि दोषादिसहकृताविद्यापरिणामः, रजतावयवानां क्लृप्तरजतोत्पादकानामभावेन दोषादिसहकारिमात्रेणाविद्यायास्तदुत्पादकत्वायोगादिति भावः। आख्यातिवादिनां मीमांसकानां मतमुपन्यस्यति। आख्यातिवादिनस्त्विति—लक्षणं विवृणोति—**यत्रेति।** तयोः शुक्तिरूप्ययोः। तद्धियोः=शुक्तिरूप्यधियोः। तेषामयमाशयः—रजतभ्रमस्थले रजतं सुतरां नास्त्येव। प्रतीति समयेऽपि च नोत्पद्यते। किन्त्विदं रजतमिति ज्ञानमिदमंशस्यैव प्रत्यक्षत्वं न तु रजतांशस्य। इदमंशप्रत्यक्षेण त्विदमंशसादृश्याद्रजतसंस्कारोद्बोधे रजतस्य केवलं स्मरणं भवति न त्वनुभवः। तथा च तत्रेदमंशप्रत्यक्षं रजतस्मरणञ्चेति ज्ञानद्वयम्।

प्रमा है। यहाँ भ्रम या अध्यास का लक्षण न जाय इसलिये स्व सृज्यमाने यह विशेषण दिया गया है। भूतल में घट संसर्गकाल में घटाभाव बुद्धि नहीं है, इसलिये स्वसृज्यमाने विशेषण देने पर वहाँ अतिव्याप्ति नहीं होगी। पृथित्वावच्छेदेन भास्यमान गन्ध में अध्यास लक्षण की व्यावृत्ति के लिये स्वात्यन्तावत् विशेषण दिया। अन्यथा पृथिवी में गन्ध का अवभास भी भ्रम हो जायेगा, स्वाभाववत् विशेषण देने से पृथिवी गन्धाभाववती नहीं है, अतः वहाँ अतिव्याप्ति नहीं होगी। शुक्ति में इदन्त्वावच्छेदेन रजत के संसर्गकाल में रजतत्त्व का अत्यन्ताभाव है, इसलिये अव्याप्ति नहीं होगी।

यहाँ अन्यथा ख्याति का प्रसंग न हो जाये इसलिये कहा—'स्मृतिरूपः' यदि केवल परत्र पूर्व दृष्टावभासः। इतना ही लक्षण होता, तब अर्थ होता पूर्वदृष्ट का परत्र अवभास पहले आपण आदि में दृष्ट रजत का शुक्ति में अवभास जिसका भावार्थ होता, रजतत्त्व का शुक्ति में अवभास अर्थात् रजतत्त्वाभाववत् शुक्ति के रजतत्त्व प्रकार का ज्ञान, पद तो

टिप्पणी :—क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार ने मत में आत्मा क्षणिक विज्ञान स्वरूप है, विज्ञानन दो तरह के होते हैं—आलय विज्ञान, प्रवृत्ति ज्ञान। अयं घट अयं पट इत्यादि प्रवृत्ति विज्ञान आत्मरूप ज्ञान आलय विज्ञान—घट पटादि समस्त संसार ज्ञान का ही आकार विशेष है—क्षणिक ज्ञानरूप आत्मा ही ....रूप में भासित होता है, प्रपञ्च नामक........इदत्त्वा वच्छेदेन (शुक्ति में) जब रजतत्त्व प्रतियोगिक संसर्ग हो रहा है—इदं रजतद् यह प्रतीति हो रही है। उस काल में शुक्ति के रजतत्त्वाभाव है।

सादृश्योक्त्या स्मर्यमाणादारोप्यस्य भेदान्नान्यथाख्यातिरित्युक्तं भवति। सादृश्यमुपपादयति पूर्वदृष्ट इति। दृष्टं दर्शनं संस्कारद्वारा पूर्वदर्शनादवभास्यत इति पूर्वदृष्टावभासस्तेन संस्कारजन्यज्ञानविषयत्वं

तत्रेदमंशप्रत्यक्षविरुद्धः स्मरणे परोक्षत्वांशः। तादृशस्मरणविरुद्धश्चेदमंशे प्रत्यक्षत्वांशस्तयोर्विरुद्धांशयोर्दोषेणाभानेऽन्योन्यवैलक्षण्यप्रतीतौ ज्ञानद्वयमप्येकं ज्ञानमित्यवभासत इति। अनिर्वचनीयाख्यातिवादिनां मायावादिनामभिमतमध्यासलक्षणं निर्वक्ति—**स्मृतिरूप इति।** एतदुक्तं भवति=यदुक्तं तदेतद्भवति। अत्र= स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभास इति निरुक्तौ लक्षणं व्याचष्टे—**तथाहीति।** तस्य=रजतस्य। तत्वम्=अधिकरणस्यायोग्यत्वम्। तद्वत्वम्=आरोप्यात्यन्ताभावाधिकरणत्वम यत्फलितं तल्लक्षणं दर्शयति—**तथा चेति।** स्वम्=आरोप्यं प्रपञ्चमात्रं रजतत्वादिकञ्च। तस्य संसृज्यमान इति—तत्प्रतियोगिक-संसर्गवत्यर्थः। इदन्त्वावच्छेदेन रजतत्वप्रतियोगिक-संसर्गकाले शुक्तौ रजतत्वात्यन्ताभाव-सत्वाल्लक्षणसमन्वयः। एवं प्रपञ्चसंसर्गकाले आत्मत्वावच्छेदेनात्मनि प्रपञ्चात्यन्ताभावसत्वाल्लक्षणमुपपद्यते, एवमात्मनि बुद्ध्याध्यासात्कर्तृत्वलाभः। बुद्ध्यादौ चात्माध्यासाच्चैतन्यलाभ इत्यपि बोध्यम्। इदञ्च=एतदध्यासलक्षणञ्च। **साद्यनाद्यध्याससाधारणमिति**—अनाद्यविद्यात्मकतया कार्याध्यासस्यानादित्वमध्यासात्संस्कारस्ततोऽध्यास इति प्रवाहतो नैसर्गिकत्वं तद्भिन्नः

स्पष्टतया अन्यथा ख्याति हो गया। इसके निवारण के लिये कहते हैं—स्मृति रूपः यानी यह ज्ञान रजतत्त्वाभाववत् में रजतत्त्व ज्ञान नहीं, किन्तु उसमें उसका स्मरण हो गया। चाकचिक्य आदि धर्म सादृश्य से वहाँ रज का स्मरण है—परत्र याने पर देश में शुक्ति देश में रजत स्मरण ही रजताध्यास है—शुक्ति में इतना मात्र कहने से अन्यथा ख्याति अतः शुक्ति देश में समझना चाहिये। स्मृतिरूपः का अर्थ है—स्मर्यते इति स्मृतिः सत्य रजत आदिः तस्य रूपमिव रूपमस्य उसके रूप के समान जिसका रूप है यानी स्मर्यमाण रजत के सदृश यह अर्थ है। इस प्रकार यहाँ सादृश्य कथन होने से स्मर्यमाण रजत से आरोप्य रजत का भेद होने से यह अन्यथा ख्याति नहीं है—यह सिद्ध हुआ।

स्मृतिरूप इतना कहने से अन्यथाख्याति का कारण हो जाता है— स्मृति सदृश का अनुधावन क्यों?

यहाँ सादृश्य का उपपादन करते हैं, पूर्वदृष्ट इति। यहाँ दृष्ट में भाव में प्रत्यय है, इसलिये उसका अर्थ है दर्शन पूर्वदृष्टावभासः पूर्वदृष्टात् पूर्वदर्शनात् अवभासः इति पूर्व दृष्टावभास ऐसा समास विग्रह है, अर्थात् पूर्वदर्शनाद् अवभासत् का भाव है पूर्वदर्शनजनित संस्कार से अवभासित। इस प्रकार स्मर्यमाण और आरोप्य में संस्कारजन्य ज्ञान विषयत्वरूप सादृश्य बोधित होता है। अथवा प्रमाणजन्य ज्ञान विषयत्व उक्त पदार्थ है, स्मृति तथा

स्मर्यमाणारोपयोः सादृश्यं बोध्यते प्रमाणाजन्यज्ञानविषयत्वं वा, स्मृत्यारोपयोः संस्कारजन्यत्वात्। तर्ह्यारोपः स्मृतित्वमापद्येतेति चेन्न, दोषसम्प्रयोगजन्यत्वस्यापि विवक्षितत्वेन तन्मात्रजन्यत्वाभावात्, अत्र सम्प्रयोगो नामाधिष्ठानसामान्यज्ञानमुच्यते। अहङ्काराध्यासे

साद्यध्यास इत्यर्थः। लक्षणस्थपदानां प्रयोजनं निर्वक्ति—**संयोग इति।** अग्रदेशावच्छेदेन संयोगप्रतियोगिसमवायिनि मूले संयोगाभाववति वृक्षादौ योगस्यावभासमानत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायैकावच्छेदेनेत्युक्तमित्यर्थः। तद्वारणप्रकारमुपन्यस्यति—**संयोगस्येत्यादिना।** संयोगतदभावयोर्विभिन्नदेशावच्छेदेनैव वृक्षादावुपलभ्यमानत्वात्तद्व्युदास इत्यर्थः। संसृज्यमान इत्यस्य प्रयोजनमाह—**पूर्वमिति।** तेन=संसृज्यमानपदेन। स्वात्यन्ताभाववत्पदस्य कृत्यमाह—**भूत्वावच्छेदेनेति।** स्मृतिरूप इति पदस्य प्रयोजनं प्रदर्शयितुं शङ्कते—**नन्विति**—स्मृतिरूप इत्यस्य यथाश्रुतार्थे भ्रमस्य व्यावृत्तिर्न सम्भवति, अतस्तस्य विग्रहवाक्यं दर्शयति—**स्मर्यत इति। दृष्टमिति**—अत्र भावे क्तप्रत्ययस्तदर्थमाह—**दर्शनमिति।** तेन=निरुक्तार्थनिर्वचनेन संस्कारजन्यत्वेनारोपस्य स्मृतित्वापत्तिरित्याह—**तर्ह्यारोपस्येति।** तन्मात्रजन्यत्वाभावात्=संस्कारमात्रजन्यत्वाभावात्। यथा स्मृतौ संस्कारमात्रजन्यत्वं तथाऽऽरोपे नास्तीति भावः। अत्र=अध्यासलक्षणे। **रजतमुत्पन्नमिति**—इदमत्राकूतमत्यन्ताभेदवादिनां दोषवशात्पुरोवर्तिनो वस्तुनः

आरोप संस्कारजन्य है, कहा कि तब आरोप में स्मृतित्व की आपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण दोष और सम्प्रयोग जन्यत्व भी विवक्षित है। उसमें संस्कारमात्र जन्यत्व का अभाव है अर्थात् जैसे स्मृति में संस्कारमात्र जन्यत्व है, वैसे आरोप्य में संस्कारमात्र जन्यत्व नहीं है। अध्यास लक्षण में सम्प्रयोग का अभिप्राय है, अधिष्ठान का सामान्यज्ञान अहंकार के अध्यास में इन्द्रिय का अभाव है। इस प्रकार दोष, सम्प्रयोग एवं संस्कार के बल से शुक्ति में रजत उत्पन्न है, इस प्रकार परत्रावभास यह लक्षण उत्पन्न है। यह बात स्मृतिरूप और पूर्वदृष्ट पदों से व्यक्त होती है। यहाँ ज्ञातव्य है कि अर्थाध्यास में स्मर्यमाण सदृश परत्र पूर्व दृष्ट का अवभास ऐसी योजना है और ज्ञानाध्यास के स्मृति सदृश परत्र पूर्व दर्शन से अवभास ऐसी वाक्य योजना करनी चाहिये।

दोष सम्प्रयोग संस्कार बल से शुक्ति में रजत की उत्पत्ति का अत्यन्ताभेदवादियों का तात्पर्य है। दोषवश पुरोवर्ती वस्तु का शुक्तित्वेन ग्रहण न होने से केवल इदमाकार अन्तःकरण की वृत्ति उत्पन्न होती है। वह वृत्ति इदन्त्वावच्छिन्न चैतन्याभिव्यक्ति के प्रतिबन्धक चैतन्य के आवरण को दूर कर देती है। वहाँ इदन्ता तथा उसकी ग्राहक वृत्ति में चैतन्य प्रतिबिम्बित होकर अभिव्यक्त होता है। शुक्ति अंश से चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होती, दोषवशात् शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य के आवरण का अभिभव नहीं होता। यह इदमंशावच्छिन्न चैतन्य का शुक्तिरूपेण अवभास विद्या है और एतदाकार वृत्तिरूप से

इन्द्रियसम्प्रयोगाभावात्। एवञ्च दोषसम्प्रयोगसंस्कारबलाच्छुक्तौ रजतमुत्पन्नमस्तीति परत्रावभासस्य लक्षणत्वमुत्पन्नमिति। स्मृतिरूपपूर्व दृष्टपदाभ्यामुपपादितं भवतीति। तत्रार्थाध्यासे स्मर्यमाणसदृशः परत्र

शुक्तित्वेनाग्रहणादिदमाकारान्तः करणवृत्तिरुपजायते। सा च वृत्तिरिदन्त्वावच्छिन्न-चैतन्याभिव्यक्तिप्रतिबन्धकं चैतन्यावरणं दूरीकरोति। तत इदन्तायां तद्ग्राहकवृत्तौ च चैतन्यं प्रतिबिम्बितं सत्तद्रूपेणाभिव्यक्तं भवति। शुक्त्यंशेन तु चैतन्यस्य नाभिव्यक्तिः। दोषवशेन तच्चैतन्यावरणस्यानभिभवात्। अयञ्च इदमंशावच्छिन्न चैतन्यस्यशुक्तिरूपेणावभासस्तत एव तदाकारवृत्तिरूपेणानवभासश्चाविद्या। तस्याश्च क्रमेणेदमंशावच्छिन्नं चैतन्यमिदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नं चैतन्यं चाश्रयः। द्विविधापीयमविद्या दोषवशात्संक्षुभ्नाति। तत्रेदमंशावच्छिन्नचैतन्यनिष्ठा अविद्या संक्षुभिता सती चाकचिक्यादिसादृश्यसंदर्शनसमुद्बोधितरजतसंस्कारसहायेन रजताकारेण परिणमते। वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्था अविद्या तु रजतग्राहिवृत्तिसंस्कारसहकृता वृत्तिरूपेण परिणमते। एतच्च परिणामद्वयं स्वस्वाधिष्ठानभूतेन साक्षिचैतन्येनावभासते। एतदेव क्रमेणार्थाध्यास

उसका अनवभास अविद्या है और उसका क्रमशः इदमंशावच्छिन्न चैतन्य तथा इदमाकार वृत्त्यवच्छिन्न आश्रय है। यह दोनों प्रकार की अविद्या दोष वशात् क्षोभ उत्पन्न करती है। यहाँ इदमंशावच्छिन्न चैतन्यनिष्ठा अविद्या संशुभित होनेपर चाकचिक्य आदि सादृश्य दर्शन से उद्बोधित संस्कार की सहायता से रजताकार में परिणत होती है और वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य में स्थित अविद्या तो रजतग्राही वृत्ति संस्कार से सहकृत वृत्तिरूप के परिणत होती है। और ये दोनों परिणाम अपने-अपने अधिष्ठान भूत साक्षी चैतन्य से अवभासित होता है। इसीको क्रमशः अर्थाध्यास एवं ज्ञानाध्यास कहते हैं। यदि कहें कि जैसे विषयाकार अन्तःकरण भी वृत्ति से विषय का अवभास होता है तथा उसकी वृत्ति का अवभास तद्वृत्याकार अन्तःकरण से और उसका अन्य अन्तःकरण की वृत्ति से इस प्रकार अनवस्था हो भी तो ऐसा नहीं कह सकते, एक वृत्ति में अन्यवृत्ति का अविषय होनेपर भी स्वविषयत्व स्वीकार होने से कोई दोष नहीं होगा। इस तरह वृत्तियुक्त अविद्या साक्षीभाष्य होती है, अविद्या भी साक्षिभाष्य होती है। यहाँ इदमाकार वृत्ति अन्तःकरण की है और रजताकार वृत्ति अविद्या की और वृत्ति ही ज्ञान मान्य है, इस प्रकार यहाँ वो ज्ञान है। इदं रजतम्—यह रजत है, इत्याकारक जो एक ज्ञान का व्यवहार तो औपचारिक है। ज्ञान है वृत्तिरूप और उसका फल है, विषयावभास। वह विषयावभास विषयानुसार होता है, इसलिये वह तो विषयाधीन है। यहाँ विषय सत्य तथा अनृत— इदं और रजत में परस्पर अन्योन्यात्मक होने से ऐक्यभाव को प्राप्त हो गया। इसलिये उसका अवभासरूप फल एक रूप में ही दृश्य स्थल में जिस रूप में प्रतीत होता है।

पूर्वदर्शनादवभास्यत इति योजना। ज्ञानाध्यासे तु स्मृतिसदृशः परत्र पूर्वदर्शनादवभास इति वाक्यं योजनीयमिति सङ्क्षेपः ।। ३६ ।।

इति ज्ञानाध्यास इति चोच्यते। न च यथा विषयाकारान्तःकरणवृत्त्या विषयावभासस्तथा तद्वृत्तेरवभासस्तद्वृत्याकारेणान्तःकरणवृत्त्यन्तरेणेत्यनवस्थेति वाच्यम्। वृत्तेर्वृत्त्यन्तरा विषयत्वेऽपि स्वविषयत्वाभ्युपगमेनादोषात्। तथा चात्राविद्या सवृत्तिका साक्षिभास्या भवति। अविद्याया अपि साक्षिभास्यत्वात्। अत्र चेदमाकारावृत्तिरन्तःकरणस्य। रजताकारावृत्तिस्त्वविद्यायाः। वृत्तिरेव च ज्ञानमिति वस्तुतो ज्ञानद्वयं वर्तत एव। इदं रजतमित्येकं ज्ञानमिति व्यवहारस्तु फलैक्यादौपचारिकः। ज्ञानं हि वृत्तिरूपम्। तत्फलञ्च विषयावभासः। स च यथा विषयं जायत इति विषयाधीनः। विषयश्चात्र सत्यानृतयोरिदंरजतयोरन्योन्यात्मकतयैक्यमापन्न इति तदवभासरूपं फलमेक मेवदृश्यस्थले निरूढं प्रतीयत इति। अध्यासो द्विविधः। अर्थाध्यासो ज्ञानाध्यासश्चेति। शुक्तौ मिथ्याभूतस्य रजतस्याध्यासोऽर्थाध्यासः। मिथ्याभूतस्य ज्ञानस्यात्मन्यध्यासो ज्ञानाध्यास इत्याशयेनाह—**तत्रार्थाध्यास इति**। पुनरपि द्विविधोऽध्यासः। निरुपाधिकसोपाधिकभेदात्। आत्मन्यहङ्काराध्यासोनिरुपाधिकः। यथानुपहितइदमंशे रजतसंस्कारसहिताविद्याया रजताध्यासोभवति। तथा पूर्वपूर्वाहङ्कारादिना कर्मणा वा क्षोभितया अविद्यया चिद्रूप आत्मन्यनुपहितेऽहङ्काराध्यासो भवति। एकस्मिन्नेव ब्रह्मण्युपहिते जीवेश्वररूपेण भेदावभासः सोपाधिकभ्रम इत्यपि दृष्टव्यम्। एतावता प्रबन्धेनात्यन्ताभेदवाद्यभिमताध्यासलक्षणमभिहितम्। सम्प्रति तस्य लक्षणस्य खण्डनप्रकारमाह—**अत्र ब्रूम इति**। एवं पूर्वपक्षे प्रासे समाधिं ब्रूम इत्यर्थः ।।३६ ।।

अध्यास दो तरह के होते हैं, अर्थाध्यास एवं ज्ञानाध्यास—शुक्ति में मिथ्याभूत रजत का अध्यास अर्थाध्यास है और मिथ्याभूत ज्ञान का आत्मा में अध्यास ज्ञानाध्यास। इसी आशय से मूल में कहा गया है—तत्रार्थाध्यास से स्मर्यमाण सदृश। अध्यास के और भी दो भेद होते हैं—निरुपाधिक और सोपाधिक। आत्मा में अहंकार का अध्यास निरुपाधिक अध्यास है। जैसे अनुपहित इदमंश में रजत संस्कार सहित अविद्या का रजताध्यास होता है, उसी प्रकार पूर्व पूर्व अहंकार आदि या कर्म से क्षोभित अविद्या के द्वारा चिद्रूप अनुपदित आत्मा में अहंकार का अध्यास होता है। एक ही उपहित ब्रह्म में जीव और ईश्वररूप से भेद का अवभास सोपाधिक अध्यास है—ऐसा देखना चाहिये—इतने उक्त ग्रन्थ से अत्यन्ताभेदवादी शंकराचार्य के अभिमत अध्यास का लक्षण कहा गया, अब उसका खण्डन स्वरूप बताते हैं—‘अत्र ब्रूमः इत्यादि ग्रन्थं’ ।।३६ ।।

अत्र ब्रूमः। यदुक्तलक्षणं तदापातरमणीयं मूलाविद्याध्यासे तदसम्भवस्य दुर्वारत्वात्। एकत्र सतोऽन्यत्रारोपत्वं भ्रमत्वम्। अत्यन्तासतोऽध्यासायोगात्। तत्रारोप्यनिरासे पूर्वमेव विस्तरात्प्रत्युक्तम्। इदं रजतमिति प्रतीतिवदियमविद्येति कस्यचित्कदाचिदपि प्रतीत्यभावात्। संस्कारसादृश्यसम्प्रयोगसामग्रीविरहाच्च। न च संस्कारज़्न्य-

---

वज्रोत्तेजिका— मूलाविद्याध्यासे संस्कारादिघटितसामग्र्यभावान्नोक्ताध्यासलक्षणस्य सम्भावनापि, तथा चाव्याप्ति ग्रस्तत्वान्नेदं लक्षणं सम्भवदुक्तिकमित्याशयेनाह— **मूलाविद्याध्यासइति।** आपणस्थरजतस्य सत्यत्वात्तदारोपयितुं शुक्तौ शक्यते। अत्यन्तासतः प्रपञ्चस्य ब्रह्मण्यध्यासो भवितुं न युक्त इत्याह-**एकत्रेति।** पूर्वम्=यद्यदारोपितं तत्सप्रधानं दृष्टमित्यादिग्रन्थेन प्रत्युक्तमित्यर्थः सर्वं हि पदार्थ मात्रं प्रतीतिप्रमाणेन व्यवस्थापनीयं प्रकृते च प्रतीतेरसत्वान्नाविद्याध्यासो ब्रह्मणि भवितुमर्हतीत्याह—**इदमिति।** सामग्रीसत्त्वे कार्यसत्त्वं तदभावे तदभाव इति तावन्निर्विवादं प्रकृतेऽध्याससामग्र्यसत्वान्नाविद्याध्यास उपपद्यत इत्याह—**संस्कारेति।** संस्कारजन्यज्ञानविषयत्वरूपं सादृश्यमस्तीत्याशङ्क्यपरिहरति-**न चेति।** तदभावे= अनुभवाभावे।

हिन्दी अनुवाद—

शंकराभिमत अध्यास के लक्षण का खण्डन

(अत्र ब्रूमः ... इत्यादि ग्रंथ से प्रारम्भ होता है)

मायावादी द्वारा प्रतिपादित उक्त लक्षण आपात रमणीय है, जब तक इसके दोषों का उद्घाटन नहीं हुआ तब तक ही देखने में अच्छा लगता है, क्योंकि मूलाविद्या के अध्यास में, इसमें असंभव दोष दुर्वार है। लक्षण के तीन दोष हैं— अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव। सबसे बड़ा दोष है, असंभव—जो लक्षण किसी भी लक्ष्य में न जाए उसे असंभव कहते हैं, जैसे गाय का एक शफत्व लक्षण। जिसे एक खुर हो उसे गाय कहते हैं, यदि गाय का यह लक्षण किया जाय तो क्या यह लक्षण किसी भी गाय में जायेगा, गोमात्र दो खुर वाली होती है और ऐसा लक्षण करने वाला नितान्त अज्ञ माना जाता है। यहाँ ग्रन्थकार श्री शंकराचार्य के अध्यास लक्षण में उसी असंभव दोष का वर्णन करते हैं, अथवा यह लक्षण मूला अविद्या के अध्यास में संभव नहीं, अव्याप्ति आदि दोषयुक्त है।

एक स्थान में सत् वस्तु के अन्यत्र आरोप को भ्रम कहते हैं। बाजार में रजत नाम की वस्तु सत् है, उसका शुक्ति में आरोप (अध्यास) होता है—अत्यन्त असत् प्रपञ्च का ब्रह्म में अध्यास कैसे संभव है, अत्यन्त असत् गगन कुसुम जैसे शश

ज्ञानविषयत्वं सादृश्यमित्युक्तमधस्तादिति वाच्यम्। दुरुक्तत्वात्। संस्कारस्यानुभवपूर्वकत्वेन तदभावे संस्कारासिद्धेः। तदसिद्ध्या च सुतरां तज्जन्यज्ञानाभावस्तदभावे च कथं तत्सादृश्यमिति मनीषिभिश्चिन्त्यम्। किञ्चाविद्यासादृश्यं कस्मिन् वर्तत इति वक्तव्यम्, न तावच्छुद्धे तस्य निर्विशेषत्वात्। अन्यथा शुद्धत्वहानिप्रसङ्गात्। नापि जीवे तस्याध्यस्तत्वेनोत्तरभावित्वात्। किञ्चाविद्यायां चितोऽध्यासेऽपि

तदसिद्ध्या=संस्कारासिद्ध्या। तज्जन्यज्ञानाभावः संस्कारजन्यज्ञानाभावः। तदभावे=संस्कारजन्यज्ञानाभावे। अविद्यासादृश्यं नामाविद्यावृत्तिधर्मवत्त्वं तस्य ब्रह्मणि वृत्तौ शुद्धत्वमेव व्याहन्येतेत्याह—**किञ्चेति**। तस्य=शुद्धस्य। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। शुद्धे ब्रह्मण्यविद्यावृत्तिधर्मवत्त्व इति तदर्थः। प्रत्यगात्मन्यप्यविद्यासादृश्यं परिहरति—**नापीति**। कल्पितप्रतिबिम्बभावस्य जीवस्याविद्योत्तरभावित्वेन

श्रृङ्ग-वन्ध्यापुत्र आदि का अध्यास नहीं होता। यह बात इसी ग्रन्थ में आरोप्य के अभाव से अध्यास की असिद्धि के निरूपण अवसर पर पहले ही विस्तार से कही गयी है। इदं रजतम् इस प्रतीति की तरह इदम् अविद्या है, इस प्रकार किसी को प्रतीति नहीं होती। सामग्री रहने पर ही कार्य की सत्ता होती है। उसके अभाव में कार्य का अभाव होता, यह निर्विवाद सत्य है, प्रकृत में अध्यास की सामग्री के अभाव से भी अध्यास नहीं हो सकता। यदि कहें कि संस्कारजन्य ज्ञानविषयत्वरूप सादृश्य यहाँ विवक्षित है, यह पहले कहा ही तो है यह भी नहीं कह सकते।

यह कथन ठीक नहीं, संस्कार अनुभवपूर्वक होता है, जब तक अनुभव नहीं होगा तब तक संस्कार नहीं हो सकता और संस्कार की असिद्धि से संस्कारजन्य

टिप्पणी— शंकरमत में जीव को ब्रह्म में प्रपञ्च का अध्यास होता है, प्रपञ्च कोई वस्तु नहीं भ्रम है, शुक्ति में रजत की तरह—१. तब प्रश्न होता है कि उनके मत में जीव तो ब्रह्म ही है। उसे भ्रम कैसे कहें? कि अविद्या के कारण जीव को अध्यास होता है, तब प्रश्न है—जीव ब्रह्म है, उसमें अविद्या कैसे? कहें कि अविद्या है नहीं अविद्या का अध्यास है, फिर भी प्रश्न रह जाता है। ब्रह्म को अविद्या का अध्यास भी कैसे? दूसरी बात चाकचिक्य रजत का सादृश्य शुक्ति मे होने से वहाँ तो ब्रह्म हो जाता है। प्रपञ्च के किस धर्म से ब्रह्म में सादृश्य है? ब्रह्म में तो कोई धर्म ही मान्य नहीं है।

चित्सादृश्यस्य कथं वृत्तिरिति वक्तव्यम्, सूर्यसादृश्यस्य तमस्यसम्भवात् महद्विरोधात्। यदप्युक्तं स्मर्यमाणसदृश इत्यध्यासविशेषणं तदप्यविचारितं प्रथमाध्यासे स्मर्यमाणस्यैव शशशृङ्गायमाणत्वात् कुतस्तत्सादृश्यसम्भावनापीति। किञ्च संस्कारस्याश्रयाभावेन सुतरामसिद्धिरित्यग्रे निरसिष्यमाणत्वात्। यदप्युक्तं सम्प्रयोगो नामात्राधिष्ठानसामान्यज्ञानमेवाहङ्काराध्यासे इन्द्रियसम्प्रयोगाभावादिति। तदप्यसम्यक् निर्विशेषे सामान्यविशेषत्वाभावात्। कल्पितसामान्यादिधर्मस्याध्यासजन्यत्वेन तदानीमभावात्। किञ्च

पूर्वसिद्धाया अविद्यायाः सादृश्यस्य वक्तुमशक्यत्वादित्याह—**जीव इति।** तस्य=जीवस्य। ब्रह्मप्रतियोगिकाज्ञानानुयोगिकसादृश्यस्याध्यासकारणस्यासत्वान्नाविद्यायां ब्रह्मणोऽध्यास इत्याह—**किञ्चेति।** प्रागुक्तार्थोऽनूद्यते—**यदप्युक्तमिति।** यत्सादृश्यसम्भावना=स्मर्यमाण सादृश्यसम्भावना।

ज्ञान का अभाव तथा संस्कारजन्य ज्ञान के अभाव के सादृश्य कैसे यह विद्वानों का शोचनीय विषय है। दूसरी बात अविद्या का सादृश्य किसमें है ? शुद्ध में कह नहीं सकते, वह तो निर्विशेष है, उसमें कोई धर्म नहीं, अन्यथा शुद्धत्व की हानि, जीव में भी नहीं कह सकते, वह तो अध्यस्त ही है, अध्यास के बाद ही उसमें जीवत्व होगा। दूसरी बात ब्रह्म प्रतियोगिक ज्ञानानुयोगिक सादृश्यरूपी अध्यास के कारण न होने से अविद्या में ब्रह्म का अध्यास नहीं हो सकता। इसलिये कहते हैं—'किञ्चाविद्यायां' अविद्या के चित् का अध्यास होनेपर चित् सादृश्य उसके कैसे हो सकता है। सूर्य का सादृश्यतम मेंअसंभव ? तम और तेज में घोर विरोध है और यह भी जो पहले अध्यास के विशेषण के रूप में स्मृतिरूपः का स्मर्यमाण सदृश कहा था, वह भी ठीक नहीं है—कारण प्रथम अध्यास के स्मर्यमाण पदार्थ ही शशशृङ्गी की तरह असंभव है फिर उसमें सादृश्य की संभावना भी कहाँ से हो सकती है ? दूसरी बात संस्कार के आश्रय का अभाव होने से अध्यास स्वयं असिद्ध है, इसका आगे खण्डन करेंगे। पहले यह भी जो कहा था कि सम्प्रयोग का

टिप्पणी :— अध्यास में संस्कार भी कारण है जिसका संस्कार होता है उसी का भ्रम होता है संस्कार उसी का होता है जिसका अनुभव होता है, अनुभव उसी का होता है जो सत् होता है और जैसे रजत सत् है उसका अनुभव है अतः संस्कार है इसलिये उसका भ्रम हो सकता है, प्रपञ्च नाम की कोई वस्तु भी नहीं है फिर उसका संस्कार और कैसे ? यह भी प्रष्टव्य है।

तवाभिमताधिष्ठानसामान्यज्ञानस्याश्रयाभावेन कुत्राप्यवृत्तित्वात् ज्ञातुरभावात् ज्ञानासिद्धेः। तथा च सामग्रीविरहादध्यासासम्भव इति सिद्धम्। अयम्भावः—अध्यासमात्रस्य दोषसादृश्यसंस्कार-

---

निर्धर्मके ब्रह्मण्यध्यासात् प्रागध्यासजन्यंकल्पितसामान्यधर्माभावान्ना ध्याससिद्धिरित्याह—**निर्विशेष इति।** ज्ञातुः सत्वे ज्ञानसत्वं तदभावे तदभाव इति तावन्निर्विवादं प्रकृतेऽध्यासात्प्राक् ज्ञातुर्जीवस्याभावेनाधिष्ठानसामान्यज्ञानस्याश्रयो न कोऽपि सिद्ध्यति तथा

मतलब—अधिष्ठान का सामान्य ज्ञान ही है, कारण अहंकार के अध्यास में इन्द्रिय सम्प्रयोग का अभाव है, वह भी ठीक नहीं है, निर्विशेष ब्रह्म में सामान्य और विशेष का अभाव है। यदि कहें कि कल्पित (आरोपित) सामान्य आदि धर्म निर्विशेष ब्रह्म में हैं, उससे अधिष्ठानत्व संभव है तो कल्पित सामान्य धर्म तो अध्यासजन्य होता है। प्रथमाध्यास में कल्पित सामान्य धर्म का अभाव है। दूसरी बात ज्ञाता के रहने पर ही कोई ज्ञानवान् होता है, ज्ञाता के अभाव में ज्ञानवान् का अभाव होता है, यह निर्विवाद है, प्रवृत्त में अध्यास से पहले ज्ञाता जीव को अभाव होने से अधिष्ठान के सामान्य धर्म के ज्ञान का आश्रय कोई सिद्ध नहीं होता, इस प्रकार अध्यास की सामग्री को अभाव से अध्यास का अभाव होता है, यही बात कहते हैं—''किञ्चित्तवाभिमताधिष्ठानन्त्यादि ग्रन्थो'' इस प्रकार सामग्री के अभाव से अध्यास असंभव है, यह सिद्ध होता है।

भाव यह है कि अध्यासमात्र दोष, सादृश्य, संस्कार तथा सम्प्रयोग (पुरोवर्ती में इन्द्रिय सन्निकर्ष) रूपी सामग्रीजन्य होता है, यह निर्विवाद है, कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता है—यह सामान्य नियम है, इदं रजतम् इस प्रतीति में दोष, सादृश्य तथा संस्कार भ्रान्तिमान् पुरुष निष्ठ होते हैं। जिस व्यक्ति में उक्त सामग्री होती है, उसे ही भ्रम होता है। रजत सादृश्य शुक्तिवृत्ति ही सम्प्रयोग, इन्द्रिय सन्निकर्ष संयोग सम्बन्धरूप होने से उभय निष्ठ है। इस प्रकार इदं रजतम् इस भ्रमस्थल में सामग्री के होने से अध्याससिद्धि निर्विवाद है। प्रकृत् स्थल ब्रह्म में अध्यास के कारण दोष आदि कारणों तथा उनके आधारभूत प्रत्यगात्मा जीव का अध्यास से पूर्व सद्भाव न होने से अध्यास की उपपति नहीं होती। इदं रजतम् स्थल में भ्रम का आश्रय प्रारूप है, उससे.......उसका पुरोवर्ती शुक्ति के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष रजतनिष्ठ चाकचिक्य आदि धर्म का सादृश्य शुक्ति में है। रजत एक सत्य पदार्थ है,—जिसे उसने

सम्प्रयोगसामग्रीजन्यत्वनियमस्तावन्निर्विवादः। कारणाभावे कार्य्याभाव नियमात्। तत्रेदं रजतमिति प्रतीतौ दोषसादृश्यज्ञानसंस्काराणां भ्रान्तिमत्पुरुषनिष्ठत्वात्। रजतसादृश्यस्य शुक्तिवृत्तित्वात्संप्रयोगस्य च सम्बन्धरूपत्वेनोभयनिष्ठत्वात् तत्सङ्गतरूपसामग्र्याऽध्याससिद्धिरविवादा। प्रकृते तु दोषसादृश्यज्ञानादिसामग्री तदाश्रयोरभावात्। जीवदोषादीनामध्यासकार्यत्वेनोत्तरभावित्वाच्च कथमविद्याध्यास इति मीमांसनीय इति॥ ३७॥

चाध्यासप्रयोजकसामग्र्यभावादध्यासाभाव इत्याह—**किञ्चेति**। अध्यास प्रयोजकदोषसादृश्यादिघटितकारणकूटस्य विद्यमानत्वाच्छुक्तिकायां रजतत्वमध्यसितुं शक्यते निरुक्तसामग्र्यभावान्न कथमपि ब्रह्मण्यविद्याध्यास उपपद्यत इत्याह—**अयं भाव इति॥ ३७॥**

बाजार में कई बार देखा है, मायावादी के मत में एकमात्र निर्विशेष ब्रह्म ही सत्य है और कुछ नहीं सब अध्यास है, तब प्रश्न होता है कि अध्यास किसका होता है, कहेंकि जीव को, जीव कौन है? ब्रह्म है प्रपञ्च मिथ्या है। ब्रह्म में उसका अध्यास है, यहाँ प्रश्न है कि अध्यास किसको होता है। अध्यास का आश्रय कौन? अधिष्ठान कौन? ब्रह्म के अलावा जब कोई जीवनाम की वस्तु नहीं तो आश्रय कौन होगा? अधिष्ठान में सामान्य धर्म विशेष धर्म होते हैं, तभी अधिष्ठान होता है, निर्विशेष ब्रह्म का कोई धर्म नहीं, अतः कोई अधिष्ठान नहीं, प्रपञ्च नाम की कोई वस्तु नहीं जब आरोप्य ही कोई नहीं तो अध्यास किसका, दूसरी बात आरोप्य का अधिष्ठान में सादृश होने पर ही अध्यास होता है, सादृश्य धर्म पर आधारित है, ब्रह्म का कोई धर्म नहीं जीवनामक पदार्थ अध्यास के बाद ही बनता है, अध्यास से पहले जीव नहीं फिर अध्यास कैसे? ये सब अति गंभीर प्रश्न है ।।३७।।

नन्वध्यासो द्विविधः, सादिरनादिश्च। तत्र सादावेवोक्तसामग्र्यपेक्षा, न तु द्वितीये तथा चाविद्याध्यासस्यानादित्वान्नोक्तदोषावकाशः। एवमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्याप्रत्ययरूप इति श्रीभगवत्पादभाष्यकारोक्तेरिति चेन्न। स्वप्राङ्गणेऽश्वधावनमात्रत्वात्। न क्वापि केनापि कथञ्चिदपि कोप्यनादिरध्यासो दृष्टचरो युक्तिसहोवा।

वज्रोत्तेजिका—अविद्याध्यासस्योपपत्तिमनादित्वेन समर्थयति—**नन्विति।** कार्याव्यवहितप्राग्वृत्तित्वं कारणत्वं कारणोत्तरभावित्वञ्च कार्यत्वमिति सर्वेषामनुभवसिद्धम्। प्रकृतेऽध्यासकारणानां दोषादीनां तदाधारभूतानां प्रत्यगात्मनाञ्चाध्यासात् प्राग्वृत्तित्वस्यासत्वान्नाध्यास उपपद्यत इत्याह—**प्रकृते त्विति।** तदाश्रययोः=सामग्र्याश्रययोः। अविद्याध्यासोपपत्तिमनादित्वेन समर्थयन्नध्यासस्य द्वैविध्यं दर्शयति—**नन्विति।** उक्तसामग्र्यपेक्षा=दोषसादृश्यज्ञान-संस्कारादिसामग्र्यपेक्षा। प्रागुक्तार्थं द्रढयितुं भगवत्पादश्रीशङ्कराचार्योक्तिं प्रमाणत्वेनोपन्य-स्यति—**एवमिति।** वर्णिताध्यासमुपसंहरति—**एवमयमिति।** अनाद्यविद्यात्मकतया कार्य-स्यानादित्वम्। अध्यासात्संस्कारस्ततोऽध्यास इति प्रवाहतो नैसर्गिकत्वमित्युक्तभाष्य-स्यार्थः। परिहरति—**नेति।** यद्यनादिभावस्याध्यस्तत्वं भवताऽभ्युपेयते तदानादिभावात्मनो

हिन्दी अनुवाद— यदि कहें कि अध्यास दो तरह के होते हैं—सादि और अनादि। इनमें सादि अध्यास को ही उक्त सामग्री की अपेक्षा होती है, अनादि अध्यास में नहीं। अविद्या का अध्यास अनादि है—उसमें उक्त दोष का अवकाश नहीं है। (अविद्या दो तरह की होती है—मूला अविद्या और इला अविद्या। मूला अविद्या प्रपञ्चाध्यास का कारण है। इला अविद्या—रजतादि अध्यास का कारण, मूला अविद्या का अध्यास अनादि है। प्रपञ्च का अध्यास मूला अविद्या से होता है— "**अनिर्वाच्याद्वितय सचिवस्य प्रभवतो विवर्ताः यस्यैते वियदनिलतेनोऽबवनयः**". वाचस्पति। इस मूला अविद्या के अध्यास में उक्त सामग्री अपेक्षित नहीं है जैसा कि भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजी महाराज का वचन है—"एवमनादिरन्तौ नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्याप्रत्ययरूप" तो ऐसा भी नहीं कह सकते, यह तो अपने आंगन में घोड़ा दौड़ाना मात्र है—आज तक कहीं भी किसीने भी किसी प्रकार भी कोई अनादि अध्यास नाम की वस्तु नहीं देखी है और नाही यह अनादि-अध्यासवाद तर्क की कसौटी पर ही सही ठहरता है। सभी अध्यास सादि ही देखे जाते हैं। यदि अनादि

सर्वेषां सादित्वदर्शनात्। अनादेः सतोऽपि वस्तुनोऽध्यस्तत्वाङ्गीकारे ब्रह्मणोऽपि तथात्वस्य वक्तुं शक्यत्वात्। तस्याप्यनादिभावत्वसाम्यात्। नन्वत्रानादित्वं नामानाद्यविद्याकार्यत्वं। नैसर्गिकत्वञ्चाध्यासात्संस्कारस्ततोऽध्यास इति प्रवाहरूपेण। अनन्तत्वञ्चज्ञानं विना ध्वंसायोग्यत्वं विवक्षितं तस्मान्नोक्तदोषावकाश इति चेन्न, असदुत्तरत्वात्। तथाहि न तावदुक्तलक्षणमनादित्वं वक्तुं

ब्रह्मणोऽप्यध्यस्तत्वमापद्येतेत्याह—**अनादेरिति।** तथात्वस्य=अध्यस्तत्वस्य। तस्य=ब्रह्मणः। उक्तशङ्कां परिहरन्ननादित्वादिकमन्यथा निर्वक्ति **नन्विति।** तस्मात्=निरुक्तानादित्वनिर्वचनात्। उक्तदोषावकाशः=अनाद्यविद्याकार्यत्वरूपानादित्वस्य ब्रह्मण्यसत्त्वान्न तस्याध्यस्तत्वमिति तदर्थः। परिहरति—**नेति। असदुत्तरत्वादिति**=असदुत्तरं जातिरिति निग्रहस्यानान्तर्गतत्वादित्यर्थः। **व्याघातादिति**—यद्यनादित्वं तदा कार्यत्वं कथं यदि कार्यत्वं तदाऽनादित्वं कथमिति परस्परव्याहतिरित्यर्थः। **अन्योन्याश्रयत्वप्रसङ्गादिति**—आरोपप्रतीतौ सत्यां पूर्वदृष्टस्य समारोपः समारोपनिबन्धना च प्रतीतिरित्यर्थः। उक्तार्थकमनन्तत्वमपाकरोति—**नापीति।** तत्वज्ञानेनाविद्यासंसर्गस्यैव ध्वंसो न तु स्वरूपेण तस्या ध्वंस इत्यर्थः। उक्तार्थं श्रुतिमुखेन प्रमाणयति—**गौरिति।** गौः=माया। अनाद्यन्तवती—

सद् वस्तु को भी अध्यस्त मानें तब तो ब्रह्म में भी अध्यस्तत्व हो जाएगा—क्योंकि उसमें भी अनादिर्भावत्व की समानता है। यदि कहें कि अनादित्व का अर्थ है—अविद्या कार्यत्व और नैसर्गिकत्व है—अध्यास से संस्कार और संस्कार से फिर अध्यास—यह प्रवाहरूप है। अनन्तत्व है—ज्ञान के बिना ध्वंस की अयोग्यता—इसलिये उक्त दोष का यहाँ अवकाश नहीं है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते—क्योंकि यह उत्तर सही नहीं है, क्योंकि उक्त लक्षण अनादित्व कह नहीं सकते, अनादित्व और कार्यत्व का एकल संभव नहीं है—यदि अनादित्व है तो कार्यत्व कैसे? और यदि कार्यत्व है तो अनादित्व कैसे—यह तो परस्पर व्याघात है, बल्कि कार्यत्व का सादित्व के साथ ही व्याप्ति देखा गया है। नैसर्गिकत्व भी नहीं कह सकते, इसमें अन्योऽन्याश्रय का प्रसङ्ग होगा। और नाही आपके द्वारा कथित अनन्तत्व भी संभव है ज्ञान से उसमें सम्बन्ध का ही ध्वंस होता है—स्वरूप का नहीं। हम बात को श्रुति

शक्यम्। अनादित्वकार्यत्वयोरेकत्र व्याघातात्। प्रत्युत कार्यत्वस्य सादित्वेनैव व्याप्तिदर्शनाच्च। नापि नैसर्गिकत्वं वक्तुमर्हम्। अन्योन्याश्रयत्वप्रसङ्गात्। नाप्युक्तलक्षणमनन्तत्वम्, ज्ञानेन तत्सम्बन्धस्यैव ध्वंसनान्न स्वरूपस्य। ''गौरनाद्यन्तवती'' ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामि'' त्यादिश्रुतेः अनाद्यन्तरूपस्य निवृत्तिरेव श्रूयते न तु स्वरूपनाशोऽन्यथामुक्तानां बाहुल्यादिदानीमनुपलब्धिप्रसङ्गात्।

आद्यन्तरहिता। श्रुत्यन्तरमुदाहरति—**अजामिति।** अजाम्=नित्याम्। उक्तार्थमुपपादयति—**अनाद्यन्तरूपस्येति।** विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** स्वरूपनाशाङ्गीकार इति तदर्थः। अनाद्यन्तस्य निवृत्तिरेव श्रूयते **न तु स्वरूपनाश इति** यदुक्तं तच्छ्रुतिस्मृतिप्रमाणमुखेन द्रढयति—**भूय इति।** एतल्लक्षणकोऽध्यासः सर्वेषां वादिनां सम्मतः कथं तन्निरासो भवितुमर्हतीत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति।** अन्यथाख्याति

से प्रमाणित करते हैं—''गौरनाद्यन्तवती'' ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'' इत्यादि। यहाँ गौ माने माया को आदि अन्त से रहित कहा है। 'अजाम्' से भी नित्य कहा है। न अनाद्यन्तस्वरूप की निवृत्ति ही होती है—न हि उसका स्वरूप नाश। स्वरूप नाश स्वीकार करने पर मुक्तों के बाहुल्य होने से सम्प्रति उनकी—अनुपलब्धि का प्रसंग होगा। अनाद्यन्त वस्तु की निवृति ही होती है, स्वरूप नाश नहीं, इस विषय को श्रुति प्रमाण से दृढ़ करते हैं—''भूयश्चान्ते विश्वमाया निवृत्तिः'' स्मृति का प्रमाण है—''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'' यदि कहें कि यह अध्यास तो सर्ववादि सम्मत है, इसका खण्डन कैसे करते हैं? तो ऐसा भी नहीं कह सकते सादि अध्यास संभव होने पर भी अनादि अध्यास किसी का सम्मत नहीं है? यदि कहें कि—अध्यास स्वीकार नहीं करने पर ज्ञाननिवर्त्य नहीं होगा, तो ऐसा नहीं कह सकते सद्वस्तु की भी निवृत्ति संभव है। सत् द्रव्य की ही दान से निवृत्ति देखी गई है। यदि कहें कि वह दान द्रव्य भी मिथ्या ही है—ऐसा नहीं कह सकते—वह द्रव्य तो सत्य ही देखा गया है। इस विषय का अर्थापत्ति प्रमाण खण्डन के अवसर पर

"भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः" "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते" इति श्रुतिस्मृतिभ्याम्। न च सर्ववादिसम्मतत्वात्कथमध्यासो निरस्यत इति वाच्यम्। साद्यध्यासस्य सम्मतत्वेऽप्यनाद्यध्यासस्य केषामप्यसम्मतत्वात्। नन्वध्यस्तत्वानङ्गीकारे ज्ञाननिवर्त्यं न स्यादिति चेन्न, सतोऽपि निवृत्तेःसम्भवात्। सत एव द्रव्यस्य दानेन निवृत्तिदर्शनात्। न च तस्यापि मिथ्यात्वं सम्प्रदाने तस्य द्रव्यस्य सत्वदर्शनात्। अर्थापत्तिखण्डने विस्तरिष्यमाणत्वात्। तस्मात्सम्बन्धनिवृत्तिरेव ज्ञानजन्या न स्वरूपनाश इत्यकामेनाप्यभ्युपगन्तव्यम्। अतोऽध्यासलक्षणासिद्धयाप्यध्यासासिद्धिरित्यलं विस्तरेण॥ ३८॥

इति पराभिमतोऽध्यासलक्षणशिखरनिपातः॥ ७॥

वादिनः शुक्त्यादौ देशान्तरस्थस्य रूप्यादेरध्यास इति वदन्ति। आत्मख्यातिवादिनस्तु बाह्ये शुक्त्यादौ बुद्धिरूपात्मनो धर्मस्य रजतस्याध्यासः। आन्तरस्य रजतस्य बहिर्वदवभासत इति जल्पन्ति तैरपि विशिष्टव्यवहारानुपपत्त्या विशिष्टभ्रान्तेः स्वीकार्यत्वात्परत्र परावभासरूपस्याध्यासस्य सर्ववादिसम्मतत्वेऽप्यनाद्यध्यासे केषामपि सम्मतिर्नास्तीति भावः। यदि प्रपञ्चस्याध्यस्तत्वं न स्यात्तदा ज्ञाननिवर्त्यत्वं न स्यादित्यन्यथानुपपत्तिप्रमाणेनाध्यासः सेत्स्यतीत्याशङ्कते—**नन्वति**। परिहरति—**नेति**। उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्धावारूढं करोति—**सत एवेति**। तस्य=प्रदेयद्रव्यस्य। निगमयति—**तस्मादिति**। फलितार्थमुपदर्शयन्नुपसंहरति—**अत इति**॥ ३८॥

इति पराभिमताध्यासलक्षणशिखरनिपातस्य व्याख्या॥ ७॥

विस्तार से विचार करेंगे। इसलिये सम्बन्ध निवृत्ति है। ज्ञानजन्य होती है, स्वरूप नाश नहीं—यह बात आपको अनिच्छया भी स्वीकार करना होगा। इस प्रकार अध्यास लक्षण की असिद्धि से भी अध्यास संभव नहीं है ।।३८।।

इस प्रकार अध्यास लक्षण रूपी शिखर का निपात सम्पन्न हुआ॥ ७॥

(८) पराभिमताध्यासविषयप्रमाणशिखरनिपातः

अथ प्रमाणाभावादप्यध्यासानुपपत्तिः, ननु द्रष्टाऽनुमाता श्रोताऽहमि-त्यादि प्रत्यक्षस्य। देवदत्तादिकर्तृकः सर्वोऽपि व्यवहारः, तदीयदेहादिष्वहं ममाध्यासमूलकः, तदन्वयव्यतिरेकानुसारित्वात्। यदेवं तदेवं मृन्मूल-घटवदित्यनुमानस्य। यदाध्यस्तः प्रमाता न स्यात्तर्हि प्रामाणादिव्यवहारो न स्यात्। सर्वस्यापि व्यवहारजातस्याविद्यावद्विषयकत्वादित्यर्थापत्तेश्चात्र मानत्वात्। तथा चाह भगवान्भाष्यकारः—तमेतमविद्याख्यमात्मनात्मनोरितरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यवहारा लौकिकाः वैदिकाश्च प्रवृत्ताः।

वज्रोत्तेजिका—लक्षण प्रमाणाभ्यां प्रमेयस्य सिद्धिरिति सर्वतन्त्राणां राद्धान्तः। तत्राध्यासस्य लक्षणं प्राग्निरस्तं सम्प्रति प्रमाणाभावेनाध्यासस्यानुपपत्तिमाह—**अथेति**। सन्ति चाध्याससद्भावे प्रत्यक्षानुमानार्थापत्तयः प्रमाणानि तेभ्य इममर्थं प्रामाणिकं कर्तुं शङ्कते—**नन्विति**। तावत्प्रत्यक्षमानेनाध्यासं समर्थयति—**दृष्टेति**। अनुमानेनापि तस्य सिद्धिं दर्शयति—**देवदत्तादिकर्तृकइति। तदन्वयव्यतिरेकानुसारित्वादिति** देहादिष्वध्याससत्त्वे व्यवहारसत्त्वं तदभावे व्यवहारासत्त्वमिति तदर्थः। यदेवम्=यत् हेतुमत्। तदेवम्—तत्साध्यवत्। अर्थापत्तेः स्वरूपं निर्वक्ति—**यद्यध्यस्त इति**। अयमर्थः श्रीभगवत्पादैरेवाभिहित इत्याह—**तथा चाह इति**। अध्यासस्य सद्भाव निर्णेतुमादौ प्रत्यक्षं दर्शयति—**तमिति**। तं वर्णितं साक्षिप्रत्यक्षसिद्धम्। अविद्याख्यमिति सम्भावितोक्तिः। पुरस्कृत्येत्यस्य व्यवहारहेतुतया स्वानुभवसिद्धत्वमुक्तम्। **विधिनिषेधमोक्षपराणीति**। विधि निषेधपराणि कर्मशास्त्राण्यृग्वेदादीनि

हिन्दी अनुवाद—

प्रमाण के अभाव से अध्यास की असिद्धि

अब प्रमाण के अभाव से अध्यास की उपपत्ति नहीं होगी इस का विचार करते हैं। यदि कहें कि अध्यास के सद्भाव में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा अर्थापत्ति आदि प्रमाण है उनके द्वारा अध्यास की प्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है। जैसे अहं द्रष्टा अहं श्रोता इत्यादि देवदत्त आदि कर्तृक समस्त व्यवहार, देवदत्त आदि के उसके देह आदि में अहं मम रूपी अध्यास मूलक है क्योंकि देह, इन्द्रिय आदि में अध्यास होने पर ही उक्त व्यवहार होते हैं, अध्यासाभाव में व्यवहार नहीं होता, यह अन्वय व्यतिरेक सिद्ध है। जो हेतुमत् होता है। वह साध्यवत् होता है—मृत्तिका मूलक घर की तरह। यह अनुमान प्रमाण है। इस तरह यदि अध्यस्त प्रमाता न हो तो प्रमाण आदि व्यवहार भी नहीं होगा—कारण समस्त व्यवहार अविद्यावत् विषयक है, यह अर्थापत्ति प्रमाण भी अध्यास के प्रमाण हैं। जैसा कि भगवान्

सर्वाणि च शास्त्राणि विधिनिषेधमोक्षपराणीत्युक्त्वा कथं पुनरविद्यावदविषयाणि प्रत्यक्षादिप्रमाणानि शास्त्राणि चेत्याक्षिप्य समादधे। उच्यते-अध्यासभावे प्रमाणमस्तीति तेषां पूर्वपक्षः। देहेन्द्रियादिष्वहं ममाभिमानहीनस्य, प्रमातृत्वानुपपत्तौप्रमाणप्रवृत्त्यनुपपत्तेरित्यादिनेति, कथं प्रमाणाभाव इति चेन्न, उक्तप्रत्यक्षानुमानादेराभासमात्रत्वात्। तथाहि उक्तप्रत्यक्षादीनां शरीरेन्द्रिययुक्तात्मपरत्वेनाध्यस्तविषयकत्वाभावात्।

विधिनिषेधशून्यप्रत्यग्ब्रह्मपराणि मोक्षशास्त्राणि वेदान्तवाक्यानीति विभाग इत्यर्थः। आक्षिपति—**कथमिति**। तत्त्वपरिच्छेदो हि प्रमाविद्या, तत्साधनानि प्रमाणानि कथमविद्यावद्विषयाणि नाविद्यावन्तं प्रमाणान्याश्रयन्ति, तत्कार्यस्य विद्याया अविद्याविरोधित्वादिति भावः। सन्तुप्रत्यक्षादीनि संवृत्यापि यथा तथा, शास्त्राणि तु पुरुषहितानुशासनपराण्यविद्याप्रतिपक्षतया नाविद्यावद्विषयिणि भवितुमर्हन्तीत्याह—**शास्त्राणि चेति**। तत्र प्रमाणप्रश्ने व्यवहारार्थापत्तिं तल्लिङ्गकानुमानञ्चाह—**उच्यत इत्यादिना**। तथाच देवदत्तादिकर्तृको व्यवहार इति प्रागुपदर्शितानुमानप्रयोगः प्रदर्शितः। तत्र व्यतिरेकं दर्शयति—**देहेति**। देवदत्तस्य सुषुप्तावध्यासाभावे व्यवहाराभावो दृष्टः। जाग्रत्स्वप्रयोरध्यासे सति व्यवहार इत्यन्वयः स्फुटत्वान्नोक्तः। अनेन लिङ्गेन कारणतयाऽध्यासः सिद्ध्यति। व्यवहाररूपकार्यानुपपत्याभावेति भावः। आक्षिपति—**कथमिति**। इति पूर्वपक्षः। अथोत्तरपक्षः। निराकरोति—**नेति**। आत्मसंयुक्तशरीरादिकमेव प्रागुपदर्शितप्रत्यक्षानुमानादीनां विषयो भवितुमर्हति किमध्यासेनेत्याह—**तथाहीति**। उक्तार्थं श्रुतिमुखेन प्रमाणयति—**आत्मेन्द्रिय इति**। आत्मा चेन्द्रियश्च मनश्च तैर्युक्त इति

भाष्यकार ने कहा है—''तमेतमविद्याख्याम् आत्मनात्मनोरितरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाण प्रमेय व्यवहारा लौकिकाः वैदिकाश्च प्रवृत्ताः सर्वाणि च शास्त्राणि विधिनिषेध मोक्षपराणि'' अर्थात् हम अविद्या नामक आत्मा तथा अनात्मा (शरीर और आत्मा) के परस्पर अध्यास के कारण ही समस्त लौकिक प्रमाण प्रमेय व्यवहार प्रवृत्त होते हैं। इसी तरह विधि, निषेध तथा मोक्ष परक शास्त्र भी ऐसा कहकर स्वयं आक्षेप करते हैं—कैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाण एवं शास्त्र अध्यास मूलक है? ऐसा आक्षेप करके स्वयं समाधान करते हैं—''उच्यते अध्यास सद्भावे प्रमाणं अस्ति'' देह, इन्द्रिय आदि में अहं मम इत्याकारक अभिमान रहित व्यक्ति में प्रमातृत्व की अनुपपत्ति होने पर प्रमाण तथा प्रवृत्ति की अनुपपत्ति होगी इत्यादि। इस

२. अहं द्रष्टा श्रोता इत्यादि प्रतीति को अध्यास कहना ठीक नहीं है कारण इस प्रतीति में शरीर इन्द्रियादि से भिन्न आत्मा की प्रतीति है, इन्द्री तो केवल अध्यास है।

''आत्मेन्द्रियमनोयुक्तोभोक्तेत्याहुर्मनीषिण'' इति श्रुतेः। अन्यथा युक्तस्थानेऽध्यस्त इति प्रयोगः श्रुतौ स्यात्। श्रुतिगृहीतत्वादुक्तार्थस्यैव सम्यक्त्वेनोक्तमानानामध्यासपरत्वाभावात्। किञ्चाध्यासस्याद्याप्यसिद्ध्या तदनुमाने साध्यासिद्धेः। अध्यासप्रयुक्तो व्यवहारस्तत्प्रयुक्तश्चाध्यास इत्यन्योन्याश्रयाच्च। किञ्च हेतोरपि स्वरूपासिद्धत्वात्। अध्यासासिद्ध्या तदन्वयव्यतिरेकस्य सुतरामसिद्धेः। घटादीनां मृत्परिणामत्वेन दृष्टान्तवैषम्याच्च। तथैव

विग्रहः। अत्रात्मपदं शरीरपरं मनश्शब्दस्तु तत्कार्य्यबुद्धेरप्युपलक्षकः। पूर्वमन्त्रे बुद्धेरपि सारथित्वेन निर्दिष्टत्वात्। भोक्ता कर्तृत्वभोक्तृत्ववानित्यर्थः। शरीरेन्द्रिययुक्तस्यैवात्मनः कर्तृत्वं भोक्तृत्वञ्चास्तीति न तु केवलस्येति श्रुत्यर्थः। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। कर्तृत्वभोक्तृत्वादिव्यवस्थान्यथानुपपत्त्याऽध्यासस्वीकार इति तदर्थः। श्रुत्यनुसारी पन्था ग्रहीतव्यो न तु तदननुकूल इत्याह—**श्रुतिग्रहीतत्वादिति।** संदिग्धसाध्यवत्त्वं पक्षत्वमिति मते अनुमानात्प्रागध्यासस्यासिद्धत्वात्साध्यसन्देह रूपायाः पक्षताया अभावात्तदीय-देहादिष्वहंममाध्यासमूलकत्वविधेयताकानुमितिर्नोत्पद्यत इत्याशयेनोक्तानुमानं निराकरोति—**किञ्चेति**। यदि सिसाधयिषाविरहसकृतसिद्ध्यभाव रूपपक्षताया एवानुमानाङ्गमित्युच्यते तदा साध्याप्रसिद्धिपदेन साध्ये साध्यावच्छेदकाभावरूपा साध्या प्रसिद्धिर्वाच्या तथा च निरुक्तसाध्येऽध्यासत्वरूपसाध्यातावच्छेदकाभावेन भवति निरुक्तानुमाने साध्याप्रसिद्धिदोषस्तेन परामर्शप्रतिबन्धान्नानुमितिरित्याशयः।

प्रकार अध्यास के स्पष्ट प्रमाण विद्यमान है, फिर आप कैसे कह सकते हैं कि अध्यास में प्रमाण नहीं है—इस प्रकार मायावादी मत के अध्यास में कई प्रमाण हैं—तो ऐसा नहीं कह सकते, उक्त प्रत्यक्ष (अहं द्रष्टा अहं श्रोता) तथा अनुमान आदि आभास मात्र है—कहने मात्र का अध्यास है—वे अध्यास नहीं है। उक्त प्रत्यक्ष आदि शरीर, इन्द्रिय संयुक्त आत्म विषय होने से उनमें अध्यस्तत्व का अभाव है। ''आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।'' आत्मा च इन्द्रियश्च मनश्च तैर्युक्त, अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय तथा मन से उक्त आत्मा भोक्ता है। यहाँ आत्मा शब्द शरीरवाची है। यानी शरीर, इन्द्रिय तथा मन में उक्त आत्मा द्रष्टा होता है। अन्यथा 'मनो युक्तो' के स्थान में 'अहपस्तः' ऐसा श्रुति का प्रयोग किया जाता। श्रुति गृहीत होने से उक्त अर्थ ही समीचीन होने से पूर्वोक्त अनुमानों का अध्यास परत्व नहीं है। दूसरी बात 'सन्दिग्ध साध्यवत्त्वं पक्षत्वम्' इस मत में अनुमान से पहले अध्यास असिद्ध होने से साध्य सन्देह रूप पक्षता के अभाव में कारण तदीय देह आदि में अहं मम इत्याकारक अध्यास मूलकत्व विधेयताक अनुमिति नहीं उत्पन्न होगी—इसी आशय से उक्त

व्यवहारस्य देहादियुक्तात्मकर्तृत्वेनान्यथासिद्धत्वादर्थापत्तेरपि निर्मूलत्वादाभासमात्रत्वमिति। ननु मास्तु प्रत्यक्षादीनामत्र प्रामाण्यम्। ''ब्राह्मणो यजेत'' ''आत्मावाऽरे दृष्टव्य'' इत्यादि श्रुतीनामेव वर्णाश्रमवयोवस्थाद्यध्यासवन्तमेवाधिकृत्य प्रवृत्तिदर्शनात्। तथोक्तं भगवत्पादैर्भाष्यकारैः—''ब्राह्मणो यजेते''त्यादीनि शास्त्राणि आत्मनि वर्णाश्रमवयोऽवस्थाविशेषाद्यध्यासमाश्रित्य प्रवर्तत इति।

उक्तानुमानमन्योन्याश्रयेणापि दूषयति—**अध्यास इति**। स्वरूपासिद्धिमुद्भावयति—**किञ्चेति**। तामेव विवृणोति—**अध्यासासिद्ध्येति**। अध्यासेति विशेषणासिद्ध्यातद्विशिष्टहेतोरसिद्धत्वमित्यर्थः। दृष्टान्तासिद्धिमाह-**घटादीनामिति**। व्यवहारान्यथाऽनुपपत्याऽध्यासः कल्प्यत इति यदुक्तं तदप्यपाकरोति—**तथैवेति**। देहेन्द्रियादियुक्तात्मकर्तृत्वे नैवोपपत्तावर्थापत्तिर्निर्मूलेत्यर्थः। अध्यासं प्रामाणिकं कर्त्तुं शङ्कते—**नन्विति**। **ब्राह्मण इति**—ब्राह्मण्याद्याश्रयस्य शरीरस्य जडत्वेनानियोज्यत्वात्तदैक्याध्यासवानात्मैव नियुज्यत इत्यर्थः। देहाद्यैक्याध्यासाभावेसुषुप्तौ प्रमातृत्वाद्यदर्शनात्तदन्यथानुपपत्तिश्च देहाध्यासे मानम्। उक्तश्रुतीनामपि तदंश एव तात्पर्य्यमिति शङ्कितुराशयः। उक्तार्थं भगवद्भाष्यकारवचनेन प्रमाणयति—**तथोक्तमिति**। ''ब्राह्मणो यजेत'' ''अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत'' ''राजा राजसूयेन यजेत'' ''कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत'' इत्याद्याः श्रुतयस्सन्ति ताभिर्वर्णाश्रमवयोऽवस्थादिमच्छरीरेन्द्रियमनोयुक्ताधिकारिविशेषो बोध्यते नत्वध्यास इत्याशयेन निराकरोति—**नेति**। आसाम्= ''ब्राह्मणो यजेते''त्यादिवचसाम्।

अनुमान का खण्डन करते हैं—'किञ्चाध्यासस्याद्याप्यसिद्धया तदनुमाने साध्यासिद्धेः' यदि सिसाधियिषाविरह सहकृत् सिद्ध्यभाव रूप पक्षता को अनुमान का अङ्ग माने तब साध्याप्रसिद्ध पद से साध्य के साध्यतावच्छेद का भाव रूप साध्याप्रसिद्धि ही कहनी होगी—तब उक्त साध्य में अध्यासत्व रूप साध्यतावच्छेद के अभाव से उक्त अनुमान में साध्या प्रसिद्धि रूप दोष होता है—उससे परामर्श का प्रतिबन्ध होने से अनुमिति नहीं होगी, यह आशय है। दूसरी बात अध्यास प्रयुक्त व्यवहार तथा व्यवहार प्रयुक्त अध्यास इस तरह अन्योऽन्याश्रय दोष का भी प्रसङ्ग होगा। दूसरी बात यहाँ हेतु भी स्वरूपासिद्ध है—जब अध्यास ही सिद्ध नहीं तो उसका अन्वय व्यतिरेक तो सुतराम् असिद्ध होता है। घर आदि मृत्तिका के परिणाम होने से दृष्टान्त भी आपका विषम होता है। इसी तरह पूर्वोक्त व्यवहार देहादि युक्त आत्म कर्तृक होने से अन्यथा सिद्ध है—इसलिये अर्थापत्ति भी निर्मूल होने से आभास मात्र है। यदि कहें कि उक्त प्रत्यक्ष आदि अध्यास में भले ही प्रमाण नहीं हो—परं तु 'ब्राह्मणो यजेत' इत्यादि शास्त्र तो स्पष्टतया आत्मा में वर्ण आश्रम वय अवस्था विशेषादि के

तस्माच्छ्रुतिप्रमाणक-त्वादध्यासोऽवश्यं माननीय इति चेन्न, उक्तश्रुतीनामपि वर्णाश्रमवयोऽवस्थादिमच्छरीरसंयुक्ताधिकारिविषयकत्वाविशेषात्। आसामपि निर्णयस्य तयैकवाक्यत्वाच्च। तन्निष्ठानां मनीषित्वयोगं श्रावयन्ती भगवती श्रुतिस्तद्विपरीतवादिनां कुमनीषित्वं सूचयति। तस्माद्येषां मतेऽध्यासो वेदादिप्रमाणविरुद्धोऽपि कुलधर्मत्वेन प्राप्तस्तैरेव माननीय इति

तयैकवाक्यत्वात्="आत्मेन्द्रियमनो युक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिण" इति श्रुत्या, एकवाक्यत्वात्। उक्तश्रुतिघटकमनीषिपदप्रयोगस्यार्थं विवृणोति—**तन्निष्ठानामिति।** देहेन्द्रियादियुक्त आत्मा भोक्ता इति श्रुत्यर्थनिष्ठानामिति तदर्थः। तद्विपरीतवादिनाम्=वर्णाश्रमवयोऽवस्थाध्यासवादिनाम्। उपहसन्नुपसंहरति—**तस्मादिति।** विनिर्धूतनिरवशेषाविद्यावतां लब्धतत्साम्यानां मुक्तानां वामदेवयाज्ञवल्क्यप्रभृतीनामहमर्थस्वरूपत्वं श्रावयन्त्यः श्रुतयस्सन्ति ताभिः किं तेषामध्यासवत्वमनुमातव्यं तथा सति तेषामज्ञातत्वाविशेषात्तदुपदेशानामानर्थक्यं प्रसज्जेत इत्याह—**अथ चेति।** तादृशव्यवहारस्य=स्वस्याहमर्थत्वेन व्यवह्रियमाणस्य। तथा च "मामेव विजानीहीमामुपास्वेति तद्वैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे" अहं मनुरभवं सूर्यश्च कक्षीवानृषिरस्मि विप्र इति तमेवावोचत्। अतो मामेव विजानीहीत्यादिव्यवहारदर्शनात् किन्तेषामध्यासवत्त्वमनुमातव्यं तथात्वे

अध्यास का आश्रय लेकर ही प्रवृत्त होते हैं—इसलिये अध्यास श्रुति प्रमाण मूलक होने से अध्यास अवश्य माननीय है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, उक्त श्रुतियाँ भी वर्ण आश्रम-वय की अवस्थादि से युक्त शरीर संयुक्त आत्मा अधिकारि न होने से यह भी अध्यास नहीं हो सकता। 'ब्राह्मणो यजेत' इत्यादि श्रुतियों का भी "आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः" इस श्रुति से एकवाक्यता है। देह इन्द्रियादि से युक्त आत्मा भोक्ता है—इस श्रुति पर निष्ठा रखने वालों के लिये श्रुति ने मनीषी शब्द का प्रयोग किया है—एतावता वर्ण आश्रम वय अवस्था में अध्यास वाणी के लिये श्रुति द्वारा कुमनीषित्व द्योतित है। इसलिये जिनके मत में वेदादि प्रमाण के विरुद्ध होने पर भी कुल धर्म के रूप में अध्यास मान्य है—वे ही लोग अध्यास मानें उनके लिये ही अध्यास माननीय है—यही मनीषी पद का स्वारस्य है।

दूसरी बात यदि उक्त प्रत्यय के आधार पर अध्यास माना जाए तब तो आपके मत में जीवन्मुक्त याज्ञवल्क्य वामदेव आदि महर्षियों के उक्त प्रकारक व्यवहार देखे जाने से उन लोगों में अध्यास स्वीकार करना होगा, अर्थात् अपनी दृष्टि में वे

मनीषिपदप्रयोगःस्वारस्यार्थः। अथ च तव मते जीवन्मुक्तानामपि याज्ञवल्क्यादीनां तादृशव्यवहारस्य तादवस्थ्यदर्शनेन तेषामप्यध्यासवत्त्वं स्वीकार्यम्। अन्यथा व्यतिरेकनियमभङ्गात्। तथात्वे च तेषामज्ञात्वाविशेषेण तदुपदेशमूलकेदानीन्तनानां पौरुषेयशास्त्रव्याख्यातृवाक्यजन्योपदेशानां सुतरामनाप्तत्वप्रसङ्गेनोपदेशसन्ततेः सुमतां वञ्चकतायोगेना निर्मोक्षप्रसङ्गादिति सङ्क्षेपः। अत्र विशेषस्याग्रे भूयो वक्ष्यमाणत्वादित्यर्थः॥ ३९॥

इति पराभिमताध्यासविषयकप्रमाणशिखरनिपातः॥ ८॥

तदुपदेशानामप्रामाण्येनानाश्वासात् करण्यापि परमपुरुषार्थे मोक्षे प्रवृत्तिर्न स्यादिति भावः। विपक्षे बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति**। तेषामध्यासवत्त्वास्वीकार इति तदर्थः। **व्यतिरेकेति**—अध्यासे सति व्यवहार इत्यन्वयः। अध्यासाभावे व्यँवहाराभाव इति व्यतिरेकरूपो यो नियमस्तस्य भङ्गः स्यादित्यर्थः। ततः किमनिष्टमापद्यत इत्यत आह—**तथात्वेचेति**। अध्यासवत्त्वे चेत्यर्थः। **तदुपदेशमूलक इति**—याज्ञवल्क्यप्रभृतीनामुपदेशो मूलं यस्य स तथा। इत्यध्यासप्रमाणनिरासः ।।३९।।

इति पराभिमताध्यासविषयकप्रमाणशिखरनिपातस्य व्याख्या॥ ८॥

सब भी भ्रान्तिमान् पुरुष हो जाएँगे—क्योंकि उन लोगों ने भी अपने लिये अहं का प्रयोग किया है—"मामेव विजानीहीमामुपास्स्वेति तद्वैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवम् सूर्यश्च कक्षीवान् ऋषिरस्मि विप्रः इति तमेवावोचत् अतो मामेव विजानीहि" इत्यादि व्यवहार देखा गया है। मैं मनु हुआ, मैं सूर्य हुआ। आपकी दृष्टि में ये सब भी अध्यास होगा—तब तो वे सभी अध्यासवान् होंगे भ्रान्तिमान् हो जाएंगे, फिर तो उन सब का उपदेश भी अप्रामाणिक हो जाएगा। इस प्रकार वे भी अज्ञानी ही होंगे—फिर तो उनके उपदेश के आधार पर लिखित आधुनिक पुरुषों द्वारा की गई शास्त्रों की व्याख्याएँ—उनके सारे के सारे उपदेश भी अविश्वनीय हो जायेंगे—उनके उपदेशों में वञ्चमत आ जायेगा—फिर तो उनका उपदेश मोक्ष भी अप्रासंगिक हो जायेगा। अभी इतना ही संक्षेप कहा है—इस सम्बन्ध में विशेष बात आगे पुनः कहेंगे ।।३९।।

इस प्रकार अध्यास विषयक प्रमाणरूपी शिखर का निपात हुआ॥ ८॥

---

१. अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत का अर्थ है आठ वर्ष वाले ब्राह्मण शरीर वाले का उपनयन करें।

२. मनुरभवम् यहाँ भी मनु शरीर में अहम् अध्यास होगा।

(९) पराभिमताज्ञानलक्षणगिरिनिपातः

नन्वध्यासस्यासम्भवः किमयुक्तत्वाद्वा मानाभावाद्वा कारणाभावाद्वेति विवेचनीयम्। आद्य इष्टापत्तिः। अध्यासस्यासङ्गे स्वप्रकाशास्वप्रकाशात्मन्ययुक्तत्वस्यास्माकमलङ्कारत्वात्। न द्वितीयः। अज्ञः कर्ता मनुष्योऽहमिति प्रत्यक्षानुभवात्। न चेदं प्रत्यक्षं देहादिसंयुक्तात्मविषयकत्वात् प्रमेत्युक्तमधस्तादिति वाच्यम्। अपौरुषेयतया निर्दोषेणोपक्रमादिलिङ्गावधृततात्पर्येण तत्त्वमस्यादिवाक्येनाकर्तृब्रह्मबोधनेनास्य भ्रमत्वनिश्चयात्। न च क्षणिकयागस्य

वज्रोत्तेजिका—यदध्यासस्यास्तित्वं निषिद्ध्यते तत्कस्य हेतोः, अयुक्तत्वात्, मानाभावाद्वा कारणा-भावाद्वेति विकल्पयति—**नन्विति।** अध्यासस्यायुक्तत्वन्त्वस्माकमिष्टमेवेत्याह—**आद्य इति।** असङ्गो ह्ययं पुरुष इति श्रुत्या ब्राह्मणोऽसङ्गत्वं प्रतिपाद्यते तेन स्वयं प्रकाशे ब्रह्मण्यध्यासत्वं नोपपद्यत इत्यस्माकमलङ्कार इत्याह—**अध्यासस्येति।** द्वितीयपक्षं निरस्यति—**न द्वितीय इति। अज्ञेति**—मनुष्यादेर्देहधर्मत्वेनात्मनि तदध्यासो देहैक्याध्यासं विना न सम्भवतीति तदैक्याध्यासस्य सिद्धिरिति भावः। इदं प्रत्यक्षम्=अज्ञःकर्ता मनुष्योऽहमिति प्रत्यक्षम्। **उपक्रमादीति**—एकमेवाद्वितीयमित्युपक्रमः। तत्वमसीत्युपसंहारः। तत्वमसीति नवकृत्वोऽभ्यासः। जीवब्रह्मणोरैक्यस्यान्यतोऽप्राप्तत्वादपूर्वता। अथ सम्पत्स्यत इति फलम्। येनाश्रुतं श्रुतं भवतीत्यादिरर्थवादः। मृत्पिण्डादिदृष्टान्तैरुपपादनादुपपत्तिरित्यर्थः। उक्तवेदान्तानां निर्विशेषचिन्मात्रे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरहिते ब्रह्मणि तात्पर्यमतोऽज्ञः कर्तेति

हिन्दी अनुवाद—

अज्ञान लक्षण की असिद्धि

प्रश्न करते हैं कि अध्यास असंभव क्यों है ? अयुक्त होने के कारण ? प्रमाणाभाव के कारण अथवा कारण के अभाव के कारण? प्रथम पक्ष हमारे लिये इष्ट है—कारण "असङ्गोऽह्ययं पुरुषः" यह श्रुति ब्रह्म को असंग बतलाती है—इसलिये स्वयं प्रकाश ब्रह्म के अध्यासत्व की उपपत्ति नहीं होती—यह तो हमारे लिए अलंकार है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—मैं अज्ञ हूँ, कर्ता हूँ, मनुष्य हूँ, यह प्रत्यक्ष अनुभव प्रमाण है, कहें कि यह प्रत्यक्ष देह आदि से संयुक्त आत्मविषयक होने से प्रमा है—ऐसा हमने कहा है तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि वेद अपौरुषेय है, दोषों से सर्वथा रहित है, ऐसे (परम प्रामाणिक) तथा उपक्रम उपसंहार आदि ग्रन्थ तात्पर्य निर्धारक सामग्री द्वारा ज्ञात तात्पर्य वाले 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों से ब्रह्म का अकर्तृत्व निश्चय होने के कारण 'मैं कर्ता हूँ' इस प्रतीति

श्रुतिबलात्कालान्तरभाविफलहेतुत्ववत् तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त इति श्रुतिबलात्सत्यस्यापि ज्ञानान्निवृत्तिसम्भवादध्यासकल्पना व्यर्थेति वाच्यम्। तत्वज्ञानमात्रनिवर्त्यस्य क्वापि सत्यत्वादर्शनात्। सत्यस्य चात्मनो निवृत्त्यदर्शनाच्च। अयोग्यत्वनिश्चये सति सत्यबन्धस्य ज्ञानान्निवृत्तिश्श्रुतेर्बाधकत्वायोगात्। न च सेतुर्दर्शनात्सत्यस्यापि पापस्य नाशदर्शनान्नायोग्यतानिश्चय इति वाच्यम्। तस्य श्रद्धादिनियमादि-

---

प्रत्यक्षमप्रमाणमिति निश्चीयत इत्यर्थः। क्रियाकलापस्य यागस्य विनष्टत्वेन कालान्तरभावि स्वर्गं प्रति कथं कारणत्वमिति यद्याशङ्केत तन्निराकुर्वन्नाह—**क्षणिकयागस्येति**। सन्ति च शतशश्श्रुतयः यागजन्यफलं श्रावयन्त्यः तद्यथा ''स्वर्गकामो यजेत'' ''अपाम् सोमममृता अभूम'' ''अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनःसुकृतं भवति'' ''यत्र नोष्णं न च शीतं स्यात् न ग्लानिर्नाप्यरातय'' इत्यादयः, एताभिःश्रुतिभिः क्षणिकयागस्य यथा फलहेतुत्वं निश्चीयते तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त इति श्रुत्याप्राकृतनामरूपात्मकं जगत्सत्यमपि ज्ञानान्निवर्तत इत्यध्यासकल्पनाऽपार्थेत्यर्थः। मिथ्याभूतमेव वस्तु तत्वज्ञानेन निवर्तत इति नियममाश्रित्याह—**तत्त्वज्ञानेति**। यदिसत्यस्यापि ज्ञानेन निवृत्तिःस्यात्तदप्यसत्यत्वविशेषादात्मनोऽपि निवृत्तिः स्यात्। यतः सत्यभूतस्यात्मनो निवृत्तिर्न जायते अतस्तत्वज्ञानं न सत्यस्य निवर्तकमिति कल्पनामङ्गीकृत्याह—**सत्यस्येति**। यथा सेको न वह्निकरणक इत्याकारकायोग्यताया निश्चये सति वह्निना सिञ्चेदिति वाक्याच्छाब्दबोधानुपपत्तिस्तथा तत्वज्ञानं न सत्यस्य निवर्तकमित्या-

---

में भ्रमत्व का निश्चय है। यदि कहें कि जैसे क्षणिक यज्ञ-याग श्रुति प्रमाण के बल से कालान्तर में होने वाले स्वर्गादि फलों का हेतु होता है, उसी तरह ''तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः'' इस श्रुति के बल से प्राकृत नाम रूपात्मक जगत् सत्य होने पर निवृत्त हो जायेगा—फिर उसे अध्यास क्या मानें तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि जो पदार्थ केवल तत्त्वज्ञान मात्र से निवर्त्य होता है, वह कभी सत्य नहीं देखा जाता है। (इसलिये जगत् सत्य नहीं है)। सत्य आत्मा की कभी निवृत्ति नहीं देखी जाती है। जैसे सेक वह्नि करणक नहीं होता है—इत्याकारक योग्यता के निश्चय होने पर वह्निना सिञ्चति (आग से सींचता है)। इस वाक्य से शाब्द बोध नहीं होता—तथा तत्त्वज्ञान सत्य का निवर्तक नहीं होता इत्याकारक योग्यता के निश्चय होने पर सत्य बन्धन ज्ञान से निवृत्त होता है—ऐसा नहीं कह सकते इसी आशय से कहते हैं—'अयोग्यत्व निश्चये सति'—अर्थात् अयोग्यत्व के निश्चय रहने पर सत्य बन्धन के ज्ञान से निवृत्ति नहीं—इसमें श्रुति बाधक नहीं होती। ''विद्वान्

सापेक्षज्ञाननाश्यत्वात्। बन्धस्य च "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" इति श्रुत्या ज्ञानमात्रनाश्यत्वप्रतीतेः। अतः श्रुतज्ञाननिवर्त्यत्वनिर्वाहार्थमध्यस्तत्वं वर्णनीयम्। किञ्च ज्ञानैकनिवर्त्यस्य किं नाम सत्यत्वं न तावदज्ञानाजन्यत्वम् "मायान्तु प्रकृतिंविद्यादिति विरोधात्, मायाविद्ययोरैक्यात्। नापि स्वाधिष्ठाने स्वाभावशून्यत्वम्। अस्थूलादिश्रुतिविरोधात्। नापि ब्रह्मवद्बाधायोग्यत्वम्, ज्ञाननिवृत्ति श्रुतिविरोधात्। नापि व्यवहारकाले बाधशून्यत्वं तर्हि

कारकायोग्यतानिश्चये सति सत्यबन्धो ज्ञानान्निवर्तत इति वक्तुं न शक्यत इत्यत आह **अयोग्यतानिश्चय इति**। विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त इति श्रुतिरसत्यस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वे बाधिका स्यात् तया सत्यवस्तुनो ज्ञाननिवर्त्यत्वबोधनादिति चेत्तत्राह—**सत्यबन्धस्येति**। अयोग्यतानिश्चयाभावसहकृताया एवोक्तश्रुतेरुक्तार्थं प्रति प्रतिबन्धकत्वं वाच्यम्, तथात्वाभावान्नतस्याः प्रतिबन्धकत्वमिति भावः। यद्ययोग्यतानिश्चयः स्यात्तदोक्तव्यवस्था सिद्ध्येत् न त्वेवमित्याह—**सेतुदर्शनादिति**। यदि तत्वज्ञानस्य मिथ्याभूतस्यैव वस्तुनो निवर्तकत्वमभ्युपेयते तदोत्तरज्ञानेन पूर्वज्ञानस्य गरुडध्यानादिना विषादेः, सेत्वादिदर्शनेन ब्रह्महत्यादेश्च निवृत्तिर्न स्यादतो निश्चीयते सत्यस्यापि वस्तुनो ज्ञानेन निवृत्तिर्भवति तस्मान्न योग्यतानिश्चय इत्यर्थः। सेतुदर्शनमात्रं न पापनिवर्तकं किन्तु श्रद्धाविश्वासादिनियम सापेक्षमित्याह—**तस्येति**। पापस्येत्यर्थः। "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाये" ति श्रुत्या बन्धं प्रति तत्त्वज्ञानत्वेन तत्त्वज्ञानस्य निवर्तकता बोध्यते। अतोबन्धस्य तत्त्वज्ञाननिवर्त्यत्वोपपत्तये तस्याध्यस्तत्वं वाच्यमित्याह—**बन्धस्येति**। तत्त्वज्ञानेन यत्सत्यत्वं निवर्तते तत्सत्यत्वं कीदृगिति

नामरूपाद्विमुक्त" यह श्रुति असत्य के ज्ञाननिवर्त्यत्व में बाधिका होगी, उससे सत्य वस्तु की ज्ञान निवृत्ति बाधित होती—ऐसा कहे तो कहते हैं—'सत्य बन्धस्य'। अयोग्यता के निश्चय के अभाव से सहकृत होनेपर ही उक्त श्रुति उक्त अर्थ की प्रतिबन्धक होगी। वैसा है नहीं अतः वह प्रतिबन्ध नहीं होगा। यदि कहें कि सेतु दर्शन से सत्य पाप का भी नाश देखा गया है, अयोग्यता निश्चय नहीं तो ऐसा नहीं कह सकते—वहाँ श्रद्धा आदि नियम सापेक्ष ज्ञान से नाश होता है। बन्धन का तो "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" इस श्रुति द्वारा ज्ञानमात्र से नाश होता है, ऐसी प्रतीति होती है—इसलिये बन्धन तत्त्वज्ञान निवर्त्य है, इसकी उपपत्ति के लिये उसका अध्यस्तत्व कहना होगा। अब पूछते हैं कि तत्त्वज्ञान से जों सत्यता निवृत्त होती है—वह सत्यता कैसी है ? उसे अज्ञाना जन्यत्व नहीं कह सकते—कारण माया, प्रकृति तथा अविद्या सब एक ही वस्तु है—पर्यायवाची है। तज्जन्यत्व (मायाजन्यत्व) सत्य प्रपञ्च के हैं—इसलिये यह अव्यापन लक्षण है यही कह रहे हैं—"माया तु

व्यावहारिकसत्वमागतमेवाध्यस्तत्वं तच्च श्रुत्यर्थयोग्यताज्ञानार्थं वर्णनीयमेव यागस्यापूर्वद्वारवदिति। नापि कारणाभावादिति तृतीयः कल्पः मिथ्याज्ञानस्य तत्कारणस्य भावात्। तथोक्तं भगवत्पादैर्भाष्यकारैः-मिथ्याज्ञाननिमित्त इति। मिथ्या च तदज्ञानं च तदेव निमित्तमुपादानं यस्य स तथेत्यर्थ इति चेन्न, आपातरमणीयत्वात्। तथाहि—यदुक्तमात्मन्यध्यासस्यायुक्त-त्वमस्माकमलङ्कार इति, तद्दुरुक्तम्। तत्र युक्त्युपन्यासस्य, जलताडनाव-द्वैयर्थ्यप्रसङ्गात्।

पृच्छति—**किञ्चेति**। माया प्रकृतिरविद्येत्यनर्थान्तरं तज्जन्यत्वस्य सत्ये प्रपञ्चे सत्त्वादव्यापकमिदं लक्षणमित्याह—**मायान्त्विति**। या माया सा प्रकृतिः सा एव त्रिगुणात्मकप्रधानपदवाच्येत्यर्थः। तथा च तज्जन्यत्वं विश्वस्य न त्वज्ञानजन्यत्वमिति भावः। तदुक्तम्—"त्रिगुणा प्रकृतिर्माया तज्जन्यत्वाद्विश्वमीदृशम्। अनाद्यनन्तकालेषु मायेत्याहुर्विपश्चित" इति स्मृतिरिति। सत्यत्वस्य लक्षणान्तरं निरस्यति—**नापीति**। **स्वाधिष्ठानेति**—घटाधिष्ठाने मृदि घटात्यन्ताभावशून्यत्वरूपस्य सत्यत्वस्य घटे सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। यदि प्रपञ्चे निरुक्तसत्यत्वंस्यात्तदा प्रपञ्चनिषेधपराया अस्थूलादिश्रुतेर्विरोधः स्यादित्याह—**अस्थूलेति**। लक्षणान्तरं निराकरोति—**नापीति**। **ज्ञाननिवृत्तिश्रुतिविरोधादिति**—विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त इति श्रुत्या नामरूपात्मकस्य प्रपञ्चस्य ज्ञाननिवृत्तिबोधनात्। तस्याः प्रपञ्चस्य बाधायोग्यत्वरूपसत्यत्वे विरोधः

प्रकृतिं विद्यात्" इस वचन से विरोध है।

माया और अविद्या में एकत्व है। सत्यत्व का दूसरा लक्षण 'स्वाधिष्ठाने स्वाभावशून्यत्वम्' घट के अधिष्ठान मृत्तिका में घटात्यन्ताभाव शून्यत्व रूप सत्यत्व है—इसलिये लक्षण समन्वय है। यह भी नहीं कह सकते यदि प्रपञ्च में उक्त सत्यत्व माने तब प्रपञ्च निषेध परम अस्थूल आदि श्रुति का विरोध होगा। अन्य लक्षण का भी खण्डन करते हैं—"नापि ब्रह्मवद्बाधायोग्यत्वम्" ब्रह्म के समान जो बाध के अयोग्य हो, यह लक्षण भी नहीं कह सकते क्योंकि इसमें ज्ञान निवृत्ति बोधक श्रुति विरोध है, ना ही व्यवहार काल में बाध शून्यत्व लक्षण भी कह सकते—इसमें तो व्यावहारिक सत्त्व रूप अध्यस्तत्व हो ही गया। उस अध्यस्तत्व का श्रुति में अर्थ की योग्यता ज्ञान के लिये वर्णन करना ही होगा—यज्ञ के अपूर्व (अदृष्ट) द्वार की तरह। अर्थात् अध्यस्त प्रपञ्च का तत्त्वज्ञान से ही बाध होता है, यदि प्रपञ्च अध्यस्त

टिप्पणी :— १. माया, अविद्या यदि एक ही है तो वैष्णव पक्ष में कभी भी कोई हानि नहीं। माया या अविद्या भगवान् की ही शक्ति है, जिससे भगवान् आसुरी प्रकृति के लोगों को व्यामोहित कर डालते हैं, इस माया से वो ही पार पा सकता है जो भगवान् की शरणागति प्राप्त कर लेता है, उसे भगवान् की माया मोह में नहीं डालती।

किञ्चाध्यासायुक्तत्वरूपालङ्कारे, तदयुक्तत्वप्रयुक्ताद्वैतसिद्धान्तबाधस्तत्प्रयुक्ताखण्डार्थत्वादिबाधश्च चूडामणिर्भूयात्। किञ्च यस्याध्यासस्यायुक्तत्वं श्रीमद्भिर्भवद्भिरलङ्कारतया स्वीकृतम्, सोऽध्यासोऽयुक्तत्वान्नातिंविवक्षया स्वीकृतः? शास्त्रविरुद्धोऽप्यस्मत्कुलधर्मत्वादवश्यमभ्युपेय इति वा? आद्य इष्टापत्तिः। अध्यासो नास्तीत्यस्मदीयपक्षप्रवेशात्तत्प्रयुक्तः सर्वोऽपि सिद्धान्तो दत्ततिलाञ्जलिः स्यात्। द्वितीये

स्यादित्यर्थः। सत्यत्वस्य लक्षणान्तरं निरुच्यापा-करोति—**नापीति**। तच्च=अध्यस्तत्वम्। **श्रुत्यर्थेति**—अध्यस्तस्य प्रपञ्चस्य तत्वज्ञानेनैवबाधोभवति यदि प्रपञ्चस्याध्यस्तता न स्यात्तदा श्रुत्यर्थयोग्यता न निर्वहेदिति तस्याध्यस्तत्वं कल्पनीयमिति भावः। उक्तार्थं दृष्टान्तेनपरबुद्ध्यारूढं करोति—**यागस्येति**। यथा यागस्यापूर्वद्वारैव स्वर्गयोग्यत्वं स्वर्गजनकत्वमिति यावत्। तथा तमेव विदित्वेति श्रुत्युपदिष्टं तत्वज्ञानस्य बन्धनिवर्तकत्वं तच्च प्रपञ्चस्याध्यस्तत्वद्वारेणैवोपपद्यते। नान्यथेत्यर्थः। एतावता प्रबन्धेन मानाभावादितिपक्षो निरस्तः। सम्प्रति तृतीयकल्पमपाकरोति—**नापीति**। उक्तार्थे स्वभाष्यं प्रमाणयति—**तथोक्तमिति**। तदर्थं विवृणोति—**मिथ्याचेति**।

नहीं होगा, तब उसमें श्रुत्यर्थ की योग्यता का निर्वाह नहीं होगा। इसलिये उसमें अध्यस्तत्व की कल्पना होगी यह भाव है। इस बात को दृष्टान्त द्वारा समझा रहे हैं—''यागस्य अपूर्वद्वारवद्'' जैसे याग में अपूर्व (तज्जन्य अदृष्ट) द्वारा ही स्वर्ग प्राप्ति की योग्यता होती है, उसी तरह यहाँ ''तमेव विदित्वातिमृत्युमेति'' इस श्रुति द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञान का बन्ध निवर्तकत्व प्रपञ्च के अध्यस्तत्व द्वारा ही उपपन्न होता है अन्यथा नहीं। इतने ग्रन्थ द्वारा ज्ञानाभाव से अध्यास का असंभव वाला पक्ष का खण्डन हुआ। अब तृतीय पक्ष—कारण के अभाव से अध्यास का असंभव वाला पक्ष भी नहीं कह सकते—क्योंकि मिथ्याज्ञान रूप अध्यास का कारण विद्यमान है—जैसाकि भगवत्पाद भाष्यकार श्री शंकराचार्य ने कहा है—''मिथ्याज्ञाननिमित्त'' मिथ्या और अज्ञान वही जिसका निमित्त है—(अथवा मिथ्या ज्ञान है अविद्या) वह अविद्या ही अध्यास का कारण है। यहाँ तक मायावादी का पूर्वपक्ष है—जिसका खण्डन करते हैं। चेन्न, ऐसा नहीं कह सकते—पूर्वोक्त उत्तर आपात रमणीय है जब तक इसकी पोल नहीं खुल जाती तभी तक यह रमणीय है। आपने पहले जो कहा है कि आत्मा में अध्यास का अयुक्तत्व हमारे लिये अलंकार स्वरूप है—यह ठीक नहीं है—कारण यदि अध्यास अयुक्त है—तो उसके लिये युक्ति का उपन्यास जल-ताड़न के समान व्यर्थ होगा। यदि अध्यास का

महाराष्ट्राणां यथा लशुनभक्षणं शास्त्रनिषिद्धमपि कुलधर्मतया स्वीकृतं तद्वच्छास्त्रविरुद्धोऽप्यध्यासः कुलधर्मत्वाद्भवतां श्रेयसे भूयात्॥ ४०॥

उत्तरः पक्षः

निराकरोति—**नेति**। तत्र हेतुमुपन्यस्यति—**आपातेति**। यत्पूर्वमाशङ्कितं तद्दूषयितुमनूद्यते—**तथाहीति**। अध्यासस्यायुक्तत्वात्तत्र युक्त्युपन्यासो निष्फलो जलताडनावदित्याह—**तत्रेति**। अध्यासस्यायुक्तत्व इति तदर्थः। यद्यध्यासस्यायुक्तत्वं स्यात्तदाऽद्वैतसिद्धान्तोऽपि बाध्येत तद्बाधोऽपि अध्यासस्यायुक्तत्वालङ्कारेचूडामणिस्स्यादित्युपहसन्नाह—**किंचेति**। अद्वैतसिद्धान्तबाधेन वेदान्तानामखण्डार्थबोधकत्वमपि बाधितं सोऽपि निरुक्तालङ्कारे चूडामणिः स्यादित्याह—**तत्प्रयुक्तेति**। अद्वैतसिद्धान्तबाधप्रयुक्ताखण्डार्थत्वादिबाध इति तदर्थः। सति धर्मिणि धर्मचिन्तेति न्यायात्सत्यध्यासे धर्मिणि अप्रयुक्तत्वरूपोऽलङ्कार उपपद्यत इत्यध्यासोऽपिभवताभ्युपगत इत्याशयेनाह—**किंचेति**। यद्यदयुक्तं तन्नास्तीति व्याप्तिमभ्युपेत्याद्यपक्षमिष्टापत्त्या परिहरति—**आद्य इति**। **इष्टापत्तिरिति**—युक्तिसिद्धत्वाभावादध्यासो नास्तीति तदर्थः। तदेव स्फुटयति—**अध्यास इति**। प्रागुक्तार्थं दूषयितुमनूद्यते—**यदप्युक्तमिति**। **निरस्तत्वादिति**—अहमज्ञ इति प्रत्यये को वाऽहं पदार्थः शुद्धं ज्ञानमात्रमहङ्कारो वा तदन्यो वेति वक्तव्यम् ।।४०।।

अयुक्तत्व होगा तब अद्वैत सिद्धान्त भी बाधित होगा, और उसका बाद्य भी अध्यास के अयुक्तत्व रूप अलंकार का चूड़ामणि होगा तथा अध्यास के अयुक्त प्रयुक्त अद्वैत सिद्धान्त का बाध एवं तत्प्रयुक्त अखण्डार्थत्वादि का बाध भी चूड़ामणि होगा। दूसरी बात जिस अध्यास का अयुक्तत्व आपने अलंकार के रूप में अंगीकार किया है वह अध्यास अयुक्तत्व है इसे स्वीकार किया है अथवा शास्त्र बिन्दु भी हमारा कुल धर्म होने से हमारे लिये अवश्य स्वीकार योग्य है? प्रथम पक्ष में इष्टापत्ति। अध्यास नहीं है—यह हमारा पक्ष है—इस प्रकार हमारे पक्ष में प्रवेश हो जाने से तत्प्रयुक्त आपका सारा सिद्धान्त बर्बाद हो जायेगा। द्वितीय पक्ष में जैसे महाराष्ट्र निवासी शास्त्र निषिद्ध होने पर भी लहशुन भक्षण कुल धर्म मानकर स्वीकार करते हैं—इस प्रकार शास्त्र विरुद्ध भी अध्यास कुल धर्म होने से आपको ही मुबारक हो।। ४०।।

टिप्पणी:— शाङ्कर मत में अविद्या, मिथ्या ज्ञान, माया आदि पर्यायवाची शब्द हैं श्री शंङ्कराचार्य मिथ्या ज्ञान को मानते हैं।

यदप्युक्तम् अज्ञःकर्ता मनुष्योऽहमिति प्रत्यक्षानुभवाद-भानाभावस्तदप्यसम्यक्। पूर्वमेवनिरस्तत्वात्, निरसिष्यमाणत्वाच्च। ननूक्तप्रत्यक्षस्य देहेन्द्रियादिसंयुक्तात्मविषयकत्वात्प्रमेति यद्यपि श्रुति-प्रमाणेन प्रयुक्तम्। तथाप्यपौरुषेयतया निर्दोषेणोपक्रमादिलिङ्गा-वधृततात्पर्येण तत्त्वमस्यादिवाक्येनाकर्तृब्रह्मबोधनादुक्तप्रत्यक्षस्य भ्रमत्वप्रतिपत्तिरिति चेन्न, आपातोक्तेः। तथाहि—अपौरुषेयतया निर्दोषेणोपक्रमादिलिङ्गावधृततात्पर्येण

वज्रोत्तेजिका— नाद्यः, ज्ञानमज्ञं ब्रह्माज्ञमात्माज्ञ इत्युक्तं स्यात्। न द्वितीयः, अहङ्कारोऽज्ञ इति प्रत्ययः स्यात् ब्रह्माज्ञाने प्रमाणाभावात्। अहमर्थस्य शुद्धात्मस्वरूपत्वाङ्गीकारे तस्य मुक्तप्राप्यत्वादस्मदिष्टापत्तेस्तव सिद्धान्तभङ्गाच्च। न तृतीयः, उभयेतरस्याध्यासकार्यत्वेन तदानीमभावात्तस्मादहमज्ञ इति प्रतीत्याश्रयो भवतां मते न कोऽपि सिद्ध्यति तदभावेऽध्यासाभाव इति सिद्धम्। शङ्कते—**नन्विति।** अज्ञःकर्ता मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहमित्यादिप्रत्ययानां देहेन्द्रियसंयुक्तात्मविषयकत्वेन प्रमात्वमात्मेन्द्रियमनो युक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणइति श्रुत्या निर्धारितं, यद्यपि षड्लिङ्गोपेतैः वेदान्तवाक्यैर्ब्रह्मणोऽकर्तृत्वं बोध्यते तस्मादुक्तप्रत्यक्षस्य भ्रमत्वं कल्पनीयमित्यर्थः। उक्तासु श्रुतिषु कयापि श्रुत्या ब्रह्मणोऽकर्तृत्वमुपदिष्टं चेत्तदोक्तप्रत्यक्षस्य भ्रान्तित्वं स्यान्नत्वेवमित्यभिप्रायेणोक्तां शङ्कां परिहरति—**नेति।** प्रतिपाद्यमानस्येत्यादिषष्ठ्यन्तचतुष्टयं ब्रह्मणो विशेषणम्। ब्रह्मणस्तादात्म्योपदेशोऽस्मदिष्टतम एवेति योजना। **तदैक्षतेति।** तत्=सदाख्यम्। ब्रह्मैक्षत=पर्यालोचनमकरोत्। किमिति अहमेव जगद्रूपेण बहुस्यां= बहुरूपं स्याम्।

हिन्दी अनुवांद— पहले यही जो कहा था कि मैं अज्ञ हूँ, कर्ता हूँ, मनुष्य हूँ इस प्रत्यक्ष अनुभव से अध्यास सिद्ध होता है—यह प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण है अध्यास में—यह भी ठीक नहीं है, इसका हमने पहले ही खण्डन कर दिया है—यह प्रतीति देह, इन्द्रिय संयुक्त आत्म विषयक होने से प्रमा है, जो ''आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः'' इस श्रुति से निर्धारित है। यदि कहें कि इस श्रुति के द्वारा अहं कर्ता, भोक्ता इत्यादि प्रतीति देह, इन्द्रिय संयुक्त आत्म विषयक होने से प्रमात्व होने पर भी उपक्रम, उपसंहार आदि तात्पर्य निर्धारण षड् लिङ्गों द्वारा 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के ज्ञात तात्पर्य से ब्रह्म का अकर्तृत्व ज्ञात होने के कारण उक्त प्रतीति में भ्रमत्व ही सिद्ध है तो ऐसा नहीं कह सकते, उक्त श्रुतियों में किसी भी श्रुति से ब्रह्मणा अकर्तृत्व यदि उपदिष्ट होता तब उक्त प्रपञ्च को भ्रम कहा जा सकता—पर ऐसा नहीं। जैसे अपौरुषेय होने से सर्वथा दोष रहित 'तत्वमसि' आदि महावाक्यों द्वारा उपसंहार आदि तात्पर्य निर्धारक षड् लिंङ्गों से प्रतिपाद्य, ''तदैक्षत बहु

तत्त्वमस्यादिवाक्येन प्रतिपाद्य-मानस्य "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेये" तीक्षणबहुभवनसंकल्पवतो ब्रह्मणः "सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति सच्छब्दवाच्यस्य" "एकमेवाद्वितीय" मित्यतिशयसाम्यशून्यस्य "ऐतदात्म्यमिदं सर्वमिति" तादात्म्यो-पदेशोऽस्मदिष्टतम एव। तस्मिन् वाक्येऽकर्तृब्रह्मोपदेशस्य केनापि पदेनानुपदिष्टत्वात्। प्रत्युतेक्षणबहुभवनसङ्कल्पपूर्वकं "तत्तेजोऽसृजतेति" तेजःप्रभृतिजगत्कर्तृत्वश्रवणाच्चोक्तप्रत्यक्षस्य भ्रमत्वासिद्धेस्तादवस्थ्यात्।

तदर्थं प्रजायेय=तेजोवन्नादिरूपेण प्रकर्षेण जायेयेति श्रुत्यर्थः। श्रुत्यर्थमेव संक्षेपेण दर्शयति—**ईक्षणेति**। यदुपक्रमवाक्ये सच्छब्दवाच्यंब्रह्मनिर्दिष्टं तदेवात्र वाक्ये तत्पदेन बोध्यत इति बोधनायोपक्रमवाक्यमुदाहरति—**सदेवेति**। अग्रे=सृष्टेरादौ इदं शब्दवाच्यस्य कार्यजातस्य जगतः सच्छब्दवाच्ये कारणेऽतिसूक्ष्मत्वेन सत्वेपि नामरूपविभागाभावेन पृथग्ग्रहणानर्हत्वात्सदेवेति कारणेनैक्यनिर्देशः सूपपन्नः। अन्यथा सच्छब्दवाच्यस्य कारणस्य ब्रह्मण इदमित्यंगुल्यानिर्देशायोगात्कार्यस्य कारणे सूक्ष्मरूपेण सत्त्वानङ्गीकारे चासत्वाभ्युपगमापत्तेरित्यर्थः। **एकमेवेति**—एकशब्दश्च कारणैकत्वं विदधाति। एवकारश्चान्ययोगव्यवच्छेदार्थकस्तत्समं निषेधति। अद्वितीयशब्दश्च तदाधिक्यं निषेधति। न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यत इति श्रुत्यैकार्थत्वात्। अन्यथैकपदेनैवाद्वैत-सिद्धावन्यपदयोर्वैयर्थ्यापत्तेरित्यर्थः। **ऐतदात्म्यमिति**—इदंदृश्यमानं सर्वं चिदचिदात्मकं विश्वं ब्रह्मात्मकमित्यर्थः। उक्ताभिः

स्यामप्रजायेय" आदि श्रुतियों द्वारा ईक्षण तथा नाना रूपों में होने का संकल्प लेने वाले, "एकमेवाद्वितीयम्" श्रुति द्वारा अतिशय एवं साम्य के शून्य और 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इस श्रुति के सत् शब्द के प्रतिपाद्य ब्रह्म के "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" इस श्रुति द्वारा उपदिष्ट तादात्म्योपदेश हमको इष्ट है। उक्त श्रुतियों द्वारा पर्यालोचन तथा बहुत होने का संकल्प करने वाले ब्रह्म का जगत् के जन्म-स्थिति का आदि कर्तृत्व निश्चित होता है—फिर उसके कर्तृत्व का आप कैसे निषेध कर सकते हैं, उपर्युक्त वाक्य में ब्रह्म के अकर्तृत्व का कहीं भी उपदेश नहीं है—बल्कि ईक्षण, तथा बहुभवन संकल्प युक्त ब्रह्म का जगत्, जन्मादि कर्तृत्व निश्चित होता है—'तत्तेजोऽसृजत्' यहाँ तेजः प्रभृति सम्पूर्ण जगत् कर्तृत्व का श्रवण होने से उक्त प्रत्यक्ष के भ्रमत्व की असिद्धि पूर्ववत् अवस्थित है। इस श्रुति का विशेष अर्थ

टिप्पणी :— यही मायावादियों की सबसे बडी हरकत है, शब्दार्थ से जहां उनका मत सिद्ध नहीं होता वहाँ वो लक्षणा कह देते हैं, शक्यार्थ बाध होने पर ही लक्षणा होती है।

अस्य विशेषार्थो वाक्यार्थनिर्णयावसरे वक्ष्यते। न च सच्छब्दवाच्यस्य सार्वज्ञ्यादियोगात्कर्तृत्वादिसत्वेऽपि, लक्षणया निर्विशेषाकर्तृब्रह्म-बोधनपरत्वस्वीकारान्नोक्तार्थसिद्धिरिति वाच्यम्। लक्षणाया असम्भवात्। तथाहि गङ्गायां घोष इत्यत्र यथा गङ्गापदशक्यः प्रवाहस्तल्लक्ष्यश्च तीरस्तीरपदवाच्यस्तथा सच्छब्दवाच्यः सर्वज्ञः पुरुषोत्तम ईक्षणादि-कर्तृत्वाश्रयस्तेजः प्रभृतिजगदभिन्ननिमित्तोपादानकारणरूपस्तस्य यो लक्ष्यः स पदान्तरवाच्यो न वेति विवेचनीयम्। नाद्यः वाच्यत्वस्यापरिहार्यत्वात्। वाच्यत्वे च तव मते मिथ्यात्वापत्तिरप्यावश्यंभाविनी वाच्यमात्रस्य

श्रुतिभिः पर्यालोचनबहुभवनसङ्कल्पवतो ब्रह्मणो जगज्जन्मादिकर्तृत्वं निश्चीयते। कथं ब्रह्मणः कर्तृत्वं निषिद्ध्यते भवता इत्याक्षिपति—**प्रत्युत इति**। तेजः प्रभृतिसृष्टिकर्तृत्वबोधिकां श्रुतिमुदाहरति—**तत्तेज इति**। तत्=ब्रह्म तेजोभूतमसृजत इत्यर्थः। उक्तप्रत्यक्षस्य=अज्ञः कर्ता मनुष्योऽहमिति प्रत्यक्षस्य। यद्यपि सच्छब्दवाच्यस्यातिशयसाम्यशून्यस्येक्षणबहुभवनसङ्कल्पवतो ब्रह्मणः सार्वज्ञ्यं जगज्जन्मादिकर्तृत्वमुक्ताभिः श्रुतिभिः शब्दमर्यादया बोध्यते। तथापि लक्षणया निर्विशेष चिन्मात्राकर्तृत्वमपि ब्रह्मणि प्रतिपाद्यत इत्याशङ्कामपाकरोति—**न चेति**। लक्षणाया असम्भवमेवोपपादयति—**तथा हीत्यादिना**। तल्लक्ष्यः=गङ्गापदलक्ष्यः। तीरपदवाच्य इत्यनेन लक्ष्यार्थस्यापि पदवाच्यता स्फुटीकृता। सच्छब्दार्थं व्याचष्टे—**सर्वज्ञ इति**। तस्य=सच्छब्दस्य। लक्ष्यः=लक्षणयावृत्या प्रतिपाद्यो निर्विशेषचिन्मात्रस्वरूपः। विकल्पयति—**स इति**। आद्यपक्षं निराकरोति—**नाद्य इति**। अनुमानेन तस्य मिथ्यात्वं

वाक्यार्थ निर्णय के अवसर पर कहेंगे। यदि कहें कि उक्त श्रुति से सत् शब्द वाच्य ब्रह्म का सार्वज्ञ्य आदि धर्मों के सम्बन्ध से कर्तृत्व आदि का सारभाव होने पर भी लक्षणा द्वारा उक्त श्रुति का निर्विशेष तथा अकर्तृत्व रूप ब्रह्म स्वरूप स्वीकार करने से आपका मन्तव्य सिद्ध नहीं हो सकता तो ऐसा नहीं कह सकते। कारण यहाँ लक्षणा संभव नहीं है। कारण—गङ्गायां घोष यहाँ गङ्गा पद का शक्यार्थ है प्रवाह और लक्ष्य है तीर और जो तीर पदवाच्य है, उसी प्रकार सत् शब्द वाच्य सर्वज्ञ पुरुषोत्तम ईक्षण आदि कर्तृत्व का आश्रय तथा तेज आदि जगत् का अभिन्न कारण रूप है, उसका लक्ष्य पदान्तर वाच्य है या नहीं यह विवेचनीय विषय है, पहला पक्ष कह नहीं सकते, कारण वाच्यत्व अपरिहार्य है और वाच्य होने पर आपके मत में मिथ्यात्वापत्ति अनिवार्य हो जायेगी क्योंकि आपके मत में वाच्य मात्र मिथ्या होता है। अनुमान होगा—सत् शब्द का लक्ष्य निर्विशेष ब्रह्म मिथ्या है, क्योंकि वह पदान्तर वाच्य है—आपके मत में तीर आदि की तरह। द्वितीय पक्ष में पदवाच्य से

मिथ्यात्वाभ्युपगमात्। सच्छब्दलक्ष्यो मिथ्यापदान्तरवाच्यत्वात्तव मते तीरादिवदितिप्रयोगात् न द्वितीयः। पदमात्रावाच्यस्यावस्तुत्वापत्तेः। सच्छब्दलक्ष्यं तुच्छं पदमात्रावाच्यत्वात् खपुष्पवदित्यनुमानात्। ननु विषमोऽयंदृष्टान्तो जहल्लक्षणात्वात्। प्रकृते तु जहदजहल्लक्षणास्वीकारः, तत्र शक्यैकदेशस्य विशेषणमात्रस्यैव त्यागेन विशेष्यभागस्यात्यागान्नोक्तदोषावकाश इतिचेन्न, शब्दैकदेश-वाच्यत्वस्याकामेनापि त्वयाङ्गीकरणीयतया मिथ्यात्वयोगस्य दुष्परिहरत्वात्।

समर्थयति—**सच्छब्दलक्ष्य इति**। द्वितीयपक्षं निरस्यति—**न द्वितीय इति**। प्रकृते सच्छब्दस्य चिन्मात्रे जहदजहल्लक्षणा गङ्गायां घोष इत्यत्र तु जहल्लक्षणेति विषमोऽयं दृष्टान्तोपन्यास इतिशङ्कते—**नन्विति**। जहल्लक्षणात्वात्=जहति पदानि स्वार्थं यस्यां सा चासौ लक्षणा तस्याभावस्तत्वन्तस्मात्। स्वार्थं न ब्रूत इति तदर्थः। तत्र=जहदजहल्लक्षणायाम्। सर्वज्ञत्वविशिष्टचेतनं तच्छब्दार्थः तत्र सर्वज्ञत्वं विशेषणं तद्विहाय निर्विशेषचिन्मात्रं लक्ष्यते इत्याह—**शक्यैकदेशस्येति**। सच्छब्दशक्यं सर्वज्ञत्वविशिष्ट चेतनं तस्यैकदेशः सर्वज्ञत्वमित्यर्थः। विशेषभागस्यः=निर्विशेष-चिन्मात्रस्य। शब्दैकदेशवाच्यत्वं निर्विशेषचिन्मात्रस्य ब्रह्मणोऽभ्युपेयते चेत्तदा तस्य मिथ्यात्वं दुर्निवार्य्यमित्याशयेनोक्तशङ्कां परिहरति—**नेति**। न्यायप्रयोगं दर्शयति—**तथा चेति**। सोऽयंदेवदत्तस्तत्त्वमसीत्यादौ विशिष्टवाचकानां पदानामेकदेशपरत्वेऽपि न

अवाच्य मानने पर ब्रह्म में अवस्तुत्वापत्ति—अलीकत्वापत्ति होगी—अनुमान होगा—सत् शब्द का लक्ष्य ब्रह्म तुच्छ है—अलीक है क्योंकि वह पदमात्र से अवाच्य है—यानी किसी शब्द का वाच्य नहीं है—खपुष्प-आकाश कुसुम की तरह। यदि कहें कि यह दृष्टान्त विषयक दृष्टान्त है—प्रकृत में सत् शब्द का चिन्मात्र ब्रह्म से जहदजहल्लक्षणा है और गङ्गायां घोष में केवल जहल्लक्षणा है, अर्थात् जहति पदानि स्वार्थं यस्यां वृत्तौ सा जहल्लक्षणा, जहाँ पद अपने अर्थ का परित्याग करते हैं, उसे जहल्लक्षणा कहते हैं। प्रकृत में जहत् अजहत् लक्षणा में सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चेतन तत् शब्द का अर्थ है और अल्पज्ञत्व विशिष्ट चेतन् तत् शब्द का अर्थ है और अल्पज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य त्वं पदार्थ इसमें सर्वज्ञत्व विशेषण को छोड़कर तत् पद की केवल निर्विशेष चैतन्य में लक्षणा है यहाँ शक्य का एकदेश विशेषण मात्र का त्याग है, विशेष भाग का त्याग नहीं है, अतः यहां पूर्वोक्त दोष का अवकाश नहीं है ऐसा नहीं कह सकते तत् शब्द का सर्वज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य वाच्य होने पर विशेषणांश का त्याग होने पर भी एक देश चैतन्य अंश वाच्यता तो अनिच्छयापि

तथा चात्र प्रयोगो भागत्यागलक्षणालक्ष्यं मिथ्या शक्यैकदेशत्वात्। तव मते घटत्वादिवदिति। एतेन यदुक्तं कैश्चित् मास्तु लक्षणा किन्तु नित्योघट इत्यत्र यथा घटव्यक्तिनित्यत्वयोरभेदस्य प्रत्यक्षबाधितत्वेन घटत्वनित्यत्वयोः सामानाधिकरण्यस्याविरोधेन शक्यत्वमेव तथा प्रकृतेऽपि शक्यत्वमविरुद्धं, लक्षणाङ्गीकारस्य साम्प्रदायिनामाग्रहमात्रत्वात्तस्माच्छक्य एव शास्त्रार्थ इति तदपि निरस्तम्। वाच्यैकदेशसामान्येन मिथ्यात्वस्यावश्यम्भावात्

लक्षणा शक्त्युपस्थित विशिष्टयोरभेदान्वयानुपपत्तौ विशेष्ययोः शक्त्युपस्थितयोरन्वयबोध इत्याधुनिक वेदान्तिन आचक्षते तन्मतमतिदेशेन परिहरति— **एतेनेति**। अस्य निरस्तमिति परेणान्वयः। **नित्य इति**—घटस्योत्पादविनाशौ प्रत्यक्षेण प्रमाणेन गृह्येते, इतिघटनित्यत्वयोरभेदान्वयोऽनुपपन्नः शाब्दबोधप्रयोजकयोग्यताया अभावादतो नित्यत्वस्य घटत्वेऽन्वय इत्यर्थः। ननु विशिष्टशक्तिवादिनां मते घटत्वस्यपदार्थैकदेशतया न तत्र नित्यत्वान्वयः। पदार्थः पदार्थेनान्ययो न तु पदार्थैकदेशेनेति व्युत्पत्तेः। न चोक्तव्युत्पत्तौ मानाभाव इति वाच्यम्। पशुरपशुरित्यादिप्रयोगापत्तेः। पशुशब्दार्थो लोमलाङ्गूलवान् तदेकदेशे लोम्नि पशुत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य सत्त्वात्। न चोक्तव्युत्पत्तिस्तादृशशाब्दबोधं न प्रतिबध्नाति ग्राह्याभावाद्यनवगाहित्वात् मणिमन्त्रादिन्यायेन प्रतिबन्धकत्वे मानाभावादिति वाच्यम्। किञ्चिदर्थनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन

आपको मानना पड़ेगा फिर तो उक्त अनुमान में आधार पर ब्रह्म का मिथ्यात्व अपरिहार्य होगा ही। यहाँ अनुमान का प्रयोग होगा भाग त्याग लक्षणा का लक्ष्य ब्रह्म मिथ्या है क्योंकि वह शक्यार्थ का एक देश है आपके मत में घटत्व आदि की तरह। यहाँ ज्ञातव्य है कि कुछ आधुनिक वेदान्ती 'सोऽयं देवदत्तः' 'तत्त्वमसि' इत्यादि स्थलों में विशिष्ट वाचक पदों के एक देशपदत्व होने के लिये लक्षणा की आवश्यकता नहीं है—कारण शक्ति द्वारा उपस्थित विशिष्टार्थ में अभेदान्वय की अनुपपत्ति होने पर शक्ति से उपस्थित विशेष्यद्वय अर्थात् तत्वमसि में—तत् पद शक्यार्थ विशेषण शुद्ध चैतन्य एवं त्वं पद शक्यार्थ—शुद्ध चैतन्य रूप विशेष्य को अन्वय बोध हो सकता है—लक्षणा की कोई आवश्यकता नहीं है—यह मत भी निरस्त हो जाता है। इस मत के भी ब्रह्म में वाच्य पदार्थैकता तो है ही—इसलिये मिथ्यात्व अवश्यंभावी है। त्यक्त द्वितीय भाग (सर्वज्ञत्व-अल्पज्ञत्व) की तरह—अस्तु इसको अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, इस प्रकार पूर्वोक्त प्रत्यक्ष ही भोक्ता, कर्ता इत्यादि प्रत्यक्ष का प्रमात्व सिद्ध होता है।

पहले यह भी जो कहा था कि जो ज्ञानमात्र से निवर्त्य होता है, वह कहीं भी

त्यक्तद्वितीयभागवदित्यलंप्रासङ्गिकेन, तस्मात्सिद्धं पूर्वोक्तप्रत्यक्षस्य प्रमात्वमिति। यदप्युक्तं ज्ञानमात्रनिवर्त्यस्य क्वापि सत्वादर्शनात्सत्यस्यात्मनो निवृत्यदर्शनादित्यादि तत्तुच्छम्। सेतुदर्शनात्सत्यस्यापि ब्रह्महत्यादिपापस्य निवृत्तिदर्शनादित्युक्तमेव। ननु सत्यमुक्तं तथापि तस्य श्रद्धानियमादिसापेक्षज्ञाननाश्यत्वात्। अन्यथा तत्रत्यानां म्लेच्छादीनामपि पापनाशापत्तेः। प्रकृते तु ज्ञानमात्रनाश्यत्वश्रवणादित्यादिना

शाब्दबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रत्ययपरपदधर्मिकवृत्तिज्ञानजन्योपस्थितिर्विशेष्यतासम्बन्धेन प्रयोजिकेति तदर्थत्वात्। इति चेन्न, जातिशक्तिवादिनां मते उक्तानुपपत्तेरभावात् तन्मतमवलम्ब्यैव तत्रान्वयबोधस्य व्युत्पादनात्। यदाशङ्कितं तं दूषयितुमनूद्य ते— **यदप्युक्तमिति।** शङ्कते—**नन्विति।** तस्य=सेतुदर्शनस्य। विपक्षे बाधकतर्कमुद्भावयति—**अन्यथेति।** श्रद्धानियमसापेक्षत्वाभाव इति तदर्थः। तत्रत्यानाम्=सेत्वादिसमीपस्यानाम्। "शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्ये" दिति श्रुत्या ज्ञानोत्पत्तौ शमादीनामन्तरङ्गोपायत्वं प्रतिपाद्यते "तस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार इति" "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्य इति श्रवणसहकृतमननादिज्ञानेनैव बन्धो निवर्ततइत्यभिप्रायेणोक्तशङ्कां निरस्यति—**नेति। साधनचतुष्टयेति**—नित्यानित्यवस्तुविवेकः। शमदमादिसाधनसम्पन्नः। इहामुत्रफलभोगविरागः। मुमुक्षुत्वञ्चैतत् साधनचतुष्टयम्। एतत्साधनसम्पन्नो वेदान्तशास्त्रस्याधिकारीत्यर्थः। "परीक्ष्यलोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्"।

सत्य नहीं देखा गया है—इसलिये सत्य आत्मा की निवृत्ति नहीं देखी जाती—यह कथन तुच्छ है—सेतु दर्शन से ब्रह्म हत्या आदि पापों का नाश देखा गया है, यह भी पहले हमने कहा ही है। यदि कहें कि सच है कि सेतु दर्शन से ब्रह्म हत्यारूपी पाप का नाश होता है पर वहाँ केवल दर्शन से नहीं अपितु श्रद्धा, नियम आदि पूर्वक दर्शन से ही पाप नाश होता है। अन्यथा यदि श्रद्धा आदि सहकारी कारणों की अपेक्षा न होती तो वहाँ सेतु के समीप रहने वाले मलेच्छादि कौम का भी पाप नाश हो जाता है। प्रकृत में तो ज्ञान मात्र से नाश का श्रवण है—ऐसा हमने भी पहले कहा है तो यह भी ठीक नहीं है, आपने भी साधन चतुष्ट्य [१]सम्पन्न अधिकारी [२]शास्त्रोक्त लक्षण सम्पन्न, गुरु मुख से औपनिषद् वाक्यों का अर्थ श्रवण करके पश्चात् मनन, निदिध्यासन आदि के द्वारा प्राप्त ज्ञान से बन्धन की निवृत्ति स्वीकार की है। अन्यथा श्रवण विधि की अपेक्षा के बिना ही ज्ञान से बन्धन की निवृत्ति स्वीकार करने पर 'श्रोतव्यो मन्तव्यो' इस नियम विधि में बाधा की आपत्ति होगी। इसलिये निवर्तक ज्ञान में अधिकारी आदि की अपेक्षा आपके मत में भी समान है—

ममाप्युक्तत्वादितिचेन्न, साधनचतुष्टयसम्पन्नोऽधिकारी शास्त्रोक्तलक्षणगुरुमुखादौपनिषदमेव वाक्यार्थं श्रवणेन गृहीत्वा मननादिनैव ज्ञानेन त्वयापि बन्धनिवृत्तिः स्वीकृता। अन्यथा नियमविधिबाधापत्तेः। तथा च निवर्तकज्ञानस्याधिकार्यादिसापेक्षत्वं तवापि साम्यमतो नोक्तदोषावकाशः। अन्यथा म्लेच्छादीनामपि श्रुतभाषाप्रबन्धादिनापि वाक्यार्थज्ञानसम्भवेन बन्धनाशापत्तेः। न च नियमादीनामधिकारित्वसम्पादनेनैवोपक्षीणत्वेन कर्मवन्नज्ञानेऽपेक्षेति वाच्यम्। प्रकृतेऽपि नियमादीनां ह्यधिकारित्वसम्पादनपरत्वेन सेतुदर्शने तदनुपयोगान्नोक्तदोषावकाशस्तस्माच्छ्रुतिबलात्सत्यस्यैव बन्धस्य निवृत्तिसम्भवेनाध्यस्तत्ववर्णनस्य दुराग्रहमात्रत्वाद्वैयर्थ्यमेवेति सिद्धम्।।४१।।

''नास्त्यकृतः कृतेन'' ''तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्'' ''समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं तस्मै सविद्वान्नुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तत्त्वतो ब्रह्मविद्यामि'' त्यादिश्रुतयोऽनुसन्धेयाः। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। श्रवणादिविधि मनपेक्ष्य ज्ञानेन बन्धनिवृत्तिस्वीकार इति तदर्थः। **नियमविधीति**—श्रोतव्यो मन्तव्य इति नियमविधिरित्यर्थः। अन्यथा=अधिकार्यादिसापेक्षत्वाभावस्वीकारे। नापेक्ष्यन्ते नियमादयः ज्ञानोत्पत्तौ तेषामधिकारित्वसम्पादनेनैवोपक्षीणत्वादित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति। कर्मवन्नेति**—कर्मणामन्तःकरणशुद्धिद्वाराऽधिकारित्वसम्पादन उपयोगो न तु ज्ञाने तद्वन्नियमादीनामित्यर्थः। उपसंहरति—**तस्मादिति।। ४१।।**

इसलिये उक्त दोष का अवकाश नहीं है। अन्यथा अधिकारी आदि के अपेक्षा के अभाव में मलेच्छ आदिकों को भी भाषा-ग्रन्थ आदि के श्रवण से भी वाक्यार्थ ज्ञान संभव होने से उनके भी बन्धन का नाश हो जाएगा—यह आपत्ति होगी। यदि कहें कि नियम आदि का अधिकारत्व सम्पादन मात्र से ही सामर्थ्य क्षीण होने से कर्म की तरह ज्ञान में उनकी अपेक्षा नहीं है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, प्रकृत में भी नियम आदि का केवल अधिकारित्व सम्पादन मात्र प्रयोजन होने से सेतु दर्शन में उसका कोई उपयोग नहीं होने के कारण उक्त दोष का अवकाश नहीं है—इस प्रकार श्रुति के बल से सत्य रूप बन्धन की निवृत्ति संभव होने से अध्यस्तत्व का वर्णन दुराग्रह मात्र होने से अध्यास का वैयर्थ्य ही सिद्ध होता है।।४१।।

यदप्युक्तं ज्ञानैकनिवर्त्यस्य न तावदज्ञानाजन्यत्वं सत्यत्वं ''मायान्तु-प्रकृतिमितिश्रुतिविरोधादि'' ति तदपि तुच्छतरम्। विश्वस्य ''तत्तेजोऽसृजत'' ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'' ''नारायणाज्जायते प्राणः'' ''अहं सर्वस्यप्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते'' इति श्रुतिस्मृतिप्रमाणेन ब्रह्मजन्यतयाऽज्ञानजन्यत्वाभावात्सत्यत्वमेव। नापि ''मायान्त्विति'' श्रुतिविरोधः तस्याः प्रकृत्यादिपदवाच्यश्रीपुरुषोत्तमचित्प्रकृतिप्रति-

---

वज्रोत्तेजिका— ज्ञानैकनिवर्त्यस्य न तावदज्ञानाजन्यत्वं यदा शङ्कितं दूषयति—**यदप्युक्तमिति**। न हि प्रपञ्चस्याज्ञानजन्यत्वं किन्तु ब्रह्मजन्यत्वमित्याह—**विश्वस्येति**। अस्य सत्यत्वमिति परेणान्वयः। जगतो ब्रह्मजन्यत्वे श्रुतिस्मृतीः प्रमाणयति—तत्तेज इति। मायान्त्वितिश्रुतिघटकमायाशब्दस्य ब्रह्मात्मक चित्प्रकृतिपरत्वमुपपाद्योक्तश्रुतिविरोधं निरस्यति—**नापीति**। तस्या=श्रुतेः। नहि मायापदमज्ञाने शक्तं येनाज्ञानजन्यत्वं प्रपञ्चस्य सम्भाव्येतेत्याह—**मायाशब्दस्येति**। प्रागुक्तार्थमनूद्यते—यदप्युक्तमिति। चेतनाचेतनवर्गवृत्तिपरतन्त्र सत्त्वस्याद्यन्तरहितत्वं गौरनाद्यन्तवतीति श्रुत्या बोध्यते तेन विश्वस्य परतन्त्रसत्वं सिद्ध्यति, तथा च स्वाधिष्ठाने स्वाभावशून्यत्वरूपं सत्यत्वं वक्तुं शक्यत एवेत्याशयेनोक्तशङ्कां परिहरति—**तदपि तुच्छतममिति**। अस्थूलादिश्रुतेर्विरोधं यदाशङ्कितं तत्परिहरति—**नापीति**। अस्थूलमनणुमिति श्रुत्या प्रपञ्चो न निषिद्ध्यते येन विश्वस्य निरुक्तसत्यत्वे अस्याः

हिन्दी अनुवाद— पहले यह भी जो आपने कहा था जो ज्ञानमात्र से निवर्त्य होता है—उसमें अज्ञानाजन्यत्व रूप सत्यत्व नहीं होता, क्योंकि ''मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनंतु महेश्वरम्'' इस श्रुति से विरोध होगा, वह भी ठीक नहीं—विश्व तो ''तत्तेजोऽसृजत्'' ''तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः'' ''नारायणाज्जायते प्राणः'' ''अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते'' इत्यादि श्रुतियाँ एवं स्मृति प्रमाणों से ब्रह्मजन्य सिद्ध है, उसके अज्ञान जन्यत्व का अभाव होने से सत्यत्व ही है और ना ही ''मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'' इस श्रुति का भी विरोध है। यह श्रुति तो माया को प्रकृति आदि पदवाच्य पुरुषोत्तम की चित् प्रकृति बतलाने से ही निराकांक्ष हो जाने से अज्ञान परत्व नहीं है। माया शब्द की अज्ञान में शक्ति नहीं है। इसी तरह पहले जो कहा था कि चेतन् अचेतन वर्गवृत्ति परतत्व सत्त्व का

टिप्पणी :— साधन चतुष्टय नित्यानित्यवस्तुविवेक इहा मुत्र फल भोग विराग, शमदमादि षट्क सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व यह साधन चतुष्टय कहलाते हैं।

२. श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठं शास्त्रे परे च निष्णांत।

पादनेनैव नैराकाङ्क्ष्यान्नाज्ञानपरत्वमित्यर्थः। मायाशब्दस्याज्ञाने शक्त्यभावात्। यदप्युक्तं स्वाधिष्ठाने स्वाभावशून्यत्वमिति सत्यत्वं वक्तुमशक्यमस्थूलादिश्रुतिविरोधादिति तदपि तुच्छतमम्। ''गौरनाद्यन्तवती'' तिश्रुतिबलात्तद्गतपरतन्त्रसत्ताया अनाद्यनन्तत्वाभ्युपगमस्यादोषत्वात्। नाप्यस्थूलादि श्रुतिविरोधः सम्भाव्यः तस्याः सर्वविलक्षणब्रह्मप्रतिपादनपरतया प्रपञ्चनिषेधपरत्वाभावात्। यदप्युक्तं व्यवहारकाले

श्रुतेर्विरोधो घटेत किन्तु चेतनाचेतन वर्गाद् ब्रह्मणो विलक्षणत्वं बोध्यत इत्याह—**तस्या इति।** अस्थूलमित्यादिश्रुतेरिति तदर्थः। व्यवहारकाले बाधशून्यत्वरूपं सत्यत्वमभ्युपेयते चेत्तदाव्यवहारिकसत्यत्वं विश्वस्य प्राप्तमिति प्रागुपदर्शितमनूद्यते—**यदप्युक्तमिति। निरासादिति**—चेतनाचेतनवर्गवृत्ति परतन्त्रसत्वस्य गौरनाद्यन्तवतीति श्रुत्याऽनाद्यनन्तत्वबोधनान्नोक्तदोषावसर इत्यर्थः। तृतीयकल्पं दूषयितुमुपन्यस्यति—**यच्चोक्तमिति। लक्षणेति**—लक्षणञ्च प्रमाणञ्चाश्रयश्च विषयकश्च प्रयोजकश्च निवर्तकश्चादिर्येषां तेषामसिद्धिरिति विग्रहः, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यत इति नियमात्। असिद्धिपदस्य प्रत्येकमन्वयः, यथा चाज्ञानस्यासिद्धिर्लक्षणासिद्धिः प्रमाणासिद्धिरिति योजना। प्रागज्ञानस्य लक्षणं जिज्ञास्यते—**तत्रेति।** तेषु मध्य **इत्यर्थः।** अज्ञानलक्षणं निर्वक्ति—**अनादिभावत्वे सतीति।** सत्यन्तानुपादाने प्राथमिकधारावाहिकबुद्धौ भ्रान्तिज्ञाने चातिव्याप्तिस्तत्रोत्तरज्ञाननिवर्त्यत्वस्य पूर्वज्ञाने सत्त्वादधिष्ठानसाक्षात्कारनिवर्त्यत्वस्य भ्रमे सत्त्वादतस्तदुपादानम्। तदुपादाने तूभयत्रानादि-

आद्यत्व रहितत्व ''गौरनाद्यन्तवती'' इस श्रुति से बोधित होता है—इस प्रकार विश्व का परतत्व सत्त्व सिद्ध होता है, तब तो स्वाधिष्ठाने स्वाभाव शून्यत्व स्वरूप सत्यत्व कह ही सकते हैं, इसी आशय से उक्त शङ्का का परिहार करते हैं, वह भी तुच्छतम है ''गौरनाद्यन्तवती'' इस श्रुति के बल से चेतनाचेतन वर्गवृत्ति परतत्व सत्ता में अनादि अनन्तत्व का स्वीकार दोष नहीं है। इसी तरह ''अस्थूलम् अणनु''[१] इत्यादि श्रुति का भी विरोध संभव नहीं है—इस श्रुति का ब्रह्म सर्वविलक्षण है—इतना ही तात्पर्य है—प्रपञ्च निषेध में इसका तात्पर्य नहीं है। इसी तरह व्यवहार काल में बाध शून्यत्व रूप सत्यत्व भी नहीं कह सकते—इत्यादि कथन भी पापपूर्ण है—अर्थात् दोष युक्त है। अनाद्यत्व विधायक श्रुति से ही उस विकल्प का खण्डन होता है, यह भाव है। इसी तरह यह कथन भी ठीक नहीं है कि—कारण के अभाव से अध्यास नहीं होगा, क्योंकि मिथ्याज्ञानरूप कारण विद्यमान है—यह तीसरा विकल्प—वह भी अत्यन्त हेय है—कारण अज्ञान का लक्षण, प्रमाण, आश्रय, विषय तथा प्रयोजन तथा निवर्तक आदि की सिद्धि ही नहीं है—जैसे हम पूछते हैं—अज्ञान का

बाधशून्यत्वं सत्यत्वमपि वक्तुमशक्यमित्यादि तदपि पापिष्ठम्। अनाद्यनन्तत्वविधायकश्रुत्यैवैतस्य विकल्पस्य निरासादिति भावः। यच्चोक्तं कारणाभावाद्वेति न मिथ्याज्ञानस्य तत्कारणस्य भावादिति तृतीयविकल्प इति तदपि महत्पापिष्ठम्। अज्ञानस्य लक्षणप्रमाणाश्रय-विषयकप्रयोजकनिवर्त्तकाद्यसिद्धेः। तथाहि तत्र किन्तावदज्ञानलक्षणम्। अनादिभावत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वमिति चेन्न, सादिशुक्त्याद्यवच्छिन्न-

---

भावत्वविरहान्नोक्तदोषावकाशः। अनादित्वमात्रोक्तौ प्रागभावेऽतिव्याप्तिरतः भावत्वम्। विशेषणमात्रोपादानेऽविद्यासम्बन्धजीवादिष्वतिव्याप्तिः। आद्यलक्षणमव्याप्यसम्भवाति-व्याप्तिभिर्दूषयितुमादावव्याप्तिं तावदाह—**सादीति।** शुक्त्यादेः सादित्वात्तदच्छिन्नचैतन्या-वारकाज्ञानमपि सादीत्यनादित्वाभावादव्याप्तिरित्यर्थः। न च शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यावारका-ज्ञानानामनादित्वमेवेति वाच्यम्। तथात्वे शुक्त्यादेःसादित्वेन तदुत्पत्यपेक्षया पूर्वं निर्विषयावरणापत्तेः। न च तदा शुद्धचैतन्यमात्रावरकत्वमेवेति वाच्यम्। तथा सति शुद्धचैतन्यावरकाज्ञानस्य मूलाज्ञानत्वापत्त्या रूप्यस्य तदुपादेयत्वे शुक्तिज्ञानेन निवृत्त्या मूलाज्ञानस्य नष्टत्वात्सद्यो मोक्षापत्तेः। अनादित्वविशेषणप्रयुक्ताव्याप्तिमुक्त्वा भावत्व-विशेषणप्रयुक्ताव्याप्तिमाह—**आरोपितेति।** अज्ञानमभावोपादानकमेव न सम्भवति, अभावस्य निरुपादानत्वादित्यत—**उक्तमारोपितेति।** व्यावहारिकस्तु कथञ्चित्तथात्वेऽपि यदा घटवति भूतले घटाभावस्यारोपो भवति तदाऽरोप्यमात्रस्याज्ञानोपादानकत्वमङ्गी-कार्यमन्यथा द्वितीयलक्षणस्यासम्भवप्रसङ्गादत आरोपिताभावस्योपादानाज्ञाने भावत्वा-भावादव्याप्तिस्स्यादित्यर्थः। आरोपिताभावोऽपि भावरूपाज्ञानोपादानक एवेति नाति-व्याप्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति।** तस्य=आरोपितसर्पाद्यभावस्य। यद्यभावस्य

क्या लक्षण? कहें कि अनादिभाव पदार्थ होकर जो ज्ञान निवर्त्य होता है—उसे अज्ञान कहते हैं—अर्थात् यह अज्ञान का लक्षण है—तो यह ठीक नहीं, सादि शुक्त्याद्यवच्छिन्न चैतन्य के आवरक अज्ञान के इस लक्षण की अव्याप्ति है—कारण यह अज्ञान अनादि नहीं है। अनादित्व विशेषण प्रयुक्त अव्याप्ति बताकर अब भावत्व विशेषण प्रयुक्त

चैतन्यावारकाज्ञानेष्वव्याप्तिस्तेषामनादित्वायोगात्। आरोपितसर्पाद्यभावो-पादानाज्ञाने भावत्वाभावादव्याप्तिश्च। न च तस्य भावोपादानकत्वमिति वाच्यम्। असत्यस्य सत्योपादानकत्वापातात् तस्याज्ञानोपादानकत्वा-भावाङ्गीकारे ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावप्रसङ्गात्॥ ४२॥

भावोपादानकत्वं स्यात्तदाऽसत्यस्यापि सत्योपादानकत्वं स्यादित्याह—**असत्यस्येति**। घटवति भूतले आरोपितस्य घटाभावस्य घटज्ञाने निवृत्तिर्जायते सा न स्यात्तस्याज्ञानो-पादानकत्वविरहादित्याह—**तस्येति**। आरोपितघटाभावस्येत्यर्थः। न चेष्टापत्तिरिति वाच्यम्। तथात्वे ब्रह्मवत्सत्यत्वापत्तेः। अनादिभावत्वविशेषणप्रयुक्तदोषमभिधाय ज्ञाननिवर्त्यत्वांशप्रयुक्ताव्याप्तिमाह—**किञ्चेति॥ ४२॥**

अव्याप्ति बताते हैं—"आरोपित सर्पाद्यभावो......" सर्पादि अभावोपादान अज्ञान में भावत्व के अभाव से भी अव्याप्ति होगी। यदि कहें कि वह भावोपादानक है तो ऐसा नहीं कह सकते, असत्य के सत्योपादानक की आपत्ति होगी। यदि उसे अज्ञानोपादानक नहीं मानें तब उसमें ज्ञान निवर्त्यत्व के अभाव का प्रसङ्ग हो जाएगा ।।४२।।

किञ्च शुद्धं ब्रह्म वृत्तिव्याप्यमपि नेति मते तदज्ञाने चरमसाक्षात्कारानन्तरभाविजीवन्मुक्त्यनुवृत्तेऽज्ञाने रक्तः स्फटिक इति सोपाधिकभ्रमोपादानाज्ञाने चाव्याप्तिश्च। तेषां ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावात्। सोपाधिकाज्ञानस्योपाधिनिवृत्तिनाश्यत्वनियमात्। चैतन्य-विद्यासम्बन्धेऽतिव्याप्तिश्च कल्पितत्वेन दोषजन्यधीमात्रशरीरस्याज्ञान-स्यानादित्वायोगात् ज्ञाननिवर्त्यस्याभावविलक्षणस्य रूप्यवदनादित्वा-

वज्रोत्तेजिका— शुद्धमिति—अस्मन्मते पुङ्गतमेव तमः परमते विषयावरकतया विषयगतम्। एवञ्च ब्रह्मावरकाज्ञानस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वं नास्ति कुतः यतो ब्रह्मज्ञाननिवर्त्यत्वं तस्य वक्तव्यं ब्रह्मज्ञानात्तन्निवृत्त्यनुपपत्तेस्तथा च तन्मते ब्रह्मज्ञानमेव नास्ति शुद्धब्रह्मणो वृत्तिव्याप्यत्वाभावादव्याप्तिरित्यर्थः। **जीवन्मुक्तीति**—जीवन्मुक्त्यनुवृत्ताज्ञानस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वाङ्गीकारे स्वकार्यारब्धकर्मादिभिः सह पूर्वेण चरमसाक्षात्कारेण निवृत्त्यापत्त्या भिक्षाटनादौ प्रवृत्तिर्न स्यादतो ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावादव्याप्तिरित्यर्थः। रक्तस्येत्युक्त्या भ्रमोपाधिर्दर्शितः। इदमुपलक्षणम्। तेन जलस्थवृक्षाधोग्रत्वादिसोपाधिकभ्रमस्य परिग्रहः। **ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावादिति**—अधिष्ठानतत्वसाक्षात्कारेणैव तन्निवृत्तिर्वक्तव्या न चासौ सम्भवति। अधिष्ठानभूतो यो वृक्षस्तस्य यदूर्ध्वाग्रत्वादि तत्त्वं तत्साक्षात्कारे सत्यप्यज्ञान स्यानिवर्त्यत्वात् तन्निवृत्तौ च सोपाधिकभ्रमानुपपत्तिरेव स्यादतस्तत्राव्याप्तिरित्यर्थः। सोपाधिकभ्रमोपादानमज्ञानमुपाधिनिवृत्त्या निवर्तत इत्याह—**सोपाधिकाज्ञानस्येति।** अव्याप्तिमुक्त्वाऽतिव्याप्तिमप्याह—**चैतन्येति।** चैतन्यातिरिक्तस्य सर्वस्यापि ज्ञाननिवर्त्यत्वाङ्गीकाराच्चैतन्याविद्यासम्बन्धस्यापि सर्वान्तः पातितया ज्ञाननिवर्त्यत्वादनाद्यविद्यालक्षणस्यातिव्याप्तिरित्यर्थः। न च तत्र नातिव्याप्तिः साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वस्य लक्षणतयाभिप्रेतत्वात्। चैतन्याविद्यासम्बन्धस्याविद्यारूप

हिन्दी अनुवाद— अनादि भावत्व विशेषण प्रयुक्त दोष बताकर अब ज्ञान निवर्त्यत्वांश प्रयुक्त अव्याप्ति बताते हैं—"किञ्च शुद्धं ब्रह्म" इत्यादि ग्रन्थ से, अर्थात् हमारे मत में तम (अज्ञान) पुंङ्गत ही होता है—परमत में विषय के आवरक होने से अज्ञान विषयगत होता है। इस प्रकार ब्रह्म के आवरक अज्ञान में ज्ञान निवर्त्यत्व नहीं है, इसलिये ब्रह्मज्ञान निवर्त्यत्व उसको कहना होगा। ब्रह्मज्ञान से उसकी निवृत्ति की अनुपपत्ति होगी, इस तरह उनके मत में ब्रह्मज्ञान ही नहीं है—क्योंकि शुद्ध ब्रह्म में वृत्ति व्याप्यत्व का अभाव है (संस्कृत टीका) इसलिये अव्याप्ति होगी—यह भाव है। जीवन्मुक्ति, जीवन्मुक्त जीव में अनुवृत्त अज्ञान में ज्ञान निवर्त्यत्व स्वीकार करने पर स्वकर्म के लिये प्रारब्ध कर्म आदि के साथ पूर्व चरण साक्षात्कार

योगाच्चासम्भवश्च। किञ्चानादेरभावविलक्षणस्यात्मवदनिवर्त्यत्व-प्रसङ्गात्। अज्ञानं न ज्ञाननिवर्त्यम्। अनादिभावरूपत्वादात्मवदित्य-नुमानात्। न चाज्ञानत्वानधिकरणत्वमुपाधिः पक्षेतरत्वात्। किञ्च त्वन्मतेऽज्ञानस्य भावाभावविलक्षणत्वेन भावत्वायोगादप्यसम्भवो बोध्यः। नापि भ्रमोपादानत्वं, ज्ञानाभावेऽव्याप्तेः। अभावस्य निरुपादानत्वात्। सोपादानकत्वेऽपि भवरूपाज्ञानोपादानकत्वायोगात्। अन्यथा

सम्बन्धिनिवृत्तिद्वारैवज्ञानेन निवर्त्तमानत्वादितिवाच्यम्। साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वविवक्षायाञ्चानादिपदवैयर्थ्यापत्तेः। शुक्तिरूप्येऽतिव्याप्तिवारणाय ह्यनादिपदमुपन्यस्तम्। साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वाभिप्रेतत्वे च शुक्तिरूप्यादेरप्यज्ञाननिवृत्तिद्वारा निवर्तमानत्वेन साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावादेवातिव्याप्तिपरिहारे सति अनादीतिविशेषणं व्यर्थमिति भावः। क्रमेण विशेषणानामसम्भवमुपपादयितु मादावनादित्वविशेषणस्यासम्भवमाह— **कल्पितत्वेनेति।** कथमज्ञानस्य दोषजन्य धीमात्रशरीरत्वमित्यतस्तदुक्तम्— प्रातिभासिकत्वेनेत्यर्थः। तथा चाज्ञानं नानादि ज्ञानविलक्षणत्वे सत्यभावविलक्षणत्वात् रूप्यवदित्यनुमानमुक्तं भवति। .ब्रह्मज्ञानप्राग-भावयोर्व्यभिचारवारणाय विशेषणविशेष्यभागौ। ननु चैतन्याविद्यासम्बन्धे ज्ञानविलक्षणत्वे सत्यभावविलक्षणत्वसत्त्वादनादित्वरूपसाध्याभावस्य च सत्त्वमिति व्यभिचार इति चेन्न, अज्ञानसम्बन्धस्यापि पक्षतुल्यत्वादत्राप्यनादित्वाभावोऽनुमातुं शक्यतेऽतः पक्षतुल्यत्वान्न व्यभिचारः नहि पक्षे पक्षसमे च व्यभिचारो दोषावह इति तार्किका मन्यन्त इति। ज्ञाननिवर्त्यत्वविशेषणस्यासम्भवमाह—**किंचेति।** यदनुमानं फलितं तदाह—**अज्ञानमिति।** उत्तरज्ञाननिवर्त्ये ज्ञानप्रागभावे च व्यभिचारवारणाय

से निवृत्ति की आपत्ति भिक्षाटन आदि में प्रवृत्ति नहीं होगी—इस ज्ञान निवर्त्यत्व के अभाव से अव्याप्ति होगी यह भाव है। अर्थात् चरम साक्षात्कार के अनन्तर भावी जीवन्मुक्त आत्मा में अनुवृत्त अज्ञान तथा रक्तः स्फटिक (स्फटिक रक्त है) इस सोपाधिक भ्रम में उपादान, (कारण) अज्ञान में भी अव्याप्ति होगी—क्योंकि उनमें ज्ञान निवर्त्यत्व का अभाव है। सोपाधिक अज्ञान में उपाधि निवृत्ति जन्य नाश्यत्व का नियम है। अब अज्ञान लक्षण में अव्याप्ति के बाद अतिव्याप्ति दोष बताते हैं—कहते हैं कि चैतन्यातिरिक्त सब का ज्ञान-निवर्त्यत्व स्वीकार करने पर चैतन्य के अविद्या सम्बन्ध का भी सबके अन्तर्गत आ जाने से उनके ज्ञान-निवर्त्यत्व के कारण वहाँ अनादि अविद्या लक्षण की अतिव्याप्ति होगी। (यदि कहें कि साक्षात्

स्वरूपहानेः। मायावच्छिन्नब्रह्मोपादानमिति पक्षेऽसम्भवः। रज्वाः सूत्रद्वयमिव मायाब्रह्मणी जगदुपादान इति पक्षेऽतिव्याप्तिश्च। तयोर्भ्रमोपादानत्वात्। किञ्चार्थाज्ञानरूपस्य भ्रमस्य भावविलक्षणत्वेन निरुपादानत्वादसम्भवः। ननु भावविलक्षणाज्ञानोपादानकस्य भावत्वाङ्गीकारान्नोक्त दोषावकाश इति चेन्न, उपादानोपादेययोरभेदेन

विशेषणविशेष्यभागौ हेतौ निवेशितौ। **अज्ञानत्वानधिकरणत्वमिति**—ज्ञानानिवर्त्ये घटादावज्ञानत्वानधिकरणत्वस्य सत्त्वात् साध्यव्यापकता। हेतुमति पक्षेऽज्ञानेऽज्ञानत्वान धिकरणत्वरूपोपाधेरविद्यमानत्वात् साधनाऽव्यापकता बोध्या। **पक्षेतरत्वादिति**— अज्ञानानधिकरणत्वरूपोपाधेः पक्षेतरत्वान्नोद्भावनीयत्वमन्यथानुमानमात्रोच्छेदापत्तेरिति भावः। भावत्वविशेषणस्यासम्भवमाह—**त्वन्मत इति**। अनिर्वाच्यत्ववादिनस्तव मत इत्यर्थः। अज्ञानस्य लक्षणान्तरं निराकरोति—**नापीति। ज्ञानाभाव इति**—घटप्रमया घटाज्ञानं निवर्तते तस्मिन्नज्ञाने भ्रमोपादानत्वाभावादव्याप्तिः स्यादित्यर्थः। ननु तदप्यज्ञानमारोपिताभावोपादानं भवत्विति चेत्तत्राह—**अभावस्येति**। भवदनुमानस्य भ्रमःसोपादानोऽभावविलक्षणत्वाद्घटवदिति सत्प्रतिपक्षत्वादसम्भव इत्यतआह— **सोपादानकत्वेपीति**। एतेन तथाचोक्तानुमाने भावत्वमुपाधिः, घटादौसाध्यव्यापकता। हेतुमति पक्षेऽभाव विलक्षणाज्ञानोपादाने भावत्वाभावेन साधनाव्यापकत्वाच्चेत्युक्तं भवति। बाधकमाह—**अन्यथेति**। अभावस्याभावरूपाज्ञानैकोपादानकत्व इति तदर्थः।

ज्ञान निवर्त्यत्व लक्षण अभिप्रेत है—चैतन्य में अविद्या सम्बन्ध का अविद्या रूप सम्बन्धी की निवृत्ति द्वारा ही ज्ञान से निवर्त्य होता है तो ऐसा नहीं कह सकते— साक्षात् ज्ञान निवर्त्यत्व विवक्षा में अनादि पद वैयर्थ्य होगा। शुक्ति रूपक में अतिव्याप्ति वारण के लिये अनादि पद कहा गया था। साक्षात् ज्ञान-निवर्त्यत्व अभिप्रेत रहने पर शुक्ति में रजतत्व का अज्ञान निवृत्ति द्वारा निवर्तमान होने से साक्षात् ज्ञान निवर्त्यत्वाभाव से ही अतिव्याप्ति का परिहार हो जाने से अनादि विशेषण व्यर्थ होता है। अब क्रम से विशेषणों का असंभव उपपादन के लिये पहले अनादि विशेषण को असम्भव कहते हैं—'कल्पितत्वेक' अर्थात् प्रातिभाषि होने से दोष जन्य बुद्धि मात्र शरीरक अज्ञान में अनादित्व के सम्बन्ध का अभाव है। अभाव से विलक्षण ज्ञान निवर्त्य का रजत की तरह अनादित्व का अयोग होने से असंभव भी है। अब ज्ञान निवर्त्यत्व विशेषण का असंभव कहते हैं—'किञ्चानादे' अर्थात् अनादि अभाव विलक्षण (भावरूप) अज्ञान में आत्मा की तरह ज्ञान में अनिवर्त्यत्व का प्रसङ्ग है—अनुमान होगा—अज्ञान ज्ञान निवर्त्य नहीं है। अनादि भावरूप होने से आत्मा की तरह। यदि कहें—इस अनुमान में अज्ञानत्वानधिः करणत्व उपाधि है—

भावत्वोक्तेरयुक्तत्वात्। सोपादानत्वे च भावत्वं तन्त्रं न त्वभावविलक्षणत्वं गौरवात्। नापि मिथ्याज्ञानसंस्कारत्वं तत्वं संस्कारस्यानुभवपूर्वकत्वनियमात्। नापि मिथ्यात्वे सति साक्षा-

स्वरूपहानेरिति—अभावत्वात्मकस्वरूपहानेरित्यर्थः। अभावस्य भावरूपाज्ञानोपादानकत्वं स्यात्तदा तस्य भावत्वमेव स्यादिति तर्कः फलितः। एवमव्याप्तिमुपपाद्यासम्भवातिव्याप्ती मतभेदेन दर्शयति—**मायावच्छिन्नमिति**। अत्र मतत्रयमस्ति, मायैव सर्वजगदुपादानं ब्रह्म तु तदधिष्ठानमात्रमित्येकं मतम्। मायावच्छिन्नं ब्रह्मैव सर्वजगदुपादानं न केवलं माया नापि केवलं ब्रह्मेत्यपरं मतम्। रज्वाः सूत्रद्वयमिव मायाब्रह्मणी द्वे अपि प्रत्येकं जगदुपादानमित्यन्यमतम्। तत्राद्यमते नासम्भवः मायाशब्दवाच्याज्ञानस्यैव सर्वजगदुपादानत्वाङ्गीकारात्, भ्रमस्य च जगदन्तःपातित्वेन मायायां भ्रमोपादानत्वसम्भवात्। अतो द्वितीयमतेऽसम्भवः स्यात्, मायावच्छिन्नब्रह्मण एव सर्वजगदुपानत्वेन मायायां भ्रमोपादानत्वासम्भवात्। विशिष्टस्य यद्भवतीति न्यायस्य च निरासात्। ब्रह्मण्यतिव्याप्तिश्च द्रष्टव्या। तृतीयमतेऽसम्भवाभावेऽपि

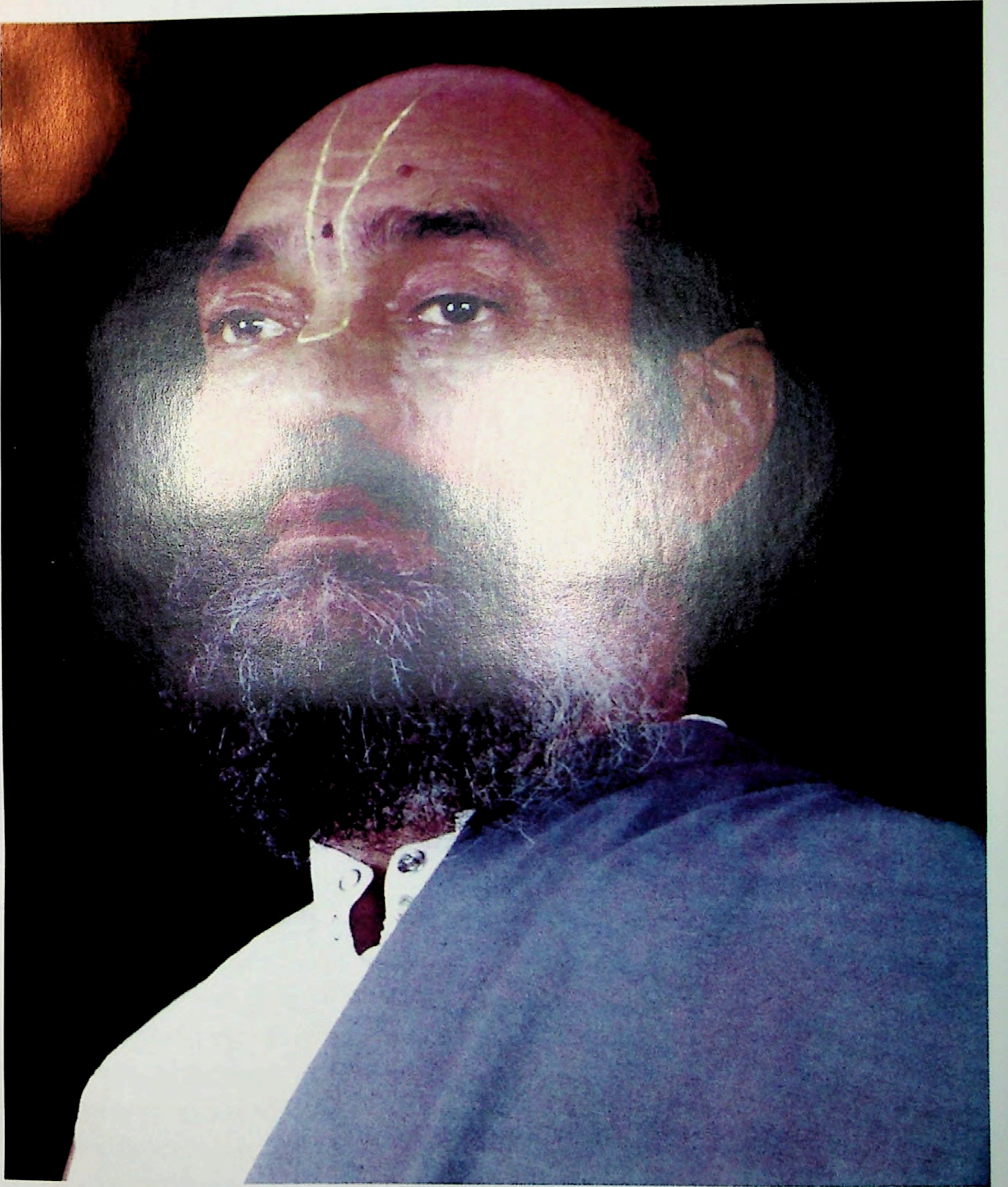
क्योंकि ज्ञान से अनिवर्त्य, घट आदि में अज्ञानत्वानधिकरणत्व है—इसलिये साध्य व्यापकता है, तथा हेत्वधिकरण पक्ष अज्ञान में अज्ञानत्वानधिकरणत्व नहीं है—इस प्रकार साधनाव्यापकता है, तो ऐसा नहीं कह सकते—अज्ञानानधिकरणत्व रूप उपाधि पक्ष से इतर होने से यह उपाधि योग्य नहीं है, अन्यथा अनुमान का उच्छेद हो जाएगा। दूसरी बात आपके मत में अज्ञान (अविद्या) भाव अभाव से विलक्षण-अनिर्वचनीय होने से उसमें भावत्व का योग नहीं होने से इस लक्षण में असंभव दोष है। कहें कि (भ्रमोपादानत्वं अज्ञानत्वं यह लक्षण है) जो भ्रम का उपादान हो वह अज्ञान है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते—घट के अज्ञान में इस लक्षण की अव्याप्ति होगी—कारण घट का अज्ञान घट प्रमा से (घट के प्रत्यक्ष ज्ञान से) निवृत्त होता है—घट के अज्ञान में भ्रम का उपादानत्व नहीं है—इसलिये वहाँ अव्याप्ति होगी। यदि कहें कि वह अज्ञान भी आरोपित अभाव (घटाभाव) उपादान हो तो ऐसा भी नहीं कह सकते, अभाव निरुपादान होता है—उसका कोई उपादान नहीं होता। सोपादानक मान लेने पर भी भाव रूप ज्ञानोपादानकत्व नहीं हो सकता। अन्यथा अभाव के अभाव रूप अज्ञान का उपादान मानने पर अभावात्मक स्वरूप की हानि होगी। इस प्रकार अव्याप्ति का उपपादन करके असंभव एवं अतिव्याप्ति

टिप्पणी :—प्रश्न—सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं भाव रूपं यत् किञ्चित् वस्तु इसका खण्डन करते हुए कहते है कि यदि अविद्या अनादि भाव रूप है तो उसकी ज्ञान से निवृत्ति नहीं होगी, जैसाकि आत्मा की निवृत्ति नहीं होती आत्मा भी अनादि भाव रूप है।

ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्वं जीवन्मुक्त्यनुवृत्ताज्ञानादावव्याप्त्यादेरत्रापि तुल्यत्वात्। अनाद्युपादानत्वे सति मिथ्यात्वं तत्त्वमित्यपि तुच्छम्, द्वितीयलक्षणोक्तदोषस्याभावादावव्याप्त्यादेरत्राप्यविशेषात्। मिथ्याभूतस्य सद्विलक्षणस्य खपुष्पायमाणस्य तुच्छत्वात्।

ब्रह्मण्यतिव्याप्तिः स्पष्टैवेत्याद्यर्थः। अतिव्याप्तेर्हेतुं निर्वक्ति—**तयोरिति।** मायाब्रह्मणोरित्यर्थः। अज्ञानमेकमेवेति मते तस्य चरमसाक्षात्कार निवर्त्यत्वेन शुक्त्यादिप्रमानिवर्त्यत्वं नास्ति तथात्वेऽज्ञानस्यैकत्वेन तन्निवृत्तौ सद्यो मोक्ष एव स्यादतोऽज्ञानस्य नानात्वे ज्ञानस्यापि नानात्वं वाच्यम्। तथाचेदं रजतमिति भ्रमानन्तरं जायमानं नेदं रजतमिति प्रमारूपं ज्ञानं तेन निवर्त्यं यदज्ञानं शुक्त्यज्ञानं तत्र भ्रमोपादानत्वसत्वेऽपि यत्रादावेवेयं शुक्तिरिति जायमाना प्रमा तया शुक्त्यज्ञानं निवर्तते तस्मिन्नज्ञाने भ्रमस्यैवाभावेन भ्रमोपादानत्वाभावादव्याप्तिः। न च भ्रमोपादानयोग्यत्वं विवक्षितम्। अभ्रमपूर्वकप्रमानिवर्त्याज्ञाने सहकारिवैकल्यप्रयुक्तकार्यानुत्पादकत्वरूपं योग्यत्वमस्त्येत्वेति वाच्यम्। योग्यताहि किञ्चिदवच्छेदेन ज्ञातव्या, प्रकृते योग्यतावच्छेदकीभूतो धर्मो न निरुपयितुं शक्यो न तावदज्ञानत्वं तस्येदानीं निरुच्यमानत्वात्। न चाद्यं लक्षणमेव योग्यतावच्छेदकमिति वाच्यम्। तस्य दूषितत्वादित्यपि दूषणमत्र लक्षणे द्रष्टव्यम्। असम्भवं दर्शयति—**किंचेति।** भ्रमो निरुपादानको भावविलक्षणत्वादभाववदिति प्रयोगः तथा च भ्रमस्य निरुपादानत्वादज्ञाने भ्रमोपादानत्वाभावादसम्भव इत्यर्थः। भ्रमस्य भावत्वेन

दोष मतभेद के आधार पर दिखाते हैं—'मायावच्छिन्नेति' यहाँ तीन मत है—माया ही सम्पूर्ण जगत् का उपादान है—ब्रह्म उसका (माया का) अधिष्ठान मात्र है। मायावच्छिन्न ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत् का उपादान है, न केवल माया ना केवल ब्रह्म यह दूसरा मत है। रज्जु के दो सूतों की तरह माया और ब्रह्म दोनों भी प्रत्येक जगत् का उपादान है किसी अन्य का मत है। इस आदिक मत में असंभव नहीं? माया-शब्द वाच्य अज्ञान को ही सम्पूर्ण जगत् का उपादान स्वीकार किया है। भ्रम भी जगत् के अन्तर्गत होने से माया के भ्रम का उपादानत्व संभव है। इसलिये द्वितीय मत में असंभव है—क्योंकि मायावच्छिन्न ब्रह्म के ही जगत् का उपादान कारण होने से माया के भ्रम का उपादानत्व संभव नहीं है। 'विशिष्टस्य यद् भवति' इस न्याय का निरास होने से ब्रह्म में अतिव्याप्ति भी होगी। तृतीय मत में असंभव के अभाव होने पर भी ब्रह्म में अतिव्याप्ति स्पष्ट ही है। अति व्याप्ति का हेतु कहते हैं—तयोर्भ्रमोपादानत्वात्—माया और ब्रह्म भ्रम का उपादान है। अब असंभव दिखाते हैं—'किञ्चार्थाज्ञान रूपस्य'—अर्थात् अर्थ के अज्ञानरूप भ्रम के भावविलक्षण होने



महान्तवर महामण्डलेश्वर श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज

श्रीनिम्बार्काश्रम - श्रीबैजनाथ महादेव, बल्लभीपुर, भावनगर (गुजरात)

उपादानत्वानादित्वायोगाच्चासम्भवश्च। सद्विलक्षणस्य भावत्वकल्पनाया मनोरथमात्रत्वात्। अन्यथा खपुष्पादेरपि सद्विलक्षणत्वसाम्येन भावत्वं कल्पनीयं देवानां प्रियैः। कथमसतः सज्जायतेति श्रुतेःसद्विलक्षणस्योपादनत्वभावकानां

भावविलक्षणत्वाभावादुक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वमिति शङ्कते—**नन्विति।** भ्रमस्याज्ञानोपादानत्वाङ्गीकारे भावविलक्षणत्वमेव वाच्यम् कार्यकारणयोरनन्यत्वात्तत्र भावत्वोक्तिरसङ्गता प्रतिभातीत्याशयेनोक्तां स्वरूपासिद्धिं परिहरति—**नेति।** तथा च भावविलक्षणाज्ञानकार्यस्य भ्रमस्य भावविलक्षणत्वमभ्युपेयमिति नोक्तानुमाने स्वरूपासिद्धिरिति भावः। ननु भ्रमः सोपादानो भवितुमर्हति, अभावविलक्षणत्वाद् घटवदित्यनुमानेन प्रागुक्तवानुमानस्य सत्प्रतिपक्षत्वमित्यत आह—**सोपादानत्वेचेति।** अत्रानुमाने भावत्वमुपाधिः घटादौ साध्यव्यापकता हेतुमति पक्षे भावत्वाभावेन साधनाव्यापकत्वमितिभावः। भ्रमस्य सोपादानत्वे हेत्वन्तरमाशङ्क्य परिहरति—**नापीति।** तत्त्वम्=सोपादानत्वे कारणत्वम्। निरासौ हेतुमाह—**संस्कारस्येति।** संस्कारत्वसिद्ध्यर्थं पूर्वानुभवकल्पने भ्रमो न सिद्ध्यतीति भावः। अविद्याया लक्षणान्तरं निरस्यति—**नापीति।** उत्तरज्ञाननिवर्त्ये पूर्वज्ञानेऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्। चैतन्याविद्यासम्बन्धेऽतिव्याप्तिनिरासाय—**साक्षादिति।** तत्राविद्यारूपसम्बन्धिनिवृत्तिद्वारैव ज्ञाननिवर्त्यत्वं न तु साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वमिति तदुपादाने नातिव्याप्तिः। जीवन्मुक्त्यनुवृत्ताज्ञानादाविति—जीवन्मुक्त्यनुवृत्ताज्ञानस्य ज्ञानानिवर्त्यत्वादव्याप्तिः। अविद्याया लक्षणान्तरमुपन्यस्यति—**अनादीति।** अज्ञानमुपादानं

से निरुपादान होने के कारण असंभव दोष। यहाँ अनुमान का प्रयोग है—'भ्रम निरुपादानम्' भावविलक्षण होने से अभाव की तरह। इस तरह भ्रम के निरुपादान होने से अज्ञान में भ्रम को उपादानत्व का अभाव होने से असंभव है।

यदि कहें कि भावविलक्षण अज्ञानरूपी उपादान जन्य पदार्थ में भावत्व स्वीकार करने से उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, उपादान और उपादेय में अभेद होने से अज्ञानोपादानक में भावत्व कथन अयुक्त है। यदि कहें कि भ्रम सोपादान हो सकता है, अभाव विलक्षण होने से घट आदि की तरह इस अनुमान से प्रागुक्त अनुमान में सत्प्रतिपक्षत्व दोष होगा—इस पर कहते हैं—सोपादानत्व में भावत्व कारण है न कि अभाव विलक्षणत्व—क्योंकि इसमें गौरव है। भ्रम के सोपादानत्वक अन्य हेतु की आशङ्का करके परिहार करते है—'नापि मिथ्याज्ञान संस्कारत्ववद्' अर्थात् मिथ्या ज्ञान संस्कारत्व भी सोपादानत्व में कारण नहीं है, संस्कार सभी अनुभव पूर्वक होते हैं, ऐसा नियम है—जिसका अनुभव होता है उसीका संस्कार होता है।

मुखपिधानसिद्धेरित्यलं विस्तरेण,'' तस्माल्लक्षणा-भावादज्ञानासिद्धिः ॥ ४३ ॥

इति पराभिमताज्ञानलक्षणगिरिनिपातः ॥ ९ ॥

सद्विलक्षणत्वादित्यत आह—**सद्विलक्षणस्येति**। अज्ञानं भावः सद्विलक्षणत्वादित्यपिदूषयति—**सद्विलक्षणस्येति**। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। सद्विलक्षणत्वेन भावत्वकल्पन इति तदर्थः। खपुष्पादिर्भावः सद्विलक्षणत्वादितिप्रयोगः। देवानांप्रियैः=मूर्खैः। असति भावत्वकल्पने श्रुतेर्विरोधमाह—**कथमिति**। असतः भावत्वे असतः इति कथनं विरुद्ध्येतेति भावः फलितार्थं विवृण्वन्नुपसंहरति—**तस्मादिति**। इत्यविद्यालक्षणानां निरासः ।।४३।।

इति पराभिमताज्ञानलक्षणगिरिनिपातस्य व्याख्या ॥ ९ ॥

संस्कारत्व सिद्धि के लिये पूर्व अनुभव भी कल्पना में भ्रम की सिद्धि नहीं होती है, यह भाव है। अब अविद्या के दूसरे लक्षण का भी खण्डन करते हैं—ना ही मिथ्या होकर जो साक्षात् ज्ञान निवर्त्य हो उसे अज्ञान कहते हैं—ऐसा भी नहीं कह सकते। (इस लक्षण में उत्तर ज्ञान निवर्त्य पूर्व ज्ञान में अतिव्याप्ति वारण के लिये सत्यत्व विशेषण है। चैतन्य में अविद्या से सम्बन्ध में अति व्याप्ति के निरास के लिये साक्षात् पद दिया है। वहाँ अविद्यारूप सम्बन्धि की निवृत्ति द्वारा ही ज्ञान निवर्त्यत्व है, इसलिये साक्षात् पद देने से अतिव्याप्ति नहीं होती) कारण जीवन्मुक्त जीव में अनुवृत्त अज्ञान आदि में अव्याप्ति यहाँ बराबर है। यदि कहें कि अनादि उपादान होकर जिसमें मिथ्यात्व हो, वह अज्ञान है तो यह भी तुच्छ है, द्वितीय लक्षण में उक्त दोष के अभाव आदि में अव्याप्ति आदि यहाँ भी समानरूप से है। सद् से विलक्षण मिथ्याभूत तत्त्व खपुष्प के समान है। और उपादानत्व अनादित्व का अयोग होने से असंभव भी है जो सद् विलक्षण है—भाव विलक्षण उसकी भावत्व कल्पना मनोरथ मात्र है। अन्यथा खपुष्प आदि में भी भावत्व की कल्पना मूर्खों को करनी चाहिये, क्योंकि खपुष्प आदि में भी सद् विलक्षणत्व की समानता है। अब असत् अविद्या में भावत्व की कल्पना में श्रुति विरोध कहते हैं—श्रुति का वचन है—'कथमसतः सज्जायेत' असत् से सत् कैसे हो जाएगा? इस श्रुति द्वारा सद् विलक्षण में (जो भावरूप नहीं है) उसमें उपादानत्व की कल्पना करने वालों का मुख बन्द होना सिद्ध है। असत् भी यदि भावरूप है तो श्रुति का कथन सतः यह कहना विरुद्ध होगा। इसलिये अविद्या का कोई लक्षण नहीं होने से अज्ञान की असिद्धि होती है ।।४३।।

(१०) अज्ञानविषयकप्रमाणोपपत्तिगिरिनिपातः

प्रमाणाभावादप्यज्ञानासिद्धिः तथाहि भवदभिप्रेताज्ञाने किं प्रमाणमिति वक्तव्यम्। अहमज्ञो मामन्यञ्च न जानामि त्वदुक्तमर्थं न जानामीति प्रत्यक्षमेवात्र प्रमाणमिति चेन्न, अन्यविषयकत्वेनाभास-मात्रत्वात्। तथाहि को वात्राऽहमर्थः। शुद्धं ज्ञानमात्रं वा ? अज्ञानावच्छिन्नं ब्रह्म वा! जीवो वेति, नाद्यः। शुद्धत्वहानेः। शुद्धमज्ञानमिति प्रतीत्यापत्तेः।

वज्रोत्तेजिका— प्रमाणेन हि प्रमेयः सिद्ध्यति तदभावादभाव इत्याह—**प्रमाणाभावादिति**। प्रमाणासिद्धेरितितदर्थो नातः सिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातः। तदैवोपपादयति—**तथाहीति**। अज्ञानसद्भावे प्रमाणं पृच्छति—**भवदभिप्रेतेति**। **अहमज्ञ इति**—अहमज्ञ इत्येवमज्ञानविषयकः प्रत्यक्षानुभव एवाविद्यायां प्रमाणम्। अत्र ह्यात्मानमाश्रित्य बाह्याध्यात्मिकेषु व्याप्ता जडात्मिका अविद्याशक्तिरनुभूयते। एतच्चाज्ञानं न ज्ञानाभावस्वरूपम्। किन्तु तदपेक्षया अन्यदेव भावरूपञ्चैतत्। भावकार्योपादान-कारणत्वादिति भावः। अहमज्ञ इत्येवमवभासमानो ज्ञानाभाव एव न तु तदपेक्षयाऽ-तिरिक्तमज्ञानं किञ्चिदस्तीत्याशयेन परिहरति—**नेति**। **अन्यविषयकत्वेनेति**—ज्ञानाभावविषयकत्वेनेत्यर्थः। त्रिधा विकल्पयति—**कोवेति**। आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति**। शुद्धस्य ब्रह्मणोऽज्ञत्वे शुद्धत्वं व्याहन्येत इत्याह—**शुद्धत्वहानेरिति**। द्वितीयपक्षं व्युदस्यति—**न द्वितीय इति**। **तदवच्छेदकेति**—तस्मिन् ब्रह्मणि अवच्छेदकमवच्छिन्नत्वसम्बन्धेन विशेषणीभूतमज्ञानं तस्येत्यर्थः। अन्योन्याश्रयत्वं

हिन्दी अनुवाद—

प्रमाणोपपत्ति की असिद्धि

प्रमाण के अभाव से भी अज्ञान की असिद्धि होती है। आपके अभिमत-अज्ञान में क्या प्रमाण बताये ? कहें कि मैं अज्ञ हूँ, यह प्रत्यक्ष अनुभव ही अविद्या में प्रमाण है, अपने को तथा अन्य को नहीं जानता हूँ, आपके द्वारा कहे गये अर्थ को नहीं जानता, इत्यादि प्रत्यक्ष अनुभव है अज्ञान में प्रमाण है। इस प्रतीति में आत्मा का आश्रय लेकर बाह्य आध्यात्मिक विषयों में व्याप्त जड़ात्मिका अविद्या शक्ति का अनुभव होता है, यह अज्ञान ज्ञानाभाव नहीं है—बल्कि उससे भिन्न अन्य ही भावरूप पदार्थ है—क्योंकि यह भावरूप कार्य का उपादान है तो ऐसा नहीं कह सकते—मैं अज्ञ हूँ, इस प्रतीति में अवभासमान अज्ञान ज्ञानमान है न कि उससे अतिरिक्त अज्ञान कुछ वस्तु है। हम पूछते हैं अहमज्ञः इस प्रतीति में अहं पदार्थ क्या है ? शुद्ध ज्ञानमात्र अथवा अज्ञानावच्छिन्न (अविद्यावच्छिन्न) ब्रह्म ? या जीव ?

अपसिद्धान्ताच्च। न द्वितीयः। तदवच्छेदकाज्ञानस्याद्याप्यसिद्धत्वात्। अन्योन्याश्रयाच्च। अज्ञानप्रयुक्तोऽहमर्थस्तत्प्रयुक्तमज्ञानमिति। न तृतीयः। अध्यस्तत्वेन जीवस्याज्ञानोत्तरभावित्वात्। अस्मत्पक्षे प्रत्यगात्मपरत्वेन त्वत्पक्षेऽहङ्कारपरत्वेनाहमज्ञ इत्यहङ्कारस्याज्ञत्वापत्तेः। जडस्य तत्कार्यत्वेनाज्ञानरूपत्वात् तद्वैशिष्ट्यासिद्धेः किञ्चाहं शब्दस्याज्ञानवाचकत्वाभावेनाज्ञाने प्रामाण्यासिद्धेः। अन्यथा

विवृणोति—**अज्ञानप्रयुक्त इति**। पूर्वसिद्धाज्ञानस्याश्रयः पश्चिमो जीवो भवितुं नार्हतीत्याशयेन तृतीयविकल्पं निरस्यति—**न तृतीय इति। अध्यस्तेति**—अन्तःकरणतादात्म्याध्यासापन्नो जीवः तव मते न पूर्वसिद्धाज्ञानाश्रय इत्यर्थः। अहमज्ञ इति प्रतीतावहमर्थः प्रत्यगात्मा भासत इत्यस्माकं सिद्धान्तः तस्याज्ञत्वं स्यात् तव मते तु अहंपदवाच्योऽहङ्कारस्तस्याः प्रतीते विषयस्तस्याज्ञत्वापत्तिरित्याह—**अस्मत्पक्ष इति**। जडस्याहङ्कारस्याज्ञानरूपता कार्यकारणयोरनन्यत्वात्तत्राज्ञत्ववैशिष्ट्यं न घटते तद्धर्मवति तद्वैशिष्ट्यान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्याशयेनाह—**जडस्येति**। विपक्षे बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति**। अहमर्थस्याज्ञानवाचकत्व इति तदर्थः। अध्यासोत्तरभाविनोऽहमर्थस्य पूर्वसिद्धाज्ञानाश्रयता नोपपद्यते इत्याह—**अध्यासोत्तरभावेनेति। अन्योन्याश्रयतेति**—अध्यासे सत्यहमर्थोऽहमर्थे सत्यध्यास

पहला पक्ष कह नहीं सकते, क्योंकि इसमें शुद्धत्व की हानि है—इसमें तो शुद्ध अज्ञान है ऐसी प्रतीति की आपत्ति है और अपसिद्धान्त भी है। दूसरा अज्ञानावच्छिन्न ब्रह्म भी नहीं कह सकते, कारण उस ब्रह्म में अवच्छेदक अवच्छिन्नत्व सम्बन्धेन विशेषणीभूत अज्ञान ही अब तक सिद्ध नहीं है—दूसरी बात अन्योऽन्याश्रय दोष भी है—अज्ञान प्रयुक्त अहमर्थ और अहमर्थ प्रयुक्त अज्ञान स्पष्ट अन्योऽन्याश्रय है। जीववाला तीसरा पक्ष तो हो ही नहीं सकता—जीव तो स्वयं अध्यस्त है—अज्ञान के बाद ही जीवत्व होता है। आपके मत में अन्तःकरण के साथ तादात्म्याध्यासापन्न जीव माना गया है नकि पूर्व सिद्ध ज्ञानाश्रय। मैं अज्ञ हूँ, इस प्रतीति का अहमर्थ जीवात्मा भासित होता है, यह हमारा सिद्धान्त—उसका अज्ञत्व होगा। आपके मत में अहंपदवाच्य अहंकार उस प्रतीति में विषय अहंकार है उसमें अज्ञत्वापत्ति होगी। कार्यकारण में अभिन्नता के कारण जड़ अहंकार के अज्ञानरूपता है—फिर उसमें अज्ञत्व वैशिष्ट्य कैसे घट सकता है? तद् धर्मवत् में तद् वैशिष्ट्यान्वय अव्युत्पन्न है। दूसरी बात अहं शब्द के अज्ञान वाचक न होने से अज्ञान के प्रामाण्य की सिद्धि

ब्रह्माज्ञमात्माज्ञो ज्ञानमज्ञमित्यादिप्रत्यक्षं स्यान्नतु तदस्ति उपपद्यते वा नन्वहमित्यध्यासे प्रतिबिम्बतया भासमानोऽहमर्थ इति चेन्न, तस्मादज्ञानशब्दस्य ज्ञानभावपरत्वेनोक्तप्रत्यक्षस्येतरविषयतया विवक्षितविषयेऽप्रामाण्यात्तदसिद्धेः। किञ्च त्वन्मतेऽहमर्थस्य भावरूपाज्ञानानाश्रयत्वेनाऽहमज्ञो न जानामीत्यादि प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यार्थं

इत्यर्थः। निगमयति—**तस्मादिति।** उक्तप्रत्यक्षस्य=अहमज्ञ इति प्रत्यक्षस्य। **इतरविषय-तयेति**—ज्ञानाभावविषयकतयेत्यर्थः। विवक्षितविषये=भावरूपाज्ञानविषये। तदसिद्धेः= भावरूपाज्ञानासिद्धेः। अहमज्ञ इति प्रतीतेः प्रामाण्याय ज्ञानाभावविषयकत्वं त्वयाऽपि वाच्यम्। अन्यथा तस्याः प्रामाण्यमेव न स्यादित्याह—**किंचेति। प्रामाण्यार्थमिति।** अहमज्ञ इति प्रतीतिर्ज्ञानाभावमेवावगाहते न तु भावरूपाज्ञानम्। अन्यथा तस्याः प्रामाण्यं दुर्घटम्। अज्ञानाश्रयेऽहमर्थेऽज्ञानाश्रयत्वावगाहित्वादित्यर्थः। न जानामीति प्रतीतेर्ज्ञानाभाव-विषयकत्वं कुत्रचित्त्वया वाच्यम्। तन्न्यायेन ज्ञानाभावविषयकत्वमेव सर्वत्रास्त्वित्याह—**साक्षिवेद्येति।** साक्षिवेद्ये प्रातिभासिके शुक्तिरूप्यादावज्ञानसुखादौ च भावरूपाज्ञानं नाङ्गीकृतम्। अज्ञानसुखाद्यावरकाज्ञानाङ्गीकारे साक्षिरूपशुद्धचैतन्यस्याज्ञानानिवर्तकत्वादन्तः करणवृत्तेरेव तन्निवर्तकत्वात्तस्याश्च सुखादिविषयेऽभावात्तन्निवृत्तिरेव न स्यात्। ततश्च तज्ज्ञानमेव न

नहीं होती। अन्यथा ब्रह्म अज्ञ है, आत्मा अज्ञ है, ज्ञान अज्ञ है इत्यादि प्रत्यक्ष होगा पर ऐसा तो नहीं है ना ही इसकी उपपत्ति होती है। यदि कहें कि अहम् इस अध्यास में प्रतिबिम्बरूप में भासमान अध्यर्थ है तो ऐसा नहीं कह सकते, अज्ञान शब्द ज्ञानाभाव परक होने से अहं अज्ञः इस प्रतीति का ज्ञानाभाव विषयक होने से भावरूप अज्ञान के विषय में अप्रामाण्य होने से भावरूप अज्ञान की सिद्धि नहीं होगी। दूसरी बात 'अहं अज्ञ' मैं अज्ञ हूँ, इस प्रतीति के प्रामाण्य के लिये ज्ञानाभाव विषयकत्व आपको भी कहना पड़ेगा, अन्यथा उसका प्रामाण्य ही नहीं होगा। अज्ञान के आश्रय अहमर्थ में अज्ञानाश्रयत्व का अवगाही होने से यह अर्थ है। न जानामि इस प्रतीति का ज्ञानाभाव विषयकत्व कहीं आपको कहना होगा, उस न्याय से ज्ञानाभाव विषयकत्व ही सर्वत्र हो जाए, यही बात कहते हैं—'साक्षिवेद्य सुखदुःखाज्ञानादौ....' इत्यादि ग्रन्थ से, अर्थात् साक्षिवेद्य, प्रातिभासिक शुक्ति रूप आदि तथा अज्ञान सुख आदि में भावरूप अनाम स्वीकार नहीं किया है, अज्ञान सुख आदि के आवरक अज्ञान के स्वीकार करने पर साक्षीरूप शुद्ध चैतन्य के

ज्ञानाभावविषयत्वस्यावश्यम्भावात्। साक्षिवेद्य-सुखदुःखाज्ञानादौ प्रातिभासिके च भावरूपाज्ञानाभावेन सुखं न जानामि शुक्ति रूप्यं न जानामीत्यादेर्ज्ञानाभावविषयकत्वेन वक्तव्ये सति त्वदुक्तार्थं न जानामीत्यादेरपि तथात्वसाम्यात्। त्वन्मते परोक्षवृत्तेर्विषयावरकाज्ञाननिवर्तकत्वेन परोक्षतो ज्ञातेऽपि न जानामीत्यनुभवापाताच्च। किञ्च त्वन्मते जडावरकाज्ञानाभावेन त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यादेरपि प्रामाण्यार्थं ज्ञानाभावविषयत्वाच्च। न

स्यात्। अतस्तदभावे सुखं न जानामीत्यादेर्भावरूपाज्ञानविषयकत्वेऽप्रामाण्यापत्या तत्प्रामाण्याय ज्ञानाभावविषयकत्वमेवाङ्गीकार्यमिति भावः। तथात्वसाम्यात्—ज्ञानाभावविषयकत्वसाम्यात्। प्रकारान्तरेणाप्युक्तार्थं समर्थयति—**किंचेति। न जानामीति**—प्रत्यक्षस्य सर्वत्राभावरूपाज्ञानविषयकत्वे परोक्षतो ज्ञातेऽपि धर्मादौ न जानामीत्यनुभवः स्यात् भावरूपाज्ञान सद्भावात्। न च परोक्षज्ञानेनाज्ञानस्य निवृत्तत्वात्तथाऽनुभवाभाव इति वाच्यम्। त्वन्मते परोक्षवृत्तेरज्ञानानिवर्त्तकत्वात्त-थात्वेऽज्ञानस्य निवृत्तत्वेनापरोक्षचित्सम्बन्धाद्विषयास्याप्यापरोक्ष्यं स्यात्। अतो ज्ञानाभावविषयकत्वमेव वाच्यम्। परोक्षज्ञानेन तु ज्ञानाभावस्य निवृत्तत्वान्न जानामीति व्यवहाराभावो युक्तः। तथा च तन्न्यायेन सर्वत्रापि ज्ञानाभावविषयकत्त्वमेव वाच्यम्। न भावरूपाज्ञानविषयकत्वं तथात्वेऽप्रामाण्यापत्तेः त्वन्मतेऽज्ञानस्य विषयावरकतया विषयगतत्वाङ्गीकारात् जडे च प्रकाशप्रसक्तेरेवाभावेन प्राप्तप्रकाशरूपावरणकृत्याभावेन

अज्ञान निवर्तक होने से अन्तःकरण वृत्ति में ही उसका निवर्तक होने के कारण सुख आदि के विषय में उसके अभाव प्रयुक्त उसकी निवृति ही नहीं होगी। इससे उसका ज्ञान ही नहीं होगा। इसलिये उसके अभाव में 'सुखं न जानामि' इत्यादि प्रतीति के भावरूप अज्ञान विषयकत्व में अप्रामाण्य की आपत्ति होगी। इसलिये उसके प्रामाण्य के लिये ज्ञानाभाव विषयकत्व ही स्वीकार करना होगा, यह भाव है। तथात्व साम्यात् का मतलब है ज्ञानाभाव विषयकत्व की समानता है। अब प्रकारान्तर से भी उक्त अर्थ का समर्थन करते हैं—कहते हैं—आपके मत में जड़ता के आवरक अज्ञान के अभाव के कारण आपके द्वारा कहे गये वाक्य का अर्थ मैं नहीं जानता, इत्यादि प्रतीति के भी प्रामाण्य के लिये ज्ञानाभाव विषयत्व है। यदि कहें कि जड़ में आवरणरूप अतिशय के अभाव में भी विक्षेपरूप अतिशय के सद्भाव होने से अज्ञान विषयता है इसलिये मैं नहीं जानता ऐसा अनुभव होता है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, प्रत्यक्षरूप में घटत्वेन घट के ज्ञात होने पर भी उसमें यह पद है, ऐसा

च जडे आवरणरूपातिशयाभावेऽपि विक्षेपरूपातिशयस्य सत्वादज्ञानविषयताऽस्तीति न जानामीत्यनुभव इति वाच्यम्। अपरोक्षतो घटत्वेन ज्ञातेऽपि घटेऽयं पट इति वाक्याभासाद्विक्षेपसद्भावेऽपि न जानामीत्यनुभवापातात्। न च जडं न जानामीत्यनुभवस्य जडावच्छिन्नचैतन्यावरकाज्ञानं विषय इति वाच्यम्। वृत्तिश्चिदुपरागार्थेति मते जडावच्छिन्नचैतन्यावरकाज्ञानस्याप्यभावात् भावरूपाज्ञानविषयत्वेनाभिमतस्याहमज्ञ इति ज्ञानस्य ज्ञानाभावविषय-त्वेनाभिमतान्मयि ज्ञानं नास्तीति ज्ञानात्। अघटम्भूतलमिति ज्ञानस्य भूतले

भावरूपाज्ञानाभाववत्यर्थे तदवगाहित्वे प्रात्यक्षस्याप्रामाण्यापत्त्या तत्प्रामाण्याय ज्ञानाभावविषयकत्वमेव वाच्यमित्याह—**त्वन्मत इति**। जडे=विषये। अज्ञानस्येति शेषः। आवरणरूपोऽतिशयः फलं कृत्यमिति यावत्। विक्षेपेति। तदाकारप्रतिभासरूपेत्यर्थः। **न जानामीति**। तथा च भावरूपाज्ञानविषयकत्वेनैव प्रमाण्यमस्त्विति भावः। **विक्षेपसद्भाव इति**। घटाद्यतदाकारप्रतिभासरूपकार्यसद्भावेन तत्कारणतया भावरूपाज्ञानसत्वमङ्गीकार्य्य, तथा च घटं न जानामीत्यनुभवः स्यादिति भावः। **जड इति**। जडे आवरणकृत्यभावेन तत्राज्ञानाभावेऽपि जडावच्छिन्नचैतन्य एव मयाऽज्ञानाङ्गीकारात्तस्य स्वप्रकाशत्वेनस्वप्रकाशाऽसक्तौ तत्प्रतिबन्धक तयाऽऽवरणसद्भावात्। तथा च त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्या-देर्भावरूपाज्ञानविषयकत्वमेव सम्भवतीति भावः। **वृत्तिरिति**—अज्ञानावृत्तचैतन्य-मेवाधिष्टानं तस्य चासङ्गत्वेन विषयसम्बन्धाभावाद्वृत्तिश्चितो विषयोपरागमात्रमेव

वाक्याभास होने से विक्षेप के सद्भाव होने पर नहीं जानता ऐसे अनुभव की आपत्ति होगी। यदि कहें कि 'जड़ं न जानामि' (जड़ को मैं नहीं जानता) इत्याकारक अनुभव का जड़ावच्छिन्न चैतन्य के आवरक अज्ञान विषय है तो ऐसा भी नहीं कह सकते। अज्ञानावृत चैतन्य ही वृत्ति का अधिष्ठान है और उसके असंग होने से उसमें विषय के सम्बन्ध का अभाव है—इस कारण वृत्ति चैतन्य का केवल विषयोपराम मात्र ही करती है........अज्ञान का नाश नहीं करती—इस मत के जड़ावच्छिन्न अनावृत चैतन्य में उसके आवरक अज्ञान के अभाव होने से आपके कहे अर्थ को मैं नहीं जानता, इत्यादि प्रत्यक्ष में ज्ञानाभाव ही विषय कहना पड़ेगा, अन्यथा अप्रामाण्यक आपत्ति होगी। 'भावरुपेतिः अहमज्ञः' (मैं अज्ञानी हूँ) इस प्रकार भावरूप अज्ञान विषयत्वेन अभिमत इस ज्ञान का ज्ञानाभाव विषयत्वेन

घटो नास्तीति ज्ञानादिव विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासं विना विषयभेदा-प्रतीतेश्चेति उक्तहेतुभ्य उक्तप्रत्यक्षस्येतरविषयत्वे सिद्धे तवाभिप्रेताज्ञाने प्रामाण्यासिद्धत्वादिति संक्षेपः ॥ ४४ ॥

करोति नाज्ञानं नाशयतीति मते जडावच्छिन्नेऽनावृतचैतन्ये तदावरकाज्ञानाभावेन त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यादिप्रत्यक्षस्य ज्ञानाभावविषयकत्वमेवेति वाच्यम्। अन्यथाऽप्रामाण्यापत्तेरित्यर्थः। **भावरूपेत्यादि।** अहमज्ञ इति भावरूपाज्ञानविषयकतया त्वदभिमतस्य प्रत्यक्षस्य मयि ज्ञानं नास्तीति ज्ञानाभावविषयकप्रत्यक्षस्य च न विषयभेदः प्रतीयते किन्तु अघटं भूतलं भूतले घटो नास्तीति प्रत्यक्षयोर्यथा एकत्र घटाभावविशेष्यमपरत्र तु भूतलं विशेषणं घटाभावो विशेष्यमिति विशेषणविशेष्यभावव्यत्यास एव प्रतीयते न विषयभेदः। एवमिहापि एकत्राज्ञानं विशेषणम् आत्मा विशेष्यः। अपरत्र तु आत्मा विशेषणं ज्ञानाभावो विशेष्य इति विशेषणविशेष्यभावव्यत्यास एव प्रतीयते न विषयभेद इत्यर्थः। एतेनाहमज्ञ इति प्रतीतेर्मयि ज्ञानं नास्तीत्यत्र प्रतीयमानाज्ञानाभावातिरिक्त-ज्ञानविषयकत्वाङ्गीकारेऽघटं भूतलमिति प्रतीतेरपि भूतले घटो नास्तीत्यत्र प्रतीयमानात् घटाभावादतिरिक्त एवाघटो विषय इत्यङ्गीक्रियतामित्यतिप्रसङ्गः सूचितोभवति। **उक्तहेतुभ्य इति**— तथात्वसाम्यादित्यारभ्य विषयभेदाप्रतीतेरित्यन्तग्रन्थ प्रतिपाद्याः पञ्चहेतवस्सन्ति तेभ्य इत्यर्थः। उक्तप्रत्यक्षस्येति। अहमज्ञ इति प्रत्यक्षस्येत्यर्थः। संक्षेप इति ।।४४।।

वज्रोत्तेजिका—

अभिमत 'मयि ज्ञानं नास्ति' (मुझमें ज्ञान नहीं है) इस ज्ञान में अघटं भूतलम् भूतल घट नहीं है इस ज्ञान का भूतल में घट नहीं इस ज्ञान की तरह विशेष विशेष्य के व्यत्यास (परिवर्तन) के बिना विषय भेद की अप्रतीति भी होगी—इस प्रकार उक्त हेतु से उक्त प्रत्यक्ष का अन्य विषयत्व सिद्ध होने पर आपके अभिमत अज्ञान में प्रामाण्य असिद्ध है—यह सिद्ध होता है—इति संक्षेपः।

यहाँ उक्त हेतु से तात्पर्य है 'तथात्व साम्यात्' से लेकर 'विषय भेदाप्रतीतेश्च' यहां तक के ग्रन्थ द्वारा प्रतिपादित पाँच हेतु समझना चाहिए। इन पाँच हेतुओं से अहमज्ञः इस प्रत्यक्ष प्रतीति के अन्य विषय सिद्ध होने पर इस प्रतीति के आधार पर अज्ञान में प्रामाण्य सिद्ध नहीं होता यह तात्पर्य है ।।४४।।

अविद्यानुमानम्

ननु प्रमाणज्ञानं स्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्य-स्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकम्। अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात्। अन्धकारे प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभावदिति विवरणोक्तानुमानस्यैवात्रप्रामाण्यान्ना प्रामाण्यशङ्कावकाश इति चेन्नाभासमात्रत्वात्। सुखादिप्रमायाः साक्षि-रूपत्वेनाज्ञाननिवर्तकत्वाभावाद्बाधः किञ्च सामान्यवृत्तेः पक्षत्वविवक्षायां परोक्षवृत्तौ बाधः तस्याः स्वविषयाज्ञाननिवर्तकत्वाभावात्। निवर्तकत्वे च स्वरूपहानेः। अपरोक्षत्वप्रसङ्गात् अपरोक्षवृत्तेः पक्षताङ्गीकारे च वृत्तौ

अविद्यानुमानम्

स्वप्रागभावव्यतिरिक्तं स्वविषयावरणभूतं स्वनिवर्त्यं स्वदेशगतञ्च यद्वस्त्वन्तरं तत्पूर्वकत्वं पक्षभूते प्रमाणज्ञाने साध्यते। विशेषणचतुष्टये स्वशब्देन प्रमाणज्ञानस्य परामर्शः। एतादृशं वस्त्वन्तरञ्चाविद्यैव। न तु तां विनान्यत् किमपि तथाविधं सम्भवति। अतोऽनेनानुमानेनाविद्या सिद्ध्यति। तथाहि अयं घट इति प्रमाणज्ञानस्थले प्रमाणज्ञानात्पूर्वमविद्या वर्तते। सा च प्रमाणज्ञानापेक्षया वस्त्वन्तरम्। प्रमाणज्ञानाश्रय आत्मरूपे देशे वर्तत इति स्वदेशगतम्। प्रमाणज्ञानेन विनाश्यत्वात्स्वनिवर्त्यम्। प्रमाणज्ञानविषयस्य घटस्यावरणात्स्वविषयावरणम् स्वप्रागभावव्यतिरिक्तञ्च तत्। अविद्यायाः प्रमाणज्ञानप्रागभावभिन्नत्वेनाङ्गीकारात्। यद्येतादृशं वस्त्वविद्यां विनान्यत्किमपि स्यात्तर्हि तेनैवास्यानुमानस्योपक्षीणत्वादविद्या न सिद्ध्येत् न तु तदस्ति।

हिन्दी अनुवाद—

अविद्यानुमानम्

(अनुमान से अविद्या की सिद्धि का प्रयास और उसका खंडन)

जब प्रत्यक्ष प्रमाण से अविद्या (अज्ञान) की सिद्धि नहीं हुई तो अनुमान द्वारा अज्ञान की सिद्धि का प्रयास करते हैं—अनुमान का आकार है—प्रमाणज्ञानम् स्वप्रागभावव्यतिरिक्तः स्वविषयावरणभूत, स्वनिवर्त्य तथा स्वदेशगत जो वस्त्वन्तर है, तत्पूर्वक होता है, क्योंकि वह अप्रकाशित अर्थ का प्रकाशक होता है, दृष्टान्त- जैसे अन्धकार में प्रथम उत्पन्न दीप प्रभा। यहाँ प्रभा ज्ञान पक्ष है, उसमें स्वप्रागभावव्यतिरिक्त स्वविषयावरणभूत, स्वनिवर्त्य स्वदेशगत वस्तु से भिन्न वस्तुपूर्वकत्व साध्य है। यहाँ उक्त विशेषण चतुष्टय में स्व शब्द से प्रमाण ज्ञान का परामर्श है, इस प्रकार का अन्य वस्तु अविद्या ही है, उसके विना अन्य कोई वस्तु उक्त प्रकारक नहीं हो सकती है। इस प्रकार अनुमान से अविद्या की सिद्धि होती है। जैसे अयं घट, प्रमात्मक ज्ञान के स्थल में प्रमाण

बाधः तन्निवर्त्याज्ञानसद्भावे भ्रमोपादानत्वलक्षणस्य तत्रातिव्याप्तिः स्यात्। न हि सदर्थरूपाधिष्ठानाज्ञाने क्वचिद्भ्रमः तदन्यस्य पक्षत्वे धारावाहिक-द्वितीयादिप्रमायां बाधोऽसिद्धश्च स्वनिवर्त्यप्रथमप्रमाव्यवहितायास्तस्याः द्वितीयादिप्रमायास्तमः प्रतीवाज्ञानं प्रत्यनिवर्तकत्वात्। सूक्ष्मतत्तत्क्षणा-नामप्रत्यक्षत्वेन प्रकाशितप्रकाशकत्वाच्च। तदन्यस्य पक्षत्वेऽपि

साध्यांशे कस्यापि विशेषणस्य त्यागे तु तथाविधाविद्यापेक्षयाऽर्थान्तरं संदृश्यत एवेत्यविद्यासिद्धिर्न स्यात्। अतो गुरुभूतसाध्योपादानम्। अत्र वस्तुपूर्वकमित्येतावदेव साध्यमुच्यते चेत् प्रमाण-ज्ञानविषयीभूतमात्मरूपवस्तु विद्यत एवाविद्यापेक्षयाऽर्थान्तरम्। वस्त्वन्तरपूर्वकमित्युक्तौ त्वात्मा न प्रमाणज्ञानाद्वस्त्वन्तरम्। वस्त्वन्तरमित्यस्य हि स्वस्मात्स्वाश्रयाच्चान्यदित्यर्थः। वस्त्वन्तरगतपूर्वकमित्येतावदेव साध्यञ्चेत् प्रमाणज्ञानविषयीभूतं घटादिकं वस्त्वविद्यापेक्षयार्थान्तरं विद्यत एव। अतः स्वदेशगतेत्युक्तिः। स्वस्य प्रमाणज्ञानस्य देश आश्रय आत्मा। न तु तद्गतं घटादिकम्। अदृष्टशब्दवाच्यौ धर्माधर्मौ सुखादिकञ्चात्मगतं भवतीत्यतस्तद्व्यावृत्तये स्वनिवर्त्येति। धर्मादिकं हि प्रमाणज्ञान निवर्त्यं न भवति। उत्तरज्ञाननिवर्त्यस्य पूर्वक्षणिकज्ञानस्य व्यावृत्तये—**स्वविषयावरणेति**। तथाविधः प्रमाणज्ञानस्य प्रागभावो वर्तत इति तद् व्यावृत्तये—**स्वप्रागभावव्यतिरिक्तेति**। तादृशमन्धकारं व्यासेद्धुं—**स्वनिवर्त्येति**। स्वनिवर्त्येत्युक्तौ तु नान्धकारस्तथाविधो भवति। अन्धकारोहि प्रकाशेन निवर्तते न प्रमाण ज्ञानेन, अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वादिति हेतावप्रकाशितेति पदानुक्तौ धारावाहिकज्ञानस्थले व्यभिचारः। तत्र प्रथमज्ञानस्याज्ञान-पूर्वकत्वात्तत्र निरुक्तवस्त्वन्तरपूर्वकत्वरूपसाध्यं

ज्ञान से पूर्व अविद्या रहती है, वह अविद्या प्रमाण ज्ञान (प्रमात्मकता) के अपेक्षया वस्त्वन्तर है, तथा प्रभाज्ञानश्रम आत्मरूप देश में रहती है, एवं प्रमाण ज्ञान से विनष्ट होने के कारण प्रभा ज्ञान निवर्त्य भी है। और प्रमाण ज्ञान के विषय घट में आवरण होने से स्वविषयावरण भी है। तथा प्रमाज्ञान प्रागभाव व्यतिरिक्त भी है। क्योंकि अविद्या को प्रमाज्ञान प्रागभाव भिन्न स्वीकार किया गया है। यदि ऐसी कोई वस्तु अविद्या के बिना होती तब तो उसी से इस अनुमान का खण्डन हो जाता, अविद्या की सिद्धि नहीं होती, पर ऐसा नहीं है। यहाँ साध्य अंश में किसी विशेषण के त्याग करने पर तो उक्त प्रकारक अविद्या के अपेक्षा या अर्थान्तर दीखता ही है। इस प्रकार अविद्या की सिद्धि नहीं होगी। इसलिए यहाँ गुरुभूत साध्य का उपायन है। यहाँ वस्तुपूर्वक इतना ही साध्य कहते तो तब तो प्रमाण ज्ञान विषयीभूत आत्मरूप वस्तु है ही, अविद्या के अपेक्षा अर्थान्तर वस्त्वन्तर

अनात्मविषयापरोक्षवृत्तौ बाधस्त्वन्मते जडावरकाज्ञानाभावात्। ननु घटोऽय-मित्यादिवृत्तिरपि तदवच्छिन्नचैतन्यविषया अज्ञानमपि तथेति न

विद्यते। तेन च प्रथमज्ञानेनाज्ञानस्य निवृत्तौ विषयस्य प्रकाशे जाते द्वितीयादिज्ञानानां निरुक्तवस्त्वन्तरपूर्वकत्वाभावेन साध्यं नास्ति। अर्थप्रकाशकत्वरूपहेतुश्च वर्तत इति। अप्रकाशितेत्युक्ते तु द्वितीयादिज्ञानानां पूर्वज्ञानप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वेऽप्यप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वरूप हेतुर्नास्तीति न व्यभिचारः। अन्धकारव्याप्ते देशे प्रथमक्षणोत्पन्ना प्रदीपप्रभा चात्र दृष्टान्तत्वेनोक्ता तत्र च तादृशवस्त्वन्तरमन्धकार इति तत्पूर्वकत्वरूपं साध्यं वर्तते। अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वरूपहेतुश्चवर्तते। द्वितीयादिक्षणोत्पन्ना प्रदीपप्रभातुमध्यवर्तिनी। सा च न तादृशवस्त्वन्तरपूर्विका। अन्धकारस्य प्रथमक्षणोत्पन्नतयैवार्थ प्रकाशनात् तथा च तस्यां साध्यसाधनयोरभावेन दृष्टान्तत्वेन सम्भवति, अतोदृष्टान्तत्वसम्भवाय प्रथमोत्पन्नेत्युक्तम्। दिवा सूर्यप्रकाशे प्रथमक्षणोत्पन्नायामपि दीपप्रभायां न साध्यं नापि हेतुरिति तस्या दृष्टान्तत्वं न सम्भवति। अतोऽन्धकार इत्युक्तम्। आभासत्वेनोक्तानुमानं निराकरोति—**नेति। सुखादिप्रमाया इति**—साक्षिरूपसुखादिप्रमाया अपि प्रमाणभूत ज्ञानत्वेन पक्षकोटिनिविष्टत्वात् तत्र स्वनिवर्त्यवस्त्वन्तरपूर्वकत्वं नास्तीति साध्याभावाद्बाध इत्याह—**साक्षिरूपत्वेनेति।** साक्षिणोऽज्ञानसाधकत्वेन तदनिवर्तकत्वादित्यर्थः। उक्तदूषणपरिहाराय पक्षं सङ्कोचयति—**सामान्यवृत्तेरिति।** साक्षिरूपप्रमाणज्ञानभिन्नाया इत्यर्थः। **बाध इति**—तस्याः स्वविषयेऽज्ञानानिवर्तकत्वात्परोक्षवृत्तौ स्वविषयावरणस्य स्वनिवर्त्यत्वाभावाद्बाध इति भावः। परोक्षवृत्तेरपि स्वविषयेऽज्ञाननिवर्तकत्वमभ्युपेत्य बाधपरिहारे बाधकमाह—**निवर्तकत्वेचेति। स्वरूपहानेरिति**—तस्याः तथात्वे

पूर्वक इतना कहने पर तो आत्मा प्रमाण ज्ञान से वस्त्वन्तर नहीं है। वस्त्वन्तर का तात्पर्य है—स्व तथा स्वाश्रय से अन्य। वस्त्वन्तर्गत पूर्वकम् इतना ही साध्य होता तो प्रमाण ज्ञान विषयीभूत घटादि वस्तु अविद्यापेक्षया। अर्थान्तर है ही—इसलिये स्वदेशगत कहा स्व प्रमाण ज्ञान का देश आश्रय आत्मा है, न कि तद्घटादि। अदृष्ट शब्द वाच्य धर्म एवं अधर्म तथा सुखादि आत्मगत है—इसलिये उनकी व्यावृत्ति के लिये स्वनिवर्त्य कहा। धर्मादि प्रमाण ज्ञान निवर्त्य नहीं होते। उत्तर ज्ञान निवर्त्य पूर्व क्षणिक ज्ञान की व्यावृत्ति के लिये स्व विषयावरण कहा। वैसा प्रभाज्ञान का प्रागभाव है—अतः उसकी व्यावृत्ति के लिये स्वप्रागभाव व्यत्तिरिक्त कहा है। उक्त प्रकारक अन्धकार भी व्यावृत्ति के लिये स्वनिवर्त्य कहा। स्वनिवर्त्य कहने पर अन्धकार वैसा नहीं होता। अन्धकार तो प्रकाश से निवृत्त होता है न कि प्रमाण ज्ञान से। अप्रकाशितार्थ प्रकाशकत्वात् इस हेतु के अप्रकाशित पद न कहने पर धारावाहिक ज्ञान स्थल में व्यभिचार होता। अप्रकाशित पद कहने पर

बाध इति चेन्न, एकाज्ञानवादिमते तदभावात्। आकाशादिवत् घटाद्यवच्छिन्नस्यापि चेतनस्य चाक्षुषत्वायोगाच्च। अयं घट इति शब्दजन्यैकघटमात्रविषयकज्ञानेनायं घट

परोक्षत्वस्वरूपमस्या हीयेत इति तदर्थः। परोक्षवृत्तिविषयस्याभिव्यक्तापरोक्षैकरसचैतन्यसम्बन्धेनापरोक्षत्वं स्यादित्याह—**अपरोक्षत्वप्रसङ्गादिति।** एतद्दोषव्युदासाय पुनः पक्षं सङ्कोचयति—**अपरोक्षवृत्तेरिति।** वृत्तौ—सर्वभ्रमेष्वधिष्ठानत्वेनानुगतसदर्थविषया परोक्षवृत्तौ। ननु इदमंशवृत्तिनिवर्त्याज्ञानस्यापि सत्त्वान्नबाध इत्यत आह—**तन्निवर्त्येति।** नन्विदमंशाज्ञानस्यापि भ्रमोपादानत्वमेवेति नाव्यासिरित्यत आह—**न हीति। सदर्थेति**—सदर्थो विद्यमानार्थो धर्म्यंशः। इदमंशरूप इति यावत्। एतद्दूषणपरिहाराय पुनः पक्षं सङ्कोचयति—**तदन्यस्येति।** इदमंशापरोक्षापरोक्षवृत्तिभिन्नापरोक्षवृत्तिरूपप्रमाणज्ञानस्येत्यर्थः। बाधमुपपादयति—**स्वनिवर्त्येति।** तत्रादावज्ञानमनन्तरं तन्निवर्तिका प्रथमा प्रमा तन्निवर्तिका च—द्वितीयादिप्रमा एवञ्च सति द्वितीयादि प्रमाया अपि पक्षनिविष्टत्वात् द्वितीयप्रमानिवर्त्या या प्रथमप्रमा तथा द्वितीयादिप्रमायाव्यवहितत्वेन प्रथमप्रमानिवर्तन एव चरितार्थतया प्रथमप्रमानिवर्त्याज्ञानानिवर्तकत्वाद्बाध इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः—**द्वितीयादीति।** तमो निवर्तिका प्रथमप्रमैव न द्वितीयादिप्रमातद्वदित्यर्थः। ननु नासिद्धिः द्वितीयादिप्रमाणेऽपि अन्यान्यक्षणलवविशिष्टार्थप्रकाशकत्वेनाप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वसद्भावादित्यत आह—**सूक्ष्मेति।** यथाहुः—प्रत्यक्षेण सूक्ष्मकालभेदानामनाकलनादिति। एतद्दूषणपरिहाराय पुनरपि पक्षं सङ्कोचयति—**तदन्यस्येति।** द्वितीयादिप्रमाभिन्नापरोक्षप्रमारूपज्ञानस्येत्यर्थः। **अनात्मेति।**

तो द्वितीयादि ज्ञानों में पूर्व ज्ञान के प्रकाशित अर्थ प्रकाशत्व होने पर भी अप्रकाशित अर्थ प्रकाशत्व रूप हेतु नहीं है—इसलिये व्यभिचार नहीं है। अन्धकार व्याप्त देश में प्रथम अणु में उत्पन्न प्रभा यहाँ दृष्टान्त रूप में कही गई है, वहाँ तादृश वस्त्वन्तर है अन्धकार तत् पूर्वकत्वरूप साध्य है और अप्रकाशित अर्थ प्रकाशत्वरूप हेतु भी है। द्वितीय क्षण उत्पन्न प्रदीप प्रभा तो मध्यवर्ति ही है। वह तो तादृश वस्त्वन्तर पूर्विका नहीं है। अन्धकार का प्रथमक्षणोत्पन्नतया ही अर्थ प्रकाशन है इस तरह उसमें साध्य साधन के अभाव से दृष्टान्तत्व नहीं संभव है—इसलिये दृष्टान्तत्व संभव के लिये प्रथमोत्पन्न कहा। दिन में सूर्य के प्रकाश में प्रथम क्षण में भी उत्पन्न दीप प्रभा में न साध्य है न हेतु—इसलिये वह दृष्टान्त नहीं हो सकता इसलिये अन्धकार कहा। इस विवरण ग्रन्थ में उक्त अनुमान ही यहाँ प्रमाण है—फिर तो अविद्या की सिद्धि में किसी तरह अप्रामाण्य की शंका का अवकाश नहीं है तो ऐसा भी नहीं कह सकते—यह हेतु आभास मात्र है—हेत्वाभास है—कारण साक्षिरूप सुख आदि प्रमा प्रमाण भूत ज्ञान होने से पक्ष कोटि में आ जाता है और उसमें

इत्यपरोक्षवृत्तेर्विषयभेदाप्रतीतेश्च। आत्मविषयकापरोक्षवृत्तेः पक्षत्वविवक्षायामनात्मज्ञाने व्यभिचारः। आत्मविषयत्वेन हेतुविशेषणे दृष्टान्तस्य वैकल्यादिति पक्षनिरासः। अथ साध्योऽपि दुर्निरूप्यो विशेषणायोगात्। तत्र स्वप्रागभावव्यतिरिक्तेति प्रथमविशेषणं व्यर्थं तव

जड इत्यर्थः। बाधमुपपादयति—**त्वन्मत इति।** तथा च जडविषयापरोक्षवृत्तेरपि पक्षत्वेन तस्याः स्वनिवर्त्याज्ञानपूर्वकत्वाभावाद्बाधइत्यर्थः। बाधपरिहारं शङ्कते—**नन्विति।** तदवच्छिन्नचैतन्यविषया=घटावच्छिन्नचैतन्य विषया। तथा=घटावच्छिन्नचैतन्यावरकम्। **न बाध इति**—घटावच्छिन्नचैतन्ये त्वज्ञानमस्तीति स्वनिवर्त्याज्ञानपूर्वकत्वसद्भावान्न बाध इत्यर्थः। एकाज्ञानपक्षमवलम्ब्योक्तशङ्कां परिहरति—**नेति।** तदभावात् घटोऽयमित्याद्यपरोक्षप्रमानिवर्त्यत्वस्याऽभावादज्ञानेत्यर्थः।
घटोऽयमित्याद्यपरोक्षप्रमानिवर्त्यत्वमज्ञानेऽभ्युपेयते तदाऽज्ञानस्यैकत्वेन तन्निवृत्तौ सद्योमोक्षापातः स्यात्। तथा च घटावच्छिन्नचैतन्येऽप्यज्ञानाभावादनात्मवृत्तौ बाधस्तदवस्थ इति भावः। घटोऽयमित्याद्यपरोक्षावृत्तेस्तदवच्छिन्नचैतन्य विषयत्वमङ्गीकृत्याज्ञाननिवर्तकत्वं न सम्भवतीत्युक्तम्। अधुना घटोऽयमित्यादिवृत्तेश्चैतन्यविषयकत्वमेव नास्तीत्याह आकाशादिवदिति। स्वतो रूपादिहीनस्य घटावच्छिन्नस्य चैतन्यस्य चाक्षुषत्वमस्तु। चन्द्रावच्छेदेन राहोरिवेत्यत उक्तमाकाशवदिति। स्वतोरूपादिहीनस्याप्याकाशस्य घटावच्छेदेनापि चाक्षुषतया अदर्शनं यथा तथा घटाद्यवच्छिन्नचैतन्यस्य चाक्षुषत्वं न घटते राहोस्तु नीलरूपवत्त्वेन न स्वतो नीरूपत्वमिति भावः। यथा घटाद्यनात्मविषयशाब्दज्ञाने न चैतन्यविषयः

प्रमाण ज्ञान निवर्त्य वस्त्वन्तर पूर्वकत्व नहीं है—इस तरह पक्ष में साध्य के अभाव के कारण साध्याभाववान् पक्ष रूप बाध दोष है। यदि उक्त दोष के परिहार के लिये पक्ष में संकोच करके साक्षिरूप प्रमाण ज्ञान से भिन्न वृत्ति को पक्ष बनाएँ तो परोक्ष वृत्ति में बाध। परोक्ष वृत्ति का अपने विषय में अज्ञान निवर्तक होने से परोक्ष वृत्ति में स्वविषयावरण में स्वनिवर्त्यत्व का अभाव होने से बाध। स्वविषय में परोक्ष वृत्ति का अज्ञान निवर्तकत्व स्वीकार कर बाध का परिहार कहें तो स्वरूप हानि। अर्थात् परोक्ष वृत्तिक स्वविषय में अज्ञान निवर्तकत्व मानने पर इसमें परोक्षत्व स्वरूप की हानि। यदि कहें कि परोक्ष वृत्ति के विषय का अभिव्यक्त परोक्ष एकरस चैतन्य के सम्बन्ध से अपरोक्षत्व होगा—इस पर कहते हैं—अपरोक्ष का प्रसंग होगा इस दोष के निवारणार्थ यदि पुनः पक्ष संकोच करें—अपरोक्ष वृत्ति को पक्ष मानें तो वृत्ति में बाध होगा, अर्थात् सभी भ्रमों में अधिष्ठानत्वेन अनुगत सदर्थ विषया परोक्ष वृत्ति में बाध। यदि कहें कि इदमंश वृत्ति से निवर्त्य अज्ञान

पक्षे ज्ञानस्याज्ञानमात्रनिवर्तकत्वात्। प्रागभाव-स्याज्ञानत्वाविवक्षितत्वात्। अन्यथा परमतप्रवेशात्स्वविषयावरणेति द्वितीयमप्ययुक्तं जडे तावदज्ञानानङ्गीकृतत्वात्। निर्विशेषचितश्चाज्ञाना-दिसाक्षितया प्रकाशमानत्वेनाज्ञानस्यावरणत्वासम्भवात्। स्वनिवर्त्येति तृतीयमप्ययुक्तं

तथा तत्समानविषयेऽपरोक्षज्ञानेऽप्यतोऽनात्मविषय परोक्षवृत्तौ बाधस्तदवस्थ एवेत्याह—**अयं घट इति।** तथा चोभयोः वृत्तयोः साम्ये परोक्षवृत्तिवदपरोक्षवृत्तेरप्यज्ञानानिवर्तकत्वाद्बाध इति भावः। एतद्दूषणं परिजिहीर्षुः पुनरपि पक्षं सङ्कोचयति—**आत्मेति।** आत्मविषयिका अपरोक्षवृत्तिश्चान्ततश्चरमवृत्तिरेवेति भावः। **व्यभिचार इति**—त्वन्मते जडावरकाज्ञानाभावेन साध्याभावादित्यर्थः। **दृष्टान्तस्येति।** अप्रकाशितार्थप्रकाशिकायां प्रदीपप्रभायामात्मविषयकत्वाभावादित्यर्थः। इत्यविद्यानुमाने पक्षस्य निरसनम्। एवं पक्षं निरस्य साध्यं निरस्यति—**अथेति।** प्रमाणज्ञानप्रागभावनिवृत्त्यर्थं स्वप्रागभावव्यतिरिक्तेति विशेषणमिति चेत्तत्राह—**विशेषणायोगादिति।** तदयोगमेवोपपादयति—**तत्रेति।** अविद्यानुमान इति तदर्थः। तत्र हेतुमाह—**तव पक्ष इति। अज्ञानमात्रनिवर्तकत्वादिति।** प्रागभावस्याज्ञान भिन्नत्वान्न ज्ञाननिवर्त्यत्वमित्याह—**प्रागभावस्येति।** प्रमाणज्ञानं स्वप्रागभावनिवृत्तिरेव न तु तन्निवर्तकमिति न प्रमाणज्ञानप्रागभावस्तन्निवर्त्यस्तथा च स्वनिवर्त्यत्व विशेषणेनैव प्रागभावव्यावृत्ति सम्भवेऽतिरिक्तान्तं विशेषणं व्यर्थमिति भावः। विपक्षे बाधकतर्क-मुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** अभावनिवृत्त्यपेक्षया प्रागभावस्यातिरिक्तत्व इति तदर्थः। इदं पुनरिहावधेयम्। नन्वभावाभावो न भावव्याप्य इति मतानुसारेण

के विद्यमान होने से बाध नहीं होगा—इस पर कहते हैं उसके द्वारा निवर्त्य अज्ञान के सद्भाव में भ्रम के उपादानत्व लक्षण की वहाँ अतिव्याप्ति होगी। कहें कि इदमंश सम्बन्धी अज्ञान में भी भ्रम का उपादानत्व ही है—इसलिये अव्याप्ति नहीं होगी—इसलिये कहते हैं—**'न हि सदर्थ रूपाधिष्ठाने'** सदर्थ माने विद्यमान अर्थ धर्मी का अंश इदमंश रूप। एतत् रूप अधिष्ठान अज्ञान में कहीं भ्रम नहीं होता और उसके भिन्न को पक्ष मानने पर धारावाहिक द्वितीय आदि प्रमा में बाध और असिद्ध ही होगा, तदन्य का अर्थ है—इदमंश के परोक्ष अपरोक्ष वृत्ति भिन्न अपरोक्ष वृत्ति रूप प्रमाण ज्ञान। बाध का उपपादन करते हैं—**'स्वनिवर्त्य'** इत्यादि ग्रन्थ से अर्थात् पहले आदि में अज्ञान, तदनन्तर तन्निवर्तिका प्रथमा प्रमा, और उसकी निवर्तिका द्वितीयादि प्रमा। इस स्थिति में द्वितीयादि प्रमा के भी पक्ष कोटि में निविष्ट होने से द्वितीय प्रमा से निवर्त्य जो प्रथम प्रमा उससे द्वितीयादि प्रमा

वृत्तिश्चिदुपरागार्थेति मते घटाकारवृत्त्या तत्प्रतिबिम्बित-चैतन्येन वाऽभिव्यक्तं घटाधिष्ठानचैतन्यं घटप्रकाशकमिति मते च घटप्रकाशकज्ञानस्य घटाज्ञानानिवर्तकत्वात्। अन्यथा परमतप्रवेशात्स्व-विषयावरणेति द्वितीयमप्ययुक्तं जडे तावदज्ञानानङ्गीकृत्वात्। निर्विशेष-

---

प्रतियोग्यतिरिक्तां प्रागभावनिवृत्तिमभ्युपेत्यतत्सार्थकयितुम् शक्यत इति चेन्न, तन्मतस्याप्रामाणिकत्वात् प्रागित्यस्य वैयर्थ्याच्च। न च प्रागभावस्यापि ध्वंसाद्यभावव्यतिरिक्तत्वेन पुनस्तमादा-यार्थान्तरतेति वाच्यम्। सामान्येन प्रयुक्तपदस्य विशेषार्थपर्य्यवसानेन दूषणेऽति प्रसङ्गापत्तेः। न चाखण्डाभावे न वैयर्थ्यमिति वाच्यम्। तत्त्वनिर्णयकथायां लघुना निर्देशेन साध्यसिद्धौ सम्भवत्यामखण्डान्तर्भावेन साध्यस्यानिर्देष्टव्यत्वादिति। स्वविषयावरणेति द्वितीयविशेषणं दूषयितुमाह— **स्वविषयेति।** अज्ञानस्य नावरणत्वं तथाहि आवरणं ह्याव्रियमाणेन व्याप्तं तच्चाव्रियमाणं जडं चैतन्यगतविशेषो वा शुद्धचैतन्यं वा नाद्य इत्याह—**जड इति।** विषय इति तदर्थः। आवरणरूपतत्कृत्याभावादिति भावः। न द्वितीय इत्याह—**निर्विशेष इति। न तृतीय इत्याह**—चितश्चेति। तद्विशेषणविशिष्टं साध्यं पक्षे बाधितमिति भावः। स्वनिवर्त्येति तृतीयविशेषणं निरस्यति—स्वनिवर्त्येति। वृत्तिश्चिदुपरागार्थेति मते चितोऽज्ञाननिवर्तकत्वेन पक्षीभूताया वृत्तेरावरणनिवर्तकत्वाभावाद्बाध इत्यर्थः। मतान्तरेऽपि बाधमुपपादयति—**घटाकारेति।** घटाकारतया तत्प्रतिबिम्बितचैतन्येन वा

के व्यवहित होने से प्रथम प्रमा के निवर्तन में ही उसकी चरितार्थता से प्रथम प्रमा निवर्त्य अज्ञान के निवर्तक न होने का बाध होगा। इसमें दृष्टान्त द्वितीयादि तम की निवर्तक प्रथम प्रमा ही है। द्वितीया प्रमा नहीं उसी प्रकार कहें असिद्धि नहीं है। द्वितीयादि प्रमाण के भी अन्यान्य क्षण, लवविशिष्ट अर्थ प्रकाशक होने से अप्रकाशित अर्थ प्रकाश का सद्भाव है—इसलिये कहते हैं—**'सूक्ष्म तत्क्षणानाम्'** अर्थात् सूक्ष्म तत् तत् क्षणों में अप्रत्यक्ष होने से प्रकाशित का प्रकाशकत्व भी है। इस दोष में परिहार के लिये उससे भिन्न—द्वितीयादि प्रमा भिन्न अपरोक्ष प्रमा रूप ज्ञान को पक्ष मानने पर भी अनात्म (जड़) विषयक अपरोक्ष वृत्ति में बाध होगा क्योंकि आपके मत में जड़ का आवरक ज्ञान का अभाव है।

यदि कहें कि घटोऽयम् इत्यादि वृत्ति भी घटावच्छिन्न चैतन्य विषयक है और अज्ञान भी घटावच्छिन्न चैतन्य का आवरक है—इस प्रकार बाध नहीं है—यानी घटावच्छिन्न चैतन्य में तो अज्ञान है—इस प्रकार स्वनिवर्त्य अज्ञान पूर्वकत्व के सद्भाव होने से बाध नहीं है तो ऐसा भी नहीं कह सकते—घटोऽयम् इत्यादि अपरोक्ष प्रमा निवर्त्यत्व का अभाव है। यह परिहार। एक अज्ञान (अविद्यैकत्व) पक्ष लेकर है।

चितश्चाज्ञानादिसाक्षितया प्रकाशमानत्वेनाज्ञानस्यावरणत्वासम्भवात्। स्वनिवर्त्येति तृतीयमप्ययुक्तम्, वृत्तिश्चेदुपरागार्थेति मते घटाकारवृत्त्या तत्प्रतिबिम्बितचैतन्येन वाऽभिव्यक्तं घटाधिष्ठानचैतन्यं घट प्रकाशकमिति

घटप्रकाशकस्य घटाधिष्ठानचैतन्यस्यावरणाभिभवरूपाभिव्यक्तेर्जातत्वेन पक्षीभूतस्य घटज्ञानरूपस्य घटाधिष्ठानचैतन्यस्यावरणनिवर्तकत्वं नास्तीत्यर्थः। स्वप्रतिबन्धकादृष्टं व्यावर्तयितुं तद्विशेषणमितिचेत्तत्राह—**चरमेति। तदनिवर्त्यत्व इति**—पक्षीभूतस्य-चरमसाक्षात्काररूपप्रमाणज्ञानानिवर्त्यत्वे। ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावेन मिथ्यात्वासिद्ध्या-तन्निवर्त्यत्वे वाच्ये स्वनिवर्त्यपदेन तद्व्यावृत्त्यसिद्धेश्चेत्यर्थः। तुर्यं विशेषणमपि निष्प्रयोजनकमित्याह—**स्वदेशगतेति।** प्रमाणज्ञानाज्ञानयोःसमानदेशत्वमेव नास्तीत्याह—**अज्ञानस्येति। चिन्मात्रेति**—मुखमात्रस्थानीयं यज्जीवब्रह्मानुस्यूतं चिन्मात्रं तदाश्रितत्वात्। आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विशेषचितिरेव केवलेति वचनादित्यर्थः। **वृत्तेरिति।** वृत्त्यादिरूपस्यज्ञानस्यज्ञानाश्रयचिन्मात्रानाश्रितत्वादित्यर्थः। तदनाश्रितत्वात्= चिन्मात्रानाश्रितत्वात्। यत्राज्ञानं वर्तते न तत्र प्रमाणज्ञानमिति भावः। किञ्च यद्विषयवृत्तित्वादतो न तयोः समानदेशत्वमित्याह—**त्वन्मत इति।** ननु विषयगताज्ञातत्वं व्युदसितुमेतद्विशेषणं सार्थकमिति चेत्तत्राह—**अज्ञातत्वस्येति।** विषयेऽज्ञातत्वं किं

घटोऽयम् इत्यादि अपरोक्ष प्रमा निवर्त्यत्व अज्ञान में स्वीकार करते हैं, तब अज्ञान के एक होने से उसकी निवृत्ति होने पर तुरन्त मोक्ष की आपत्ति होगी, तथा घटावच्छिन्न चैतन्य में भी अज्ञान के अभाव से जड़ात्मक वृत्ति में बाध पूर्ववत् रहता ही है यह भाव है। घटोऽयम् इत्यादि अपरोक्ष वृत्ति को तद्वच्छिन्न चैतन्य का विषय मानकर भी अज्ञान निवर्तकत्व संभव नहीं है। यह पहले कहा है। सम्प्रति घटोऽयम् इत्यादि वृत्ति का चैतन्य विषय ही नहीं है, यह कहते हैं—"आकाशादिव" अर्थात् स्वतो रूपादिहीन घटावच्छिन्न चैतन्य का चाक्षुषत्व हो, चन्द्रावच्छेदेन राहु की तरह इस पर कहते हैं कि जैसे स्वतः रूपादि हीन आकाश का घटावच्छेदेनापि जैसे चाक्षुष प्रत्यक्षतया अदर्शन होता है—उसी प्रकार घटावच्छिन्न चैतन्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता—राहु का तो नील रूपवान् होने से उसमें स्वतः ही रूपत्व नहीं है। जैसे घट आदि अनात्म विषयक शाब्द ज्ञान में चैतन्य विषय नहीं होता, उसी प्रकार तत्समान विषयक अपरोक्ष ज्ञान में भी, इसलिये अनात्म विषयक परोक्ष वृत्ति का बाध पूर्ववत् ही है—यही कह रहे हैं—'**अयं घट इति.........**' इत्यादि ग्रन्थ से अयं घटः एतत् शब्दजन्य एक घट मात्र विषयक ज्ञान से अयं घटः इत्याकारक प्रत्यक्षात्मक वृत्ति के विषय में भेद की प्रतीति भी है। इस तरह

मते च घटप्रकाशकज्ञानस्य घटाज्ञानानिवर्तकत्वात्। चरमसाक्षात्कार-प्रतिबन्धकादृष्टस्य तदनिवर्त्यत्वे मिथ्यात्वासिद्ध्यास्वनिवर्त्यपदेन तदव्याघातात्। स्वदेशगतेति चतुर्थमप्ययुक्तम्। अज्ञानस्य चिन्मात्राश्रितत्वात् वृत्तेस्तत्प्रतिबिम्बितचैतन्यस्य वा प्रमाणज्ञानस्य तदनाश्रितत्वात्। त्वन्मते विषयस्थाज्ञानस्यैवावरणत्वात्। अज्ञातत्वस्य तद्विषयकज्ञानाभावरूपत्वेनाद्य विशेषणेनैव व्यावृत्तिसिद्धेरविद्याविषयरूपत्वे

तद्विषयकज्ञानाभावरूपं वा अविद्याविषयत्वं वा नाद्य इत्याह—तद्विषयकेति। तद्विषयकज्ञानाभावरूपत्वमपि किं ज्ञानप्रागभावरूपत्वं ज्ञानात्यन्ताभावरूपत्वंवा नाद्यः। आद्यविशेषणेनैव तद्व्यावृत्तिसिद्धेः। प्रागभावस्य प्रतियोगिसमानदेशत्वेन स्वदेशपदेनापिव्यावृत्त्यासिद्धेश्च। नापि द्वितीयः स्वप्रागभावव्यतिरिक्तेत्यत्र प्राक्पदवैयर्थ्यस्योक्तत्वादभावव्यतिरिक्तपदेनैव तद्व्यावृत्तिसिद्धेरित्यर्थः। अन्त्येत्वाह—**अविद्येति।** अविद्यास्वरूपस्यैवासिद्धौ तद्विषयत्वमादायार्थान्तरताप्रदानायोगेनैतदनुमानात् प्रागेवाविद्यायाः

उभय वृत्ति में साम्य होने पर परोक्ष वृत्ति की तरह अपरोक्ष वृत्ति के भी अज्ञान का अनिवर्तक होने से बाध है—यह भाव है। इस दोष के परिहार के लिये पुनः पक्ष में संकोच करते हैं—'**आत्मविषयकापरोक्षवृत्तेः**'—कहते हैं कि यदि आत्मविषयक अपरोक्ष वृत्ति को पक्ष करें तो अनात्मज्ञान का व्यभिचार होगा आत्मविषयक अपरोक्ष वृत्ति अन्ततः चरम वृत्ति ही है। व्यभिचार इसलिये होगा कि आपके मत में जड़ का आवरक अज्ञान का अभाव होने से साध्य का अभाव है। आत्मविषयत्वेन हेतु का विशेषण कहने पर दृष्टान्त का अभाव है—क्योंकि अप्रकाशित अर्थ प्रकाशक प्रदीप की प्रभा में आत्मविषयकत्व का अभाव है। इस प्रकार अविद्या के अनुमान में पक्ष का निरास हुआ। अब अविद्या के अनुमान में साध्य का खण्डन करते हैं। इस अनुमान में साध्य का निरूपण भी असंभव है—कारण इस अनुमान में साध्य के विशेषण में पहला विशेषण है—'**स्वप्रागभाव-व्यतिरिक्त**' विशेषण है—यह विशेषण प्रमाण ज्ञान के प्रागभाव की निवृत्ति के लिये दिया गया है, यह विशेषण व्यर्थ है, क्योंकि आप के मत में ज्ञान अज्ञान मात्र का विवर्तक होता है। कहें कि प्रागभाव अज्ञान भिन्न होने में उसमें ज्ञान निवर्त्यत्व नहीं है तो प्रागभाव का अज्ञानत्व अविवक्षित है। प्रमाण ज्ञान स्वप्रागभाव निवृत्ति ही है, न कि उसका निवर्तक इसलिये प्रमाण ज्ञान प्रागभाव प्रमाण ज्ञान निवर्त्य नहीं है—इस

टिप्पणी :— शाङ्कर वेदान्त में अन्तःकरण की वृत्ति में प्रतिफलित चैतन्य ही प्राप्त है, वेदान्त शास्त्र में ज्ञान, चैतन्य, ब्रह्म, आत्मा (चित्ती) संविद, भान ये पर्यायवाची हैं, समानार्थक हैं, अतः प्रत्यक्ष प्रमा को चैतन्य शब्द से कहना उचित ही है।

चाविद्याऽसिद्धया चतुर्थस्यवैयर्थ्यम्। किञ्च स्वविषयावरणपूर्वक-मित्येतावतैवालमन्यद्व्यर्थम्। न हि प्रमाणप्रागभावः प्रमोत्पत्तिप्रतिबन्धकादृष्टं वा अज्ञानातिरिक्तमन्यत्किञ्चिद्वा आवरणम्।

सिद्धत्वेनानुमानस्याधिगतार्थबोधकत्वेनाप्रमाण्यापत्या किमर्थान्तरतापरिहाराय विशेषणदानक्लेशेनेत्यर्थः। **अन्यदिति।** स्वप्रागभावव्यतिरिक्तेत्यादिविशेषणमित्यर्थः। ननु प्रागभावादिव्यावृत्त्यर्थ तद्विशेषणमिति चेन्न, स्वविषयावरणपूर्वकमित्यनेन तद्व्यावृत्तिसिद्धेः। तत्कथमित्यत आह—**न हीति। प्रमाणप्रागभाव इति**— स्वप्रागभावव्यतिरिक्तपदव्यावर्त्य इत्यर्थः। प्रमेत्यादि स्वनिवर्त्यपदव्यावर्त्य इत्यर्थः। **अन्यत्किञ्चिदिति।** स्वदेशगतपदव्यावर्त्यमित्यर्थः अज्ञानस्यैवावरणत्वेनाज्ञातत्वस्यावरणत्वाभावादिति भावः। ननु प्रमाणप्रागभावादीनामावरणत्वेन तमादायार्थान्तरतायाःस्वविषयावरणपूर्वकमित्यनेना-वरणात्तदर्थं तद्विशेषणजातं सार्थक्यमेवेत्यत आह—**तथात्वइति।** ते नैव=आवरणत्वेना-भिमतप्रमाणप्रागभावादिना। **अप्रयोजकत्व इति।** अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वस्यहेतोः

तरह स्वनिवर्त्यत्व विशेषण से ही प्रागभाव की व्यावृत्ति संभव होने से अतिरिक्त विशेषण यहाँ व्यर्थ है। अन्यथा (विपक्ष में बाधक तर्क) अभाव की निवृत्ति की अपेक्षया प्रागभाव को अतिरिक्त मानने पर परमत में प्रवेश होता है। 'स्वविषयावरण' यह द्वितीय विशेषण भी अयुक्त है। कारण जड़ में अज्ञान स्वीकार नहीं है। अज्ञान में आवरणत्व नहीं है—जैसा कि आवरण आप्रियमाण तत्त्व से व्याप्त होता है। प्रश्न है—वह आप्रियमाण जड़ चैतन्यगत विशेष पदार्थ है अथवा शुद्ध चैतन्य है, पहला पक्ष नहीं कह सकते—क्योंकि जड़ में (जड़ विषय के) अज्ञान स्वीकार नहीं—आवरण रूप उसके कार्य का अभाव है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—क्योंकि निर्विशेष चित् तो अज्ञान आदि में साक्षी होने से प्रकाशमान होने के कारण उसमें अज्ञान का आवरणत्व संभव नहीं है। स्वनिवर्त्य रूप तृतीय विशेषण भी ठीक नहीं है। क्योंकि वृत्ति चित् के उपराग के लिये होती है, इस मत में घटाकार वृत्ति अथवा उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्य द्वारा अभिव्यक्त घटाधिष्ठान चैतन्य घट का प्रकाशक है। इस मत में भी घट प्रकाशक ज्ञान में घट के अज्ञान का निवर्तकत्व नहीं है। कहें कि अपने प्रतिबन्धक अदृष्ट की व्यावृत्ति के लिये उक्त विशेषण है। उसपर कहते हैं—चरम साक्षात्कार के प्रतिबन्धक अदृष्ट के पक्षीभूत चरम साक्षात्कार रूप प्रमाण ज्ञान द्वारा अनिवर्त्य होने पर ज्ञान निवर्त्यत्व के अभाव से मिथ्यात्व की असिद्धि के कारण स्वनिवर्त्य पद से उसकी व्यावृत्ति की असिद्धि भी होगी। इसी तरह स्वदेशगत यह चतुर्थ विशेषण भी अयुक्त है—कारण

तथात्वे तेनैव स्वप्रकाशब्रह्मावरणसम्भवेन हेतोरप्रयोजकत्वापातादिति सङ्क्षेपः ॥ ४५ ॥

इत्यविद्यानुमाने साध्यनिरसनम्

प्रागभावादिव्यतिरिक्तज्ञानाख्यावरणपूर्वकत्वरूपसाध्यं विनापि सत्त्वमस्त्वित्यप्रयोजकता। न चैतादृशाज्ञानाख्यावरणपूर्वकत्वरूपसाध्याभावेऽपि हेतूच्छितिरेव बाधिकेति वाच्यम्। अज्ञानव्यतिरिक्तं त्वदभिमतं यत्प्रागभावादिरूपमावरणं तेनैव हेतोरुपपत्तेस्तदुच्छित्यभावादित्यर्थः ।।४५।।

अज्ञान चिन्मात्र आश्रित है और वृत्ति अथवा उसमें प्रतिबिम्बि चैतन्य प्रमाण ज्ञान उसमें आश्रित नहीं है। जहाँ अज्ञान है—वहाँ प्रमाण ज्ञान नहीं है यह भाव है। आपके मत में विषय स्थित अज्ञान ही आवरण है। कहें कि विषयगत अज्ञातत्त्व के निराकरण के लिये यह विशेषण सार्थक है तो ठीक नहीं—विषय में अज्ञातत्त्व यदि तद्विषयक ज्ञानाभाव रूप है—तब तो आद्यविशेषण से ही उसकी व्यावृत्ति सिद्ध है। अविद्या विषयरूपत्व कहें तो अभी अविद्या ही सिद्ध नहीं है—इसलिये चतुर्थ विशेषण व्यर्थ। कहें कि प्रागभावादि की व्यावृत्ति के लिये वह विशेषण है—तो वह भी ठीक नहीं—**'स्वविषयावरण पूर्वकम्'** इसी से उसकी व्यावृत्ति हो जाएगी। क्योंकि प्रमाण प्रागभाव अथवा प्रमा की उत्पत्ति का प्रतिबन्धक अदृष्ट अथवा अज्ञान से अतिरिक्त और कुछ भी आवरण नहीं है। प्रभा इत्यादि स्वनिवर्त्य पद व्यावर्त्य है। अन्यत् किञ्चित् का अर्थ स्वदेशगतपदव्यावर्त्य। अज्ञान के ही आवरण होने से अज्ञातत्व में आवरण का अभाव है। कहें कि प्रमाण प्रागभाव आदि के आवरण होने से उसको लेकर अर्थान्तर का स्वविषयावरण पूर्वकम् इस कथन से आवरण होने के कारण उसके लिये पूर्वोक्त विशेषण समूह सार्थक ही है, इस पर कहते हैं कि ऐसा होने पर आवरणत्वेन अभिमत प्रमाण प्रागभाव आदि से स्वप्रकाश ब्रह्म का आवरण संभव होने से अप्रकाशित अर्थ प्रकाशकत्व रूप हेतु में अप्रयोजकत्वापत्ति होगी। उससे व्यभिचार शंका निवर्तक अनुकूल तर्क रहितत्वापत्ति होगी। अर्थात् यह हेतु (अप्रकाशित अर्थ प्रकाशकत्व रूप) प्रागभावादि व्यतिरिक्त अज्ञानारूप आवरण पूर्वकत्व रूप साध्य के बिना भी रहे—ऐसी शंका होने पर एतत् शंका निवर्तकत्व उक्त हेतु में नहीं है।।४५।।

इस प्रकार अविद्या के अनुमान में साध्य का खण्डन हुआ॥ ९॥

अथ हेतुत्वनिरसनम्

अथ न हेतुत्वमसिद्धेः। इन्द्रियादावतिव्याप्तेश्च। अतएव नापि साक्षात्परम्परया व्यवहारहेतुत्वमात्रं नापि तमोनिवर्तकत्वम् अज्ञानान्धकारानुगततमस्त्वाभावात्। साध्यावैशिष्ट्याच्च। अतएव नावरणनिवर्त-कत्वम्। नाप्याज्ञानान्धकारान्यतरनिवर्तकत्वं साध्यावैशिष्ट्यादेव। नापि

वज्रोत्तेजिका—

हेतुत्व निरसनम्

एवं साध्यं निरस्य हेतुं दूषयति—**अथेति।** हेतौ प्रकाशकत्वं ज्ञानत्वं वा ज्ञानहेतुत्वं वा नाद्यः। दृष्टान्तेऽभावात्। प्रभायां ज्ञानत्वाभावेन साधनवैकल्यात्। न द्वितीय इत्याह—**असिद्धेरिति।** प्रमाणजन्ये प्रमाणरूपे ज्ञाने ज्ञानहेतुत्वाभावरूपोहेतुस्स्वरूपासिद्ध इत्यर्थः। **इन्द्रियादाविति।** ज्ञानहेतुत्वे सत्यपि स्वनिवर्त्यवस्त्वन्तरपूर्वकत्वाभावात्। नहि साक्षादिन्द्रियनिवर्त्यं प्रागभावादिव्यतिरिक्तवस्त्वन्तरमस्ति अज्ञानस्येन्द्रियनिवर्त्यत्वेऽपि ज्ञानद्वारैव निवर्त्यत्वं न साक्षात्। स्वनिवर्त्यत्वस्यैवात्र विवक्षितत्वादिति भावः। **अत एवेति।** इन्द्रियादेः साक्षाद्वस्तुव्यवहाराहेतुत्वे ज्ञानद्वारा

हिन्दी अनुवाद—

अथ हेतुत्वनिरसनम्

(अविद्या के अनुमान में हेतु का खण्डन)

इस प्रकार साध्य का निरास करके अब हेतु का खण्डन करते हैं। अविद्या की सिद्धि में अप्रकाशित अर्थ प्रकाशकत्व हेतु दिया गया है। इसका खण्डन करते हुए कहते हैं—**'हेतुत्वमसिद्धेः'** इस हेतु में स्वरूपासिद्ध दोष है पक्ष में हेतु के अभाव को स्वरूपासिद्ध दोष कहते हैं। भाव यह है कि हेतु में प्रकाशत्व पदार्थ क्या है? ज्ञानत्व या ज्ञान हेतुत्व? पहला पक्ष नहीं कह सकते—दृष्टान्त में इसका अभाव है। दीप की प्रभा में ज्ञानत्व का अभाव है। इस प्रकार साधन में वैकल्य होता है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—प्रमाण रूप ज्ञान (पक्ष के) में ज्ञान हेतुत्व का अभाव होने से पक्ष में हेतु का अभाव रूप स्वरूपासिद्ध है। तथा इन्द्रिय आदि में ज्ञान हेतुत्व होने से अतिव्याप्ति भी हो जाएगी। ज्ञान हेतुत्व होने पर भी स्वनिवर्त्य अन्य वस्तु पूर्वकत्व का अभाव है। साक्षात् इन्द्रिय निवर्त्य प्रागभावादि भिन्न वस्तु नहीं है। अज्ञान इन्द्रिय निवर्त्य होने पर भी उसमें ज्ञान द्वारा ही निवर्त्यत्व है न कि साक्षात्। यहाँ तो स्वनिवर्त्यत्व ही विवक्षित है—यह भाव है। अतएव अर्थात् इन्द्रिय आदि में साक्षात् वस्तु व्यवहार हेतुत्व तथा ज्ञान द्वारा घटादि व्यवहार हेतुत्व होने पर भी उक्त साध्य का अभाव होने से इन्द्रिय आदि में व्यभिचार होने से ही,

प्रकाशकशब्दवाच्यत्वमात्रं शब्दसाम्येनैव साध्यसाधने पृथिव्यादेरपि शृङ्गीत्वसाधनापत्तेः। उक्तञ्च विवरणे ज्ञानप्रकाश्यत्वादज्ञानविरोधित्वादन्य देवालोकप्रकाश्यत्वं तमोविरोधित्वं नामेति हेतोरसिद्धिश्च प्रमाणस्य ब्रह्मज्ञानस्य चिदन्याप्रकाशकत्वात्। स्वप्रकाशचितश्चाध्यासाधिष्ठान-त्वादिना सदा प्रकाशमानत्वेनाप्रकाशितत्वाभावात्। किञ्चास्यानुमितेर-प्रकाशितप्रकाशकत्वाभावेन प्रकाशितप्रकाशकत्वं वाऽप्रकाशत्वं वा स्यात्

घटादिव्यवहारहेतुत्वे च सत्यपि उक्त साध्याभावेनेन्द्रियादौ व्यभिचारादेवेत्यर्थः। **तमोनिवर्तकत्वमिति।** तमश्शब्देनाज्ञान-विवक्षायां तन्निवर्तकत्वस्य दृष्टान्ते प्रभायामभावात् साधनवैकल्यं स्यात्। अन्धकार-विवक्षायां तन्निवर्तकत्वस्य पक्षेऽसिद्धिः स्यात्। उभयानुगतस्यैकस्य तमस्त्वस्याभावादित्यर्थः। अज्ञाननिवर्त्तकत्वविवक्षायां दोषान्तरमाह—**साध्येति।** अज्ञानस्येदानीमप्यसिद्धत्वेन तद्घटितहेतोरपि सन्दिग्धत्वादिति भावः। अतएव=उक्तदोषादेव। **आवरणनिवर्तकत्वमिति।** आवरणशब्देनान्धकारविवक्षायां स्वरूपासिद्धिः। अज्ञानविवक्षायां साधनवैकल्यं साध्यावैशिष्ट्यञ्च। उभयानुगन्तञ्चैकावरणत्वं नास्त्येवेत्यर्थः। **अज्ञानेति।** साध्यावैशिष्ट्यादेवेति। साध्यवत्तद्घटितहेतोः समुग्धत्वादितिभावः। **नापिति।** ज्ञानप्रभयोर्नानुगतमेकप्रकाशकत्वमस्तीत्यर्थः। प्रकाशशब्दप्रयोगस्तावदस्तीतिचेत्तत्राह—**शब्देति।** आलोकसम्वेदनयोः प्रकाशत्वे

न तो साक्षात् या परम्परया व्यवहार हेतुत्व मात्र है ना ही तमो निवर्तकत्व है। तम शब्द से अज्ञान की विवक्षा में तन्निवर्तकत्व दृष्टान्त के—प्रभा में अभाव होने से साधन में विकलता होगी, अन्धकार विवक्षायां उसके निवर्तकत्व की पक्ष में असिद्धि होगी। उभयानुगत तमत्व का (अन्धकारत्व) अभाव है—यह भाव है। अज्ञान निवर्तकत्व विवक्षा में दोषान्तर कहते हैं—"**साध्यावैशिष्ट्यात्**" अभी तक अज्ञान की ही सिद्धि न होने से तद्घटित हेतु भी सन्दिग्ध है। उक्त दोष के कारण ही उसमें आवरण निवर्तकत्व भी नहीं है। यहाँ आवरण शब्द से अन्धकार की विवक्षा में स्वरूपासिद्धि अज्ञान विवक्षा में साधन वैकल्य तथा साध्य का अवैशिष्ट्य भी। उभयानुगत एकावरणत्व तो है ही नहीं और ना ही ज्ञान और प्रभा में अनुगत एक प्रकाशत्व ही है। यदि कहें कि प्रकाश शब्द का प्रयोग तो है—इस पर कहते हैं—ना ही प्रकाश शब्दवाच्यत्व मात्र है शब्द साम्य मात्र से है। यदि साध्य साधन हो तो पृथिवी आदि में भी शृंगीत्व के साधन की आपत्ति होगी आलोक और सम्वेदन के प्रकाशत्व में वैलक्षण्य है—इस पर विवरण ग्रन्थ की सम्मति है—विवरण में कहा है—"ज्ञान प्रकाश्य होने एवं अज्ञान विरोधी होने के कारण आलोक प्रकाश्यत्व

तथात्वे चोभयथापि वैयर्थ्यमेव। तत्प्रकाशकत्वे बाधो व्यभिचारो वा, अस्याः स्वविषयावरणानिवर्तकत्वात्। अथ दृष्टान्तेऽपि द्वितीयादि-प्रभाया अन्धकारेऽनुत्पन्नत्वेन प्रथमपदस्य वैयर्थ्यात्। दृष्टिसृष्टिमतेतूभयोः वैकल्याच्च। किञ्च घटादिविषयकालोकप्रकाशस्तमोविरोधीति

वैलक्षण्यमस्तीत्यत्र विवरणसम्मतिमाह—**उक्तञ्चेति**। अज्ञानविरोधित्वात्—ज्ञान-प्रकाशकत्वात्। ज्ञाननिष्ठप्रकाशकत्वात् अन्यदेव तमोविरोधित्वरूपमालोकनिष्ठं प्रकाशकत्वं नामेत्यर्थः। ननु चिन्मात्रस्य सदा प्रकाशमानत्वेपि तद्गतविशेषस्य सदाप्रकाशमानत्वाभावान्नासिद्धिरित्यत उक्तं **प्रमाणस्येति**। वेदान्तजन्यचरमवृत्ति-रूपस्येत्यर्थः। **चिदन्येऽति**। निष्प्रकारकत्वादिति भावः, **अध्यासाधिष्ठानत्वादिति**। प्रकाशमानस्यैवाधिष्ठानत्वादिति भावः। प्रमाणज्ञानं स्वप्रागभाव व्यतिरिक्तेत्यादि रूपायामस्यामनुमितौ व्यभिचारं बाधञ्चवक्तुमाह—**किं चेति**। अस्यामेवानुमिताव-प्रकाशितार्थप्रकाशकत्वं नास्त्युतास्तीतिविकल्प्याद्ये दोषमाह। अप्रकाशितेति विशेषणविशिष्टस्य हेतोरभावे प्रकाशितार्थप्रकाशकत्वमेव स्यात् तथाचानुमितिर्व्यर्था सिद्धसाधनतापत्तेः। विशेष्याभावाद्विशिष्टहेतोरभावे सर्वथा प्रकाशकत्वमेव न स्यात् तथाचाज्ञानसिद्धिरेव न स्यात् अनुमितेः साध्याप्रकाशकत्वात्। अतोऽनुमितिर्व्यर्था

वस्तु भिन्न ही है तमो विरोधित्व नामक वस्तु—इस प्रकार हेतु की असिद्धि भी है। प्रमाणभूत ब्रह्म ज्ञान चित् से अन्य का अप्रकाशक है। प्रमाणभूत का अर्थ है वेदान्तजन्य चरम वृत्ति रूप। स्वप्रकाशरूप चित् के अध्यास में अधिष्ठानत्व आदि से सदा प्रकाशमान होने के कारण उसमें अप्रकाशितत्व नहीं है। दूसरी बात अविद्या साधक 'प्रमाण ज्ञान' स्वप्रागभाव व्यतिरिक्तेत्यादि स्वरूप इस पूर्वोक्त अनुमान में व्यभिचार एवं बाध दोष भी है—यह बात—'**किञ्चास्यानुमिते.......**' इस ग्रन्थ से कह रहे हैं। यहाँ इस अनुमिति में अप्रकाशित अर्थ प्रकाशकत्व नहीं है वा है? ऐसा विकल्प उपस्थित करके आद्य पक्ष में दोष कहते हैं—अप्रकाशित प्रकाशकत्वाभावेन........अर्थात् अप्रकाशित इस विशेषण से विशिष्ट हेतु के अभाव में प्रकाशित अर्थ प्रकाशत्व ही होगा। तब तो अनुमिति ही व्यर्थ है—सिद्ध साधनतापत्ति। विशेष्य के अभाव से विशिष्ट हेतु के अभाव में सर्वथा प्रकाशकत्व ही नहीं होगा। तब तो अज्ञान की सिद्धि ही नहीं होगी—अनुमिति साध्य का अप्रकाशक है—इसलिये अनुमिति व्यर्थ होगी—द्वितीय पक्ष में दोष—यदि अप्रकाशित अर्थ प्रकाशकत्व माने तो बाध और व्यभिचार दोष होता है—कारण यह स्वविषयक आवरण का अनिवर्तक है। यहाँ भी प्रश्न उठता है कि यह अनुमिति पक्षीभूत प्रमाण शब्द से विवक्षित है या नहीं? नहीं वाले पक्ष में पक्ष बहिर्भूत होने से इसी अनुमिति

तन्निवर्तकोऽस्तु ज्ञानप्रकाशस्तु नाज्ञानविरोधी घटाधिष्ठानचैतन्यस्याज्ञाना-विरोधित्वाद्वृत्तेस्त्वनधिष्ठानत्वेन तज्ज्ञानत्वाभावात्। त्वन्मते ज्ञानज्ञेययो-राध्यासिकसम्बन्धाङ्गीकारात्तस्योपपत्तिः पूर्वमेव निरस्ता। किञ्चानादित्वे सति भावत्वं न निवर्त्यनिष्ठम् अनादिभावमात्रवृत्तित्वात् आत्मत्ववत्।

स्यात्। अनुमितेः साध्यज्ञप्त्यर्थत्वादिति भावः। द्वितीये दोषमाह—**तत्प्रकाशकत्वे चेति।** अनुमितेरप्रकाशकत्वे चेत्यर्थः। अत्रापि प्रष्टव्यमियमनुमितिः पक्षीभूतप्रमाणशब्देन विवक्षितानवेति, नेति पक्षे पक्षबहिर्भूतत्वादस्यामेवानुमितौ व्यभिचारः स्यात् आद्ये ऽस्यानुमितेः पक्षान्तर्भावाद्बाधः स्यादित्यर्थः। व्यभिचारं बाधञ्च साध्याभावोपपादनेनोप-पादयति—**अस्या इति।** अस्याः अनुमितेः। स्वविषयभूतं यदज्ञानं तदावरणनिवर्तकत्वं नास्ति नह्यज्ञानावरणमज्ञानमस्तीत्यर्थः। हेतुं दूषयित्वा दृष्टान्तं निरस्यति। **अथेति।** द्वितीयादिप्रभायामुभयवैकल्यवारणाय तद्विशेषणमावश्यकमितिचेन्न, अन्धकार इत्युक्त्यैव तन्निरासात् नहि द्वितीयादिप्रभा अन्धकारे उत्पन्ना किन्त्वाद्यैवेत्याह **द्वितीयादिप्रभाया इति। दृष्टिसृष्टीति।** आवरणभूतान्धकारस्य दृष्टिसृष्टित्वेन दृष्टिनिवृत्तावेव निवृत्यङ्गीकारात् प्रभायां तन्निवर्तकत्वानङ्गीकारेण स्वनिवर्त्यवस्त्वन्तरपूर्वकत्वाभावात्साध्यवैकल्यम्। प्रभाया अपि दृष्टिसृष्टित्वेन दृष्टेरेवार्थप्रकाशकतया प्रभायां तदभावात्साधनवैकल्यमित्यर्थः। उभयोःसाध्यसाधनयोः। स्वविरोधिनिवर्तकत्वञ्चोक्तविद्यानुमानेउपाधिरित्याह—**किं चेति। आलोकप्रकाश इति।** दृष्टान्तीभूतालोकरूपप्रकाश इत्यर्थः। तन्निवर्तकः=

में व्यभिचार होगा, प्रथम पक्ष में इस अनुमिति के पक्ष में अन्तर्गत होने से बाध होगा। इस प्रकार इस अनुमिति के स्वविषयभूत जो अज्ञान उसके आवरण का निवर्तकत्व नहीं है, इस प्रकार (अज्ञान) साधक हेतु का खण्डन कर अब अज्ञान साधक अनुमान में दिये गये दृष्टान्त का खण्डन करते हैं—

दृष्टान्त है—अन्धकार में प्रथम उत्पन्न दीप प्रभा यह जैसे अप्रकाशित अर्थ का प्रकाशक है।

उक्त अनुमान में अन्धकार व्याप्त देश में प्रथम क्षण में उत्पन्न प्रभा दृष्टान्त दिया गया है। अब इस दृष्टान्त का भी खण्डन करते हैं—कहते हैं—दृष्टान्त में भी द्वितीयादि प्रभा के अन्धकार में अनुत्पन्न होने से प्रथम पद का वैयर्थ्य है। (कहें कि द्वितीयादि प्रभा में उभय वैकल्य निवारणार्थ प्रथम विशेषण आवश्यक है तो ऐसा नहीं कह सकते—उसका तो अन्धकार शब्द से ही निवारण हो जाएगा—क्योंकि द्वितीयादि प्रभा अन्धकार में उत्पन्न नहीं है किन्तु पहली प्रभा है) दृष्टि सृष्टि मत में उभय का वैकल्य है अर्थात् दृष्टि सृष्टिवाद में आवरणभूत अन्धकार के दृष्टि सृष्टि होने से दृष्टि की निवृत्ति में अन्धकार की निवृत्ति होगी—प्रभा में अन्धकार निवर्तकत्व स्वीकार

अभावविलक्षणत्वं न निवर्त्यनिष्ठम् अनाद्यभावविलक्षणमात्रवृत्तित्वात् आत्मत्ववत्। अनादित्वं नावरणनिष्ठम् अनादिमात्रवृत्तित्वात् प्रागभावत्ववदित्यादिना सत्प्रतिपक्षत्वाच्चाभासत्वं बोध्यमित्यनुमानासम्भवः। नापि

स्वविरोधितमोनिवर्तकः। ज्ञानप्रकाशः=ज्ञानरूपप्रकाशः। **नाज्ञान इति।** तथाचोक्तसाध्यवत्यालोके स्वविरोधितमोनिवर्तकत्वसद्भावेन साध्यव्यापकत्वात्। पक्षीभूते प्रमाणज्ञान उक्तहेतुमति स्वविरोधिनिवर्तकत्वरूपोपाध्यभावेन साधनाव्यापकत्वाच्चायमुपाधिरिति भावः। ननु साधनव्यापकोऽयमुपाधिः ज्ञानस्याज्ञानविरोधित्वेन स्वविरोध्यज्ञाननिवर्तकत्वादिति चेत् अत्र प्रष्टव्यम्—अज्ञानविरोधिज्ञानं किं घटाधिष्ठानचैतन्यं, वृत्तिर्वा, तत्प्रतिबिम्बितचैतन्यं वा नाद्य इत्याह—**घटाधीति।** घटाधिष्ठानचैतन्यस्यविरोधित्वे तत्राज्ञानस्य निवृत्तत्वात् सर्वदा सर्वेषां घटप्रकाशापात इत्यर्थः। नद्वितीयतृतीयावित्याह—**वृत्तेरिति।** उभयोरपि मिथ्यात्वेनाध्यस्ताधिकतत्त्वावेदकत्वाभावेनाज्ञानत्वादितिभावः। **तज्ज्ञानत्वेति।** घटादिज्ञानत्वाभावादित्यर्थः। अनधिष्ठानत्वेऽपि तज्ज्ञानत्वमस्त्वित्यत आह—**त्वन्मतइति।** ज्ञेयस्याधिष्ठानभूते ज्ञानएवाध्यासाङ्गीकारादिति भावः। तस्य= आध्यासिकसम्बन्धस्य। प्रमाणज्ञानमित्यनुमानेन ज्ञाननिवर्त्यमज्ञानं साधितं तत्प्रतिरोधो वक्ष्यमाणैरनुमानैः साध्यते। **अनादित्वेसतीति**—अनादिभावत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वं लक्षणं

नहीं है, फिर तो स्वनिवर्त्य वस्त्वन्तर पूर्वकत्व के अभाव से साध्य का वैकल्य। इसी तरह प्रभा भी दृष्टि सृष्टि ही होने से दृष्टि ही अर्थ का प्रकाशक भी है प्रभा में अर्थ प्रकाशकत्व का अभाव है—इसलिये साधन वैकल्य भी है—इस तरह उभय वैकल्य है। दूसरी बात यहाँ स्वविरोधि निवर्तकत्व उक्त अविद्यानुमान में उपाधि है। उपाधि हेतु में व्यभिचार का अनुमापक होता है—यही कहते हैं—'**किञ्च घटादि विषयकलोकप्रकाश**'........ग्रन्थ से अर्थात् घटादि विषयक दृष्टान्तीभूत आलोक रूप प्रकाश तम विरोधी है, इसलिये वह स्वविरोधी तम का निर्वतक है, पर ज्ञान रूप प्रकाश अज्ञान का विरोधी नहीं है, कारण घटाधिष्ठान चैतन्य अज्ञान का अविरोधी है, इस तरह उक्त साध्याधिकरण आलोक में स्वविरोधि तमोनिवर्तकत्व का सद्भाव होने से उसमें साध्यव्यापकत्व है। उक्त हेत्वाधिकरण और पक्षीभूत प्रमाण ज्ञान में स्वविरोधि निवर्तकत्व उपाधि अभाव से साधन का अव्यापकत्व कहें कि यह उपाधि साधन व्यापक है, कारण ज्ञान अज्ञान का विरोधी होने से यह स्वविरोधी अज्ञान का निवर्तक है? तो कहते हैं—ऐसा नहीं कह सकते—हम पूछते हैं—अज्ञान विरोधी ज्ञान क्या घटाधिष्ठान चैतन्य है? या वृत्ति है अथवा वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य? पहला पक्ष कह नहीं सकते—कारण घटाधिष्ठान चैतन्य के विरोधी होने पर उसमें अज्ञान के निवृत्त होने से सदा सर्वदा सबको घट का प्रकाश

नासदासीन्नोऽसदासीत्तम आसीत्यादिश्रुतेरत्रप्रामाण्यमाशासनीयम्। अन्यपरत्वात्। सदसच्छब्दौ पंचभूतपरौ। ''यदन्यद्वायोश्चान्तरीक्षाच्चैतत्सद्वायुरन्तरिक्षं चासदिति'' श्रुत्यन्तरात्। तथैव तमश्शब्दः प्रकृतिपरः अक्षरं तमसि लीयत'' इति श्रुत्यन्तरात्। प्रसिद्धपरत्वे तु नासदासीदित्य-

तत्रानादिभावस्याज्ञानस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वं यत्साध्यते तदभावोऽनेनानुमानेन समर्थ्यते। अज्ञानलक्षणान्तर्गतं भावत्वमभावनिवृत्तिरेवाज्ञानस्य भावाभावविलक्षणत्वादित्याशयेनाभावविलक्षणत्वमिति पक्षनिर्देशः कृतः। अनुमानद्वयेऽपि भावत्वस्य वाऽभावविलक्षणत्वस्य वा निवर्त्यघटादिनिष्ठत्वेन बाधवारणायानादित्त्वेसतीत्युक्तम्। अनादित्वमात्रस्य निवर्त्यप्रागभावनिष्ठतया बाधवारणाय भावत्वपदम्। घटत्वेव्यभिचार वारणायानादिपदं प्रमेयत्वे व्यभिचारवारणाय मात्रपदम् द्वितीयहेतावपि वृत्तित्वमात्रं प्रागभावत्वे व्यभिचार्यतो भावपद्म। प्रमेयत्वे व्यभिचारवारणायमात्रपदम् निवर्त्यत्वस्य घटादिनिष्ठतया बाधवारणायानादिपदम्। अन्यत् पूर्ववत् स्वविषयावरणत्वघटितसाध्यविरोधिप्रतिपक्षमाह—**अनादित्वमिति!** अनाद्यावरणं नास्तीत्यनेनानुमानेन सिद्धमिति दृष्टव्यम्। वृत्तित्वमात्रस्यान्धकारे व्यभिचारित्वादनादिपदम्। प्रमेयत्ववारणाय मात्रपदम्। इत्यविद्यानुमाने सत्प्रतिपक्षस्योत्थापनम् भावरूपा-

होगा यह आपत्ति है। दूसरा तथा तीसरा विकल्प भी नहीं कह सकते, यही कह रहे हैं—'**वृत्तेस्त्वनधिष्ठानत्वेन......**' से अर्थात् दूसरे विकल्पक वृत्ति या वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य है—इन दोनों में मिथ्या होने से अध्यस्त से अधिक तत्त्व का आवेदक न होने से उनमें अज्ञानत्व है। तत्ज्ञानत्वाभावात् माने घटादि ज्ञानत्व का अभाव है। कहें कि अधिष्ठान न होने पर भी ज्ञानत्व है। इस पर कहते हैं—'**त्वन्मते ज्ञानज्ञेयपो......**' आपके मत में ज्ञेय का अधिष्ठानभूत ज्ञान में ही अध्यास स्वीकार करने से उसमें आध्यासिक सम्बन्ध की उपपत्ति का मैंने पहले ही खण्डन कर दिया है।

पूर्वोक्त '**प्रमाणज्ञानम्.........**' इत्यादि अनुमान से ज्ञान निवर्त्य अज्ञान की सिद्धि की थी अब वक्ष्यमाण अनुमान से उसका पुनः खण्डन करते हैं—अनादि भावत्वे सति ज्ञान निवर्त्यम् अज्ञानत्वम्—अर्थात् अनादि भाव पदार्थ होकर जो ज्ञान निवर्त्य होता है—वह अज्ञान है—अविद्या है—ऐसा मायावादी का कथन है। इसको अनादि भावरूप अज्ञान का ज्ञान निवर्त्यत्व जो मायावादी सिद्ध करते हैं—उसके अभाव का इस अनुमान से समर्थन करते हैं—अर्थात् अविद्या के ज्ञान निवर्त्यत्व का खण्डन—अनुमान का आकार है पूर्वोक्त अनुमान में कहा गया था कि प्रमाणज्ञान स्वनिवर्त्य वस्त्वन्तर पूर्वक होता है अर्थात् अविद्या प्रमा ज्ञान से निवर्त्त्य होता है। इसी बात का खण्डन करते है अनादित्वेसतिभावत्वं न निवर्त्यं निष्ठम् इत्यादि

प्रसक्तप्रतिषेधत्वापातात् तदानीमित्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गाच्च। नोसदासीदि-त्यनेनैव सिद्धत्वे नासीद्रजइत्यादेर्वैयर्थ्याच्च। न चाविद्यायामन्तरेवर्तमाना

ज्ञानसद्भावे श्रुतेः प्रामाण्यं निरसितुमाह—**नापीति**। श्रुतिमुदाहरति—**नासदासीदिति**। श्रुतिं भावरूपाज्ञानापरतया समर्थयति। अन्यपरत्वादिति। श्रुतिं व्याचष्टे—**सदसच्छब्दा-विति**। उक्तार्थे श्रुत्यनुरोधमाह—**यदन्यद्वायोरिति**। ननु तम आसीदिति श्रुतेर्व्यावहारिकसत्त्वपरतया सद्वैलक्षण्यपरतया वोपपत्तेर्न पारमार्थिकसत्यत्वपरत्वमित्यत आह—**तमश्शब्दइति**। तमश्शब्दस्य प्रकृतिपरत्वे श्रुत्यनुरोधमाह—**अक्षरमिति**। न चास्तु मिथ्याभूता प्रकृतिरिति वाच्याम्। उदाहृतवाक्ये प्रकृतेर्मिथ्यात्वप्रतिपादक शब्दाभावात्। प्रत्युत वाक्यान्तरे प्रकृतेः सत्यत्वोक्तेस्तथाहि। "गौरनाद्यन्तवती" नित्या सततविक्रिया गोःप्रकृतिः। अनाद्यन्तवती आद्यन्तवती न भवतीत्यर्थः। अन्तशून्यत्वोक्त्या ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावरूपस्य मिथ्यात्वाभावस्याभिधानात्। तथा च ज्ञाननिवर्त्यत्वशून्यत्वात् सा न मिथ्या भवितुमर्हतीतिभावः। असतो निषेधो न घटते प्रसक्तस्य प्रतिषेधो भवति नाप्रसक्तस्येतिन्यायादित्याशयेनाह—**प्रसिद्धपरत्वइति**। अत्र=अज्ञानसद्भावे। अविद्यामिति श्रुतेरयमर्थः। काम्यकर्मादिलक्षणायामविद्यायां मध्ये घनीभूत इव तम आसीदिति। उक्तार्थं श्रुतिस्मृतिमुखेन समर्थयति—**अविद्ययेति**। विद्याङ्गतयाचोदितकर्मणा मृत्युं विद्योत्पत्ति प्रतिबन्धकीभूतं पुण्यपापरूपं प्राक्तनकर्म तीर्त्वा निर्विशेषमुल्लङ्घ्य—

अनादित्वे सति भावत्वं न निवर्त्यनिष्ठम् अनादि भाव मात्र वृत्तित्वात् आत्मत्ववत् अर्थात् जो अनादि भाव पदार्थ होता है वह निवर्त्य नहीं होता उसका नाश नहीं होता जैसे आत्मा अनादि भाव पदार्थ है—उसका कभी नाश नहीं होता। दूसरा अनुमान है—अभाव विलक्षणत्वं न निवर्त्य निष्ठम् अनादि अभाव विलक्षण मात्र वृत्तित्वात् आत्मत्ववत्—जो अभाव विलक्षण होता है—वह किसी से निवर्त्य नहीं होता, क्योंकि अभाव विलक्षणत्व अनादि अभाव विलक्षण मात्र वृत्ति धर्म है—जैसे आत्मत्व अज्ञान लक्षणान्तर्गत भावत्व अभाव निवृत्ति ही है क्योंकि अज्ञान भाव अभाव दोनों से विलक्षण है—इसी आशय से अभाव विलक्षणत्वं ऐसा पक्ष निर्देश है यहाँ दोनों अनुमानों में भावत्व या अभाव विलक्षणत्व निवर्त्य घटादिनिष्ठ होने से बाध वारण के लिये अनादित्वे सति विशेषण किया गया है। अनादित्व भाव धर्म निवर्त्य प्रागभाव निष्ठ होने से बाधवारण के लिये भाव पद दिया। घटत्व में व्यभिचार वारण के लिये अनादि पद दिया। प्रमेयत्वेन में व्यभिचार वारण के लिये मात्र पद है। निवर्त्यत्व घटादि निष्ठ होने से बाध वारण के लिये अनादि पद। अब स्वविषयावरण घटित साध्य के विरोधी सत्प्रति पक्ष दोष भी उक्त अनुमान में दिखाते हैं—पहला अनुमान था कि प्रमाण ज्ञान स्वावरण विषयाभूत वस्त्वन्तर पूर्वक होता है—इस स्वविषयावरण घटित साध्य विरोधी प्रतिपक्ष (सत्प्रतिपक्ष)

इति श्रुतेरत्र प्रमाणत्वमिति वाच्यम्। अविद्याशब्दस्य कर्मपरत्वात्। "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" इति श्रुतौ अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीयाशक्तिरिष्यते। यया क्षेत्रज्ञसक्तिः सम्वेष्टितेत्यादिस्मृतौ च कर्मण्यविद्याशब्दप्रयोगदर्शनादिति सङ्क्षेपः॥ ४६॥

विद्यया=परमात्मोपासनरूपया, अमृतमश्नुते मोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः। यदुक्तं मिथ्याभूतस्य भ्रमस्य कादाचित्कत्वेन सोपादानत्वात्तदनुगुणं मिथ्याभूतमुपादनमङ्गीकार्यं सैवाविद्येति भ्रमोपादनत्वान्यथानुपपत्याऽविद्यासिद्धिरिति भावरूपाज्ञानसद्भावेऽर्थापत्तिप्रमाणमित्याशयेन शङ्कते—**नन्विति।** भ्रमस्य निरुपादानत्वान्नतदुपादानत्वमज्ञानस्य सिद्ध्य तीत्याशयेनोक्तां शङ्कां व्युदस्यति—**नेति।** तस्याः=अर्थापत्तेः। अत्र भ्रमपदेनाज्ञानमर्थोवा विवक्षितो नाद्य इत्याह—**द्वितीयइति। निरस्तत्वादिति॥ ४६॥**

है—'**अनादित्वं नावरणनिष्ठम् अनादिमात्र वृत्तित्वात् प्रागभावत्ववत्**' इत्याकारक दूसरी कोटि का अनुमान उपस्थित होने से यहां सत्प्रतिपक्ष दोष भी होता है—इस प्रकार शाङ्कर सम्मत अविद्या की अनुमान से भी सिद्धि नहीं हो सकती।

कहें कि "**नासदासीन्नोऽसदासीत् तम आसीत्**" न सत् था, न असत् था, किन्तु तम (अविद्या) था यह श्रुति प्रत्यक्ष प्रमाण है—अविद्या के सद्भाव में? तो ऐसा भी नहीं कह सकते—यह श्रुति अन्यपरक है सत् असत् शब्द यहाँ पञ्चभूत परक है। इसमें "**यदन्यद्वायोश्चान्तरीक्षाच्चैतद्सद् वायुरन्तरिक्षं चासत्**" श्रुत्यन्तर प्रमाण है। इसी प्रकार तमस् शब्द यहाँ प्रवृत्तिपरक है इसमें '**अक्षरं तमसि लीयते**' यह श्रुति प्रमाण है। कहें कि मिथ्याभूत प्रकृति है—तो ऐसा नहीं कह सकते—उदाहृत वाक्य में प्रकृति के मिथ्यात्व प्रतिपादक कोई शब्द नहीं है। बल्कि दूसरे वाक्य में प्रकृति को सत्य कहा गया है—जैसा कि श्रुति वचन है—"**गौरनाद्यन्तवती**" तथा "**नित्या सतत विक्रिया**" यहाँ गो शब्द प्रकृतिवाचक है—यह आदि अन्त से रहित है। अन्य रहित कथन से ज्ञान निवर्त्याभावरूप मिथ्यात्वाभाव कहा गया है। इस प्रकार ज्ञान निवर्त्य शून्य होने से वह मिथ्या नहीं हो सकती। प्रसक्त का ही प्रतिषेध होता है अप्रसक्त का नहीं—इस न्याय से असत् का निषेध नहीं घटता है—इसी आशय से कहते हैं—प्रसिद्ध परक मानने पर अप्रसक्त का प्रतिषेध रूप दोष की आपत्ति होगी, तथा तदानी शब्द का वैयर्थ्य का प्रसङ्ग होगा। दूसरी बात "**नोऽसदासीत्**" इतने से ही कार्य सिद्ध हो जाने से '**नासीद् रजः**' इत्यादि शब्दों का वैयर्थ्य होगा। यदि कहें कि "**अविद्यायामन्तरे वर्तमाना**" यह श्रुति अज्ञान सद्भाव में प्रमाण है तो ऐसा नहीं कह सकते—अविद्या शब्द यहाँ कर्मपरक है। कारण "**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते**" इस श्रुति में तथा "**अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते**" एवं "**यया क्षेत्रज्ञ शक्तिः सम्वेष्टिता**" इत्यादि स्मृति में भी कर्म में अविद्या शब्द का प्रयोग देखा गया है। इति सङ्क्षेपः ॥४६॥

श्रुतेरनिर्वाच्याविद्यापरत्वनिराकरणम् ननु भ्रमस्य निरुपादानत्वासम्भवात्तत्सिद्धयेऽवश्यं तदुपादानमज्ञानं कल्प्येदित्यर्थापत्तेस्तत्र मानत्वमिति चेन्न, तस्या द्वितीयाज्ञानलक्षणनिरासेनैव निरस्तत्वात् किञ्च

वज्रोत्तेजिका— अर्थाज्ञानस्य भ्रमस्य भावविलक्षणत्वेन निरुपादानत्वादसम्भव इति प्राक् निरस्तत्वादित्यर्थः। यदि भ्रमपदेनाज्ञानमुच्यते तदान्तःकरणस्यैव तदुपादानत्वसम्भवेनार्थापत्तेरन्यथोपपत्तिसम्भवे तया नाज्ञानं सिद्ध्यतीतिभावः। द्वितीयं निराकरोति—**किं चेति।** घटादौ दृष्टत्वादित्यर्थः। सोपादानत्वस्य सकर्तृकत्वव्याप्यत्वात्तदङ्गीकारे सकर्तृकत्वमप्यङ्गीकार्यं स्यात्। ओमिति चेदत्र प्रष्टव्यं

हिन्दी अनुवाद— यदि कहें कि मिथ्याभूत भ्रम कादाचित्क होने से सोपादान है— इसलिये उसके अनुरूप उनका कोई मिथ्याभूत उपादान स्वीकार करना पड़ेगा। वही अविद्या है। भ्रम के उपादानत्व की अन्यथा अनुपपत्ति होने से अविद्या की सिद्धि होती है। इस प्रकार भावरूप अज्ञान के सद्भाव में अर्थापत्ति प्रमाण हो सकता है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, अर्थापत्ति का द्वितीय अज्ञान लक्षण के खण्डन से ही खण्डन हो जाता है। अर्थात् यहाँ भ्रम पहले अज्ञान या अर्थाज्ञान विवक्षित है? अर्थाज्ञानरूप भ्रम के भाव विलक्षण होने से निरुपादान होने के कारण असंभव है— इस प्रकार अज्ञान के लक्षण के निरास से ही—अर्थापत्ति का खण्डन होता है। यदि भ्रम पद से अज्ञान कहते हैं तो तब अन्तःकरण में ही उसका उपादानत्व संभव होने से अर्थापत्ति की अन्यथा उपपत्ति संभव होने से अर्थापत्ति द्वारा अज्ञान सिद्ध नहीं होता है। अब द्वितीय का निराकरण करते हैं—"**किञ्च शुक्तिरूप्यं...........**" इत्यादि ग्रन्थ से अर्थात् सोपादानत्व सकर्तृकत्व व्याप्य होता है—इस प्रकार यदि उसे सोपादान मानेंगे तो उसे सकर्तृक भी मानना पड़ेगा—यदि इसे स्वीकार करते हैं तो— पूछेंगे—वह कर्ता कौन है—वह ईश्वर या जीव? इन दोनों में कोई भी कर्ता नहीं हो सकता शुक्ति रूप्य नहीं है—ऐसा जानने वाले ईश्वर द्वारा उसका स्रष्टृत्व संभव नहीं— दूसरा भी नहीं हो सकता, अनुभव विरुद्ध है। भावरूप अन्य अर्थापत्ति की आशङ्का करके कहते हैं—"**नापि**" ना ही निर्विकार ब्रह्म की ही श्रौत जगत् के उपादान के लिये अविद्या की कल्पना होगी। जगत् के उपादानत्व की अन्यथा अनुपपत्ति होने से अन्य उपपत्ति कहते हैं कि परमेश्वर से अधिष्ठित प्रकृति अपर नामक सत्य स्वरूप त्रिगुणात्मक मायारूपी द्रव्य ही उसका उपादान श्रुति से सिद्ध है। अज्ञान अनादि होने से निरवयव है—क्योंकि सावयव मानने पर उसका अनादित्व भङ्ग होता है— निरवयव मानें तो ब्रह्म की तरह परिणाम संभव नहीं जो सावयव होता है—वह

शुक्तिरूप्यं सोपादानञ्चेत् सकर्तृकं भवेन्नचेशो जीवो वा तस्य कर्त्तेति युज्यते नापि निर्विकारस्य ब्रह्मणः श्रौतजगदुपादानार्थं तत्कल्पनमिति

स कर्त्ता ईश्वरो वा जीवो वा नाद्य इत्याह। न चेश इति शुक्तिरूप्यं कालत्रयेऽपि नास्तीति जानत ईश्वरस्य तत्स्रष्ट्रत्वायोगात्। न द्वितीयः। अनुभवविरुद्धत्वादित्याशयेनाह। **न चेति।** भावरूपाज्ञानसाधकार्थापत्यन्तरमाशङ्क्य निराकरोति—**नापीति। श्रौतेति।** यतो वा इमानीत्यत्र पञ्चम्या अपादानत्वमर्थः। ''अपादाने पञ्चमीति'' श्रवणात्। उपादानत्वमेवास्यापादानत्वमिष्यते। एवं श्रुतमुपादानत्वं निरवयवत या निर्विकारस्य विकृत होता है।

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

''श्री श्री निवासद्रुहिणेशसमीऽयकीर्ते.........व्रजवल्लवीश'' इस श्लोक में आठ संबोधन हैं। इसमें प्रथम श्री शब्द से लक्ष्मी रूपिणी रुक्मिणी का वैशिष्ट्य बता कर द्वितीय श्री शब्द से व्रज गोपियों में प्रधान श्री वृषभानुजा राधा का वैशिष्ट्य बताया है। इन दोनों का निवास श्रीकृष्ण पद भाव है। यहाँ 'कृष्णात्मिका जगत् कभी मूलप्रकृतिरूपिणी। व्रजस्त्रीजन सम्भूतश्रुतिभ्यो ब्रह्मसंगतः' इस मन्त्र से इन रुक्मिणी एवं व्रज स्त्री के साथ श्री गोपालाख्य परब्रह्म पुरुषोत्तम का नित्य सम्बन्ध ध्वनित होता है। द्रुहिण चतुर्मुख ब्रह्म तथा ईश महादेव शंकर द्वारा भली-भाँति जिनकी कीर्ति का गान हुआ है........उस भाव का संबोधन है। इससे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का ब्रह्मा तथा शिव आदि देवताओं से श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है। ॐ नमो विश्व स्वरूपाय विश्व स्थित्यन्त हेतवे। विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमोनमः इत्यादि मन्त्रों द्वारा चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का वचन प्रसिद्ध ही है। महाभारत में राजधर्म के वर्णन में वर्णन में वैशम्पायन कहते हैं—'ततो सः भगवान् रुद्रः सर्वान् विस्मापयन्निव। स्तुत्वा प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम्। अर्घ्यामि श्रुति पुरतां मुनीनां शृण्वता सदा। नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि। यस्य भासा जगत् सर्वं भासते नित्यमच्युत' यहाँ से लेकर ''भूयोभूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन'' इत्यन्त स्तोत्र से शिव द्वारा उनकी स्तुति प्रसिद्ध अस्पृष्ट दोष —जो अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश आदि दोषों का जिनमें लेश भी नहीं है—ऐसी जिनकी महिमा है। जैसा श्रुति वचन है—'य आत्मा अपहृत पाप्मा बिजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः' 'क्लेशकर्म विपाकाद्यैरस्पृष्टस्याखिलेशितुः। ज्ञानादि षाड्गुण्यनिधेश्चिन्त्यविमत्सरस्मिताः। परः पराणां सकलान् यत्र क्लेशाशयः सन्ति परावरेशे' ऐसा पराशर ऋषि का भी वचन है। श्रुतियों के सार उपनिषदों के जो वेद्य है—'तन्त्वोपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' ऐसा श्रुति वाक्य है। इससे शास्त्र योनित्वाधिकरण भी स्पष्ट हुआ है। जो संसार बन्धन से

वाच्यम्। सत्यस्य परमेश्वराधिष्ठितस्य त्रिगुणात्मकमायाद्रव्यस्य प्रकृत्यपरनामकस्यैव तदुपादानस्य श्रुत्यासिद्धत्वात्। अज्ञानस्यानादित्वेन

ब्रह्मणो न युक्तमिति तन्निर्वाहायाविद्याकल्प्यत इति शङ्कितुराशयः। तत्कल्पनम्=अविद्याकल्पनम्। जगदुपादानत्वान्यथानुपपत्तेरन्यथोपपत्तिमाह—**सत्यस्येति।** तदुपादानस्य=जगदुपादानस्य। अज्ञानस्य सावयवत्वेऽनादित्वभङ्गो, निरवयवत्वे

मुक्त पुरुषों के प्राप्य है। इससे ''मुक्तोपसृत्य व्यपदेशात्'' इस सूत्र का अर्थ गुण सागर—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, सौहृद्य वात्सल्य आदि गुणों के सागर—इन विशेषणों से परमात्मा भी अशेष कल्याणमय गुण गणों का आश्रय बताया है—इन्हीं सभी गुणों को लक्ष्य करके भगवान् बादरायण ने—'विवक्षितं गुणोपपत्तेश्च' सूत्र बनाया। इसके अतिरिक्त ''परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च'' सत्यकाम.....'सत्य संकल्पः सर्वांल्लोकानीशते ईशनीभिः''सर्वस्य शरणं सुहृत्' विष्णोर्नुकं प्रावोचत यः पार्थिवानि विमसे रजांसि—'न ते विष्णु न जातस्य महिम्नः परमे तमाय' 'सहस्रधामात्मनि' इत्यादि श्रुतियाँ भी भगवान् के गुण गणों का वर्णन करती हैं। विश्वहेतो—जो सम्पूर्ण विश्व के उत्पत्ति, स्थिति तथा मोक्ष के कारण है। हृदयजमात्मनिजन्मादि कर्तृत्व रूप ब्रह्म का लक्षण बताया—'जन्माद्यस्य यतः'। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' इत्यादि श्रुतियों एवं सूत्रों का भाव ध्वनित होता है—अन्तिम संबोधन है व्रज वल्लवीश—यह भावपूर्ण संबोधन है—हे व्रज सम्पत्तियों के प्रथता स्वामिन्—आप सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करें—यह प्रथम श्लोक का अर्थ है।

उपोद्घात ग्रन्थ के शास्त्र के आरम्भ के हेतु वेदान्त शास्त्र के अनुबन्ध, अधिकारी, विषय, प्रयोजन सम्बन्ध का निरूपण पराभिमत अधिकारी, विषय, प्रयोजन सम्बन्ध का निरास और प्रसङ्ग प्राप्त मायावादी के अध्यासवाद का सविस्तार खण्डन किया। अब शारीरिक मीमांसा के अर्थ संग्रह हेतु उपक्रम करते हैं। शारीरिक मीमांसा का अर्थ है—शारीरिक की मीमांसा—शारीरिक का अर्थ है—शरीरे भवः शारीराः शरीर के होनेवाले रहनेवाले का नाम है शारीर यानी जीवात्मा, उनका क—माने आनन्दरूप आत्मा परब्रह्माख्य श्रीपुरुषोत्तम अथवा शारीर जीवात्मा का क माने आनन्द मोक्षलक्षण जिससे हो वह है शारीरक। ''कं ब्रह्म एष आनन्दयति'' ऐसी श्रुति है—उसकी मीमांसा—अर्थात् ब्रह्म विचार। वह मीमांसा चार अध्यायों वाली है। वे अध्याय है—समन्वय अध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय—एवं फलाध्याय यहाँ पहले समन्वयाध्याय का अर्थ संग्रह करते हैं। पहला सूत्र है—'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'। यहाँ अथ शब्द अनियमार्थक है—अर्थान्तर, मङ्गल, अधिकार आरम्भ तथा आनन्तर्य।

निरवयवतया ब्रह्मवदेव विकारायोगाच्च। किञ्च ब्रह्मण उपादानत्वेऽपि नाज्ञानं कल्प्यंत्वद्रीत्या ब्रह्मण एव तात्त्विकाविकाराविरुद्धेनातात्विकाविकारेण

परिणामायोग इत्यत आह—**अज्ञानस्येति**। यद्धि सावयवत्वं तद्विकृतं भवति न त्वखण्डम्। अविद्या च ब्रह्मवदेव निरंशाऽतस्तस्या न जगत्कारणत्वं घटत इत्यर्थः। **किं चेति**। ब्रह्मण एव विवर्ताधिष्ठानत्वोपपत्तेरित्यन्वयः। अयमर्थो ब्रह्मण उपादानत्वेऽपि नाविद्या कल्प्या न च निर्विकारस्य तदयोगः। अतात्त्विकविकाराङ्गीकारात् तस्य च तात्त्विकाऽविकारा विरोधित्वात्, अतात्त्विको विकारो कीदृश इति चेत् शुक्त्यादीनां रजतं प्रतीव विवर्ताधिष्ठानत्वमेवेति नाविद्या तदर्थं **कल्प्येति**। विपक्षे

इनमें अर्थान्तर अर्थ संभव नहीं है, क्योंकि यह उपक्रम वाक्य है—प्रारम्भ का ही वाक्य किसी शब्द से किसी पूर्व एक अर्थ से निर्वचन के बाद—जब उस शब्द का दूसरा अर्थ किया जाता है, वह व्याख्यान्तर कथन अर्थान्तर कहलाता है—जैसे माधव शब्द का एक अर्थ मायाः रमायाः धवः माधव—मा माने लक्ष्मी उसके पति का नाम है माधव अथवा दूसरा अर्थ है—मधुवंशे भवः माधव यहाँ अथ शब्द अर्थान्तर परम है, वह अर्थ यहाँ संभव नहीं—कारण यहाँ कोई पूर्व निर्वचन नहीं है। कहें कि तब यहाँ अथ शब्द मङ्गलार्थक मान लें—मङ्गलार्थक भी नहीं कह सकते, क्योंकि ओंकार शब्द एवं अथ शब्द प्राचीनकाल में ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके निकले हैं—इसलिये अथ शब्द माङ्गलिक है तो कहते हैं यहाँ मङ्गलार्थ भी अथ शब्द नहीं है—कारण वेदान्त शास्त्र के भगवत् स्वरूप तथा गुण आदि प्रतिपादन परम होने से—उसके सभी वाक्यों पदों तथा वर्णों को स्वयं मङ्गल रूप होने से यहाँ अन्य मङ्गल की उपेक्षा नहीं है। अधिकारार्थक भी नहीं कह सकते—जैसे पातञ्जल महाभाष्य के 'अथ शब्दानुशासनम्' में अथ शब्द अधिकारार्थक है कारण वहाँ शब्दानुशासन के उपक्रम में अन्य कोई अर्थ घटित नहीं होने से अधिकारार्थक अथ शब्द माना जाता है, यहाँ प्रयोजन युक्त अर्थान्तर संभव होने से अधिकार अर्थ नहीं माना जा सकता। शब्द की तरह ब्रह्म अधिकार्य नहीं है। ना ही "अथ योगानुशासनम्" में अथ शब्द ही प्रारम्भार्थक की तरह यहाँ प्रारम्भ अर्थ भी नहीं कह सकते—वेदान्त वाक्यों को अनादि माना गया है—वेदान्त वाक्य अनादि, वेदान्त विचार अनादि तथा वेदान्त ज्ञान अनादि है। अनादि न मानने पर औपचारिकता की आपत्ति होने से उनमें अप्राधान्य का प्रसंग होगा—अतः परिशेषात् यहाँ अथ शब्द आनन्तर्यार्थक ही है—अब प्रश्न है कौन-सी ऐसी वस्तु है—जिसके अनन्तर ब्रह्म जिज्ञासा की जाती है—

शुक्त्यादिवद्विवर्ताधिष्ठानरूपोपादानत्वोपपत्तेः। अन्यथा अविद्यादेराश्रयसापेक्षस्य द्वितीयस्य तत्त्वतोऽद्वितीयाद्ब्रह्मणोऽन्यदधिकरणं

बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। अतात्त्विकस्यापि तात्त्विकत्वेन विरोधमङ्गीकृत्य ब्रह्मणस्तात्त्विकाविकारवत् एव उपादानत्वायोगेन तदर्थमुपादानान्तरभूताविद्या कल्प्येति तदर्थः। **अविद्यादेरिति**। आश्रय विषयसापेक्षत्वेन सद्वितीयत्वमविद्यास्वभावः। ब्रह्मणश्च द्वितीयासहिष्णुत्वरूपमद्वितीयत्वं स्वभावः। एवञ्च सद्वितीयत्वस्वभावाविद्याधिकरणत्वं नाद्वितीयस्य ब्रह्मणो युक्तं तथात्वे सद्वितीयस्वभावाविद्याधिकरणब्रह्माद्वितीयत्वस्वभावं

इस अपेक्षा में कहते हैं—मुमुक्षा के अनन्तर क्योंकि ''मुमुक्षुर्भूत्त्वाऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्'' यह श्रुति मुमुक्षु जनों को ही इस शास्त्र का अधिकारी बताती है। तथा उसके सहकारी श्रद्धापूर्वक श्रीगुरु शरणागति आदि भी बातें पूर्व में ही अधिकारी के निर्णय में प्रमाण पूर्वक कही गई हैं, अतः शब्द यहाँ हेत्वर्थक है—जो कर्म फलों के अनित्यत्वादि दोष प्रदर्शन परम है अर्थात् जब कर्मफल अनित्य होने के कारण—अर्थात् जब मुमुक्षा होती हैं तो मुमुक्षा के साधनों पर ध्यान जाता है—यानी कैसा साधन मोक्षप्रद हो सकता ऐसा विचार उठता है—तभी यह विचार उठता है—कर्मकाण्ड के माध्यम से मोक्ष प्राप्त किया जाये वा ब्रह्मज्ञान के माध्यम से—तभी ध्यान जाता है—श्रुति के इन निम्न वचनों पर—''तद्यथेहं कर्मचितोलोकः शीयते एवमेव पुण्यचितो लोकः श्रीयते'' ''परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् नास्त्यकृतःकृतेन'' इन श्रुतियों में स्पष्टतया कर्मफल को अनित्य बताया गया है, और स्पष्टरूप से कहा गया है—''नास्त्यकृतः कृतेन कर्मसे''—अकृत नित्य परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः माने इसलिये ब्रह्म जिज्ञासा करनी चाहिये ब्रह्म जिज्ञासा से ब्रह्मणः जिज्ञासा ब्रह्म जिज्ञासा—'कर्तृकर्मणोकृति' इस पाणिनि सूत्र से कर्म में षष्ठी है।

ब्रह्म जिज्ञासा ब्रह्मकर्म जिज्ञासा—अर्थात् मुमुक्षा होने पर प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म को जानने की इच्छा करनी चाहिये—इसी भाव को भगवान् व्यास ने अपने प्रथम सूत्र से कहा है कि मुमुक्षु को ब्रह्मत्व जानना चाहिये। ब्रह्म तत्त्व—स्वरूप, गुण, शक्ति आदि से निरतिशय बृंहतक भगवान् वासुदेव यहाँ ग्राह्य है।

''बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म'' ब्रह्म शब्द का अन्यत्र वृत्ति परिहार के लिये कहा है स्वरूप, गुण, शक्ति—तीनों से या तीनों में निरतिशय बृहत्व वस्तु पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव से अतिरिक्त कोई नहीं है। क्षर (अक्षर दोनों से उत्कृष्ट पुरुषोत्तम तत्त्व के रूप में भगवान् वासुदेव गीता में प्रसिद्ध हैं। 'वासुदेव वसून्दीव्यति

कल्प्यं स्यात्। न च परिणामित्वे-नाज्ञानकल्पनम्, असत्यस्य सत्यरूपान्तरापत्तिरूपपरिणामासम्भवात्। न च

व्याहन्यात्। स्वेनैव सद्वितीयत्वात्। ब्रह्मातिरिक्तमेवाधिकरणं कल्प्यं स्यात् तथा च त्वया वक्तव्यम्, अतोऽविद्याया ब्रह्मणोऽद्वितीयत्वं तात्त्विकमविद्यायाः

इति वसुदेवः नन्दः तस्यापत्यं वासुदेव नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः' इस बहिः साक्ष्य एवं "पृथक् केशिनिषूदन" इस गीता के अन्तः साक्ष्य से भी गीता वक्ता श्री कृष्ण नन्दनन्दन ही है—इस प्रकार परम प्रतिपाद्य पुरुषोत्तम ही ब्रह्म सूत्र में 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इस सूत्र से जिज्ञास्य है यह समझना चाहिये) भगवान् के अनन्त गुण है, यह श्रुति सिद्ध है—"बृहन्तो गुणाः अस्मिन्" ऐसा श्रुति वचन है। "एष प्रकृतिरव्यक्तः कर्ता चैवसनातनः परश्च सर्वेभूतेभ्यस्तस्मात् बृहतमोऽच्युतः।" (यह परमात्मा सब की मूल प्रकृति यानी मूल कारण है—जो सर्वसाधारण के लिये प्रकाश्य नहीं है—सबका कर्ता तीनों कालों में रहनेवाला है। सब भूतों से परे है, इसलिये वह सब से बृहत्तम (श्रेष्ठ) है—'बृंहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्म' ऐसा स्मृति वचन भी है। वृत्तिकार आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्क महामुनीन्द्र एवं वेदान्त कौस्तुभ प्रभाकार जगद् गुरु श्री केशव काश्मीरिभट्टाचार्य ने भी अपनी व्याख्या में कहा है—'अनन्त, अचिन्त्य स्वाभाविक, स्वरूप, गुण, शक्ति आदि से ब्रह्म में जो रमाकान्त पुरुषोत्तम हैं, वही यहाँ ब्रह्म शब्द से अभिधेय है—उनकी सदा सर्वदा जिज्ञासा करनी चाहिये। यहाँ रमा पद से वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा ही ग्राह्य है—श्रीराधिकोपनिषत् में रमा श्रीराधा का नाम बताया गया है। क्योंकि अपनी वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी में भी आद्याचार्य श्री निम्बार्क महामुनीन्द्र पाद ने—स्वभावतोऽपास्त समस्त दोषमशेष कल्याणगुणैकराशिम्। व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्। कहकर अंगेतु वामे वृषभानुजांमुदा—स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम्। द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण ने वामांग में वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा का ही स्मरण करना विधान किया है।) इसलिये पूर्वोक्त आचार्य इसके वचन के आधार पर अथ माने मुमुक्षा के अनन्तर कर्म फल अनित्यत्व एवं सातिशयत्व दोष दर्शन हेतु से—नित्य तथा निरतिशय मोक्ष जन्म ब्रह्म जिज्ञासा मुमुक्षुओं को करनी चाहिये—ऐसे अथातो ब्रह्म जिज्ञासा इस वाक्य का अर्थ है। यहाँ अध्याहृत तत्त्व प्रत्यय घटित वाक्यार्थ मुमुक्षणा ब्रह्मजिज्ञासयितव्या में तत्त्व प्रत्यय घटित बृहदारण्यकोपनिषद् पठित वाक्य तथा छान्दोग्योपनिषद् विषय वाक्य प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं—"आत्मावाऽरेद्रष्टव्यः" "भूमात्वे विजिज्ञासितव्यः"।

परमत में जिज्ञास्य ही कोई नहीं बन सकता—क्योंकि यदि उसमें विकल्प

कार्यापेक्षितस्वसत्तासमानसत्ताकोपादानत्वेन तत्कल्पनम्, रूप्यादेर्विवर्ताधिष्ठानरूपोपादानेन निवृत्तोपादानाकाङ्क्षस्यापि घटादिदृष्टान्ते-

सद्वितीयत्वमतात्त्विकम्, एवञ्च तात्त्विकस्यातात्त्विकत्वेन विरोधाभावान्नाधिकरणान्तरं कल्प्यते। एवं प्रकृतेऽपि विरोधाभावान्न कारणान्तरं कल्प्यमित्यर्थः। ननु वियदादिर्ब्रह्मणो विवर्तोऽपि परिणामभूतः परिणामस्य परिणामिनं विनायोगात् ब्रह्मणश्चापरिणामितयाऽविद्याकल्पनमित्यत आह—**नचेति। सत्येति।**

किया जाय तो उसका कोई उत्तर नहीं बनता। जैसे हम प्रश्न करें कि जिज्ञास्य शुद्ध ब्रह्म है, अथवा मायोपहित या अज्ञान में अध्यान्त ईश्वर। पहला पक्ष नहीं कह सकते, उसे तो आप अविषय स्वीकार करते हैं, यदि विषय मानेंगे तो उसमें मिथ्यात्व का प्रसङ्ग होगा—अनुमान होगा—शुद्ध ब्रह्म मिथ्या जिज्ञासा विषयत्वात् तव कृते घटाविवर्त अपसिद्धान्त की आपत्ति होगी, ब्रह्म अविषय है, यह आपका सिद्धान्त है, वह भङ्ग हो जाएगा। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—कारण मायोपहित ब्रह्म विषयक जिज्ञासा से श्रवण, मनन आदि के अध्यासजन्य उपहित ब्रह्म साक्षात्कारक उपहित ब्रह्म विषयक अज्ञान के नाश होने पर भी शुद्ध निर्विशेष ब्रह्म विषयक अज्ञान पूर्ववत् विद्यमान रहने के कारण मोक्षाभाव का प्रसंग होगा। कहें कि उपहित ब्रह्मगोचर ज्ञानं मोक्षोपयिकम् जिज्ञासा विषयत्वात् इस अनुमान के आधार पर उपहित साक्षात्कार से मोक्ष हो जाएगा तो ऐसा नहीं कह सकते। यह अनुमान अनुकूल कर्म से शून्य होने के कारण अप्रामाणिक है। दूसरी बात हम पूछते हैं अपहित ब्रह्म का ज्ञान मोक्ष का हेतु है या नहीं? पहला पक्ष कह नहीं सकते। यदि उपहित ब्रह्म को मोक्ष का हेतु मानें तो तब तो वही मुक्त जनों का मुख्य प्राप्य होगा ऐसी स्थिति में शुद्ध ब्रह्म को स्वीकार करना ही व्यर्थ हो जाएगा—जब उपहित ब्रह्म ही सृष्टिकर्ता और मोक्ष दाता हो जाएगा—शुद्ध की आवश्यकता ही क्या है? द्वितीय पक्ष भी नहीं कह सकते—यदि मायोपहित ब्रह्म मोक्षदायक नहीं तो उसकी जिज्ञासा व्यर्थ हो जाएगी—फिर तो वैसे ब्रह्म के लिये भाष्यादि प्रणयन जल ताड़न के समान निरर्थक होगा। तृतीय पक्ष अज्ञान के अध्यस्त ईश्वर तो हो ही नहीं सकता.........कर दिया है—इस प्रकार हेतु कर्म निरास का प्रयास व्यर्थ ही है—इसलिये अनन्त, अचिन्त्य, स्वाभाविक स्वरूप, गुण, शक्ति आदि से सर्वोच्च रमाकान्त पुरुषोत्तम रूप ब्रह्म ही जिज्ञास्य है, यह सिद्ध होता है। ''तद् ब्रह्म तद् विजिज्ञासस्व'' इत्यादि श्रुतियों द्वारा वक्ष्यमाण लक्षण—'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्र में वर्णित लक्षणों वाला ब्रह्म ही जिज्ञास्य है—यह निर्णय सिद्ध होता है।

नोक्तोपादानकल्पने घटादेः कार्यस्य स्वसमानसत्ताकोपादानापेक्षत्वेना -समानसत्ताकस्य ब्रह्मणो वियदादेरुपादानत्वानपातात्, रूप्ये

सत्यरूपान्तरापत्तिश्चासौपरिणामश्च तस्यासम्भवादिति विग्रहः। अविद्यायाः परिणामित्वं तदा स्यात् यदि सत्यजगदाख्यरूपान्तरापत्तिरूपः परिणामः स्यात्। नचैवं जगतः सत्यत्वाभावादित्यभिप्रेत्यासत्यस्येत्युक्तम्, सत्यभूतपरिणामस्यैव स्वोचितपरिणाम्यपेक्षा नत्वसत्यस्य अतो न परिणामित्वेनाविद्याकल्पनमिति भावः। **कार्येति।** कार्यस्य घटादेर्व्यावहारिकस्य स्वसमानसत्ताकोपादानत्वदर्शनात् रूप्यादेरपि मिथ्यात्वेन

इस प्रकार मायावादि सम्मत जिज्ञास्य ब्रह्म की उपपत्तिरूप गिरिका निपात हुआ

जो ब्रह्म जिज्ञासा का विषयीभूत है—अथवा जिस ब्रह्म को जानने की इच्छा प्रथम सूत्र में की गई है, उसका क्या लक्षण है—इस अपेक्षा में कहते हैं— ''जन्माद्यस्य यतः''। यहाँ 'अस्य' यह शब्द कार्यपरक है। यतः शब्द कारण परक है। जन्म आदि यस्य स्थितिमङ्गस्य तदिदं जन्मादि सृष्टि स्थिति लयम्। यहाँ जन्म आदिर्ययोः स्थितिमङ्गयोस्तौ जन्मादि' ऐसा विग्रह करने पर 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होने से यण् कार्य की अनुपपत्ति हो जाएगी—फिर जन्माद्यस्य ऐसा रूप नहीं बनेगा। स्थितिश्च भङ्गाश्च तयोः समाहारः स्थिति मङ्गार—जन्म आदिर्यस्य स्थिति मङ्गस्य तत् सृष्टि स्थिति लयम्। इस प्रकार समाहार द्वन्द्व कित्प्रयुक्त ही यहाँ एकवचन और नपुंसक है—जन्मादि यहाँ तद् गुण संविज्ञान बहुव्रीहि समास है—अन्यथा बहुव्रीहि समास में अन्य पदार्थ प्रधान होने से—जन्म का ग्रहण नहीं होता। तस्य वृत्ति घटक पदार्थस्य गुणाः क्रियावयित्वं संविज्ञायत्ते यत्र स तद् गुण संविज्ञानो बहुव्रीहिः। जहाँ वृत्ति घटक पदार्थ क्रिया में अन्वय हो उसे तद् गुण संविज्ञान बहुव्रीहि कहते हैं—जैसे 'लम्बकर्णमानय' यहाँ लम्बे कान वाले पुरुष के साथ लम्ब कर्ण का भी आनयन क्रिया से अन्वय होता है—अतः यह तद् गुण संविज्ञान बहुव्रीहि है। जहाँ वृत्ति घटक पदार्थ का क्रिया में अन्वय नहीं हो उसे अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि कहते हैं—जैसे दृष्ट सागर प्रशंसक मानय यहाँ दृष्टः सागरे स दृष्ट सागरः जिस सागर को देखा है—ऐसे प्रशंसकों कहने पर आनयन क्रिया में सागर का अन्वय नहीं होता—सागर नहीं लाया जाता जिस सागर को देखने वाले प्रशंसकों को ही लाया जाता अतः यह अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि समास कहलाता है। यतः माने जिस सर्वेश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता परम कारण पुरुषोत्तम भगवान् में इस नाम देवदत्त आदि रूप—देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि आवृति से व्यावृत यानी उक्त नाम रूपों से विभाजित तथा विविध

स्वसमानसत्ताकनिमित्तस्यापि कल्पनापाताच्च। न च जीवस्यानवच्छिन्नब्रह्मानन्दाप्रकाशाय तत्कल्पनाभेदेनैव तदुपपत्तेः।

समानसत्ताकोपादानापेक्षत्वात्तदनुगुणं मिथ्याभूतमुपादानमविद्याख्यं कल्पनीयमित्यर्थः। तत्कल्पनम्। अज्ञानस्य कल्पनम्। रूप्यादेरिति। रूप्यादेः किमुपादानमिति शङ्कायां

माने अनेक तथा विभक्त माने अनादि स्व-स्व कर्मानुसार नाम, रूप तथा स्वभाव आदि वैचित्र्य को प्राप्त भोक्ताओं जीवों से संयुक्त एवं जिसकी रचना तर्क का अविषय है, ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डात्मक जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होते हैं—वही ब्रह्म यहाँ जिज्ञास्य है—यह 'जन्माद्यस्य यतः' इस वाक्य का अर्थ है। यहाँ उक्त अर्थ में ज्ञातव्य प्रमाण है—''तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्'' 'स कारणं कारणाधिपाधिप' इस से भगवान् की सर्वेश्वरता ज्ञात होती है। 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्' से भगवान् की सर्वज्ञता विदित होती 'परास्य शक्तिविविधैवश्रूयते' से भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता द्योतित होती है। भगवान् कारण के भी कारण है इसलिये उन्हें परम कारण कहा जाता है—'स कारणं कारणाधिपाधिपः' ''अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वः प्रवर्तते'' सर्वनियन्ता प्रमाण—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया? यहाँ विविध भोक्तृ संयुक्तस्य पद द्वारा जीवों के अनेकत्व तथा उनके विचित्र कर्मों के अनादित्व सिद्ध होने पर विश्व का अनादित्व सिद्ध होने से सत्कार्य सिद्ध होता है—जैसा कि श्रुति वचन है—''ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखः एषोऽश्वत्थः सनातनः'' इत्यादि यत् तथा तत् शब्द में नित्य सम्बन्ध होने से जिस सर्वशक्तिमान् ब्रह्म से—इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति लय होते हैं—वह ब्रह्म है—ऐसा वाक्यार्थ होता है। इसके प्रमाण श्रुति वाक्य है—''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म''।

परमत में (मायावादी के मत में) लक्षण संभव नहीं है कारण यदि इस सम्बन्ध से विकल्प करें तो उत्तर नहीं दे सकते पहले की तरह यदि कहें कि कारण लक्षण दो तरह के होते हैं, स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण। इनमें स्वरूप से अभिन्न लक्षण को स्वरूप लक्षण कहलाता है—सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म और यावल्लक्ष्यमनवस्थितत्वे सति व्यावर्तकम् तटस्थ लक्षणम्—लक्ष्य पर्यन्त न रहने वाला होकर जो धर्म व्यावर्तक होता है—वह तटस्थ लक्षण कहलाता है—जैसे ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' इत्यादि श्रुत्युक्त जगज्जन्मादि कारणत्व रूप धर्म या लक्षण प्रलयकाल से अनुगत इतर का व्यावर्तक है, इस तरह हमारे मत में भी लक्षण का समन्वय है तो ऐसा नहीं कह सकते—क्योंकि यह संभव नहीं है—कारण आपके मत

अनवच्छिन्नानन्दस्यापि प्रकाशमानप्रत्यङ्मात्रत्वेनाप्रकाशानुपपत्तेश्च। तस्मादुक्तार्थापत्तिरपि मनोरथमात्रैव। अपि च त्वन्मते अज्ञानस्या-

विवर्ताधिष्ठानतया ब्रह्मैवोपादानमित्युक्त्या आकाङ्क्षाया निवृत्तत्वादित्यर्थः। न च घटादेः स्वसमानसत्ताकोपादानत्वदर्शनात् रूप्यादावपि स्वसमानसत्ताकमुपादानं कल्पनीयं तच्चाविद्येति वाच्यम्। तर्हि घटादेः स्वसमानसत्ताकोपादानापेक्षकत्वदर्शनात्। वियदादि-

में स्वरूप लक्षण का कथन युक्ति संगत नहीं है क्योंकि असाधारण धर्म है। लक्षण होता है—यह सर्ववादि संगत सिद्धान्त है—स्वरूप मात्र नहीं—अन्यथा स्वरूप को ही व्यावर्तक मानने पर लक्षण का कथन ही व्यर्थ हो जाएगा, स्वरूप कहीं व्यावर्तक नहीं देखा गया है। यदि कहें कि स्वरूप में ही धर्म धर्मी भाव की कल्पना करके—उसके लक्षणत्व स्वीकार कर लेंगे—फिर उक्त दोष का अवकाश नहीं होगा। इस बात को पञ्चपादिकाचार्य की वाणी द्वारा समर्थन करते हैं—"आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वञ्चेति सन्ति धर्माः अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् पृथिव्यामासन्ते" आनन्द, विषयानुभव तथा नित्यत्व—ये धर्म ब्रह्म में है ? ये ब्रह्म से अपृथक् होने पर भी पृथक् की तरह भासित होते हैं, तो ऐसा नहीं कह सकते, कल्पित धर्म व्यावर्तक नहीं हो सकता। यदि कल्पित धर्म भी व्यावर्तक माने जायें तो यूप में कल्पित आदित्यत्व में भी (यूपो आदित्वः) भी असूर्य का व्यावर्तकत्व हो जाएगा। इसलिये स्वरूप को ही लक्षण मानना अपनी उत्प्रेक्षा मात्र होगा दूसरी बात—हम पूछते हैं कि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यहाँ सत्य आदि शब्द यौगिक है जाति आदि धर्म प्रतिपादक है या रूढ़ि ? प्रथम पक्ष में यौगिक शब्द प्रकृति, प्रत्ययार्थ परक होने से निर्विशेषत्व की हानि। सद् मानने पर भी रूढ़ शब्द कभी गुण, जाति आदि अनेक धर्म विशिष्ट वस्तु परक ही होने से उसमें भी निर्विशेष परत्व का सम्बन्ध नहीं है। यदि कहें कि सत्य आदि शब्द सविशेष परक होने पर भी लक्षणा से निर्विशेष परम होने के कारण उक्त दोष नहीं होगा तो कहो ऐसा नहीं कह सकते—ऐसा संभव नहीं है—लक्षणा तीन प्रकार की होती है—जहत्स्वार्थ, अजहत्स्वार्थ, जहत् अजहत् लक्षण। शक्यार्थ के अन्तर्भाव में बिना जहाँ अर्थान्तर की प्रतीति होती है—उसे जहल्लक्षणा कहते हैं और जहाँ शक्यार्थ का अन्तर्भाव के साथ अर्थान्तर की प्रतीति होती है—उसे अजहल्लक्षणा कहते हैं तथा विशिष्ट वाचक शब्द जहाँ स्वार्थ के एक देश को छोड़कर अन्य एकदेश का ग्रहण करता है—उसे जहदजहल्लक्षणा कहते हैं। तो प्रकृत स्थल में लक्षण स्वीकार करें और लक्षणा में यदि जहत्स्वार्था लक्षणा कहें तो जैसे गङ्गायां घोषः यहाँ प्रवाह रूप शक्यार्थ का त्याग कर अगंगा रूप (गंगा भिन्न) तीर

प्रामाणिकत्वात् कथमत्र प्रमाणोक्तिः, स्वोक्तिविरोधात्। तथाचोक्तं सुरेश्वराचार्येण ''अविद्याया अविद्यात्वमिदमेव तु लक्षणम्। मानापातासहिष्णुत्वमसाधारणमिष्यत'' इति न च व्यावहारिकत्वात्तत्र

कार्यासमसत्ताकस्य ब्रह्मणो वियदादावुपादानत्वं त्वयोच्यमानं नस्यादित्यतिप्रसङ्ग इत्यर्थः। यदि घटादिदृष्टान्तेन रूप्यादेः स्वसमानसत्ताकोपादानत्वं कल्प्यते तर्हि घटादेः स्वसमान-सत्ताकनिमित्तकारणकत्वदर्शनेन रूप्यादेरपि स्वसमानसत्ताकनिमित्तकारणत्वापत्या

वाक्यार्थ होता है—उसी प्रकार सत्यं ज्ञानम्.......में सत्य आदि पदार्थ का त्याग होने से असत्य, जड़ तथा परिच्छिन्न रूप अर्थ क्रमशः सत्यं ज्ञानम् अनन्त' इस श्रुति का वाक्यार्थ होगा। अजहत् स्वार्था लक्षणा मानें तो शक्यार्थ से युक्त विशिष्टार्थत्व की आपत्ति होगी। भागत्याग लक्षणा पक्ष में विशेष्य मात्र अर्थ स्वीकार करने पर भी कोई निश्चय नहीं हो पाएगा कारण—सत्य आदि शब्द का क्या अर्थ है, यह अभी तक निश्चय नहीं है। सत्यत्व आदि धर्म में त्याग होने पर भी ब्रह्म सत् चित् तथा अपरिछिन्न है—इस प्रकार कहने से उसमें त्रैविध्य अवश्य होगा—फिर तो ब्रह्म निर्विशेष एवं अद्वितीय है—यह सिद्धान्त भङ्ग होगा। इन तीनों को सबका एकार्थ मानें तो पर्याय की आपत्ति, पर्यायत्व मानने पर एक पद से ही अर्थ की सिद्धि होने से पदान्तर का विपर्यय होगा। यदि कहें कि अनेक पदों का भी अन्य सापेक्ष होने पर एकार्थपरता नहीं घटती है, इसलिये पर्यायतापत्ति नहीं होगी, जैसे कि एक ही पुरुष का पुत्र, भ्रातृ तथा पितृ शब्द ये प्रतिपादन देखा जाता है—क्योंकि एक ही पुरुष किसी का पुत्र किसी का पिता किसी का भ्राता होता है, उसी प्रकार यहाँ भी असत्ववत्, अज्ञानवत् तथा अन्तवत् वस्तु सापेक्ष होने से सत्यादि वत्वेन सत्यादि शब्दों की पर्यायतापत्ति नहीं होगी इसलिये कहते हैं कि—''किञ्च शब्दैवांशार्थाङ्गीकारे''—अर्थात् शब्द में एक अंश का अर्थ स्वीकार करने पर सर्वांश वाचकता के अभाव में भी उसके एक अंश में भी वाचकता का सम्बन्ध इच्छा के बिना भी आपको स्वीकार करना पड़ेगा—फिर तो निर्विशेषत्व की हानि होगी—अंशवाचक मानने पर मिथ्यात्व की आपत्ति। अनुमान होगा निर्विशेष वस्तु मिथ्या शक्येन देशत्वात् तव मते घटत्वादिवत्—निर्विशेषं तत्व मिथ्या है—क्योंकि वह शक्यार्थ का एक देश है आपके मत में घटत्व आदि की तरह—घटत्व घटपद शक्यार्थ में एक देश है—वह जैसे मिथ्या हो। यदि कहें कि सत्य आदि विशिष्ट वाचक पदों का शुद्ध ब्रह्म के लक्षण हैं इसलिये पर्यायत्व आपत्ति आदि दोष का यहाँ अवकाश नहीं है तो ऐसा नही कह सकते, क्योंकि अनृत आदि से भिन्न सत्य आदि पदों के शक्यार्थ सत्यत्व आदि कहाँ अन्वय प्रसिद्ध है, उपहित ब्रह्म में कह

प्रमाणोक्तिरिति वाच्यम्। प्रातिभासिकोपादाने प्रातिभासिकेऽज्ञाने तदुक्त्ययुक्तेः। नहि व्यावहारिकं प्रातिभासिकं प्रत्युपादानम्। नापि

प्रातिभासिकं किञ्चिन्निमित्तकारणमपि कल्प्यं स्यादित्याह—**रूप्य इति।** अर्थापत्त्यन्तरमाशङ्क्य निराकरोति—**न चेति।** जीवस्यापरिच्छिन्नानन्दात्मकब्रह्माभिन्नत्वेन सर्वदानन्दः

नहीं सकते, क्योंकि वह अनृत, अस्वप्रकाश तथा परिच्छिन्न रूप है, उसमें सविशेषत्व सत्ता का सम्बन्ध नहीं है—अथवा होगा तो उसीमें अनृतादि व्यावृतत्व होगा—शुद्ध में नहीं, इसलिये सत्यत्व आदि धर्मों का शुद्ध से अन्यत्र संभव नहीं है। वाक्य का लक्षणा से अखण्डार्थ मानें तो शुद्ध में उसकी सिद्धि नहीं होगी। इस प्रकार पर्यायत्व का प्रसंग तदा पदान्तर का वैयर्थ्य वैसे का वैसा रह गया। दूसरी बात हम पूछते हैं कि सत्य आदि पदों का लक्ष्यार्थ पदान्तर का वाच्य है भी या नहीं, प्रथम पक्ष में सविशेषत्व अवश्यंभावी होगा—द्वितीय पक्ष में लक्ष्यत्व की असिद्धि होगी, लक्ष्यत्व एवं वाच्यत्व में समानाधिक पक्ष का नियम है जहाँ वाच्यत्व होता है, वहाँ लक्ष्यत्व होता है—जैसा गङ्गा पद का लक्ष्यार्थ तीर शब्द वाच्य होता है—जो लक्ष्य वाच्य नहीं है वह लक्ष्य नहीं—जैसे ख पुष्प—यह अन्वय व्यतिरेक से सिद्ध है। यदि कहें कि सत्य आदि शब्द असत्य आदि की व्यावृत्ति द्वारा लक्ष्य ब्रह्म में पर्यवसित होता है, ऐसा नहीं कह सकते, श्रुति के बिना भी पहले ही अविद्या के अधिष्ठान रूप में ज्ञात का पुनरपि ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्'' इत्यादि पूर्व वाक्य में सामान्यतया और यहाँ सत्य आदि शब्दों से सत्य आदि शब्दों द्वारा सत्यत्व विशिष्टतया तथा व्यावृत्ति विशिष्टतया से ज्ञात होने से स्वरूप मात्र ज्ञान से व्यावृत्ति ज्ञान साध्यत्व सम्बन्ध नहीं है—इस प्रकार स्वरूपमात्र के बोधन से व्यावृत्तियों का द्वारत्व अयुक्त है यह भाव है।

नहीं, जो सावयव होता है वह विकृत होता है अखण्ड नहीं, अविद्या ब्रह्म की तरह निरवयव है इसलिये उसमें जगत् कारणत्व नहीं घटता, दूसरी बात ब्रह्म के उपादान होने पर भी अविद्या कल्पनीय नहीं है, नाही यथा, जो सावयव उसके साथ योग है। अतात्त्विक विकार के स्वीकार से उसके तात्त्विक अविकार का अविरोधित्व है। अतात्त्विक विकार कैसा होता है? शुक्ति आदि का रजत के प्रति की तरह विवर्ताधिष्ठानत्व ही है—इसलिये उसके लिये अविद्या की कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं है—ब्रह्म में ही विवर्त की अधिष्ठानत्व की उपपत्ति है। विपक्ष के बाधक तक—अन्यथा आश्रय सापेक्ष अविद्या आदि द्वितीय का तत्त्वतः अद्वितीय ब्रह्म से भिन्न अधिकरण की कल्पना करनी होगी भाव यह है कि आश्रय एवं विषय सापेक्ष होने से सद्वितीयत्व अविद्या का स्वभाव है और ब्रह्म का द्वितीय असहिष्णुत्वरूप अद्वितीयत्व स्वभाव है। इस प्रकार सद्वितीयत्व स्वभाव अविद्या

प्रातिभासिके किञ्चिन्मानमस्ति। न च साक्षिसिद्धेऽज्ञाने प्रमाणैरसद्व्यावृत्तिमात्रं बोध्यत इति वाच्यम्। नित्यनिर्दोषसाक्षि-वेद्यत्वाङ्गीकारे सुतरां प्रामाणिकत्वापातात्, ''तम आसीदि'' त्यादौ

प्रकाशः स्यात्, न चासावस्ति अतस्तदप्रकाशाय तत्प्रतिबन्धकतयाऽविद्या कल्प्यत इत्यर्थः। कुतो न चेत्यत आह—**भेदेनैवेति**। अस्तुवाऽनवच्छिन्नब्रह्मानन्दात्मकत्वं तथापि तदप्रकाश एव न युक्तः। अपरिच्छिन्नानन्दस्यापि सर्वदा प्रकाशमानप्रत्यक्चैतन्यमात्र-त्वेनाप्रकाशानुपपत्तेस्तदर्थमविद्याकल्पनमप्रामाणिकमित्याह—**अनवच्छिन्नेति**। उपसंहरति—**तस्मादिति**। इत्यविद्यार्थापत्तिनिराकरणम्। **अप्रामाणिकत्वादिति**। सत्त्वाभावेन प्रमाणावेद्यत्वादित्यर्थः। स्वोक्तिविरोधमेवोपपादयति—तथाचोक्तमित्यादिना। **अविद्यायाइति**। किन्तदविद्यात्वमित्यत आह—**मानेति**। मानानामापातः प्राप्तिः तदसहिष्णुत्वं प्रमाणाविषयत्वमितियावत्। इदमेवासाधारणलक्षणमित्यर्थः। **तदुक्तीति**=

का अधिकरणत्व—अद्वितीय ब्रह्म में युक्त नहीं है—ऐसा मानने पर सद्वितीय स्वभाव अविद्या अधिकरण ब्रह्म का अद्वितीय स्वभाव का व्याघात होगा। स्व से ही सद्वितीयत्व होने से—ब्रह्म से अतिरिक्त ही अधिकरण की कल्पना करनी होगी—ऐसा आपको कहना पड़ेगा। लेकिन अविद्या का ब्रह्म से अद्वितीयत्व तात्त्विक है और अविद्या का सद्वितीयत्व अतात्त्विक है। इस प्रकार तात्त्विक का अतात्त्विकत्व के साथ विरोध का अभाव होने से अन्य अधिकरण की कल्पना नहीं होगी। इसी प्रकार मत में भी विरोध के आभावक कारणान्तर की कल्पना नहीं है।

कहें कि वियत आदि ब्रह्म का विवर्त होने पर परिणाम ही है—और परिणाम परिणामी के बिना संभव नहीं—और ब्रह्म अपरिणामी है—इसलिये अविद्या की कल्पना की जाती है—इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—परिणामी बताकर अज्ञान की कल्पना भी संभव नहीं है, असत्य पदार्थ (जगत्) का सत्यरूप में रूपान्तरापत्ति परिणाम असंभव है। यदि कहें कि जिस प्रकार घट आदि व्यावहारिक कार्य के लिये स्व समान सत्ताक (व्यावहारिक सत्ताक) घट समान सत्ताक उपादान वृत्ति आदि की अपेक्षा होती है—उसी प्रकार रजत आदि है। मिथ्या भूत पदार्थ के लिये तत्समान सत्ता कर (प्रातिभासिक सत्ताक) उपादान ही आवश्यकता होने से तदनुरूप मिथ्याभूत उपादान—अविद्या की कल्पना होती है—अविद्या आवश्यक है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते, रूप्यायेः—रजत आदि विवर्त होने से जिस प्रकार जगत् रूप विवर्त में ब्रह्म अधिष्ठान है, उसी प्रकार विवर्ताधिष्ठान होने से ब्रह्म ही उसका उपादान मान लेने पर उपादान की आकांक्षा निवृत्त हो जाने से रजतादि मिथ्या पदार्थ के लिये अज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं रहती है।

सत्यस्यैव बोधनाच्च। अनुमाने तदप्रतीतेश्च, ज्ञाननिवर्त्यत्वेन प्रकाशनिवर्त्यान्धकारवदनित्यत्वस्यैव बोधनात्। एतेन

व्यावहारिकत्वाभावात्तत्र प्रमाणोक्तित्युक्तेति भावः। ननु तदपि व्यावहारिकमेवास्त्विति चेत्तत्राह—**न हीति**। उपादानोपादेययोरेकसत्ताकत्वनियमादिति भावः। ननु व्यावहारिक-प्रमाणसिद्धत्वे विषयस्यापि व्यावहारिकसत्तया भाव्यं प्रातिभासिकाज्ञानं प्रातिभासिक-प्रमाणगम्यमतस्तदुक्तिर्युक्तेति चेत्तत्राह—**न चेति**। **असद्व्यावृत्तीति**। तथा च तद्बोधनाय प्रमाणोक्तिर्युक्तेत्यर्थः। **सुतरामिति**। दोषशङ्काकलङ्कितप्रमाणवेद्यत्वरूपप्रामाणिकत्वापेक्षया सुतरामित्यर्थः। **आपातादिति**। मानापातासहिष्णुत्वाख्यासाधारणलक्षणहानिरिति भावः। किञ्चासद्व्यावृत्तिमात्रं बोध्यत इत्यत्राज्ञानस्य सत्त्वं न बोध्यते किन्तु असद्व्यावृत्ति-रेवेत्यभिप्रायः। किम्वा अज्ञानस्वरूपमेव न बोध्यते। किं नाम केवलासद्व्यावृत्तिरेवेति नाद्य इत्याह—**सत्यस्यैवेति**। नत्वसद्व्यावृत्तेरित्यर्थः। न द्वितीय इत्याह—**अनुमानइति**। अज्ञानसाधकानुमान इत्यर्थः। तदप्रतीतेः=असद्व्यावृत्यप्रतीतेः। ननु प्रमाणैरुक्त-रूपेणाज्ञानत्वाऽबोधनेऽपि ज्ञाननिवर्त्यत्वेन बोधनादप्रामाणिकत्वेन मिथ्यात्वं दुर्वारमित्यत आह—**ज्ञाननिवर्त्यत्वेनेति**। ज्ञाननिवर्त्यत्वेनानित्यस्यैव बोधनादित्यन्वयः। नाप्रामाणिकत्वरूपमिथ्यात्वस्येत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः—**प्रकाशइति**। नहि

यदि कहें कि जैसे घट आदि का स्व समान सत्ताक उपादान होता है, उसी तरह रजत आदि का स्व समान सत्ताक उपादान होना चाहिये, वह अविद्या ही हो सकती है, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि तब घट आदि का स्व समान सत्ताक उपादान दर्शन से आकाश आदि के असमान सत्ताक ब्रह्म का आकाश आदि में प्रति उपादानत्व नहीं होगा। इस प्रकार अति प्रसङ्ग है। यदि घटादि दृष्टान्त से रजत आदि का स्व समान सत्ताक उपादान की कल्पना करते हैं तो घटादि के स्व समान सत्ताक निमित्त कारण होने से रजत आदि का भी स्व समान सत्ताक निमित्त कारणत्व की आपत्ति हो जाएगी फिर तो प्रातिभासिक कोई निमित्त कारण भी कल्पनीय होगा। अब अन्य अर्थापत्ति की आशंका करके निराकरण करते हैं—'न च जीवस्नानवच्छिन्नेत्यादि' अर्थात् यदि कहें कि जीव अपरिच्छिन्न आनन्दात्म ब्रह्म स्वरूप से उसे सर्वदा आनन्द स्वरूप प्रकाशित होना चाहिये पर ऐसा नहीं होता—अतः उसमें अप्रकाश के लिये प्रतिबन्धक रूप में अविद्या की कल्पना की जाती है तो ऐसा भी नहीं कह सकते—इस आपत्ति का निराकरण जीव ब्रह्म में भेद की कल्पना ही हो जाएगी। अथवा मान लें उसे अपरिच्छिन्न ब्रह्मानन्दात्मक, फिर भी उसका अप्रकाश ही युक्त नहीं है, अपरिच्छिन्न आनन्द का भी सर्वदा प्रकाशमान चैतन्य मात्र होने से अप्रकाश की अनुपपत्ति के कारण उसके लिये अविद्या की

प्रमाणसामान्यनिरसनेन प्रमाणान्तरदुराशापि निरस्ता तस्मात्त्वदभिप्रेताज्ञाने किमपि प्रमाणं नास्तीति सिद्धम् ॥ ४७ ॥

इति पराभिमताज्ञानविषयकप्रमाणोपपत्तिगिरिनिपातः ॥ १० ॥

प्रकाशनिवर्त्यत्वेनान्धकारस्यापि मिथ्यात्वं वाच्यम्, किन्त्वनित्यत्वमेवेत्यर्थः। उपसंहरति—**तस्मादिति ॥४७ ॥**

इत्यज्ञानविषयकप्रमाणनिरसनम्।

इति पराभिमताज्ञानविषयकप्रमाणोपपत्तिगिरिनिपातव्याख्या ॥ १० ॥

कल्पना अप्रमाणित है। इसलिये यह अर्थापत्ति भी मनोरथ मात्र है। इस प्रकार अर्थापत्ति प्रमाण से भी अविद्या की सिद्धि नहीं होती। दूसरी बात आपके मत में कहा जाता है कि अज्ञान अप्रामाणिक है—उसमें कोई प्रमाण है ही नहीं—फिर इसमें प्रमाण का कथन कैसा, इस स्ववचन का ही विरोध होता है। जैसा कि सुरेश्वराचार्य महाराज का कथन है—''अविद्यायाः अविद्यात्वमिदमेवतु लक्षणम्। मानापातासहिष्णुत्वमसाधारणमिष्यते।'' आपका कहना है कि अविद्या यही तो अविद्यात्व है—जो उसमें कोई प्रमाण नहीं हो सकता अर्थात् प्रमाणाविषयत्व ही अविद्यात्व है। कहें कि उसमें व्यावहारिकत्व के अभाव से प्रमाणोक्ति अयुक्त है—ऐसा कहा गया है—ऐसा भी नहीं कह सकते—प्रातिभासिक तत्त्व के उपादानरूप प्रातिभासिक अज्ञान में उक्त कथन अयुक्त ही है। व्यावहारिक पदार्थ प्रातिभासिक का उपादान नहीं होता, ना ही प्रातिभासिक में कोई प्रमाण है। कहें कि साक्षिसिद्ध अज्ञान के प्रमाणों द्वारा असद् की व्यावृत्ति मात्र समझाई जाती है—ऐसा भी नहीं कह सकते—नित्य निर्दोष साक्षिवेद्यत्व स्वीकार करने पर स्वतः प्रामाणिकत्व का आपात होता है। 'तम आसीत' इत्यादि श्रुति में सत्य का बोधन है। अनुमान में उनकी अप्रतीति भी है—ज्ञान निवर्त्य होने में प्रकाश निवर्त्य अन्धकार की तरह अनित्यत्व का ही बोध होता है। इस प्रकार जब सिद्ध हो गया कि अविद्या प्रमाण सामान्य का अविषय है—अविद्या का अविद्यात्व भाव सहिष्णुत्व ही है—फिर तो इसकी सिद्धि के लिये अन्य प्रमाण की आशा ही खत्म हो गई। इसलिये ग्रन्थ भी कहते हैं आपके (मायावादी के) अनियत अनादित्वे सति ज्ञान निवर्त्य भाव रूप अज्ञान में कुछ भी प्रमाण नहीं है—यह बात स्पष्ट सिद्ध होगी।।४७।।

इस प्रकार मायावादी सम्मत अज्ञान विषयक प्रमाणोपपत्ति गिरिनिपात का अनुवाद पूरा हुआ॥ १०॥

(११) पराभिमताज्ञानाश्रयगिरिनिपातः

अथ तन्मतेऽज्ञानाश्रयोऽपि दुर्निरूपस्तथाहि कस्तावत्तस्याश्रयः शुद्धं चिन्मात्रं वा सर्वज्ञो वा जीवो वेति। अत्राहुः केचित्। चिन्मात्रमेवाज्ञानाश्रयः तदन्यस्याज्ञानकल्पितत्वेन तदाश्रयत्वायोगात्। तदुक्तं विवरणे "आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विशेषचितिरेव केवला। पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर" इति दर्पणस्य मुखमात्रसम्बन्धेऽपि प्रतिमुखे

अज्ञानाश्रयत्वं ब्रह्मण इति मन्यन्ते मायावादिनस्तन्निराचिकीर्षुराह **अथेति**। तन्मते—मायावादिमते। दुर्निरूपतामेवोपपादयति—**तथाहीत्यादिना**। पृच्छति—**कस्तावदिति**। तस्य=अज्ञानस्याचतुर्धा विकल्पयति **शुद्धेति**। मोक्षकालीनमित्यर्थः। **चिन्मात्रमिति**। बिम्बप्रतिबिम्बभूतजीवब्रह्मानुस्यूतं मुखमात्रस्थानीयमिति तदर्थः। ननु जीव एवाज्ञानाश्रयः किन्नस्यादित्यत आह—**तदन्यस्येति**। जीवस्येत्यर्थः। चिन्मात्रान्यजीवस्याज्ञानकल्पितत्वेनाज्ञानाश्रयत्वं नोपपद्यते, तथात्वेऽज्ञानसिद्धौ तत्कल्पितजीवसिद्धिस्तत्सिद्धौ च तदाश्रिताज्ञानसिद्धिरित्यन्योन्याश्रय इति भावः। स्वोक्तार्थे सम्मतिमाह—**तदुक्तमिति**। जीवोऽज्ञानाश्रयो नेत्याह—**पूर्वेति**। तमसः=अज्ञानस्य। पश्चिमः=कल्पितोजीवः। गोचरः=विषयः। ननूभयानुस्यूतचिन्मात्राश्रिताज्ञानस्य कथं प्रतिबिम्बे जीव एव संसारापादकत्वं बिम्बे तदनुस्यूतचिन्मात्रे वा तत्किं न स्यादित्यत आह—**दर्पणस्येति**। एवम्भूते पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह-**अत्र ब्रूम इति**। यदि शुद्धं ब्रह्माज्ञानाश्रयः स्यात्तदा शुद्धत्वंव्याहन्येतेत्याह—**शुद्धस्येति**। यदि शुद्धस्य ब्रह्मणोऽज्ञानाश्रयताभ्युपेयते तदा मोक्षेऽपि तत्प्रतीतिर्भवितव्या। अज्ञानप्रकाशिकायाश्चितः सत्त्वात्। नचाज्ञानं स्वावृतेन चैतन्यरूपप्रकाशेनैव स्फुरतीति वाच्यम्। एतददृष्टचरत्वात्। राहोः स्वावृत्तचन्द्रप्रकाशेनैव स्फुरणात्। न च मोक्षेऽविद्याया निवृत्तत्वेन स्वावृतप्रकाशाभावान्नस्फुरणमिति वाच्यम्। अज्ञानस्य प्रतीतिमात्रशरीरत्वेन प्रतीत्यनुवृत्तौ तन्निवृत्तेरेवायोगादतो मोक्षे तत्प्रतीत्यापत्तेर्दुर्वारत्वादित्यपि दूषणं द्रष्टव्यम्। चिन्मात्रस्याज्ञानाश्रयत्वं वदताज्ञानस्यैव तदाश्रयत्वमुक्तं भवति तथाचैकविषययोर्ज्ञाना-

अविद्या में आश्रय का खण्डन

मायावादी अज्ञान का आश्रय ब्रह्म को मानते हैं। उसका खण्डन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—आपके मत में समस्त अविद्या का आश्रय कौन है ? आप अज्ञान का (अविद्या) आश्रय भी सिद्ध नहीं कर सकते। आपके मत में इसका निरुपण भी असंभव है। हम पूछते हैं कि आपके मत में अविद्या का आश्रय कौन है ? शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म, सर्वज्ञ ईश्वर या जीव ? इस विषय में कुछ आचार्य कहते हैं कि शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म ही अज्ञान का आश्रय है—शुद्ध ब्रह्म के अलावा अन्य सभी अज्ञान में कल्पित होने से वे (अन्य) अज्ञान का आश्रय हो नहीं सकते, कारण अज्ञान

मालिन्यवत् प्रतिबिम्बे जीवे संसारो न तु बिम्बे ब्रह्मणि उपाधेः प्रतिबिम्ब-पक्षपातित्वादिति। अत्र ब्रूमः, शुद्धस्याज्ञानाश्रयत्वे शुद्धत्वभङ्गात्। अज्ञानाश्रयत्वस्यैवाशुद्धत्वादज्ञत्वमेव स्यात्, किञ्चाज्ञानाश्रयस्याज्ञातृत्व-नियमात्, एकत्रज्ञानभावरूपाज्ञानयोस्तमःप्रकाशयोरिव विरुद्धस्वभाव-त्वान्नाश्रयाश्रयित्वसम्भवः। नहि प्रचण्डमार्तण्डमण्डलस्थस्यान्धकारा-श्रयत्वं केनाप्यनुन्मत्तेन वक्तुं शक्यमिति भावः। ननु सूर्यमण्डलेऽन्धकारा-

ज्ञानयोर्विरुद्धत्वान्नाश्रयाश्रयिभावः सम्भवति। तथाचाज्ञानंज्ञानाश्रितं न भवति तद्विरुद्धत्वात्। यत् यद्विरुद्धं तत्तदाश्रितं न भवति यथा तमः प्रकाशाश्रितमिति सामान्यव्याप्तिमूलकानुमानमुक्तं भवतीत्याशयेनाह—**एकत्रेति**। नन्विदमयुक्तं घटतदत्यन्ताभावयोः परस्परविरुद्धत्वेन घटात्यन्ताभावे घटविरुद्धत्वे सत्यपि घटाश्रितत्वेनैव सत्त्वात् घटात्यन्ताभावो हि भूतलादाविव घटेप्यस्ति। अन्यथा तस्य घटेऽसत्वप्रसङ्गादित्यत उक्तम्। **तमः प्रकाशयोरिति**। नात्र विरोधः परस्परविरहरूपोविवक्षितःकिन्तु तमः प्रकाशयोरिव वध्यघातकभावरूपएव। अतोघटतदत्यन्ताभावयोर्वध्य-घातकभावात्मकविरोधाभावान्नव्यभिचार इति भावः। दिवा भीतः पेचकः सौरालोके अन्धकारमारोपयति स चान्धकारो काल्पनिको मिथ्याभूतः सत्यभूतसौरप्रकाशाश्रित

सिद्ध होने पर तत्कल्पित जीवत्व की सिद्धि और जीव सिद्ध होने पर तदाश्रित अज्ञान की सिद्धि—इस तरह इसमें अन्योन्याश्रय दोष। निर्विशेष चिन्मात्र ही अविद्या का आश्रय है—इस विषय में विवरण ग्रन्थ ही प्रमाण है—जैसा कि वहाँ कहा गया है—"आश्रयत्व विषयत्वभागिनी निर्विशेष चितिरेव केवला। पूर्वसिद्ध तमसो हि पश्चिमो नाश्रयोभवति नापि गोचरः" पूर्व सिद्ध तम (अविद्या का) अविद्या कल्पित जीव न आश्रय हो सकता ना ही विषय। दर्पण से मुख का सम्बन्ध मात्र होने से दर्पणगत मालिन्य दर्पण प्रतिबिम्बित मुख में प्रतीत होता है। उसी तरह प्रतिबिम्ब जीव में संसार (अविद्या) न कि बिम्ब ब्रह्म में क्योंकि उपाधि प्रतिबिम्ब पक्षपाती है (उपाधिगत दोष प्रतिबिम्ब के ही होता है। ऐसा कहने पर ग्रन्थकार वैष्णवाचार्य कहते हैं कि शुद्ध ब्रह्म अज्ञान का आश्रय माने तो उसमें शुद्धत्व भङ्ग होता है। अज्ञानाश्रय ही अशुद्ध होता है फिर तो ब्रह्म में अज्ञत्व होगा। दूसरी बात ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है उसमें ज्ञान और अज्ञान जो दोनों तमः प्रकाश की तरह विरुद्ध स्वभाव वाले हैं—कैसे रह सकते? ज्ञान स्वरूप ब्रह्म अज्ञान का आश्रय कैसे हो सकता? इसमें आश्रय आश्रयीभाव कथमपि संभव नहीं है। प्रचण्ड तेजो मण्डल सूर्य को अन्धकार का आश्रय पागल के अलावा कोई नहीं कह सकता। यदि कहें कि सूर्य मण्डल में अन्धकार के अभाव होने पर उसमें ऊलूक को अन्धकार का अनुभव होता है, उसी तरह कल्पित अज्ञान का आश्रयत्व ब्रह्म

भावेऽपि उलूकानुभववत्तत्र कल्पिताज्ञानाश्रयत्वघटनान्नोक्तदोषयोग इति चेन्न, कोवात्राज्ञानकल्पकोलूकस्थानीय इति वक्तव्यम्। न तावज्जीवस्त-स्याज्ञानकल्पितत्वेनोत्तरभावित्वस्य त्वयैवोक्तत्वात्। "पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवती" ति एतदुक्तं भवति। वादिनां मध्ये न तावत् तार्किकयोगमीमांसकसाङ्ख्यानां कस्यचिदप्यज्ञानकल्पकत्वं वक्तुं शक्यं तैरज्ञानवादानङ्गीकारात्। नाप्यौपनिषदानामस्माकं शास्त्रैकवेद्ये ब्रह्मण्यज्ञान-मासीदस्ति भविष्यति वेति कालत्रयेप्यज्ञानकल्पनागन्धाङ्गीकारः। परिशेषात् ये ब्रह्मण्यज्ञानं कल्पयन्ति त एवोलूकस्थानीया इति सिद्धमज्ञाना-श्रयासम्भवस्य तादवस्थ्यं विशेषेणाग्रे निरसिष्यमाणत्वात्॥ ४८॥

इति दृष्टान्तमवलम्ब्य शङ्कते—**नन्विति**। निराकरोति। **नेति**। तस्य=जीवस्य। एतदुक्तंभवतीति। यदुक्तं तदेतद्भवतीत्यर्थः। तैः=तार्किकादिवादिभिः। यदि शुद्धस्य चेतनस्याज्ञानविरोधित्वं न स्यात्तदा तस्य ज्ञानत्वमेव न स्यादिति ज्ञानत्वान्यथानुपपत्त्या तस्याज्ञानं प्रति विरोधित्वं कल्पनीयं तथासति न ब्रह्मण्यज्ञानस्य सम्भावनापीत्याह—**किंचेति**। चैतन्यरूपस्य ज्ञानस्याज्ञान-निवर्तकत्वानङ्गीकारादित्यत आह—**नहीति**। अज्ञानस्य चैतन्यरूपज्ञानानिवर्त्यत्वे तस्याज्ञानत्वमेव न स्यात्, ज्ञाननिवर्त्यत्वस्यैवाज्ञानलक्षणत्वादिति भावः।।४८।।

में स्वीकार दोष नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते—आपके मत में ऊलूक स्थानीय कौन है? अज्ञान कल्पक? यह पहले बताएँ? जीव हो नहीं सकता वह तो स्वयं अज्ञान कल्पित है, अज्ञान सिद्ध होने पर अज्ञान कल्पक ऊलूक होगा—यह बात आपने ही पहले कहा है—'पूर्व सिद्ध तमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः' यहाँ भाव यह है कि दार्शनिकों में न तार्किक, योगाचार्य, मीमांसक अथवा सांख्याचार्यों में किसको यहाँ अज्ञान कल्पक कहेंगे—किसी को भी नहीं कह सकते क्योंकि इनमें किसी ने भी अज्ञानवाद को स्वीकार नहीं किया है। और उपनिषद् विश्वासी हम लोगों के मत में कभी शास्त्रोक्तभेद ब्रह्म भी अज्ञान था, न है ना होगा इस तरह त्रिकाल में हम लोग ब्रह्म में अज्ञान की कल्पना का गन्ध भी स्वीकार नहीं करते। इस तरह जो ब्रह्म में अज्ञान ही कल्पना करते है—वे ऊलूक स्थानीय है—इस प्रकार सिद्ध है कि अज्ञान का आश्रय कथन भी संभव नहीं है। विशेष रूप से इसका आगे और भी खण्डन किया जायेगा।।४८।।

टिप्पणी :— इस मत में शुद्ध ब्रह्म के अतिरिक्त सब जीवत्व ईश्वरत्व आदि अविद्या की कल्पना है, मैं जीव हूँ अल्पज्ञ हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, शूद्रहूँ मैं ईश्वर हूँ सृष्टि रचयिता हूँ, यह अब अज्ञान है, शंकर अविद्या का आश्रय ब्रह्म को मानते हैं, वाचस्पति अविद्या का आश्रय जीव में तथा विषय ब्रह्म को मानते हैं।

किञ्च शुद्धस्याज्ञानाविरोधित्वे ज्ञानत्वमेव न स्यात्। नहि ज्ञानानिवर्त्यमज्ञानं क्वापि दृष्टम्। न च वृत्तिज्ञानं तन्निवर्तकमिति वाच्यम्। विवरणेऽन्तःकरणपरिणामे ज्ञानत्वोपचार इति वाक्येनौपचारिकविरोधिनो मुख्यज्ञानत्वायोगात्, अज्ञानाविरोधित्वे चैतन्यस्य घटादिवज्ज्ञानत्वायोगाच्च, ज्ञानाज्ञाने हि ज्ञातुरर्थप्रकाशाप्रकाशौ। न च

नन्वज्ञानस्य चैतन्यरूपज्ञाननिवर्त्यत्वाभावेऽपि न तस्याज्ञानत्वाभावः वृत्तिरूपज्ञाननिवर्त्यत्वेनापि अज्ञानलक्षणवत्तयाऽज्ञानत्वोपपत्तेरित्याशङ्क्यां परिहरति—**नचेति**। वृत्तिज्ञाने=अन्तः करणवृत्तिरूपज्ञाने। **उपचारादिति**। ज्ञा अवबोधन इति। धातोर्भावव्युत्पत्त्या ज्ञप्तिचैतन्य एव ज्ञानत्वमुख्यमन्तःकरणवृत्तौ तु ज्ञायते चैतन्यमनयेति करणव्युत्पत्त्या ज्ञानत्वमुपचारितमित्युक्तत्वादौपचारिकवृत्तिज्ञानविरोधिनो मुख्यज्ञानत्वमयुक्तं किन्त्वौपचारिकज्ञानत्वमेव स्यादित्यर्थः। चेतनस्य ज्ञानत्वसिद्ध्यर्थमपि तस्याज्ञाननिवर्तकत्वं वाच्यम्। अन्यथा विमतं चेतनं न ज्ञानमज्ञानाविरोधित्वाद्घटवदित्यनुमानेन तस्य ज्ञानत्वमेव न स्यादित्याह—**अज्ञानाविरोधित्वेति। ज्ञानेति**। ज्ञातुरर्थाप्रकाशात्मकाज्ञाननिवर्तकत्वमनुभवसिद्धमित्यर्थः। ननु चैतन्यं न ज्ञानमज्ञानाविरोधित्वादित्यत्राप्रयोजकता। न चाज्ञानाविरोधित्वे ज्ञानत्वमेव न स्यादिति वाच्यम्। हानोपादानादिहेतुत्वेन तदुपपत्तेरित्याशङ्क्य निराकरोति—**नचेति। अज्ञानेति**। साक्षादिति शेषः। तद्धेतुत्वानुभवात्=व्यवहारहेतुत्वानुभवात्। तथा च ज्ञानेनाज्ञाननिवृत्त्यनन्तरमेव विषये व्यवहारस्यानुभवसिद्धत्वादन्यथा

दूसरी बात शुद्ध ब्रह्म को अज्ञान का अविरोधी मानने पर अर्थात् ब्रह्म में अज्ञान मानने पर ब्रह्म ज्ञान ही नहीं हो सकता—कारण अज्ञान कहीं भी ज्ञान से अनिवर्त्य नहीं देखा गया है। यदि कहें कि अज्ञान चैतन्य रूप ज्ञान से अनिवर्त्य न होने पर भी उसमें अज्ञानत्व का अभाव नहीं होगा, वृत्तिरूप ज्ञान से निवर्त्यत्व होने पर भी अज्ञान लक्षण से युक्त होने के कारण उसमें अज्ञानत्व की उपपत्ति हो जाएगी तो ऐसा नहीं कह सकते विवरण में अन्तःकरण के परिणाम में (अन्तःकरण वृत्तिरूप ज्ञान से) ज्ञानत्व का उपचार है, इस वाक्य से औपचारिक विरोधी में मुख्य ज्ञानत्व नहीं होता। अज्ञानरूप अविरोधी होने पर चैतन्य में (ब्रह्म में) घटादि की तरह ज्ञानत्व का अभाव होगा। ज्ञाता का अर्थ में अप्रकाशात्मक अज्ञान निवर्तकत्व अनुभव सिद्ध है ज्ञाता का ज्ञान अर्थ प्रकाशक एवं अज्ञान अप्रकाशक होता है। ज्ञान के अज्ञान का अविरोधी होने पर भी हान तथा उपादान आदि के हेतु होने के कारण ज्ञानत्व की उपपत्ति हो भी तो ऐसा नहीं कह सकते—अज्ञान निवर्तक ही ज्ञानत्व का हेतु है। यदि कहें कि विवरण में करण व्युत्पत्ति के द्वारा बुद्धि की वृत्ति ही ज्ञान है, ऐसा कथन होने से अज्ञान ज्ञान के करण का ही विरोधी है—न कि ज्ञान का

तदविरोधित्वेऽपि व्यवहारादिहेतुज्ञानम्। अज्ञाननिवर्तकस्यैव तद्धेतुत्वानुभवात्। न च विवरणे करणव्युत्पत्त्या बुद्धिवृत्तिर्ज्ञान-मित्युक्तत्वेनाज्ञानं ज्ञानकरणविरोध्येव न तु ज्ञप्तिविरोधीतिवाच्यम्। न जानामीति ज्ञप्तिविरोधित्वेनानुभूयमानस्य ज्ञानान्तरत्वापातात्। साक्षिवेद्ये सुखादावज्ञानत्वादर्शनाच्च। न च स्वतस्तृणतूलादिभासकस्य सौरालो

तद्विरोधान्नाप्रयोजकतेति भावः। दूषणान्तरसिद्धिमेव पुनराशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। बुद्धिरन्तःकरणवृत्तिः कथं तर्ह्यज्ञाने ज्ञाननिवर्त्यत्वलक्षणयोग इत्यत आह—**ज्ञानकरणेति**। नतु ज्ञप्तीति। चैतन्यं ज्ञप्तिरूपमतोनाज्ञानस्य तद्विरोधिज्ञाननिवर्त्यत्वसिद्धिरित्यर्थः। करणविरोधित्वेनानुभूयमानस्य ज्ञप्तिविरोधित्वेनानुभूयमानस्याज्ञानस्य दुरपह्नत्वान्नासिद्धिरिति भावः समाधत्ते—**जानामीति**। 'ज्ञा' धात्वर्थभूतज्ञप्तिविरोध एव नञा प्रतीयत इत्यर्थः। **ज्ञानान्तरत्वादिति**। यदि ज्ञानकरणविरोधिन एवाज्ञानत्वमिष्यते तदा ज्ञप्तिविरोधित्वेनानुभूयमानस्याज्ञानान्तरत्वं स्यादित्यर्थः। यद्यज्ञाने ज्ञप्तिरूपज्ञानविरोधित्वं नाभ्युपेयते तदा सुखादावज्ञाननिवर्तकस्यान्तःकरणवृत्तिरूपकारणस्याभावात्तत्राज्ञानानुभवः स्यादित्याह—**साक्षिवेद्यइति**। तस्माच्चैतन्यस्यैवाज्ञानविरोधित्वं स्वीकार्यं तेन न सिद्ध्यत्येवाज्ञानमित्याशयः। शुद्धचितोऽज्ञानविरोधित्वाभावे वटादिवदप्रकाशापत्तिस्तद्वारणाय वृत्त्यवच्छेदेन तस्या एवाज्ञानविरोधित्वमिति दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति **स्वतइति**।

विरोधी तो ऐसा भी नहीं कह सकते, न जानामि (मैं नहीं जानता) इस प्रकार ज्ञान के विरोधी रूप में अनुभूयमान का अज्ञानान्तरत्व हो जाएगा। यदि अज्ञान में ज्ञप्ति रूप ज्ञान विरोधित्व नहीं स्वीकार करते हैं तो सुख आदि में अज्ञान निवर्तक अन्तःकरण वृत्तिरूप कारण के अभाव से उसमें अज्ञान का अनुभव होगा, यही बात कह रहे हैं 'साक्षिवेद्यसुखादावज्ञानत्वादर्शनाच्च' ग्रन्थ से, इसलिये चैतन्य को ही अज्ञान का विरोधी स्वीकार करना होगा—ऐसी स्थिति में चैतन्य अज्ञान का आश्रय नहीं हो सकता—इस प्रकार अज्ञान का आश्रय ही कोई सिद्ध नहीं होने से अज्ञान सिद्ध नहीं होता। शुद्ध चित् में अज्ञान के विरोधित्व का अभाव होने पर घट आदि की तरह अप्रकाशापत्ति होने से उसके निवारणार्थ वृत्यवच्छेदेन वृत्ति में अज्ञान विरोधित्व, यहाँ दृष्टान्त के द्वारा समझाते हुए कहते हैं कि यदि कहें कि जैसे स्वयमेव तृणतूलक आदि में अवभासक सूर्य प्रभा में सूर्यकान्त मणि देशावच्छेदेन अपने प्रकाश्य तृण तूलक आदि का दाहकत्व होता है, उसी तरह अविद्या एवं उसके कार्य के अवभासक होने पर भी चैतन्य के वृत्यवच्छेदेन दाहकत्व है। अर्थात् जैसे सूर्य तृण तूलक आदि का प्रकाशक भी दाहक भी सूर्य तृणादि का प्रकाशक

कस्य सूर्य्यकान्तावच्छेदेन स्वभास्यदाहकत्ववत्स्वतोऽविद्यातत्कार्यभासकस्यापि चैतन्यस्य वृत्त्यवच्छेदेन तद्दाहकत्वमिति वाच्यम्। सौरालोकसम्बन्धात्सूर्यकान्तादावुत्पन्नस्याग्नेरेव दाहकत्वेन दृष्टान्तासिद्धेः। सौरालोकसम्बन्धं विना मणेरदाहकत्वाच्च। तथा प्रकृतेऽपि वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्यैवाज्ञानविरोधित्वं न वृत्तिमात्रस्यान्वयव्यतिरेकमानात्। स्वभावतोऽज्ञानाविरोधिनोर्ज्ञानस्वभावानुपपत्तेश्च अहमज्ञइति

स्वतोऽविद्यातत्कार्येति। यद्वृत्त्यवच्छिन्नस्य यदविद्या तत्कार्यनाशकत्वं तां वृत्तिं विनैव तदविद्यातत्कार्यभासकस्येत्यर्थः। वृत्त्यवच्छेदेनेति। तदधिष्ठानगोचरवृत्त्यवच्छेदेनेत्यर्थः। दृष्यान्तवैषम्यमुपपादयति—**सौरेति।** उक्तार्थं प्रकृते योजयति—तथेत्यादिना। अहमज्ञ इति धर्मिग्राहकेण साक्षिणाऽहमर्थगतमेवाज्ञानं सिद्ध्यति नतु शुद्धचिद्गतमित्याह—**अहमज्ञ इति।** धर्म्मिग्राहकमानस्य भ्रान्तित्वान्न तद्बाधः शुद्धचिदज्ञानवादस्य तथाहि आत्मनि स्थौल्याभावेऽपि वस्तुतः स्थौल्याश्रयेण देहेनैक्यस्यात्मन्यध्यासाख्यनिमित्तसद्भावमङ्गीकृत्याहं स्थूल इति प्रतीतेर्भ्रमत्वमङ्गीकार्यम्, एवं वस्तुतोऽहङ्कारस्य ज्ञानाश्रयत्वाभावेऽपि वास्तवतदाश्रयचिदैक्यस्याहङ्कारेऽध्यासादहमज्ञ इति प्रतीतिर्भ्रमरूपैव। तथा वस्तुनः केवलायसो दाहकत्वाभावेऽपि दग्धृत्वस्याध्यासश्चैकाग्निसम्बन्धेन निमित्तेनायोदहतीति प्रतीतेर्भ्रान्तित्वमित्याशङ्क्य निराकरोति—**नचेति। असिद्ध्येति।** अहमज्ञ इति धर्मिग्राहकमानाभावेऽज्ञानस्य चैतन्याश्रितत्वसिद्धिस्तत्सिद्धौ तत्सिद्धिस्तथा चाहमज्ञ इत्यस्यायोदहतीतिवद्गौणत्वेनाप्युपपन्नस्य चैतन्याश्रिताज्ञानकल्पनायामसाधकत्वमित्यर्थः। अहमज्ञ इत्यज्ञानग्राहकमानस्य साक्षिरूपत्वान्न भ्रान्तित्वं युक्तं

दाहक दोनों हो सकता है—कोई नहीं होता, उसी प्रकार चैतन्य (ब्रह्म) विरोधी होने पर भी आश्रय हो सकता है—तो ऐसा नहीं कह सकते। वहाँ सौर आलोक के सम्बन्ध से सूर्यकान्त मणि से उत्पन्न अग्नि में दाहकत्व है—इसलिये दृष्टान्त सिद्ध नहीं है। सूर्य के प्रकाश के सम्बन्ध में बिना सूर्य मणि में दाहकत्व नहीं होता। उसी प्रकार प्रकृत में भी वृत्यवच्छिन्न चैतन्य में ही अज्ञान विरोधित्व है—न केवल वृत्ति मात्र में—इसके अन्वय व्यतिरेक ही प्रमाण है। स्वभावतः अज्ञान विरोधी ज्ञान स्वमान नहीं हो सकता इसलिये अज्ञान विरोधी ज्ञान स्वरूप चैतन्य अज्ञान का आश्रय नहीं हो सकता यह भाव है। अहम् अज्ञः इस धर्मी ग्राहक साक्षी द्वारा अधर्म निष्ठ रूप अज्ञान की सिद्धि होती है न कि शुद्ध चिद्गत अज्ञान की। धर्मी ग्राहक मान के भ्रमपूर्ण होने से वह शुद्ध चिद् वृत्ति अज्ञानवाद का बाध नहीं हो सकता—धर्मी ग्राहक मान का आत्मा में स्थलों का अभाव होने पर भी वस्तुतः



अनुवादक विद्वद्वर वरिष्ठ श्रीवैद्यनाथजी झा

पूर्वप्राचार्य श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन

धर्मिग्राहकेण साक्षिणाऽहमर्थनिष्ठतयैवाज्ञानसिद्धेश्च। न च स्थौल्याश्रय-देहैक्याध्यासादहंस्थूलइतिवदज्ञानाश्रयचिदैक्याध्यासात् दग्धृत्वाय-सोरेकाग्निसम्बन्धादयोदहतीति वदज्ञानाहङ्कारयोरेकचिदध्यासाद्वा अहमज्ञ इति धीर्भ्रान्तिरेवेति वाच्यम्। अद्यापि चितोऽज्ञानाश्रयत्वासिद्ध्यान्योन्या-श्रयापत्तेः दोषाजन्यस्याहमज्ञ इति साक्षिज्ञानस्य भ्रान्तित्वायोगाच्च। अज्ञानाकल्पितस्याहमर्थस्य जीवस्यैवाज्ञानाश्रयत्वेन तथाप्रतीत्युपपत्त्या

भ्रान्तेर्दोषजन्यत्वनियमान्नित्यज्ञानस्य साक्षिणस्तदभावेन भ्रान्तित्वायोगादित्याह—**दोषेति।** अहमज्ञ इति साक्षिकं ज्ञानं न भ्रान्तिः दोषाजन्यत्वाद्व्यतिरेकेण सम्मतभ्रमवदित्यनुमानमुक्तम्भवतीति भावः। तथाप्रतीत्युपपत्त्या=अहमज्ञ इति प्रतीत्युपपत्त्या। तत्र=अज्ञानाश्रयत्वे। मायाऽज्ञानं तदाश्रयं महेश्वरमज्ञमित्यर्थः। स च विरुद्धत्वाद्धेय इत्याह— **अज्ञत्वेति। शुक्तीति।** यथा शुक्त्यज्ञानं स्वकार्य्यभ्रान्तिस्व-निवर्तकज्ञानप्रागभावसमानाधिकरणम्। एवमेवेदमप्यज्ञानं ज्ञात्रात्मनिष्ठमेव वक्तव्यं नतु ज्ञानमात्राश्रितमित्यर्थः। विवरण इति। अज्ञानभ्रान्तिसम्यग्ज्ञानानामेकाश्रयत्वमित्यर्थः। ननु भ्रान्त्यज्ञानयोः ज्ञात्रात्मनिष्ठत्वेन सामानाधिकरण्यमेवास्ति। न च ज्ञानरूपस्य चैतन्यस्य ज्ञातृत्वायोग इति वाच्यम्। बुद्धिगतज्ञातृत्वाध्यासस्य चिन्मात्रे सत्त्वादिति शङ्कते—**चिन्मात्रेति। तस्येति।** ज्ञातृत्वाध्यासस्याविद्याकार्य्यत्वादित्यर्थः। **अन्योऽन्याश्रयादिति।** चिन्मात्रेऽज्ञानसिद्धौ तत्कार्य्यज्ञातृत्वाध्याससिद्धिस्तत्सिद्धौ ज्ञानाज्ञानयोर्वैयधि-

स्थौल्याश्रय देह के साथ ऐक्यभावापन्न आत्मा में अध्यास के कारण "अहं स्थूल" इस प्रतीति में भ्रमत्व स्वीकार करना पड़ेगा। इसी प्रकार अहंकार में वस्तुतः अज्ञानाश्रयत्व का अभाव होने पर भी वास्तव ज्ञानाश्रय चित् के साथ ऐक्य का अहंकार का अध्यास से अहमज्ञः यह प्रतीति भ्रमरूप ही है। तथा केवल अय (लोह) में दाहकत्व में दाहकत्व के अभाव होने पर भी उसमें दाहकत्व का अध्यास अग्नि सम्बन्ध में निमित्त होता है—अयो दहति इस प्रतीति में भ्रान्तित्व होता है यही आशंका करके निराकरण करते हैं—'न च स्थौल्याश्रय'—इत्यादि ग्रन्थ से अर्थात् उक्त दृष्टान्त से कहें अहम् अज्ञः यह बुद्धि भ्रान्ति ही है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते कारण अभी तक चित् में अज्ञानाश्रयत्व की असिद्धि होने से अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति होगी और दोष जन्य अहम् अज्ञः इस साक्षि ज्ञान में भ्रान्तित्व का सम्बन्ध नहीं है। अज्ञान से कल्पित अहं पद बोध्य जीव के हैं अज्ञानाश्रय होने से उक्त प्रतीति (अहं अज्ञः) की उपपत्ति हो जाने पर आपकी कुकल्पना में कोई प्रमाण नहीं है। कहें कि "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु

त्वदीयकुसृष्टौ मानाभावात्। न च "मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमिति" श्रुतिस्तत्रमानमिति वाच्यम्। अज्ञत्वमहेश्वरत्वयोर्विरुद्ध-त्वात्। मायाशब्दस्य त्रिगुणद्रव्यपरत्वस्योक्तत्वाच्च। किञ्च शुक्त्याद्य-ज्ञानवत् ज्ञातुरर्थाप्रकाशरूपमिदमप्यज्ञानं स्वकार्य्येण भ्रान्तिसंसरणादिना स्वनिवर्तकेन तत्त्वज्ञानेन स्वसमानयोगक्षेमेण ज्ञानप्रागभावेन च

करण्यरूपबाधकपरिहारसिद्ध्या चिन्मात्रेऽज्ञानसिद्धिरित्यन्योऽन्याश्रयस्तस्मादित्यर्थः। **चैतन्येष्विति।** कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरेकाधिकरण्यनियमाच्च चैतन्ये बुद्धिगतभोक्तृत्वा-ध्याससिद्ध्यर्थं तत्र बुद्धिगतमेवाज्ञानमध्यस्यतामिति बुद्धिरेवाज्ञानाश्रयः स्यादित्यर्थः। यथोक्तं विवरणे। अकर्त्तुर्भोगाभावात् भोक्तृत्वाध्यासः कर्त्तृत्वाध्यासमपेक्षत इति भावः। **देहादाविति।** तत्राप्यज्ञानाध्यासः स्यादिति भावः। चिन्मात्रे ज्ञातृत्वाध्यासोऽस्तीत्येतदप्ययुक्तमित्याह— **बुद्ध्यवच्छिन्न एवेति।** जीव एवेत्यर्थः। बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यस्य ज्ञातृत्वादिति भावः। तद्धर्म्माणाम्=बुद्धिधर्म्माणाम्। तयोरसम्बन्धसद्भावादित्यर्थः। तदभावाच्च= ज्ञातृत्वादीनामध्यासाभावाच्च। बुद्धिधर्म्माणां ज्ञातृत्वादीनां न तदवच्छिन्न चैतन्येऽध्यासः। किन्तु चैतन्यमात्र एव अतो युक्तं तस्य ज्ञातृत्वमित्याह—**तेषामिति।** बुद्धिधर्म्माणां ज्ञातृत्वादीनामिति तदर्थः। जीवाज्ञानवादाभ्युपगतमिति। आरोपितज्ञातृत्वादिमतः चैतन्यस्यैव

महेश्वरम्" यह श्रुति अज्ञानाश्रयत्व में प्रमाण है तो ऐसा नहीं कह सकते—अज्ञत्व और महेश्वरत्व परस्पर विरुद्ध है—ईश्वर भी है और अज्ञ भी, वह तो व्याघात है। दूसरी बात माया शब्द श्रुति में त्रिगुणात्मक द्रव्यपरक है, यह पहले ही कहा गया है। और बात शुक्त में अज्ञान की तरह ज्ञाता के अर्थ के अप्रकाशक रूप यह अज्ञान भी स्वकार्यभूत भ्रमपूर्ण संसरण आदि, स्वनिवर्तक तत्त्वज्ञान तथा स्वसदृश ज्ञान के प्रागभाव के साथ सामानाधिकरण के लिये ज्ञातृ आत्मनिष्ठ ही है—न कि ज्ञान का आश्रित। विवरण में भी कहा है—'जड़ को अज्ञानाश्रय मानने पर भ्रम एवं प्रमा ज्ञान का भी अज्ञानाश्रयत्व का प्रसङ्ग होगा। कहें कि चिन्मात्र में ज्ञातृत्व का अध्यास है तो ऐसा नहीं बोल सकते—उस अज्ञानत्व का ज्ञानाधीन होने से अन्योऽन्याश्रय होगा। कर्तृत्व और भोक्तृत्व में एकाधिकरण का नियम होने से चैतन्य में बुद्धिगत भोक्तृत्वाध्यास की सिद्धि के लिये उसमें बुद्धिगत ही अज्ञान अध्यस्त है—इस प्रकार बुद्धि ही अज्ञान का आश्रय होगा इसलिये चैतन्य में बुद्धिस्थ कर्तृत्व के अध्यास से तन्निष्ठ भोक्तृत्वाध्यास के समान बुद्धि तच्चित्स्थ ज्ञातृत्व के अध्यास से तत्स्थित ज्ञातृत्व में अध्यास की आपत्ति से बुद्धि में ही अज्ञानाश्रयत्व की आपत्ति होगी। देह आदि में भी ज्ञातृत्व के अध्यास का सद्भाव

सामानाधिकरण्याय ज्ञात्रात्मनिष्ठं न तु ज्ञानमात्राश्रितम्। उक्तं हि विवरणेऽपि जडस्य चाज्ञानाश्रयत्वे भ्रान्तिसम्यग्ज्ञानयोरपि तदाश्रयत्वप्रसङ्गादिति। चिन्मात्रेऽपि ज्ञातृत्वाध्यासोऽस्तीतिचेन्न तस्याज्ञातृत्वस्य ज्ञानाधीनत्वेनान्योन्याश्रयात्। चैतन्येषु बुद्धिस्थकर्तृत्वाध्यासेन तन्निष्ठभोक्तृत्वाध्यासवत् बुद्धितच्चित्स्थज्ञातृत्वाध्यासेन तत्स्थज्ञातृत्वाध्यासापत्त्या बुद्धेरेवाज्ञानाश्रयत्वापत्तेश्च। देहादावपि ज्ञातृत्वाध्यास-

त्वन्मते जीवत्वेन तत्राज्ञानाङ्गीकारे जीवे ज्ञानमभिमतं स्यात्तथात्वे उभयानुस्यूतचिन्मात्राश्रितत्वमतं त्यक्तं स्यात्तथा चापसिद्धान्त इति भावः। संसारतत्त्वज्ञानयोरज्ञानसामानाधिकरण्यदर्शनाच्चैतन्येऽज्ञानाङ्गीकारे संसारतत्त्वज्ञानेऽपि चैतन्ये स्यातामित्येतदयुक्तं विशेष्यभूतचिन्मात्रस्थमप्यज्ञानं विशिष्टे जीव एव संसारहेतुरित्याशङ्क्य परिहरति। **न चेति।** विशेष्यनिष्ठम्=चिन्मात्रनिष्ठम्। विशिष्टे= अन्तःकरणावच्छिन्ने चेतने। विशिष्टस्य=अन्तःकरणविशिष्टस्य। तत्त्वज्ञानविरुद्धमिति। तत्त्वज्ञानविरुद्धमतत्त्वज्ञानं विशिष्टनिष्ठमित्यर्थः। न चान्यगताज्ञानस्यान्यत्र संसारहेतुत्वे घटादावपि तद्धेतुत्वापत्तिरिति वाच्यम्। विशेष्यविशेषणभावस्य नियामकत्वादिति भावः। विशिष्टे=बिम्बभूते। विशिष्टविशेष्यभावरूपस्य संसारनियामकस्य बिम्बे ब्रह्मण्यपि सत्त्वादिति भावः। विशेष्यनिष्ठेन कारणेन विशिष्टे कार्य्यजननेऽतिप्रसङ्गमाह—**देहं प्रतीति।** देहं प्रति विशेष्यो योऽहङ्कारस्तस्मिन् कर्तृत्वस्य त्वयाऽङ्गीकारात् अहङ्कारविशिष्टदेहेऽपि तत्कार्य्यं भोक्तृत्वं स्यात् अकर्त्तुर्भोगाभावेन भोक्तृत्वे कर्तृत्वस्य प्रयोजकत्वात्। अहङ्कारदेहयोर्विशेष्यविशेषणभावस्य नियामकस्य सत्त्वादिति भावः। **देहविशिष्ट इति।** देहरूपे विशिष्ट इति तदर्थः। विशेष्यस्थस्याज्ञानस्य विशिष्टे संसारापादकत्वे चिन्मात्रे नित्यमुक्तत्वसद्भावात्तस्य विशिष्टसंसारविरोधित्वमपि स्यात्तदुक्तनियामकस्य सत्त्वादित्यतिप्रसङ्ग इत्याह—**विशेष्येति।** विशेष्यस्थमप्यज्ञानं विशिष्टे

भी है। बुद्ध्यवच्छिन्न में ही तद् धर्मों में ज्ञातृत्व तथा कर्तृत्व के अध्यास से चिन्मात्र में ज्ञातृत्व आदि के अध्यास का अभाव भी है। इसलिये बुद्धि से धर्म ज्ञातृत्व आदि में बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्य में अध्यास नहीं है। किन्तु चैतन्यमात्र में ही है—इसलिये उसका ज्ञातृत्वयुक्त ही है—यही बात कहते हैं—'तेषां चिन्मात्र स्वाध्यायी' अर्थात् उनका चित् मात्र में अध्यास मानने पर तो ज्ञातृत्व आदि धर्मी में ही उसका अङ्गीकार होने से जीवाज्ञानवाद स्वीकृत होगा कहें कि विशेष्यनिष्ठ अज्ञान ही विशिष्ट ब्रह्म में भी जीव के संसार का हेतु है और विशिष्ट तत्त्व ज्ञान विरुद्धत्व भी तो ऐसा नहीं कहा जा सकता—तब तो विशिष्ट ब्रह्म में भी संसारापत्ति हो जायेगी। नाम भी और देह के प्रति विशेष्य अहंकार के कर्तृत्व होने से देह विशिष्ट में

सद्भावाच्च। बुद्ध्यवच्छिन्न एव तद्धर्म्माणां ज्ञातृत्वकर्तृत्वाध्यासेन चिन्मात्रे तदभावाच्च। तेषां चिन्मात्र एवाध्यासे तु ज्ञातृत्वादिमत्येवाङ्गीकारेण जीवाज्ञानवादाभ्युपगतं स्यात्। न च विशेष्यनिष्ठमेवाज्ञानं विशिष्टे ब्रह्मण्यपि जीवे संसारहेतुर्विशिष्टस्य तत्त्वज्ञानविरुद्धश्चेति वाच्यम्। विशिष्टे ब्रह्मण्यपि संसारापत्तेः। देहं प्रति विशेष्याहङ्कारस्य कर्तृकत्वेन देहविशिष्टे भोक्तृत्वापाताच्च। विशेष्यस्य मुक्ते विशिष्टसंसारापाताच्च। न चोपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वस्वाभाव्याज्जीव एव संसार इति वाच्यम्। श्रुत्यादि-साम्येऽर्द्धजरतीयायोगेन चिन्मात्र एवाज्ञानस्येव संसारस्या-

जीव एव संसारहेतुः। न चातिप्रसङ्गोविशेष्यविशिष्टयोरध्यस्तैक्यस्य तन्त्रत्वस्य सत्त्वादिति यत्तदप्येतेनैव निरस्तम्। विशेषणविशिष्टयोरध्यस्तैक्यरूपसंसारप्राप्तिनियामकस्य विशिष्टे संसारापादकत्वे चिन्मात्रे नित्यमुक्तत्वस्य सत्त्वात्तस्य संसारंप्रति बाधकत्वात्तत्र संसारानुप-पत्तेरित्यपि द्रष्टव्यम्। चिन्मात्रसम्बन्धिनोऽप्यज्ञानस्य बिम्बे ब्रह्मणि न संसारापादकत्वं किन्तु जीव एवोपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वादित्याशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। यदि चिन्मात्रे संसारोऽभ्युपेयते तदा चैतन्यस्य नित्यमुक्तत्वश्रुतिविरोधः प्रसज्जेत न इत्यपि-वाच्यम् चिन्मात्रेऽज्ञानाङ्गीकारे 'यःसर्वज्ञःसर्वविदिति' श्रुतिविरोधसाम्यात्। ततश्चार्द्धजरतीयप्रक्रियाऽनुपपत्तिरित्याह—**श्रुत्यादिसाम्य इति**। तथाचोपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वं न सम्भवदुक्तिकमिति भावः। इतोऽपि उपाधेः तथात्वं न सम्भवतीत्याह—**प्रतिबिम्बस्येति**। यदि चिन्मात्र जीवयोर्विशेष्यविशिष्टभावः स्यात्तर्हि उपाधेःप्रतिबिम्बपक्षपातित्वस्वाभाव्यात्प्रतिबिम्बे जीव एव संसारापादकत्वं स्यान्न त्वेवम्, जीवेशयोरत्यन्तभेदेन प्रतिबिम्बस्य जीवस्य छायादिवद्वस्त्वन्तरात् पृथक् पदार्थत्वादिति भावः। अथ चिन्मात्रस्य प्रतिबिम्ब एव तावन्न सम्भवति, तस्याचाक्षुषस्य गन्धरसादेः प्रतिबिम्बनादर्शनाच्चाक्षुषस्यैव मुखादेर्लोहितरूपे चादर्शे स्फटिके प्रतिम्बिदर्शनादित्याह—**अचाक्षुषस्येति। प्रतिबिम्बत्व इति**। प्रतिबिम्बस्योपाधिपरिणामित्वादिति भावः। अस्मद्रीत्येदं

भोक्तृत्व की आपत्ति भी होगी। तथा विशेष्य से युक्त होने पर विशिष्ट में संसारापत्ति होगी। यदि कहें कि उपाधि में प्रतिबिम्ब पक्षपातित्व स्वभाव होने से जीव ही संसार है तो ऐसा नहीं कह सकते—श्रुति आदि में साम्य होने पर अर्धजरतीय प्रक्रिया की अनुपपत्ति के कारण अज्ञान की तरह चिन्मात्र में ही संसार भी स्वीकरणीय होगा—इससे प्रतिबिम्ब में छाया आदि वस्त्वन्तरत्व की आपत्ति होगी अर्थात् यदि चिन्मात्र जीवों में विशेष्य विशिष्ट भाव होगा तब उपाधि के प्रतिबिम्ब पातित्व स्वभाव के कारण प्रतिबिम्ब जीव में ही संसारी पादकत्व होगा। यदि

प्यङ्गीकार्य्यत्वात् प्रतिबिम्बस्य छायादिवद्वस्त्वन्तराच्च। अचाक्षुषस्य चैतन्यस्य गन्धरसादिवत् प्रतिबिम्बानर्हत्वाच्चप्रतिबिम्बत्वे जीवस्य सादित्वाद्यापत्तेश्च सूर्यस्य जलइव मरीचिकाजलेष्वप्रतिफलनेन चिदसमसत्ताकस्याज्ञानस्य चितम्प्रत्युपाधित्वायोगाच्च। अस्वच्छद्रव्य-स्याज्ञानस्य प्रतिबिम्बनोपाधित्वायोगाच्च। अविद्याया चिन्मात्राभिमुख्या-भावाच्च। उपाधेरज्ञानस्याकाशाद्यात्मना परिणामे प्रतिबिम्बापायापा-ताच्च॥ ४९ ॥

दूषणम्। अज्ञानस्य प्रतिबिम्बनोपाधित्वं न सम्भवतीत्याह—**सूर्य्यस्येति**। लोके यत्प्रतिफलति तत्समानसत्ताकस्यैवोपाधित्वं दृष्टं सूर्य्यप्रतिफलनोपाधेर्जलस्य सूर्य्यसमसत्ताकत्वदर्शनात्। नच तद्दर्शनमात्रं प्रयोजकमिति वाच्यम्। मेरुमरीचिकाजलेषु सूर्य्यसमसत्ताकत्वाभावेन तत्र प्रतिफलनाभावात्। एवम्प्रकृतेऽज्ञानस्य चिदसमसत्ताकत्वेन चितम्प्रत्युपाधि-त्वायोगादित्यर्थः। प्रतिबिम्बनोपाधित्वप्रयोजकस्य स्वच्छद्रव्यत्वस्याज्ञानेऽभावान्ना-ज्ञानम्प्रतिबिम्बनोपाधिरित्याह—**अस्वच्छेति**। अन्यथा पाषाणादावपि प्रतिफलनप्रसङ्गा-दितिभावः। **चिन्मात्रेति**। दर्पणाद्युपाधेर्बिम्बाभिमुख्यदर्शनादिह चैतन्याविद्ययोरुभयोरपि सर्वगतत्वेनापरिच्छिन्नतयाऽविद्यायाश्चिन्मात्रम्प्रति प्राच्यत्वरूपस्य चितश्चाविद्याम्प्रति-प्रतीचीनत्वरूपस्याभिमुख्यस्याभावाच्च न प्रातीतिकबिम्बनोपाधित्वमविद्यायाइत्यर्थः। **उपाधेरिति**। जलाद्युपाधेर्नाशेन कर्दमात्मना परिणामेतत्रत्यप्रतिबिम्बापायोदृष्टः। एवं जीवरूपप्रतिबिम्बात्मना परिणतस्याज्ञानस्यापरिच्छिन्नाकाशादिपरिणामार्थं सर्वेषामविद्यांशानां विकृतत्वादाकाशाद्यात्मनाऽविद्यापरिणामे जीवाख्यप्रतिबिम्बापायापत्त्या न प्रतिबिम्बपक्षपातिता वचनं युक्तमित्यर्थः। **तत्त्वमिति**। प्रतिबिम्बपक्षपाति-त्वमित्यर्थः ।।४९ ।।

चिन्मात्र में संसार स्वीकार करते हैं तो चैतन्य में नित्य मुक्तत्व प्रतिपादक श्रुति का विरोध होगा न, यह भी कहना होगा चित् मात्र में अज्ञान स्वीकार करने पर 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्' इस श्रुति का विरोध समान है तब अर्धजरतीय प्रक्रिया की अनुपपत्ति—यही कह रहे है श्रुत्यादि ग्रन्थ से अर्थात् श्रुति आदि के साम्य में अर्धजरतीय प्रक्रिया की अनुपपत्ति के चिन्मात्र में ही अज्ञान की तरह संसार स्वीकार करना होगा—इस तरह उपाधि में प्रतिबिम्ब पक्ष पातित्व संभव नहीं यह भाव है ।।४९ ।।

किञ्चोपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वमपि दुर्वचम् विकल्पासहत्वात्। तथाहि तत्त्वं नाम किं तत्र स्वधर्म्मप्रतिभासकत्वं वा स्वकार्यप्रतिभासक-त्वम्वा स्वकार्य्यनिष्ठधर्म्मप्रतिभासकत्वं वा प्रतिबिम्बम्प्रति स्वविषयाव-च्छेदकत्वम्वेति विवेचनीयम्। नाद्यः, मालिन्यादेर्दर्पणनिष्ठत्ववत् सुषुप्त्याद्यनुवृत्तस्याविद्यारूपस्य वाऽविद्यावच्छिन्नत्वरूपस्य वा सुषुप्त्याद्यनतुवृत्तस्य कर्तृत्वप्रमातृत्वादिरूपस्य वा संसारस्याज्ञान-

प्रतिबिम्बम्=जीवम्। प्रतिबिम्बे प्रतीयमानाः सुषुप्त्याद्यनुगता अविद्याऽवच्छिन्नत्वादया धर्म्माः प्रतिमुखगतमालिन्यादेर्दर्पणनिष्ठत्ववदज्ञानवृत्तितया न प्रतीयन्त इत्याशयेनाद्यविकल्पमपाकरोति—**नाद्य इति**। उपाध्यज्ञाने प्रतीयमानानाञ्च धर्म्माणां न जीवनिष्ठत्वमित्याह—**ज्ञानेति**। ज्ञानञ्च क्रिया च ज्ञानक्रिये तदुभयजन्य-संस्काराणामित्यर्थः। तेषाम्=ज्ञानक्रियाजन्यसंस्काराणाम्। यतस्ते संस्कारा आत्मनि न प्रतीयन्त अतएवाविद्यास्तमयो मोक्षो भवतीत्यर्थः। सा=अविद्या। बन्धिका= बन्धकारणीभूता। बद्धा=बन्धवती। येन=बन्धवत्वेन। **स्वनिष्ठेति**। उपाधिनिष्ठेत्यर्थः। स्वकार्य्यप्रतिभासकत्वरूपं द्वितीयकल्पं निरस्यति—**द्वितीयइति**। जीवब्रह्मणोरज्ञ

दूसरी बात इसलिये भी उपाधि में प्रतिबिम्ब पक्षपातित्व संभव नहीं—प्रतिबिम्ब छाया आदि की तरह अन्य वस्तु है। यदि चिन्मात्र जीव में विशेष्य विशिष्टभाव होगा तो उपाधि के प्रतिबिम्ब पक्षपाति स्वभाव के कारण प्रतिबिम्ब जीव में ही संसारापादकत्व होगा। पर ऐसा नहीं है, जीव और ईश में अत्यन्त भेद होने से प्रतिबिम्ब जीव का छाया आदि की तरह पृथक् पदार्थत्व है। चाक्षुष प्रत्यक्ष में अयोग्य गन्ध रस आदि की तरह चिन्मात्र का प्रतिबिम्ब संभव नहीं है कारण चाक्षुष मुख आदि का ही लोहित रूप आदर्श में प्रतिबिम्ब देखा जाता है। प्रतिबिम्ब मानने पर जीव में सादित्व आदि की आपत्ति भी होगी। दूसरी बात अज्ञान प्रतिबिम्ब की उपाधि संभव नहीं—कारण सूर्य का जल में ही प्रतिबिम्ब होता है—मृग-मरीचिका के जल में नहीं। इससे सिद्ध है कि लोक में समान सत्ताक उपाधि में ही प्रतिबिम्ब होता है—सूर्य प्रतिबिम्ब के समसत्ताक आधार जल में ही सूर्य का प्रतिबिम्ब होता है—मृग-मरीचिका जल में सूर्य समसत्ताकत्व का अभाव होने से उसका प्रतिबिम्ब नहीं होता इसी प्रकार अज्ञान के चित् असमसत्ताक होने से चित् के प्रति उपाधि नहीं होगा। दूसरी बात स्वच्छ द्रव्य के ही प्रतिबिम्ब की उपाधि होने से अस्वच्छ द्रव्य अज्ञान प्रतिबिम्ब की उपाधि नहीं हो सकती। और बात यह भी है कि प्रतिबिम्ब की उपाधि में बिम्ब का आभिमुख्य

निष्ठत्वाभावात्। ज्ञानक्रियासंस्काराणाञ्च त्वन्मतेऽज्ञानस्थत्वेऽपि नित्यातीन्द्रियाणांतेषामात्मनि कदाऽप्यप्रतीतेः। ''अविद्याऽस्तमयोमोक्षः सा संसार उदाहृत'' इति त्वन्मतेऽपि ह्यविद्याबन्धिका बन्धोवा न तु बद्धा येन स्वनिष्ठबन्धरूपधर्म्मसंक्रामकंस्यात्, न द्वितीयः। विच्छेदादे-रुपाधिकार्य्यस्य बिम्बे महाकाशे च दर्शनात्। मुखस्य बिम्बनादे

नोपाधिना बिम्बप्रतिबिम्बभाव इति केषाञ्चित्पक्षः। घटाद्युपाधिना महाकाशस्य घटावच्छिन्नाकाशस्य च विच्छेदो भवति न प्रतिबिम्बभावः। एवं जीवेश्वरयोरज्ञानोपाधिना विच्छेदभावं जायत इत्यन्येषाम्पक्षस्तत्र घटाद्युपाधिकार्य्यभूतो यो विच्छेदो विभागः स महाकाशैकदेशे घटाद्यवच्छिन्ने प्रतिबिम्बस्थानीय एव नास्ति किं नाम बिम्बस्थानीये महाकाशेऽप्यस्ति, विच्छेदस्य निष्टत्वादित्याशयेनाह—**विच्छेदादेरिति।** विभागादेरिति तदर्थः। आदिग्रहणेन बिम्बप्रतिबिम्बभावस्य संग्रहः। तथा चोपाधिकार्यप्रतिभासो न प्रतिबिम्ब एव किन्तु बिम्बेऽपि, अत उपाधिकार्य्यस्योभयत्रापि दर्शनान्नोपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वमिति भावः। उपाधिना स्वकार्य्यं प्रतिबिम्ब एवावभास्यत इत्यङ्गीकारे बाधकमाह—**मुखेति।** उभयानुस्यूतमुखमात्राबिम्बनात्। **आदीति**—प्रतिबिम्बनस्येत्यर्थः। **ब्रह्मेति।** बिम्बभूतेत्यर्थः। **अनौपाधिकत्वेति।** ब्रह्मणि, परमते, सार्वज्ञ्यादयो धर्म्मा औपाधिकाः सन्ति तेषामज्ञान कार्य्यत्वानभ्युपगमे स्वाभाविकत्वं प्रसज्जेत इति भावः। ननु दर्पणाद्युपाधेः प्रतिबिम्बस्थौल्यादिरूपकार्य्यप्रतिभासकत्वं दृष्टमिति

आवश्यक है—जैसे दर्पण उपाधि पूर्व में होता है बिम्ब मुख पश्चिम में होता है—इस प्रकार बिम्ब और उपाधि में आभिमुख्य होने पर ही प्रतिबिम्ब देखा जाता है प्रकृत में चैतन्य बिम्ब उपाधि अविद्या दोनों के सर्वगत होने से अपरिच्छिन्न होने के कारण अविद्या का चिन्मात्र में प्रति प्राच्यत्व रूप तथा चित् का अविद्या में प्रति प्रतीचीनत्वरूप आभिमुख्य का अभाव होने से अविद्या में चित् के प्रतिबिम्ब उपाधित्व संभव नहीं है। दूसरी बात उपाधि अज्ञान के आकाश आदि रूप में परिणत होने पर प्रतिबिम्ब का अपाय (नाश) हो जाएगा और अन्य बात उपाधि में प्रतिबिम्ब पक्षपातित्व होता है—यह कहना भी कठिन होगा, क्योंकि इसमें विकल्प से कोई उत्तर नहीं है—जैसे हम पूछेंगे प्रतिबिम्ब पक्षपातित्व क्या है? क्या उसमें उपाधि धर्म प्रतिभासकत्व? अथवा उपाधि कार्य प्रतिभासकत्व, किंवा स्वकार्यनिष्ठ धर्म प्रतिभासकत्व अथवा प्रतिबिम्ब जीव के प्रति स्वविषयावच्छेदकत्व? पहला पक्ष नहीं कह सकते मालिन्य आदि धर्म दर्पण निष्ठत्व की तरह सुषुप्ति आदि

ब्रह्मसार्वज्ञ्यादेश्चानौपाधिकत्वापाताच्च। प्रतिमुखगतस्थौल्यादेरुपाधिकार्य्यत्वेऽपीह जीवगतस्य संसारस्यानादित्वेनाकार्य्यत्वात्। न तृतीय-चतुर्थौ। दर्पणघटादावदृष्टेः। एवं बुद्धिरूपोपाधेरपि न प्रतिबिम्बपक्ष-पातित्वं, तस्य प्रतिबिम्बापक्षपातिजपाकुसुमस्थानीयत्वेन तत्पक्ष-पात्यादर्शस्थानीयत्वाभावात्। ननु नोपाध्यवच्छिन्नस्तत्प्रतिबिम्बितो वा

तत्साम्याभावादित्याह—**प्रतिमुखेति**। तथाच यदुपाधिकार्य्यं विच्छेदादि न तत्प्रतिबिम्बमात्रे यश्च प्रतिबिम्बगतः संसारस्तस्यानादित्वे नोपाधिकार्य्यत्वं तथात्वे सादित्वापातादिति भावः। **दर्पणेति**। प्रतिबिम्बत्वोपाधौ विच्छेदोपाधौ दर्पणे विच्छेदमात्रोपाधिभूते घटादौ च स्वकार्यं यन्मालिन्यविच्छेदादिरूपं तन्निष्ठो यो धर्म्मस्तत्प्रतिभासिकं नास्ति। बिम्बभूते घटाकाशे च दर्पणाद्युपाधिना स्वकार्यनिष्ठधर्म्माप्रतिभासनमित्यर्थः। अज्ञानवद्बुद्धिरप्युपाधिर्भवति। सोपाधिभूता बुद्धिश्चिन्मात्रसंबन्धिनी सती बिम्बप्रतिबिम्बभावं सम्पाद्य प्रतिबिम्बपक्षपातिनी भवतीति केषाञ्चिन्मतं दूषयति—**एवमिति**। तन्मते उपाधिद्विविधः। प्रतिबिम्बपक्षपाती तदपक्षपाती चेति। तत्राद्यो दर्पणाद्युपाधिः। द्वितीयस्तु जपाकुसुमादिः। स्फटिके लौहित्यं दर्शयति तत्र स्फटिके न जपाकुसुमप्रतिबिम्बः। एवं बुद्धिरूपोपाधिर्न प्रतिबिम्बपक्षपातीति

अवस्था में अनुवृत्त अविद्या रूप या अविद्यावच्छिन्नत्व रूप अथवा सुषुप्ति आदि अवस्था में अनुवृत्त कर्तृत्व, प्रमातृत्व आदि रूप संसार के अज्ञान निष्ठत्व का अभाव है। कारण ज्ञान, क्रिया तथा संस्कार का आपके मत में अज्ञान में स्थित होने पर भी उन नित्य अतीन्द्रिय धर्मों की आत्मा में कभी भी प्रतीति नहीं होती। क्योंकि वह ''अविद्यास्तमयो मोक्षः सा संसार उदाहृतः'' ऐसा वचन होने से आपके मत में भी वह अविद्या बन्धन कारिणी है, बन्ध रूप है न कि बन्धवती—जिससे कि वह स्वनिष्ठ बन्धनरूप धर्म के प्रतिबिम्ब में संक्रामक होती। इस प्रकार दूसरा पक्ष स्वकार्य प्रतिभासकत्व भी नहीं कह सकते विच्छेद आदि ....विभाग आदि उपाधि कार्य का बिम्ब महाकाश में देखा गया। यहाँ आदि पद से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का ग्रहण है। इस तरह उपाधि कार्य का प्रतिभास न केवल प्रतिबिम्ब में होता है, किन्तु बिम्ब में भी है इसलिये उपाधि का कार्य दोनों जगह देखने से उपाधि में प्रतिबिम्ब पक्षपातित्व नहीं है, यह भाव उपाधि स्वकार्य को केवल प्रतिबिम्ब में ही अवभासित करता है, ऐसा स्वीकार करें तो बाधक है—मुखस्य बिम्बना अर्थात् उभय अनुस्यूत मुख मात्र में अबिम्बन से मुख बिम्बन तथा बिम्बभूत ब्रह्म के सार्वज्ञ आदि का अनौपाधिकत्व भी हो जाएगा। ब्रह्म में परमत में सार्वज्ञ आदि

जीवः किन्त्वविद्यया ब्रह्मण एव जीवत्वम्। ''राजसूनोः स्मृतिप्राप्तौ व्याधभावो निवर्तते। यथैवमात्मनोऽज्ञस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यत'' इति वार्त्तिकोक्तेः। कश्चित्किल राजपुत्रो व्याधगृहे सम्वर्द्धित इति बृहदारण्य-भाष्याच्च। व्याधवर्द्धितराजपुत्रदृष्टान्तोक्त्या ब्रह्मैव स्वाविद्यया संसरति स्वविद्यया मुच्यत इति स्वीकाराच्च। नित्यमुक्तश्रुतिस्तु तत्त्वतः कदाऽपि संसाराभावविषयेति चेन्न, यादृशः कल्पितोप्यनर्थरूपो ज्ञानाच्छेतव्यो बन्धः सदा मुक्तौ

त्वदाचार्य्यैः स्वीकृतत्वेन तत्र तद्विरोधादित्याशयेनाह—**तस्येति**। बुद्धिरूपोपाधेरित्यर्थः। **तत्पक्षपातीति**। प्रतिबिम्बपक्षपात्यादर्शस्थानीयत्वाभावादिति तदर्थः। अथ नावच्छेदेनापि प्रतिबिम्बनं किन्त्वविद्यया ब्रह्मण एव जीवत्वमिति शङ्कते—**नन्विति**। **राजसूनोरिति**। व्याधगेहे संवर्द्धितस्य कस्यचिद्राजसूनोः त्वं राजसूनुरसि न व्याध इति केनचिदाप्तेनोक्ते पश्चात्तद्वाक्येनाहं राजसूनुरस्मीति स्वरूपस्य स्मृतिप्राप्तौ व्याधभावो निवर्तते। एवमज्ञस्य जीवभावेनाज्ञत्वम्प्राप्तस्य ब्रह्मणस्तत्त्वमस्यादिवाक्यतः स्वस्वरूपे जाते ज्ञाने जीवभावो निवर्तते। इति सुरेश्वरीयबृहदारण्यवार्त्तिकार्थः। भाष्यं शाङ्करीयम्। ननु ब्रह्मणो जीवत्वे संसारास्पृष्टचैतन्याभावप्राप्त्या नित्यमुक्तत्वबोधकश्रुतिविरोध इत्यत आह—**नित्यमुक्तेति**।

धर्म औपाधिक है—उन्हें अज्ञान का कार्य नहीं मानने से उनमें स्वाभाविकत्व का प्रसङ्ग हो जाएगा। प्रतिमुखगत स्थौल्य आदि उपाधि कार्य होने पर भी जीवगत संसार के अनादि होने से उसमें अकार्यत्व होगा—इस प्रकार जो उपाधिकार्य विच्छेद आदि है—वह प्रतिबिम्ब मात्र में नहीं है और जो प्रतिबिम्बगत संसार है, उसे अनादि मानने पर उपाधि कार्यत्व नहीं होगा। ऐसा होने पर सादित्व की आपत्ति होगी यह भाव है। इसी तरह तृतीय एवं चतुर्थ विकल्प भी नहीं कह सकते दर्पण—घट आदि में वैसा नहीं देखा गया है। अर्थात् प्रतिबिम्बत्वोपाधि विच्छेदोपाधि दर्पण में तथा विच्छेदमात्रोपाधि घटादि में भी जो स्वकार्य मालिन्य विच्छेदादि रूप है—तन्निःसृत जो धर्म है, वह प्रातिभासिक नहीं है।

अब अज्ञान की तरह बुद्धि भी उपाधि होती है। और वह उपाधिभूत बुद्धि चिन्मात्र सम्बन्धिनी होकर बिम्ब प्रतिबिम्ब का सम्पादन कर प्रतिबिम्ब पक्षपाति होती है—ऐसा किसी का मत है—उसका खण्डन करते हैं 'एवं बुद्धिरूपोपाधेरपि.......' से अर्थात् उनके मत में उपाधि दो तरह की होती है—

शोकाभावश्रुतिरतिशोकस्य तात्त्विकनिषेधपरा स्यात्। असर्वज्ञत्वादिना अनुभवसिद्धाज्जीवादन्यस्य चेतनस्याभावेन सार्वज्ञ्यादिश्रुतेर्निर्विषयत्वापत्तेश्च। बहुजीववादे ब्रह्मभावरूपमुक्तेरपुमर्थतापत्तेश्च। एकजीववादेऽपि जीवब्रह्मणोः

तत्त्वत इति। जीवभावं प्राप्त एव ब्रह्मणि संसारः कदापि नास्ति किन्त्वाविद्यक एवेत्यर्थः। परिहरति—**नेति। सदेति।** सर्वदा तादृशबन्धाभावस्यैव नित्यमुक्तत्वप्रतिपादकश्रुत्यर्थत्वादिति भावः। संसारवत्यपि नित्यमुक्तत्वबोधकश्रुतेरुपपत्तौ तंन्न्यायेन शोकाभावबोधक श्रुतेरपि शोकवत्येव तात्त्विकशोकाभावप्रतिपादनपरत्वेनोपपत्तेरित्याह—**शोकाभावेति।** ननु जीवादन्यस्य चेतनस्याभावेऽपि न सार्वज्ञ्यश्रुतेर्निर्विषयकत्वं जीवविषयकत्वोपपत्तेरित्यत उक्तमसार्वज्ञत्वादिनेति। ब्रह्मैवस्वज्ञानाभावाद्यथा संसरतीति पक्षे जीवातिरिक्तस्य बिम्बस्थानीयस्य ब्रह्मणोऽभावाज्जीवस्य चासर्वज्ञत्वेनानुभूयमानत्वात् सर्वज्ञत्वस्येवा-सर्वज्ञत्वस्यापि कल्पितत्वाकल्पितत्वाभ्यामपि व्यवस्थासम्भवादित्याशयः। **ब्रह्मभावेति।** कल्पितेनापि संसारेणास्पृष्टचैतन्याभावेऽपि संसारिप्राप्तिरेवमुक्तिरित्यापत्तेरित्यर्थः। ननु बहुजीववादे बद्धमुक्तव्यवस्थासत्वेन तत्रैतद्दूषणप्राप्तावपि नैकजीववादेऽयं दोष इत्यत आह—**एकजीवेति।** ब्रह्मैव स्वाविद्यया एकजीवभावं प्राप्तं यदा तदा तस्मिन् पक्षे

एक प्रतिबिम्ब पक्षपाती, दूसरी उसकी अपक्षपाती। इनमें पहली उपाधि है—दर्पण आदि उपाधि—दूसरी उपाधि है जपाकुसुम आदि उपाधि। स्फटिक में लौहित्य को दिखाती है। वहाँ स्फटिक में जपाकुसुम का प्रतिबिम्ब नहीं होता। इसी प्रकार बुद्धि रूप उपाधि भी प्रतिबिम्ब की पक्षपाती नहीं होती—ऐसा आपके आचार्यों ने स्वीकार किया है—वहाँ उसका विरोध है—इसी आशय से कहते हैं—तस्य अर्थात् बुद्धि रूप उपाधि में प्रतिबिम्ब के अपक्षपाती जपाकुसुम स्थानीय होने से उसके पक्षपाती दर्पण स्थानीयत्व का अभाव है।

यदि कहें कि जीव ना ही उपाध्यवच्छिन्न है ना ही उपाधि प्रतिबिम्बित, किन्तु अविद्यावश ब्रह्म ही जीवत्व को प्राप्त होता है जैसा कि इस सम्बन्ध में वार्तिककार श्री सुरेश्वराचार्य का कथन है—"राजसूनोः स्मृति प्राप्तौ व्याधभावो निवर्तते तथैवमात्मनोऽज्ञस्य तत्त्वमस्यादि वाक्यतः" किसी व्याध के घर में पालन-पोषण द्वारा संबंधित किसी राजकुमार के बड़े हो जाने पर किसी आप्त पुरुष द्वारा जब यह कहा जाता है कि तुम राजकुमार हो, व्याध नहीं, ऐसा सुनकर जिस तरह उसके राजकुमारत्व की स्मृति प्राप्त हो जाने पर व्याध भाव की निवृत्ति हो जाती है, इसी

संसार्यसंसार्य्यादि-व्यवस्थाश्रुतिविरोधाच्च। तयोर्व्यावहारिकभेदस्याप्यभावेन त्वन्मतेऽपि तत्पराभिः "द्वासुपर्णेत्यादिश्रुतिभिः।" अन्यश्च परमो राजंस्तथान्यः

जीवातिरिक्तचैतन्यस्यैवाभावान्न घटते बद्धमुक्तव्यवस्थापकश्रुतेर्प्रामाण्यमित्यर्थः। अत्यन्ताभेदवादिमते व्यावहारिकभेदेन जीवान्यचैतन्यस्य सत्वे "द्वासुपर्णेत्यादि भेदप्रतिपादकश्रुत्यादीनां तद्विषयत्वेनाविरोधः। एकजीववादे तु व्यावहारिकभेदो नास्तीति भेदप्रतिपादकश्रुत्यादि विरोधः स्यादित्याह—**तयोरिति**। जीवब्रह्मणोरिति तदर्थः। **अन्यश्चेति**। हे राजन् परमः=ईश्वरः। अन्यः=पञ्चविंशक इति। पञ्चविंश एव पञ्चविंशक इति स्वार्थे कप्रत्ययः। वर्णानां मध्ये पञ्चविंशो मकारः क्षेत्रज्ञवाचकस्तथाहि "भूतानि च कवर्गेण चवर्गेणेन्द्रियाणि च। टवर्गेण तवर्गेण ज्ञानगन्धादयस्तथा। मनः पकारेणैवोक्तं फकारेण त्वहंकृतिः बकारेण भकारेण महान् प्रकृतिरुच्यते आत्मातु मकारेण पञ्चविंशकउच्यतेइति सच क्षेत्रज्ञोऽन्यः भिन्न इत्यर्थः। स्मृतिमुदाहरति—तान्यहमिति। जीवेश्वरयोर्भेदप्रतिपादकसूत्राण्युदाहरति। **शारीरश्चेति**। प्रधानवज्जीवोऽपि नान्तर्यामी भवितुमर्हति सर्वनियन्तृत्वनिरुपाधिकामृतत्वाद्यसम्भवात्। अपिचैनं जीवं काण्वा माध्यन्दिनाश्च उभयेपि। अन्तर्यामिणो भेदेनाधीयत इति सूत्रार्थः। "आदित्ये

प्रकार जीव भाव से अज्ञत्व को प्राप्त ब्रह्म को "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों द्वारा स्व स्वरूप ज्ञात होने पर जीव भाव की निवृत्ति हो जाती है। यह श्री सुरेश्वराचार्य बृहदारण्यक वार्तिक का अर्थ है। कोई राजकुमार व्याध के घर में संवर्धित हुआ—ऐसा वृहदारण्यक भाष्य भी है। व्याध गृह में वर्धित राजपुत्र के दृष्टान्त से ब्रह्म ही अपनी अविद्या से बद्ध हो जाता है तथा अपनी विद्या से मुक्त होता है—ऐसा स्वीकार किया गया है नित्य मुक्त श्रुति तो तत्त्व ब्रह्म कभी संसारभाव को प्राप्त नहीं होता—एतदर्थ है तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण ज्ञान के द्वारा विनाश्य यह कल्पित अनर्थरूप बन्धन, मुक्ति दशा में सद्य शोकाभाव प्रतिपादन श्रुति अतिशोक में तात्विक निषेध परक होगी तथा असर्वज्ञत्व आदि के रूप में अनुभव सिद्ध जीव से भिन्न अन्य चेतन के अभाव से सार्वज्ञ आदि प्रतिपादन श्रुति में निर्विषयत्वापत्ति भी हो जाएगी तथा बहुजीववाद में ब्रह्मभाव रूप मुक्ति में पुरुषार्थत्वाभाव की आपत्ति भी होगी अर्थात् कल्पित संसार से अस्पृष्ट चैतन्य के अभाव में भी संसारि प्राप्ति ही मुक्ति है—ऐसी आपत्ति होगी। कहें कि बहुजीववाद में मुक्त व्यवस्था होने से उसके यह दोष होने पर भी एक जीववाद में यह दोष नहीं होगा—इस पर कहते

पञ्चविंशकः "तान्यहं वेदसर्वाणि न त्वं वेत्थपरन्तपे" त्यादिस्मृतिभिश्च "शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते (१ । २ । २१) भेदव्यपदेशाच्चान्यः (१ । १ । २२) अधिकन्तु भेदनिर्देशात् (२ । १ । २१)" इति सूत्रैऽश्च तस्माच्छारीरादन्य एवेश्वरः । "आत्मानौ हि तावुभौ चेतनावेकः कर्ता

तिष्ठन्नित्यन्तर्यामिब्राह्मणे भेदव्यपदेशाच्च नादित्यपुरुषोजीवः", किन्तु तदरिक्तं ब्रह्मेत्यभ्युपगन्तव्यमिति। जीवादधिकं ब्रह्म ततो भिन्नमेव आत्मावारे द्रष्टव्यः ब्रह्मविदाप्नोति परं य आत्मानमन्तरो यमयतीति जीवब्रह्मणोर्भेदनिर्देशादिति सूत्रयोरर्थः। उक्तार्थं पूज्यपादशङ्कराचार्य्यभाष्येणापि द्रढयति—**तस्मादिति**। विवरणविरोधमप्याह—**तत्वज्ञानेति।** बिम्बप्रतिबिम्बयोरभेदेऽपि बिम्बेऽवदातत्वं प्रतिमुखे श्यामत्वमित्येवमन्योन्यस्मिन्नवतिष्ठते। एवं तत्वज्ञानसंसारावपि नियतावेवेत्यर्थः।

हैं कि एक जीववाद में भी जीव ब्रह्म में संसारी असंसारी की व्यवस्था अर्थात् जीव संसारी है—ब्रह्म असंसारी आदि व्यवस्था प्रतिपादन श्रुति का विरोध ही होगा। ब्रह्म ही जब अपनी अविद्या से एक जीवभाव प्राप्त होता है—उस पक्ष में जीव के अतिरिक्त चैतन्य का ही अभाव होने से बद्ध मुक्त आदि व्यवस्थापक श्रुति का प्रामाण्य नहीं सिद्ध होता है अत्यन्त अभेदवादी के मत में व्यावहारिक भेद स्वीकार होने से जीव से अन्य चैतन्य के होने से "द्वा सुपर्णा" इत्यादि भेद प्रतिपादक श्रुतियों का भेद विषयक होने से अविरोध है। एक जीववाद में तो व्यावहारिक भेद नहीं है इसलिये भेद प्रतिपादक श्रुति आदि का विरोध होगा, यही बात कह रहे हैं—'तयो व्यावहारिक भेदस्याप्यभावेन........' अर्थात् जीव ब्रह्म में व्यावहारिक भेद का भी अभाव होने से "द्वा सुपर्णा" इत्यादि श्रुतियों से विरोध होगा। इसी प्रकार "अन्यश्च परमो राजंस्तथान्यः पञ्चविंशमः।" तथा 'तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप' इत्यादि श्रुतियों का भी विरोध होगा। अर्थात् हे राजन्! परम ईश्वर अन्य है तथा पञ्चविंशक जीव अन्य है। यहाँ पञ्चविंश एव पञ्च विंशक है—स्वार्थ में क प्रत्यय है। वर्णों में पच्चीसवाँ वर्ण मकार है जो जीव का वाचक है—जैसा कि स्मृति का वचन है—'भूतानि च कवर्गेण चवर्गेणेन्द्रियाणि च टवर्गेण तवर्गेण ज्ञान गन्धादयस्तथा। मनः पकारेणैवोक्तं फकारेण त्वहं कृतिः। बकारेण भकारेण महान् प्रकृति रुच्यते। आत्मा तु मकारेण पञ्चविंशक उच्यते' अर्थात् कवर्ग के पाँच वर्णों में पञ्च महाभूत, चवर्ग से इन्द्रियाँ, टवर्ग एवं तवर्ग से पाँच कर्म—(वाक्पादपाणि आदि) तथा पाँच ज्ञान (रूप, रसादि विषय) 'प' से मन, फ से अहंकार तथा

भोक्ताऽन्यस्तद्विपरीतोऽपहतपाप्मत्वादिगुण इत्यादिवद्भाष्येण तत्त्वज्ञानसंसरणेचावदातत्वश्यामत्वादिवन्नेतरेतरत्रावतिष्ठेते, इत्यादि विवरणादिग्रन्थैश्च विरोधाच्च। किञ्च चिन्मात्रस्याज्ञानं स्वाभाविकञ्चे-

एकजीववादे व्यावहारिकभेदस्यासत्वात्तत्वज्ञानसंसरणे नोपपद्येत इति तद्ग्रन्थविरोध इति भावः। अज्ञानरूपोपाधिभेदान्नोक्तग्रन्थस्य विरोधावकाश इत्यत आह—**किं चेति। निवर्तेत इति।** स्वाभाविकत्वेन सत्यत्वप्राप्त्या सत्यस्यानिवृत्तिरिति

बकार भकार से महत्तत्व, एवं प्रकृति कही जाती है और अन्तिम पवर्ग में अक्षर 'म' से जीवात्मा लिया जाता है। ये सब वचन जीव ब्रह्म के भेद के प्रतिपादक है। इसी प्रकार—"शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते"(१।२।२१)'भेदव्यपदेशाच्चान्य' (१।१।२२) "अधिकन्तु भेदनिर्देशात्" (२।१।२१) इत्यादि ब्रह्म सूत्रों द्वारा भी जीव से ईश्वर भिन्न है यह सिद्ध होता है। यहाँ 'शारीरश्च' सूत्र का अर्थ है—प्रधान की तरह शारीर—जीव भी अन्तर्यामी नहीं हो सकता—क्योंकि उसमें सर्वनियन्तृत्व तथा निरूपाधिक अमृतत्व आदि धर्म असंभव है। दूसरी बात इस जीव का काण्व शाखानुयायी एवं माध्यन्दिनी शाखा वाले दोनों ने भी अन्तर्यामी परमात्मा से भेद माना है—यह सूत्र का अर्थ है। 'भेदव्यपदेशाच्चान्यः'—इसका अर्थ है—"आदित्ये तिष्ठन् आदित्यान्तरः आदित्यं यमयति"—जो आदित्य में रहकर आदित्य से भिन्न होता हुआ आदित्य का नियमन करता है—वह सर्वान्तर्यामी ब्रह्म है। यहाँ स्पष्ट रूप से आदित्य (जीव) से भिन्न अन्तर्यामी ब्रह्म को माना है—इस प्रकार भेदव्यपदेश से—यहाँ आदित्य पुरुष जीव नहीं किन्तु परमात्मा है। उक्त अर्थ पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य के भाष्य से भी दृढ़ करते हैं—"तस्माच्छारीरादन्य एवेश्वरः" यहाँ भगवान् शंकर कहते हैं कि शारीर (जीव) से भिन्न ही ईश्वर है" 'आत्मानौ हि तावुभौ चेत [illegible]त्रेकः कर्ता भोक्ताऽन्यस्तद्विपरीतो अपहतपाप्मत्वादिगुणा' (दोनों आत्मा चेतन है—पर एक कर्ता भोक्ता है दूसरा उसके विपरीत अपहत पाप्मत्वादि गुण विशिष्ट है) इत्यादि शांकर भाष्य के वचनों तथा 'तत्त्व ज्ञान संसंसरणेचावदातत्व श्यामत्वादिवन्नेतरेतरत्रावतिष्ठते' इत्यादि विवरण ग्रन्थों से भी विरोध है—भाव है कि बिम्ब प्रतिबिम्ब में अभेद होने पर भी बिम्ब में अवदातत्त्व (शुक्लत्व) प्रतिबिम्ब में श्यामत्व इस प्रकार परस्पर एक दूसरे में रहता है—इस प्रकार तत्वज्ञान एवं संसार भी नियत ही है। एक जीववाद में व्यावहारिक भेद न होने से तत्त्वज्ञान और संसार की उपपत्ति नहीं होगी—इस प्रकार उन ग्रन्थों से विरोध होगा अज्ञान रूप उपाधि भेद से उक्त ग्रन्थ का [illegible] नहीं होगा कहें तो कहते हैं—"किञ्च चिन्मात्रस्य" अर्थात् यदि चि[illegible] अज्ञान स्वभाव माने तब तो आनन्द

दानन्दादिवन्न निवर्तेत औपाधिकत्व उपाधिस्वयमेवचेदात्माश्रयोऽ-न्यश्चेदन्योन्याश्रयश्चक्रकापत्त्यनवस्थादिरिति सङ्क्षेपो विस्तरस्त्वा-करेद्रष्टव्यः। तस्मान्न चिन्मात्रमज्ञानाश्रय इति सिद्धम्॥ ५०॥

तेनाङ्गीकृतत्वादित्यर्थः। औपाधिकत्वे=अज्ञानस्येति शेषः। अज्ञानस्योपाधिकल्पितत्व इत्यर्थः। अज्ञानस्योपाधिकत्वेऽज्ञानस्य प्रयोजकोपाधिरज्ञानं तदतिरिक्तोवा आद्यपक्षमभि प्रेत्याह—स्वयमेवेति। स्वम्=अज्ञानम्। स्वोत्पत्तौ स्वस्यापेक्षणादात्माश्रय इत्यर्थः। द्वितीयकल्पमभिप्रेत्याह—**अन्यश्चेदिति।** अज्ञानस्य प्रयोजकोपाधौ सिद्धौ सत्याम-ज्ञानस्यौपाधिकत्वसिद्धिरज्ञानस्योपाधिकत्वसिद्धौ तत्सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयः अज्ञानहेतु-रुपाध्यन्तरं कल्प्यं तत्राप्युपाध्यन्तरं तच्चाज्ञानमेवेति चक्रकापत्तिः। अज्ञानस्य प्रयोजकोपाधिरज्ञानान्तरं तत्राप्यज्ञानान्तरमित्यनवस्थेत्यर्थः। इत्यज्ञानस्य विवरणोक्त-चिन्मात्राश्रितत्वनिराकरणम्। अथ तन्मतेऽज्ञानाश्रयोऽपि दुर्निरूपस्तथाहि कस्तावत्तस्याश्रयः शुद्धं चिन्मात्रं वा सर्वज्ञो जीवोवेति यदुक्तं प्राक् तत्र सर्वज्ञोऽज्ञानाश्रय इति।।५०।।

आदि की तरह वह कभी निवृत नहीं होगा। औपाधि कहें अर्थात् अज्ञान उपाधिकल्पित है ऐसा कहें तो फिर तो अज्ञान का प्रयोजन उपाधि अज्ञान कोई भिन्न है या वह स्वयमेव है—स्वयमेव कहें तो आत्माश्रय दोष, अन्य कहें तो अन्योऽन्याश्रय अर्थात् अज्ञान के प्रयोजक उपाधि की सिद्धि होने पर अज्ञान की औपाधिकत्व सिद्धि अज्ञान की औपाधिकत्व सिद्धि होने से उसकी सिद्धि—इस तरह अन्योऽन्याश्रय। अज्ञान की हेतु अन्य उपाधि की कल्पना—उसमें भी अन्य उपाधि वह अज्ञान ही होगा। इस प्रकार चक्रकापत्ति दोष अज्ञान की प्रयोजक उपाधि अन्य अज्ञान उसमें अन्य अज्ञान—इस प्रकार अनवस्था भी होगी इस प्रकार अज्ञान चिन्मात्र आश्रित है नहीं हो सकता यह सिद्ध हो गया ।।५०।।

सर्वज्ञोऽज्ञानाश्रय इति द्वितीयविकल्पोप्यापातरमणीयत्वादयुक्तः तथाहि त्वन्मते शुद्धब्रह्मणश्चिदात्मत्वेऽपि तस्य सार्वज्ञात् कथमज्ञानाश्रयत्वं ''यःसर्वज्ञः सर्वविदि'' त्यादिश्रुतेः। सार्वज्ञानयोः सामानाधिकरण्यकल्पनाया उपहासमात्रत्वात्। न च सविशेषमेव सर्वज्ञमिति वाच्यम्। तुरीयं सर्वदृगिति शुद्धे सार्वज्ञश्रवणात्। एतेन

द्वितीयकल्पमवलम्ब्याह—**सर्वज्ञ इति**। तस्य=शुद्धब्रह्मणः। ननु मया ब्रह्मणोज्ञानरूपत्वाङ्गीकारेऽपि न सर्वज्ञातृत्वरूपं सार्वज्ञमभ्युपेयत इत्यत आह—**यःसर्वज्ञ इति**। श्रुत्यनुरोधेन सार्वज्ञ्यमङ्गीकार्यमिति भावः। सर्वज्ञे ब्रह्मण्यज्ञानाश्रयत्वं नोपपद्यत इत्यर्थः। बिम्बभूतं ब्रह्म सर्वज्ञं तच्च नाज्ञानाश्रय इत्याशंक्य परिहरति। **न चेति**। सविशेषम्= विशिष्टांशबलम्। तुरीयमिति। जाग्रदाद्यवस्थातीतं शुद्धं तुरीयमित्यर्थः। **भ्रान्त्येति**। सर्वविषयकभ्रमरूपमेवेति तदर्थः। सर्वविषयकज्ञानस्य भ्रान्तिरूपत्वे प्रमाणतः सर्वज्ञत्वेनाविद्यासिद्धिमुपपादयति। **असङ्ग इति**। प्रमाणतः स्वरूपप्रज्ञया वा सर्वज्ञत्वमविद्यासम्बन्धसापेक्षमित्यत्र सम्मतिमाह—**उक्तं हीति**। एवञ्च ब्रह्म ज्ञानाश्रयः सर्वज्ञत्वादित्यनुमानेन विरुद्धता स्यात् सर्वज्ञत्वस्याज्ञानसापेक्षत्वादित्युक्तं भवति। **तुरीय**

अज्ञान का आश्रय शुद्ध ब्रह्म है—सर्वज्ञ ईश्वर है—किंवा जीव—इन तीन विकल्पों में प्रथम विकल्प का खण्डन कर अब द्वितीय विकल्प का खण्डन करते हैं—सर्वज्ञ ईश्वर अज्ञान का आश्रय है, यह द्वितीय विकल्प भी आपात रमणीय होने से अयुक्त है। कारण जब ''यः सर्वज्ञः स सर्ववित्'' इत्यादि श्रुतियों द्वारा ईश्वर में सर्वज्ञता सिद्ध है तो फिर सार्वज्ञ एवं अज्ञान का सामानाधिकरण तो उपहास मात्र है। कहें कि सर्वज्ञता सविशेष में है। तुरीय शुद्ध ब्रह्म में सार्वज्ञ नहीं है। तब तुरीय शुद्ध ब्रह्म ही अज्ञान का आश्रय हो जाएगा तो ऐसा नहीं कह सकते 'तुरीय सर्वदृग्' इस वचन के आधार पर शुद्ध में सार्वज्ञ का श्रवण है जीव अज्ञान के आश्रय है—यह तीसरा विकल्प भी समीचीन नहीं है यह श्री वाचस्पति मिश्र का मत है। हम पूछते हैं कि जीव पदार्थ क्या है? चिन्मात्र ही जीव है। अथवा अविद्यावच्छिन्न चैतन्य जीव है, किंवा आविद्यक बुद्ध्यवच्छिन्न जीव है अथवा अविद्या में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है? क्या है—जीव? पहला नहीं कह सकते—इसका तो पहले ही खण्डन कर दिया गया है, श्रुति आदि में शुद्ध चिन्मात्र को सर्वज्ञ कहा गया है—'तुरीय सर्वदृग्'। अन्तिम दो विकल्प—आविद्यकबुद्ध्यवच्छिन्न अथवा अविद्या

टिप्पणी : १. यह स्थल असम्बद्ध प्रतीत होता है, इसकी दूसरी प्रति होती तो इसका समाधान होता। २. श्री शंकर अविद्या का आश्रय ब्रह्म को मानते हैं, वाचस्पति अविद्या का आश्रय जीव को मानते हैं।

सर्वज्ञत्वं हि भ्रान्त्या वा प्रमाणतो वा स्वरूपज्ञप्त्या वा त्रिधाप्यविद्यासिद्धिः। भ्रान्तेः प्रमातृत्वादेश्चाविद्यामूलत्वात् असङ्गस्वरूपज्ञप्तेश्चाविद्यां विना विषयासङ्गतेः। उक्तं हि "स्वरूपतः प्रमाणैर्वा सर्वज्ञत्वं द्विधा स्थितम्। तच्चोभयं विनाविद्या सम्बन्धं नैव

इति। तथाच तत्र श्रुतं सार्वज्ञ्यं नाविद्यासापेक्षमित्यर्थः। विकल्पितपक्षत्रये स्वभावसिद्धप्रज्ञयैव सार्वज्ञ्यमित्यङ्गीकुर्म इत्याशयः। न चासङ्गाया ज्ञप्तेर्नविषयेण स्वतः सम्बन्ध इत्यविद्या सिद्धिरिति वाच्यम्। असङ्गाया अपि स्वरूपज्ञप्तेः स्वतस्तावत् कालसम्बन्धोऽस्तीत्यङ्गीकार्यमन्यथाऽसत्यत्वापत्तेरित्याह—**स्वरूपज्ञप्तेरिति।** स्वतः सर्वदेशसम्बन्धोऽप्यङ्गीकार्यमन्यथाऽसत्यत्वापत्तेस्तद्विषयैरपि स्वत एव सम्बन्ध उपपद्यते। यथा वाऽसङ्गाया अपि स्वरूपज्ञप्तेरविद्ययैव सम्बन्धोऽङ्गीकृतः, नह्यविद्यासम्बन्धघटकाविद्यान्तरमस्ति स्वनिर्वाहकल्पनन्तु स्वरूपसिद्ध्युत्तरकालीनं तस्येदानीं सन्दिह्यमानत्वादतस्तद्वदन्येनापि सम्बन्धोपपत्तेर्न सर्वज्ञत्वस्याज्ञानापेक्षेत्याशयेनाह। **स्वतः सर्वसम्बन्धाभावइति।** असङ्गश्रुतिस्तु

प्रतिबिम्बित चैतन्य नहीं कह सकते—इस मत में अन्योऽन्याश्रय दोष होता है—अविद्या की सिद्धि होने पर तद्वच्छिन्न रूप में अथवा अविद्या के प्रतिबिम्ब रूप में जीव की सिद्धि—और जीव की सिद्धि होने पर उसके आश्रित रूप में अविद्या की सिद्धि—इस तरह स्पष्ट अन्योऽन्याश्रय। यदि कहें कि अविद्या की सिद्धि होने पर उसके प्रतिबिम्ब के रूप में अथवा तद्वच्छिन्न जीव की सिद्धि और जीव सिद्ध होने पर तदाश्रित रूप में अविद्या की सिद्धि—इस तरह अन्योऽन्याश्रय होने से—इस प्रकार जीवाश्रित अविद्या है—यह कथन नहीं बनता तथा अविद्या प्रतिबिम्बित या अविद्यावच्छिन्न चैतन्य है—यह सिद्धान्त नहीं बनता। इस प्रकार जीव पदार्थ का निर्णय तथा अज्ञान के आश्रय का निर्णय नहीं होने से शांकर विचारधारा में घोर आपत्ति होती है।

बीजाङ्कुरवत् यह दोष नहीं होगा तो यह नहीं कह सकते बीजाङ्कुर की तरह यहाँ व्यक्ति भेद नहीं। यदि कहें कि जैसे निरवयव आकाश में घट तटस्थ होकर ही उसको उपलक्षित करके उसका एक देश बनाकर उससे सम्बन्धित हो जाता है—घटावच्छिन्न आकाश होता है—घटाकाश व्यवहार होता है, उसी प्रकार अविद्या भी तटस्थ होकर ही चिन्मात्र ब्रह्म को उपलक्षित करके एकदेश का सम्पादन करके उसमें अवस्थित होता है। जैसा कि कहा है—'स्वेनैव कल्पिते देशे व्योम्नि यद् यद् घटादिकम्'। तथा जीवाश्रयां विद्यां मन्यन्ते ज्ञानकोविदा। "महाव्योम्नि" अपने द्वारा कल्पित देश एकदेश में सम्बद्ध घटादि यह भाव है। इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय

सिद्ध्यतीति'' निरस्तम्। अविद्यारहिते तुरीये सार्वज्ञ्यश्रुतेः। स्वरूपज्ञप्तेः स्वतः कालाद्यसम्बन्धेऽसत्यत्वापातेन स्वतः सर्वसम्बन्धा-भावेऽसर्वगतत्वापातेन चाविद्ययैव स्वत एवान्येनापि सम्बन्धोपपत्तेश्च। एतेन ब्रह्मणो ज्ञातृत्वमुपेत्याज्ञानं वदन्तो निरस्तास्तदुक्तम्

तत्तत्कृतलेपाभावपरतया सङ्गमनीयेति बोद्धव्यम्। **एतेनेति।** ज्ञातृत्वम्= सर्वज्ञत्वम्। **निरस्ता इति।** सर्वं यो हि विजानातीत्यनुमानविरोधादित्यर्थः। इदं सर्वं भगवत्पादोक्तत्वस्योपपादनेनोत्प्रेक्षितमिति ज्ञापयति—**तदुक्तमिति।** इतिसर्वज्ञस्याज्ञानाश्रयत्वनिराकरणम्। यच्चोक्तं श्रीवाचस्पतिमिश्रेण जीवाश्रिताविद्येति पक्षं तृतीयविकल्प मध्ये प्रक्षिप्य तं पक्षं दूषयितुं समारभते—**नापीत्यादिना। पूर्वमेवेति।** श्रुत्यादौ तस्य सर्वज्ञत्वेन प्रतीतत्वादिति भावः। **कल्पितेति। अन्योन्याश्रयादिति।** अविद्यासिद्धौ तदवच्छिन्नतया तत्प्रतिबिम्बतया वा जीवस्य सिद्धिस्तत्सिद्धौ च तदाश्रिततयाऽविद्यासिद्धिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः। बीजांकुरस्थलेऽपि न

नहीं होगा। तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण जीव सिद्ध होने पर अविद्या की सिद्धि होती हैं—ऐसा स्वीकार नहीं करते—निराश्रय अविद्या के योग से जीव की सिद्धि में अविद्या की सिद्धि और अविद्या की सिद्धि होने पर उससे उपलक्षित जीवसिद्धि इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय है। घटाकाश सिद्धि के बिना घट आदि की सिद्धि की तरह जीव सिद्धि के बिना अविद्या की सिद्धि का अभाव है। दृष्टान्त उपयुक्त नहीं है—आपके मत में आकाश का अनित्यत्व भावत्वे सति आत्म संभूतत्वात् हेतु से सिद्ध है—इस तरह आपके मत में गगन के अनित्य एवं सावयव होने से उसमें स्वतः ही अंशत्व की संभावना है। कहें कि यह दोष उत्पत्ति में है या ज्ञप्ति में किंवा स्थिति में? पहला पक्ष नहीं कह सकते—जीव और अविद्या दोनों अनादि है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—कारण वह अज्ञान के चिद्भास्य होने पर भी जीव के स्वप्रकाश होने से अविद्या भान स्वरूप साक्षि जन्म विषय भान का अविषय है। स्थिति में अन्योऽन्याश्रय परस्पर आश्रित होने से है या परस्पर सापेक्ष स्थिति के कारण—इस उभय पक्ष का निराकरण करते हैं। अन्तिम पक्ष भी नहीं कह सकते—इसमें असिद्धि है—अज्ञान के चिदाश्रय होने की स्थिति में चित् के अधीन स्थिति होने पर भी चित् में अविद्याश्रितत्व तथा तदधीन स्थितिकत्व का अभाव है—ऐसा भी नहीं कह सकते—स्थिति में अन्योऽन्याश्रय है प्रकृत में जीवत्व ही अज्ञान प्रयुक्त है न कि अज्ञान जीव प्रयुक्त—इस प्रकार परस्पर सापेक्ष का अभाव होने से अन्योऽन्याश्रय नहीं है, यही कह रहे हैं—'परस्पर सापेक्षत्वाभावे इस ग्रन्थ द्वारा यहाँ 'अन्योऽन्याधीनत्वस्येवोपपत्तेः' का तात्पर्य है जीव ब्रह्म विभाग आविद्यक होने

''अज्ञताखिलसम्वेत्तुर्घटते न कुतश्चने'' ति सङ्क्षेपः। नापि जीवोऽज्ञानाश्रय इति तृतीयकल्पोयुक्तस्तथाहि तत्र को जीवपदार्थः, चिन्मात्र एव वा अविद्यावच्छिन्न, आविद्यकबुद्ध्यवच्छिन्नो वा तत्र प्रतिबिम्बितो वा, नाद्यः। पूर्वमेव निरस्तत्वात्। नान्त्यौ, कल्पितभेदस्याङ्गीकारेऽन्योन्याश्रयात्। न च बीजांकुरन्यायेन नैष दोष इति वाच्यम्। तद्वदिह व्यक्तिभेदाभावात्। न च यथा निरंशेऽप्याकाशे

व्यक्तिभेदस्तत्तद्बीजव्यक्तयस्तत्तदंकुरव्यक्तयश्च सन्तानिरूपकाः बीजपरम्परा अंकुरपरम्परा च सन्तानस्तथाच सन्ताकिव्यक्तिनभेदादन्योन्याश्रयाभावेऽपि सन्तानद्वयविवक्षयाऽन्योन्याश्रयोऽस्त्येवेत्यतआह—**तद्वदिहेति**। नह्येवंप्रकृत इति भावः। आकाशे=महाकाशे। तम्=महाकाशम्। उपलक्ष्य=काकवद्व्यावर्तयित्वा तेनेति। पाश्चात्यःघटावच्छिन्नाकाशइत्युच्यत इत्यर्थः। तदुक्तं ''स्वेनैव कल्पिते देशे व्योम्नि यद्यद्घटादिकम्। तथा जीवाश्रयां विद्यां मन्यन्ते ज्ञानकोविदा'' इति। महाव्योम्नि स्वेन कल्पितदेशे एकदेशे घटादिकं सम्बद्धमित्यर्थः। जीवसिद्धावविद्यासिद्धिरिति नाङ्गीक्रियत इत्यत उक्तं निराश्रयेति। घटाकाशसिद्धिं विना घटासिद्धिवत् जीवसिद्धिं विनाऽविद्यासिद्धेरभावादित्यर्थः। दृष्टान्तोऽप्यसंप्रतिपन्न इत्याह—**त्वन्मत इति।** आकाशस्यानित्यद्रव्यत्वञ्च भावत्वे सत्यात्मसम्भूतत्वेन सिद्धम्। तथाच निरंशेऽप्याकाश इत्युक्तमसदिति भावः। स्वतः=घटादिसम्बन्धं विना जीवस्त्वज्ञानसम्बन्धं विना न सिद्ध इति भावः। उभयोः=जीवाविद्ययोः। चिद्भास्यत्वे=साक्षिरूपजीवभास्यत्वे। चितेः=जीवस्य। तदभास्यत्वात्=अविद्याभानरूपसाक्षिजन्यविषयभानाविषयत्वात्। स्थितावन्योन्याश्रयः परस्पराश्रितत्वेन परस्परसापेक्षस्थितिकत्वेन वा स्यादित्युभयपक्षं निरस्यति। **नान्त्य इति। असिद्धेरिति।** अज्ञानस्य चिदाश्रयत्वे चिदधीनस्थितिकत्वेऽपि चिति, अविद्याश्रितत्वतदधीनस्थितिकत्वयोरभावादित्यर्थः। प्रकृते जीवत्वमेवाज्ञानप्रयुक्तं नाज्ञानं जीवत्वप्रयुक्तमितिपरस्परसापेक्षत्वाभावान्नान्योन्याश्रय

तथा अविद्या में जीवाश्रित होने से जीवत्व—अज्ञान में अन्योऽन्य प्रयुक्तता है। अन्योऽन्य की अपेक्षया अप्रमितत्त्व होने पर भी अदोषत्व मानने में बाधक है—कहीं भी तब अन्योऽन्याश्रयता नहीं होगी। यहाँ ज्ञातव्य है कि यदि अन्योऽन्याश्रय परिहार के लिये जीवत्व प्रयोजक अज्ञान यदि जीवाश्रित अज्ञान क़ल्पित हो तो चक्रकापत्ति—जैसे—अज्ञान सिद्धि में जीव की सिद्धि और जीव सिद्ध होने पर तदाश्रित अज्ञान की सिद्धि—उसकी सिद्धि होने पर अज्ञान सिद्धि। इसके लिये भिन्न किसी अज्ञान की कल्पना करने पर—उसके लिये भी अन्य अज्ञान की कल्पना—इस प्रकार अनवस्था। कहें कि यह परस्पर अन्य सिद्ध वस्तु विषय है तथा ब्रह्म में अभिन्न जीव

घटस्तटस्थ एव तमुपलक्ष्यैकदेशं सम्पाद्य तेन सम्बन्ध्यते। तद्वदविद्याऽपि तटस्थैव चिन्मात्रमुपलक्ष्यैकदेशरूपजीवं सम्पाद्य तत्रावतिष्ठत इति नान्योन्याश्रय इति वाच्यम्। निराश्रयाविद्यायोगेन जीवसिद्धावविद्यासिद्धिस्तत्सिद्धौ तदुपलक्षितजीवसिद्धि-रित्यन्योन्याश्रयात्, त्वन्मते गगनस्यानित्यत्वनिरूपितसावयवत्वेन स्वत एवांशत्व सम्भवाच्च। न चायं दोष उत्पत्तौ ज्ञप्तौ स्थितौ वा नाद्यः। उभयोरनादित्वात्। न द्वितीयः। अज्ञानस्य चिद्भास्यत्वेऽपि चितेः स्वप्रकाशत्वेन तदभास्यत्वात्। नान्त्यः। असिद्धेरिति वाच्यम्। स्थितावन्योन्याश्रयात्, परस्परसापेक्षत्वाभावेऽन्योन्याधीनत्वस्यैवोपपत्तेः कुत्राप्यन्योन्याश्रयता न स्यात्॥ ५१॥

इत्याह—**परस्परेति। अन्योन्याधीनत्वस्येति।** जीवब्रह्मविभागस्याविद्यकत्वादविद्यायाश्च जीवाश्रितत्वात् जीवत्वाज्ञानेऽन्योन्यप्रयुक्ततेति भावः। अन्योन्यापेक्षया अप्रमितत्वेप्यदोषत्वाङ्गीकारे बाधकमाह—**कुत्रापीति।** इदं पुनरिहावधेयम्। अन्योन्याश्रयपरिहाराय जीवत्वप्रयोजकमज्ञानं जीवश्रिताज्ञानकल्पितञ्चेत् चक्रकापत्तिस्तथाहि। अज्ञानसिद्धौ जीवसिद्धिस्तत्सिद्धौ तदाश्रिताज्ञानसिद्धिस्तत्सिद्धौ चाज्ञानसिद्धिरिति। अज्ञानान्तरकल्पने तत्रापि तत्कल्पने त्वनवस्था। नचेयं परम्परा अन्यथासिद्धवस्तुविषया तथा ब्रह्माभिन्ने जीवेऽहमज्ञ इत्यन्यथा सिद्धावज्ञानप्रतीत्यन्यथानुपपत्यापत्तेरियं परम्पराङ्गीकार्येति वाच्यम्। अहमज्ञ इति प्रतीतेः सत्यभेदेनैवोपपत्तेः। किञ्च जीवेश्वरयोर्जीवेश्वराभ्यां कल्पितत्वे आत्माश्रयात्। ब्रह्मजीवकल्पितत्वेऽन्योन्याश्रयात्। तत्कल्पकस्य शुद्धस्य ब्रह्मणोऽज्ञान मावश्यकम् न चाविद्याया दौर्घट्यं भूषणं तत्र लक्षणप्रमाणाद्युक्त्ययोगादिति। अन्योन्याधीनता अविद्यानाशस्य जीवनाशव्यापकत्वेन वा। अविद्यायाजीवोपाधित्वेन वा।।५१।।

में अहम् अज्ञः यह अन्यथा सिद्ध होने पर अज्ञान की प्रतीति की अन्यथा अनुपपत्ति के कारण यह परस्पर स्वीकार करनी चाहिये तो ऐसा नहीं कह सकते—मैं अज्ञ हूँ इस प्रतीति की सत्य भेद में ही उपपत्ति हो जाएगी। दूसरी बात जीव और ईश्वर के जीव, ईश्वर द्वारा कल्पित मानने पर आत्माश्रय ब्रह्म और जीव कल्पित मानने पर अन्योऽन्याश्रय। उसके कल्पक शुद्ध ब्रह्म में अज्ञान आवश्यक है। कहें कि अविद्या का दौर्घट्य भूषण है—उसमें लक्षण तथा प्रमाण आदि का अभाव है। अन्योऽन्याधीनत। अविद्यानाश के जीवनाश व्यापकत्वेन है अथवा अविद्या के जीवोपाधित्वेन। इसमें आदि पक्ष को लेकर शंका करते हैं ।।५१।।

ननु समानकालीनयोरप्यवच्छेद्यावच्छेदकभावमात्रेण तदुपपत्तिः घटतदवच्छिन्नाकाशयोरिव प्रमाणप्रमेययोरिव चेति चेन्न, तदाकाशस्य घटाधीनत्वेऽपि घटस्य तदाकाशत्वाधीनत्वाभावेन दृष्टान्तासिद्धेः। न च चैतन्यमपि न ज्ञानाधीनमिति वाच्यम्। अज्ञानाधीनचैतन्यस्य शुद्धत्वेन

तत्राद्यमभिप्रेत्याह—**समानकालीनयोरिति**। व्याप्यव्यापकभावापन्नयोरित्यर्थः। यदा यदा अविद्या तदा तदावश्यं जीव इति व्याप्तावपि जीवनाशस्याविद्यानाशव्याप्यतासम्भवः सा तु न क्षतिकरीतिभावः। द्वितीयेऽपि न क्षतिरित्याशयेनाह—**अवच्छेद्यावच्छेदकेति**। उपहितोपाधिरित्यर्थः। स्वोपहिते जीवेऽविद्यायाआश्रयत्वं सम्भवति स्वस्य स्वाश्रयत्वं-प्रत्युपाधित्वेऽप्यविशेषणत्वेन स्वाश्रयत्वस्वीकारादिति भावः। तदुपपत्तिः= अन्योन्याधीनत्वोपपत्तिः। दृष्टान्तवैषम्येन निरस्यति—**नेति**। दृष्टान्तासिद्धिमेवोपपादयति—**तदेति**। तत्र=अविद्यायाम्। **निराश्रयत्वेति**। दौर्घट्यस्य भूषणत्वादितिभावः। **प्रतीतीति**। अस्यास्मिन्नज्ञानमितिप्रतीत्यनुसारेणाश्रयविषयाङ्गीकार इत्यर्थः। **अहमर्थेति**। तथाचाज्ञानस्य जीवाश्रितत्वं त्याज्यमहमर्थाश्रितत्वानुभवादिति भावः। **जडेति**। जड आवरणकृत्याभावेन जडविषयकाज्ञानानङ्गीकारवादोऽपित्याज्यो घटं न जानामीत्यनुभवादित्यर्थः। अविद्याया

यदि कहें कि व्याप्य व्यापक भावापन्न समकालीन में भी अवच्छेद्यावच्छेदक भाव मात्र से अन्योऽन्याधीनत्व की उपपत्ति होगी। (व्याप्य व्यापक भावापन्न का तात्पर्य जब-जब अविद्या होती है, तब तब अवश्य जीव होता है—इस व्याप्ति के भी जीव नाश से अविद्या नाश—व्याप्यता संभव है—वह श्रुति कही नहीं है) जैसे घट एवं घटावच्छिन्न आकाश एवं प्रमाण तथा प्रमेय तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण घटावच्छिन्न आकाश घटाधीन होने पर भी घट घटावच्छिन्न आकाश के अधीन नहीं होने से यह दृष्टान्त असिद्ध है। कहें कि चैतन्य भी ज्ञान के अधीन नहीं है तो ऐसा नहीं है। अज्ञान के अधीन चैतन्य के शुद्ध होने से जीवत्व में अभाव के कारण जीवाश्रित अज्ञानवाद सदा के लिये समाप्त हो जाएगा। दूसरी बात अज्ञान को अनादि माने तो नित्य शुद्धत्व की हानि का प्रसंग। कहें कि अविद्या का दौर्घट्य भूषण ही है। उसमें प्रमाणादि कथन असंभव है। तथा अज्ञान को निराश्रय एवं निर्विषय स्वीकार करने पर उसमें आत्मस्वरूपत्वापत्ति भी होगी। कहें कि अस्ति अस्मिन् अज्ञानम्—इसमें अज्ञान है—इस प्रतीति के आधार पर आश्रय विषय स्वीकार करेंगे तो कहते कि तब घटमहं जानामि इस प्रतीति के अनुसार उसमें अहमर्थाश्रितत्व तथा जड़विषयत्व आदि का प्रसङ्ग भी होगा—इसलिये अज्ञान का जीवाश्रितत्व छोड़ना होगा जड़ में आवरण कृति के अभाव से जड़विषयक अज्ञान का अनङ्गीकार वाद भी त्याज्य है क्योंकि घटं जानामि ऐसा अनुभव होता है। अविद्या के दुर्घटत्व को भूषण मानने पर दूसरा दोष—अविद्या को अविद्यान्तर कल्पित स्वीकार करने पर अन्योऽन्याश्रय अनवस्था आदि दोष के कारण उसकी उपपत्ति नहीं हो सकती। कहने पर अविद्या के अनादि होने से उक्त दोष नहीं होगा। इस प्रकार उक्त अनुपपत्ति का

जीवत्वाभावाज्जीवाश्रिताज्ञानवादो दत्ततिलाञ्जलिः स्यात्। किञ्चाज्ञानस्यानादित्वे नित्यशुद्धत्वहानिप्रसक्तिः। न चाविद्यादौर्घट्यं भूषणमेवेति, तत्र प्रमाणाद्युक्त्ययोगात्। अज्ञानस्य निराश्रयत्व-निर्विषयत्वाङ्गीकारे ह्यात्मस्वरूपत्वापत्तेश्च। प्रतीत्यनुसारेणाश्रयाङ्गीकारे च घटमहं जानामीति प्रतीत्याऽहमर्थाश्रितत्वजडविषयत्वादिप्रसङ्गाच्च। अनादित्वादिनाऽनुपपत्तिपरिहारायोगाच्च। उत्तरास्फुरणे प्रकृतिसम्वित्या-

दुर्घटत्वस्य भूषणत्वाङ्गीकारे दूषणान्तरमाह—**अनादित्वादिनेति**। अविद्याया अविद्यातिरिक्तकल्पितत्वाङ्गीकारे ऽन्योन्याश्रयानवस्थादिदोषेणाऽनुपपन्नत्वेऽभिहितेऽनादित्वान्नदोष इत्येवं तत्रानुपपत्तिपरिहार क्रियमाणोऽनुपपन्नः स्यात् अनुपपत्त्यादौ दौर्घट्यस्यभूषणत्वादनुपपत्तिपरिहारे च सुघटत्वापातादित्याशयः। **प्रकृतीति**। अयमर्थः सांख्येन सदेव सोम्येदमितिवाक्ये प्रकृतिरेव जगदुपादानकारणत्वेन प्रतिपाद्येत्यभिहिते ईक्षतेर्नाशब्दमिति त्वया दूषिते सति सांख्यस्योत्तरास्फूर्त्तौ अस्मान् प्रति त्वद्वत् त्वां प्रति तेनापि प्रकृतेर्दौर्घट्यं भूषणमिति सुवचत्वेन तव तन्मतनिरासायोगात् तथा बौद्धेनापि सम्वित्तेरेव जगत्कारणत्वेऽभिहिते त्वद्दूषणेन तस्याः कारणत्वानुपपत्तौ सत्यां

परिहार अनुपपन्न होगा। इस प्रकार अनुपपत्ति आदि में दौर्घट्य का भूषणत्व एवं अनुपपत्ति के परिहार में सुघटत्व की आपत्ति होगी यह आशय है—उत्तरास्फुरणे प्रकृति सम्वित्यादेदौर्घट्यं भूषणम्....... इसका भाव है कि—सांख्य ने जब 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्।' इस श्रुति में सत् शब्द से त्रिगुणात्मक जड़ प्रकृति का ग्रहण करके जगत् का उपादानकारण प्रकृति ही है—ऐसा कहा तो आपने 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' कहकर जब उसका खण्डन कर दिया—और इसका कोई उत्तर सांख्य को स्फूर्त नहीं होने पर सांख्य यदि जैसे आप हम से कहते हैं कि अविद्या का दौर्घट्य भूषण है—उसी तरह प्रकृति में कारणत्व की उपपत्ति न होने पर—सांख्य भी यदि यह कह दे कि प्रकृति के कारणत्व की अनुपपत्ति भूषण है इतना कहकर वह भी पार हो जाएगा। तब आप भी उसके मत का खण्डन नहीं कर सकते। इसी प्रकार बौद्ध सम्बित्ति है जगत् का कारण है—ऐसा कहने पर आपके द्वारा प्रदत्त दोष से उसके कारणत्व की अनुपपत्ति में उसको यदि कोई जबाव न मिले और वह भी दौर्घट्य भूषण है यह कहकर कृत कृत्य हो सकता है—फिर तो उसका आप खण्डन नहीं कर सकते—यह भाव है। उक्त परिहार से ही। ''प्रश्न विश्रान्ति हेतुत्वाच्चोद्यं तमसि नोचितम्। न बुद्धिमन्तः पृच्छन्ति न जानामीति वादिनम्। यह दलील भी खण्डित हो गई है। भाव यह है कि जब अविद्या दुर्घट है—अनिर्वचनीय है—प्रमाणाविषयत्व

टिप्पणी — अविद्या का दौर्घट्य प्रमाणादि से सिद्ध न होना भूषण है, शांकरमत में इस कथन पर व्यंग्य है—उत्तरास्फुरणे प्रकृति संविद्यादेदौर्घट्यम् भूषणम् इत्यादि।

देर्दौर्घट्यं भूषणमिति सुवचत्वेन साङ्ख्यबौद्धमतनिरासायोगाच्च। एतेन ''प्रश्नविश्रान्तिहेतुत्वाच्चोद्यं तमसि नोचितं। न बुद्धिमन्तः पृच्छन्ति न जानामीति वादिनमि'' ति निरस्तम्। न ह्यज्ञं प्रति प्रश्नः ज्ञानदौर्घट्यात्। ज्ञानमेवाज्ञानमित्याद्युक्तावपि विरोधाद्यनुद्भावनापातात्। किन्तु ज्ञातुरेव वक्तृत्वादलं विस्तरेण। तस्मादज्ञानाश्रयासिद्ध्या तदसिद्धिरित्यर्थः ॥ ५२ ॥

इति पराभिमताज्ञानाश्रयगिरिनिपातः ॥ ११ ॥

तस्योत्तरास्फूर्तौ दौर्घट्यं भूषणमित्युक्त्या सोऽपि कृती स्यादतस्तन्निरासप्रयासायोगादिति। विश्रान्तिः=उपशमः। तमसि=अज्ञानविषये। तदेव विशदयति—**नेति**। तथाचाज्ञान विषयकप्रश्नाभावे ज्ञानदौर्घट्यमेव हेतुरिति भावः। उक्तार्थमेवोपपादयति। **नहीति**। अज्ञम्=अज्ञानवन्तम्। प्रश्नः ज्ञानस्य दुर्घटत्वान्न भवति किन्तु ज्ञातुरेव तद्वक्तृत्वात् वक्तुरेव प्रष्टव्यत्वादज्ञस्य च ज्ञातृत्वाभावेन वक्तृत्वायोगादेव न तं प्रति प्रश्न इत्यर्थः। नन्वज्ञानस्य दुर्घटत्वेन प्रश्नाभावे किं बाधकमित्यत आह—**ज्ञानमिति**। ज्ञानाज्ञानयोरभेदे केनचिदुक्ते ज्ञानाज्ञानयोः कथमभेदो विरोधादिति तं प्रति विरोधोद्भावनं न स्यात् दुर्घटत्वेनाज्ञानस्य प्रश्नाविषयत्वादिति भावः। ननु तर्ह्यज्ञं प्रति प्रश्नो ज्ञानस्य दौर्घट्यन्न भवतीति चेत्तर्हि तत्र किं निमित्तमिति पृच्छति—**किन्त्विति**। उत्तरमाह—**ज्ञातुरेवेति**। वक्तुरेवप्रष्टव्यत्वादज्ञस्यचज्ञातृत्वाभावेनावक्तृत्वान्नतं प्रतिप्रश्न इति भावः। इत्यज्ञानस्य श्रीवाचस्पत्युक्तजीवाश्रितत्वनिराकरणम् ।।५२।।

इति पराभिमताज्ञानाश्रयगिरिनिपातव्याख्या ॥ ११ ॥

उसका भूषण है—यह कह दिया गया तो फिर उसके सहभाव आश्रय आदि में विषय के प्रश्न उचित नहीं है—फिर तो उसके सम्बन्ध में कोई प्रश्न करना बुद्धिमानी नहीं है। यदि कोई कह दे कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता तो उसके प्रति में बुद्धिमान प्रश्न ही नहीं करता—उसकी तरह जब एक बार ही कह दिया कि—अविद्या अनिर्वचनीय—उसके सम्बन्ध में कोई प्रश्न करना ही अनुचित है। जब कह दिया कि अविद्या सकल प्रमाणाविषय है तो उस पर पुनः पुनः प्रश्न करना तो उचित नहीं—ऐसा मायावादी किसी विद्वान् ने कहा—उसी को लक्ष्य कर यहाँ कहा—'प्रश्नविश्रान्ति हेतुत्वात्........' इसी बात का उपपादन करते हैं, अज्ञानी के प्रति , प्रश्न नहीं होता। क्योंकि ज्ञान तो दुर्घट है। इस स्थिति में ज्ञान है। अज्ञान है इस उक्ति में भी विरोध का उद्भावन नहीं कर सकता—अब इस सम्बन्ध में विस्तार व्यर्थ है। इस प्रकार अज्ञान के आश्रय की सिद्धि न होने से अज्ञान जीवाश्रित है—श्रीवाचस्पति के इस कथन का खण्डन पूरा हुआ ।।५२।।

(१२) पराभिमताज्ञानविषयोपपत्तिगिरिनिपातः

अथ ज्ञानविषयोऽपि दुर्निरूपस्तथाहि। को वाऽस्य विषयः। अत्राह कश्चित् चिन्मात्रमेव विषयस्तस्याकल्पितत्वेनान्योन्याश्रयदोषाभावात्। स्वप्रकाशत्वेन प्रसक्तप्रकाशे तस्मिन्नावरणकृत्यासम्भवाच्च। नान्यत्तस्याज्ञानकल्पितत्वात्। जडत्वेन स्वयमेव प्रकाशहीने

अज्ञानस्य चिन्मात्रमेव विषय इति विवरणकारोक्तमतं दूषयितुमुपन्यस्यति—**अथेति।** ननु तस्याज्ञानकल्पितत्वेनान्योन्याश्रयान्नाज्ञानविषयत्वमिति शङ्काऽऽभासं निराकरोति—**तस्येति।** चिन्मात्रस्येति तदर्थः। **आवरणकृत्येति।** आव्रियतेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्याऽज्ञानमावरणं ग्राह्यं तत्कृत्यमावृतिस्तथाचाज्ञानरूपावरणस्य यत्कृत्यं प्राप्तप्रकाशप्रतिबन्धरूपावृत्ति तदसद्भावादित्यर्थः। ननु जीवो जडान्धाज्ञानविषयः किं न स्यादित्यत आह—**नान्यदिति।** तस्य=जीवस्य तथाचाज्ञानसिद्धौ तत्कल्पितजीवसिद्धिस्तत्सिद्धौ च तद्विषयकाज्ञानसिद्धिरित्यन्योन्याश्रय इति भावः। **जडत्वेनेति।** अप्रकाशस्वरूपत्वेनेत्यर्थः। **आवरणकृत्याभावाच्चेति।** अज्ञानरूपावरणस्य यत्कृत्यं प्राप्तप्रकाशरूपावृतिस्तदभावाच्चेत्यर्थः। परिहरति—**नेति। आवरणेति।** आवरणस्य

अज्ञान (अविद्या) के विषय का खण्डन

अज्ञान का चिन्मात्र ही विषय है—यह विवरणकार का मत है। अब उनके मत का खण्डन करने हेतु विचार करते हैं, 'अथाज्ञानविषयोऽपि दुर्निरूप्य अब पूछते हैं कि अज्ञान का विषय क्या है? इस विषय में कोई आचार्य कहते हैं—चिन्मात्र ही विषय है—क्योंकि चिन्मात्र ब्रह्म अज्ञान कल्पित नहीं है इसलिये इसमें अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं है। दूसरी बात चिन्मय ब्रह्म स्वप्रकाश होने से उसमें आवरण स्वरूप अज्ञान का कृत्य (प्राप्त प्रकाश प्रतिबन्ध) असंभव है। कहें कि जीव जड़ अज्ञान का विषय क्यों नहीं होगा तो कहते हैं—जीव अज्ञान कल्पित है इस प्रकार अज्ञान की सिद्धि होने पर तत्कल्पित जीव भी सिद्धि और जीव की सिद्धि होने पर तद् विषयक अज्ञान की सिद्धि—इस तरह अन्योऽन्याश्रय हो जाएगा। जड़ यानी अप्रकाश रूप होने से अज्ञान रूप आवरण के कार्य प्राप्त प्रकाश रूप के आवरण का अभाव भी होगा यह बात पहले ही कही गई है कि—'पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः' तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण—सदा भासमान स्वप्रकाश आवरण के कार्य का अभाव है। दूसरी बात चिन्मात्र में आवरण के कृत्य (कार्य)

आवरणकृत्याभावात्। ''पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर'' इतिपूर्व्वमेवोक्तत्वादिति चेन्न स्वप्रकाशे सदाभासमाने आवरणकृत्याभावात्। चिन्मात्रे किं वा आवरणकृत्यं नाम सिद्धप्रकाशलोपोवाऽसिद्धप्रकाशानुपपत्तिर्वा सतोऽपि प्रकाशस्य

कृत्यमावृतिस्तदभावादिति तदर्थः आवरणकृत्यं दूषयितुं विकल्पयति—**चिन्मात्र इति। सिद्धेति।** आलोकरूपो यः सिद्धो घटप्रकाश-स्तल्लोपरूपमिति तदर्थः। **असिद्धेति।** पूर्वमसिद्धं उत्तरोत्तरजायमानो यः प्रकाशस्तदनुपपत्तिरित्यर्थः। **सतोऽपीति।** विषयासम्बन्ध इत्यत्र विषयशब्देन घटादिकं चैतन्यरूपं वेत्यर्थः। **प्राकट्येति।** अज्ञाने सति प्राकट्यापरपर्य्यायज्ञाततारूपज्ञानकार्य्यं न जायते। अतो ज्ञाततारूपज्ञानकार्यप्रतिबन्ध एवाज्ञानसाध्या आवृत्तिरित्यर्थः। नित्यसिद्धत्वान्न सिद्धप्रकाशलोपो युक्तः नित्यसिद्धत्वादेवासिद्धप्रकाश एव नास्तीत्युक्तरूपाऽऽवृत्तिद्वयं चिन्मात्रे न सम्भवतीत्याशयेन विकल्पद्वयं परिहरति—**नाद्य इति।** तस्य= नित्यसिद्धचिन्मात्रस्य।

का क्या स्वरूप है? क्या आलोक स्वरूप जो सिद्ध घट प्रकाश है उसका लोप? अथवा पूर्व में असिद्ध उत्तर काल में जायमान जो प्रकाश उसकी अनुपपत्ति? किंवा सत् प्रकाश का विषयासम्बन्ध? विषयासम्बन्ध में विषय शब्द से घट आदि है या चैतन्यरूप? अथवा प्राकट्य रूप कार्य का प्रतिबन्ध? यानी अज्ञान रहने पर प्राकट्य का अपर पर्याय ज्ञाततारूप ज्ञान कार्य नहीं होता इसलिये ज्ञातता रूप ज्ञान के कार्य का प्रतिबन्ध ही अज्ञान साध्य आवृत्ति (आवरण) पदार्थ है अब प्रथम विकल्पद्वय का परिहार करते हैं। पहला पक्ष नहीं कह सकते—यानी नित्य सिद्ध होने से सिद्ध प्रकाश का लोप युक्त नहीं है। तथा नित्य सिद्ध होने से ही असिद्ध प्रकाश से नहीं है—इस तरह उक्त रूप आवरणद्वय चिन्मात्र में संभव नहीं है। इसमें जगत् के आन्ध्य का प्रसंग होगा कारण नित्य सिद्ध चिन्मात्र का नित्य सिद्ध प्रकाश स्वरूप होने से स्वरूप हानि का प्रसङ्ग होगा। यानी चिन्मात्र ब्रह्म के सिद्ध प्रकाश का लोप स्वीकार करने पर उसका नित्य सिद्ध स्वप्रकाशात्मक स्वरूप की हानि होगी—दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते स्वप्रकाश ब्रह्म नित्य सिद्ध होने से उससे भिन्न यानी सिद्ध प्रकाश लोक प्रसिद्ध प्रकाशानुपपत्ति से भिन्न की स्वप्रकाश में अपेक्षा नहीं है। तीसरा पक्ष नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान का अपने विषय से सम्बन्ध होना स्वभाव है—ज्ञान

विषयासम्बन्धोवा प्राकट्याख्यकार्यप्रतिबन्धो वा। नाद्यः। जगदान्ध्यापत्तेः। तस्य तावन्मात्रस्वरूपत्वेन स्वरूपहानिप्रसङ्गात्। न तृतीयः। ज्ञानस्य विषयसम्बन्धस्वभावत्वात्। स्वयं ज्ञानरूपत्वेन त्वन्मते सम्बन्धानपेक्षत्वात्। न चतुर्थः। त्वन्मतेऽपि चैतन्यातिरिक्तस्य तस्याभावात्। न च शुद्धस्य प्रकाशमानत्वेऽपि पूर्णत्वाद्याकारेणा-प्रकाशायावरणकल्पनमिति वाच्यम्। निर्विशेष आकारस्याभावात्।

तावन्मात्रस्वरूपत्वेन=नित्यसिद्धप्रकाशस्वरूपत्वेन। **स्वरूपहानीति**। चिन्मात्रस्य ब्रह्मणः सिद्धप्रकाशलोपाङ्गीकारे नित्यसिद्धस्य स्वप्रकाशत्वात्मकस्वरूपस्य हानिः स्यात्। एतदन्यदेव किंचिदावृत्तिशब्दार्थं इति तत्राह—**तदन्यस्येति**। सिद्धप्रकाशलोपाप्रसिद्धप्रकाशानुपपत्तिव्यतिरिक्तस्येत्यर्थः। अज्ञानेन क्रियमाणावृत्तिर्नाम सतोऽपि ब्रह्मरूपप्रकाशस्य विषयसम्बन्ध एवेत्याशयेन तृतीयकल्पं निराकरोति—**ज्ञानस्येति**। विषयसम्बन्धइत्यत्र विषयशब्देन घटादिकं वा चैतन्यरूपं वा आद्यमभिप्रेत्याह—**विषयसम्बन्धेति**। ज्ञानस्य विषयसम्बन्धाभावे विषयसम्बन्धस्वभावत्वरूपस्यैव हानिः स्यादित्यर्थः। यथोक्तं विषयवर्जितः प्रकाश एव न भवति घटवदिति। द्वितीयेत्वाह—**स्वेति**। ज्ञानातिरिक्तविषयसद्भावे हि तस्य विषयसम्बन्धापेक्षा न चैवं चैतन्यस्य स्वयमेव ज्ञानरूपत्वेन स्वसम्बन्धानपेक्षत्वादतः सतोऽपि प्रकाशस्य घटादिचैतन्यरूपाऽऽवृतिरप्ययुक्तेतिभावः। **त्वन्मतेऽपीति**। अभिव्यक्तचित्सम्बन्ध एव त्वन्मते ज्ञातता एवञ्च चैतन्यातिरिक्तप्राकट्यस्वभावाच्चेतनस्य सदा स्वप्रकाशत्वेन

बिना विषय नहीं होता। चतुर्थ पक्ष भी संभव नहीं है क्योंकि आपके मत में भी चैतन्य से अतिरिक्त उसका अभाव है कहें कि शुद्ध ब्रह्म प्रकाशमान होने पर भी उसके पूर्वत्व आदि आकार रूप में प्रकाश के लिये आवरण की कल्पना है तो यह भी नहीं हो सकता—निर्विशेष आकार का अभाव है अब चैतन्य आवृत अभिमत काल में भी प्रकाशित होता है—स्व प्रकाश होने से दीप की तरह—इस प्रकार रूप चैतन्य में आवृतत्व कथन व्यर्थ है—इस आशय से कहते हैं—''किञ्च दीपावरकेत्यादि अर्थात् जैसे दीप का आवरक घटादि विषयान्तर सम्बन्ध का प्रतिबन्धक होता है, तथा अन्य दीपकर्मक ज्ञानुत्पत्ति का ही प्रतिबन्धक होता है न कि दीप के प्रति दीपगत प्रकाश का भी प्रतिबन्धक होता है, जैसे घट से आवृत दीप घट के भीतर

किञ्च दीपावरकघटादिवच्चैतन्यावरकाज्ञानं चेतनस्यान्यसम्बन्धं प्रतिबध्नातु, अन्यं प्रति चैतन्यमाच्छादयतु न तु चैतन्यं प्रत्येव चैतन्यरूपप्रकाशविरोधीति नहि दीपो घटावृतोऽपि स्वयं न प्रकाशते तमस्सम्बन्धापातात्॥ ५३ ॥

ज्ञातता एव सत्त्वान्न तदाख्यकार्यप्रतिबन्धरूपावृतिर्युक्तेत्यर्थः। चैतन्यमावृताभिमतकालेऽपि प्रकाशते स्वप्रकाशत्वाद्दीपवत्तथाच प्रकाशरूपचैतन्यस्यावृतत्वकथनं व्यर्थमित्याशयेनाह—**किञ्चेति**। यथा दीपावरकं घटादि विषयान्तरसम्बन्धप्रतिबन्धकमन्यदीपकर्मकज्ञानजननप्रतिबन्धकमेव दृष्टं नतु दीपं प्रत्येव दीपगतप्रकाशस्यापि प्रतिबन्धकं यथा घटावृतस्य दीपस्य घटान्तः प्रकाशमानत्वादन्यथा घटस्य दीपस्वरूपप्रकाशं प्रत्यपि प्रतिबन्धकत्वमङ्गीकृत्य घटावृत्तो दीपो न प्रकाशत इत्यङ्गीकारे दीपस्वरूपत्वेऽपि तमस्सम्बन्धापत्तेः। एवं प्रकृतेऽपि न प्रकाशरूपचैतन्यस्वरूप आवरणमिति भावः। ननु घटादेर्दीपं प्रत्येव दीपप्रकाशविरोधित्वाऽभावेऽपि अन्यं प्रति तत्प्रकाशविरोधित्वं तादवस्थ्यमेव। एवमज्ञानस्य चैतन्यं प्रत्येव चैतन्यप्रकाशविरोधित्वाभावेऽपि जीवचैतन्यं प्रति शुद्धचैतन्याच्छादकत्वं युक्तं न च तयोश्चैतन्ययोरभेदात् स्वं प्रत्येवाच्छादकत्वं प्राप्तं तच्चायुक्तमिति वाच्यम्। तयोः कल्पितभेदसद्भावेनोपपत्तेरित्याशयेन शङ्कते—**नन्विति। परिहरति—नेति। आवरणं विनेति**। आवृतिं विनेत्यर्थः। चैतन्यस्याव्रियमाणत्वे सिद्धे आवरणसिद्धिस्तत्सिद्धौ च कल्पितभेदं जीवचैतन्यं प्रति चिन्मात्रस्याव्रियमाणत्व-सिद्धिरित्यन्योन्याश्रय इत्यर्थः ।।५३।।

प्रकाशमान होता है, अन्यथा घट को दीप के स्वरूप प्रकाश के प्रति भी प्रतिबन्धक मानकर घटावृत दीप प्रकाशित नहीं होता ऐसा मानने पर दीप के स्वरूपत्व में भी अन्धकार के सम्बन्ध की आपत्ति होगी इसी प्रकार प्रकृत में भी प्रकाशरूप चैतन्य में स्वरूपक आवरण नहीं होगा यह भाव है ।।५३।।

ननु कल्पितभेदं जीवं प्रति शुद्धचैतन्यमाच्छादयतीति चेन्न, आवरणं विना भेदकल्पनस्यासम्भवात्। यो मोक्षे भावी चिन्मात्रस्य चिन्मात्रं प्रति

श्रवणादिसाध्यतत्त्वसाक्षात्कारेण यो मोक्षे भावी चिन्मात्रस्यैव चिन्मात्रं प्रति प्रकाशः परमपुरुषार्थरूपस्तदभाव एव संसारदशायामावरकाज्ञानेन साधनीयो नतु कल्पितभेदं जीवंप्रति तदप्रकाशः। नहि मुक्तौ जीवचैतन्यस्य शुद्धचैतन्यप्रकाशोऽस्ति तस्योपहितस्य तत्त्वज्ञाननिवर्त्यत्वेनोक्तपुरुषार्थभाक्त्वाभावादित्याह—**यो मोक्ष इति।** चैतन्यमावृताभिमतकालेऽपि प्रकाशते स्वप्रकाशत्वाद्दीपवदित्यनुमाने स्वविषय-कत्वमुपाधिरित्याशंक्य निराकरोति—**नचेति। तथेति।** कर्तृकर्मविरोधान्न स्वविषयक इत्यर्थः। स्वविषयकत्वानङ्गीकारे मोक्षे चैतन्यप्रकाश एव न स्यात् चिन्मात्रेण स्वेनैव हि प्रकाशो वाच्यः स चायुक्तः स्वेनैव स्वप्रकाशत्वे कर्मकर्तृविरोधादितिभावः। किञ्च स्वप्रकाशत्वेन स्वविषयकप्रकाशप्रसक्तौ सत्यां तत्प्रतिबन्धकत्वेनाज्ञानरूपमावरणं कल्प्यते, चैतन्यस्य स्वविषयकत्वानङ्गीकारे स्वप्रकाशत्वप्रयुक्तप्रकाशप्रसक्तेरेव वक्तुमशक्यत्वेनावरकज्ञानकल्पन वैयर्थ्यम्। अतः स्वविषयकत्वे चैतन्यस्याङ्गीकार्ये साधनव्यापकत्वान्नायमुपाधिरित्याह—

यदि कहें कि घट आदि का दीप के प्रति ही दीप प्रकाश विरोधित्व का अभाव है—अन्य के प्रति नहीं अन्य के प्रति तो तत्प्रकाश विरोधित्व है ही—इसी प्रकार अज्ञान का भी चैतन्य के प्रति ही चैतन्य प्रकाश विरोधित्वाभाव होने पर भी जीव चैतन्य के प्रति शुद्ध चैतन्याच्छादकत्व युक्त है। कहें कि दोनों चैतन्य में अभेद है—तब तो अपने प्रति ही अवच्छेदकत्व प्राप्त हुआ वह तो अयुक्त होगा तो कहते हैं कि उनकी कल्पित भेद के सद् भाव में उपपत्ति होगी इसी आशय में कहते हैं—'ननु कल्पित भेदं जीवं प्रति' इत्यादि परंतु यह भी ठीक नहीं है, आवरण के बिना भेद की कल्पना असंभव है। दूसरी बात जो मोक्ष में चिन्मात्र का चिन्मात्र के प्रति प्रकाशभावी है, उसका अभाव ही सम्प्रति अज्ञान के द्वारा साधनीय है*। कहें कि

टिप्पणी — * इस प्रसंग का स्पष्टीकरण संस्कृत टीका के स्वनामधन्य दार्शनिक शिरोमणि नव्य न्याय के प्रकाण्ड पण्डित गोलोकवासी निम्बार्क रत्न पं० श्री अमोलक राम शास्त्री जी ने विस्तार से किया है, अतः विशेष जिज्ञासु को संस्कृत टीका देखनी चाहिये। ग्रन्थ कलेवर के विस्तार के भय से यहाँ पूरा संस्कृत का अनवुाद नहीं किया।

प्रकाशस्तदभावस्यैवेदानीमज्ञानेन साधनीयत्वाच्च। न च दीपप्रकाश आवृतोऽपि स्वविषयत्वात् प्रकाशते ब्रह्मप्रकाशस्तु न तथेति न प्रकाशत

मोक्षेपीत्यादिना। ननूक्तरीत्याऽऽवरणकृत्यासम्भवेनाज्ञानासम्भवो न युक्तस्तस्य न जानामीति प्रतीतिसाक्षिसिद्धत्वात्। न च प्रकाशमानचैतन्येऽज्ञानायोग इति वाच्यम्। तस्य तत्स्फोरकत्त्वेन तदविरोधित्वात्। न च प्रकाशमानेऽज्ञानमदृष्टचरमिति वाच्यम्। त्वदुक्तमर्थं न जानामीति प्रकाशमान एवार्थेऽज्ञानदर्शनात्कथमिति चेत्। अत्र हि अज्ञानावच्छेदकस्यार्थस्याज्ञानाभावे तदवच्छिन्नाज्ञानज्ञानायोगात्, अर्थावच्छिन्नाज्ञानज्ञाने वाच्येऽर्थस्यापि तदवच्छेदकतयाज्ञानेऽपि तत्रार्थेऽज्ञानमनुभूयत एव। न चाज्ञानावच्छेदकस्याज्ञानेऽपि तदवच्छिन्नाज्ञानज्ञानं सम्भवत्येव कथमिति चेत् सामान्येनार्थत्वादिना ज्ञातेऽर्थे विशेषेणाज्ञानमङ्गीक्रियते तथा च येन रूपेणार्थ:प्रकाशते तेनैव रूपेण तद्विषयकज्ञानाङ्गीकारात् तथा च प्रकाशमाने कथमज्ञानमिति वाच्यम्। सामान्यतोऽर्थस्य ज्ञानानङ्गीकारे तदवच्छिन्नाज्ञानज्ञानायोगात्। सामान्यतोऽर्थस्य ज्ञानेऽङ्गीकार्ये सामान्यस्य ज्ञातत्वादेवाज्ञानानवच्छेदकत्वेनाज्ञानावच्छेदकत्वस्याप्यर्थे सामान्यस्य विशेषत एव ज्ञानमङ्गीकार्यम्। न च विशेष्यस्याज्ञातत्वादेव नाज्ञानावच्छेदकत्वं विरोधादिति वाच्यम् विशेषज्ञानस्य साक्षिरूपताङ्गीकारात् तस्य चाज्ञानाविरोधित्वात्। अतः प्रकाशमान एवार्थगते विशेषेऽज्ञानस्य दर्शनेन प्रकृतेऽपि

दीप का प्रकाश आवृत होने पर भी स्व विषय होने से—दीप प्रकाश का विषय दीप होने से प्रकाशित होता है—ब्रह्म का प्रकाश कर्तृ कर्म विरोध होने से स्वविषयक नहीं है—तो ऐसा नहीं कह सकते फिर तो मोक्ष में अप्रकाश की आपत्ति होगी तथा अज्ञान का वैयर्थ्य भी होगा यदि कहें कि साक्षी के प्रकाशमान होने पर अज्ञान युक्त है, क्योंकि साक्षी के अज्ञान का स्फोरक होने से अज्ञान का अविरोधी है, कारण आपके द्वारा कथित अर्थ को मैं नहीं जानता—इस प्रतीति में प्रकाशमान में ही अज्ञान दिखाई देता है तो ऐसा भी नहीं कह सकते कारण अज्ञान के अवच्छेदक यानी ज्ञानाभावात् में विशेषण अर्थ का अज्ञान में अर्थावच्छिन्न ज्ञानविषयक ज्ञान का अभाव है। प्रकाशमान अर्थ में अज्ञान कैसे संभव है—यह भाव है। कहें कि सामान्येन अर्थात् सामान्यरूप से अर्थत्वादिरूप से ज्ञात अर्थ भी विशेषरूप से

इति वाच्यम्। मोक्षेऽप्यप्रकाशापत्तेरज्ञानवैयर्थ्याच्च। ननु साक्षिणि प्रकाशमानेऽप्यज्ञानं युक्तं तस्य तत्स्फोरकत्वेन तदविरोधित्वात्। त्वदुक्तमर्थं न जानामीति प्रकाशमान एवाज्ञानदर्शनादिति चेन्न, अज्ञानावच्छेदकस्य विषयस्याज्ञाने तदवच्छिन्नाज्ञानविषयकज्ञानायोगात्। न च सामान्येन ज्ञातं

प्रकाशमान एव चैतन्येऽज्ञानमङ्गीकार्यं चैतन्यस्याज्ञानाविरोधित्वात्। न च चैतन्यस्याज्ञानाविरोधित्वेऽज्ञाननिवृत्तिरेव न स्यात् निवर्तकान्तराभावादिति वाच्यम्। अविद्यानिवृतेरात्ममात्रविषयकनिष्प्रकारकचरमवृत्त्याख्यवृत्तिविशेषादेवोपपत्तेः ननु वृत्तिचितोरुभयोरपिआत्ममात्रविषयकत्वाविशेषाद्वृत्तेरेवाज्ञानविरोधित्वं न चैतन्यस्येति विशेषः कथम्। एकविषयत्वाविशेषेऽपि, एकस्य विरोधित्वमपरस्याविरोधित्वमित्यस्य विशेषस्य लोकेऽदर्शनादिति चेन्न, सौरालोकमित्ययं घट इति ज्ञानस्य च घटविषयकत्वाविशेषेऽपि सौरालोकस्यैवान्धकारनिवर्तकत्वं न घटज्ञानस्य घटज्ञाने सत्यप्यन्धकारानिवृत्तेः यथा वा सौरप्रकाशस्य बहिर्निःसृतचक्षुःकिरणरूपचाक्षुषप्रकाशस्य च घटविषयकत्वाविशेषेऽपि सौरप्रकाशस्यैवान्धकारनिवर्तकत्वं न चाक्षुषप्रकाशस्य चाक्षुषप्रकाशे सत्यपि रात्र्यान्धकारानिवृत्तेर्दृष्टत्वात्। नन्वेकविषयकज्ञानयोर्विरोधित्वाविरोधित्वे न दृष्ट इत्युच्यते सौरालोकस्तु न ज्ञानमतश्चदृष्टान्तो न युक्त इति चेन्न, शंखगतश्वैत्यविषयकप्रत्यक्षस्य पैत्यभ्रमविरोधित्वेऽपि श्वैत्यानुमितेस्तद्दर्शनादेकविषयत्वेऽपि वृत्तिचितोरज्ञानविरोधाविरोधोपपत्तेः तथा च प्रकाशमाने चैतन्ये आवरणकृत्याभावेऽप्यनुभवसिद्धत्वात्तत्रा-

---

अज्ञान का अङ्गीकार हैं तो ऐसा भी नहीं हो सकता—सामान्य में ज्ञात होने से ही अज्ञान की अवच्छेदकता उसका अवच्छेदन विशेष ही ज्ञातव्य हो जाता है। आपके सिद्धान्त में स्वरूप से अतिरिक्त कोई विशेष नहीं है—जिससे अज्ञान की कल्पना होगी—यही कह रहे हैं—'प्रकृते'—प्रकृत में स्वरूप से भिन्न किसी विशेष के अभाव से अज्ञानी कल्पना का वैयर्थ्य है—विशेष स्वीकार करने पर निर्विशेषत्व हानि होगी। सामान्य के प्रकाशमानत्व में तथा विशेष के अभाव में किसका ज्ञान होगा। ऐसा कह नहीं सकते। दृष्टान्त में वैषम्य का उपपादन करते हैं—दृष्टान्ते—दृष्टान्त में

विशेषेणाज्ञातमिति वाच्यम्। सामान्यस्य ज्ञातत्वादेवाज्ञानावच्छेदकतया तदवच्छेदकविशेषस्यैव ज्ञातव्यत्वात्। प्रकृते स्वरूपभिन्नविशेषाभावेनाज्ञानकल्पनावैयर्थ्यादन्यथा निर्विशेषत्वहानेः। सामान्यस्य प्रकाशमानत्वे विशेषस्याभावे च कस्य ज्ञानमिति वक्तुमशक्यत्वात्। दृष्टान्ते च त्वदुक्तमिति शब्दविषयकज्ञाने सत्वेऽपि तदर्थविषयज्ञानाभावेनाज्ञानसम्भवात् दृष्टान्तविकलत्वमिति भावः॥ ५४॥

ज्ञानमविरुद्धमित्यस्मत्सिद्धान्तरहस्यमित्याशङ्कते। **नन्विति।** स्वयं प्रकाशे कथमज्ञान-मित्यत आह—**तस्येति।** साक्षिण इत्यर्थः तत् स्फोरकत्वेन=अज्ञानस्फोरकत्वेन। तदविरोधित्वात्=अज्ञानाविरोधित्वात्। प्रकाशमाने नादृष्टमज्ञानमित्यत आह—**त्वदुक्त मिति।** रक्तो दण्ड इति निर्णयं विना रक्तदण्डवान् पुरुष इति विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धिर्न जायतेऽतस्तदनुरोधेन निश्चीयते विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि प्रत्यक्षे विशेषणतावच्छेदक-प्रकारकनिश्चयस्य कारणत्वं तथाच त्वदुक्तमर्थं न जानामीतिप्रतीतावात्मनि ज्ञानाभाव-प्रकारीभूय भासते अभावे ज्ञानं विशेषणं तत्रार्थो विशेषणं तस्य ज्ञानामावश्यकमन्यथोक्त-प्रतीतिरेवानुपपन्नेत्याशयेनोक्तशंकाम्परिहरति—**नेति। अज्ञानावच्छेदकस्येति।** ज्ञानाभावांशे विशेषणस्येति तदर्थः। विषयस्य=अर्थस्य। अज्ञाने=ज्ञानाभावे। तदवच्छिन्नाज्ञानविषयक ज्ञानायोगादिति। अर्थावच्छिन्नाज्ञानविषयकज्ञानायोगादित्यर्थः। प्रकाशमानेऽर्थे कथमज्ञानमिति भावः। सामान्येनार्थत्वादिना ज्ञातेऽर्थे विशेषेणाज्ञानमङ्गीक्रियत इत्याशंक्य परिहरति—**न चेति।** सामान्येन=अर्थत्वादिना। सामान्यतोऽर्थस्य ज्ञानाङ्गीकारे सामान्यस्य ज्ञातत्वाद्विशेषोऽपि ज्ञात एवेत्याशयेनाह—**सामान्यस्येति।** अज्ञानानवच्छेदक-तया=ज्ञानाभावांशेऽविशेषणतया। तदवच्छेदकविशेषस्यैव=अज्ञानावच्छेदकविशेषस्यैव। अज्ञानावच्छेदकस्याप्यर्थे सामान्यस्य विशेषत एवाज्ञानमङ्गीकार्यमिति भावः। नहि भवन्नये स्वरूपातिरिक्तो विशेषोऽस्ति येनाज्ञानकल्पना स्यादित्याह—**प्रकृत इति।** विपक्षे बाधक-तर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** विशेषांगीकार इति तदर्थः। दृष्टान्तवैषम्यमुपपादयति—**दृष्टांत इति॥ ५४॥**

त्वदुक्तमर्थं न जानामि—दृष्टान्त में त्वदुक्तं इस प्रतीति में शब्द विषयक ज्ञान रहने पर भी उसके अर्थ विषयक ज्ञान का अभाव होने से अज्ञान संभव है—इसलिये दृष्टान्त उपयुक्त नहीं है—यह भाव है ।।५४।।

किञ्च त्वयाप्यनवच्छिन्नब्रह्मानन्दाप्रकाशार्थमेवाज्ञानकल्पनात्कथं प्रकाशमानेऽज्ञानम्। अपि च त्वदुक्तोऽर्थो न प्रकाशत इत्यनुभवबलादस्तु तत्र भासमानेऽज्ञानं, न च तथेह सुखादिस्फुरणं न प्रकाशत इत्यनुभवोऽस्ति येन भासमाने तत्स्यात्। किञ्च न तत्रापि भासमानेऽज्ञानं गुहास्थं

जीवस्य ब्रह्माभिन्नत्वेनापरिच्छिन्नानन्दस्येदानीमपि प्रसक्तौ सत्यां तदप्रकाशार्थमेव त्वयाऽज्ञानस्य कल्पितत्वात् प्रकाशमाने धीत्वेन कल्प्यमानमज्ञानं कथं प्रकाशमाने युक्तं स्यात्तथाच प्रकाशमानेऽज्ञानमिति त्वद्वचनमयुक्तमित्याह—**किंचेति**। ननु त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यत्र भासमानविशेषेऽज्ञानं दृष्टमिति चेत्तत्राह—**अपिचेति**। सुखादिस्फुरणं चैतन्यमित्यर्थः। भासमाने=चैतन्ये। तद्विषये तत्=अज्ञानम्। त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यत्र भासमान एवाज्ञानमस्त्वित्यङ्गीकृत्य तथोक्तं वस्तुतस्तु न तत्रापि भासमान एवार्थेऽज्ञानमित्याह—किंचेति। तत्रापि=त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यत्रापि। **गुहास्थमिति**। यथाहि गुहास्थवस्तुतमसाच्छन्नमित्युक्ते गुहास्थं घटादिकं गुहास्थत्वेनैव रूपेण सामान्यतः प्रतीते एवं घटादौ विशेषे तमश्छन्नत्वमनुभूयते एवं त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यत्रापि अनावृत्तम्, अज्ञानानावृत्ततया सदा प्रतीयमानं तदर्थत्वादिकं सामान्यं तदवच्छेदेनैव विशेषाज्ञानमनुभूयते एवञ्च तद्विशेषाज्ञानज्ञाने सामान्यज्ञानस्यैव हेतुत्वेन तस्य च सामान्याकारस्य प्रतीयमानत्वान्न तत्राज्ञानं किन्तु विशेष एव तथाच यद्भासते न तत्राज्ञानं सोऽर्थो न प्रकाशत इति न **भासमानेऽज्ञानमिति भावः**। अज्ञानानुभवात्=विशेषाज्ञानानुभवात्। विशेषाकारेण प्रकाशमान एवाज्ञानमिति वदतो बाधकमाह—**न हीति**। अज्ञानम्= अज्ञानावच्छेदकीभूतं वस्तु। **बुभुक्षेत्यादि**। बुभुक्षापिपासाद्यवच्छिन्न तत्तत्प्रातिस्विकरूपेणेत्यर्थः। त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यत्र विशेषरूपेण प्रकाशमान एवाज्ञानमिति वदतैवमनुवदितव्यं परबुभुक्षापिपासाविषयोऽर्थो य इममर्थमहं न जानामीति अज्ञानावच्छेदकतया

जीव के ब्रह्म से अभिन्न होने के कारण उसमें अपरिच्छिन्न आनन्द का इस काल में भी प्राप्त होने पर उसके अप्रकाश के लिये ही आपने अज्ञान की कल्पना की है—फिर उस प्रकाशमान में अज्ञान कैसे युक्त होगा? इस प्रकार प्रकाशमान में 'अज्ञानम्' यह आपका कथन कैसे युक्त होगा—यही बात कहते हैं—किञ्च त्वयाऽप्यनवच्छिन्नेत्यादि। और दूसरी बात है—आपके द्वारा कथित अर्थ प्रकाशित नहीं होता, इस अनुभव के बल से वहाँ भले ही भासमान में चैतन्य अज्ञान हो, परन्तु यहाँ उस प्रकार सुखादि का स्फुरण प्रकाशित नहीं होता. ऐसा अनुभव नहीं है जिससे भासमान चैतन्य में अज्ञान होगा।

आपके द्वारा उक्त अर्थ को मैं नहीं जानता, यहाँ भासमान में अज्ञान हो, ऐसा

तमश्छन्नमितिवत् त्वदुक्तं न जानामीत्यनावृत्तसामान्यावच्छेदेनैवाज्ञानानुभवात्। नहि परचित्तस्थमज्ञानं त्वयाऽपि बुभुक्षापिपासादि प्रातिस्विकरूपेणानूद्यते। एवञ्च तद्विशेषसंशयं प्रति तत्सामान्यनिश्चय इव तद्विशेषावच्छिन्नाज्ञानज्ञानं प्रति तत्सामान्यज्ञानस्यैव हेतुत्वं बोध्यम्। यद्यप्युक्तं साक्षी नाज्ञानविरोधी

बुभुक्षापिपासाविषयतद्विशेषरूपार्थानुवादः स्यात् न चैवं परचित्तस्थबुभुक्षापिपासार्थविशेषादेर्ज्ञातुमशक्यत्वादिति भावः। ननु तदवच्छेदकविशेषस्याज्ञाने कथं तदवच्छिन्नाज्ञानाज्ञानमुपपद्येतेत्यत आह—**एवञ्चेति। तद्विशेषेति।** यथा ऊर्ध्वपदार्थविशेषभूतस्थाण्वादिसंशये उर्ध्वपदार्थसामान्यनिश्चयस्यैव हेतुत्वं न विशेषनिश्चयस्यापि तथात्वे तत्संशयस्यैवानुपपत्तेस्तथाच विशेषे तमश्छन्नत्वज्ञानं प्रति गुहास्थत्वादिसामान्याकारेण ज्ञानस्य हेतुत्वमिति भावः। यदाशङ्कितं तदनूद्यते—**यदप्युक्तमिति।** तत्स्फोरकत्वात्= अज्ञानस्फोरकत्वात्। **चैतन्यस्येति।** अज्ञानानावृत्तचैतन्यस्य। तस्याः=वृत्तेः। एतन्मते आवरणभूताज्ञानस्यैवाभावेन वृत्तेरज्ञानविरोधित्वोक्तयोगादिति भावः। **अज्ञानस्येति।** स्वविरोधिवृत्तिज्ञानाभावो यदा तदाज्ञानमिति स्वविरोधिज्ञानभावे प्रत्यज्ञानस्य व्यापकत्वान्मोक्षे व्यापकीभूताज्ञानाभावाद् व्याप्यस्य ज्ञानाभावस्याभावापत्त्या वृत्तिज्ञानापातादित्यर्थः। **विरोधित्वेति।** ज्ञाधात्वर्थभूतचैतन्यवृत्तिरूपज्ञानासामान्य विरोध एवानुभवेन प्रतीयते नतु वृत्तिज्ञानविरोधएव तथाच चैतन्यस्यापि वृत्तिवदज्ञानविरोधित्वं स्यादित्यर्थः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां चैतन्यस्फुरणस्यैवाज्ञानविरोधित्वं नतु वृत्तेरित्याह—**किं चेति।** ननु तत्राज्ञाननिवृत्यभावःस्फुरणाभावप्रयुक्त एव कुतः वृत्त्यभावप्रयुक्तः किं न स्यादित्यतो

मानकर वैसा कहा है वास्तव में तो वहाँ भी भासमान ही अर्थ में अज्ञान है—यही कह रहे हैं—'किञ्च न तत्रापि भासमाने............' अर्थात् आपसे कथित अर्थ को नहीं जानता यहाँ भी। गुहास्थं तमश्छन्नम्—अर्थात् जैसे गुहा में स्थित वस्तु तम से आच्छन्न है—ऐसा कहने पर गुहा में स्थित घट आदि गुहास्थ रूप से ही सामान्यतः प्रतीत होता है—इसी प्रकार घट आदि विशेष में तमश्छन्नत्व का अनुभव होता है—इसी प्रकार आप द्वारा कथित अर्थ को मैं नहीं जानता यहाँ भी अनावृत रूप से सदा प्रतीयमान—उसके अर्थत्व आदि सामान्य तदवच्छेदेनैव विशेष अज्ञान का अनुभव होता है। इस प्रकार उसके विशेषक ज्ञान एवं अज्ञान सामान्य ज्ञान का ही हेतु होने से उसके सामान्य आकार की प्रतीति होने से उसमें अज्ञान नहीं है—किन्तु विषय ही है—इस तरह जो भासता है—उसमें अज्ञान नहीं है। वह अर्थ प्रकाशित नहीं होता—

तत्स्फोरकत्वात् किन्तु वृत्तिरेव तद्विरोधिनीति तत्तुच्छम् वृत्तिश्चैतन्यस्य विषयोपरागार्थेति मते तस्या अज्ञाननिवर्तकत्वाभावात्। अज्ञानस्य स्वविरोधिज्ञानाभावव्यापकत्वेन मोक्षेऽप्यज्ञानापातात्। न जानामीत्यज्ञानस्य ज्ञानसामान्यविरोधित्वानुभवाच्च। किञ्चातीन्द्रिये परोक्षवृत्तौ सत्यामपि त्वन्मतेऽज्ञानानिवृत्त्या सुखादावपरोक्षवृत्त्यभावेऽपि स्फुरणमात्रेणाज्ञानादर्शनेन चान्वयव्यतिरेकाभ्यां

वृत्तेरप्रयोजकत्वं वक्तुमुक्तं **परोक्षेति**। तथा च चैतन्यस्फुरणे सति अज्ञानाभावः सुखादावस्तीति भावः। ननु तत्राज्ञानाभावोऽपरोक्षवृत्तिप्रयुक्त एव किं नस्यादित्यत उक्तम् **परोक्षवृत्त्यभावेपीति**। संगृह्णाति—**साक्षीति**। साक्षिणः स्वविषयविषयकाज्ञानविरोधित्वाभावे सुखादावज्ञानं केन वार्यते वृत्तेरभावादित्यर्थः। सुखादीनां न केवलचिद्वेद्यत्वमपितु वृत्तिप्रतिबिम्बित साक्षिवेद्यत्वं तथाच सुखादिविषये वृत्तिसहितस्यैव साक्षिणोऽज्ञानविरोधित्वमित्याशंक्य निराकरोति—**न चेति**। सुखादेर्नान्तःकरणवृत्तिप्रतिबिम्बितसाक्षिवेद्यत्वं तस्याइन्द्रियव्यापाररूपप्रमाणजन्यत्वादान्तरसुखादौ च तदप्रवृत्तेः। नापि सुखादेरविद्यावृत्तिप्रतिबिम्बितसाक्षिवेद्यत्वमविद्यावृत्तेर्दोष-जन्यत्वनियमात्, अतः परिशेषात् केवलसाक्षिवेद्यत्वमित्याह—**अन्तःकरणेति। असतइति।** सुखादेर्वृत्तिप्रतिबिम्बित साक्षिवेद्यत्वे सुखाद्युत्पत्त्यनन्तरं तद्ग्रहणाय वृत्तिविलम्बेन बिलम्बापत्त्या कदाचित्संशयादिः स्यात् तथाच ज्ञातैकसत्वहानिप्रसङ्गात्।

इस प्रकार भासमान (चैतन्य) अज्ञान नहीं है—यह भाव है। अज्ञानानुभव का तात्पर्य है विशेष में अज्ञान का अनुभव। विशेष आकार में प्रकाशमान अज्ञान है—ऐसा कहने पर बाधक कहते हैं—'न हि परचित्तस्थमज्ञानम्.......' परचित्तस्थ अज्ञान माने अज्ञानावच्छेदकीभूत वस्तु, उसे आप भी बुभुक्षा पिपासा आदि से अवच्छिन्न तत् तत् वस्तु के प्रातिस्विक रूप में अनुवाद नहीं करते। कहें कि तद्वच्छेदक विशेष के अज्ञान में किस तरह तद्वच्छिन्न अज्ञान का ज्ञान उपपन्न होगा इस पर कहते हैं—'एवञ्च तद्विशेष संशयं प्रति' अर्थात् तद्विशेष के संशय के प्रति तद् सामान्य के निश्चय की तरह तद्विशेषावच्छिन्न अज्ञान में ज्ञान के प्रति तत्सामान्य का ज्ञान ही हेतु समझना चाहिये। यह भी जो कहा था कि साक्षी अज्ञान का विरोधी नहीं है अज्ञान का स्फोरक होने से किन्तु वृत्ति ही उसकी विरोधी है—वह निन्दनीय है वृत्ति चैतन्य में विषयोपराग के लिये होती है—इस मत में उसमें अज्ञान निवर्तकत्व का अभाव है। इस मत में आवरणभूत अज्ञान का ही अभाव होने से वृत्ति अज्ञान विरोधी है यह कथन ही अयुक्त है। अज्ञान स्वविरोधी ज्ञानाभाव का व्यापक होने

स्फुरणस्यैवाज्ञानविरोधित्वात्। ''साक्षी स्वविषयेऽज्ञानविरोधी न भवेद्यदिं तद्वेद्ये सुखदुःखादावज्ञानं केन वार्य्यत'' इति वचनात्, न च सुखाद्यपि वृत्तिप्रतिबिम्बितसाक्षिणैव वेद्यं न तु केवलेनेति केवलोनाज्ञान विरोधीति वाच्यम्। अन्तःकरणवृत्तेरिन्द्रियव्यापारं विनाऽविद्यावृत्तेश्च दोषं विनाऽयोगात्। इति त्वत्पक्षोऽसतः साधकत्वभङ्गे केवलसाक्षिवेद्यत्वोपपादनाच्च। अन्यथाऽऽत्मापि वृत्तिप्रतिबिम्बितेन

अतः केवलचिद्वेद्यत्वं वाच्यमित्युपपादनस्य कृतत्वादित्यवधेयम्। ततश्च शुद्धचित एव दुःखादिविषयेऽज्ञानविरोधित्वप्राप्त्या न वृत्तिचितोर्वैषम्यमितिभावः। विपक्षेबाधकतर्कमाह—**अन्यथेति**। स्वसत्तायामप्रकाशविधुरेऽपि सुखादौ वृत्त्यपेक्षायामिति तदर्थः। **स्यादिति**। तथाच स्वव्यवहारे स्वातिरिक्तज्ञानान्तरापेक्षा स्यादिति भावः। **सेदानीमिति**। सत्यज्ञानादिरूपवेदान्तवाक्यजन्यायाः श्रवणादिरूपवृत्तेरिदानीं साक्षात्कारात् पूर्वमपि सत्वेनाज्ञाननिवृत्त्यापत्त्या मोक्षापातेन संसारोपलम्भो न स्यादित्यर्थः। तत्र—आत्मशब्दवाच्ये चैतन्ये। आत्मविषयावृत्तिरिदानीमप्यस्तीत्यत्र विवरणसम्मतिमाह—**विवरण इति। जीवाकारेत्यादि**। जीवविषयाहन्त्वप्रकाशवृत्तिस्तदात्मना परिणतं यदन्तःकरणं तेन जीवोऽभिव्यज्यते। अहमाकारान्तःकरणपरिणामरूपज्ञानरूपया वृत्त्या जीवविषयिण्या जीव इति व्यवहारविषयो भवतीत्यर्थः। **अन्यथेति**। अहमाकारवृत्त्यभावदशायां सुषुप्तेरित्यर्थः। तथाच जीवस्यैवात्मत्वात्तद्विषयिणी वृत्तिः प्रत्यहमस्तीत्यर्थः। ननु जीवस्य विशिष्टत्वान्न चैतन्यविषयापरोक्षवृत्तिरस्तीति चेत्तत्राह—**अयंघट इति**। तथात्वे चैतन्यविषयिण्यपि वृत्तिरिदानीमप्यस्तीति तयाऽज्ञाननिवृत्तौ मोक्षापात इति भावः। विपक्षे बाधकदण्डमुपन्यस्यति। **अन्यथेति**। अयं घट इति

से मोक्ष में भी अज्ञान की आपत्ति होगी। न जानामि (मैं नहीं जानता।) इस प्रतीति में अज्ञान ज्ञान सामान्य का विरोधी है, यह अनुभव भी होता है। दूसरी बात अतीन्द्रिय परोक्षवृत्ति होने पर भी आपके मत में अज्ञान की निवृत्ति न होने से सुख आदि में अपरोक्ष वृत्ति के अभाव में भी स्फुरण मात्र से अज्ञान के अदर्शन से भी अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्फुरण में ही अज्ञान विरोधित्व है। ''साक्षी स्वविषयेऽज्ञानविरोधी न भवेद्यदि तद्वेद्ये सुखदुःखादावज्ञानं केन वार्यते'' ऐसा वचन है। अर्थात् साक्षी में यदि स्वविषय विषयक अज्ञान विरोधित्व का अभाव में सुख आदि में अज्ञान का निवारण कौन कर सकता है—वृत्ति के अभाव से यह भाव है यदि कहें कि सुख आदि भी वृत्ति प्रतिबिम्बित साक्षी के द्वारा ही वेद्य होता है—न केवल साक्षी द्वारा, इस प्रकार केवल साक्षी अज्ञान का विरोधी नहीं है तो ऐसा

स्वेन सदा प्रकाशते न तु केवलेनेति स्यात्। अस्तु वा वृत्तिरेवाज्ञान विरोधिनी तथाप्यात्मविषया सेदानीमप्यस्तीति कथं तत्राज्ञानम्। विवरणे जीवाकाराऽहंकारवृत्तिपरिणतान्तः करणेन च जीवोऽभिव्यज्यते। अन्यथा सुषुप्तेरित्युक्तेः, अयं घट इत्यपरोक्षवृत्तेरपि त्वन्मते घटावच्छिन्नचि-द्विषयत्वाच्च। अन्यथा घटावरकज्ञानाभावेनायं घट इतिवृत्तेरज्ञानाभिभावकत्वं न स्यात्। न च विशिष्टचैतन्यरूपजीवविषया वा घटावच्छिन्न-

वृत्तेर्घटावच्छिन्न-चिद्विषयत्वाभावमङ्गीकृत्येदानीं चैतन्यविषयकवृत्त्यभावाङ्गीकार इति तदर्थः। **घटावरकेति।** यदि घटावरकमज्ञानं न स्यात्तदा घटविषयिण्या वृत्त्या घटाज्ञाननिवृत्तिः स्यात् नचैवं घटादेरप्रकाशस्वरूपत्वेनावरणकृत्याभावेन जडावरकज्ञानानङ्गीकारादतो घटावच्छिन्न एव घटाज्ञानमङ्गीकार्यं तथाचायं घट इतिवृत्तेर्घटावच्छिन्नचिद्वषयकत्वाभावे समानविषयकाज्ञानाभिभावकस्यान्यस्याभावेन घटादिव्यवहाराभावापत्त्या घटावच्छिन्नचिद्वषयत्वमवश्यमङ्गीकार्यमित्यर्थः। आत्मविषयिणी वृत्तिरिदानीमप्यस्तीत्युपपादनायाहमिति जीवविषया वृत्तिर्घटावच्छिन्नचैतन्यविषया च वृत्तिरिदानीमस्तीत्युक्तं भवति किन्ततोऽज्ञानविरोधिन्याश्चैतन्यवृत्तेः सत्वादज्ञाननिवृत्तिः स्यात् ततश्च सद्यो मोक्षस्स्यादिति चेन्न। विशिष्टचैतन्यरूपजीवविषयवृत्तेर्विशेष्यविषयकत्वाभावात् चिन्मात्रविषयकाज्ञानविरोधित्वाभावाद्वा न तयाऽज्ञाननिवृत्तिरित्याशङ्क्य परिहरति— **नचेति।** विशिष्टवृत्तेर्विशेष्याविषयकत्वे विशेष्यविषयकाज्ञानानिवर्त्तकत्वानङ्गीकारेऽ-तिप्रसङ्गमाह—**दण्डीचैत्रइति।** तथाच दण्डी चैत्र इति ज्ञानानन्तरमयं चैत्रो न वा अन्य एवेति संशयविपर्ययौ स्यातामिति भावः। **श्रवणादीति।** इदानींतनात्मवृत्तिस्तु न श्रवणादिजन्येति नाज्ञानविरोधिनी श्रवणादिजन्या च वृत्तिश्च चरमवृत्तिरेवेति भावः। **भ्रमकालीनेति।** जगद्भ्रमकालीनं यदपरोक्षज्ञानं सन् घट इत्यादिसाक्षात्काररूपं

भी नहीं कह सकते—कारण इन्द्रिय व्यापार के बिना अन्तःकरण की वृत्ति तथा दोष के बिना अविद्या की वृत्ति संभव नहीं है। अन्यथा आत्मा भी वृत्ति में प्रतिबिम्बित स्वरूप से प्रकाशित होता है न केवल स्वरूप से ऐसा हो जाएगा। अथवा मान ले वृत्ति ही अज्ञान विरोधी है—फिर भी आत्मविषयिणी वह वृत्ति—अब भी है—फिर उसमें अज्ञान कैसा? इस विषय में विवरणकार की सम्मति कहते हैं—विवरण में—जीवाकार अहंकार की वृत्ति में परिणत अन्तःकरण से जीव अभिव्यक्त होता है। अन्यथा अहमाकार, वृत्ति दशा में सुषुप्ति इस कथन से अयं घटः इस अपरोक्ष वृत्ति में आपके मत से घटावच्छिन्न चिद्विषयत्व हो जाएगा। अन्यथा अयं घटः इस वृत्ति

चैतन्यविषया वा वृत्तिरज्ञान विषयीभूतकेवलचिद्विषया वातदज्ञानविरोधिनीति वाच्यम्। दण्डी चैत्र इति प्रतीत्या चैत्राज्ञानानभिभवापातात्। न च श्रवणादिजन्यैव वृत्तिरज्ञानविरोधिनीति वाच्यम्। भ्रमकालीनापरोक्षज्ञानानधिकविषयकज्ञानेन कारणान्तरजन्येनाप्यविद्यानिवृत्तावतिप्रसङ्गात्। अनधिकविषयत्वे श्रवणादिवैयर्थ्याच्च तस्मान्न शुद्धचिन्मात्रात्माऽज्ञानस्य विषयः॥ ५५॥

तदपेक्षयानधिकविषयकं भ्रमप्रतीतसदर्थमात्रविषयकं तेन समानविषयकं यच्चरमवृत्तिरूपं तेनेत्यर्थः। **कारणान्तरेति।** भ्रमकालीनचैतन्यापरोक्षज्ञानमिन्द्रियजन्यञ्च चरमज्ञानं च वेदान्तजन्यमिति कारणकृतमेव वैषम्यं न विषयकृतमस्तीत्यर्थः। **अतिप्रसंगादिति।** विषयकृतवैषम्यरहितस्यापि कारणान्तरजन्यत्वमात्रेणाविद्यानिवर्त्तकत्वेऽपीतसाक्षात्कारस्यापि न पीतभ्रमनिवर्तकत्वं किन्तु श्रवणादिजन्यमपीतसाक्षात्कारस्यैव तथात्वमस्त्विति अतिप्रसङ्ग इत्यर्थः। तत्र वक्तव्यं तयोर्विषयकृतविशेषाभावेन कारणान्तरजन्यत्वमप्रयोजकमिति तत्प्रकृतेऽपि समानमिति भावः। चरमवृत्तेर्भ्रमकालीनापरोक्षज्ञानानधिकविषयत्वे दूषणान्तरमाह—**अनधिकेति।** निगमयति—**तस्मादिति। नापीति॥ ५५॥**

में घटावच्छिन्न चिद्विषयत्वाभाव स्वीकार कर इस समय चैतन्यविषयक वृत्यभाव स्वीकार मानने पर घटावरक ज्ञान के अभाव से अयं घट इस वृत्ति में अज्ञान को अभिभावकत्व नहीं होगा। कहें कि विशिष्ट चैतन्य रूप जीवविषयक, अथवा घटावच्छिन्न चैतन्य विषयक वृत्ति किंवा अज्ञान विषयीभूत केवल चिद्विषयावृत्ति ही अज्ञान की विरोधिनी होती है। तब दण्डी चैत्रः इस प्रतीति से चैत्र सम्बन्धी अज्ञान के अनभिभव की आपत्ति होगी। क्योंकि श्रवणादि जन्य वृत्ति ही अज्ञान की विरोधी होती है—ऐसा भी नहीं कह सकते फिरतो भ्रमकालीन भिन्न कारण से जन्य अपरोक्ष ज्ञान से अनधिक विषयक-ज्ञान से भी अविद्या की निवृत्ति का अतिप्रसङ्ग हो जाएगा। दूसरी बात चरम वृत्ति में भ्रमकालीन अपरोक्ष ज्ञान से अनधिक विषय होने पर श्रवणादि का वैयर्थ्य भी होगा। इसलिये शुद्ध चिन्मात्र आत्मा ब्रह्म अज्ञान का विषय कथमपि नहीं हो सकता ।।५५।।

नापि देहादिभेदो वा भोक्तृत्वाद्यभावो वा ब्रह्माभेदो वा द्वितीयमात्राभावो वा तद्विशिष्ट आत्मा वाऽज्ञानविषयः। विकल्पासहत्वात्। तथा च तेषामात्ममात्रत्वं वा भिन्नत्वं वा अविद्यकत्वं वा नाद्यः। उक्तदोषयोगात्। न द्वितीयः। अद्वैतहानेः। न तृतीयः।

देहेन्द्रियादिभिरात्मनो भेदादिकमज्ञानावृतं सदिदानीं न भासते प्रत्युतेदानीं आत्मनि देहाद्यभेदो भोक्तृत्वकर्तृत्वादिकं ब्रह्मभेदः द्वितीयश्च भासत इत्याशयेन विकल्पयति **देहादिभेदइति। तद्विशिष्टेति।** देहादिभेदभोकृत्वाभावविशिष्ट आत्मैवाज्ञानविषयस्तथाचाज्ञानावृतः सन् तथा न भासते प्रत्युत देहाद्यैक्यभोकृत्वादिविशिष्टतयैव भासत इत्यर्थः। देहादि भेदानामात्ममात्रत्वं विवक्षित तद्भिन्नत्वं वेति विकल्पयति—**तेषामिति।** देहादिभेदानामित्यर्थः। आद्यविकल्पं निरस्यति—**नाद्यइति।** उक्तदोषादिति। चैतन्यमात्रत्वे आवरणकृत्याभावादिरूपदोषस्योक्तत्वादित्यर्थः। द्वितीयं परिहरति—

देह, इन्द्रिय आदि से आत्मा का भेद आदि अज्ञान से आवृत होने से भासित नहीं होता—बल्कि आत्मा में देह आदि से अभेद, भोक्तृत्व, अकर्तृत्व आदि तथा ब्रह्मभेद भासित होता है—इस आशय से विकल्प करते हैं—'नापि देहादिभेदो वा' इत्यादि अर्थात् ना ही देहादि भेद अथवा भोक्तृत्वादि का अभाव, किंवा ब्रह्माभेद, अथवा द्वितीयमात्र का अभाव, अथवा देहादि भोक्तृत्वाभाव विशिष्ट आत्मा ही अज्ञान का विषय है? इसलिये अज्ञान से आवृत होकर इस प्रकार भासित नहीं होता, बल्कि देहादि से ऐक्याभावापन्न होकर भोक्तृत्व आदि विशिष्ट रूप में भी भासित होता है, तो यह भी नहीं कह सकंते—यहाँ भी विकल्प होने पर कोई उत्तर नहीं हो सकता जैसे हम पूछेंगे कि देहादि भेदों आत्ममात्रत्व विवक्षित है या तद्भिन्नत्व? पहला पक्ष नहीं कह सकते, कारण इसमें उक्त दोष का योग है। चैतन्य मात्र में आवरण कृत्य में अभावादि रूप दोष है, यह पहले कहा गया है। द्वितीय पक्ष भी नहीं हो सकता इसमें स्पष्ट अद्वैत की हानि है। तृतीय भी नहीं कह सकते—इसमें अन्योऽन्याश्रय दोष का प्रसङ्ग है—एक अज्ञान से अज्ञानान्तर स्वीकार करने पर

अन्योन्याश्रयादिप्रसङ्गात्। ननु ब्रह्माभेदादेः प्रकाशमानात्ममात्रत्वेऽपि कल्पितभेदेनाज्ञातृत्वमिति चेन्नाधिष्ठानावरणं विना भेदकल्पना-सम्भवस्योक्तत्वात्। न च मिथ्याभूतेनापि भेदाभावेन द्वितीयाभावेनोप-लक्षित आत्माऽज्ञानविषय इति वाच्यम्। तस्य समानविषयज्ञाननिवर्त्यत्वेन वेदान्तानामप्युपलक्षणरूपप्रकारयुक्तात्मपरत्वेनाखण्डार्थत्वहानेः। अकाके काकवदिति वाक्यवदप्रामाण्यापाताच्च। उपलक्षणस्य मिथ्यात्वात्। प्रकाशमानस्यात्मनोऽज्ञानविषयत्वेऽप्रकाशमानस्य

नद्वितीय इति। अन्योन्याश्रयेति। तेषामाविद्यकत्वे सिद्धे तदावरकाज्ञानसिद्धिः तत्सिद्धौ च तेषामविद्याकल्पितत्व सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयः। अज्ञानव्यक्त्यन्तराङ्गीकारे चक्रकादिरित्यर्थः। ब्रह्माभेदादीनां प्रकाशमानात्ममात्रत्वमङ्गीकृत्य कल्पितभेदमादायाज्ञानविषयत्वमुपपद्यत इति शङ्कते—**नन्विति।** प्रकाशमाने आत्मनि भेदकल्पनैवायुक्ता कल्पनाया अधिष्ठानावृत्तिं विनाऽयोगेनाधिष्ठानचैतन्यस्य सदा प्रकाशमानत्वेनाधिष्ठानावरणायोगेन भेदभ्रान्तिरूप कल्पनाऽयोगादित्याशयेन निराकरोति—**नेति।** कुतोनेत्यत आह—**तस्येति। अज्ञानस्येति** तदर्थः। ननु वेदान्तानां भेदाभावोपलक्षणरूपप्रकारयुक्तात्मपरत्वं कुतः येनाखण्डार्थत्वहानिरित्यत आह—**समानेत्यादिना।** अज्ञानस्य भेदाभावोपलक्षितात्मविषयकत्वेन

चक्रकापत्ति भी होगी। कहें कि ब्रह्माभेद आदि से प्रकाशमात्रत्व स्वीकार कर कल्पित भेद लेकर अज्ञान विषयत्व की उपपत्ति होगी तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण अधिष्ठान के आवरण के बिना भेद की कल्पना असंभव है—यह पहले ही कह दिया है। कहें कि मिथ्याभूत भी भेदाभाव से द्वितीयाभाव से उपलक्षित आत्मा अज्ञान का विषय होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि अज्ञान के समान विषय ज्ञान निवर्त्य होने के कारण वेदान्त वाक्यों में भी उपलक्षण स्वरूप प्रकारयुक्त आत्मपरक होने से उनके अखण्डार्थत्व की हानि होगी। दूसरी बात काक भिन्न में काकवत् इस वाक्य की तरह अप्रामाण्य की आपत्ति भी होगी। कारण उपलक्षण मिथ्या होता है।

प्रकाशमान आत्मा को अज्ञान विषयत्व तथा द्वितीयात्वभाव रूप अप्रकाशमान का उपलक्षणत्वेन अज्ञान का अविषयत्व स्वीकार करने पर दृष्ट की हानि एवं

द्वितीयाद्यभावस्योपलक्षणत्वेन तदविषयत्वे च दृष्टहान्यदृष्टकल्पनापाताच्च। तस्मादात्मनः प्रकाशमानत्वादन्यस्य चाविद्यकत्वान्नाज्ञानविषयत्वमिति संक्षेपः ॥ ५६ ॥

इति पराभिमताज्ञानविषयोपपत्तिगिरिनिपातः ॥ १२ ॥

तद्विषयकज्ञाननिवर्त्यताया एव वक्तव्यत्वात् तथाचोपलक्षणप्रकारपरत्वेनाखण्डार्थताहानिः स्यादेवेत्यर्थः। **अकाक इति।** उपलक्षणीभूतस्य प्रत्याय्यव्यावृत्तिसमये सत्वाभावादकाके काकवदिति वाक्यं यथाऽप्रमाणमेवमुपलक्षणीभूतभेदाभावादेर्मिथ्यात्वेन ब्रह्मण्यभावात्तद्बोधकवेदान्तानामप्रामाण्यं स्यात् काकोत्थाप्योतृणत्ववदीश्वरे तदभावादिति भावः। **प्रकाशमानस्येति।** लोके ज्ञानविषयस्य प्रकाशमानत्वं दृष्टं त्वया तु अप्रकाशमानस्यैवाद्वितीयाभावस्योपलक्षणत्वेन तटस्थतया ज्ञानविषयत्वस्वीकाराददृष्टकल्पनेत्यर्थः। उपसंहरति। **तस्मादिति।** आत्मनः=चिन्मात्रस्य। **अन्यस्येति।** देहादिभेदरूपस्यात्मभिन्नस्य मिथ्याविशेषस्येत्यर्थः ।।५६।।

इति पराभिमताज्ञानविषयोपपत्तिगिरिनिपातस्य व्याख्या ॥ १२ ॥

अदृष्ट की कल्पना की आपत्ति भी होगी। लोक में ज्ञान विषय में प्रकाशमानत्व देखा गया है आप तो अद्वितीयाभाव अप्रकाशमान को उपलक्षण मानकर तटस्थ मानकर ज्ञान विषयत्व स्वीकार किया है—यह अदृष्ट कल्पना है—यह भाव है। इसलिये चिन्मात्र आत्मा के प्रकाशमान होने तथा अन्य आत्मभिन्न देहादि भेद के आविधिक (मिथ्या) होने से उन सब में अज्ञान विषयत्व नहीं हो सकता ।।५६।।

इस प्रकार पराभिमत अज्ञान विषयोपपत्ति गिरिनिपातक अनुवाद पूरा हुआ ॥१२॥

(१३) अज्ञानप्रयोजनकादिसिद्धिगिरिनिपातः

अज्ञानस्य प्रयोजकासिद्ध्याऽपि तदसिद्धिः तथाहि किं प्रयुक्तमज्ञानं स्वप्रयुक्तम् चिन्मात्रप्रयुक्तमुभयप्रयुक्तमन्यप्रयुक्तं वा नाद्यः। आत्मा-श्रयापत्तेः। तस्याक्रियत्वेनासिद्धेश्च। न द्वितीयः तस्य निरीहत्वेन प्रयोजक-त्वायोगात्। अन्यथा प्रयोजकस्य नित्यत्वेन तत्प्रयोज्यस्यापि नित्यत्वापत्त्या निवृत्त्यभावप्रसङ्गात्, अनिर्मोक्षप्रसङ्गाच्चा, निरीहत्व-स्वभावत्यागप्रसङ्गाच्च सविशेषत्वापत्तेश्च। न तृतीयः अन्योन्याश्रयात्। न चतुर्थः। उभयेतरपदार्थानङ्गीकारात्। अज्ञानान्तरकल्पनायां

यद्यज्ञानस्य प्रयोजकं स्यात्तदाऽज्ञानं सिद्ध्यति नत्वेवमित्याह—**अज्ञानस्येति।** तदसिद्धिः=अज्ञानासिद्धिः। अज्ञानस्य प्रयोजकं पृच्छति। **किंप्रयुक्तेति।** स्वप्रयुक्तम्=अज्ञानप्रयुक्तम्। अज्ञानस्य प्रयोजकमज्ञानमित्यर्थः। चिन्मात्रप्रयुक्तम्=अज्ञानस्य प्रयोजकचिन्मात्रमित्यर्थः। उभयप्रयुक्तम्। अज्ञानचिदुभयप्रयुक्तमित्यर्थः। आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति।** आत्माश्रयापत्तेरिति। अज्ञानोत्पत्तावज्ञानस्यापेक्षणादात्माश्रयः यदि स्वोत्पत्तौ स्वस्यापेक्षितत्वं स्यात्तदा स्वभिन्नं स्यादिति तर्कमुद्रया तस्य दूषकत्वं बोध्यम्। यत् सक्रियं तदेव प्रयोजकमित्यभिप्रेत्याह—**तस्येति।** अज्ञानस्येत्यर्थः। द्वितीयविकल्पं परिहरति—**न द्वितीय इति।** तस्य=चिन्मात्रस्य। बाधकतर्कमुपन्यस्यति। **अन्यथेति।** निरीहस्यापि प्रयोजकत्व इत्यर्थः। कार्यकारणयोरभेदात्। अज्ञानप्रयोजकस्य चिन्मात्रस्य नित्यत्वात्

प्रयोजक की असिद्धि से अज्ञान की असिद्धि

अज्ञान के प्रयोजक की असिद्धि से भी अज्ञान सिद्धि नहीं होती—जैसे हम पूछेंगे कि अज्ञान किंप्रयुक्त है—अज्ञान का प्रयोजक क्या है—अज्ञान किस कारण से होता है? क्या अज्ञान स्वप्रयुक्त ही होता है—अज्ञान का प्रयोजक स्वयं अज्ञान ही है? या चिन्मात्र (ब्रह्म) प्रयुक्त है? अथवा अज्ञान तथा चित् उभय प्रयुक्त है? अथवा किसी अन्य से प्रयुक्त? पहला पक्ष संभव नहीं—इसमें आत्माश्रय दोष है—अज्ञान की उत्पत्ति में अज्ञान की अपेक्षा होने पर आत्माश्रय स्पष्ट है। यदि स्व की उत्पत्ति में स्व की अपेक्षा हो तब स्व भिन्न होगा—इस प्रकार तर्क से उसमें दूषकत्व समझना चाहिये। दूसरी बात अज्ञान निष्क्रिय होने से प्रयोजन नहीं हो सकता, क्योंकि जो सक्रिय होता है, वही प्रयोजक होता है। द्वितीय विकल्प भी संभव नहीं है, वह चिन्मात्र ब्रह्म में निरीह होने से उसमें प्रयोजकत्व नहीं हो सकता। अन्यथा निरीह को भी प्रयोजक मानने पर अज्ञान प्रयोजक चिन्मात्र ब्रह्म के नित्य होने से तन्मात्र प्रयोज्य अज्ञान में भी नित्यत्व की आपत्ति होगी,

चक्रकापत्तिः। तस्यापि प्रयोजकान्तरकल्पनेऽनवस्थेति जीवेश्वर योरेकतरस्य प्रयोजकताकल्पने तयोस्तदध्यासकार्यत्वेन तदानीमभावात्, तयोरेवाभावेन तत्प्रयोजकतायास्तु का गाथेति भावः ॥ ५७ ॥

तन्मात्रप्रयोज्यस्याज्ञानस्यापि नित्यत्वमापद्येत तथा सति तन्निवृत्त्यभावेन मोक्षो न स्यादित्याह—**प्रयोजकस्येति**। तत्प्रयोज्यस्य=चिन्मात्रप्रयोज्यस्य। ततः किमित्यत आह। अनिर्मोक्षइति। चिन्मात्रस्य प्रयोजकत्वे बाधकान्तरमुपन्यस्यति—**निरीहेति। सविशेषेति**। अज्ञानप्रयोजकत्वरूपसविशेषत्वं चैतन्यस्य स्यादित्यर्थः। तृतीयविकल्पं दूषयति—**न तृतीयइति। अन्योन्याश्रयेति**। अज्ञानसिद्धौ सत्यां चिदज्ञानयोर्प्रयोजकत्वसिद्धिः। तदुभयोःप्रयोजकत्वसिद्धौ सत्यामज्ञानसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयः। चिदज्ञानोभयातिरिक्तस्याज्ञानप्रयोजकस्य स्वीकारे तस्यातिरिक्तपदार्थत्वमापद्येतेत्याशयेन पूर्व्वविकल्पमपाकरोति—**न चतुर्थइति। चक्रकापत्तिरिति**। अज्ञानसिद्धौ प्रयोजकं ज्ञानान्तरं वाच्यमज्ञानान्तरसिद्धौ पुनरज्ञानं निविष्टं तत्सिद्धावज्ञानान्तरं प्रयोजकमित्येवं रीत्या चक्रकापत्तिः। तस्य=अज्ञानान्तरस्य। **अनवस्थेति**। अज्ञानसिद्धौ तत्प्रयोजकाज्ञानान्तर सिद्धिस्तत्प्रयोजकसिद्धौ अज्ञानसिद्धिः तत्सिद्धौ तत्प्रयोजकाज्ञानान्तरं कल्पनीयं तत्प्रयोजकान्तरमित्येवं परम्परायामनवस्थेत्यर्थः। तयोः=जीवेश्वरयोः। तदानीम्= अविद्याकाले **॥ ५७ ॥**

अज्ञान भी नित्य हो जायेगा, फिर तो उसकी कभी भी निवृत्ति नहीं होने से आत्मा के अनिर्मोक्षत्व का प्रसंग होगा—कभी किसी का भी मोक्ष नहीं होगा। चिन्मात्र के प्रयोजक मानने पर उसमें निरीहत्व स्वभाव के त्याग का प्रसंग भी हो जाएगा तथा अज्ञान प्रयोजकत्व रूप सविशेषत्व (अज्ञान प्रयोजकत्व धर्म होने से) चिन्मात्र ब्रह्म में सविशेषत्वापत्ति भी होगी। तीसरा विकल्प भी संभव नहीं है—तब तो अन्योऽन्याश्रय होगा—अज्ञान सिद्धि होने पर चित् अज्ञान में प्रयोजकत्व सिद्धि और उभय में प्रयोजकत्व सिद्धि होने पर—अज्ञान सिद्धि स्पष्ट अन्योऽन्याश्रय। चौथा पक्ष तो संभव ही नहीं कारण—उभय अज्ञानी और चिन्मात्र (ब्रह्म) इतर कोई पदार्थ आपने स्वीकार ही नहीं किया है। अज्ञान के प्रयोजक के लिये—किसी भिन्न अज्ञान की कल्पना करें तो चक्रकापत्ति—फिर तो उस अज्ञान का प्रयोजक दूसरा अज्ञान उसके लिये भी दूसरा अज्ञान इस तरह अनवस्था होगी। जीव और ईश्वर के अन्यतर को प्रयोजक कहें तो ये दोनों शंकर मत में अज्ञान प्रयुक्त अध्यास के कार्य होने से अविद्या काल में जीव ईश्वर का अभाव है। जब वे दोनों ही (जीव ईश्वर) नहीं है—फिर उनकी प्रयोजकता का प्रश्न ही क्या? ।।५७।।

किंच कल्पकाभावादप्यज्ञानासिद्धिः। तस्य किन्तावत् कल्पकं शुद्धचिन्मात्रं वा उपहितं वा। नाद्यः। तस्य निर्दोषत्वात् प्रयोजनाभावाच्च, निर्विशेषत्वाच्च। न द्वितीयः। तस्य कल्पितत्वेन कल्पकत्वासम्भवाच्च, अन्योन्याश्रयाद्यापत्तेश्च। अतो विशेषमात्राभावाङ्गीकारे सर्वथाकल्पकासिद्धे नन्वनाद्यज्ञानोपधानवशेन शुद्धमेव कल्पकं

प्रकारान्तरेणाप्यज्ञानस्य सिद्धिं निरसितुमाह–किञ्चेति। आद्यपक्षं निराकरोति नाद्य इति तस्य=शुद्धचिन्मात्रस्य। द्वितीयकल्पमपाकरोति—**न द्वितीय इति**। तस्य=उपहितस्य। **अन्योन्याश्रयइति**। उपहितस्य कल्पितत्वसिद्धौ सत्यामज्ञानस्य कल्पकत्वसिद्धिः। अज्ञानकल्पत्वसिद्धौ तत्सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयः। उपहितस्य कल्पकं कल्पकान्तरं तदप्युपहितं तस्यापि कल्पकान्तरं तस्याप्यन्यदित्यनवस्था आदिपदग्राह्या अनाद्यविद्यावशाच्छुद्ध स्याज्ञानकल्पकत्वमिति शङ्कते—**नन्विति**। कल्पकत्वं निर्वक्ति—**कल्पकत्वञ्चेति**। कल्पकत्वशुद्धत्वयोर्विरोधपरिहारायाह—**कल्पनेति**। तथाच समसत्ताकयोरेव विरोधो न

अब यहाँ प्रकारान्तर से भी अज्ञान की सिद्धि का खण्डन करते हैं—'किञ्च कल्पकाभावादप्यज्ञानासिद्धिः'। दूसरी बात अज्ञान का कोई कल्पक ही नहीं है—इसलिये अज्ञान ही सिद्ध नहीं होता—पहले अज्ञान सिद्ध हो तभी न उसके प्रयोजक का विचार होगा? हम पूछते हैं उसका कल्पक कौन शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म? या उपहित ब्रह्म (ईश्वर)। पहला नहीं कह सकते—कारण शुद्ध ब्रह्म—दोष रहित है—वह दोष (अज्ञान की) कल्पना क्यों करेगा? दूसरी बात—वह निष्प्रयोजन है—उसे क्या प्रयोजन है अज्ञान से? तीसरी बात वह निर्विशेष भी है। दूसरा पक्ष—उपहित ब्रह्म भी नहीं हो सकता—वह तो स्वयं कल्पित है—उसमें कल्पकत्व संभव नहीं। दूसरी बात इसमें अन्योऽन्याश्रयी दोष की आपत्ति भी है—उपहित में कल्पितत्व सिद्ध होने पर अज्ञान में कल्पकत्व की सिद्धि—तथा अज्ञान में कल्पकत्व सिद्धि होने पर उसकी सिद्धि—यह स्पष्ट अन्योऽन्याश्रय ही उपहित का कल्पक अन्य

---

* यह उत्तम प्रश्न है अज्ञान किसको होता है? किस कारण से होता है? अज्ञान का प्रयोजक क्या है? शुद्ध ब्रह्म नहीं हो सकता, अज्ञान स्वयं का प्रयोजक भी नहीं हो सकता। जीव तथा ईश्वर भी नहीं हो सकता कारण ये दोनों शांकर मत में अज्ञान कल्पित है।

कल्पकत्वञ्च कल्पनां प्रत्याश्रयत्वं विषयत्वं भासकत्वं वा तत्सर्वं कल्पनासमसत्ताकत्वेन न शुद्धत्वव्याघातकमिति चेन्न। अनाद्यविद्योपहितस्य शुद्धत्वासम्भवात्। तदुपधानस्य दोषं विनैवाङ्गीकारे स्वाभावि-कत्वापत्त्या त्वन्मते निवृत्त्यभावापत्तेर्निरुपाधिकस्य सत्यत्वनियमाच्च, आश्रयत्वादेरसङ्गे

तु भिन्नसत्ताकयोरिति भावः। अविद्योपहितत्वमेव शुद्धत्वव्याघातकमित्याह—**अनादीति।** तदुपधानस्य=अनादिविद्योपधानस्याशुद्धे ब्रह्मण्यनाद्यविद्योपधानस्य दोषमन्तराऽभ्युपगमेस्वाभाविकत्वं वाच्यं तथा सति तस्य निवृत्त्यभावेन मोक्षो दुर्घटः स्यादित्यर्थः यद्यन्निरुपाधिकं तत्सत्यमिति नियममनुसृत्याह—**निरुपाधिकस्येति।** असङ्गो ह्ययं पुरुष इति श्रुत्या ब्रह्मणोऽसङ्गत्वबोधनान्न तत्राविद्याश्रयता कारणमन्तरा घटत इत्याह—**आश्रयत्वादेरिति।** ब्रह्मणोऽसङ्गत्वेऽपि सर्वेषां तत्राध्यासात्सर्वान्तः

कल्पक वह भी उपहित, उसका भी अन्य कल्पक—उसका भी अन्य इस तरह अनवस्था भी होगी—यही आदि पद से ज्ञेय है। इसलिये विशेष मात्र अभाव स्वीकार करने पर सर्वथा अज्ञान के कल्पक की असिद्धि होगी।

यदि कहें कि अनादि अविद्यावशात् शुद्ध ब्रह्म ही अज्ञान का कल्पक है, कल्पकत्व का तात्पर्य है—कल्पना के प्रति आश्रयत्व, विषयत्व अथवा भासकत्व और ये सब कल्पना समकालीन है—इनकी सत्ता कल्पना समकालीन मात्र है—इसलिये ब्रह्म में शुद्धत्व का व्याघातक नहीं है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण जो अनादि अविद्या से उपहित होगा, उसमें शुद्धत्व संभव नहीं है। शुद्ध ब्रह्म अनादि अविद्या का उपधान दोष के बिना ही स्वाभाविक माने तो—स्वाभाविक वस्तु की निवृत्ति न होने से मोक्ष ही 'असंभव' हो जाएगा और आपके मत में जो जो निरुपाधिक होता है, वह सत्य होता है—इस नियम के अनुसार उसमें सत्यता की आपत्ति होगी। 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म असङ्ग होने से उसमें अविद्या की आश्रयता बिना कारण के नहीं घटती—जो दोष के बिना असंभव है। अब ब्रह्म असङ्ग होने पर भी उसमें सबका अध्यास होने से सर्वान्तःपाती अविद्या का उसमें अध्यास के कारण अविद्या प्रयुक्त आध्यासिक सम्बन्ध है इस

ब्रह्मणि स्वतो दोषं विनासम्भवाच्च। नन्वज्ञानाध्यासस्याध्यासान्तरानपेक्षत्वात्, स्वपरसाधारणसर्वनिर्वाहकत्वोपपत्तेः। उपहितस्य कल्पकत्वेऽपि नानवस्थायोगः। कल्पितप्रतिबिम्बविशिष्टादर्शादेवादर्शान्तरेऽपि प्रतिबिम्बकल्पकत्वदर्शनादिति चेन्न। येनोपहितं चेतनं कल्पकं तस्यात्माश्रयदोषेणोपहितस्य कल्पकत्वासम्भवात्। उपहितस्यापि त्वन्मते कल्प्यत्वेन स्वस्यैव कल्पकत्वे

पातिन्याअविद्यायास्तत्राध्यासादविद्याचितोऽध्यासिकसम्बन्ध इत्याशयेन शङ्कते—**नन्विति** येन ब्रह्मण्यज्ञानं कल्पितंसोऽपि कल्पितः। अतोऽज्ञानाध्यासं प्रत्यध्यासान्तराऽपेक्षा इत्यत आह—**अध्यासान्तरेति।** नन्वध्यासमात्रस्य दोषजन्यतया दोषमन्तराकथमज्ञानाध्यासो दोषोऽपित्वन्मतेऽध्यस्त इत्यध्यसान्तरापेक्षाऽस्त्येवेतिचेत्तत्राह—**स्वपरेति।** यथा अविद्याया अन्येषामध्यासनिर्वाहकत्वं तथा स्वाध्यासनिर्वाहकत्वमपि नातोऽध्यासान्तरापेक्षा इत्यर्थः। उपहितस्याज्ञानकल्पकत्वेऽनवस्थादिदोषप्रसङ्ग इति प्रागभिहितं तं दोषं परिहरन्नाह—**उपहितस्येति।** कल्पितस्य कल्पकत्वे दृष्टान्तमुपन्यस्यति—**कल्पितेति।** स्वभावतः चेतनस्त्वसङ्गस्तत्रोपाधिसम्बन्धादुपहितं चेतनं येन कल्पितं तदप्युपहितं तस्य कल्पकत्वं न घटते आत्माश्रयदोषप्रसंगात्। यद्युपहितान्तरस्य चेतनस्य कल्पकत्वमुररीक्रियते तदाऽनवस्था प्रसज्येत इत्याशयेनोक्तशङ्कां व्युदस्यति—**नेति।** स्वं प्रतिबिम्बस्याकल्पकत्वे

आशय से शङ्का करते हैं—"नन्वज्ञानाध्यासस्या........"। अर्थात् कहें कि अज्ञान के अध्यास को अध्यासान्तर की अपेक्षा नहीं होती, कहें कि अध्यास मात्र दोषजन्य होता। दोष के बिना अज्ञान का अध्यास कैसे होगा, आपके मत में दोष भी अध्यस्त है इस तरह अध्यासान्तर की अपेक्षा है ही। इस पर कहते हैं—"स्व पर साधारणं.........." इत्यादि, अर्थात् जैसे अविद्या में अन्य के अध्यासों का निर्वाहकत्व है, उसी तरह अध्यास का निर्वाहकत्व भी—इसलिये अध्यासान्तर की अपेक्षा नहीं होगी तथा कल्पित में (उपहित में) कल्पक मानने पर अनवस्था दोष भी नहीं होगा, कल्पित का कल्पकत्व दृष्टान्त है—कल्पित प्रतिबिम्ब विशिष्ट आदर्श (दर्पण) से ही अन्य आदर्श में भी प्रतिबिम्ब कल्प-कल्पकत्व देखा गया है—इस प्रकार अविद्या का कल्पक असंभव नहीं है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते, जिससे उपहित चेतन कल्पक है, उसमें आत्माश्रय दोष के कारण कल्पकत्व संभव नहीं

चात्माश्रयापत्तेः। उपहितान्तरस्य कल्पकत्वेऽनवस्थापत्तेः। अज्ञानाध्यासस्याध्यासान्तरानपेक्षत्वेऽनध्यस्तत्वापत्त्या सत्यत्वापत्तेः प्रतिबिम्बस्थले तु आदिप्रतिबिम्बकस्याकल्पितत्वेनानवस्थाद्यभावात् प्रतिबिम्बस्य छायावत् सद्वस्त्वन्तरत्वाच्च। उपाधेरनादित्वेऽन्वयव्यतिरेकव्याप्त्या कल्पितत्वासिद्ध्याऽद्वैतभङ्गाच्च। उपहितस्यानादित्वे च निर्विशेषवादो दत्ततिलाञ्जलिः स्यादितिसंक्षेपः॥ ५८॥

इतिपराभिमताज्ञानप्रयोजकादिगिरिनिपातः॥ १३॥

आत्माश्रय इत्याह—उपहितस्यापीति। यदुक्तमज्ञानाध्यासोऽध्यासान्तरं नापेक्ष्यत इति तत्रापत्तिं निर्वक्ति—**अज्ञानेति।** प्रतिबिम्ब स्थलेऽनवस्थां परिहरति—**प्रतिबिम्बेति॥ ५८॥**

इति पराभिमताज्ञानप्रयोजकगिरिनिपातव्याख्या॥ १३॥

है। आपके मत में उपहित भी कल्प्य होने से उसमें ही अपना कल्पक मानने पर आत्माश्रय दोष की आपत्ति—अन्य किसी उपहित की कल्पक मानने पर अनवस्था की आपत्ति। अज्ञान के अध्यास को अन्य अध्यास की अपेक्षा न मानने पर उसमें अनध्यस्तत्व की आपत्ति से सत्यता की आपत्ति—इस प्रकार सब तरह से आपत्ति ही आपत्तियाँ हैं, प्रतिबिम्ब स्थल में तो आदि प्रतिबिम्बक में अकल्पित होने से अनवस्था आदि दोष के अभाव से प्रतिबिम्ब छाया की तरह सद् वस्तु हो जाएगी। उपाधि को अनादि मानने पर अन्वय व्यतिरेकि व्याप्ति से उसमें कल्पितत्व की सिद्धि न होने से अद्वैत भङ्ग भी होगा तथा उपहित को अनादि मानने पर निर्विशेषवाद से हाथ धोना पड़ेगा ।।५८।।

इस प्रकार पराभिमत अज्ञान में प्रयोजक, कल्पक आदि गिरि का निपात हुआ॥ १३॥

(१४) पराभिमताज्ञाननिवर्त्तकगिरिनिपातः

अथाज्ञाननिवर्तकासिद्ध्याऽपि तदसिद्धिः । विकल्पासहत्वात् । तथाहि शुद्धं चिन्मात्रमज्ञाननिवर्तकं चिद्विषया वेदान्तश्रवणादिजन्यापरोक्षवृत्तिर्वा नाद्यः । तस्याज्ञानसाधकत्वेन तदविरोधित्वानङ्गीकाराच्च । न द्वितीयः । ''कथमसतः सज्जायेत असतः सम्भवः कुत'' इति श्रुतिस्मृतिभ्यामसतः

यद्यज्ञाननिवर्तकं सिद्ध्येत् तदाऽज्ञानसिद्धिः स्यात् तन्निवर्तकाभावान्न सिद्ध्यत्यज्ञानमित्याह—**अथेति**। तदसिद्धिः=अज्ञानासिद्धिः । विकल्पयति—**तथाहीति**। आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति**। तस्य=शुद्धचिन्मात्रस्य। तद्विरोधित्वानङ्गीकारात्=अज्ञानाविरोधित्वानङ्गीकारात्। असत्यात्सत्वसिद्धेरनुपपन्नत्वात्, असत्या वृत्त्या सल्लक्षणाया अज्ञाननिवृत्तेरसिद्धिरित्याशयेन द्वितीयकल्पं दूषयति—**न द्वितीय इति**। असतः सदुत्पत्तिं श्रुतिस्मृतिप्रमाणमुखेन निरसितुं तदुदाहरति—**कथमिति। असत्येति**। कार्यकारणयोः समसत्ताकत्वादिति भावः। ज्ञप्तिरूपेति। ज्ञप्तिर्ज्ञानं जानामीत्यत्र ज्ञाधात्वर्थो ज्ञानं नञर्थो विरोध इत्यभिप्रेत्योक्तं ज्ञप्तिरूपचिद्विरोधस्येति। अज्ञानं प्रति वेदान्तश्रवणादिजन्याऽ-

अज्ञान निवर्तक की असिद्धि से अज्ञान की असिद्धि

अब अज्ञान के निवर्तक की असिद्धि से भी अज्ञान की सिद्धि नहीं होगी—यह बता रहे हैं—यदि अज्ञान के निवर्तक की सिद्धि होगी तभी अज्ञान की सिद्धि होगी—उसका कोई निवर्तक नहीं है—इसलिये अज्ञान सिद्ध नहीं होगा—कारण यहाँ विकल्प होने पर कोई उत्तर नहीं है—हम पूछते हैं कि क्या शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म अज्ञान का निवर्तक है ? अथवा चिद् विषयक वेदान्त वाक्य श्रवणादिजन्य चिदाकार प्रत्यक्ष वृत्ति ? पहला पक्ष नहीं कह सकते—क्योंकि वह अज्ञान का साधक है इसलिये उसका विरोधी नहीं हो सकता। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—कारण ''कथमसतः सज्जायेत'' (असत् से सत् कैसे हो सकता है ?) 'असतः संभवः कुतः' (असत् की उत्पत्ति कहाँ से हो सकती है ?) इत्यादि श्रुति स्मृति द्वारा असत् से सत् की सिद्धि का खण्डन होने से असत् वृत्ति से सद्रूप मोक्ष स्वरूप अज्ञान निमित्त असंभव है। अज्ञान में मैं नहीं जानता—इत्याकारक ज्ञान रूप चिद् विरोध

१. यहाँ की पंक्ति कुछ भ्रामक दिखती है, इसकी दूसरी प्रति यदि होती तो उसे ठीक किया जा सकता था मगर दूसरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी।

सत्सिद्धेर्निरासेनासत्त्या वृत्त्या सद्रूपमोक्षलक्षणाज्ञाननिवृत्त्यसिद्धेः, अज्ञाने न जानामीतिज्ञप्तिरूपचिद्विरोधस्यैवानुभवेनाज्ञप्तिरूपविरोधस्यासम्भवाच्च। चिता प्रकाशमाने सुखादावज्ञानादर्शनाच्च वृत्तेर्जातिविशेषेणैव तन्निवर्तकत्वे, इच्छादिनिवर्त्यद्वेषादिवदज्ञानस्य सत्यत्वापत्तेः। शुक्त्यादिज्ञानवदर्थप्रकाशकत्वेन तन्निवर्त्तकत्वे चैतन्यस्यापि तत्त्वेन

चिद्रूपावृत्तिर्न प्रतिबन्धकेति भावः। यदि साक्षिभास्येऽप्यज्ञानमभ्युपेयते तदा सुखादावप्यज्ञानं प्रसज्येत इत्याह—**चितेति**। जातिशेषेण=ज्ञानत्वेन। तन्निवर्तकत्वे=अज्ञाननिवर्तकत्वे। अज्ञाननिवर्त्यतानिरूपितनिवर्तकतावच्छेदकं वृत्तिनिष्ठज्ञानत्वमित्याशयः। यथेच्छानिवर्त्यो द्वेषः सत्यस्तथाऽज्ञानस्यापि सत्त्वत्वं स्यादित्याह—**इच्छादीति**। यदि वृत्तेरर्थप्रकाशकत्वेन रूपेणाज्ञानविरोधिता तदा चैतन्यस्यापि तेन रूपेणाज्ञानविरोधित्वस्यावश्यकत्वेन वृत्तेरन्यथासिद्धत्वमित्याह—**शुक्त्यादिज्ञानवदिति**। तन्निवर्तकत्वेन=अज्ञाननिवर्तकत्वेन। तत्त्वेन=अर्थप्रकाशकत्वेन। तन्निवर्तकत्वेति—अज्ञाननिवर्त कत्वावश्यं

का अनुभव होने से अज्ञप्ति रूप विरोध असंभव है। ज्ञप्ति माने ज्ञान, जानामि यहाँ ज्ञा धातु का अर्थ ही ज्ञान। नञ् का अर्थ है विरोध—इसी अभिप्राय से कहा—ज्ञप्ति रूपचिद्विरोधस्येति। अज्ञान के प्रति वेदान्त श्रवणादि जन्य अचिद्रूपावृत्ति प्रतिबन्धक नहीं है यह भाव है। यदि साक्षिभाष्य में भी अज्ञान स्वीकार करते हैं तब सुख आदि में भी अज्ञान की प्रसक्ति होगी—यही कहते हैं—'चिता प्रकाशमाने.........' ग्रन्थ द्वारा अर्थात् चित् द्वारा प्रकाशमान सुख आदि से अज्ञान या दर्शन का अभाव भी है। वृत्ति को ज्ञानत्वेन अज्ञान निवर्तक मानने पर अज्ञान निवर्त्यता निरूपित निवर्तकतावच्छेदक होगा वृत्तिनिष्ठज्ञानत्व यह आशय है। जैसे इच्छा निवर्त्य द्वेष सत्य है, उसी प्रकार अज्ञान सत्य होगा। यदि वृत्ति को अर्थ प्रकाशकत्व रूप से अज्ञान का विरोधी माने तब तो चैतन्य का भी उस रूप से अज्ञान विरोधित्व आवश्यक होने से वृत्ति में अन्यथा सिद्धत्व होगा—यही कहते हैं—''शुक्त्यादि ज्ञानवदर्थप्रकाशत्वेन'' आदि ग्रन्थ से। अर्थात् वृत्ति में अर्थ प्रकाशकत्वेन रूपेण अज्ञान का विरोध हो तो फिर तो चैतन्य के भी उस रूप में अज्ञान का विरोधित्व आवश्यक होने से वृत्ति में अन्यथा सिद्धत्व होगा यह भाव है। वृत्ति में अपने उपादान अज्ञान निवर्तकत्व नहीं है—यही बता रहे हैं—''किञ्च वृतिरज्ञानोपादेय'' वृत्ति अज्ञानजन्य है। जहाँ जिसमें स्थिति असहिष्णुत्व रूप विरोध रहता है—वहाँ

तन्निवर्तकत्वावश्यंभावाच्च। किञ्च वृत्तिरज्ञानोपादेया तन्निवर्तकत्वे तत्स्थित्यसहिष्णुस्थितिकत्वरूपविरोधस्य हेतुत्वात् कार्यस्य स्वोपादानेनाविरोधान्नाज्ञाननिवर्तकत्वं तस्याः सम्भवति। न चान्त्यशब्दस्य स्वोपान्त्यशब्दजन्यत्वेऽपि तन्नाशकत्वदर्शनादुक्तार्थे व्यभिचार इति वाच्यम्। उपान्त्यस्य शब्दस्य तन्निमित्तकारणत्वेन तदुपादानत्वाभावान्न व्यभिचारः। न च क्षीरोपादेयस्य दध्नस्तन्नाशकत्वादुक्तव्यभिचार तादवस्थ्यमिति वाच्यम्। आतञ्चनादिना निवृत्तक्षीरावयवानामेव दध्युपादानत्वान्न क्षीरस्य तस्याप्यातञ्चननाश्यत्वान्नोक्तव्यभिचार तादवस्थ्यशङ्कावकाश-स्तस्मान्नोपादेयरूपिण्या वृत्तेः स्वोपादानाज्ञान

भावाच्च। नच चिन्मात्रं निर्विशेषात्मप्रकाशकमतो नाज्ञाननाशकमिति वाच्यम्। निर्विशेषे चैतन्याधिकप्रकाशिकाया वृत्तेरभावात्। न च चैतन्यस्याज्ञानसहभाव दर्शनादविरोधित्वमिति वाच्यम्। त्वन्मतेऽयं घट इत्यादिवृत्तावपि घटप्रकाशेऽपिचितोऽ प्रकाशात् तथाच वृत्तावप्यज्ञानसद्भावदर्शनात्तस्याप्यज्ञानाप्रतिबन्धकत्वापत्तेरिति भावः। वृत्तेर्न स्वोपादानाज्ञाननिवर्तकत्वमित्याह—**किंचेति**। अज्ञानोपादेया=अज्ञानजन्या। यत्र यत् स्थित्यसहिष्णुस्थितिकत्वरूपविरोधो वर्तते तत्र तन्निवर्तकत्वं यथा तमः स्थित्यसहिष्णुस्थितिकत्वरूपविरोधस्य सत्त्वात्तमोनिवर्त्तकत्वं तेजसि दृष्टम् तथा नास्तीति नाज्ञाननिवर्तकत्वं वृत्तेः सम्भवतीत्याह—तन्निवर्तकत्वइति। अज्ञाननिवर्तकत्व इति तदर्थः। अज्ञानवृत्त्योरेकदेशस्थत्वात्तयोर्विरोधाभावेनाज्ञाननिवर्तकत्वं वृत्तेर्दुर्घटमिति भावः। कार्यकारणयोरेकदेशस्थत्वात्तयोर्निर्वर्त्यनिवर्तकभावो न घटत इत्याह—**कार्यस्येति**। यद्यज्जन्यं तत् तन्निवर्तकमिति नियमे व्यभिचारमाशङ्क्य परिहरति। **नचेति**।

उसमें निवर्तकत्व होता है—जैसे तेज में तमः स्थिति असहिष्णुत्व रूप विरोध रहने से तेज में तमो निवर्तकत्व होता है—वैसा यहाँ नहीं है—इसलिये अज्ञान निवर्तकत्व वृत्ति में संभव है—यही कहते हैं—तन्निवर्तकत्वे अर्थात् अज्ञान निवर्तकत्व में तत् स्थित्य सहिष्णुत्व रूप विरोध हेतु है। कार्य और कारण एक देशस्थ होने से उनमें निवर्त्य निवर्तक भाव घटित नहीं होता। जो जिससे जन्य होता है, वह उसका निवर्तक होता है—इस नियम में व्यभिचार की आशङ्का करके उसका परिहार करते हैं—'नचान्त्य शब्दस्य' इत्यादि से। कहें कि अन्तिम शब्द अपने अपने समीपवर्ती शब्द जन्य होने पर उसमें तन्नाशकत्व दर्शन से उक्त अर्थ में व्यभिचार होगा तो ऐसा



श्रीसन्तदासजी महाराज

श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, मोतीझील, श्रीधाम वृन्दावन

नाशकत्वसम्भावनापीति भावः। एतेन वृत्तिप्रतिबिम्बिता सती चिदेवाज्ञाननाशिका तदुक्त "तृणादेर्भासिकाप्येषा सूर्यदीप्तिस्तृणं दहेत्। सूर्यकान्तमुपारुह्य तं न्यायं चिति योजयेदिति" तदपि निरस्तम्। सूर्य्यकान्त संयोगजन्याग्नेरेव तृणादिदाहकत्वेन सूर्यस्य तदप्रयोजकत्वात्॥ ५९॥

ययोरुपादानोपादेयभावस्तयोर्नाश्यनाशकभावो न सम्भवतीति नियममनुसृत्य व्यभिचारं निराकुर्वन्नाह—**उपान्त्यस्येति**। उक्तनियमे व्यभिचारमाशंक्य परिहरति। **न चेति**। आतञ्चनं क्षीरे दध्यादिप्रक्षेपः। अज्ञानजन्या वृत्तिर्न स्वोपादानकारणमज्ञानं नाशयतीत्युपपाद-यन्निगमयति—**तस्मादिति। एतेनेति**। चिन्मात्रस्यैवाज्ञाननिवर्तकत्वे वक्तव्ये विशिष्टस्य तत्कल्पने मानाभावेनेत्यर्थः। उक्तार्थं प्रामाणिकं कर्तुमाह—**तदुक्तमिति॥ ५९॥**

भी नहीं कह सकते। वहाँ उपान्त्य शब्द निमित्त कारण है—उपादान कारण नहीं होने के कारण व्यभिचार नहीं होगा यदि कहें कि उक्त नियम में व्यभिचार है—दधि में वहाँ क्षीरोपादानक दधि क्षीर का नाशक होता है तो ऐसा भी नहीं कह सकते। वहाँ आतञ्चन आदि के द्वारा विनष्ट क्षीरावयव को ही दही का उपादान माना है क्षीर को नहीं। वह भी आतञ्चन नाश्य होता है—इसलिये यहाँ उक्त व्यभिचार के तादवस्थ्य की शंका का कोई अवकाश नहीं है। अर्थात् अज्ञान जन्य वृत्ति अपने उपादान कारण अज्ञान को नाश नहीं करती—इसलिये उपादेयरूप वृत्ति में अपने उपादान अज्ञान नाशकत्व की संभावना नहीं है। इस प्रकार चिन्मात्र को ही अज्ञान निवर्तक कहना चाहिये—विशिष्ट में उसकी कल्पना में कोई प्रमाण नहीं है—इसी को 'वृत्ति में' प्रतिबिम्बित होकर चित् ही अज्ञान की नाशिका है—जैसा कि कहा है—"तृणादेर्भासिकाऽप्येषा सूर्यदीप्तिस्तृणं दहेत्। सूर्यकान्तमुपारुह्य तं न्यायं चिति योजयेत्।" यह कथन भी खण्डित हो जाता है। कारण वहाँ सूर्यकान्त मणि संयोग जन्य अग्नि में दाहकत्व है—सूर्य उसका प्रयोजक नहीं है ।।५९।।

किञ्चाज्ञाननिवर्तकज्ञानस्य को विषयो विवक्षितः शुद्धो विशिष्टो वा नाद्यस्तस्य विषयत्वानङ्गीकारात्। अन्यथा मिथ्यात्वप्रसङ्गो दुर्वारः शुद्धं मिथ्या ज्ञानविषयत्वात् यदेवं तदेवं तव मते घटवदित्यनुमानात्। न द्वितीयस्तस्याध्यस्तत्वेन तज्ज्ञानस्य भ्रमत्वात्। न च निवर्तकज्ञानस्योपहित-विषयकत्वेऽपि उपाधेरविषयत्वादभ्रमत्वमिति वाच्यम्। उपाधिविषयतां विनोपहितविषयकत्वासम्भवात् भिन्नविषयत्वाच्च। नहि पटज्ञानात्

निवर्तकज्ञानस्य को वा विषय इत्याह—**किं चेति**। तस्य=शुद्धस्य। बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। शुद्धस्य ब्रह्मणो विषयत्वाभ्युपगम इति तदर्थः। प्रयोगं दर्शयति। **शुद्धमिति**। तस्य=उपाधिविशिष्टस्य। तज्ज्ञानस्य=उपाधिविशिष्टविषयकज्ञानस्य। अज्ञाननिवर्तकज्ञानमुपहितं विषयीकरोति न तूपाधिमतो न तज्ज्ञानस्य भ्रान्तित्वमित्याशंक्य परिहरति—**न चेति**। उपहितब्रह्मज्ञानात्तद्विषयकमज्ञानं निवर्तते नतु शुद्धविषयकाज्ञानमित्याह—**भिन्नविषयत्वाच्चेति**। यद्विषयकं ज्ञानं तद्विषयकाज्ञानं निवर्तयति नतु तदन्यविषयक-मित्याह—**नहीति**। अन्त्यज्ञानस्य निवर्तकं नास्ति चेत्तदा तस्य सत्त्वं दुर्वारमित्याह—

दूसरी बात अज्ञान निवर्तक ज्ञान का यहाँ कौन विषय विवक्षित है? शुद्ध अथवा विशिष्ट? पहला नहीं कह सकते—उसे विषय नहीं माना गया। अन्यथा उसमें मिथ्यात्व का प्रसङ्ग हो जाएगा। अनुमान होगा—शुद्ध ब्रह्म मिथ्या है, क्योंकि वह ज्ञान का विषय है—जो ज्ञान का विषय होता है, वह मिथ्या होता है आपके मत में घट आदि की तरह। दूसरा भी नहीं कह सकते, वह अध्यस्त है, उसका ज्ञान तो भ्रम रूप है, कहें कि अज्ञान निवर्तक ज्ञान उपहित को विषय करता है न कि उपाधि को। इसलिये वह ज्ञान भ्रम नहीं होगा, तो ऐसा नहीं कह सकते—उपाधि को विषय किये बिना उपहित विषयकत्व संभव नहीं है। और यहाँ भिन्न विषयत्व भी है—अर्थात् उपहित ब्रह्मज्ञान से तद् विषयक अज्ञान निवृत्त होता है, न कि शुद्ध विषयक अज्ञान। यद् विषयक ज्ञान होता है, उसी विषय के अज्ञान को निवृत्त करता है—कहीं भी पटज्ञान से घट विषयक अज्ञान की निवृत्ति नहीं देखी जाती है न सुनी जाती है और ना ही ऐसा उचित है। विशिष्ट ज्ञान से तद् विषयक अज्ञान के नाश होने पर भी शुद्ध विषयक अज्ञान की अनिवृत्ति रह ही जाएगी।

घटाद्यज्ञाननिवृत्तिर्दृष्टा श्रुता युक्ता वा विशिष्टज्ञानेन तद्विषयकाज्ञान-नाशेऽपिशुद्धविषयकाज्ञानस्यानिवृत्तेस्तादवस्थ्यमेव। किञ्च चरमज्ञानस्यापि निवर्तकाभावेन तस्य सत्वं मोक्षेऽपि दुर्वारम्। ननु तन्तुनाशस्य पटनाशप्रयोजकत्वदर्शनात् स्वोपादानाविद्यानाशस्यैव तन्नाशप्रयोज-कत्वान्नोक्तदोष इति चेन्न, तन्तुपटयोर्युगपदेवाग्निना नाशने क्रमिक-नाशदर्शनाभावात्। त्वदीयस्य तादृशान्यस्य चाप्रामाणिकत्वात्। न च कतकरजोन्यायेनान्त्यज्ञानस्य स्वयमेव निवर्तकमिति वाच्यम्। असम्भवात्। नहि कतकरजस्तावत्पङ्कनाशकं नापि स्वस्य नाशकमपितु विश्लेषकारणमेवोभयोरपि जलस्याधोवृत्तित्वसत्वात्।

किंचेति। तस्य=चरमज्ञानस्य। कारणनाशात् कार्यनाशपक्षमवलम्व्य शङ्कते—**नन्विति**। अविद्यानाशात्तन्नाशइत्यर्थः। क्रमिकनाशमनभ्युपेत्य समाधत्ते—**तन्तुपटयोरिति**। त्वन्मते शुद्धब्रह्मभिन्नस्य सर्वस्याप्रमाणिकत्वात्तादृशप्रयोजकभावो न घटत इत्याह—**त्वदीयस्येति**। स्वस्मादेवान्त्यज्ञानं निवर्त्तते कतकरजवदित्याशंक्य परिहरति—**न चेति**। असम्भवमेव विवृणोति—**नहीति**। **विश्लेषेति**। जलमिश्रितं पङ्कं कतकरजः सम्बन्धेन

अन्त्य ज्ञान का निवर्तक यदि नहीं है—तब तो उसकी सत्ता मोक्ष में भी दुर्वार होगी। अब कारण के नाश से कार्य नाश का पक्ष लेकर शंका करते हैं—कहें कि तन्तु के नाश को पट नाश का प्रयोजक देखे जाने से अपने उपादान कारण अविद्या के नाश को उसके नाश का प्रयोजक होने से उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण तन्तु और पट दोनों में एक काल में ही अग्नि से नाश होने पर क्रमिक नाश दर्श का अभाव है। आपके मत में शुद्ध ब्रह्म से भिन्न सभी वस्तुओं के अप्रामाणिक होने से उक्त प्रकार प्रयोजक भाव नहीं घटित होता है। यदि कहें कि कतक रजो न्याय से अन्त्य ज्ञान स्वयमेव निवर्तक हो जाएगा तो वह असंभव है। जल मिश्रित पङ्क का नाम कतक रज है। वह पङ्क का नाशक नहीं होता—और ना ही अपना विनाशक होता है—बल्कि विश्लेष का कारण ही होता है—क्योंकि दोनों की जल के अधोभाग में वृत्तिता रहती है। ना ही शुद्ध ब्रह्म मात्र अज्ञान का निवर्तक है,

नापि शुद्धमात्रं तन्निवर्तकं तस्य किञ्चनप्रत्यपि तव पक्षेहेतुत्वाभावात्। नापि किञ्चिदन्यस्य सर्वस्य ज्ञानेनैव नष्टत्वात्। नन्वविद्यानिवृत्तेर्वृत्तिरूपत्वान्न तन्निवर्तक निषेधोयुक्तो वृत्तिनिवृत्तेश्चात्मरूपत्वान्न तज्जनकखण्डनावकाश इति चेन्न। अविद्यानिवृत्तिरूपाया वेदान्तजन्यत्वेनाविद्याया ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावेन सत्यत्वापत्तेः। अनित्यायाश्च वृत्तिनिवृत्तेर्नित्यात्मस्वरूपत्वासम्भवाच्च। तस्मात् सत्यस्यैव बन्धस्यापरोक्षीकृते श्रीपुरुषोत्तमे तत्प्रसादादेव निवृत्तिरभ्युपगन्तव्या सद्रूपनिगडस्यैव राजप्रसादान्निवृत्तिवदिति सङ्क्षेपः॥ ६०॥

इतिपराभिमताज्ञाननिवर्त्तकगिरिनिपातः॥ १४॥

प्रशिथिलावयवं सत् जलं विहाय जलाधोभाण्डमध्येऽवस्थितं दृश्यतेऽतो न पङ्कं स्वरूपेण नाशयतीत्यर्थः। तन्निवर्तकम्=अज्ञाननिवर्तकम्। तस्य=शुद्धस्य। अज्ञानस्य निवर्त्तकान्तरमाशङ्क्य निराकरोति—**नापीति**। शङ्कते—**नन्विति**। परिहरति—**नेति**। अविद्यानिवृत्तेर्वृत्तिरूपाया वेदान्तश्रवणादिजन्यत्वेनानित्यत्वात् तस्या नात्मस्वरूपत्वं घटत इत्यर्थः सत्यस्य बन्धस्य निवर्तको भगवदनुग्रह एवेत्युपपादयितुमुपसंहरति—**तस्मादिति**। उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**सद्रूपेति**॥ ६०॥

इति पराभिमताज्ञाननिवर्तकगिरिनिपातव्याख्या॥ १४॥

क्योंकि शुद्ध चैतन्य किसी के प्रति भी आपके मत में हेतु नहीं होता। दूसरा भी अज्ञान का निवर्तक नहीं है, क्योंकि सब का ज्ञान से ही नाश होता है। कहें कि अविद्या निवृत्ति वृत्तिरूपी, इसलिये उसके निवर्तक का निषेध उचित नहीं और वृत्ति निवृत्ति आत्मरूप है, इसलिये उसके जनक को खण्डन का अवकाश नहीं है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि वृत्ति रूप अविद्या निवृत्ति के वेदान्त श्रवणादि जन्य होने से—ज्ञाननिवर्त्यत्व के अभाव से उसमें सत्यत्व की आपत्ति हो जाएगी, तथा अनित्य रूप वृत्ति निवृत्ति में आत्मस्वरूपत्व असंभव है। इसलिये सत्यरूप बन्धन का निवर्तक पुरुषोत्तम भगवान श्याम सुन्दर का अनुग्रह ही है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये—जैसे सद्रूप कारागार बन्धन की राजा की कृपा से ही निवृत्ति होती है ।।६०।।

इस प्रकार पराभिमत अज्ञान निवर्तक गिरि का निपात हुआ॥ १४॥

(१५) पराभिमताज्ञाननिवृत्तिरूपमुक्तिगिरिनिपातः

अथ मोक्षरूपाविद्यानिवृत्तिरपि दुर्निरूपाऽसम्भवात्तथाहि यदुच्यतेऽ-विद्यानिवृत्तिर्मोक्षस्तत्त्वं नाम किमात्मस्वरूपत्वं वा तद्भिन्नत्वं वा नाद्यः। असाध्यत्वप्रसङ्गात्। द्वितीयेऽपि तस्य सत्यत्वमनिर्वाच्यत्वं मृषात्वं वा नाद्यः। अद्वैतभङ्गात्। न द्वितीयोऽनिर्वाच्यत्वेऽविद्यातत्कार्ययोरेकतरत्वं स्यात्। न तृतीयः। अविद्यादेः सत्यत्वापत्तेः। ननु न वृत्तिविशिष्टआत्माऽ-ज्ञानध्वंसः वृत्तिनिवृत्तौ मोक्षनिवृत्तिप्रसङ्गात्। अपितु चरमवृत्त्युपलक्षित आत्माऽज्ञाननिवृत्तिः। उपलक्षणे निवृत्तेऽपि मुक्तेरनिवृत्तत्वात् पाके निवृत्ते

पराभिमताविद्यानिवृत्तिरूपमोक्षोऽसम्भवो दुर्निरूप्यत्वादित्याह—**अथेति**। असम्भवमेवोपपादयति—**तथाहीत्यादिना**। तत्त्वम्=अविद्यानिवृत्तिरूपम्। **असाध्यत्व-प्रसंगादिति**। आत्मनः स्वयं प्रकाशत्वेन स्वतः सिद्धत्वात् अविद्यानिवृत्तेरपि तथात्वं वाच्यं तथाच श्रवणादिसाधनानां वैयर्थ्यमापद्येत इत्यर्थः। **अद्वैतभङ्गादिति**। अविद्या-निवृत्तिरूपस्य द्वितीयस्य सत्वादद्वैतवादस्य व्याघात इत्यर्थः। **एकतरत्वं स्यादिति**। तथा सति ज्ञाननिवर्त्यत्वमविद्यानिवृत्तेरापद्येतेति भावः। **सत्यत्वापत्तेरिति**। अविद्यानिवृत्तेर्मिथ्यात्वञ्चेत्तदा अविद्यायास्तात्विकत्वं प्रसज्जेताभावाभावस्य भावरूपत्वादित्यर्थः। आत्मनि वृत्तेर्विशेषणत्वं वोपलक्षणत्वं वा इति विकल्प्याद्य पक्षं निरस्यति न **वृत्तिविशिष्टइति**। द्वितीयपक्षमनुसृत्याह—**अपित्विति**। उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**पाकइति**। यदि वृत्त्युत्थाप्यधर्मो ब्रह्मण्यभ्युपेयते

मोक्षरूप अविद्या निवृत्ति का निरूपण भी असंभव

परमत में अविद्या निवृत्ति को मोक्ष माना गया है। अब यहाँ उसका भी खण्डन करते हैं—मोक्ष रूप अविद्या की निवृत्ति का निरूपण भी असंभव है—जैसे कि आपका कथन है कि अविद्या निवृत्ति मोक्ष तत्त्व है। हम पूछते हैं—अविद्या निवृत्ति का क्या स्वरूप है? क्या वह आत्मस्वरूप है? या उससे भिन्न? पहला पक्ष नहीं कह सकते—कारण यदि अविद्या निवृत्ति आत्मस्वरूप होगी तब तो जैसे आत्मतत्त्व स्वयं प्रकाश होने से स्वतः सिद्ध है—उसी प्रकार अविद्या निवृत्ति भी स्वतः सिद्ध तत्त्व हो जाएगा फिर तो उसके लिये श्रवण आदि साधनों का वैयर्थ्य हो जाएगा। यदि आत्मतत्त्व से भिन्न है तो क्या वह सत्य है, अथवा अनिर्वचनीय किंवा असत्य है? सत्य मानने पर अद्वैत भंग। अनिर्वचनीय मानने पर अविद्या और उसके कार्य में एकतरत्व होगा। फिर तो अविद्या निवृत्ति में ज्ञान निवर्त्यत्व की आपत्ति होगी।

पाचकस्यैव "निवृत्तिरात्ममोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः। उपलक्षणहानेऽपि स्यान्मुक्तिःपाचकादिवदिति" तथा चोपलक्षणसाध्यताऽपीति चेन्न काकाद्युत्थाप्यतृणादेरिव वृत्त्युत्थाप्यधर्मस्य ब्रह्मणि त्वयानभ्युपगमेनोपलक्षणत्वासम्भवात्, वृत्त्युपलक्षितस्य प्रागपि सत्वेनाज्ञानकालेऽपि मोक्षापत्तेः। न च पूर्वमेव सिद्धमेवोपलक्षणमिति वाच्यम्। तथात्वे वृत्तावेव साध्यत्वपर्यवसानात् तच्चायुक्तमात्माश्रयापत्तेः। सिद्धस्यापि

तदा तस्या उपलक्षणत्वं स्यान्नत्वेवमित्याशयेनोपलक्षणपक्षमपि निराकरोति—**नेति**। वृत्त्युपलक्षितात्मनः संसारकाले विद्यमानत्वात्तदानीं मोक्षः स्यादित्याह—**वृत्त्युपलक्षितस्येति**। पूर्वमसिद्धस्योपलक्षणत्वं न घटते नहि पाकसम्बन्धात् पूर्वं पाचको भवति तथा व्यवह्रियत इत्याह—**पूर्वमेवेति**। तथात्वे=पूर्वसिद्धस्योपलक्षणत्वे। वृत्त्युपलक्षित आत्मा अज्ञानहानिरिति पक्षे उपलक्ष्यस्यात्मनः सिद्धत्वेनोपलक्षणीभूतायां वृत्तावेव वेदान्तश्रवणजन्यवृत्तिसाध्यत्वं पर्य्यवसन्नं तच्चात्माश्रयादनुपपन्नमित्याशयेनाह—**वृत्तावेवेति**। तच्च=वृत्तौ साध्यत्वपर्य्यवसानम्। **आत्माश्रयापत्तेरिति**। स्वोत्पत्तौ स्वस्यापेक्षणादात्माश्रय इत्यर्थः। इच्छाकृत्युपलक्षितसिद्धस्य काकस्यापीष्टसाध्यत्वं कृतिसाध्यत्वं स्यात्तत्तु न दृष्टचरं श्रुतं वेत्याह—**सिद्धस्यापीति**। उपलक्षणीभूताया वृत्तेर्नाशे सति उपलक्ष्यस्य मोक्षस्यापि

तीसरा पक्ष भी संभव नहीं है—क्योंकि यदि अविद्या निवृत्ति मिथ्या (असत्य) होगी तब तो अविद्या में तात्त्विकत्व आ जाएगा—कारण अभाव का अभाव भाव रूप होता है। अब आत्मा में वृत्ति विशेषण है या उपलक्षण। ऐसा विकल्प करके पहले आदि पक्ष का खण्डन करते हैं—'न वृत्ति विशिष्ट आत्मा अज्ञान ध्वंसः' अर्थात् कहें कि वृत्ति विशिष्ट आत्मा अज्ञान निवृत्ति नहीं है। फिर तो वृत्ति की निवृत्ति होने पर मोक्ष की निवृत्ति का प्रसङ्ग हो जाएगा, अपितु चरम वृत्ति से उपलक्षित आत्मा अज्ञान निवृत्ति है—यह द्वितीय पक्ष है। इसे ही दृष्टान्त द्वारा सिद्ध कर रहे हैं—उपलक्षण के निवृत्त होने पर भी मुक्ति की निवृत्ति नहीं होगी—जैसे पाक की निवृत्ति होने पर पाचक की निवृत्ति नहीं होती जैसी अभियुक्तोक्ति है—"निवृत्तिरात्ममोहस्य ज्ञानत्वेनोपलक्षितः। उपलक्षणहानेऽपि स्यान्मुक्तिः पाचकादिवत्" तो ऐसा भी नहीं कह सकते—कारण यदि वृत्ति से उत्त्थाप्य धर्म ब्रह्म में स्वीकार करते हैं, तब वृत्ति में उपलक्षणत्व होगा—पर ऐसा नहीं है—यही कह रहे हैं—"काकाद्युत्थाप्यतृणादेरिव........." इस ग्रन्थ से, अर्थात् जैसे काक आदि से उत्त्थाप्य तृण आदि की तरह वृत्ति से उत्त्थाप्य धर्म आप ब्रह्म में स्वीकार

काकादेरिच्छाकृतिविशेषोपलक्षितस्येष्टकृतिसाध्यतापत्तेश्च। किञ्चोपलक्षणापाये उपलक्ष्यस्य मोक्षस्यापायप्रसङ्गः। न च पाकापाये पाचकापायो दृष्टचर इत्यादिना पूर्वोक्तत्वान्न दोष इति वाच्यम्। असम्भवात् किन्तावत् पाचकत्वं नाम पाककर्तृत्वमिति पक्षे अपचति चैत्रे तत्प्रयोगो भूतपूर्वन्यायेनौपचारिकः भ्रष्टाधिकारे दण्डनायक इतिवत् भूतपूर्वगत्यैव। यदि च पाककर्तृत्वावच्छेदकावच्छिन्नत्वं तत्कर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वं वा तत्त्वं तदा द्वयमपि पश्चादप्यस्ति। न चैवं मुक्तावात्मातिरिक्तं योग्यत्वादिकं तवास्ति चिन्मात्रस्य तु प्रागपि सत्वात्। असाध्यत्वमेव

नाशत्वं स्यादित्याह—**किं चेति।** पाकनिवृत्तेऽपि पाचकस्यानिवृत्तिदर्शनान्नोक्तदोषावकाश इत्याशंक्य परिहरति—**न चेति।** असम्भवमेवोपपादयति। **किन्तावदिति।** पराभिमतपाचकत्वं किं पाकजन्यकृत्याश्रयत्वं वा पाककर्तृत्वयोग्यत्वं वा आद्यपक्षमाह—**पाककर्तृत्वमिति।** तत्प्रयोगः=पचतीतिप्रयोगः। उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**भ्रष्टेति।** तथाच स न दृष्टान्त इत्यर्थः। द्वितीये यद्यपि दृष्टान्ते तत्सम्भवति तथापि दार्ष्टान्तिके

नहीं करते इसलिये उपलक्षणत्व संभव नहीं है। वृत्ति से उपलक्षित आत्मा का संसार काल में विद्यमान होने से उस समय मोक्ष होगा यही कह रहे हैं—'वृत्युपलक्षितस्य प्रागपि सत्त्वेन' अर्थात् वृत्युपलक्षित की पूर्व में भी सत्ता होने से अज्ञान काल में भी मोक्ष की आपत्ति होगी।

पूर्व सिद्ध का उपलक्षणत्व नहीं घटता है पाक सम्बन्ध से पूर्व पाचक नहीं होता है, वैसा व्यवहार नहीं होता—यही कहते हैं—"न च पूर्वमेव सिद्धमेवोपलक्षणम्" ऐसा मानने पर अर्थात् पूर्व सिद्ध को उपलक्षण मानने पर वृत्ति से उपलक्षित आत्मा अज्ञान निवृत्ति है—इस पक्ष में उपलक्ष्य आत्मा के सिद्ध होने से उपलक्षणीभूत वृत्ति में ही वेदान्त श्रवणजन्य वृत्ति साध्य का पर्यवसान होता है, जो आत्माश्रय दोष युक्त होने से अनुपपन्न है—यही कह रहे हैं—"न च पूर्वमेव आत्माश्रयापत्तेः" ग्रन्थ से, यानी स्व की उत्पत्ति में स्व की अपेक्षा होने से आत्माश्रय दोष है। दूसरी बात इच्छा तथा कृति से उपलक्षित सिद्ध काक में कृति साध्यत्व तथा इष्ट साध्यत्व हो जाएगा—ऐसा तो नहीं देखा गया न सुना ही गया है—और दोष यह है कि उपलक्षणीभूत वृत्ति के नाश होने पर उपलक्ष्य मोक्ष का भी नाश हो जाएगा। कहें कि लोक में पाक की निवृत्ति होने पर भी पाचक की

स्यात् पाकोपलक्षिततत्ववत् वृत्त्युपलक्षिततत्वस्याधिक्ये सविशेषत्वापत्तेः न चोपलक्ष्यस्वरूपस्यासाध्यत्वेऽपि उपलक्षणगतसाध्यत्वोपपत्तिर्घटाकाशोत्पत्तिवदिति वाच्यम्। वृत्तेः सुखदुःखाभावान्यतरभिन्नायाः स्वपुरुषार्थत्वाभावेन तदर्थं प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। नन्वविद्यानिवृत्तिस्तद्विरोधिवृत्तिरेव यावत्कार्योत्पत्तिविरोधिकार्यमेव ध्वंस इति चेन्न, वृत्तौ नष्टायां विरोधिकार्यान्तरानुदये द्वैतस्योज्जीवनापत्तेः। तदुदये च तेनैवाद्वैतभङ्गात्। नच चरमवृत्तिध्वंसाधिकरण आत्मेति वाच्यम्। प्रागुक्तदोषात्। सापेक्षनिरपेक्षयोरागन्तुकानागन्तुकयोश्चाभेदासम्भवाच्च किञ्च वृत्त्युपलक्षित आत्मा जीवन्मुक्तावप्यस्तीति तदापि मोक्षापत्तिः स्यात्। न च

तन्नास्तीत्याह—**यदि चेति**। पाककर्तृतावच्छेदकं चैत्रत्वादिकम्। तत्कर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वम्=पाककर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वम्। तत्वम्=पाचकत्वम्। **द्वयमपीति**। पाककर्तृतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं तत्कर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वमेतद्द्वयमित्यर्थः। **पश्चादपीति**। पाकनिवृत्तिसमय इत्यर्थः। दार्ष्टान्ते तन्नास्तीत्याह—**न चैवमिति**। योग्यत्वादिकं तवास्तीति नचेति योजना। **चिन्मात्रस्येति**। तथा च प्रागपि मुक्तिः स्यादिति भावः। चिन्मात्रस्य न साध्यता तस्य पूर्वमपि सत्वात् तथा चासाध्यत्वमेव प्राप्तमित्याह—**असाध्यत्वमेव स्यादिति**।

अनिवृत्ति देखने से उक्त दोष का यहाँ अवकाश नहीं है तो ऐसा भी नहीं कह सकते। कारण ऐसा असंभव है। हम पूछते हैं—पाचकत्व पदार्थ क्या है? पाक कर्तृत्व? इस पक्ष में जब चैत्र पाक नहीं कर रहा है—उस समय उसके लिये पचति शब्द का प्रयोग भूतपूर्व न्याय से औपचारिक है—अधिकार भ्रष्ट में जैसे भूतपूर्व गत्या दण्डनाशक शब्द का प्रयोग होता है। यदि पाक कर्तृतावच्छेदकावच्छिन्नत्व अथवा पाक कर्तृत्व योग्यत्वम् पाचकत्व कहें पाक कर्तृतावच्छेदक है चैत्रत्वादिक—तथा पाक कर्तृत्वात्यक्ताभावानधिकत्व है पाक कर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्व पाचकत्व? तो ये दोनों लक्षण पश्चात् यानी पाक निवृत्ति के समय में भी है—परन्तु दार्ष्टान्त में वैसा नहीं है। आपके मत में मुक्ति में आत्मा से अतिरिक्त योग्यत्व आदि नहीं है—चिन्मात्र की तो पहले की सत्ता है—फिर तो पहले भी मुक्ति होगी। चिन्मात्रता साध्य नहीं है, क्योंकि वह तो पहले भी विद्यमान है—इस प्रकार तो असाध्यत्व ही प्राप्त है। पाकोपलक्षिततत्वस्य की तरह वृत्त्युपलक्षिततत्वेन चिन्मात्र की साध्यता है। चिन्मात्र स्वरूप ब्रह्म में वृत्ति उपलक्षित स्वरूप विशेष के सत्त्व होने से उसमें सविशेषत्व की आपत्ति होगी निर्विशेषत्व का व्याघात होगा। अब आत्मा

चरमवृत्त्युपलक्षित आत्मा मोक्ष इति वाच्यम्। जीवन्मुक्तिप्रयोजक-वृत्त्यपेक्षया परमुक्तिप्रयोजकवृत्तौ ह्यानन्दाभिव्यक्तिगतविशेषाभावे चरमक्षणेन चरमश्वासेन वोपलक्षित आत्मा मुक्तिरिति विनिगमना-भावप्रसङ्गात्। ननु प्रारब्धकर्म्मप्रयुक्तविक्षेपाविक्षेपाभ्यामभिव्यक्ति-विशेषस्याङ्गीकारान्नोक्तदोष इति चेन्न निर्विशेषे भाताभातविभागाभावेन तज्ज्ञाने विषयप्रयुक्त विशेषस्य चालीकत्वात्। अविद्यानिवृत्तिस्तद्विरोधि-वृत्तिरिति पक्षे तस्याऽनुभूयमानकृतिसाध्यत्वानुपपत्तेः त्वया ज्ञानस्य कृतिसाध्यत्वनिरासात् ननु पुरुषार्थस्यानन्दप्रकाशस्यासाध्यत्वेऽपि

पाकोपलक्षिततत्वस्येव वृत्त्युपलक्षिततत्वेन चिन्मात्रस्य साध्यतेत्याह—**पाकेति। सविशेषेति।** चिन्मात्रस्वरूपे ब्रह्मणि वृत्त्युपलक्षितस्वरूप-विशेषस्य सत्त्वात्तवमते निर्विशेषत्वं व्याहन्येतेत्यर्थः। आत्मन्युपलक्षणीभूतायां वृत्तौ साध्यत्वमाशङ्क्यापाकरोति—**नचेति। घटाकाशेति।** केवलस्याकाशस्यासाध्यत्वेऽपि घटस्य घटत्वेन साध्यत्वात् घटाकाशोत्पत्तिरपि साध्या तद्वत् प्रकृतेपीत्यर्थः। अन्वेच्छानधीनेच्छाविषयत्वरूपस्य पुरुषार्थत्वस्य सुखदुःखानात्मकवृत्तावसत्वात्तदर्थं

में उपलक्षणीभूत वृत्ति में साध्यत्व की आशङ्का करके उसका अपाकरण करते हैं—'न चोपलक्ष्यस्वरूपस्य' आदि ग्रन्थ से—यदि कहें कि उपलक्ष्य स्वरूप असाध्य होने पर भी उपलक्षणगत साध्यता की उपपत्ति घटाकाश की उत्पत्ति की तरह हो जाएगी तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि सुख-दुःखाभावान्यतर से भिन्न वृत्ति में पुरुषार्थत्व के अभाव के कारण उसके लिये प्रवृत्ति की उपपत्ति नहीं होगी।

अब प्रकारान्तर से अविद्या निवृत्ति शब्द का अर्थ करके शङ्का करते हैं—यदि कहें कि अविद्या निवृत्ति—अविद्या विरोधी वृत्ति है, कार्योत्पत्ति समकाल विरोधी कार्य ही ध्वंस है अर्थात् जिस कार्य के होने पर उसके पूर्ववर्ती जो न रहता है—वही उसका ध्वंस है तो ऐसा भी नहीं कह सकते। वृत्ति के विनष्ट होने पर विरोधी अन्य कार्य के अनुदय होने पर द्वैत का उदय हो जाएगा और द्वैत के उदय होने पर अद्वैत भङ्ग होगा। कहें कि चरम वृत्ति के ध्वंस का अधिकरण आत्मा है—ऐसा भी नहीं कह सकते—इसमें पहला ही दोष है—चरम वृत्ति ध्वंसाधिकरणत्व विशेषण है या उपलक्षण? आदि पक्ष में अद्वैत हानि—द्वितीय पक्ष में असाध्यापत्ति—जो पहले कहा गया है—चरम वृत्ति ध्वंसाधिकरणत्व से उपलक्षित आत्मा के पूर्व में भी विद्यमान होने से मोह काल में भी मोक्षापत्ति दोष होगा। सापेक्ष-निरपेक्ष तथा आगन्तुक तथा अनागन्तुक में अभेद असंभव भी है, अर्थात् चरम वृत्ति का ध्वंस तो

तत्तिरोधायकाज्ञाननिवर्तकवृत्तेः साध्यत्वमात्रेण तत्साध्यत्वोपपत्तिः। कण्ठगतमण्यादौ तथादर्शनादिति चेन्न, निर्विशेषस्य तिरोधाने जगदान्ध्यापत्तेः। एतदुक्तं भवति वेदान्त श्रवणादिसाध्येन पुरुषार्थत्वेन भाव्यं तव मते तदभावात् मुक्त्यनुस्यूतस्य सुखज्ञप्तिरूपस्यात्मनः पुरुषार्थत्वेप्यसाध्यत्वात्। चरमवृत्त्युपलक्षित-स्याप्यद्वैतभङ्गापत्त्याऽऽत्ममात्रत्वात् वृत्तेस्तु साध्यत्वेऽपि स्वतोऽपुरुषार्थ-त्वेन हेयत्वादिति न च पञ्चमप्रकाराज्ञान निवृत्तिस्तदुक्तं "न सन्नासन्न

प्रवृत्त्यनुपपत्तिरित्याह-**वृत्तेरिति**। प्रकारान्तरेणाविद्यानिवृत्तिशब्दार्थं शङ्कते—**नन्विति**। तद्विरोधिवृत्तिः= अविद्याविरोधिवृत्तिः। यावत्कार्योत्पत्तिरिति। कार्योत्पत्तिर्यावद्भवति तावत्कालमित्यर्थः। द्वैतं यावत्तिष्ठतीति यावत्। विरोधिकार्यमिति। यस्मिन् कार्ये सति तत्पूर्ववृत्ति यन्नतिष्ठति तत्तस्य ध्वंस इत्यर्थः। परिहरति—**नेति**। तदुदये=द्वैतस्योदये। तेनैव=अद्वैतोदयेनैव। **प्रागुक्तेति**। चरमवृत्तिध्वंसाधिकरणत्वं विशेषणं वोपलक्षणं वा आद्येऽद्वैतहानिः द्वितीयेऽसाध्यत्वापत्तिः चरमवृत्तिध्वंसाधिकरणत्वोपलक्षितस्यात्मनो पूर्वमपि सत्त्वेन मोहकालेऽपि मोक्षापत्तिश्चेति दोष इत्यर्थः। **सापेक्षेति**। चरमवृत्तिध्वंसस्तु वेदान्तश्रवण-

---

वेदान्त वाक्य श्रवणजन्य वृत्ति साध्य होने से सापेक्ष है और आत्मा स्वयं प्रकाश होने से निरपेक्ष एवं अनागन्तुक है। दूसरी बात वृत्ति से उपलक्षित आत्मा जीवन्मुक्ति अवस्था में भी है, तब भी मोक्षापत्ति होगी। कहें कि चरम वृत्ति से उपलक्षित आत्मा मोक्ष है—तो ऐसा नहीं बोल सकते—जीवन्मुक्ति प्रयोजक वृत्ति की अपेक्षा परम मुक्ति प्रयोजक वृत्ति में आनन्दाभिव्यक्तिगत विशेष के अभाव में चरम क्षण किंवा चरम श्वास से उपलक्षित आत्मामुक्ति है, इसमें किसी विनिगमन के अभाव का प्रसंग होगा। अब पुनः आनन्दाभिव्यक्तिगत विशेष को स्वीकार कर उक्त दोष का निराकरण करते हुए—शङ्का करते हैं—कहेंगे कि प्रारब्ध कर्म प्रयुक्त विक्षेप तथा अविक्षेप से विशेष अभिव्यक्ति को स्वीकार कर लेंगे तब उक्त दोष नहीं होगा—चरम क्षण एवं चरम श्वास से उपलक्षित आत्मा मुक्त क्यों नहीं होगा? तो ऐसा नहीं कह सकते निर्विशेष ब्रह्म में विशेष रूप से अज्ञात तथा सामान्य रूप से

सदसन्नानिर्वाच्यश्च तत् क्षयः। यक्षानुरूपोबलिरित्याचार्य्याः प्रत्यपीपदन्निति'' तथात्वे च नाद्वैतहानिः सतो द्वितीयस्याभावात्। नाप्यविद्यातत्कार्यान्यतरापत्तिरनिर्वचनीयत्वाभावादिति वाच्यम्। तस्यासत्यतुल्यत्वात् बौद्धैरपितदङ्गीकारेण तत्र प्रवेशप्रसङ्गाच्च। ''न सन्नासन्नसद-

---

जन्यवृत्तिसाध्यत्वात्सापेक्षआगन्तुकश्च आत्मा स्वयंप्रकाशत्वान्निरपेक्ष अनागन्तुकश्चेत्यर्थः। आनन्दाभिव्यक्तिगतविशेषमभ्युपेत्योक्तदोषं निराकुर्वन्नाशङ्कते **नन्विति**। नोक्तदोष इति। चरमक्षणेन चरमश्वासेन चोपलक्षितआत्मा मुक्तिरिति किं न स्यादिति दोष इत्यर्थः। निर्विशेषे ब्रह्मणि विशेषरूपेणज्ञातं सामान्यरूपेण ज्ञातमितिविभागो नोपपद्यते। तज्ज्ञाने विषयप्रयोज्यविशेष्यस्य मिथ्यात्वादित्याशयेन निराकरोति **नेति**। अविद्यानिवृत्तिर्नाम तद्विरोधिवृत्तिरिति प्रागुक्तं तत् पक्षमपाकर्तुमाह–**अविद्येति**। तस्याः=तद्विरोधिवृत्तेः। तत्तिरोधायकं=पुरुषार्थरूपानन्दप्रकाशतिरोधायके। तत्साध्यत्वोपपत्तिः=आनन्द प्रकाश साध्यत्वोपपत्तिः। उक्तार्थं दृष्टान्तेनोपपादयति—कण्ठगतेति। परिहरति—**नेति। एतदुक्तं भवतीति**। यत् उक्तं तदेतत् भवतीत्यर्थः। तदभावात्=पुरुषार्थत्वाभावात्। ज्ञप्तिरूपस्य=ज्ञानरूपस्य। वृत्तस्त्विति। अयं भावः। ''यःपुमर्थः स साध्यो न आत्मानन्दचिदात्मकः। या च साध्यावृत्तिरिष्टा न तत्र पुरुषार्थता'' तस्मान्न ज्ञानहानिरात्मस्वरूपः। पञ्चमप्रकाराज्ञाननिवृत्तिमेव व्युत्पादयति—**तदुक्तमित्यादिना**। आत्मन्येवाविद्यानिवृत्तिः सा च न सती अद्वैतहानेर्नाप्यसती। ज्ञानसाध्यत्वायोगात्। नापि सदसद्रूपा विरोधात्। नाप्यनिर्वाच्यस्याध्यस्तत्वेनमोक्षे तदध्यासोपादानाज्ञानानुवृत्त्यापत्तेरनिर्वाच्यत्वपक्षोयुक्तः किन्तूक्तप्रकारचतुष्टयोतीर्णपञ्चमप्रकारा, अविद्यानिवृत्तिरित्यर्थः। **प्रत्यपीपदन्निति।**

अज्ञात—इस प्रकार भानाभाव विभाग के अभाव से उसमें ज्ञान के विषय प्रयोज्य विशेष्य में मिथ्यात्व है। अब अविद्या निवृत्ति माने अविद्या विरोधि वृत्ति—यह जो पहले कहा गया था उस पक्ष का खण्डन करने के लिये कहते हैं—अविद्या निवृत्ति माने अविद्या विरोधि वृत्ति—इस पक्ष की अविद्या विरोधी वृत्ति में अनुभूयमान कृति साध्यत्व की अनुपपत्ति होगी। आपने ज्ञान में वृत्ति साध्यत्व का खण्डन किया है। कहें कि आनन्द प्रकाशरूप पुरुषार्थ असाध्य होने पर भी पुरुषार्थ रूप आनन्द के प्रकाश के तिरोधायक अज्ञान निवर्तक वृत्ति के साध्यत्व मात्र से आनन्द प्रकाश में साध्यत्व की उपपत्ति होगी—जैसा कि कण्ठावलम्बि मणि आदि में वैसा देखा गया है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण निर्विशेष के तिरोधान होने पर जगत् में अन्धता की आपत्ति। इसका भाव यह है—पुरुषार्थ, वेदान्त वाक्य श्रवणादि

सन्नचाप्यनुभयात्मकं चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिकाविदु'' रिति-तन्मतवादिवचनात्। ततो दुरुपपादेया परपक्षेऽज्ञाननिवृत्तिरूपा-मुक्तिरित्यलं प्रासङ्गिकेन॥ ६१॥

इति प्रासङ्गिकपराभिमताज्ञाननिवृत्तिरूपमुक्तिगिरिनिपातः॥ १५॥

प्रतिपादयामासुः। प्रागुक्तदोषानुद्धरति—**तथात्व इत्यादिना।** तथात्वे=पञ्चमप्रकारत्वे। पञ्चमप्रकारकल्पं दूषयति **तस्येति।** तस्य=पञ्चमप्रकारस्य। तदङ्गीकारेण=पञ्चमप्रकाराङ्गी-कारेण। तत्र=बौद्धमते तत्वस्थितौ तन्मतानुसरणं स्यादिति भावः। तन्मतवादिवचनात्-बौद्धमतवादिवचनात्। प्रागेव सिद्धो मोक्षश्चेच्छ्रवणादि श्रमो वृथा। असिद्धौ नात्ममात्रत्वमन्यत्वेसद्वितीयता॥ ६१॥

इति प्रासङ्गिकपराभिमताज्ञाननिवृत्तिरूपमुक्तिगिरिनिपातव्याख्या॥ १५॥

साध्य होना चाहिये—आप के मत में पुरुषार्थत्व का अभाव है। मुक्ति में अनुभूत सुख ज्ञान रूप आत्मा के पुरुषार्थ होने पर भी वह असाध्य है। चरम वृत्ति से उपलक्षित का भी अद्वैत भङ्ग के कारण आत्ममात्रत्व है और वृत्ति के तो साध्यत्व होने पर भी उसमें स्वतः अपुरुषार्थ होने से हेयत्व है। जैसा कि कहा है—'न सन्ना सन्न सदसन्नानिर्वाच्यश्च तत् क्षयः। यक्षानुरूपो वलिरित्याचार्याः प्रत्यपीपदन्निति' आत्मा में ही अविद्या की निवृत्ति होती है—वह सत् नहीं है—क्योंकि अद्वैत की हानि होगी—वह असत् भी नहीं है—क्योंकि फिर तो उसमें ज्ञान साध्यत्व नहीं होगा—सद् असत् उभय रूप भी नहीं हो सकता विरोध होने से अनिर्वाच्य भी नहीं कह सकते—इसकी अध्यस्त होने से मोक्ष में उसके अध्यास के उपादान अज्ञान की अनुवृत्ति की आपत्ति होने से वह भी अयुक्त है। किन्तु उक्त प्रकार चतुष्टय से उत्तीर्ण पञ्चम प्रकार अविद्या निवृत्ति है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते—यह तो असत्य तुल्य है। दूसरी बात पञ्चम प्रकार तो बौद्धों ने भी स्वीकार किया है फिर तो आप बौद्ध मतानुयायी हो जायेंगे। वे भी कहते हैं कि वह न सत् है न असत् न सत् असत्—ना ही अनुभयात्मक—किन्तु इन चारों कोटियों से विनिर्मुक्त पञ्चम प्रकार वह तत्त्व है—ऐसा माध्यमिक शून्यवादी बौद्ध कहते हैं। इस प्रकार अज्ञान निवृत्ति रूप मुक्ति का निरूपण असंभव है—अब इस प्रकार अधिक बहस व्यर्थ है।६१॥

इस प्रकार प्रासङ्गिक पराभिमत अज्ञान निवृत्ति रूप मुक्ति गिरि का निपात हुआ॥ १५॥

(१६) पराभिमत प्रतिकर्मव्यवस्थागिरिनिपातः

अथ केयं वृत्तिर्नाम याऽज्ञाननिवर्तकरूपेण स्वीक्रियत इत्यत्राहुः। यथा तडागोदकं छिद्रान्निर्गत्य कुल्यात्मना केदारान् प्रविश्य तद्वच्चतुष्कोणाद्याकारं भवति। तथाविषयेन्द्रियसम्प्रयोगे सति सावयवं तैजसमन्तःकरणं चक्षुरादिद्वारेण निर्गत्य ध्रुवादिविषयपर्य्यन्तं चक्षुर्वच्छीघ्रं दीर्घप्रभाकारेण परिणम्य विषयं प्राप्य तदाकारंभवति, सेयं वृत्तिरित्युच्यते। अत्र जीवचैतन्यमविद्योपाधिकं सत् सर्वगतमन्तःकरणोपाधिकं सत् परिच्छिन्नञ्चेति मतद्वयं तत्राद्ये विषयप्रकाशकं जीवचैतन्यं द्वितीये ब्रह्म चैतन्यं सर्वगतत्वपक्षेऽपि जीवचैतन्यमविद्यानावृतमावृतञ्चेति मतद्वयम्। तत्रानावृत्तमते जीवचैतन्यस्य

इदानीं प्रसङ्गसङ्गतिमभिदधानो वृत्तिं निरूपयति—**अथेति**। कुल्या=कृत्रिमजल-प्रवाहेण। केदाराः=क्षेत्राणि। विषयाकारेण परिणामोपपादनायोक्तम्। **सावयवमिति**। शीघ्रगमनोपपादनायोक्तं तैजसमिति। **ध्रुवेति**। तन्मण्डलविषय इत्यर्थः। **अत्रेति**। जीवचैतन्यं सर्वगतं परिच्छिन्नञ्चेति मतद्वयमित्यन्वयः। **अविद्येति**। अविद्यायास्सर्वगतत्वेन तदुपाधिकं जीवचैतन्यमपि सर्वगतमित्यर्थः। **अन्तःकरणेति**। अन्तःकरणस्यासर्वगत्वात्तदुपाधिकजीवोप्यसर्वगत इत्यर्थः। **तत्राद्य इति**। जीवचैतन्यस्य सर्वगतत्वात्तत्रैव विषयस्याध्यस्तत्वेन जीवचैतन्यमेव विषयप्रकाशकं

वृत्ति विचार और उसका खण्डन

अब पूछते हैं—यह वृत्ति क्या है जो अज्ञान निवर्तक रूप में स्वीकार की जाती हैं? इस पर कहते हैं—जैसे तालाब का जल छिद्र से निकलकर नहर के रूप में खेतों में जाकर खेतों के अनुसार चौकोर आकार किंवा तिकोनाकार होता है—इसी प्रकार विषय और इन्द्रिय के संयोग से सावयव तैजस अन्तःकरण नेत्र आदिक द्वारा निकलकर ध्रुव मण्डल आदि विषय पर्यन्त नेत्र की तरह शीघ्र ही दीर्घ प्रभा के आकार रूप में परिणत होकर विषय को प्राप्त करके तदाकार होता हुआ विषय घट हो तो घटाकार पट हो तो पटाकार आदि हो जाता है—इसी को वृत्ति कहते हैं। यहाँ ज्ञातव्य है—जीव के सम्बन्ध में शांकर मत में दो मत हैं—एक तो अविद्योपाधिक चैतन्य जीव है ऐसा मत है—अविद्योपाधिक का मतलब अविद्यावच्छिन्नतया अविद्या में प्रतिबिम्बित—दो मत है—जिसमें वाचस्पति अवच्छेदवादी है। अविद्योपाधि मत में एक जीववाद है। इस पक्ष में जीव सर्वगत होता है—अन्तःकरणोपाधि मत में (अन्तःकरणावच्छिन्न या अन्तःकरण प्रतिबिम्ब पक्ष में) जीव परिच्छिन्न होता है—इस प्रकार दो मत है यहाँ आद्य पक्ष में जीव चैतन्य के सर्वगत होने से उसी में विषय

विषयोपरागार्थाः वृत्तिः। द्वितीये आवरणाभिभवार्था परिच्छिन्नत्वमते तु जीव-चैतन्यस्य विषयप्रकाशकब्रह्मचैतन्याभेदाभिव्यक्त्यर्था। अनावृत्तत्वमतेऽनावृतं सर्वगतमपि जीवचैतन्यं तदाकारवृत्त्यैवोपरज्यते नतु विषयैरसङ्गत्वात्। यथा गोत्वादिकं सर्वगतमपि सास्नादिमद्व्यक्त्यैवोपरज्यते नतु केसरादिमद्व्यक्त्या यथा दीपप्रभाऽऽकाशगन्धरसादिप्रदेशव्यापिन्यपि तान्न प्रकाशयति रूपिसंसर्गितया तदेव प्रकाशयति तद्वत्, केवलाग्न्यदाह्यस्याप्ययःपिण्डसमारूढोग्निदाह्यत्ववच्च, केवलचैतन्या-

घटादिज्ञानमित्युच्यत इति यावदित्यर्थः। **द्वितीय इति।** अन्तःकरणपरिच्छिन्नस्यान्तरत्वेन बाह्यप्रपञ्चाध्यासाधिष्ठानत्वाभावात् ब्रह्मचैतन्यं यदनावृतं तत्रैवाध्यस्तं तदेव च विषयप्रकाशकमित्यर्थः सर्वगतत्वेऽति। अविद्योपाधिकं सत्सर्वगतमिति पक्षेप्यविद्यावृतस्वभावं तदनावृत स्वभावञ्चेति मतद्वयमित्यर्थः। असर्वगतत्वपक्षे त्वनावृत्तमेवेति बोध्यम्। नन्वेतेषु मतेषु वृत्तेः क्वोपयोग इत्यतस्तदुपयोगमाह—**तत्रेति।** अविद्योपाधिकं यत्सर्वगतं जीवचैतन्यं तदविद्यानावृतमेव विषयाध्यासाधिष्ठानमत एव विषयप्रकाशकमिति मत इत्यर्थः। **विषयेति।** सर्वगते जीवचैतन्ये विषयादिकमस्ति तत्संश्लेषोजीवचैतन्ये नास्ति असङ्गत्वात् वृत्तिरगत्याऽसङ्गेऽपि तत्संश्लेषं सम्पादयतीत्यर्थः। आवरणविरहस्य स्वतःसिद्धत्वेनावरणाभिभवार्थ-त्वमेतन्मते नास्तीति ध्येयम्। **द्वितीय इति।** अविद्योपाधिकं जीवचैतन्यं सर्वगतमविद्यावृतमिति मत इत्यर्थः। **आवरणेति।** आवरणे चाभिभूते चैतन्यं स्वत एव विषयेणो-परज्यतेऽतआवरणाभिभावार्थैववृत्तिर्न संश्लेषार्थेति भावः। अन्तःकरणोपाधिकं जीवचैतन्यं परिच्छिन्नं ब्रह्मचैतन्यमेव विषयप्रकाशकमिति मते वृत्त्युपयोगमाह—**परिच्छिन्नत्वपक्षेत्विति। अभेदेति।** वृत्त्या आवरणेऽभिभूते सति

के अध्यस्त होने से जीव चैतन्य ही विषय प्रकाशक घटादि ज्ञान है—ऐसा कहते हैं। द्वितीय अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य जीववाद में अन्तःकरणापरिच्छिन्न चैतन्य में आन्तरतत्त्व होने से बाह्य प्रपञ्च के अध्यास से अधिष्ठानत्व का अभाव होने से जो ब्रह्म चैतन्य अनावृत है उसी में अध्यस्त और वही विषय का प्रकाशक है सर्वगतत्व पक्ष में भी (अविद्योपाधि मत में) वह अविद्यावृत स्वभाव होता और उससे अनावृत स्वभाव होता है—ये दो मत हैं। असर्वगत पक्ष में तो वह अनावृत ही होता है। इनमें अनावृत मत में जीव चैतन्य की विषयोपरागार्थ वृत्ति होती है। अर्थात् अविद्योपाधिक जो सर्वगत चैतन्य है वह अविद्या से अनावृत है। विषय के अध्यास में अधिष्ठान होता है—इसलिये वह विषय का प्रकाशक होता है। इस मत में सर्वगत जीव चैतन्य में विषय आदि हैं—उसका संश्लेष जीव चैतन्य में नहीं है—क्योंकि असंग है—वृत्ति

प्रकाशस्यापि घटादेस्तदाकारवृत्त्युपारूढचैतन्यप्रकाश्यत्वं युक्तम्। एवञ्चानावृत्तत्वपक्षे तत्तदाकारवृत्तिद्वारा चैतन्यस्य तत्तदुपरागे तत्तत्प्रकाशः। आवृतत्त्व पक्षेऽपि तत्तदाकार वृत्त्या तत्तद्विषयावच्छिन्न चैतन्यावरणाभिभवे तत्तत्प्रकाशः परिच्छिन्नत्वपक्षेऽपि तत्तज्जीवावच्छेदकान्तःकरणीय-तत्तद्विषयाकारवृत्त्या तत्तद्विषयावच्छिन्नब्रह्मचैतन्याभिव्यक्तौ तत्तत्प्रकाश इति

वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यस्य विषयाधिष्ठानचैतन्यस्य च वस्तुगत्याऽभेदोस्ति स व्यज्यत इत्यर्थः। तथाच वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्येनाभिव्यक्ताभेदमधिष्ठानचैतन्यं भवतीति यावत्। अविद्योपाधिकं सर्वगतं जीवचैतन्यमनावृत्तं विषयाध्यासाधिष्ठानमिति मते वृत्तिश्चिदुपरागार्था नावरणाभि-भावार्थेत्युक्तम्। तत्रावरणभावेन चैतन्यस्य स्वत एव विषयेण संश्लिष्टत्वाद्वृत्तिर्व्यर्थेत्य-तस्तत्सार्थक्यमुपपादयति—अनावृतत्वेति। जीवचैतन्यमसङ्गत्वाद्विषयासंश्लिष्टमेवाव-तिष्ठत इति शेषः। **उपरज्यत इति। विषयैरिति शेषः।** विषयाकारवृत्तिरगत्याऽसङ्गत्वं परिहृत्य संश्लेषापरपर्य्यायमुपरागं सम्पादयतीत्यर्थः। **नन्विति।** वृत्तिं विना पूर्वं विषयैः स्वतो नोपरज्यतेऽसङ्गत्वादित्यर्थः। ननु सर्वगतस्यानावृतस्य विषयाध्यासाधिष्ठानस्य विषयैः सह वृत्तेः पूर्वमुपरागो नास्ति वृत्त्यैवोपरज्यत इत्येतदयुक्तमदृष्टत्वादित्यतोऽत्र तार्किकादिसंमतं दृष्टान्तमाह—**यथेति सास्नेति।** केसरादिमत्सिंहादिव्यक्तावप्यस्ति गोत्वं परन्तु तस्य तदुपरागः संश्लेषविशेषः

अगत्या असंग में भी उसका संश्लेष कर देती है। आवरण का विरह उसमें स्वतः सिद्ध होने से आवरण के अभिभव के लिये वृत्ति होती है—ऐसा इस मत में नहीं है। द्वितीय पक्ष अविद्योपाधिक जीव चैतन्य सर्वगत है अविद्या से आवृत है इस मत में आवरण के अभिभवार्थ वृत्ति है। आवरण के अभिभूत होने पर चैतन्य स्वतः एक विषय से उपरक्त होता है—इसलिये आवरण में अभिभव के लिये ही वृत्ति है, संश्लेष के लिये नहीं, यह भाव है—परिच्छिन्नत्व पक्ष में अर्थात् अन्तःकरणोपाधिक परिच्छिन्न जीव चैतन्य ब्रह्म चैतन्य ही है, वही विषय का प्रकाशक है—इस मत में जीव चैतन्य का विषय प्रकाशक ब्रह्म चैतन्य से अभेद अभिव्यक्ति हेतु वृत्ति है—यही वृत्ति का प्रयोजन है, अर्थात् वृत्ति से आवरण के अभिभूत होने पर वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य तथा विषयाधिष्ठान चैतन्य का वस्तुतः अभेद है वह व्यक्त होता है—इस प्रकार वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य से अधिष्ठान चैतन्य में अभेद व्यक्त होता है। अविद्योपाधिक अनावृत जीव चैतन्य विषयाध्यास का अधिष्ठान है, इस मत में वृत्ति चित् उपराग के लिये है, न कि आवरण के अभिभव के लिये—यह पहले कहा है। आवरण के अभाव से चैतन्य का स्वतः एव विषय के साथ संश्लिष्ट होने से वृत्ति व्यर्थ होगी—इसलिये उसकी सार्थकता बताते हैं—'अनावृतत्त्व पक्ष में अनावृत जीव चैतन्य

नातिप्रसङ्गः। विषयानुभवस्य ब्रह्मचित्वेऽपि वृत्त्या जीवचैतन्याभेदेनाभिव्यक्तत्वाज्जीवचित्वमविरुद्धमिति प्रतिकर्मव्यवस्थायुक्तेति तदयुक्तम्। अन्तःकरणवृत्तिभिन्नज्ञाने मानाभावात्। ब्रह्माकारचरमवृत्तिस्थलेऽपिज्ञानद्वयापत्तेश्च। नचघटं जानामीत्यत्रानुभूयमानसकर्मकवृत्तितोऽन्याकर्मिकासम्वित् घटप्रकाशरूपा घटःप्रकाशत इत्याकारेति वाच्यम्। करोति यतते गच्छति चलतीत्यादावेकार्थत्वेऽपि यथाहि सकर्मकत्वाकर्मकत्वे स्वभाववशादेव तथात्राप्येकार्थत्वेऽपि जानाति-प्रकाशत्योःसकर्मकत्वाकर्मकत्वे

समवायरूपो नास्ति सास्नादिमद्व्यक्त्यैव तूपरज्यत इत्यर्थः। **आकाशेति।** आकाशदेशव्यापिनी तथा घटादिपदार्थस्थितगन्धरसादिप्रदेश-**व्यापिनीत्यर्थः। रूपीति।** रूपोपेतपदार्थसम्बन्धितयेत्यर्थः। अनावृतत्वपक्षे केवलचैतन्याप्रकाश्यस्यापि घटादेस्तदाकारवृत्त्युपारूढसर्वगतचैतन्येन प्रकाश्यत्वं युक्तमित्यत्र दृष्टान्तमाह—**केवलेति। वृत्त्युपारूढेति।** वृत्तिसहकृतेत्यर्थः। एवं वृत्तेरुपयोगमुपपाद्य चैतन्यस्य सर्वान् प्रत्यवशिष्टत्वात्सर्वस्य सर्वं प्रतीयेतेत्यतिप्रसङ्गं परिहरन् एतेषु पक्षेषु घटप्रकाशकं चैतन्यं विवेचयन्प्रतिकर्मव्यवस्थामुपपादयति—**एवञ्चेत्यादिना।** ननु जीवचैतन्यस्य परिच्छिन्नत्वपक्षे ब्रह्मचित एव विषयाध्यासाधिष्ठानतया विषयप्रकाशकत्वेन विषयानुभवरूपत्वादिदं जीवज्ञानमिति व्यवहारः कथं ब्रह्मचैतन्यज्ञानमित्येवं व्यवहारः स्यादित्यत आह—**विषयानुभवस्येति।** जीवचैतन्येन वृत्त्युपारूढज्ञातृचैतन्येन साकं योऽभेदस्तद्वत्वेन घटाधिष्ठानभूतब्रह्मचैतन्याभिव्यक्तत्वाज्जीवचित्वस्य विषयानुभवरूपत्वमित्यर्थः। **प्रतिकर्मव्यवस्थेति।** कस्यचित्पुंसः कदाचिदेव कश्चिदेव विषयो ज्ञानकर्म न सर्वस्य सर्वदा सर्व इति तदर्थः। एवमनूदितां प्रक्रिया दूषयति—

सर्वगत होने पर भी तदाकार वृत्ति से ही उपरञ्जित होता है। विषयाकार वृत्ति अगत्या असंगत्व का परिहार कर संश्लेष रूप उपराग का सम्पादन करती है—यह भाव है। न कि विषयों से—क्योंकि वह असङ्ग है—जीव चैतन्य असङ्ग होने से विषय से असंश्लिष्ट ही रहता है। कहें कि सर्वगत अनावृत विषयाध्यास में अधिष्ठान का विषयों के साथ वृत्ति से पूर्व उपराग नहीं है, किन्तु वृत्ति से ही उपरञ्जित होता है, इसलिये यह कथन अयुक्त है—ऐसा कहीं देखा नहीं गया है—इसलिये इस विषय में—तार्किक सम्मत दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं—जैसे गोत्व आदि जाति सर्वगत होने पर भी—सिंह आदि व्यक्ति में रहने पर भी सास्नादिमद् व्यक्ति गो व्यक्ति में ही उसका उपराग संश्लेष विशेष—समवाद रूप है—न कि सिंह आदि व्यक्ति में वह जाति गोत्व आदि, सास्नादि व्यक्ति में संश्लिष्ट होता है—इसी प्रकार दीप की प्रभा आकाश देश भी तथा घट आदि पदार्थ स्थित गन्ध, रस आदि प्रदेश व्यापिनी होने पर भी—उन्हें नहीं

स्तः। न चानुकूलोयत्नः कृञोऽर्थः। यततेस्तु यत्नमात्रार्थः। एवं गमेरुत्तरदेशसंयोगानुकूलः स्पन्दे श्चले श्च स्पन्दमात्रमित्यर्थभेदनिबन्धनमेवसकर्मकत्वादिकमिति वाच्यम्। लाघवाद्यत्नत्वादेरेवशक्यतावच्छेदकत्वेनानुकूलत्वादेःसंसर्गतया भानात्। अविवक्षाविरहविशिष्टत्वे सति कर्मसाकांक्षत्वमेव सकर्मकत्वमतः सकर्मकस्यापि वहतेःकर्माविवक्षया नदी बहतीत्यत्राकर्मकत्वेऽपि न सकर्मकत्वहानिः।अतीतः प्रकाशतेशास्त्रार्थो धर्मादि प्रकाशतेशुद्धाचित् प्रकाशत इत्यादौ, चिद्रूपज्ञानाभावेऽपि प्रकाशव्यवहाराच्च।न ह्यत्र वृत्तिप्रतिबिम्बितचिदस्ति

तदयुक्तमिति। प्रतिकर्मव्यवस्थासिद्ध्यर्थं चैतन्यस्य विषयप्रकाशकत्वार्थमिन्द्रियसन्निकर्षद्वारिका वृत्तिः कल्प्यते तत्रादौ सन्निकर्ष एवायुक्तः। तथाच तदधीनवृत्तिद्वारकं यत् विषयोपरक्तत्वं तेन चैतन्यस्य विषयप्रकाशकत्वमयुक्तम्। अस्तु वा चैतन्यस्य विषयप्रकाशकत्वं तथापि देहान्तरे वृत्त्यवस्थानोपपत्तेर्देहाद्बहिर्वृत्तेर्निगमनकल्पनमप्रमाणिकम्। अस्तु वा देहाद्बहिर्वृत्तेर्निस्सरणं तथापि तस्या एवाज्ञाननिवर्तकत्वेन विषयप्रकाशोपपत्तौ तत्प्रतिबिम्बितचैतन्यं तदभेदेनाभिव्यक्ताधिष्ठानचैतन्यमिति चैतनद्वयकल्पनमप्रामाणिक-मित्येवमुत्तरग्रन्थप्रवृत्तिरिति निष्कर्षः। अन्तःकरणस्येच्छाकारेण परिणतत्वादुपा-दानान्तःकरणनिष्ठमपीच्छात्वमुपादेयेच्छावृत्तावङ्गीकृतम्। यथा वा अन्तःकरणनिष्ठमपि ज्ञानत्वं तदुपादेयवृत्तावङ्गीकृतम्। एवमन्तःकरणनिष्ठमपि प्रकाशकत्वं तदुपादेयवृत्तावस्तु अन्यथा उपादानान्तःकरणनिष्ठत्वादपरोक्षवृत्तौ प्रकाशकत्वं नास्तीत्यङ्गीकारे

प्रकाशित करती है, किन्तु रूप विशिष्ट पदार्थ संसर्गी होकर रूप को ही प्रकाशित करती है। अनावृतत्व पक्ष में केवल चैतन्य से अप्रकाश्य होने पर भी घट आदि का घटाकार वृत्ति उपारुढ़ सर्वगत चैतन्य से प्रकाश्यत्व युक्त है—इस पर दृष्टान्त है—केवल अग्नि से अदाह्य का भी अयः पिण्ड समारुढ़ अग्नि दाहकत्व की तरह। इस प्रकार केवल चैतन्य से अप्रकाश्य घट आदि का भी घटाकार वृत्ति उपारुढ़ चैतन्य से प्रकाश्यत्व युक्त है। इस प्रकार वृत्ति का उपयोग बताकर चैतन्य के सब के प्रति अवशिष्ट होने से सब को सब की प्रतीति का अति प्रसङ्ग प्राप्त होने पर उसका परिहार करते हुए इन पक्षों में घट प्रकाशक चैतन्य की विवेचना करते हुए प्रति कर्म व्यवस्था का उपपादन करते हैं—'एवज्ञानावृतत्व पक्ष' ग्रन्थ से अर्थात् अनावृतत्व पक्ष में तत्तदाकार वृत्ति द्वारा चैतन्य का तत् तत् विषयक उपराग होने पर तत् तत् तत्त्व का प्रकाश होता है। परिच्छिन्नत्व पक्ष में भी तत् तत् जीवावच्छेदक अन्तःकरणीय तत्

परोक्षादेरपरोक्षैकरस चिद्विषयत्वे, अपरोक्षापत्तेः। शुद्धचितस्तद्विषयत्वे मिथ्यात्वोपपत्तेश्च। अस्तु वा चितो विषयप्रकाशकत्वं, तथाप्यन्तःकरणस्य देहान्निर्गतिर्न कल्प्या। परोक्षवैलक्षण्याय विषयस्याभिव्यक्तापरोक्षचिदुपराग एव वक्तव्यः। चिदुपरागादौ चापरोक्षवृत्तेस्तदाकारत्वमेव तन्त्रं, नतु प्रभायामिव

अन्तःकरणपरिणामपरोक्षवृत्तौ चैतन्यप्रतिफलनाभावेन तस्या एव विषयानुभवत्वप्रयुक्तं प्रकाशकत्वमङ्गीकृतं तदपि न स्यात् त्वन्मते उपादानेऽन्तःकरणे तस्याभावादतोवृत्तिरूप-ज्ञानस्यैव प्रकाशकत्वंयुक्तमित्याशयेनाह—**अन्तःकरणावृत्तिरिति**। ज्ञानद्वयकल्पने दोषान्तरमाह—**ब्रह्मेति**। ननु वृत्तिरूपज्ञानस्य प्रकाशकत्वमयुक्तं घटं जानामीति वृत्तिरूपज्ञानस्य सकर्मकत्वप्रतीतेः घटः प्रकाशत इति प्रकाशस्याकर्मकत्वप्रतीतेः। अतोऽकर्मकप्रकाशः चैतन्यं ज्ञानमेवेत्यङ्गीकार्यमित्याशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। क्रियैक्येपि तत्प्रतिपादक-शब्दस्वभावादेव कर्म सम्बन्धप्रतीत्यप्रतीती यथा करोति यतत इत्यत्र करणस्य प्रयत्नरूपत्वेन तेनैक्येपि करोतेः सकर्मकत्वम्। यततेस्त्वकर्मकत्वं दृष्टं यथा वा गच्छति चलतीत्यत्र गमनस्य चलनत्वेऽपि गच्छतेः सकर्मकत्वं चलतेस्त्वकर्मकत्वं दृष्टमेवमिहापि वृत्तेरेव प्रकाशत्वेन तयोरैक्योऽपिज्ञानरूपतया वृत्तेः सकर्मकत्वं प्रकाशस्य त्वकर्मकत्वमुपपद्यत एव, सकर्मकत्वादेर्धातुस्वाभाव्यादित्याशयेन समाधत्ते—**करोतीति। अनुकूलयत्न इति**। कालसम्बन्धप्रयोजकयत्न इत्यर्थः। उक्तमेतन्न्यायकुसुमाञ्जलौ। तथाहि। फलानुकूलत्वेनैवकरोतिशक्यता नतु यत्नत्वेन

विषयाकार वृत्ति से तत् तत् विषयावच्छिन्न ब्रह्म चैतन्य की अभिव्यक्ति से तत् तत् विषय का प्रकाश होता है—इस प्रकार कहीं कोई अतिप्रसङ्ग नहीं है। कहें कि जीव चैतन्य में परिच्छिन्नत्व पक्ष को ब्रह्म चैतन्य के ही विषयाधिष्ठान रूप में विषय प्रकाश होने से इसे विषयानुभव रूप होने के कारण यह जीव ज्ञान है यह व्यवहार है— फिर यह ब्रह्म चैतन्य ज्ञान है—ऐसा व्यवहार कैसे होगा? इसलिये कहते हैं— 'विषयानुभवस्य.......' अर्थात् विषयानुभव ब्रह्म चैतन्य होने पर भी वृत्ति के द्वारा जीव चैतन्य से अभेद रूप में अभिव्यक्त होने से उसमें जीव चित्व में कोई विरोध नहीं है—इस तरह प्रतिकर्म व्यवस्था युक्त है। प्रतिकर्म व्यवस्था का तात्पर्य है—किसी पुरुष का कदाचित् ही कोई विषय-ज्ञान का कर्म होता है—न कि सब का सर्वदा सब विषय होता है—तो यह ठीक नहीं अन्तःकरण की वृत्ति से भिन्न ज्ञान में कोई प्रमाण नहीं है। ब्रह्माकार चरम वृत्ति स्थल में भी ज्ञानोदय की आपत्ति भी होगी। यदि कहें कि

वृत्तेस्तदावरणनिवर्त्तकत्वादौ तत्संश्लेषस्तन्त्रं नेत्रान्निर्गच्छद्ध्रुवाद्याकारवृत्त्यैव स्वसंश्लिष्टस्य नेत्रस्थकज्जलादेर्देहध्रुवनेत्रमध्यवर्तिनः- परमाण्वाकाशादेर्ब्रह्मणश्चापरोक्षापत्तेः। द्वयोस्तन्त्रत्वे च गौरवात्। न च कज्जलादिसंश्लेषेऽपि तदाकारत्वाभावान्न तत्प्रकाशः। आवश्यक-

फलानुकूलयत्नत्वेन वा यततिकरोत्ययोरेकार्थतापत्तेः। रथोगच्छतीत्यादौकरोत्यर्थकाख्यातस्य मुख्यार्थकत्वानुपपत्तेश्चेत्याशंक्याह। "कृताकृतविभागेन कर्तृरूपव्यवस्थया यत्न एव कृतिःपूर्वा परस्मिन् सैव भावना" अस्यार्थस्तु तत्रैव द्रष्टव्यइत्याशयः। यत्नत्वमेव करोतेश्शक्यतावच्छेदकम्, अनुकूलत्वन्तु- धात्वर्थस्य संसर्गतया यत्ने भासत इत्याह—**लाघवेति** अनुकूलत्वयत्नत्वयोःकरोतेः- शक्यतावच्छेदकत्वकल्पनामपेक्ष्य यत्नत्वमात्रेतच्छक्यतावच्छेदकत्वकल्पने लाघवमित्यर्थः। सकर्मकत्वं निर्वक्ति—**अविवक्षितेति**। सकर्मकत्वलक्षणघटकविशेषणस्य प्रयोजनं दर्शयति—**सकर्मकस्येति। अतीतइति**। वृत्तिव्यतिरिक्तचैतन्यरूपज्ञानस्यैव प्रकाशकत्वेऽतीते चैतन्यरूपज्ञानाभावेन प्रकाशाभावादतीतः प्रकाशत इति व्यवहारो न स्यादित्यर्थः। तत्रापि वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यस्यैव विषयप्रकाशकत्वमस्तु इत्यत आह— **नह्यत्रेति**। कुतो नास्तीत्याह **परोक्षादेरिति। तद्विषयत्वेति**। प्रकाशविषयत्वइत्यर्थः। एतावत्पर्य्यन्तं सन्निकर्षस्यैवायोगेन सन्निकृष्टेन्द्रियजन्यवृत्तेरसम्भवाच्चैतन्यस्य विषयप्रकाशकत्वं नास्तीत्युक्तमिदानीं तदङ्गीकृत्य सावयवं तैजसमन्तःकरणं चक्षुरादिद्वारा बहिर्निःसरतीति वृत्तेर्वहिर्निस्सरणं यदुक्तं तां प्रक्रियां दूषयति—अस्तुवेत्यादिना परोक्षस्थले जायमानवृत्तितो वैलक्षण्यायान्तःकरणस्य देहाद्विनिर्गतिरपरोक्षस्थले कल्प्यत इति

'घटं जानामि' यहाँ अनुभूयमान सकर्मक वृत्ति (घट कर्मक ज्ञानरूप) वृत्ति से भिन्न है—अन्य अकर्मक सेवित ज्ञान—जैसे घटः प्रकाशते (यहाँ घट कर्ता है) इस पर कहते हैं कि—करोति, यत, ते, गच्छति, चलति—इन स्थलों में समानार्थत्व होने पर भी सकर्मकत्व अकर्मकत्व स्वभाव से होते हैं। कहें कि—'करोति मे' कृञ् का अर्थ है अनुकूल यत्न अर्थात् घटानुकूल यही घटोत्पत्यनुकूल यत्न और यतते यहाँ यत् धातु का अर्थ केवल यत्न है—इसी प्रकार गम् धातु का अर्थ है उत्तर देश संयोगानुकूल व्यापार और चल् धातु का अर्थ है केवल यत्न—स्पन्द मात्र इस प्रकार अर्थ भेद प्रयुक्त ही सकर्मक अकर्मक व्यवस्था है तो ऐसा नहीं कह सकते, वहाँ लाघवात् (कृञ् धातु का केवल यत्न मात्र अर्थ) यत्नत्व आदि की शक्यतावच्छेदक है अनुकूलत्व आदि का संसर्गरूप से भान होता है—सकर्मकत्व की परिभाषा है—अविवक्षा विरह विशिष्टत्वे कर्म साकांक्षत्वम्—यही सकर्मकत्व की परिभाषा है—इसलिये वह धातु के सकर्मक होने पर भी—(भारं वहति मे) कर्म की अविवक्षा होने से वही वहति यहाँ अकर्मक

तदाकारत्वेनैवोपपत्त्या संश्लेषस्याकिञ्चित्करत्वात्। परोक्षस्थलेवृत्ति-र्निगमनाभावेऽपि प्रकाशादिवदपरोक्षस्थलेऽपि तथात्वोपपत्तेः। न च प्रकाशस्य दीपादेर्विषयसंश्लिष्टस्यैव व्यवहारहेतुत्वमिति वाच्यम्। परोक्षस्थलेऽवहिर्निर्गतस्यैव ज्ञानस्य व्यवहारजननात्। न च तत्राज्ञाननिवृत्त्यभावः,

चेत्तत्राह—**परोक्षेति**। ननु विषयस्य वृत्तिसम्बन्धं बिना चिदुपराग एव न सम्भवति। चिदुपरागे वृत्तिसम्बन्धस्य तन्त्रत्वात्। सास्नाद्यवच्छिन्नेगोत्वाद्युपरागवत् वृत्त्यवच्छिन्न-विषय एव चिदुपरागस्य सत्त्वात्तस्य वृत्तेर्वहिर्निर्गतिं विनाऽयोगात् सा कल्पनीयेत्यत आह—**चिदुपरागादाविति**। इन्द्रियसन्निकर्षद्वारा वृत्तेर्वहिर्निःसरणाभावेऽपिविषयाकारेण वृत्तेरन्तरेव परिणाममात्रेण चैतन्यविषयोपरागासम्भवेन चिदुपरागे तदाकारस्यैव प्रयोजकत्वात् तया वृत्त्यवच्छिन्न एव तदुपराग इति कल्पने मानाभावादित्यर्थः। ननु प्रभायामावरणनिवर्तकत्वे स्वप्रकाशत्वे च विषयसंश्लेषस्यैव प्रयोजकतया दृष्टत्वेन विषयसम्बन्धं विना वृत्तेरावरणनिवर्त्तकंत्वासम्भवेन तदर्थं बहिर्निर्गतिः कल्प्येति चेत्तत्राह—**नत्विति**। निवर्तकत्वादिति। विषयप्रकाशकत्वमादिशब्दार्थः वृत्तेरावरणानिवर्त्तकत्वादौ तदाकारक-त्वमेव तन्त्रं नतु तत्संश्लेषः ज्ञानस्य प्रभापेक्षया आन्तरत्वेन वैषम्यादितिभावः। वृत्तेर्देहा द्विर्निगत्या विषयसंश्लेषावरणनिवर्त्तकत्वे बाधकमाह—**नेत्रेति**। ध्रुवमण्डलज्ञानार्थ-मेवनेत्रान्निर्गच्छन्ती ध्रुवमण्डलाद्याकारा, अन्तःकरणवृत्तिस्तयेत्यर्थः स्वेति। वृत्तीत्यर्थः। **अपरोक्षापत्तेरिति**।

होने पर भी वह धातु में सकर्मकत्व की हानि नहीं हुई। 'अतीतः प्रकाशते शास्त्रार्थो धर्मादि प्रकाशते, शुद्धा चित् प्रकाशते' इत्यादि स्थलों में चिद् रूप ज्ञान के अभाव में भी प्रकाश व्यवहार भी होता है। यानी वृत्ति व्यक्तिरिक्त चैतन्य रूप ज्ञान को ही प्रकाशक मानने पर अतीत में चैतन्य रूप ज्ञान के अभाव से प्रकाश का अभाव होने से अतीतः प्रकाशते यह व्यवहार नहीं होगा, यह भाव है। कहें कि वहाँ भी वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य में ही प्रकाशकत्व हो तो इस पर कहते हैं—यहाँ वृत्ति प्रतिबिम्बित नहीं है, क्योंकि परोक्ष आदि में अपरोक्ष एकरस चिद् विषय मानने पर अपरोक्ष की आपत्ति होती और शुद्ध चित् को उसका विषय मानने पर मिथ्यात्व की उपपत्ति भी होगी। यहाँ तक सन्निकर्ष के अयोग से सन्निकृष्ट इन्द्रिय जन्य वृत्ति असंभव होने से चैतन्य में विषय प्रकाशकत्व नहीं है, ऐसा कहा। अब उसे स्वीकार कर सावयव तैजस् अन्तःकरण चक्षु आदि के द्वारा बाहर निकलती है—इसलिये वृत्ति का बाहर निःसरण होता है—ऐसा जो कहा था—उस प्रक्रिया का खण्डन करते हैं—'अस्तु वा चितो............' इस ग्रन्थ से—कहते हैं, चित् में विषय प्रकाशकत्व भले ही हो, फिर भी अन्तःकरण का देह से बाहर निर्गमन नहीं हो सकता। कहें कि परोक्ष स्थल में

न जानामीति प्रतीत्यापत्तेश्च। अज्ञाते सत्यपि व्यवहारोपपत्तावपरोक्षे तन्निवृत्त्यभावापत्तेः। किञ्च वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यं तदभिव्यक्तघटाधिष्ठानचैतन्यं वा ज्ञानं नाद्यः। आध्यासिक-सम्बन्धस्यातन्त्रत्वापातात्। नान्त्यः। आवश्यकेन

संश्लेषावरणनिवृत्तिद्वारा अपरोक्षापत्तेरित्यर्थः। ननुसिद्धान्तेऽपि नयनरश्मीनां बहिर्निर्गमनाङ्गीकारादतिप्रसङ्गस्तुल्य इति चेन्न कज्जलेऽतिसामीप्यदोषात् परमाण्वादौ महत्त्वविशेषादिकारणविरहादित्यपि द्रष्टव्यम्। ननु क्वचिद्विषयसंश्लेषस्त-दावरणनिवर्तकत्वे हेतुः। क्वचिद्वृत्तेस्तदाकारत्वमपि तथाच नातिप्रसङ्गः। नेत्रस्थकज्जले परमाण्वादौ च वृत्तेस्तदाकारत्वाभावात् किन्तु ध्रुवमण्डलाकारत्वमेवेत्यतआह— **द्वयोरिति।** संश्लेषतदाकारत्वयोरित्यर्थः। तदाकारत्वाभावात्=विषयाकारत्वाभावात्। तत्प्रकाशः= विषयप्रकाशः। वृत्तेर्बहिर्निर्गमनेन विषयसंश्लेषे सति तदाकारतायाजायमानत्वात् तेनैव विषयप्रकाशोपपत्तौ संश्लेषस्याकिंचित्कारत्वादित्याह—**आवश्यकेति।** तर्हि वृत्तेः कथं कदाकारत्वमित्यत उक्तं परोक्षेति। तथाच तदाकारपरोक्षवृत्तेरिवापरोक्षवृत्तेरेव प्रकाशोप-पत्तावपरोक्षवृत्त्युपरागादिमतः चैतन्यस्य प्रकाशकत्वकल्पनायोगाच्चेति भावः। **नचेति।** परोक्षस्थलेऽज्ञाननिवृत्त्यभावो नचेत्यन्वयः। यदिपरोक्षस्थलेऽज्ञानं न निवर्तते तदा न जानामीति प्रतीतिःस्यादित्यर्थः। परोक्षस्थले विषयानुभवाभावे स्मरणं न स्यादनुभवस्-मरणयोः सामानाधिकरण्येन कार्यकारणभावादित्याशयेनाह—**स्मृत्यनुपपत्तेश्चेति।** घटादिप्रकाशकमेव चैतन्यमिति प्रक्रियां दूषयितुमाह—**किंचेति। तदभिव्यक्तेरिति।** वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्याभेदेनाभिव्यक्तं घटाद्यधिष्ठानचैतन्यमित्यर्थः। **आध्यासिकेति।**

जायमान वृत्ति से वैलक्षण्य के लिये विषय का अभिव्यक्त अपरोक्ष चित् का उपराग ही कहना होना। कहें कि विषय का वृत्ति सम्बन्ध के बिना चित् का ही संभव नहीं है, कारण चित् के उपराग में वृत्ति सम्बन्ध कारण है। सास्नाद्यवच्छिन्न, गोत्वादि के उपराग की तरह वृत्यवच्छिन्न विषय में ही चित् का उपराग के होने से और उसका वृत्ति के बाहर निर्गमन के बिना संभव नहीं होने से उसकी कल्पना होती है—इस पर कहते हैं—चिदुपरागादौ। अर्थात् इन्द्रिय सन्निकर्ष द्वारा वृत्ति के बाहर निःसरण अभाव में भी विषयाकार के रूप में वृत्ति के बिना परिणाम मात्र से चैतन्य का विषयोपराग संभव न होने से चित् के उपराग में उसका आकार ही प्रयोज़क है। उससे वृत्यवच्छिन्न में ही उसका उपराग होता है ऐसी कल्पना में कोई प्रमाण नहीं है। कहें कि प्रभा के आवरण निवर्तकत्व तथा स्वप्रकाशत्व में विषय संसर्ग को प्रयोजक रूप में देखने से विषय सम्बन्ध के बिना वृत्ति में आवरण निवर्तकत्व संभव नहीं है—इसलिये तदर्थ उसका बाहर निर्गमन की कल्पना करते हैं—इस पर कहते हैं—'न तु प्रभायामिव'

विषयसंश्लिष्ट-वृत्तिप्रतिबिम्बचैतन्येनैव तदज्ञाननिवृत्तिवत्तत्प्रकाशस्याप्युपपत्तौ तदधिष्ठानचैतन्याभिव्यक्त्यादिकल्पनाया वैयर्थ्यात्। घटाद्यधिष्ठानस्य चाक्षुषवृत्तिविषयीकृतस्य मिथ्यात्वेऽधिष्ठानत्वासिद्धेः। सत्यत्वे तत्र दृश्यत्वादेर्हेतोर्व्यभिचारापत्तेः। किञ्च जीवचैतन्यं ब्रह्मचैतन्यं वा विषयदृक् नाद्यः।

वृत्तिप्रतिबिम्बिचैतन्यरूपज्ञानस्य विशिष्टस्य त्वन्मते मिथ्यात्वेन तत्र घटादीनामध्यासाभावेन ज्ञान आरोपितत्वरूपस्याध्यासिकसम्बन्धस्य प्रतिकर्म व्यवस्थासिद्धावतन्त्रत्वापातादित्यर्थः। एवमेवोत्तरत्राप्यर्थो द्रष्टव्यः। **आवरकेनेति**। अधिष्ठानचैतन्यस्य विषयप्रकाशकत्वपक्षेऽपि विषयाधिष्ठानचैतन्यावरकाज्ञाननिवृत्त्यर्थं वृत्तिप्रतिबिम्बितत्वस्यावश्यकत्वादित्यर्थः। घटाद्यधिष्ठानचैतन्यस्य मिथ्यात्वं सत्यत्वं वेत्यभिप्रेत्याद्यपक्षं निरस्यति—**घटाद्यधिष्ठानेति**। द्वितीयपक्षमपाकरोति—**तत्रेति**। घटाद्यधिष्ठानचैतन्य इति तदर्थः। मिथ्यात्वरूपसाध्याभाववति घटाधिष्ठानचैतन्ये दृश्यत्वरूपहेतोस्सत्वाद् व्यभिचार इत्यर्थः। दृशि विषयाध्यासस्वीकर्तॄणां मते जीवचैतन्यं विषयप्रकाशकं ब्रह्मचैतन्यं वेति विकल्पयति—**किं चेति**। विषयदृक् =विषयप्रकाशकम्।

अर्थात् प्रभा की तरह वृत्ति का उसके आवरण निवर्तकत्व आदि से उसका संसर्ग कारण नहीं है वृत्ति के आवरण निवर्तकत्व आदि में तदाकारत्व ही कारण है—न कि उसका संसर्ग, क्योंकि ज्ञान प्रभा की अपेक्षा आन्तर होने से विषमता है—यह भाव है। यहाँ वृत्ति का देह से निकलकर विषय में संसर्ग रूप आवरण निवर्तकत्व में बाधक है—नेत्र से निर्गत ध्रुवाद्याकार वृत्ति से ही अपने में संश्लिष्ट नेत्र वृत्ति कज्जल आदि तथा देह ध्रुव नेत्र के मध्यवर्ती परमाणु आकाश आदि एवं ब्रह्म की अपरोक्ष की आपत्ति होगी। अर्थात् संश्लेष के आवरण की निवृत्ति द्वारा अपरोक्षापत्ति। कहें कि कहीं विषय का संश्लेष उसके आवरण के निवर्तकत्व में हेतु है, कहीं वृत्ति की तदाकारता भी हेतु है—तब तो कोई अतिप्रसङ्ग नहीं होगा? इस पर कहते हैं दो को कारण मानने पर गौरव होगा। कहें कि कज्जल आदि के संश्लेष होने पर भी विषयाकारत्व में अभाव से विषय का प्रकाश नहीं होता है—क्योंकि वृत्ति के बाहर निर्गमन होने से विषय के साथ संश्लेष होने पर तदाकारता की उत्पत्ति होने से उसी से विषय के प्रकाश की उपपत्ति होने पर संश्लेष का कोई महत्त्व नहीं रहता। कहें कि फिर वृत्ति में तदाकारता कैसे होगी तो कहते हैं परोक्ष स्थल में वृत्ति के निर्गमन के अभाव में भी प्रकाश आदि की अपरोक्ष स्थल में भी उसकी उपपत्ति होगी। कहें कि दीप आदि प्रकाश घटादि विषय संश्लिष्ट होने पर ही व्यवहार जनक होते हैं, तो ऐसा नहीं कह सकते, परोक्ष स्थल में बिना बहिर्निर्गत ज्ञान ही व्यवहार जनक होता है। वहाँ अज्ञान निवृत्ति का अभाव नहीं होता, क्योंकि फिर तो न जानामि ऐसी प्रतीति

विशिष्टे कल्पितेऽध्यासायोगात्। न द्वितीयः। तस्य संसारावृत्तत्वेन जगदान्ध्यापत्तेः ॥ ६२ ॥

विशिष्टे=घटाधिष्ठानत्वेन घटविशिष्टे चेतने। **अध्यासायोगादिति**। घटाधिष्ठानत्वेन घटविशिष्टतयाकल्पितत्वेनाध्यस्तानधिकसत्ताकत्वावान्नाध्यासाधिष्ठानत्वमित्यर्थः। द्वितीयपक्षं व्युदस्यति—**नद्वितीय इति**। तस्य=शुद्धस्य। विषयाध्यासाधिष्ठानतया विषयदृक्त्वेनाभिमतस्य सविशेषस्य ब्रह्मण एव कल्पिततयाऽध्यस्तानधिकसत्ताकत्वान्न तस्याधिष्ठानत्वमुपपद्यत इति भावः। **जगदान्ध्येति**। घटाधिष्ठान शुद्धचैतन्यमेव विषयप्रकाशकमिति वक्तव्यं तस्य शुद्धस्यासंसारमज्ञानावृतत्वेन कदापि प्रकाशाभावेनघटादिपदार्थज्ञानमात्राभावापत्त्या सर्व प्रवृत्तिविलयापत्त्या जगदान्ध्यापातादित्यर्थः। जगदान्ध्यविरहमाशङ्क्य निराकरोति—**न चेति ॥६२ ॥**

की आपत्ति भी होगी। और अज्ञात होने पर भी व्यवहार की उपपत्ति दशा में अपरोक्ष में उसकी निवृत्ति के अभाव की आपत्ति? अब घट आदि का प्रकाश ही चैतन्य है—इस प्रक्रिया का खण्डन करने के लिये कहते हैं—"किञ्च वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्यम्...." इत्यादि। अर्थात् पूछते हैं कि ज्ञान क्या है? वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य अथवा वृत्ति में अभिव्यक्त घटाधिष्ठान चैतन्य? पहला पक्ष नहीं कह सकते—कारण आध्यासिक सम्बन्ध में अतन्त्रत्व की आपत्ति, अर्थात् वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य रूप विशिष्ट ज्ञान आपके मत में मिथ्या होने से उसकी घट आदि के अध्यास में अभाव के कारण ज्ञान में आरोपित आध्यासिक सम्बन्ध में प्रतिकर्म व्यवस्था की सिद्धि में अकारणत्व की आपत्ति होगी—इसी प्रकार आगे भी अर्थ देखना चाहिए। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—कारण जब आवश्यक विषय संश्लिष्ट वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य से ही उसमें अज्ञान की निवृत्ति की तरह उसके प्रकाश ही की उपपत्ति हो जाएगी—फिर उसमें अधिष्ठान चैतन्य कीअभिव्यक्ति आदि की कल्पना व्यर्थ है। अब घटादि अधिष्ठान चैतन्य मिथ्या है या सत्य? इस अभिप्राय से विकल्प करके आदि पक्ष का खण्डन करते हैं—अर्थात् यदि चाक्षुष विषयीकृत घटादि अधिष्ठान को मिथ्या माने तो अधिष्ठानत्व की असिद्धि—सत्य मानें तो घटादि के अधिष्ठान चैतन्य में दृश्यत्व आदि हेतु का व्यभिचार होगा। क्योंकि मिथ्यात्वरूप साध्याभाव के अधिकरण घटाधिष्ठान चैतन्य में दृश्यत्व रूप हेतु विद्यमान है। अब ज्ञान में विषयाध्यास स्वीकार करने वालों के मत में जीव चैतन्य विषय प्रकाशक है अथवा ब्रह्म चैतन्य? पहला पक्ष नहीं कह सकते घटाधिष्ठानत्वेन कल्पित घट विशिष्ट चैतन्य में अध्यास नहीं हो सकता। दूसरा पक्ष भी संभव नहीं है। उस शुद्ध ब्रह्म के संसार से आहत होने पर—जगत् में अन्धकारापत्ति।। ६२।।

न च मूलाविद्यानिवृत्त्यभावेन सर्वत आवरणाभिभवाभावे घटाद्यवच्छेदेन तदभिभवेनान्ध्याभावोपपत्तिरिति वाच्यम्। अभिव्यक्तस्य घटाद्यवच्छिन्नस्य घटानधिष्ठानत्वात्। शुद्धस्फुरणाङ्गीकारे वेदान्तवैयर्थ्यापत्तेः। न च वेदान्तजन्यज्ञानस्य चाक्षुषघटादिज्ञानानधिकविषयकत्वेऽप्युपाध्यभानार्थं तदावश्यकं ज्ञाने स्वविरोधिनिवृत्तावधिकभानस्यानपेक्षणात्। नहि दण्डिपुरुषज्ञानं पुरुषाज्ञानं न

अनवच्छिन्नस्य शुद्धस्य संसारमज्ञानावृतत्वेऽपि मूलाविद्यानिवृत्त्यभावेन सर्वत आवरणाभिभवाभावेऽपि घटाद्यवच्छेदेनावरणाभिभवसम्भवादान्ध्यविरह उपपद्यत इत्यर्थः। **अभिव्यक्तस्येति**। वृत्त्याभिभूतावरणस्यैव घटाद्यवच्छिन्नस्य घटादिदृक्त्वमित्यायातं तथाच तस्य च तदधिष्ठानत्वेन घटस्य घटाधिष्ठानकोटौ प्रवेशेनात्माश्रयः स्यात् दृश्यस्य न सद्रूपायां दृश्यध्यस्तत्वसिद्धिरितिभावः शुद्धमेव ब्रह्म घटावच्छिन्नं वृत्त्या प्रकाश्यते इतिपक्षे दूषणान्तरमाह—**शुद्ध इति**। **वैयर्थ्यमिति**। घटादिविशिष्टचैतन्यज्ञाने घटस्फुरणेऽपि चरमवृत्तिविषयस्य विशेष्यस्य प्रकाशेन वेदान्तश्रवणजन्यचरम वृत्तेर्वैयर्थ्यं स्यादिति भावः उपाध्यविषयकब्रह्मस्फुरणस्य वेदान्तजन्यचरमवृत्तिप्रयुक्तत्वेन तस्याः साफल्यमित्याशङ्क्य निषेधयति—**न चेति**। अस्य तदावश्यकमित्यनेनान्वयः। तदावश्यकम्=वेदान्तजन्यज्ञानावश्यकम्। **स्वविरोधीति**। स्वं=ज्ञानं तद्विरोध्यज्ञानं तस्य निवृत्तावित्यर्थः।

यदि कहें कि मूला अविद्या की निवृत्ति के अभाव से सब तरह आवरण के अभिभव के अभाव में घटादि अवच्छेदेन आवरण के अभिभव होने से जगत् के आन्ध्य के अभाव की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण घटाद्यवच्छिन्न चैतन्य घट का अधिष्ठान नहीं है। शुद्ध ब्रह्म ही घटावच्छिन्न को वृत्ति के द्वारा प्रकाशित करता है— इस पक्ष में वेदान्त का वैयर्थ्य होता है—घटादि विशिष्ट चैतन्य के ज्ञान में घट के स्फुरण होने पर भी विशेष्यरूप चरम वृत्ति का विषय का प्रकाश होने से वेदान्त श्रवणजन्य चरम वृत्ति का वैयर्थ्य होगा यह भाव है। उपाधि अविषयक ब्रह्म स्फुरण वेदान्तजन्य चरम वृत्ति प्रयुक्त होने से उसकी सफलता होगी ऐसी आशङ्का करके खण्डन करते हैं— 'न च वेदान्तजन्य ज्ञानस्ये.......' इस ग्रन्थ से, अर्थात् यह भी नहीं कह सकते कि वेदान्तजन्य ज्ञान चाक्षुष घटादि ज्ञान से अनधिक विषयक होने पर भी उपाधि के अभान के लिये आवश्यक है, क्योंकि ज्ञान में स्वविरोधी ज्ञान विरोधी अज्ञान की निवृत्ति में अधिक भाव की अपेक्षा नहीं है। स्व समान विषयक ज्ञान से ही अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है—इस नियम के व्यभिचार—दण्डी पुरुष का ज्ञान पुरुष के ज्ञान को निवृत्त नहीं करता ऐसा नहीं है—दण्ड-विशिष्ट पुरुष के ज्ञान से जैसे विशेष्य पुरुष का अज्ञान निवृत्त

निर्वतयति। विषयप्रकाशकमधिष्ठानचैतन्यम् अन्तःकरणावच्छिन्नो जीवस्तयोरभेदाभिव्यक्त्यर्थं वृत्तिरिति तु न युक्तम् अन्तःकरणाद्युपाधिभङ्गं विनोपहिताभेदासम्भवात्। घटादितादात्म्यतया भासमाने त्वदभिमताधिष्ठानचैतन्ये जीवाभेदाभिव्यक्तिस्वीकारेऽहं घट इति प्रतीत्यापत्तेः। अथान्तःकरणावच्छिन्नस्य जीवत्वेन त्वन्मते सुषुप्तौ तदभावेन

स्वसमानविषयकज्ञानादेवाज्ञानं निवर्तत इति नियमे व्यभिचारं दर्शयति—**न हीति।** दण्डविशिष्टपुरुषज्ञानाद्विशेष्यस्य पुरुषस्याज्ञानं यथा निवर्तते तद्वत् प्रकारविशिष्टब्रह्मज्ञानादज्ञानस्य निवृत्तत्वादिदानीमपि ब्रह्मस्फुरणाद्वेदान्तजन्यचरम वृत्तेर्वैयर्थ्यमिति भावः। वृत्तेस्सार्थक्यं समर्थयितुमाह—**अन्तःकरणेति।** त्वन्मते सुषुप्तावन्तःकरणलयाङ्गीकारादिति भावः। **कृतनाशादिति।** यदन्तःकरणावच्छिन्नेन यत्कृतं कर्म तदन्तःकरणस्य सुषुप्त्युत्तरकालेऽसत्त्वेन तत्कर्मजन्यभोगस्य हानिः। परदिने च यदन्तःकरणावच्छिन्नस्य भोगो भवति तदन्तःकरणावच्छिन्नेन तद्भोगहेतुकर्म न कृतमित्यकृताभ्यागमादिपदार्थः। वृत्तिप्रतिबिम्बितं चैतन्यमिति प्रक्रियां निराकरोति—**वृत्तेरुपरागार्थत्वपक्षइति। वृत्तिमात्रेति।** स्वत एव केवलवृत्त्युपरक्तत्वं चैतन्यस्येति शेषः। **प्रतिबिम्बितत्वमिति।** अन्तःकरण इति शेषः अन्तःकरणस्य तावत्प्रतिबिम्बनोपाधित्वं न सम्भवति कुत इति चेत् उद्भूतरूपवत्वस्यैव प्रतिबिम्बनोपाधित्व प्रयोजकत्वात् अन्तःकरणस्यानुद्भूतरूपवत्वात्तदिदमुक्तम्। **अनुद्भूतरूप इति।** ननूद्भूतरूपवत्वं न प्रतिबिम्बनोपाधित्वप्रयोजकम् यदा गुहास्थिताकाशे प्रतिध्वनिर्भवति तत्र शब्दः प्रतिफलति तत्राकाशस्य कथं प्रतिफलनोपाधित्वम्, उद्भूतरूपवत्वाभावादत उक्तम्।

होता है उसी प्रकार विशिष्ट ब्रह्मज्ञान से अज्ञान के निवृत्त होने से इस काल में भी ब्रह्म के स्फुरण होने के कारण वेदान्तजन्य चरम वृत्ति का वैयर्थ्य है, यह भाव है। अब वृत्ति की सार्थकता को समर्थन हेतु कहते हैं। विषय का प्रकाशक अधिष्ठान चैतन्य, अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य जीव—इन दोनों में अभेद अभिव्यक्ति के लिये वृत्ति है—यह तो ठीक नहीं—अन्तःकरणादि उपाधि भङ्ग के बिना उपहित का भेद असंभव है। घट आदि के साथ तादात्म्य रूप में भासमान आपके अभिभव अधिष्ठान चैतन्य में जीव के साथ अभेद की अभिव्यक्ति स्वीकार करने पर—'अहं घटः' ऐसी प्रतीति की आपत्ति होगी। अब वृत्ति की सार्थकता का समर्थन करने हेतु कहते हैं—और अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य को जीव होने के कारण आपके मत में, सुषुप्ति में अन्तःकरण के अभाव से कृतनाश आदि दोषों का प्रसङ्ग होगा—जिस अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ने जो कर्म किया—उस अन्तःकरण का सुषुप्ति से उत्तर काल में सद्भाव न होने से तत्कर्मजन्य भोग की हानि हुई, पर दिन में जिस अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य का भोग होता है—

कृतनाशादिप्रसङ्गाच्च। वृत्तेरुपरागार्थत्वपक्षे च चितः स्वतस्तावद्वृत्तिमात्रोपरक्तत्वं दर्पणे मुखस्येव प्रतिबिम्बितत्वम्। अनुद्भूतरूपेऽन्तःकरणे शब्दान्यप्रतिबिम्बनोपाधितया अचाक्षुष चैतन्ये प्रतिबिम्बनस्य चायोगात्। नापि मूषास्थद्रुतसुवर्णादिवत्तदात्मना विकृतत्वं चितोनिर्विकारित्वात्। नापि गोत्वादिवत्तदाश्रितत्वं तत्राभिव्यक्तं वा चित आकाशवदनाश्रितत्वात्। उपरागार्थत्वपक्षे चितोऽनावृत्तत्वेन

शब्दान्येति। तथा चैतन्ये प्रतिबिम्बिनञ्च न सम्भवति प्रतिबिम्बने चाक्षुषत्वस्य प्रयोजकत्वात् ब्रह्मचैतन्यस्याचाक्षुषत्वादित्याशयेनोक्तम्। **अचाक्षुष इति।** ननु जलाद्युपाधावचाक्षुषस्याप्याकाशस्य प्रतिफलनं दृष्टमिति चेन्न तत्र सौरप्रभामण्डलस्य चाक्षुषस्यैव प्रतिफलनादिति सम्प्रदायविदः। पुनर्वृत्त्युपरक्तत्वं विविच्य दूषयति— **नापीति।** मूषायां स्थितं यत्सुवर्णं तच्चोत्तराग्निसंयोगेन द्रुतं सत् मूषा यथास्तिवर्तुलतया तथैवान्तःकरणं तदाकारेण परिणमते तथा मूषास्थानीयान्तःऽकरणवृत्तौ सुवर्णस्थानीयं ब्रह्म तदात्मना विकृतं भवति तदिदमेवचितोवृत्त्युपरक्तत्वमित्यर्थः। **गोत्वादिवदिति।** यथा गोत्वादेर्गवाद्युपरक्तत्वं नाम सास्नादिमद्व्यक्तिवृत्तित्वरूपं केसरादिमद्व्यक्तिं विहाय सास्नादिमद्व्यक्तेरेवाभिव्यक्तत्वरूपं वा दृष्टम्, एवं चितो वृत्त्याश्रितत्वं वा

तदन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ने उस भोग के लिये कर्म किया नहीं—इस प्रकार कृतनाश तथा अकृताभ्यागम दोष का प्रसंग होगा। अब वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य वाली प्रक्रिया का निराकरण करते हैं—वृत्ति उपरागार्थ है—इस पक्ष में चित् का स्वतः वृत्ति में उपरागत्व है दर्पण मुख की तरह अन्तकरण में प्रतिबिम्बितत्त्व। अन्तःकरण प्रतिबिम्ब की उपाधि संभव नहीं है—क्योंकि उद्भूत रूपवत् पदार्थ ही प्रतिबिम्ब के उपाधित्व का प्रयोजक होता है और अन्तःकरण अनुद्भूत रूप वाला है—यही कह रहे हैं कि अनुद्भूत रूप वाले अन्तःकरण में प्रतिबिम्बन का योग नहीं है। कहें कि उद्भूत रूपवत्त्व प्रतिबिम्बोपाधि का प्रयोजन नहीं है—क्योंकि जब गुहास्थित आकाश में प्रतिध्वनि होती है तब शब्द प्रतिफलित होता है, वहाँ आकाश कैसे प्रतिफलन (प्रतिबिम्ब) की उपाधि होता है—उसमें उद्भूत रूप नहीं है—इसीलिये कहा—'शब्दान्य प्रतिबिम्बनोपाधितया' और चैतन्य में प्रतिबिम्बन संभव नहीं है—क्योंकि प्रतिबिम्ब के चाक्षुषत्व, चक्षुरिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष विषयत्व प्रयोजक है—और ब्रह्म चैतन्य अचाक्षुष है—इसी आशय से कहा—'शब्दान्य प्रतिबिम्बनोपाधितया' अचाक्षुष चैतन्ये—इत्यादि कहें कि जल आदि उपाधि में अचाक्षुष आकाश का प्रतिबिम्ब होता है—तो ऐसा नहीं है—वहाँ चाक्षुष सौर प्रभा मण्डल का ही प्रतिबिम्ब होता है—ऐसी सम्प्रदाय वेत्ता विद्वानों की मान्यता है।

सर्वत्राभिव्यक्तत्वाच्च। नापि घटाकाशवदन्तःस्थत्वम्, आकाशवत्सर्वगता सा स्वतोवृत्त्यन्तस्था न तु घटाद्यन्तस्थेति वक्तुमशक्यत्वात्। तस्माच्चितः सर्वगतत्वेन सर्वसम्बन्धात्सर्वप्रकाशो दुर्वारः। 'असङ्गो ह्ययं पुरुष' इति श्रुतिस्तु ईश्वरस्य तत्तत्कृतलेपाभावपरा। स तत्र किञ्चित्पश्यति

तत्र वृत्तावभिव्यक्तत्वं वा तदुपरक्तत्वमित्यर्थः। आद्ये दोषमाह—**चितेति**। यथाकाशस्य सर्वगतत्वादनाश्रितत्वं तद्वदनाश्रितत्वं चित इत्यर्थः। द्वितीयपक्षं व्युदस्यति—**उपराग इति**। विषयप्रकाशकचितोऽनावृतत्वपक्षे वृत्तेरुपरागार्थत्वाङ्गीकारादित्यर्थः। **सर्वत्रेति**। तथा च चितः स्वतो वृत्तिमात्राभिव्यक्तत्वरूपोपरक्तस्य सत्वेन चितः स्वतो वृत्तिमात्राभिव्यक्तत्वमेव वृत्त्युपरक्तत्वमिति प्रतिज्ञाहानिः स्यादित्यर्थः। **घटेति**। घटाकाशो घटान्तस्य एवं चितो वृत्त्यन्तरस्थत्वमेव वृत्त्युपरक्तत्वमित्यर्थः। **आकाशवदिति**। आकाशस्य सर्वगतत्वात्, घटान्तरे स्थितिर्नतु गृहान्तर इति विभागो न सम्भवति एवं चितोऽपि सर्वगतत्वेन चित् स्वतो वृत्तिमात्रोपरक्ता स्वतो वृत्तिमात्रान्तस्थेति यावत्, नतु घटादि विषयान्तस्थेत्यस्यायोगादित्यर्थः। निगमयति—**तस्मादिति**। अनावृतचित्सम्बन्धस्य सर्वेषां पदार्थानां सत्त्वात्सर्वेषामपि पदार्थानां सर्वदा सर्वजनस्य प्रकाशो दुर्वार इति भावः। 'नन्वसङ्गोह्ययं पुरुष' इति श्रुतेर्जीवचितः स्वतो विषयासम्बन्धित्वात्तदर्थं वृत्तिरपेक्षिता अन्यथा श्रुतेर्विरोधादित्यत आह—

वृत्ति में उपराग का खण्डन

अब पुनः वृत्ति के उपराग पक्ष का विवेचन करके उसे दूषित करते हैं—कहते हैं—और ना हीं मूषा स्थित द्रुत सुवर्ण आदि की तरह तदात्मना विकृतत्व ही है, अर्थात् मूषा में स्थित जो सुवर्ण है, वह अग्नि संयोग से द्रुत होकर जैसे गोलाकार हो जाता है, उसी प्रकार अन्तःकरण भी तदाकार रूप में परिणत हो जाता है। तथा परस्थानीय अन्तःकरण वृत्ति में सुवर्ण स्थानीय ब्रह्म तदात्मना विकृत होता है—यही है—चित् का वृत्ति में उपराग, तो यह भी नहीं है, कारण चित् निर्विकार है। इसी तरह जैसे गोत्व आदि का गो आदि व्यक्ति में उपरक्तत्व सास्नादिमत् व्यक्ति वृत्तित्व रूप है अथवा केशर आदि विशिष्ट व्यक्ति को छोड़कर सास्नादिमत् व्यक्ति का ही अभिव्यक्तत्व रूप ही देखा गया है, इसी प्रकार चित् का वृत्त्याश्रितत्व अथवा उस वृत्ति में अभिव्यक्तत्व ही उसका उपरक्तत्व है? कारण आदि पक्ष में चित् में आकाश की तरह अनाश्रितत्व है जैसे आकाश सर्वगत होने से अनाश्रित होता है, उसी प्रकार चित्, अनाश्रित होता है—द्वितीय पक्ष भी नहीं कह सकते—उपरागार्थ पक्ष में चित् के अनावृत होने से वह सर्वत्र अभिव्यक्त है—यानी तब चित् चित् के स्वतः वृत्तिमात्र में अभिव्यक्तत्व रूप उपराग के विद्यमान होने से चित् का

अनन्वागतस्तेन भवतीति पूर्ववाक्यात्। 'यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुरि' त्यादिस्मृतेश्च ॥६ ३ ॥

असङ्गोहीति। तत्तत्कृतेति। तत्तत्प दार्थसम्बन्धकृतेत्यर्थः। नन्वियं श्रुतिर्जीवचैतन्यपरैव ईश्वरपरा कुत इत्यत आह—**स तत्रेति**। पूर्ववाक्ये ईश्वरस्यैव प्रकृतत्वादिति भावः नन्वियं श्रुतिर्लेपाभावपरा कुतः ईश्वरस्य सर्वपदार्थासम्बन्धित्वपरा किं न स्यादित्यत आह—**यथेति। वायोरित्यादीति**। अत्रादिपदेन तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारयेति द्वितीयार्धः प्रकृतोपयुक्तो ग्राह्यस्तथाचात्रसर्वसम्बन्धस्यैवोक्तत्वेन तद्वाक्यविरोधाच्छ्रुतिर्लेपाभावपरतयैव व्याख्येयेति भावः वृत्तिश्चितोविषयोपरागार्थेति मते वृत्तेर्वैयर्थ्यमेव स्यात्तथाहि चितो विषयोपरागस्तावत् संयोगादिरूपो नास्त्येव, तस्य दृश्यत्वाप्रयोजकत्वात् किन्तु तत्राध्यस्तत्वरूप एवेति वाच्यम्। **॥ ६३ ॥**

स्वतः वृत्ति मात्राभिव्यक्तत्व ही वृत्त्युपराग पदार्थ है इस प्रतिज्ञा की हानि होगी। ना ही घटाकाश की तरह अन्तःस्थत्व है। आकाश के सर्वगत होने से घट के भीतर स्थिति है, न कि गुहान्तर में ऐसा विभाग संभव नहीं है, इसी प्रकार चित् के सर्वगत होने से चित् स्वतः वृत्तिमात्र में उपरक्त है स्वतः वृत्तिमात्र के अन्तःस्थित है, न कि घट आदि विषयान्तर में स्थित है—ऐसा नहीं कह सकते। इसलिये चित् के सर्वगत होने से सब के साथ सम्बन्ध होने से सबका प्रकार दुर्निवार हो जाएगा। कहें कि 'असङ्गोऽह्ययं पुरुषः' इस श्रुति से जीव रूप चित् का स्वयमेव विषयों से असम्बन्ध सिद्ध है—उसके लिये वृत्ति अपेक्षित है—अन्यथा श्रुति का विरोध होगा—तो कहते हैं कि उक्त श्रुति ईश्वर का तत् तत् पदार्थ सम्बन्धवृत लेप का अभावपरक है। कहें कि यह श्रुति जीव चैतन्य परक है—ईश्वर परक कैसे होगा—तो कहते हैं—'स तत्र किञ्चित् पश्यति अनन्वागतस्तेन भवति' इस पूर्व वाक्यसे ईश्वर है, प्रकृत है। कहें कि यह श्रुति लेपाभावपरक है, ईश्वर सभी पदार्थों से असम्बद्ध है—ऐसा कैसे? इस पर कहते हैं—'यथाकाशस्थितो नित्यंवायुः सर्वत्रगो महान्' इत्यादि स्मृति वाक्य भगवद् वाक्य भी है। यहाँ आदि पद से—''तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय'' यह द्वितीय अर्धभाग प्रकृत में उपभोग ग्राह्य है—इस प्रकार सभी सम्बन्ध उक्त होने से उस वाक्य के विरोध के कारण उक्त श्रुति लेपाभाव परत्वेन ही व्याख्येय है। अब वृत्ति चित् के विषयोपरागार्थ है—इस मत में वृत्ति का वैयर्थ्य ही होगा—क्योंकि चित् का विषयोपराग संयोगादिरूप तो है ही नहीं, कारण वह दृश्यत्व का अप्रयोजक है, किन्तु उसमें अध्यस्तत्व रूप ही है, ऐसा कहेंगे, वह वृत्ति की अपेक्षया पहले भी है, फिर चित् की विषयोपरागार्थ वृत्ति से क्या प्रयोजन? ॥६३॥

किञ्च वृत्तितः पूर्वमध्यासिकसम्बन्धोऽस्त्येवान्यस्तूपरागो न दृश्यत्वे तन्त्रं किन्तदर्थयावृत्त्या। अथावरणाभिभवार्था वृत्तिरिति पक्षोप्ययुक्तः। विवर्ताधिष्ठानस्य चिन्मात्रस्याज्ञानादिसाक्षित्वेन सदैव प्रकाशमान त्वादन्यस्य चाज्ञानकल्पितत्वात्। न च तस्या अज्ञानादिसाक्षित्वेन प्रकाशेऽप्यशनायाद्यतीतत्वेन प्रकाशाभावादावरणमावश्यक मितिवाच्यम्।

स च वृत्त्यपेक्षया पूर्वमप्यस्तीति किञ्चितो विषयोपरागार्थया वृत्येत्याह—**किंचेति** वृत्तिरावरणाभिभवार्थेति पक्षे दोषमुपन्यस्यति—**आवरणेति**। आवरणं ह्याव्रियमाणत्वेन व्याप्तं तच्च किं चिन्मात्रं विशिष्टं वा नाद्यः प्रकाशमान आवरणासम्भवादित्याह—**विवर्त इति**। प्रकाशमाने चावरणं न सम्भवति नितराञ्चावरणाभिभवः विवर्ताधिष्ठानस्येत्यर्थः। न द्वितीय इत्याह **अन्यस्येति। अज्ञानेति**। अज्ञानसिद्धौ तत्कल्पितविशिष्टसिद्धिस्तत्सिद्धौ च तदावरकाज्ञानसिद्धिरित्यन्योन्याश्रय इति भावः। आवरणमाशङ्क्य निषेधति। **नचेति**। तस्याः=चितः। नहि निर्धर्मके ब्रह्मणि अज्ञानादिसाक्षित्वादिधर्माणां प्रकाशाप्रकाशोपपादकानां सम्भावनाप्यन्यथा निर्विशेषचिन्मात्रसिद्धान्तभङ्गापत्तेरित्याह—**अज्ञानादिसाक्षित्वेति**। अज्ञानस्यैकत्वमनेकत्वमिति विकल्प्य दूषणाभ्यामज्ञानस्वरूपं खण्डयति—**किञ्चेति**।

यही बात कह रहे हैं—'किञ्च वृत्तितः पूर्वमध्यासिक..........' ग्रन्थ से, अर्थात् वृत्ति से पूर्व अध्यासिक सम्बन्ध है ही, अन्य कोई उपराग दृश्यत्व के कारण नहीं दीखता फिर तदर्थ वृत्ति से क्या मतलब? अब आवरण के अभिभव के लिये वृत्ति है—इस पक्ष में दोष देते हैं—कहते हैं—यह पक्ष भी युक्त नहीं है—'आवरणाभिभवार्था वृत्तिरिति पक्षोऽप्युक्तः.....' आवरण आव्रियमाणत्वेन व्याप्त होता है—वह क्या चिन्मात्र है या विशिष्ट? पहला पक्ष नहीं कह सकते—प्रकाशमान में आवरण संभव नहीं, कारण विवर्त के अधिष्ठान चिन्मात्र के अज्ञान आदि के साक्षी होने से—वह सदैव प्रकाशमान है—प्रकाशमान में न आवरण संभव है ना ही आवरण का अभिभव—विवर्त के अधिष्ठान का द्वितीय पक्ष भी नहीं कह सकते, अन्य तो अज्ञान कल्पित है—अज्ञान सिद्धि होने पर उसके द्वारा कल्पित विशिष्ट की सिद्धि और विशिष्ट सिद्ध होने पर उसमें आवरक अज्ञान की सिद्धि—इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय होगा। अब आवरण की आशङ्का करके उसका निषेध करते हैं—''न च तस्याज्ञानादि साक्षित्वेन'' ग्रन्थ से कहें कि चित् के अज्ञान आदि में साक्षी होने से प्रकाश होने पर भी उसमें अशना आदि क्षुधापिपासा आदि से रहित होने से प्रकाश के अभाव से आवरण आवश्यक है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, अज्ञान आदि के साक्षित्व तथा अशना आदि से अतीत आदि प्रकाश एवं अप्रकाश के

अज्ञानादिसाक्षित्वाशनायाद्यतीतत्वादेः प्रकाशाप्रकाशोप-पादकस्य धर्मस्य निर्विशेषेऽसत्वात्। किञ्चाज्ञानमेकमनेकानि वा। नाद्यः। शुक्तिज्ञानेनाज्ञाननिवृत्त्या सद्य एव मोक्षप्रसङ्गात्। अनिवृत्तौ रूप्यादेः सविलासा विद्यानिवृत्तिरूपबाधायोगात्। नन्वस्मिन्पक्षे शुक्तिज्ञानेन रूप्यादेः स्वकारणे प्रलयमात्रं क्रियते मुद्गरप्रहारणेन घटस्येव नत्वज्ञानं निवर्तते ब्रह्मज्ञानेन तु विरोधित्वादज्ञानमेव निवर्त्यते इति चेन्न ज्ञानस्या-

किं विवरणरीत्याऽज्ञानमेकम्, इष्टसिद्धिग्रन्थरीत्या अतिविषयमनेकानीत्यर्थः। अज्ञानमेकमितिपक्षेऽपि शुक्तिज्ञानेनाज्ञानं सकार्यं निवृत्तं नवा नाद्य इत्याह शुक्तिज्ञानेनेति। **सद्य एवेति।** अज्ञानस्यैकत्वेन मूलाज्ञानस्यैव रजतभ्रमोपादानत्वाच्छुक्तिज्ञानेन च तन्निवृत्तेरित्यर्थः। द्वितीये त्वाह **अनिवृत्ताविति। सविलासेति।** कार्यसहितेत्यर्थः। यथोक्तम्, अज्ञानस्य वर्तमानेन प्रविलीने न वा स्वकार्येण सहज्ञानेन निवृत्तिर्बाध इति। तथाचाज्ञाननिवृत्तेरभावाद्रजतादिबाधो न स्यादिति भावः। अज्ञाननिवृत्त्यनिवृत्त्योरुभयोरपिसद्यो मोक्षाभावबाधौ युक्तावित्याशङ्कते—**नन्विति। स्वकारण इति।** तथा च तावन्मात्रेण बाधोपपत्तिरिति भावः। यथा मुद्गरप्रहारेण घटनाशेऽपि जलाहरणाद्यर्थक्रियाकारित्वसामर्थ्यमात्रं गच्छति कारणात्मनाऽनुवर्त्तत एव, एवमज्ञानस्यावरकत्वशक्तिमात्रमेव गच्छति न स्वरूपेण निवर्तत इति भावः। **नत्विति।** कारणात्मना सत्त्वात् स्वरूपेण न निवर्तत इत्यर्थः। ब्रह्मज्ञानेन=चरमसाक्षात्काररूपेण।

उपपादक धर्म का निर्विशेष चित् में अभाव है।

अब अज्ञान एक है या अनेक, ऐसा विकल्प करके दूषणों द्वारा अज्ञान के स्वरूप का खण्डन करते हैं—विवरणकार के मत में अज्ञान एक है—तथा इष्टसिद्धि ग्रन्थ के अनुसार अज्ञान प्रतिविषयका अनेक है। अज्ञान के एकत्व पक्ष में—प्रश्न है कि शुक्ति ज्ञान से अज्ञान कार्यसहित निवृत्त हुआ या नहीं? पहला पक्ष नहीं कहा जा सकता शुक्ति ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होने का तत्क्षण मोक्ष का प्रसङ्ग होगा—कारण अज्ञान के एक होने से मूला अविद्या के ही रजत भ्रम के उपादान होने के कारण शुक्ति में ज्ञान से उसकी निवृत्ति हो गई। अज्ञान की निवृत्ति न माने तो कार्यसहित अविद्या निवृत्तिरूप बाध का अभाव होगा, अज्ञान की निवृत्ति न मानने पर रजत आदि का बाध नहीं होगा जैसाकि कहा गया है—अज्ञान का वर्तमान किंवा विलीन अपने कार्य के साथ ज्ञान से निवृत्ति रूप बाध का अभाव होगा। फिर तो अज्ञान की निवृत्ति के अभाव से रजतादि का बाध नहीं होगा। कहें कि अज्ञान के एकत्व पक्ष में शुक्ति ज्ञान से रजत आदि का स्वकारण में प्रलय मात्र होता है—अज्ञान की निवृत्ति नहीं—जैसे मुद्गर के प्रहार से घट के नाश होने पर भी उसकी

ज्ञाननिवृत्तिद्वारैवान्यविरोधित्वेनाज्ञानमनिवर्त्य रूप्यादिनिवर्तकत्वायोगात् शुक्तिज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तावभिव्यक्तचैतन्यसम्बन्धाभावेन भ्रान्ताविव बाधेऽपि शुक्तेरप्रकाशापत्तेश्च। न च खद्योतादिप्रकाशैर्महान्धकारस्येवाज्ञानस्यैकदेशे नाशाद्वा भीरुभटापसरणाद्वा कटवत्सम्वेष्टनाद्वा चैतन्यस्याप्येकदेशेन प्रकाश

परिहरति—**नेति। रूप्येति** शुक्तिज्ञानमज्ञानमनिवर्त्य तत्कार्यभूतं रूप्यमात्रं निवर्तयतीत्येतदयुक्त यतो ज्ञानमज्ञानस्य तद्द्वारा तत्कार्यस्यच निवर्तकमिति नियमेन ज्ञानस्याज्ञाननिवृत्तिद्वारा तत्कार्यविरोधिताऽतोऽज्ञानमनिवर्त्यतत्कार्यनिवर्तकत्वायोगेन बाधायोगस्तदवस्थ इत्यर्थः। किञ्च शुक्तिज्ञानेनाज्ञान निवृत्तिमनङ्गीकृत्य तद्गतावरकत्वशक्तिमात्रप्रतिबन्धाङ्गीकारे बाधेऽपि शुक्तिप्रकाशो स्यात्, अभिव्यक्तचैतन्य सम्बन्धाभावादित्याह—**शुक्तीति।** अज्ञाननाशेऽपि तद्गतावरण-शक्तेरपगतत्वाच्चितोऽभिव्यक्तचित्सम्बन्धोयुक्त इत्येतदनुपदमेव निरसिष्यत इति भावः। **खद्योतेति।** यथा खद्योतप्रकाशेन महान्धकारस्यैकदेशेऽत्यल्पे नष्टे सति तद्देशस्थं वस्तु दृश्यते तथा वृत्त्याऽज्ञानस्यैकदेशनाशे सति विषयप्रकाश इत्यर्थः। **भीरुभटवदिति।** प्रतिभटे प्रबले नष्टे सति भीरुर्भयशीलो भटो यथा तं देशमपहायापसरति, एवं वृत्तौ सत्यां तद्देशमपहायाज्ञानमपसरतीत्यर्थः। **कटवदिति।** यथा कटे वेष्टिते भूतलादिदेशोऽनावृत्तो भवति एवमज्ञाने वेष्टिते सति चैतन्यमनावृतं भवति **अनादीति।**

जलाहरण आदि क्रिया कार्यकारित्व सामर्थ्य मात्र का ही नाश होता है—'घट कारणात्मना मृदात्मना मृत्तिका रूपम्' विद्यमान ही रहता है, उसी प्रकार शुक्ति के ज्ञान से अज्ञान की आवरकत्व शक्ति मात्र का ही नाश होता है—न कि अज्ञान (अविद्या) का स्वरूपतः नाश होता है और ब्रह्मज्ञान—चरम ज्ञान से तो विरोधी होने के कारण अज्ञान की ही निवृत्ति हो जाती तो ऐसा नहीं कह सकते (शुक्ति ज्ञान अज्ञान को बिना निवृत्त किये उसके कार्यभूत रजत मात्र की निवृत्ति करता है तो यह ठीक नहीं) क्योंकि ज्ञान अज्ञान की निवृत्ति द्वारा उसके कार्य का निवर्तक होता है, ऐसा नियम होने से ज्ञान में अज्ञान निवृत्ति द्वारा तत्कार्य विरोधिता होती है—इसलिये अज्ञान को निवृत्त किये बिना तत्कार्य निवर्तकत्व न होने से बाध का अयोग तदवस्थ ही रहेगा। दूसरी बात शुक्ति ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति बिना माने केवल अज्ञानगत आवरकत्व शक्ति मात्र का प्रतिबन्धक माने तो रजत के बाध होने पर भी शुक्ति का प्रकाश नहीं होगा, क्योंकि अभिव्यक्त चैतन्य के सम्बन्ध का अभाव है। फिर तो भ्रान्ति की तरह बाध के भी (रजत का बाध होने पर भी शुक्ति का प्रकाश नहीं होगा। भाव यह है कि अज्ञान के नाश से ही तद्गत आवरण शक्ति के नाश होने से चित् का अभिव्यक्त सम्बन्ध अयुक्त है—इसका हम जल्दी ही

इति वाच्यम्। अनाद्यज्ञानचैतन्ययोर्निरवयवत्वात् न च मणयादिना वह्नयादिगतदाहादिशक्तेरिव शुक्त्यादिज्ञानेनाऽविद्या गतावरणशक्तेरविभवात्तत्प्रकाशः वृत्त्या च स्वोपादानभूताया अप्यविद्याया

अनादित्वेन चैतन्याज्ञानयोर्निरवयवत्वाद् ज्ञानैकदेशनाशेन चैतन्यैकदेशे प्रकाशो न युक्तइत्यर्थः। **शक्तेरेवेति।** वह्निस्वरूपानाशोऽपीत्यर्थः। **अविद्येति।** अविद्यास्वरूपानाशेऽपीत्यर्थः **तदिति।** भग्नावरणचित्सम्बन्धस्य प्राप्तत्वादिति भावः। ननु शुक्तिज्ञानेनाविद्याशक्त्यभिभवो न युक्तः। शुक्तिज्ञानस्याविद्याकार्यत्वेनोपादेयतया उपादेयेनोपादानाभिभवस्य कुत्राप्यदर्शनादित्यत आह—**वृत्त्येति। वृश्चिकेति॥** यथा गोमयाद्वृश्चिको जायते। तथा मृदो वृक्षो जायते तत्र गोमयाद्युपादानकोवृश्चिको

खण्डन करेंगे)। कहें कि जैसे खद्योत आदि (जुगनू) के प्रकाश से महान् अन्धकार का छोटा-सा अल्प देश प्रकाशित होता है, उसी प्रकार अज्ञान में एक देश को नाश मानने से विषय प्रकाश होगा अथवा प्रबल प्रतिभट के नाश होने पर भीरु भट जैसे उस देश को छोड़कर भाग जाता है, उसी प्रकार वृत्ति होने पर—उस देश को छोड़कर अज्ञान भाग जाता है, अथवा जैसे कट (चटाई) के वेष्टन (समेटने) पर—भूतल आदि देश अनावृत हो जाता है, इसी प्रकार अज्ञान के वेष्टित होने पर (ढ़क जाने पर) चैतन्य अनावृत होता है। उसी तरह चैतन्य का भी एक देश प्रकाशित होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण आदि अज्ञान एवं चैतन्य दोनों निरवयव है। यदि कहें कि मणि आदि से वह्नि आदि की दाहिका शक्ति की तरह शुक्ति आदि के ज्ञान से अविद्यागत आवरण शक्ति के अभिभव से शुक्ति का प्रकाश होता है, कहें कि शुक्ति ज्ञान से अविद्या की शक्ति का अभिभव मुक्त नहीं, शुक्ति ज्ञान अविद्या कार्य होने से उपादेय होने से उपादेय के द्वारा उपादान का अभिभव कहीं नहीं देखा गया है—इस पर कहते हैं—वृत्ति से अपने उपादानभूत अविद्या का भी अभिभव वृश्चिक एवं वृक्ष आदि का जैसे गोमय मृत्तिका आदि से होता है,

अभिभवो वृश्चिकवृक्षादिना गोमयमृदादेरिव युक्त इति वाच्यम्। चक्षुरादिजन्यशुक्तिवृत्तेरूपादिहीनशब्दैकगम्यशुद्धात्मा विषयतया

वृक्षोवास्वोपादानगतगोमयत्वमृत्त्वाभिभावको दृष्टस्तद्वत्प्रकृतेऽपीत्यर्थः। अविद्यागतावरकत्व शक्तिः किं शुद्धात्मविषया शुद्धात्मज्ञानं प्रतिबध्नातीति यावत् किं वा जडविषया, उत जडविशिष्टात्मविषया वेति विकल्प्याद्ये दोषमाह—**शुद्धात्मेति।** अविद्यानिष्ठशुद्धात्मावरकत्वशक्तेः शुद्धात्मविषयकवृत्त्याऽभि भवो वक्तव्यः। शुक्तिवृत्तेश्च शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यविषयकतया विशिष्टविषयकत्वेन शुद्धात्माविषयकत्वात्तादृश्या शुक्तिवृत्त्याऽविद्यागतशुद्धात्मावरकत्वशक्त्यभिभवो न सम्भवतीत्यर्थः शुक्तिवृत्तिरपि शुद्धात्मविषयिण्येवास्त्वित्यत उक्तम् **चक्षुरादीति।** ननु रूपादिहीनस्य रूपादेरिवात्मनोऽपि चाक्षुषत्वमस्त्वित्यत उक्तं। **शब्देति।** ननु शुक्तिवृत्तेः शुक्त्यवच्छिन्नचिद्विषयत्वेऽपि विशेष्यभूतचिद्विषयकत्वमस्त्वेवेति तया तदज्ञान-शक्यभिभवोऽस्तु नीरूपायाश्चितः शुक्तिसम्बन्धेन चाक्षुषत्वमुपपद्यते राहोरिव चन्द्रंसम्बन्धेनेत्यत आह **शुक्तिवृत्तेरिति। तदवच्छिन्नेति।** शुक्त्यवच्छिन्नेत्यर्थः। तत्प्रतिबन्धकत्वे=शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यावरकाज्ञान निष्ठावरकत्वशक्तिप्रतिबन्धकत्वे।

उसी तरह हो जाएगा। यानी अर्थात् गोमय से वृश्चिक होता है, मिट्टी से वृक्ष होता है, वहाँ गोमयोपादानक वृश्चिक किंवा वृक्ष अपने उपादानगत गोमयत्व तथा मृत्तिकात्व का अभिभावक होता देखा गया है उसी प्रकार प्रकृत में होगा। तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण चक्षु आदि से जन्य शुक्ति का रूप आदि से हीन शब्द मात्रगम्य शुद्ध आत्मविषयक होने से उसके आवरण शक्ति का प्रतिबन्धक नहीं होगा—भाव है कि अविद्यागत आवरकत्व शक्ति—क्या शुद्ध आत्मविषयक है जो शुद्ध आत्मज्ञान का प्रतिबन्ध करती है अथवा जड़विषयक है।

किं जड़त्वविशिष्ट आत्मविषयक है—ऐसा विकल्प करके आदिम पक्ष में दोष कहते हैं—'शुद्ध आत्मविषयतया......' अर्थात् अविद्यानिष्ठ शुद्ध आत्मावरकत्व शक्ति का शुद्ध आत्मविषयक वृत्ति से अभिभव कहेंगे, शुक्ति वृत्ति के शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्यविषयक होने से उसमें शुद्धात्मविषयकत्व है—उस शुक्ति वृत्ति से अविद्यागत शुद्ध आत्मावरकत्व शक्ति का अभिभव सम्भव नहीं है। शुक्त वृत्ति भी शुद्ध आत्मविषयिणी ही हो—इसलिये कहा चक्षुरादिजन्य। कहें कि रूप आदि से ही रूप आदि की तरह आत्मा में चाक्षुष प्रत्यक्ष विषयत्व हो—इसलिये कहा—'शब्दैक गम्य'। कहें कि शुक्ति वृत्ति के शुक्त्यवच्छिन्न विषयक होने पर विशेष्यभूत चिद्विषयकत्व है, इस प्रकार उसकी वृत्ति से उसकी अज्ञान शक्ति का अभिभव होगा, नीरूप चित् का शुक्ति में सम्बन्ध चाक्षुषत्व की उपपत्ति हो जाएगी—जैसे

तदावरणशक्त्यप्रतिबन्धकत्वात्। शुक्तिवृत्तेस्तदवच्छिन्नचि द्विषयत्वेन तत्प्रतिबन्धकत्वे च तयैव तदाशुद्धात्मप्रकाशापातात्। अविद्याकल्पितमप्रसक्तप्रकाशश्च जडं प्रति चाविद्याया इवाविद्यागतावरणशक्तेरप्ययोगात्, अस्वीकाराच्च॥ ६४॥

तयैव=विशेष्यभूतचिद्विषयिण्या शुक्तिवृत्त्यैव। **आपातादिति**। तथा च शुक्तिज्ञानेन सद्योमोक्षः स्यादित्यर्थः। द्वितीयं निराकरोति। **अविद्येति। अविद्याया इवेति।** यथाऽविद्या-जडाश्रया न भवति जडस्याविद्याकल्पितत्वेनाविद्यासिद्धौ तत्कल्पितत्वसिद्धिस्तत्सिद्धौ च तदाश्रिताज्ञान सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयात् एवमविद्यागतावरकत्वशक्तिरपि न जडविषयिणी जडं प्रत्यविद्याया आवरकत्वं नास्तीति यावत् कुतोऽअप्रसक्तप्रकाशत्वात् प्राप्त-प्रकाशप्रतिबन्धो ह्यावरणं तत्र च प्रकाशाप्रकाशशक्तेरेवाभावेनआवरणकृत्याभावादित्यर्थः। **अस्वीकाराच्चेति**। जडं प्रत्यावरकत्वानंगीकाराच्चेत्यर्थः ।।६४।।

चन्द्र के सम्बन्ध से राहु की तरह—इस पर कहते हैं—शुक्त की वृत्ति के शुक्त्यवच्छिन्न चिद्विषय होने से शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य के आवरक अज्ञाननिष्ठ आवरकत्व शक्ति के प्रतिबन्धकत्व में विशेष्य भूत चिद्विषयिणी शुक्ति की वृत्ति से ही शुद्ध आत्मा के प्रकाश की आपत्ति होगी। इस प्रकार शुक्ति ज्ञान से सद्यः मोक्ष होगा। यह अर्थ है। द्वितीय का निराकरण करते हैं—'अविद्याकल्पितमप्रसक्त.......' ग्रन्थ से भाव है कि जैसे अविद्या जड़ाश्रय नहीं होती, जड़ अविद्या कल्पित है—अविद्या की सिद्धि में अविद्या कल्पित की सिद्धि—और अविद्या कल्पित की सिद्धि होने पर तदाश्रित अज्ञान की सिद्धि इस प्रकार अन्योन्याश्रय है—इसी प्रकार अविद्यागत आवरकत्व शक्ति भी जड़विषयिणी नहीं है, जड़ के प्रति अविद्या में आवरकत्व नहीं है—फिर कहाँ से अप्रसक्त प्रकाशत्व से प्राप्त प्रकाश का प्रतिबन्ध होगा। प्राप्त प्रकाश प्रतिबन्ध ही आवरण है उसमें प्राप्त प्रकाश शक्ति के ही अभाव से आवरण वृत्ति का अभाव है यह भाव है। दूसरी बात जड़ के प्रति आवरकत्व स्वीकार नहीं है।। ६४।।

जडविशिष्टात्मानं प्रति तत्स्वीकारे चाविशेषेणानावरणा-नावरकशक्त्यभिभवस्य विशेष्यावरकशक्त्यभिभवं विनाऽयोगेनशुक्ति-वृत्त्यैव तदा शुद्धात्मप्रकाशापातात्। प्रत्युत गोमयत्वाद्यवस्था एव

तृतीयं निराकरोति—**जडेति।** तत्स्वीकारे=अविद्याया आवरकत्वस्वीकारे। **विशेषणेति।** यथा विशिष्टविषयकयोर्विधिनिषेधयोर्विशेष्ये बाधे विशेषणविषयकत्वं तथा विशेषणबाधे विशेष्यविषयकत्वावश्यम्भावात्, जडविशिष्टात्मानं प्रत्यावरकत्व स्वीकारे विशेषणीभूतजडानावरिका अथ च विशिष्टावरिका या शक्तिस्सा विशेष्यावरकैवजाता, शुक्तिज्ञानेन च तदभिभवे विशेष्यावरकत्वशक्तिरेवाभिभूतेति शुक्तिवृत्त्या शुद्धात्मप्रकाशापातेन सद्यो मोक्षः स्यादित्यर्थः। उपादेयेन उपादानशक्तेरभिभवो वृश्चिकादावदृष्ट इत्युक्तं तत्प्रसङ्गात् खण्डयति—**प्रत्युतइति** अवस्थान्तरप्राप्ता इत्यर्थः। पार्थिवेति। स्यादयं दृष्टान्तःयदि गोमयत्वाद्यवस्थापन्नगोमयादीनां तदुपादानत्वं स्यात् न चैवं किन्त्वापरमाण्वन्तं प्रच्युतगोमयावस्थानां पार्थिवावयवानां परमाणूनामेव। तेषाञ्च वृश्चिकोपादानानां पार्थिवावयवानां तदुपादेयेन वृश्चिकादिना न नाश इति दृष्टान्तोऽसंप्रतिपन्न इति भावः।

तृतीय पक्ष का निराकरण करते हैं—'जड विशिष्टात्मानं' अर्थात् जड़ विशिष्ट आत्मा के प्रति अविद्या में आवरकत्व स्वीकार करने पर सामान्यतया अनावरण, अनावरक शक्ति के अभिभव का विशेष्य आवरक शक्ति में अभिभव के बिना शुक्त की वृत्ति से ही तब शुद्ध आत्मा के प्रकाश की आपत्ति होगी। अर्थात् जैसे विशिष्ट विषयक विधि निषेध में विशेष्य के बाध होने पर विशेषण विषयकत्व होता है उसी प्रकार विशेषण के बाध में विशेष्य विशेषण विषयकत्व अवश्य होगा, जड़विशिष्ट आत्मा के प्रति आवरकत्व स्वीकार करने पर विशेषणीभूत जड़ावरिका तथा विशिष्ट आवरिका जो शक्ति है, वह विशेष्य की ही आवरिक हो जाती है, शुक्ति ज्ञान से उसका अभिभव होने पर विशेष्य की आवरकत्व शक्ति ही अभिभूत होती है—इस तरह शुक्ति की वृत्ति से शुद्ध आत्मा के प्रकाश होने से सद्य मोक्ष की आपत्ति है।

पार्थिवावयवा वृश्चिकाद्युपादानानीति न वृश्चिकादिनोपादानस्वभावाभिभवस्तस्मात्कारणगोमयत्वावस्थाया एवाभिभवान्नोक्तव्यभि-

---

पूर्वमेकमेवाज्ञानमितिमते शुक्तिज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तौ सद्य एव मोक्षः स्यादित्यापादितेऽनन्तरमज्ञानैकदेशनाशेऽपसरणे च परेण कल्पिते तद्दूषितं पुनस्तदीयैः प्रकारान्तरेण कल्पितमस्ति तदाशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। यथा ग्रीष्मवर्षादिषु नदीनामवयवोपचयाः कार्य्यविशेषकरा दृष्टास्तथेत्यर्थः। **साध्यासमिति**। रजततद्वृत्तिभ्यां सहेत्यर्थः। एवञ्च मूलाज्ञानस्यानिवृत्तत्वान्न शुक्तिज्ञानेन सद्यो मोक्षः स्यादितिभावः। उक्तार्थं दूषयितुं विकल्पयति—**तथाहीति**। आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति**। **अनेकेति**। अवस्थाविशेषाणामज्ञानविशेषत्वेऽनेकज्ञानवादः प्रसज्येतेत्यर्थः। द्वितीयपक्षमपाकरोति—**न द्वितीय इति**। अज्ञानभिन्नत्वे च साक्षाज्ज्ञानेन निवृत्तिः भ्रमाद्युपादानत्वञ्च न स्यादित्याह—**ज्ञानेनेति**। **साक्षादिति**। यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्तकमित्यङ्गीकारादित्यर्थः। **तेषामिवेति**। यथाऽज्ञानावस्थाविशेषाः स्वोपादानभूतमूलाज्ञानानिवृत्तावपि निवर्तन्त

उपादेय से उपादान शक्ति का अभिभव वृश्चिक आदि में नहीं देखा जाता—यह पहले कहा था—उसे प्रसङ्गवश खण्डन करते हैं—'प्रत्युत गोमयत्वाद्यवस्था एव' अर्थात् अवान्तर स्वरूप को प्राप्त पार्थिवावयव गोमयत्वादि अवस्था ही वृश्चिक आदि में उपादान है, इसलिये वृश्चिक आदि के द्वारा उपादान के स्वभाव का अभिभव नहीं होगा—इसलिये कारण गोमयत्वादि अवस्था का ही अभिभव होने से उक्त व्यभिचार का यहाँ अवकाश नहीं है। भाव है कि यह दृष्टान्त तब संभव था यदि गोमयत्वादि अवस्थापन्न गोमय आदि उनका उपादानत्व होता किन्तु परमाण्वन्त पर्यन्त प्रच्युत गोमयावस्था रूप पार्थिवावयव परमाणुओं का ही उपादानत्व है। उन वृश्चिक के उपादानोपार्थिवावयवों का उनमें उपादेय वृश्चिक आदि से नाश नहीं होगा—इस प्रकार दृष्टान्त उपयुक्त नहीं है, यह भाव है। पहले एक ही अज्ञान है—इस मत में शुक्ति ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होने पर सद्यः मोक्ष होगा—ऐसा दोषारोपण किया—पश्चात् अज्ञान के एक देश के नाश या अपसरण की बात दूसरों द्वारा कहने पर उसे दूषित किया—पुनः उनके लोगों द्वारा प्रकारान्तर से आशङ्का करके खण्डन करते हैं—कहें कि मूला अविद्या का ही अवस्था विशेष रजत आदि में उपादान है—जैसी ग्रीष्म, वर्षा आदि में नदियों में उपचय कार्य विशेषकारी होते

चारावकाशः मूलाज्ञानस्यैवावस्थाविशेषा रजताद्युपादानानि शुक्तिज्ञानेन साध्यासं निवर्त्तन्त इति वाच्यम्। विकल्पासहत्वात्। तथाहि तेऽवस्थाविशेषाः शुक्तिविशेषाश्चाज्ञानाभिन्नास्तद्भिन्ना वा नाद्यः।

इत्युच्यते एवमेवाज्ञानावस्थाविशेषोपादानकं रूप्याद्यपि स्वोपादानभूतावस्थाविशेषाणां नाशेऽपि नश्यतु, तथाच शुक्तिज्ञानेन साध्यासं निवर्तत इत्युक्तमसदिति भावः। **शुक्त्यज्ञानमिति।** अज्ञानभिन्नानामवस्थाविशेषाणां रजतोपादानत्वेन तन्निवर्तकशुक्तिज्ञानेन रजतोपादान-भूतावस्थाविशेषा निवृत्ता इत्यनुभवप्रसङ्गेन शुक्तिज्ञानेन शुक्त्यज्ञानं नष्टमित्यनुभव-विरोधादित्यर्थः। तस्मादेकाज्ञानपक्षे मूलाज्ञानस्यैव रजतोपादानत्वे शुक्तिवृत्त्या मूलाज्ञानानाशेऽपि रजतस्य प्रविलयाद्रजतादर्शनं शुक्त्यावरकाज्ञानानाशेऽपि तस्यैकदेशनाशाद्वाऽपसरणाद्वा वेष्टनाद्वा

हैं—उसी तरह साध्यास रजत एवं उसकी वृत्ति के साथ निवृत्त होते हैं—इस तरह मूला अविद्या के निवृत्त न होने से (नाश न होने से) शुक्ति ज्ञान से सद्यः मोक्ष की आपत्ति नहीं होगी (यह भाव है) तो ऐसा भी नहीं कह सकते, यहाँ भी विकल्प करने पर उत्तर नहीं दे सकते—हम पूछते हैं कि वे अवस्था विशेष एवं शुक्ति विशेष अज्ञान से अभिन्न है या भिन्न? प्रथम पक्ष नहीं कह सकते, इसमें अनेक अज्ञानवाद की आपत्ति होगी—अवस्था विशेषों को अज्ञान का विशेष मानने पर अनेकाज्ञानवाद का प्रसंग होगा। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—कारण ज्ञान से साक्षात् निवृत्ति की अनुपपत्ति होगी—अर्थात् अज्ञान से भिन्न मानने पर साक्षात् ज्ञान से निवृत्ति तथा भ्रम आदि का उपादानत्व नहीं होगा, क्योंकि ज्ञान अज्ञान का निवर्तक है ऐसा स्वीकार किया है। 'तेषामिव' जैसे अज्ञान के अवस्था विशेष अपने उपादानभूत मूल अज्ञान की अनिवृत्ति में भी निवृत्त होते हैं—ऐसा कहते हैं, इसी प्रकार अज्ञान के अवस्था विशेषापादानक रजतादि भी अपने उपादानभूत अवस्था विशेषों के नाश होने पर भी नष्ट हो—तब तो शुक्ति ज्ञान से साध्यास की निवृत्ति होती है—यह कथन असत् है—यह भाव है। दूसरी बात शुक्ति का अज्ञान नष्ट हो गया—यह अनुभव विरुद्ध भी है। इसलिए एक अज्ञानवाद पक्ष में मूला अविद्या के ही रजतोपादान मानने पर शुक्ति की वृत्ति से मूलाज्ञान के नाश होने पर भी रजत के विलय होने से रजत का अदर्शन शुक्ति में आवरक अज्ञान के नाश होने पर भी उसमें एक देश के नाश से अथवा अपसरण से, किंवा वेष्टन द्वारा अथवा मणि आदि के द्वारा वह्नि की तरह

अनेकाज्ञानवादापत्तेः । न द्वितीयः । ज्ञानेन साक्षान्निवृत्त्यनुपपत्तेः । तेषामिव रूप्यस्यैवोपादाननिवृत्तिं विना निवृत्तिप्रसङ्गाच्च, शुक्त्यज्ञानं नष्टमित्यनुभवविरोधाच्च ज्ञाननिवर्त्यत्वं मिथ्यात्वमित्यत्र दृष्टान्तासिद्धेश्च। अतोरूप्यादिनिवृत्त्यर्थं शुक्तिज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तिरावश्यकीत्येकाज्ञानमते शुक्तिज्ञानादेव मोक्षोऽप्यवश्यं भावीति सङ्क्षेपः ॥ ६५ ॥

मण्यादिना वह्नेरिव शक्त्यभिभवाद्वा बाधकाले शुक्तेः प्रकाश इत्येतानि साधनानि न सम्भवन्ति, अवस्थाविशेषाणामेवोपादानत्वमित्यपि न सम्भवतीत्येकाज्ञानपक्षो न सम्भवदुक्तिक इत्यभिसन्धिः। दृष्टान्तासिद्धिमप्युद्भावयति **ज्ञानेति**। निगमयति। **अत इति** ॥ ६५ ॥

शक्ति के अभिभव द्वारा बाधकाल में शुक्ति इत्यादि साधन सम्भव नहीं है, अवस्था विशेषों में ही उपादानत्व है—यह भी सम्भव नहीं है—इस तरह एक अज्ञानवाद सम्भव नहीं यह भाव है। ज्ञान निवर्त्यत्व मिथ्यात्व है—इस पर दृष्टान्त की असिद्धि है। इसलिये रजत आदि की निवृत्ति के लिये शुक्ति ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति आवश्यक है, इस प्रकार ऐसा ज्ञानवाद में शुक्ति ज्ञान से ही मोक्ष भी अवश्यंभावी है—इस प्रकार है ।।६५ ।।

न द्वितीयोऽनेकज्ञानवादोऽपि रमणीयः। विकल्पासहत्वात्। एकया वृत्त्या किं सर्वतदज्ञानानां निवृत्तिः। उतैकतदज्ञानस्य आद्ये शुक्तेः कदाप्यप्रवेशो न स्यात्। अन्त्ये तदापि प्रकाशो न स्यात्। एकस्यावरणस्य निवृत्तावपि अन्यस्य सत्वात्। अयञ्च दोष अवस्थाविशेषेऽपि योजनीयः

इष्टसिद्धिग्रंथरीत्याऽनेकाज्ञानपक्षे दोषं निर्वक्ति—**न द्वितीय इति**। एकया=शुक्तिवृत्त्या। **सर्वेति**। एतच्छुक्तिविषयकाणामनेकज्ञानानामित्यर्थः **एकेति**। एतच्छुक्तिविषयकस्यैकाज्ञानस्येत्यर्थः। आद्यपक्षं निरस्यति—**आद्यइति**। द्वितीयमपि व्युत्स्यति **अन्त्यइति**। कुत इत्यत आह—**एकस्येति**। अनेकयवनिकावृतवस्तुन्येकयवनिकापगमेऽपि यवनिकान्तरसद्भावाज्ज्ञानाभावो यथा तथेत्यर्थः। **अयञ्चेति**। एकया शुक्तिवृत्त्या शुक्ति-प्रकाशेन रजतभ्रमजनकानामवस्थाविशेषाणां सर्वेषां निवृत्तिरुतैकस्यावस्थाविशेषस्य। नाद्यः। शुक्तेः कदाप्यप्रकाशो न स्यात्। अन्त्ये तदापि प्रकाशो न स्यात्। एकस्यावस्था-

इष्टसिद्धि ग्रन्थ के अनुसार अब अनेक अज्ञानवाद पक्ष में दोष बताते हैं—अनेक अज्ञानवाद वाला दूसरा पक्ष भी रमणीय नहीं है—यह विकल्प सत्य नहीं है—इस वाद में भी प्रश्नों का विकल्प करने पर कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता, अतः यह पक्ष भी सही नहीं है—अब विकल्प करते हैं—'एकया वृत्त्या' अर्थात् एक शुक्ति वृत्ति से एतत् शुक्ति विषयक अनेक अज्ञानों की निवृत्ति होगी अथवा एतत् शुक्ति विषयक एक अज्ञान की? प्रथम पक्ष में शुक्ति का कदापि का प्रवेश नहीं होगा। द्वितीय पक्ष में कभी प्रकाश नहीं होगा कारण एक आवरण की निवृत्ति होने पर भी अन्य आवरण विद्यमान है—जैसे अनेक यवनिका (पर्दा) से आवृत्त वस्तु में एक पर्दा के हटने पर भी अन्य यवनिका के सद्भाव से ज्ञान का अभाव होता है। यह दोष अवस्था विशेष में लग सकता है। समान स्थिति होने के कारण—अर्थात् एक शुक्ति वृत्ति से उत्पन्न शुक्ति प्रकाश से रजत भ्रम जनक समस्त अवस्था विशेषों की निवृत्ति होती है या एक ही अवस्था विशेष की? पहला पक्ष नहीं हो सकता क्योंकि शुक्ति का कभी प्रकाश नहीं होगा। द्वितीय पक्ष में तब भी प्रकाश नहीं होगा—कारण एक अवस्था विशेष की निवृत्ति होने पर भी अन्य विद्यमान है—इस प्रकार समान दोष है। दूसरी बात सादि शुक्ति आदि एवं तद्वच्छिन्न चैतन्य में कैसे अनादि अज्ञान

समानत्वात्। किञ्च कथं सादिशुक्त्यादेस्तदवच्छिन्नचैतन्यस्य वाऽनाद्यज्ञानविषयत्वं निर्विषयस्यावरणस्यानवस्थानात्। न च पूर्वमनवच्छिन्नावरणमिदानीमवच्छिन्नावरणं जातमिति वाच्यम्। शुक्तिज्ञानेन मोक्षापत्तेः। एतेन व्यक्तितः पूर्वं जातिरिव विषयात्प्रागज्ञानमस्तीति निरस्तम् प्रतिविषयमनेकाज्ञानाङ्गीकारायोगात्। ननु सत्स्वप्यनेकाज्ञानेषु

विशेषस्य निवृत्तावन्यस्य सत्वादित्येवं रूपेण योजनीय इत्यर्थः। **सादीति**। शुक्त्यादेः सादित्वेन तदवच्छिन्नचैतन्यस्यापि सादितया शुक्त्याद्युत्पत्तेः पूर्वमज्ञानस्य निर्विषयत्वं स्यादित्यर्थः। अस्तु निर्विषयत्वं तस्येत्यत आह—**निर्विषयस्येति**। अस्यास्मिन्नज्ञानमित्याश्रयविषयोपेतस्यैवावरणस्य प्रतीतेरित्यर्थः। एकमेवानाद्यज्ञानमनादिचैतन्यविषयकमेवावरणं तदानीं चैतन्येतरशुक्त्यादिपदार्थविशेषानवच्छिन्नं सदेवावरणमभूत् पदार्थोत्पत्त्यनन्तरन्त्वागन्तुकतत्तत्पदार्थावच्छेदेन शुक्त्याद्यवच्छिन्नचैतन्यावरणमित्युच्यतेऽतोनोक्तदोष इत्याशङ्क्य निराकरोति—**नचेति** कुतोनचेत्यतोऽनेकाज्ञानमतहान्यापत्तेरिति दूषणे सत्येव दूषणान्तरमाह—**शुक्तीति**। अनवच्छिन्नशुद्धचैतन्यावरणाज्ञानस्यैव शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यावरणत्वाच्छुक्तिसाक्षात्कारेण शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यावरणाज्ञाननिवृत्तौ शुद्धचैतन्यावरणाज्ञाननिवृत्तेरपि जातत्वापातेन सद्यो मोक्षापात इत्यर्थः जातिरिति। निराश्रयैवावतिष्ठत इत्यर्थः। एतेनेत्युक्तं विवृणोति—

विषयत्व होगा, अर्थात् शुक्ति आदि के सादि होने से तद्वच्छिन्न चैतन्य में भी सादि होने के कारण शुक्ति आदि के उत्पत्ति आदि के पूर्व अज्ञान में निर्विषयत्व होगा—कहें कि निर्विषयत्व हो जाए तो क्या हानि? इस पर कहते हैं—निर्विषय आवरण का अवस्थान नहीं होता। कहें कि पूर्व में अनवच्छिन्न आवरण था सम्प्रति सावच्छिन्न आवरण हो गया तो ऐसा नहीं हो सकता—शुक्ति ज्ञान से मोक्ष की आपत्ति होना, अर्थात् अनवच्छिन्न शुद्ध चैतन्यावरण अज्ञान के ही शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य के आवरण होने से शुक्ति के साक्षात्कार से शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य में आवरण अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर शुद्ध चैतन्य के आवरण अज्ञान की निवृत्ति भी हो जाने के कारण सदा मोक्ष प्राप्त होगा, यह भाव है। इसी से व्यक्ति से जाति की तरह (जैसे जाति निरारूप रहती है) विषय से पूर्व अज्ञान रहता है—यह मत भी निरस्त होता है, अर्थात् जैसे अनेक विषयों में एक जाति होती है, उसी तरह अज्ञान भी एक ही

बहुजनसङ्कीर्णदेशे वैद्युतनिपातवत्त्रिदोषहरौषधवच्चा ज्ञानमितराज्ञानापसरणेनैवमज्ञानं नाशयति यथा तवैकं ज्ञानमेव प्रागभावं नाशयति प्रागभावान्तरनिबन्धनमज्ञानत्वादिव्यवहारं प्रतिबध्नाति। तथा ममाप्येकं ज्ञानमेकमेवाज्ञानं नाशयत्यज्ञानान्तरव्यवहारं प्रतिबध्नातीति चेन्न।

प्रतिविषयमिति। यथानेकविषयेष्वेकैव जातिस्तथाऽज्ञानमप्येकमेव स्यान्नतु प्रतिविषयं भिन्नं, तत्र च शुक्तिसाक्षात्कारान्मोक्षापत्तिरित्युक्त एव दोष इत्यर्थः। शङ्कते—**नन्विति।** यथाच सत्स्वप्यनन्तेषु एतद्घटज्ञानप्रागभावेष्वेकं ज्ञानमेकमेव प्रागभावं नाशयति इतरप्रागभावानपसार्य प्रागभावान्तरनिबन्धनमज्ञातत्वादिव्यवहारं प्रतिबध्नातीतिवक्तव्यम्, तथात्रापि सत्स्वनन्तेष्वज्ञानेषु ज्ञानमेकमेवाज्ञानं नाशयति इतराज्ञानान्यपसारयतीत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः। **बहुजनेति।** यथा बहुजनसंकीर्णदेशे तत्समुदाय इति यावत् विद्युन्निपाते सत्येकः पुमान् म्रियते, इतरेऽपसर्पन्ति यथा वातपित्तश्लेष्मरूपत्रिदोषहरे कस्मिंश्चिदौषधे दत्ते सत्येकदोषो निवर्तते, इतरावपसर्पत इति वैद्यप्रसिद्धिस्तद्वदित्यर्थः। एकेन ज्ञानेनैक एव प्रागभावो नश्यतीति पक्षमाश्रित्य समाधत्ते—**नेति। आवरणानीति।** घटज्ञानकार्य्यस्य व्यवहारादेर्विषयीभूतोयोघटस्तस्यतज्ज्ञानप्रागभावानावरणानीत्यर्थः। **दण्डेति।** यथा दण्डप्रागभावो दण्डकार्यस्य घटादेर्नावरणं किन्तु घटकारणस्य दण्डस्याभावरूप एव तथा ज्ञानप्रागभावोऽपि ज्ञानकार्यव्यवहारकारणस्य ज्ञानस्याभावरूप एवेत्यर्थः।

होगा न कि प्रतिविषय में भिन्न, उसमें शुक्ति साक्षात्कार से मोक्ष की आपत्ति रूप दोष अयुक्त ही है। कहें कि जैसे अनन्त एतद् घट ज्ञान में प्रागभाव रहने पर भी एक ज्ञान एक ही प्रागभाव भी नाश करता है, अन्य प्रागभावों को हटाकर प्रागभावान्तर प्रयुक्त अज्ञातत्व आदि व्यवहार को रोकता है, यह कहते हैं उसी तरह यहाँ भी अनन्त अज्ञान रहने पर भी ज्ञान एक ही अज्ञान का नाश करता है—अन्य अज्ञान को हटा देता है—जैसे अनेक लोगों से भरे देश में, अर्थात् बहुत जनों के समुदाय में बिजली गिरने पर एक पुरुष गिर जाता है—शेष लोग भाग जाते हैं। जैसे वात-पित्त-कफ रूप त्रिदोष नाश के औषध देने पर एक दोष नष्ट हो जाता है—अन्य दोष भी दूर हट जाता है—कम हो जाता है यह बात वैद्य जगत् में प्रसिद्ध है। इसी तरह एक ज्ञान एक ही प्रागभाव को नाश करता है, उसी तरह ज्ञान इतर अज्ञान के अपसारण द्वारा ही अज्ञान का नाश करता है, इसी प्रकार एक ज्ञान ही प्रागभाव को नाश करता

अज्ञानवत्प्रागभावस्यावरकत्वाभावेनाज्ञानस्य यवनिकावदावरकत्वेन दृष्टान्तवैषम्यात्। नहि त्वन्मते ज्ञानप्रागभावा आवरणानि किन्तुदण्डप्रागभाववद्धेत्वभावरूपाः। नापि ज्ञानं तन्निवर्तकत्वेन हेतुः किन्तु दण्डादिवत्स्वरूपेणैव तथा चैकदण्ड इवैकं ज्ञानं स्वसजातीयान्तरप्रागभावे सत्यपि स्वकार्य्यं जनयदेव, कार्योत्पत्तौ हि कारणसत्वमेव तन्त्रं नतु कारणजातीयसर्वप्रागभाव-निवृत्तिरसम्भवात्। त्वन्मते तु

नह्यभावस्य कुड्यादिवदावरणत्वमितिभावः। **नापीति**। ज्ञानस्य प्रागभावनिवृत्तिरूपत्वेन तन्निवर्तकत्वेन न हेतुत्वमित्यर्थः। ज्ञानं स्वकार्य्यव्यवहारं प्रति यदि ज्ञानप्रागभावनिवर्तकत्वेन हेतुर्भवेत्तदैव ज्ञानान्तरप्रागभावसत्वेन तन्निवृत्तिरूपकारणाभावादेकस्मिन्नज्ञाने सत्यपि घटव्यवहारो न स्यान्नतु तथास्तीत्याशयः। **किन्त्विति**। यथा दण्डो दण्डत्वेनैव घटं प्रति कारणं नतु दण्डप्रागभावनिवर्त्तकत्वेन तथा ज्ञानमपि स्वकार्यव्यवहारं प्रात स्वरूपेणैव हेतुः। ज्ञानत्वेनैव हेतुरिति यावदिति मयाङ्गीकारादित्यर्थः। **तथा चेति**। प्रागभावस्याज्ञानकार्य-व्यवहारविषयानावरकत्वे चेत्यर्थः। **एकोदण्ड इति**। यथा एकोदण्डः सजातीयदण्डान्तर-प्रागभावे सत्यपि। कार्य घटं जनयत्येवमित्यर्थः। **सजातीयान्तरेति**।

है, प्रागभावान्तर प्रयुक्त अज्ञानत्वादि व्यवहार को रोकता है तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण अज्ञान के प्रागभाव में आवरकत्व के अभाव होने से अज्ञान को यवनिका की तरह आवरकत्वेन दृष्टान्त प्रदान उचित नहीं—यह विषय दृष्टान्त है—आप के मत में ज्ञान का प्रागभाव आवरण है, दण्ड में प्रागभाव की तरह हेतुका अभाव रूप है और ना ही ज्ञान उसके निवर्तक रूप में हेतु है, बल्कि दण्ड आदि की तरह स्वरूपतः ही है—इस प्रकार एक दण्ड की तरह एक ज्ञान सजातीय अन्य प्रागभाव में रहने पर भी अपना कार्य करेगा ही। क्योंकि कार्य की उत्पत्ति में कारण की विद्यमानता ही हेतु है न कि कारण जातीय सबके प्रागभाव की निवृत्तिवदसम्भव नहीं है। आपके मत में वृत्ति के आवरण निवर्तक होने से एक अज्ञान के निवृत्त होने पर भी यवनिका की तरह अन्य अज्ञान या कालान्तर की तरह विद्यमान होने से कालान्तर की तरह वृत्ति के समय भी प्रकाश का अभाव होगा। कहें कि तेज का अभाव ही तम (अन्धकार) है—इस मत में तम कुच आदि की तरह आवरण ही है तो ऐसा नहीं कह सकते—यह हेत्वभाव रूप ही है और ना ही ज्ञान प्रागभाव निवृत्ति

वृत्तेरावरणनिवर्तकत्वादेकस्मिन्नज्ञाने निवृत्तेऽप्यज्ञानान्तरस्य यवनिकान्तरवत् कालान्तरवत्सत्वात् कालान्तर इव वृत्तिकालेऽप्यप्रकाशः स्यात्॥ ६६ ॥

एकज्ञानसजातीयज्ञानान्तरेत्यर्थः। ननु मा भूज्ज्ञानप्रागभावआवरणं माभूज्ज्ञानं प्रागभावनिवर्तकत्वेन हेतुः किन्तु ज्ञानत्वेनैवास्तु, तथापि ज्ञानान्तरप्रागभावसत्वेन तद्भावरूपज्ञानान्तराख्यकारणभावादेकस्मिन् ज्ञाने विद्यमानेऽपि तवाप्येतज्ज्ञानकार्य्यव्यवहारो न स्यादित्यतआह—**कार्येति।** कारणतावच्छेदकावच्छिन्नयत्किञ्चित्कारणसत्त्वे कार्योत्पत्तेरावश्यकत्वस्य दृष्टत्वात्। यथाहि दण्डत्वावच्छिन्नस्यैकस्य दण्डस्य सत्त्वे कार्य्यघटो भवत्येव नतु दण्डत्वावच्छिन्नसर्वदण्डसद्भावोऽपेक्षितः। एवं ज्ञानत्वावच्छिन्नस्यैकस्य घटज्ञानस्य सत्त्वे व्यवहारो भवेदेव नतु सर्वज्ञानसत्त्वमपेक्षितमिति भावः। **सर्वप्रागभावनिवृत्तिरिति।** सर्वज्ञानप्रागभावनिवृत्तिस्सर्वज्ञानसत्वमित्यर्थः। प्रतियोग्यापत्तेरेव प्रागभावनिवृत्तित्वादिति भावः। कुतोनेत्यतआह—**असम्भवादिति।** अतीतानागतवर्त्तमानानामेकदा सत्त्वस्यासम्भवादित्यर्थः। एवञ्च मम मते ज्ञानप्रागभावस्यानावरणत्वाज्ज्ञानं स्वप्रागभावनिवृत्तौ लब्धस्वरूपं सज्ज्ञानान्तरप्रागभावस्यानावरकस्य सत्वेऽपि स्वविषये स्वकार्यं व्यवहारादिकं करोत्येव, तव मते त्वज्ञानस्यावरकत्वादेकस्मिन् ज्ञाने सत्यपि तद्विषयावरणस्याज्ञानान्तरस्य सत्त्वाज्ज्ञानकार्यं व्यवहारादिकं ज्ञानकालेपि न स्यादित्याह—**त्वन्मतेत्विति। आवरणेति॥ ६६ ॥**

न कि दण्ड प्रागभाव निवर्तक रूप में उसी प्रकार ज्ञान भी अपने कार्यव्यवहार के प्रति स्वरूप से ही यानी ज्ञानत्वेन रूप से ही हेतु मैंने स्वीकार किया है। इस तरह प्रागभाव में अज्ञान कार्यव्यवहार विषयक में अनावरकत्व होने पर जैसे एक दण्ड सजातीय दण्ड प्रागभाव होने पर भी कार्य घट को उत्पन्न करता ही है, क्योंकि कार्य की उत्पत्ति में कारण की सत्ता ही कारण होता है, न कि कारण जातीय सभी प्रागभावों का निवृत्ति—कारण ऐसा सम्भव नहीं है—अतीत अनागत तथा वर्तमान सबका एक काल में सद्भाव असंभव है। आपके मत में वृत्ति के आवरण निवर्तक होने से एक अज्ञान के निवृत्त होने पर भी अन्य अज्ञान का अन्य यवनिका किंवा कालान्तर की तरह सद्भाव है। इसलिये कालान्तर की तरह वृत्तिकाल में भी प्रकाश का अभाव होगा ।।६६।।

न चालोकाभावस्तम इति मते तमः कुड्यादिवदावरणमेवेति वाच्यम्। तस्यापि हेत्वभावरूपत्वात्। नाप्यालोकस्तन्निवर्तकत्वेन ज्ञानहेतुः किन्तु स्वरूपेणैव नाप्यैकैकालोकाभावस्तमः किन्त्वालोकत्वावच्छिन्नाभावः। न चैकस्मिन्नालोके सति सोऽस्ति भाविज्ञाननिवर्त्यमज्ञानन्त्वेतज्ज्ञान-कालेऽप्यस्तीति वैषम्यम्। न चेहाप्यज्ञानसमुदाय एवावरणम्, एकैनैकस्मिन्नज्ञाने निवृत्ते स नास्तीति प्रकाशोपपत्तिरिति वाच्यम्। वृत्तिनाशेऽपि समुदायाभावस्य सत्वेन सदा प्रकाशापत्तेः।

अनावृतविषयसम्पादकत्वेनेत्यर्थः। ननु तथापि तमस्तावद्घटादिविषयावरणं तच्चालोकाभावस्सचालोकेन निवर्तते। एवञ्च तत्र पृच्छामः, एकेनालोकेन समस्ता ये आलोकास्तदभावरूपाणि यानि सर्वाणि तमांसि तानि सर्वाण्यपि निवर्तन्ते। एकमेव वा। नाद्यस्तर्हि कदाप्यप्रकाशो न स्यात् न द्वितीयः। एकेनालोकेन तदभावरूपस्यैकस्य तमसो निवृत्तत्वेपीतरालोकाभावरूपतमसां विषयावरणभूतानां यवनिकान्तरसत्वेन तदापि प्रकाशो न स्यादित्यापादिते तत्र त्वया वाच्यम् सत्स्वप्यनेकेषु तमःस्वेकेनाऽऽलोकेनैकस्य तमसोनिवृत्तावपि, इतराण्यपसरन्ति बहुजनसङ्कीर्णदेश वैद्युतनिपातवदिति तन्ममापि तुल्य इत्याशयं हृदि निधायाह—**आलोकाभाव इति।** भावरूपत्वे कुड्यादिवदावरणत्व-सम्भवादालोकाभावस्तम् इति मत इत्युक्तम्। **हेत्वेति।** आलोकरूपस्य ज्ञानहेतोरभावरूपत्वादित्यर्थः। नह्यभावस्यावरणत्वं भवितुमर्हतीतिभावः। **नापीति।** आलोकः स्वकार्यज्ञानं प्रत्यालोकाभावनिवर्तकत्वेन हेतुस्स्यात्तदालोकान्तराभावरूपतमसः

कहें कि आलोक का अभाव ही तम है, इस मत में तम कुड्य आदि की तरह आवरण ही होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते—वह भी ह्रेत्वभाव रूप ही है। और नहीं आलोक की उसमें निवर्तक रूप में ज्ञान का हेतु है, किन्तु स्वरूप से ही है, नाही एक-एक आलोक का अभाव तम है किन्तु आलोकत्वावच्छिन्न समस्त आलोक का अभाव। कहें कि एक आलोक के रहने पर आलोकत्वावच्छिन्न तद्भाव नहीं है, कारण विशेष सत्ता सामान्याभाव का विरोधी होता है, परन्तु भावी ज्ञान से निवर्त्य अज्ञान तो एतद् ज्ञान काल में भी रहता है—यह वैषम्य है, कहें कि यह भी अज्ञान का समुदाय ही आवरण है, एक द्वारा एक अज्ञान के निवृत्त होने पर वह नहीं रहता—एक अज्ञान के नाश होने पर समुदाय का नाश होता है। इस

अमूर्तानामज्ञानानामावरणत्वायोगाच्च। किञ्च नापि वृत्तेर्विषयाकारत्वं विकल्पासहत्वात्तथाहि विषयाकारत्वं नाम किंतत्तद्विषयत्वं तस्मिंश्चैतन्योपरागयोग्यताऽपादकत्वम्वा तदज्ञानाभिभावकत्वं वा घटादिवत्पृथुबुध्नोदराकारत्वं वा? नाद्यः। त्वयैव तन्निरासात्। न

सत्वेनालोकान्तराभावनिवृत्तिरूपकारणाभावादेकस्मिन्नालोके सत्यपि ज्ञानं न भवेन्नतु तदस्तीत्यर्थः। **स्वरूपेणैवेति।** दण्डादिवदालोकत्वेनेत्यर्थः। तथाचालोकत्वावच्छिन्नाशेषालोकसत्ताया अनपेक्षिततत्वेन तदवच्छिन्नैकालोकसत्वे ज्ञानं स्यादेवेति भावः। ननु यत्किञ्चिज्ज्ञानसत्त्वेऽपि अज्ञानान्तरनिबंधनाप्रकाशवदेकालोकासत्त्वेप्यालोकान्तराभावरूपतमोऽन्तरनिबन्धनोऽप्रकाशोऽपि किं न स्यादित्यत आह—**नापीति।** येनैकालोकसत्त्वेप्यालोकाभावान्तराभावरूपतमस्सत्वेन तदाज्ञानाभावशङ्का स्यान्नचैवं किन्त्वालोकत्वावच्छिन्नालोकाभाव इत्यर्थः। **सोऽस्तीति।** आलोकत्वावच्छिन्नतदभावोनास्ति विशेषसत्त्वस्य सामान्याभावविरोधित्वादित्यर्थः। यद्यप्यालोकान्तराभावोऽस्ति तथापि स न तम एकैकालोकाभावस्यातमस्त्वादिति ध्येयम् **भावीति।** तथा च यवनिकान्तरवद–

प्रकाश की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—वृत्ति के नाश होने पर भी समुदाय के अभाव के सद्भाव रहने में सर्वदा प्रकाश की आपत्ति होगी। बहुजन संकीर्ण देश वाले उदाहरण का खण्डन करते हैं—अमूर्त आवरण अज्ञान का आवरण नहीं हो सकता। अब सावयव अन्तःकरण तैजस विषय को प्राप्त कर तदाकार होता है। इस प्रकार कथित प्रक्रिया का खण्डन करते हुए कहते हैं वृत्ति की विषयाकारता भी सम्भव नहीं है—यहाँ भी विकल्प होने पर उत्तर नहीं है—हम पूछते हैं—विषयाकारता क्या पदार्थ है—क्या तद्विषयत्व है? अथवा विषय में चैतन्य की उपराग योग्यता का आपादानत्व? वा उसके अज्ञान का अभिभावकत्व? किंवा घट आदि की तरह पृथुबुध्नोदराकारता? पहले पक्ष का तो आपने स्वयं निराकरण किया है। द्वितीय एवं तृतीय पक्ष इसलिये नहीं हो सकता—कारण वे दोनों तो तदाकार प्रयोज्य ही हैं—इसलिये वे संभव नहीं हैं—चौथा पक्ष माने तो साकारवाद की आपत्ति होती है—फिर तो बौद्धमत की साम्यतापत्ति? अर्थ निष्ठाकारत्व ही वृत्ति की तदाकारता है, ऐसे कहें तो आकारहीन गुण, कर्म, जात्यभाव विषयिणी वृत्तिका का तो एक काल में परस्पर विरुद्ध नानाकारता संभव नहीं है। चरण साक्षात्कार के निराकार ब्रह्मकारता का योग भी नहीं है—इसलिये तीनों पक्ष ही अयुक्त है—

द्वितीयस्तृतीयौ तयोस्तदाकारत्वप्रयोज्यत्वेन तत्त्वायोगात्। न चतुर्थः। साकारवादापातात्। संस्थाहीनगुणकर्मजात्यभावादिवृत्तेश्च युगपदित-

---

ज्ञानान्तरसद्भावात्तदानीमप्यप्रकाशः स्यादेवेति भावः। **इहापीति**। यद्यालोकत्वावच्छिन्नालोकाभावरूपतमस एवावरकत्वादेकालोकाभावरूपावरकसत्तायामालोकान्तरसत्त्वेप्युक्ततमोरूपावरणाभावसत्त्वाद्यथा प्रकाश एवमेवाज्ञानसमुदाय एवावरणं तत्रैकेन ज्ञानेनैकाज्ञाननिवृत्तौ सत्यामज्ञानान्तरसद्भावेऽप्युक्तसमुदायरूपावरणभङ्गसद्भावाद्युक्तप्रकाश इतिभावः। **स नास्तीति**। एकाज्ञाननाशे समुदायनाशादिति भावः। **वृत्तिनाशेऽपीति**। वृत्तिकाल इव वृत्तिज्ञाननाशोत्तरकालेऽपि सर्वदा प्रकाश एव स्यात् वृत्तिरूपज्ञानकाले योऽज्ञानसमुदायनाशः स्थितस्तस्य वृत्तिनाशकालेऽपि सत्त्वादित्यर्थः। बहुजनसङ्कीर्णदेश इत्युक्तमुदाहरणं निराकरोति—**अमूर्तानामिति**। निविडावयवानामित्यर्थः। दृष्टान्त एकस्य नाशेप्यन्येषां पुरुषाणामपसरणं मूर्तत्वाद्युक्तं दोषाणामपि मूर्तत्वादेकनाशेऽन्यापसरणं युक्तं नत्वेवमज्ञानेषु सम्भवति तेषाममूर्त्तत्वेनापसरणायोगादिति भावः। सावयवमन्तःकरणं तैजसं विषयं प्राप्य तदाकारं भवतीत्युक्तप्रक्रियां दूषयितुमाह—**किञ्चेति**। तस्मिन्विषये पूर्वं चैतन्यं विषयासम्बद्धमेवावतिष्ठते वृत्त्या तूपरज्यत इति वृत्तेश्चिदुपरागार्थत्वस्वीकारादिति प्रागभिहितं तत्र विकल्पयति—**विषयाकारत्वमिति**। **तदज्ञानेति**। विषयावरकाज्ञान इत्यर्थः। आद्यपक्षमपाकरोति=**नाद्यइति**। **तदाकारत्वेति**। अयमर्थः। घटवृत्तेर्घट एव चैतन्योपरागार्थत्वं कुतःपटेऽपि तदर्पकत्वं न स्यात्तथा घटज्ञानाभिभावकत्वमेवेति कुतः पटज्ञानाभिभावकत्वमपि किं न स्यादिति शङ्कायां वृत्तेर्घटाकारत्वेन तस्या घटाकाराया वृत्तेर्घट एव चैतन्योपरागार्थकत्वं तदज्ञानाभिभावकत्वञ्चेत्येवं तयोश्चैतन्योपरागार्थकत्वतदज्ञानाभिभावकत्वयोस्तदाकारत्वप्रयोज्यत्वेन तयोस्तत्त्वस्य तदाकारत्वरूपस्यायोगादित्यर्थः। तूर्यविकल्पं निरस्यति—**न चतुर्थइति**। **साकारेति**। ज्ञानविषयाकारान्तराङ्गी-

---

अविद्योपाधिक सर्वगत चैतन्य अविद्या से अनावृत विषय प्रकाश वृत्ति तो जीव चैतन्य के विषयोपरागार्थ है—यह एक पक्ष है। उक्त रूप जीव चैतन्य अविद्यावृत विषय प्रकाश, वृत्ति तो अविद्या के अभिभव के लिये है, यह द्वितीय पक्ष है, अन्तःकरणोपाधिक असर्वगत जीव चैतन्य ही विषय प्रकाशक है—वृत्ति तो विषय

रेतरविरुद्धनानाकारत्वायोगाच्च। चरमसाक्षात्कारस्य निराकार-ब्रह्माकारत्वायोगाच्च। तस्मात्पक्षत्रयमप्ययुक्तमिति सङ्क्षेपः ॥ ६७ ॥

इति पराभिमतप्रतिकर्मव्यवस्थागिरिनिपातः ॥ १६ ॥

कार इत्यर्थः। तथा च बौद्धसाम्यापत्तिरिति भावः। अर्थनिष्ठाकारत्वमेव वृत्तेस्तदाकारत्वञ्चेत्तदा दूषणान्तरमाह—**संस्थानेति**। आकारेत्यर्थः। आदिपदेन सादृश्यं गृह्यते। आकारहीना गुणकर्मजात्यादयस्तद्विषयिण्या वृत्तेरित्यर्थः। **विरुद्धेति**। घटपटादेः पृथुबुध्नोदराकारादिनानाकारतया तद्विषयिण्याः समूहालम्बनवृत्तेः साकारत्वनिराकारत्वोभयापात इत्यपि द्रष्टव्यम्। निराकारेति हेतुगर्भम्। तथाच चरमसाक्षात्कारस्य ब्रह्मनिष्ठाकारत्वेन यत्तदाकारत्वं तन्न स्यादित्यर्थः। **पक्षत्रयमिति**। अविद्योपाधिकं सर्वगतं चैतन्यम्, अविद्यानावृत्तं विषयप्रकाशकं वृत्तिस्तुजीवचैतन्यस्य विषयोपरागार्थेत्येकपक्षः उक्तरूपं जीवचैतन्यमविद्यावृतं विषयप्रकाशकं वृत्तिस्त्वविद्याभिभवार्थेतिद्वितीयः पक्षः अन्तःकरणोपाधिकमसर्वगतमेव जीवचैतन्यमेव विषयप्रकाशकं वृत्तिस्तु विषयप्रकाशकब्रह्मचैतन्येन प्रमातृजीवचैतन्यस्याभेदाभिव्यक्त्यर्थेति तृतीयपक्ष इत्यर्थः। तत्र **हेतुस्तस्मादिति**। उक्तरीत्या चैतन्यस्य घटप्रकाशकत्वायोगादिति तदर्थः ॥ ६७ ॥

इति पराभिमत प्रतिकर्मव्यवस्थागिरिनिपातव्याख्या ॥ १६ ॥

प्रकाशक ब्रह्म चैतन्य से प्रमातृ चैतन्य में अभेद अभिव्यक्ति के लिये है, यह तीसरा पक्ष है—ये तीनों पक्ष अयुक्त है ।।६७।।

इस प्रकार पराभिमत प्रतिकर्म व्यवस्था गिरि का निपात पूरा हुआ ॥ १६ ॥

(१७) पराभिमत मिथ्यालक्षणगिरिनिपातः

अथ यदुक्तं मिथ्याऽज्ञानोपादानक इत्यज्ञानस्य मिथ्यात्वं तदप्यसम्भवं लक्षणप्रमाणाभावात्। तथाहि किमिदं मिथ्यात्वं सत्वानधिकरणत्वमिति चेन्न निर्धर्मके ब्रह्मण्यतिव्याप्तेः। नापि बाधकज्ञानविषयत्वं ब्रह्मण्यति-व्याप्तेः। अस्थूलमनण्वित्यादिश्रुतेः। नापि प्रतिपन्नोपाधौ

मिथ्यालक्षणगिरिनिपातः

मिथ्यात्वलक्षणं निर्वक्तुं सङ्गतिं दर्शयति—**अथेति**। तदपि=मिथ्यात्वमपि। मिथ्यात्व-लक्षणं पृच्छति—**किमिदमिति**। अतिव्याप्त्या लक्षणं निरस्यति—**नेति**। ननु ब्रह्मणि सत्वानधिकरणत्वं नोपपद्यते निर्धर्मकत्वात् ब्रह्म सत्वानधिकरणं न भवति निर्धर्म-कत्वादिति प्रयोग इति चेन्न। यतो निर्धर्मकत्वरूपहेतोः पक्षे सत्वे निर्धर्मकत्वरूपधर्मस्य प्राप्त्या निर्धर्मकत्वहेतुना व्याघातः। निर्धर्मकत्वस्य पक्षेऽभावे सधर्मकत्वस्यैव प्राप्त्यानिर्धर्मकत्वहेतुना व्याघातः। एवं सत्त्वानधिकरणत्वाभावरूपसाध्यस्य पक्षे सत्त्वे तादृशसाध्यरूपधर्मस्यैव लाभेन निर्धर्मकत्वहेतुना व्याघात एव तादृशसाध्यधर्माभावे सत्त्वानधिकरणरूपधर्मस्यैव प्राप्त्या पुनर्निर्धर्मकत्वहेतुना व्याघात एव तेनाभावरूपधर्मनिषेधो न सम्भवति तथाच सत्त्वानधिकरणत्वरूपेऽभावरूपधर्मे ब्रह्मण्यङ्गीकार्ये मिथ्यात्वलक्षणमतिव्याप्तमिति। मिथ्यात्वस्य लक्षणान्तरं निराकरोति। **नापीति**। अधिष्ठानत्वेन तस्यापि बाधकज्ञानविषयत्वादिति भावः। न च निषेध्यत्वेन

मिथ्यात्वलक्षण

अब मिथ्यात्व के लक्षण करने हेतु संगति दिखाते हैं—पहले कहा था कि मिथ्या अज्ञानोपादानक है तथा अध्यास—वहाँ अज्ञान को मिथ्या कहा था—वह (मिथ्यात्व) भी असम्भव है, क्योंकि उसका कोई लक्षण ही सम्भव नहीं है—नाही उसके कोई प्रमाण हैं—हम पूछते हैं—मिथ्यात्व पदार्थ क्या है ? कहें कि सत्त्वानधिकरणत्व मिथ्यात्व है—निर्धर्मक ब्रह्म में अति व्याप्ति। कहें कि ब्रह्म में सत्त्वानधिकरणत्व की उपपत्ति नहीं है—क्योंकि वह निर्धर्मक है—अनुमान होगा—ब्रह्म सत्त्वानधिकरणत्वं, निर्धर्मकत्वात् तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण निर्धर्मकत्व रूप हेतु के पक्ष में होने से उसमें निर्धर्मकत्व रूप धर्म की प्राप्ति होने से निर्धर्मकत्व हेतु व्याघात (स्वरूपासिद्धि भी) निर्धर्मकत्व हेतु के पक्ष से अभाव होने पर सधर्मकत्व की ही प्राप्ति होने से—निर्धर्मकत्व हेतु से व्याघात दूसरा लक्षण—बाधक ज्ञान विषयत्वम् कहें तो वह संभव नहीं—क्योंकि अधिष्ठानत्वेन ब्रह्म भी बाध ज्ञान का विषय है (ब्रह्म अज्ञानाधिष्ठानेन इस बाध का अधिष्ठानत्वेन ब्रह्म विषय है।

त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वम्। निषेधस्तात्त्विकोऽतात्त्विको वा। नाद्यः। अद्वैतभङ्गात्। न द्वितीयः। सिद्धसाधनत्वापत्तेः। न च ब्रह्मस्वरूप एव निषेधः, भ्रमकालानिश्चितस्य सापेक्ष्यस्य निषेधस्य भ्रमकालनिश्चित-निर्विशेषब्रह्मस्वरूपत्वासम्भवात्। न च व्यावहारिकोऽयं निषेध इति वाच्यम्। तत्प्रतियोगिनोऽप्रातिभासिकस्य पारमार्थिकत्वापत्तेः। ननु

बाधकज्ञानविषयत्वं मिथ्यात्वं निषेध्यत्वं नाम नास्ति नासीन्न भविष्यतीति बोध्यमानाभावप्रतियोगित्वेन तद्विषयत्वमिति वाच्यम्। शुक्तिरूप्येऽसम्भवात्। मिथ्यात्ववादिनां मते रूप्यं नास्तीतिप्रतीतिसिद्धा भावीयप्रतियोगित्वमापणस्थरूप्य एव नतु पुरतः प्रतीयमाने रूप्ये तत्र प्रातिभासिकत्वाङ्गीकारेणैवंविधनिषेधायोगात्। मिथ्यात्वस्यान्यलक्षणमाशङ्क्य निरस्यति—**नापीति। प्रतिपन्नोपाधाविति।** स्वसम्बन्धितया ज्ञाते सर्वधर्मिणीति तदर्थः। येन सम्बन्धेन यद्रूपविशिष्टसम्बन्धितया यत् ज्ञातं तत्संसर्गावच्छिन्नतद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगित्वं लक्षणार्थः। नातः सम्बन्धान्तरावच्छिन्नरूपान्तरावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमादाय सिद्धसाधनम्। यद्रूपपदेन रजतत्वादिग्राह्यम्। नव्यमते यत्तत्त्वयोरननुगतत्वात्तत्तद्व्यक्तिपरत्वे व्यक्तिभेदेन मिथ्यात्वं भिन्नं स्यात् तथाच रजततादात्म्येन ज्ञायमानं यच्छुक्त्यादिकं तन्निष्ठाभावीयं यद्रजतवृत्तितादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगित्वं तस्य प्रातीतिक इव

कहें कि निषेध्यत्वे, बाध ज्ञान विषयत्व मिथ्यात्व है। जैसे जगत् ब्रह्म न जीवो ब्रह्म न) इत्याकारक बाध ज्ञान विषयत्व ब्रह्म में नहीं है। किंवानिषेध्यत्व है—नास्ति, नासीत न भविष्यति, इत्यादि वाक्यजन्य बोध्यमान अभाव प्रतियोगित्वेन तद्विषयत्व, तो ऐसा भी नहीं कह सकते शुक्ति रूप में असम्भव है। "अस्थूलम् अणनु" इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म में स्थूलत्व आदि का बाध बताती है। अब मिथ्यात्व के दूसरे लक्षण का भी निराकरण करते हैं—"नापि प्रतिपन्नोपाधौ" अर्थात् प्रतिपन्न उपाधि यानी स्व सम्बन्धितया ज्ञात सर्वधर्मा में त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व मिथ्यात्व यानी जिस सम्बन्ध से यह रूप विशिष्ट सम्बन्धी रूप में जो ज्ञात है, तत्संसर्गावच्छिन्न तद्रूपत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता का अभाव प्रतियोगित्व—यह लक्षण का अर्थ है इससे सम्बन्धान्तरावच्छिन्न रूपान्तरावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव लेकर सिद्ध साधन नहीं होगा यहाँ यह रूप पद से रजतत्व आदि ग्राह्य है। नवीन के मत में यत् तत् पद के अनुगत होने से तत् तत् व्यक्तिपरक होने पर व्यक्ति भेद से मिथ्यात्व भिन्न होगा। तब रजत के तादात्म्य से ज्ञायमान जो शुक्ति आदि है, तन्निष्ठ अभावीय

स्वाप्नगजतदभावयोरुभयोर्जागरे बाधदर्शनेन तथात्र प्रतियोगितद-भावयोर्निषेध्यतावच्छेदकस्य सद्भिन्नत्वादेस्सत्वादुभयोर्निषेध इति चेन्न स्वाप्नगजस्य बाधेऽपि तदभावस्याबाधात्। स्वप्नदृष्टात्मादेरबाधाच्च। किञ्च स्वाप्निकाभावस्य बाधेऽपि गजोनास्तीतिप्रतीतिसिद्धाभावान्तरस्य नियामकस्य सत्वाद्दृष्टान्तासिद्धेः। किञ्च स्वरूपेण निषेधेऽसत्वापत्तेः

व्यावहारिकेऽपि सत्त्वात्तत्र सिद्धसाधन-वारणाय सर्वेति। कपालादिनिष्ठभेदध्वंसादिप्रतियोगित्वमादाय सिद्धसाधनं स्यादत**स्त्रैकालिकेति**। विकल्पयति। **तात्त्विक इति**। पारमार्थिक इत्यर्थः। अतात्त्विकः=प्रातिभासिक इत्यर्थः। आद्यपक्षं निरस्यति **नाद्य इति। सिद्धसाधनत्वापत्तेरिति**। प्रातिभासिककालिक-निषेधप्रतियोगित्वस्य सत्यत्वाविरोधित्वेनेष्टत्वेन सिद्धसाधनापत्तेः। निषेधस्य ब्रह्मस्व-रूपत्वमाशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। सापेक्ष्येण निरपेक्षस्यैक्यायोगेन ब्रह्मात्मकत्वायोग इति भावः। निषेधस्य व्यावहारिकत्वमपाकरोति—तत्प्रतियोगिनः=व्यावहारिकनिषेधप्रतियोगिनः प्रपञ्चस्य। अप्रातिभासिकस्य=प्रातिभासिकरूप्यादिभिन्नस्य। पारमार्थिकेति प्रपञ्चनिषेधस्य व्यावहारिकतया सोऽपि निषिद्ध्यते तथा च निषेधनिषेधे प्रतियोगिनः सत्त्वमापद्यत इत्यर्थः। उक्तदोषं निरसितुं शङ्कते—**नन्विति**। प्रपञ्चनिषेधस्य निषेधे प्रपञ्चस्य तात्त्विकत्वमापद्येत नत्वेवं किन्तु प्रतियोगितदभावयोः द्वयोरपि निषेधस्तत्र न प्रतियोगिरूपता यथा ध्वंससमये प्रागभावप्रतियोगिनोरुभयनिषेधस्तथाच प्रकृतेऽपि प्रतियोगिनः प्रपञ्चस्य निषेधस्य च

जो रजत वृत्ति तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगित्व—उसकी प्रातीतिक की तरह व्यावहारिक में सत्ता होने से सिद्ध साधन वारण के लिये सर्व धर्मणि में सर्वपद दिया। कपाल आदि निष्ठ भेद ध्वंस के प्रतियोगित्व को लेकर सिद्ध साधन होता—इसके लिये त्रैकालिक कहा। अब यहाँ भी विकल्प करते हैं—निषेधतात्त्विक है या अतात्त्विक? यहाँ तात्त्विक का अर्थ है—पारमार्थिक अतात्विक माने प्रातिभासिक—पहला नहीं कह सकते—अद्वैत भंग होगा। द्वितीय पक्ष भी नहीं हो सकता—सिद्ध साधनत्वापत्ति—यानी प्रातिभासिक कालीन निषेध प्रतियोगि के सत्यत्व में अविरोधी होने से इष्ट होने से सिद्ध-साधनतापत्ति। कहें कि निषेध तो ब्रह्मस्वरूप ही है, तो ऐसा नहीं हो सकता—सापेक्ष्य निषेध में भ्रमकाल का अनिश्चय होने से—भ्रमकाल निश्चित निर्विशेष ब्रह्मरूपत्व सम्भव नहीं है। अब निषेध के व्यावहारिकत्व का

पारमार्थिकत्वेन निषेधे निषेधप्रतियोगित्वस्य निर्धर्मकेब्रह्मण्यपि सत्वात्। नाप्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं सिद्धसाधनत्वापत्तेः खपुष्पादावतिव्याप्तेश्च। नापि स्वाधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमव्याप्यवृत्तिसद्रूपसं-

---

युगपदेव निषेधो नतु निषेधस्य निषेधता येन प्रतियोगितापत्तिरित्याह—**सद्भिन्नत्वेनेति।** तथाच सद्भिन्नं नास्तीति प्रतीत्यैव प्रतियोगिप्रपञ्चतदभावयोर्निषेधोऽतएव निषेध्यतावच्छेदकं सद्भिन्नत्वं मूल उक्तमित्यर्थः। स्वप्नदृष्टार्थस्य जाग्रत्यबाधान्न तस्य बाध्यत्वं येन तत्साधारणं बाध्यताप्रयोजकं कल्पनीयं स्यात् नहि स्वप्नदृष्टत्वमात्रेण बाध्यत्वमात्मादेरपि बाधापत्तेरित्याशयेन परिहरति—**नेति।** तदभावस्य=गजाभावस्य। स्वाप्नगजाभावाभावबाधे स्वाप्नगजस्य सत्त्वमापद्येत इति भावः। ननु बाध्यताप्रयोजकतुल्यसत्ताकत्वे विद्यमाने सति तस्यापि बाधोऽवश्यम्भावेन स्वप्नार्थ-तत्प्रतियोगिकाभावौ बाधितावित्यनुभवबलादित्यत आह—**किञ्चेति।** त्रैकालिक-निषेधप्रतियोगित्वं किं स्वरूपेण पारमार्थिकत्वेन वा यद्याद्यस्तदाह—**स्वरूपेणेति।** स्वरूपेण निषेधे निस्स्वरूपत्वं तदैवासत्वमित्याह—**असत्त्वापत्तेरिति।**

खण्डन करते हैं—यह निषेध व्यावहारिक नहीं है कारण व्यावहारिक निषेध के प्रतियोगी प्रातिभासिक रूप आदि से भिन्न प्रपञ्च में पारमार्थिकत्व की आपत्ति होगी अर्थात् प्रपञ्च निषेध के व्यावहारिक होने से वह भी निषिद्ध हो जाता है—फिर तो निषेध के विरोध होने पर सत् की आपत्ति होती यह भाव है। उक्त दोष के निराकरण हेतु शंका करते हैं—कहें कि स्वप्नकालिक गज तथा उसके अभाव—दोनों का जागरण होने पर बाध देखा जाता है—उसी प्रकार यहाँ प्रतियोगी और उसके अभाव दोनों केनिषेध्यतावच्छेक सद्भिन्नत्व आदि के सद्भाव से दोनों का निषेध होता है—तो ऐसा नहीं कह सकते—जागरण होने पर स्वाप्न गज के बाध होने पर भी उसके अभाव का बाध नहीं होता है—स्वाप्न गजाभाव के बाध होने पर स्वाप्न गज की सत्ता की आपत्ति होगी। स्वप्न द्रष्टा आत्मा आदि का बाध भी नहीं होता। दूसरी बात स्वप्नकालिक अभाव के बाध होने पर भी गज नहीं है—इस प्रकार की प्रतीति से सिद्ध अभावान्तर के नियामक होने से दृष्टान्त सिद्ध नहीं है। दूसरी बात त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व तथा स्वरूप से या पारमार्थिकत्वेन—यदि पहला पक्ष कहें तो स्वरूप से निषेध मानने पर निःस्वरूपत्व होगा यानी उसकी असत्तापत्ति हो जाएगी। देशकाल सम्बन्धितया अप्रतीयमानता की आपत्ति होगी ऐसा आप मानते

योगादावतिव्याप्तेः। नापि स्वसंसृज्यमानाधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं परैरपि घटवति भूतले सम्बन्धान्तरेण तदत्यन्ताभावाभ्युपगमेन सत्यत्वविरोधिमिथ्यात्वासिद्धेः। नाप्येकावच्छेदेन प्रतियोगित्वं तेनैव सम्बन्धेन तत्त्वं विवक्षितम्, एकावच्छेदेन स्वसंसृज्यमानाधिकरण

देशकालसम्बन्धितयाऽप्रतीयमानतापत्तेः। न चेत्तदभ्युपगम्यते माध्यमिकभिन्नैर्भवद्भिः सप्रपंचात्मसत्यत्ववादिभिरिति भावः। द्वितीयकल्पमभिप्रेत्याह—**पारमार्थिकत्वेनेति।** पारमार्थिकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रपञ्चाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकं यत् पारमार्थिकत्वं तद्वत्त्वस्य ब्रह्मण्यपि सत्त्वात्तस्यापि मिथ्यात्वलक्षणाक्रान्तत्वं स्यादित्याशयेनाह—**निषेधेति।** पारमार्थिकत्वेनेत्यत्र तृतीयार्थोऽवच्छेदकत्वं तस्य निषेधीयप्रतियोगितायामन्वयः, तथाच पारमार्थिक-त्वनिष्ठावच्छेदकताकप्रपंचनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव इत्यर्थः। व्यधिकरण-धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावमभ्युपेत्येदम्। **नापीति। सिद्धसाधनेति।** घटात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वस्य घटादावनुमानात्प्रागेव सिद्धत्वात्तस्यैव साधने सिद्धसाधनापत्तिरित्यर्थः। **खपुष्पेति।** यथानुभवसिद्धतया अङ्गुल्यग्रे हस्तिशतं नास्तीतिप्रतीतेर्दुर-पह्न वत्वात्तदुपपादकशब्दाभासादिना प्रसक्तिःकल्प्यते तथा शशशृङ्गंनास्तीतिप्रतीतेर्दुरपह्नवत्वात्तदुपपादकमपि कल्पनीयं तथाच शब्दाभासादिना प्रसक्तौ सत्यां शशशृङ्गादेर्निषेधप्रतियोगित्वस्य सत्त्वाद्भवत्यतिव्याप्तिरित्याशयः। मिथ्यात्वस्य

नहीं हैं आप तो सप्रपञ्च आत्म सत्यत्ववादी हैं—माध्यमिक ही केवल शून्यवादी है—पारमार्थिकत्वेन निषेध माने तो निषेध प्रतियोगित्व निर्धर्मक ब्रह्म में भी है। द्वितीय कृत्य का हो तो निषेध प्रतियोगित्व निर्धर्मक ब्रह्म में भी है। अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व भी नहीं कह सकते हैं—इस पक्ष में सिद्ध साधनत्व की आपत्ति होगी तथा खपुष्प (गगन कुसुम) आदि में अति व्याप्ति भी हो जाएगी। कहें कि स्वाधिकरण निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगित्व मिथ्यात्व है, तो यह भी नहीं कह सकते—इसमें अव्याप्यवृत्ति सद्रूप संयोग आदि में अतिव्याप्ति होगी इसी तरह स्व संसृज्यमान अधिकरण निष्ठ अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व रूप मिथ्यात्व भी नहीं कह सकते—कारण तार्किकों ने भी संयोग सम्बन्धेन घटवत् भूतल में समवाय सम्बन्धावच्छिन्न घटाभाव होने से तत्प्रतियोगित्व घट आदि में विद्यमान होने से सिद्ध सत्यत्व विरोधी मिथ्यात्व की असिद्धि होगी। अब कहते हैं कि येनरूपेण यदीय अधिकरणत्व है—उस रूप से तन्निष्ठ—अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व विवक्षित होने से उक्त दोष नहीं होगा—इस पर कहते हैं—नाही एकावच्छेदेन प्रतियोगित्व और उसी सम्बन्ध से अधिकरणत्व विवक्षित है। यहाँ अवच्छेदक शब्दार्थ है—सम्बन्ध और धर्म—सम्बन्ध का सम्बन्धविधया अवच्छेदक होता है। धर्म एवं

निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमिति वाच्यम्। समानसत्ताकयोः प्रतियोगितदभावयोरेकत्रस्थित्यसम्भवात्। तादृशस्य लोकेऽत्यन्ताप्रसिद्धेरसम्भवः। नापि ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्त्वम्, उत्तरज्ञाननिवर्त्यपूर्वज्ञानादाविव सत्वेनाप्युपपत्तेः। स्मृतिनिवर्त्यसंस्कारेऽ-

लक्षणान्तरमाशङ्क्य निषेधति—**नापीति**। अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यावृत्तिगगनादिषु सत्त्वात्तार्किकाणां मते सिद्धसाधनं तद्वारणाय—**स्वाधिकरणेति**। यदधिकरणं यत्सत्तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तस्य मिथ्यात्वं गगनाधिकरणस्याप्रसिद्ध्या न सिद्धसाधनोद्भावनीयम्। न च समवायेन घटाधिकरणे कपाले संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटाभावस्य वृत्तितया तत्प्रयोगित्वस्य घटादौ सत्त्वात् सिद्धसाधनं तादवस्थ्यमेवेति वाच्यम्। यत्सम्बन्धावच्छिन्न-यन्निष्ठनिरूपकतानिरूपिताधिकरणताश्रयवृत्तितत्संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव-प्रतियोगित्वमिति निर्वचनेनोक्तदोषानवकाशात्। संयोगाधिकरणवृत्तिमूलावच्छिन्न-संयोगाभावप्रतियोगित्वस्य संयोगादिषु सत्त्वात्सिद्धसाधनमित्याह—**अव्याप्यवृत्तिरिति**। नचैतद्दोषपरिजिहीर्षया अभावे प्रतियोगिवैयधिकरण्यं निवेशनीयम्। प्रतियोगिवैयधिकरणाभावस्य दुर्लभत्वात् सर्वस्यैवाभावस्य स्वभावात्मकपूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टाभावाभावाभावस्य यः प्रतियोगिद्वितीयाभावस्तत्समानाधिकरणत्वात्। प्रतियोगिव्यधिकरणाभावस्य स्वस्वप्रतियोगिघटिततत्तद्व्यक्तिविश्रामेनासर्वज्ञस्य दुर्ज्ञेयत्वाच्च—**नापीति**। पूर्वं स्वाभाववति भूतले पश्चादानीतोघटोभातीति घटादौ सिद्धसाधनवारणाय **संसृज्यमानेति**। तेन स्वाभावकाले प्रतियोगिसंसर्गस्य विद्यमानतोच्यत इति नोक्तदोषावकाशः। शुक्ताविदन्त्वावच्छेदेन रजतसंसर्गकाले रजतात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य रजते सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। संयोगसम्बन्धेन घटाधिकरणे भूतले समवाय-सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटाभावोऽस्ति तत्प्रयोगित्वस्य घटादौ सत्त्वात्सिद्धसाधन-

---

सम्बन्ध का अनुगमक रूप प्रदर्शन के लिये वैसा ही कथन है। नाही निषेधीय प्रतियोगिता यत्सम्बन्धावच्छिन्न तत्सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिनिष्ठ निरूपकता निरूपिता अधिकरणताश्रय वृत्ति अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व मिथ्यात्व भी नहीं हो सकता—कारण समान सत्ताक प्रतियोगी एवं उसके अभाव का एक अधिकरण में स्थिति असम्भव है—क्योंकि वैसा लोक में अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिये असंभव है। कहेंगे ज्ञान निवर्त्यत्व मिथ्यात्व है—ब्रह्मज्ञान निवर्त्यत्व प्रपञ्च में है—मिथ्यात्व की उपपत्ति हो जाएगी तो यह भी नहीं हो सकता। यहाँ भी विकल्प होगा। ज्ञानत्वेन

तिव्याप्तेश्च। न च साक्षात्कारत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वं परोक्षप्रमानिवर्त्ये परोक्षभ्रमविषयेऽव्याप्तेः। जीवन्मुक्त्यनुवृत्ताज्ञानलेशे चिरसञ्चिताद्वैत-संस्कारनिवर्त्येऽव्याप्तेश्च। नापि सद्भिन्नत्वं तत्त्वं सत्त्वञ्च प्रमाणसिद्धं

मित्याह—**पैररपीति**। तार्किकैरित्यर्थः। येन रूपेण यदधिकरणत्वं तेन रूपेण तन्निष्ठात्यन्ता-भावप्रतियोगित्वस्य विवक्षणान्नोक्तदोषावकाश इत्यभिप्रेत्याह—**एकावच्छेदेनेति**। अत्रावच्छेदकशब्दार्थः सम्बन्धोधर्मश्च संसर्गस्यापि सम्बन्धविधयावच्छेदकत्वात् धर्मसम्बन्धयोरनुगमकरूपप्रदर्शनाय तदुक्तिरितिभावः। तत्त्वम्=अधिकरणत्वम्। निषेधीयप्रतियोगिता यत्सम्बन्धावच्छिन्ना तत्सम्बन्धावच्छिन्नसंसर्गप्रतियोगिनिष्ठा-निरूपकतानिरूपिताधिकरणताश्रयवृत्त्यन्ताभावीयप्रतियोगित्वं मिथ्यामित्याह—**एकावच्छेदेनेति**। नातः विभिन्नसम्बन्धाद्यवच्छिन्नघटाभाव प्रतियोगिष्वव्याप्यवृत्ति-संयोगादिषु च सिद्धसाधनमिति भावः। विभिन्नसत्ताकयोरविरोधेऽपि समसत्ताक-योर्घटतदभावयोर्विरोधोदुष्परिहरस्तथाच यत्र भूतले घटाभावस्य सत्त्वं तत्र न घटस्य सत्त्वमित्याशयेन निरुक्तमिथ्यात्वं दूषयति—**समानसत्ताकयोरिति**। अवच्छेदकभेदेन संयोगतदभावयोरिव नह्येकत्र धर्मिणि समसत्ताकयोर्घटतदभावयोः स्थितिरित्यर्थः। **तादृशस्येति**। एकत्रस्थितिमतः घटतदभावस्येत्यर्थः। लक्षणान्तरमाशङ्क्य निषेधति—**नापीति**। ब्रह्मज्ञाननिवर्त्यत्वस्य प्रपंचे सत्त्वाद्मिथ्यात्वोपपत्तिः। तत्त्वम्=मिथ्यात्वम्। ज्ञानत्वेन निवर्त्यत्वं ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण वा। आद्ये दोषमाह—**उत्तरज्ञानेति**। **उपपत्तेरिति**। मिथ्यात्वानुमाने सिद्धसाधनमिति भावः। द्वितीयकल्पे दोषमाह **स्मृतीति**। ज्ञानत्वव्याप्यस्मृतित्वावच्छिन्ननिवर्तकतानिरूपितनिवर्त्यतायाः संस्कारे सत्त्वाद्भवत्यतिव्याप्तिः-सिद्धसाधनमिति यावत्।

निवर्त्यत्व कहते हैं या ज्ञानत्वव्याप्य धर्मेण निवर्त्यत्व? आद्य पक्ष में दोष है—उत्तर ज्ञान निवर्त्य पूर्व ज्ञान आदि की..........सत्व से ही उपपत्ति हो जाएगी तब मिथ्यात्व के अनुमान के सिद्ध साधन दोष है—यह भाव है। ज्ञानत्व व्याप्य धर्म निवर्त्यत्व पक्ष में—स्मृति निवर्त्य संसार में अतिव्याप्ति? नाही साक्षात्कारत्वेन ज्ञान निवर्त्यत्व रूप मिथ्यात्व कह सकते हैं—परोक्ष प्रभा से निवर्त्य परोक्ष भ्रमविषय में अव्याप्ति होगी तथा जीवन मुक्ति अवस्था में अनुवृत्त अज्ञान के लेश में जो चिर सञ्चित अद्वैत संस्कार से निवर्त्य होता है, उसमें अव्याप्ति भी होगी ना ही सद्भिन्नत्व मिथ्यात्व सम्मत है—सत्त्व प्रमाण सिद्ध है—और प्रमाणत्व वस्तु है—दोष से असद्कृत (असंस्पृष्ट) प्रमाकरणत्व—ऐसा तो घट आदि में भी निश्चित दोष से हीन प्रत्यक्ष आदि प्रमाण सिद्धत्व है—कल्पित दोष वेद में भी सम्भव है—प्रमाणागम्यत्व कहें

प्रमाणत्वञ्च दोषासहकृतप्रमाकरणत्वमिति वाच्यम्। घटादेरपिक्लृप्त-दोषहीनप्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धत्वात्। कल्प्यदोषस्य वेदेऽपि सम्भवात् सर्वप्रमाणागम्ये त्वदभिप्रेते शुद्धब्रह्मण्यतिव्याप्तेश्च तव मते। तस्यापि दोषासहकृतज्ञानकरणलक्षणप्रमाणसिद्धवस्तुभिन्नत्वादिति सङ्क्षेपः ॥६८ ॥

इति पराभिमतमिथ्यात्वलक्षणगिरिनिपातः ॥ १७ ॥

शुक्तिरजतादावधिष्ठानसाक्षात्कारत्वावच्छिन्ननिवर्तकतानिरूपितनिवर्त्यता वर्तते नतु ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण वा निवर्तकतानिरूपितनिवर्त्यता तथाच साध्यविकलता तद्वारणाय साक्षात्कारत्वावच्छिन्ननिवर्तकतानिरूपितनिवर्त्यत्वं मिथ्यात्वलक्षणं वाच्यम्। तथाचोत्तरज्ञानस्य पूर्वज्ञाननिवर्तकता न साक्षात्कारत्वावच्छिन्ना किन्त्विच्छादि साधारणेन स्वोत्तरविशेषगुणत्वेनैव नातस्सिद्धसाधनता तथाच साक्षात्कारत्वानवच्छिन्नस्मृतिनिवर्त्ये संस्कारे नातिव्याप्तिरित्याशङ्क्य निराकरोति—**नचेति। परोक्षेति।** परोक्षभ्रमनिष्ठनिवर्त्यतानिरूपितपरोक्षप्रमानिष्ठानिवर्तकता न साक्षात्कारत्वेनावच्छिद्यतेऽपितु प्रमात्वेनैवातोऽत्राव्याप्तिरित्यर्थः। **जीवन्मुक्त्यनुवृत्तेति।** चिरसञ्चिताद्वैतसंस्कारनिष्ठानिवर्तकतायाः संस्कारत्वेनावच्छेदाज्जीवन्मुक्त्यनुवृत्ताज्ञान-लेशेऽव्याप्तिरित्यर्थः। लक्षणान्तरमाह—**सद्भिन्नत्वमिति।** तत्त्वम्=मिथ्यात्वलक्षणम्। अत्र प्रतियोगितावच्छेदकीभूतसत्वस्य सत्तादिजात्यादिरूपत्वे दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात्तन्मतानुसारेण सत्वं निर्वक्ति—**सत्त्वञ्चेति।** सन् घट इत्यादिज्ञानानामपि घटादौ सदंशे वाप्रमात्वात् घटादीनामपि निरुक्तप्रमाणसिद्धत्वात् सद्भिन्नत्वरूपमिथ्यात्वानुपपत्तिरित्याशयेन समाधत्ते—**घटादेरिति।** तत्राप्यविद्यादोषं कल्प्यमित्यतो दोषान्तरमाह—**कल्प्यदोषस्येति।** इतिपराभिमतमिथ्यात्वलक्षणानां खण्डनम्॥ ६८ ॥

इति पराभिमतमिथ्यात्वलक्षणगिरिनिपातस्य व्याख्या॥ १७॥

तो आपके मत में शुद्ध ब्रह्म भी सकल प्रमाणागम्य है—उसमें मिथ्यात्व लक्षण की अतिव्याप्ति होगी—आपके मत में वह भी दोष से असहमत ज्ञानकरणरूप प्रमाण सिद्ध वस्तु से भिन्न है ।।६८।।

इस प्रकार पराभिमत मिथ्यात्वलक्षण गिरि का निपात हुआ॥ १७॥

(१८) मिथ्यात्वप्रमाणगिरिनिपातः

अथ मिथ्यात्वे प्रमाणमपि नास्ति तथाहि न तावत्प्रत्यक्षं वर्तमानग्राहिणस्तस्य त्रैकालिकबाध्यत्वग्राहकत्वायोगात्। नाप्यनुमानं तस्य

मिथ्यात्वे प्रमाणं निरसितुमाह—**अथेति। वर्तमानेति।** चक्षुरादियदध्यक्षं प्रमाणं तेन वर्तमान घटादिकमेव गृह्यते नतु त्रैकालिकनिषेधघटितं मिथ्यात्वं प्रत्युत सन् घट इति सत्त्वग्राहिप्रत्यक्षेण घटादौ सद्भिन्नस्वरूपं मिथ्यात्वं बाध्यत इत्याशयः। **नाप्यनुमानमिति।** तस्य=अनुमानस्य। **व्याप्तीति।** मिथ्यात्वलक्षणनिष्ठानां देशानां कालत्रयाणां सर्वेषां प्रातिस्विकरूपेण युगसहस्त्रेणापिज्ञातुमशक्यत्वान्न तदर्थानां प्रत्यक्षेण व्याप्तिग्रहसम्भावनापीति प्रत्यक्षोपजीव्यत्वादनुमानस्य न तदंशे प्रमाणता

मिथ्यात्व में प्रमाण का अभाव

मिथ्यात्व में लक्षण का खण्डन करके अब मिथ्यात्व में कोई प्रमाण भी नहीं है—यह सिद्ध करते हैं। कहते हैं—मिथ्यात्व में कोई प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण कह नहीं सकते—कारण प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान वस्तु का ग्राहक होता है, उसमें त्रैकालिक बाध्यत्व की ग्राहकता की योग्यता नहीं है। भाव है कि चक्षु आदि जो प्रत्यक्ष प्रमाण है, उससे वर्तमान घटादि ही गृहीत होता है, उससे किसी वस्तु का त्रैकालिक निषेध रूप मिथ्यात्व गृहीत नहीं होता प्रत्यक्ष प्रमाण किसी वस्तु की त्रैकालिक बाध्यता नहीं बता सकता, बल्कि सन् घट—इस प्रकार के सत्ता ग्राही प्रत्यक्ष से घट आदि में सद्भिन्नत्व रूप मिथ्यात्व बाधित होता। अनुमान प्रमाण भी मिथ्यात्व की सिद्धि में प्रमाण नहीं हो सकता, वह भी व्याप्ति ग्राहक प्रत्यक्ष मूलक होने से प्रत्यक्ष की सिद्धि न होने से अनुमान प्रमाण से मिथ्यात्व स्वतः असम्भव है—अर्थात् मिथ्यात्व लक्षणनिष्ठ कालत्रय के सभी देशों का प्रत्यक्षरूप में हजारों

व्याप्तिग्राहकप्रत्यक्षमूलकत्वेन प्रत्यक्षाऽसिद्धया सुतरामसम्भवात्। नाप्यागमः, अप्रसिद्धत्वात्। नन्वे ''कमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति'' श्रुतिरेवा-द्वितीयादिपदैर्द्वितीयमात्रं निषेधयन्ती तन्मिथ्यात्वे मानमिति चेन्न, तस्या अद्वितीयादिपदानां समानातिशयनिषेधपरत्वेन नैराकाङ्क्ष्यात्तस्मान्न किञ्चिदपि मानमस्तीति सिद्धम्॥ ६९॥

इति पराभिमतमिथ्यात्वप्रमाणगिरिनिपातः॥ १८॥

अन्यथा त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वरूपस्य प्रत्यक्षेण गृहीतत्वादनुमानस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येतेति भावः। इति मिथ्यात्वे प्रमाणनिरासः। तस्याः=श्रुतेः **॥ ६९॥**

इति पराभिमतमिथ्यात्वप्रमाणगिरिनिपातव्याख्या॥ १८॥

प्रयोगों में भी ज्ञान अशक्य होने से उन अर्थों में प्रत्यक्ष प्रमाण से व्याप्ति ग्रह की संभावना नहीं है—फिर तो प्रत्यक्षोपजीव्य अनुमान भी उस अंश में प्रमाण नहीं हो सकता। अन्यथा त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व रूप मिथ्यात्व प्रत्यक्ष से ही गृहीत हो जाता अनुमान का वैयर्थ्य हो जाता। कहें कि 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' यह श्रुति अद्वितीय आदि पदों द्वारा जब द्वितीय काम का निषेध करती हैं तो इसी से जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध होता है। इस प्रकार यह श्रुति ही—जगन्मिथ्यात्व में प्रमाण हैं तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण इस श्रुति में अद्वितीय आदि पद तत्समान तथा उससे बड़ा कोई दूसरा नहीं है—इत्याकारक समानातिशयकत्व का निषेध का निराकांक्ष हो जाता है, अतः उसके द्वारा भी मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो सकता ।।६९।।

इस प्रकार पराभिमत मिथ्यात्व में प्रमाणरूपी गिरि निपात पूरा हुआ॥१८॥

(१९) अनिवर्चनीयलक्षणगिरिनिपातः

अथाज्ञानस्यानिर्वचनीयत्वोक्तिरपि स्वकपोलोल्लासमात्रं लक्षणाद्यभावात्। तथाहि किन्नामानिर्वचनीयत्वं सद्विलक्षणत्वमिति चेन्न, असति नृशृङ्गादावतिव्याप्तेः। नाप्यसद्विलक्षणत्वम्, आत्मन्यतिव्याप्तेः। नापि

एतावता प्रबन्धेन मिथ्यात्वलक्षणं तत्प्रमाणं च निराकृत्य सम्प्रत्यज्ञानस्यानिर्वचनीयत्वं निरस्यति—**अथेति**। न तावदज्ञानस्यानिर्वचनीयत्वं सिद्ध्यति लक्षणप्रमाणयोरभावादित्याह—**अज्ञानस्येति**। अनिर्वाच्यत्वस्य लक्षणं पृच्छति—**किन्नामेति**। परिहरति—**नेति**। असद्विलक्षणत्वस्य लक्षणत्व उक्तदोषनिरासेप्यात्मन्यतिव्याप्तिरित्याह—**आत्मन्यतिव्याप्तेरिति**। लक्षणान्तरमाशङ्क्य निषेधति—**नापीति**। **सदिति**। सच्च तदसच्च सदसत् ताभ्यां भिन्नत्वमित्यर्थः। पदार्थानां सद्रूपत्वमसद्रूपत्वरूपद्वैविध्यमस्ति नतु तिस्रोविधाऽस्ति येन निरुक्तलक्षणमुपपद्येतेत्याशयेनाह—**वस्तुजातस्येति**। सदैकस्वभावे प्रपंचे सद्रूपता, असति पदार्थे असद्रूपता न तूभयरूपता कुत्रापि दृष्टा श्रुता वेति प्रतियोगिनोऽप्रसिद्धत्वात्सुतरां तद्भिन्नत्वमप्रसिद्धमित्यर्थः। लक्षणान्तरं निरस्यति—

अज्ञान के अनिर्वचनीयत्व का खण्डन

अज्ञान (अविद्या) अनिर्वचनीय है—ऐसा अद्वैतवादियों की मान्यता है—उसका खण्डन करते हैं—अज्ञान अनिर्वचनीय है, यह कथन भी कपोल कल्पना मात्र है (कपोल कल्पना—गाल बजाना मात्र है)—इसमें कोई दम नहीं है। हम पूछते हैं—अनिर्वचनीयत्व क्या है—सद्विलक्षणत्व? तो ऐसा नहीं कह सकते तब असत् नृशृङ्गगगन कुसुम आदि में अतिव्याप्ति। कहें कि असद्विलक्षणत्व है अनिर्वचनीयत्व तो यह भी सम्भव नहीं, आत्मा में अतिव्याप्ति, कहेंगे सदसद् भिन्नत्ववद्—सत्-असत् दोनों से भिन्न है, अनिर्वचनीयत्व तो ऐसा भी नहीं हो सकता—वस्तु मात्र सत् या असत् में कोई एक होता ही है—ऐसा नियम है, अर्थात् पदार्थों के दो ही रूप होते हैं—सद् रूप या असद् रूप। तीसरी कोई विधा नहीं है—सत् स्वभाव प्रपञ्च में सद्रूपता—असत् गगन कुसुमादि में असद्रूपता—उभयरूपता कहीं नहीं देखी गई—इस तरह सद्सत् रूप प्रतियोगी ही अप्रसिद्ध है इस प्रकार तद्भिन्नत्व रूप अनिर्वचनीयत्व सुतराम् अप्रसिद्ध है। कहें कि निर्वचनानर्हत्वम्—जो निर्वचन के योग्य न हो जिसका कोई निर्वचन न हो सके—वह अनिर्वचनीय तो यह भी सम्भव

सदसद्भिन्नत्वं वस्तुजातस्य सदसदन्यतरत्वनियमेन तादृशप्रतियोगि-सिद्ध्यसम्भवात्। नापि निर्वचनानर्हत्वमनेनैव निरुच्यमानतयाऽ-सम्भवात्। न च सदसत्त्वादिना विचारासहत्वम्, ''न सत्तन्नासदुच्यते'' इत्यात्मनोऽपि तथात्वेन तत्रातिव्याप्तेः। अपि च सत्त्वादिना विचारासहत्वं किं सत्त्वाद्यनधिकरणत्वं वा सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वम्वा सद्रूपत्वाद्यभावो वा सत्त्वादेरित्थमिति निर्वक्तुमशक्यत्वम्वा सत्त्वादिना-प्रमाणागोचरत्वम्वा ? नाद्यः। असतोऽप्यसत्वरूपधर्मानधिकरणत्वात्।

नापीति। अनेनैवेति। निर्वचनानर्हत्वेनैवेत्यर्थः। **तथात्वेनेति।** उक्तश्रुत्या सदसत्वाभ्यां विचारासहत्वेनेत्यर्थः। उक्तरूपं निरसितुं पञ्चधा विकल्प्यति—**अपि चेति।** सत्त्वाद्यन-धिकरणत्वमित्यत्रादिपदेनासत्वस्य परिग्रहः। आद्यपक्षं व्युदस्यति—**नाद्य इति।** तुच्छेऽप्यसत्वानधिकरणत्वस्य सत्त्वात्तत्रातिव्याप्तिरित्याह—**असत इति।** सत्त्वानधि-करणत्वमित्यत्र तात्त्विकसत्वानधिकरणत्वं विवक्षितम् उतातात्त्विकसत्त्वानधिकरणत्वं वा धर्मिसमसत्तानधिकरणत्वम्वा तत्र नाद्य इत्याह—**सत्पदस्येति।** तात्त्विकसत्त्व-रूपधर्माङ्गीकारे प्रवृत्तिनिमित्तसद्भावेन सत्पदवाच्यत्वमेव स्यान्न लक्ष्यत्वमित्याशयेनोक्तं **सत्पदलक्ष्येति।** न द्वितीयोऽसम्भवापत्तेरित्याह—**अतात्त्विकमिति।** अतात्त्विकम्= व्यावहारिकसत्त्वं प्रातिभासिकत्वञ्च

नहीं है—क्योंकि तब तो निर्वचनानर्हत्व ही उसका (अज्ञान का) निर्वचन हो गया, लक्षण हो गया—फिर अनिर्वचनीय कहाँ रहा, इस प्रकार अनिर्वचनीय असम्भव है। कहें कि जिसका न तो सत्त्व रूप में और न ही असत्त्व रूप में विचार किया जा सकता—वह अनिर्वचनीय? तो यह लक्षण भी सम्भव नहीं है। ''न सत्तन्नासदुच्यते''? श्रुति कहती है—परमात्मा न सत् है, न असत्। इस प्रकार तो आत्मा भी सद् ''सत्त्वादिना विचारासह'' होने से उसमें अतिव्याप्ति होगी। दूसरी बात—सत्त्वादिना विचारासहत्त्व का क्या मतलब? क्या सत्त्वाद्यनधिकरणत्व है अथवा सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्व है—किंवा सद्रूपत्वादिना अभाव अथवा सत्त्व आदि का इदम् अर्थ्यम् इस रूप में निर्वचन की अशक्यता है, अथवा सत्त्व आदि रूप में प्रमाण का अभाव? इस प्रकार पाँच विकल्प हैं—इनका सबका खण्डन करते हुए कहते हैं—'नाद्यः' पहला पक्ष नहीं कह सकते—कारण असत् भी उस तत्त्व रूप धर्म का अधिकरण नहीं होता है, और सत् पद का लक्ष्य निर्धर्मक ब्रह्म में भी स्वरूप से अतिरिक्त तात्त्विक सत्त्व का अधिकरणत्व नहीं होता है। क्योंकि अतात्त्विक

सत्पदलक्षस्य निर्धर्मकस्य ब्रह्मणोऽपि स्वरूपातिरिक्त-तात्त्विकसत्त्वानधिकरणत्वाच्च। अतात्त्विकसत्त्वाधिकरणत्वस्य त्वनिर्वाच्येऽपि सत्त्वात्। धर्मिसमसत्ताधिकरणत्वस्य ब्रह्मण्यप्यभावात्। अनिर्वाच्यत्वस्याप्यधिकरणत्वाच्च। न द्वितीयः। निर्धर्मके ब्रह्मणि

तच्चानिर्वाच्यस्य गगनादेः रूप्यादेश्च। न तृतीयो ब्रह्मण्यतिव्याप्तेः धर्मिसमसत्त्वस्य तात्त्विकत्वस्य ब्रह्मण्यभावेन तदनधिकरणत्वसद्भावादित्याह—**धर्मीति**। अनिर्वाच्येऽसम्भवश्च धर्मिसमस्यानिर्वाच्यसत्त्वस्य प्रातिभासिकत्वाद्यपरपर्यायस्य तत्रापि सत्त्वेन धर्मिसमसत्ताकसत्त्वं प्रत्यधिकरणत्वेन तदनधिकरणत्वाभावादित्याह—**अनिर्वाच्यत्वस्येति**। सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वरूपं द्वितीयकल्पमपाकरोति—**न द्वितीय इति**। ननु सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वस्य सत्त्वादिधर्मशून्ये ब्रह्मण्यतिव्याप्तिः, असत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वस्य नीरूपतयाऽसत्त्वरूपधर्मानधिकरणे तुच्छेऽतिव्याप्तिश्च कस्मान्न दीयत इत्यत उक्तम्। **निर्धर्मिकेत्यादि। तुच्छेपीति**। असति च सचेतसां मूकताया एव शरणत्वादिति भावः। अनुपदमेवातिव्याप्तेरपि वक्ष्यमाणत्वात्कथञ्चिदित्युक्तम्। ब्रह्मण्यतिव्याप्तिमेवाह—**तुच्छब्रह्मणोरिति। निर्विशेषत्वेति**। निर्धर्मकत्वाद्ब्रह्मणि सत्त्वं नास्तीत्येवासत्त्वावगाहित्वेऽङ्गीकृते सति तदत्यन्ताभावाधिकरणत्वं दुर्वारमेव न च निर्विशेषत्वप्रतिपादकश्रुत्या ब्रह्मणि धर्ममात्रनिषेधान्न सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वमपीति वाच्यम्। निर्विशेषत्वश्रुतेर्धर्ममात्रनिषेधाङ्गीकारे निर्विशेषत्वरूपधर्मस्यैव प्रतिपादनेन श्रुतेःस्वव्याघातप्रसङ्गादतस्तत्परिहाराय भावरूप-

---

सत्त्वाधिकरणत्व तो अनिर्वचनीय में होता है। धर्मी के समसत्ताधिकरणत्व का ब्रह्म में भी अभाव है अनिर्वाच्यत्व का भी अधिकरण होता है—दूसरा—सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्व भी नहीं हो सकता—कारण निर्धर्मक ब्रह्म में सत्त्व तथा उसका अत्यन्ताभाव भी नहीं है। तुच्छ में भी असत्त्व की तरह उसका अत्यन्ताभाव भी नहीं है, अतः किसी प्रकार अतिव्याप्ति का खण्डन करने पर भी—तुच्छ और ब्रह्म के निर्धर्मक होने से धर्मवत्त्व होने से ही अनिर्वचनीयत्व लक्षण का अति प्रसङ्ग होगा। निर्विशेषत्व प्रतिपादक श्रुति से भी व्याघात द्वारा धर्ममात्र का निषेध न होने से ब्रह्म में सत्त्व के राहित्य होने पर उसका अत्यन्ताभाव दुर्वार है। तीसरा विकल्प भी संभव नहीं है—क्योंकि सामान्य आदि के भी अबाध्य होने के कारण। अबाध्यात्मक सद्रूप के कारण ब्रह्म में सत्त्व के अभाव में सद्रूपत्व नहीं है—ब्रह्म में रूप होने पर श्रौत सत्पद (सत्यं ज्ञानम्) इत्यादि स्थानों का लाक्षणिकत्व नहीं

सत्त्ववत्तदत्यन्ताभावोऽपि नास्ति तुच्छेप्यसत्त्ववत्तदत्यन्ताभावोऽपि नेति कथञ्चिदतिव्याप्तिनिरासेऽपि तुच्छब्रह्मणोर्निर्धर्मकत्वेन धर्मवत्त्वादेवानिर्वाच्यत्वलक्षणातिप्रसङ्गात्। निर्विशेषत्वश्रुत्यापि व्याघातेन

विशेषाऽभावेऽप्यभावरूपविशेषोऽस्तीतिश्रुत्यर्थस्त्वया वर्णनीयस्तथाचातिव्याप्तिरिति भावः न तृतीयो ब्रह्मण्यतिव्याप्तेः ब्रह्मणि निर्धर्मके सत्त्वस्याभावेन सद्रूपत्वस्याप्यभावात् सद्रूपत्वे सत्त्वस्यैव प्रयोजकत्वादित्याह—**ब्रह्मणीति। सत्त्वराहित्य इति।** अङ्गीकृते सतीति शेषः। सत्ताजातिरहितस्यापि सामान्यादेः सद्रूपत्ववत्सत्त्वरहितस्यापि ब्रह्मणः सद्रूपत्वं किन्नस्यात्। तथाच नातिव्याप्तिरित्यत उक्तं—**सामान्यादेरपीति। अबाध्यत्वेनैवेति।** अबाध्यत्वरूपसत्यवत्वेनैवेत्यर्थः। तथाच सामान्यादेः सत्ताजात्यभावेऽप्यबाध्यत्वरूपसत्त्वसद्भावादेव सद्रूपत्वं नान्यथेत्यर्थः। ब्रह्मणः सद्रूपत्वाङ्गीकारे बाधकमाह—**ब्रह्मण इति। लाक्षणिकत्वेति।** नहि सत्पदलक्ष्यस्य सद्रूपत्वं सम्भवति गङ्गापदलक्ष्यस्य गङ्गात्वाभावात्तथात्वे गङ्गापदलक्ष्यत्वमेव न स्यादेवञ्च सत्पदलक्ष्यतयाङ्गीकृतस्य ब्रह्मणः सद्रूपत्वाभावादतिव्याप्तिः स्यादेवेत्यर्थः। तूर्य विकल्पं व्युदस्यति—**न चतुर्थ इति। त्वन्मत इति।** तथाच ब्रह्मण्यतिव्याप्तिरितिभावः। **अखण्डार्थेति।** ब्रह्मणःसत्त्वप्रकारकप्रमाणगोचरत्वे वेदान्तानां सप्रकारकब्रह्मजनकत्वापत्त्या निर्विशेषार्थनिष्ठत्वरूपाखण्डार्थत्वहानिरित्यर्थः। सत्त्वासत्त्वराहित्यमनिर्वचनीयत्वं चेत्तर्हि सत्त्वराहित्यं कीदृशं विवक्षितमित्याह—**अथचेति।** आद्यकल्पमपाकरोति—**नाद्य इति। शुक्तिरूप्यस्येति।** प्रतियोगितदभावयोर्भिन्नसत्ताकत्वनियमादनिर्वाच्यतयाऽभिमतयोरूप्यप्रपञ्चयोः सत्त्वराहित्वस्य प्रातिभासिकत्वे ब्रह्मणीव सत्त्वं पारमार्थिकं स्यादिति भावः। व्यावहारिकं सत्वन्तु पारमार्थिकसत्वकोटिनिविष्टमिति

होगा। चौथा विकल्प भी अशक्य है क्योंकि आपके मत में ब्रह्म में भी सत्त्व का ऐसा स्वरूप है—ऐसा निरूपण असंभव है। पाँचवाँ भी नहीं कह सकते, कारण जो ब्रह्म अखण्डार्थ निष्ठ वेदान्तवेद्य है, उसमें सत्त्व प्रकार प्रमाण गोचरत्व की आपत्ति होगी, अर्थात् ब्रह्म में सत्त्व प्रकारक प्रमाण गोचरत्व होने पर वेदान्तों में सप्रकारक ब्रह्मजनकत्व की आपत्ति होने से निर्विशेषार्थत्वरूप अखण्डार्थ की हानि होगी। कहें कि सत्त्वासत्त्वराहित्य रूप अनिर्वचनीयत्व है। तब पूछेंगे सत्त्वराहित्य कैसा? क्या प्रातिभासिकत्व है? अथवा धर्मी सत्ताकत्व है? या व्यावहारिकत्व है? अथवा पारमार्थिकत्व? पहले पक्ष में शुक्ति रूप तथा आकाश आदि प्रपञ्च में पारमार्थिकत्व का प्रसङ्ग होगा। दूसरा पक्ष नहीं कह सकते—क्योंकि बाध बोध्य के भ्रान्ति सिद्ध होने से भ्रान्ति सिद्ध व्यावहारिक जगत् के साथ साम्य का अयोग होगा। तीसरा पक्ष

धर्ममात्रनिषेधायोगेन ब्रह्मणि सत्त्वराहित्ये तदत्यन्ताभावस्य दुर्वारत्वाच्च न तृतीयः। सामान्यादेरप्यबाध्यत्वेनैवाबाध्यात्मकसद्रूपतया ब्रह्मणः सत्त्वाभावे सद्रूपत्वायोगात् ब्रह्मणः सद्रूपत्वे श्रौतसत्पदस्य लाक्षणिकत्वायोगाच्च। न चतुर्थः। त्वन्मते ब्रह्मण्यपि सत्त्वस्येत्थमिति

पारमार्थिकत्वप्रसङ्गादित्येवोक्तमिति हृदयम्। तथाच रूप्यप्रपञ्चौ पारमार्थिकसत्वोपेतौ प्रातिभासिकसत्वराहित्योपेतत्वात् यत्प्रातिभासकयदभावयुक्तं तत्पारमार्थिकतत्प्रतियोगियुक्तं यथा घटयुक्तं भूतलमित्यनुमानमुक्तं भवति। द्वितीयं निरस्यति—**न द्वितीय इति।** सत्त्वादिरहितस्य न रूप्यरूपधर्मिसमसत्ताकत्वं रूप्यगतस्य सत्त्वराहित्यस्य नास्ति नासीन्न भविष्यतीतिबाधबाध्यस्य त्वन्मते व्यावहारिकत्वेन भ्रान्तिसिद्धेन प्रातिभासिकेन रूप्येण साम्यायोगादेवञ्च प्रपञ्चगतं सत्त्वादिराहित्यमपि न प्रपञ्चधर्मिसमसत्ताकं तस्य नास्ति नासीन्न भविष्यतीतिवेदान्तजन्यचरम-साक्षात्काररूपबाधबाध्यस्य पारमार्थिकत्वेन भ्रान्तिसिद्धेन व्यावहारिकेण जगता साम्यायोगादित्यर्थः। तृतीयं व्युदस्यति—**न तृतीय इति।** प्रपञ्च रूप्ययोरनिर्वाच्यत्वेऽपि प्रपञ्चापेक्षया रूप्यस्य निकृष्टतयावान्तरवैलक्षण्याङ्गीकारेण सत्त्वराहित्यस्य जगति व्यावहारिकत्वे रूप्ये तस्य प्रातिभासिकत्वापत्तेः। अस्त्वितिचेन्न रूप्यगतसत्त्वराहित्यस्य बाधबाध्यस्य प्रातिभासिकेन रूप्येण साम्यायोगात्तथात्वे बाधबाध्यत्वं न स्यादिति

भी संभव नहीं है—कारण जगत् में व्यावहारिकत्व होने तथा रूप्य (रजतादि) में प्रातिभासिकत्व होने से उक्त दोष होगा। रूप्य में व्यावहारिकत्व मानने पर जगत् में पारमार्थिकत्व हो जाने के कारण अद्वैत की हानि होगी। अब चतुर्थ पक्ष को अतिदेश द्वारा दूषित करते हैं—अतएव जो स्वरूपतः दुर्निरूप्य है, उसका कुछ भी रूप वास्तव में नहीं होता—आपके अपने इस वचन से विरोध होगा। दूसरी बात श्रुति एवं युक्ति से भेद का निराकरण करने वालों द्वारा सद्सद् भिन्नत्व अथवा तद् व्याप्तत्व रूप अनिर्वचनीयत्व का समर्थन सम्भव नहीं है। कहें कि सद्विलक्षण होकर असद् विलक्षण होकर जो सद्सद् विलक्षण हो वह अनिर्वचनीय है ऐसा लक्षण है—तो संभव नहीं—कारण परस्पर विरह स्वरूप दो का एकत्र निषेध व्याघात है—सद्भिन्न ही असत्त्व है—सद्भिन्न कहने से असत्त्व की प्राप्ति होती है फिर तद्भिन्नत्व कथन वह तो व्याघात है। अर्थात् पहले सद्भिन्न कहकर असत् बता दिया—उसी को पुनः असत् नहीं है यह कहना क्या वह तो व्याघात नहीं है? कहें कि सत्त्व रहितत्वे सति, असत्त्व रहितत्वे सति होकर जो सद्-असत् दोनों से रहित हो उसे अनिर्वचनीय कहते हैं—तो ऐसा भी नहीं कह सकते—कारण दो नञ्

दुर्वचत्वात्। न पञ्चमः। अखण्डार्थनिष्ठवेदान्तैकवेद्यस्य ब्रह्मणोऽपि सत्त्वप्रकारकप्रमाणागोचरत्वात्। अथ च सत्त्वादिराहित्यं नाम किं प्रातिभासिकम्वा धर्मिसमसत्ताकम्वा व्यावहारिकम्वा पारमार्थिकम्वा? नाद्यः शुक्तिरूप्यस्याकाशादिप्रपञ्चस्य च पारमार्थिकत्वप्रसङ्गात्। न

भावः। रूप्यगतसत्त्वराहित्यस्य बाधबाध्यत्वान्यथानुपपत्त्या व्यावहारिकत्वमङ्गीक्रियत इति चेन्न तथात्वे रूप्यापेक्षया प्रपञ्चस्याधिकत्वात्तत्र सत्त्वराहित्यस्य पारमार्थिकत्वापातान्न-चेष्टाप्तत्तिरद्वैतहानेरित्याह—**रूप्य इति। चतुर्थपक्षमति।** देशेन दूषयति—**अतएवेति।** रूप्यप्रपञ्चयोः सत्त्वराहित्यं न पारमार्थिकमद्वैतहानेरेवेत्यर्थः। रूप्यगतस्यैव पारमार्थिकत्वाङ्गीकारे दोषान्तरमाह—**नहीति।** सत्त्वराहित्याख्यस्यैववास्तवरूपस्याङ्गीकारात् स्ववचनविरोध इत्यर्थः। न च कयापि युक्त्या मानेन वा भेदनिराकरणं भवति अङ्गी-क्रियमाणत्वादितिभगवत्पादवाक्यं मनसि निधायाह—**किञ्चेति।** अभावाभावो भाव एव तद्व्याप्तोवेति मतद्वयसद्भावादाह—**सदसद्भिन्नरूपस्येति।** तद्व्याप्तस्य=सदसद्भिन्नत्वव्याप्तस्य। लक्षणान्तरमुपन्यस्यति—**अथेति।** सद्विलक्षणत्वे वाच्येऽसत्वमेव स्यात् तथाच सद्विलक्षणत्वस्यासत्त्वरूपत्वात्तद्विलक्षणत्वं तत्र न घटत इति व्याघात इत्याशयेन परिहरति—**नेति। परस्परविरहरूपयोरिति।** सद्भिन्नत्वमेवासत्वं तस्यैव प्राप्त्या पुनस्तद्भिन्नत्वविवक्षणे व्याहतिः। एवमसद्विलक्षणत्वमेव सत्त्वं तस्यैव प्राप्त्या पुनस्तद्विलक्षणत्वे वाच्ये व्याहतिरित्यर्थः। अन्योन्याभावगर्भमनिर्वाच्यत्वलक्षणमपाकृत्यात्यन्ताभावघटितं तल्लक्षणं निरस्यति। **न चेति। द्वौ नञाविति।** असत्त्वनिषेधापेक्षयैव द्वौनञाविति न्यायो नतु सत्त्वनिषेधापेक्षया तत्र तु परस्परविरहरूपयोरितिन्यायो द्रष्टव्यः। तथाच द्वौ नञावितिन्यायेनासत्त्वनिषेधे सत्त्वस्यैव प्राप्त्या पुनः सत्त्वनिषेधे मे माता बन्ध्येति

अतिशयेन। प्रकृत अर्थ को बताते हैं—इस न्याय से एक का निषेध अन्य का विधायक होता है—इसलिये उक्त लक्षण में माता बन्ध्या इस कथन की तरह वह तो व्याघात है। अर्थात् 'द्वौ नञौ' इस न्याय से असत्त्व का निषेध होने पर सत्त्व की प्राप्ति होने से फिर सत्त्व का निषेध करने की मेरी मां बन्ध्या है, इस कथन की तरह स्व वचन का व्याघात है। कहें कि सत्त्व असत्त्व में परस्पर विरहात्मक होने से विरोध नहीं है, कारण यहाँ अनिर्वाच्यत्वरूप तृतीय कोटि के अङ्गीकार करने से ही परस्पर विरहात्मक विरोध की सिद्धि नहीं होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—इसमें अन्योन्याश्रय दोष होगा—अनिर्वाच्यत्वरूप तृतीय कोटि की सिद्धि होने पर विरोधाभाव

द्वितीयः। बाधबोध्यस्य भ्रान्तिसिद्धत्वेन समत्वायोगात्। न तृतीयः। जगति व्यावहारिकत्वेन रूप्ये प्रातिभासिकत्वेन नोक्तदोषात्। रूप्ये व्यावहारिकत्वे च जगति पारमार्थिकत्वापातेनाद्वैतहानेः। अतएव न चतुर्थः। नहि स्वरूपतोदुर्निरूपस्य किञ्चिदपि रूपं वास्तवमस्तीति स्ववचनविरोधाच्च। किञ्च श्रुत्या युक्त्या भेदं निराकुर्वता सदसद्भिन्नत्वरूपस्य तद्व्याप्तस्य वा कथमपि ह्यनिर्वाच्यस्य समर्थनाऽसम्भवात्।।७०।।

वत्स्ववचनव्याघात इत्यर्थः। सत्त्वासत्त्वयोर्न परस्परविरहात्मकतया विरोधोऽस्ति, अनिर्वाच्यरूपतृतीयकोट्यङ्गीकारेणैव परस्परविरहात्मकविरोध-स्यासिद्धेरित्याशयेनाशङ्कते—**नन्विति। अन्योन्येति।** अनिर्वाच्यत्वरूपतृतीयकोटिसिद्धौ विरोधाभावसिद्धिस्तत्सिद्धौ चानिर्वाच्यत्वसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः। **असिद्धि-प्रसङ्गादिति।** मातृत्वोक्तौ पुत्रवत्प्राप्त्या पुनर्बन्ध्येत्युक्तौ व्याघातः। बन्ध्यत्वोक्तौ पुत्राभावत्वप्राप्त्या पुनर्मातृत्वोक्तौ व्याघात इति मातृत्वबन्ध्यत्वयोरपि विरोधो न सिद्ध्येत्तत्रबन्ध्यमातृविलक्षणरूपतृतीयकोट्यङ्गीकारेण विरोधस्य परिहर्तुं शक्यत्वात् अप्रामाणिकत्वस्योभयत्रापि साम्यादिति भावः। **अतात्त्विकत्वादिति।** असत्त्वनिषेधे सत्वप्राप्त्या पुनः सद्वैलक्षण्योक्तावपि न व्याघातः सद्वैलक्षण्यस्यातात्त्विकत्वात् एवं सत्त्वनिषेधे परस्परविरुद्धयोरितिन्यायेनासत्वप्राप्त्या पुनरसद्वैलक्षण्योक्तावपि न व्याघातोऽसद्वैलक्षण्यस्य तात्त्विकत्वादित्यर्थः॥ ७०॥

की सिद्धि तथा विरोधाभाव की सिद्धि होने पर अनिर्वाच्यत्व की सिद्धि—स्पष्ट अन्योन्याश्रय है। अन्यथा में माता वन्ध्या इस वाक्य में भी विरोध की असिद्धि का प्रसंग होगा मातृत्व कथन में पुत्रत्व की प्राप्ति होने से उसे पुनः वन्ध्या कहने में व्याघात। बन्ध्या कहने पर पुत्राभाव की प्राप्ति होने से उसे पुनः माता कहने पर व्याघात—इस तरह मातृत्व बन्ध्यत्व में भी विरोध सिद्ध नहीं होगा—तब वहाँ बन्ध्यत्व मातृत्व बन्ध्यत्व विलक्षण तृतीय कोटि में अङ्गीकार से विरोध का परिहार शक्य होगा। अप्रामाणिकत्व दोनों स्थल में साम्य है यह भाव है।।७०।।

श्री सर्वेश्वरो विजयते



भगवते श्री निम्बार्काचार्याय नमः

श्रीमद्भागवत के आध्यात्मिक, दार्शनिक युवा व्याख्याता

आचार्य डॉ० दीपक जी

असि० प्रोफेसर, (शिक्षा-संकाय)

बाबू शिवनाथ अग्रवाल महाविद्यालय, मथुरा



बसन्त भवन, मोती झील, वृन्दावन २८११२१ मथुरा उ०प्र०

सम्पर्क - ९९२७०३९३०९, ९४१००४०६८२

e-mail : deepchandra01@gmail.com

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र ग्रन्थ का प्रकाशन श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की अपूर्व सेवा है:

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य द्वैताद्वैतमतप्रवर्तक जगद्गुरु भगवन् श्री निम्बार्काचार्य जी के ब्रह्मसूत्र भाष्य (वेदान्त पारिजात-सौरभ) तथा श्री श्रीनिवासचार्य जी द्वारा रचित ''वेदान्त-कौस्तुभ'' (वेदान्त पारिजात सौरभ का विशद् भाष्य) में विपक्षियों के मतों का प्रबल खण्डन एवं द्वैताद्वैत का समर्थन किया गया है। इसी क्रम में निम्बार्कीय दिग्विजयी आचार्य श्री केशव काश्मीरि भट्टाचार्य जी ने वेदान्त कौस्तुभप्रभा की रचना कर इस परम्परा के गहन दार्शनिक रूप का दिग्दर्शन कराया था। पुनश्च द्वैताद्वैतमत के विपक्षी सिद्धान्तों को आचार्य माधव मुकुन्द चरण जी ने अपने ग्रंथ ''अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र'' में प्रबल तर्कों के साथ खण्डित किया है।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि मेरे पूज्य सद्गुरुदेव परम सन्त, तपोमूर्ति प्रात: स्मरणीय श्री श्री सन्तदास जी महाराज ने पूर्व में ''वेदान्त कौस्तुभ प्रभा'' का हिन्दी अनुवाद सफलता पूर्वक प्रकाशित करवाकर सम्प्रदाय को गौरवान्वित किया था। पुन: श्री निम्बार्क वेदान्त साहित्य की सेवा में अपने जीवन को समर्पित करते हुए गुरुजी द्वारा आचार्य श्री माधवमुकुन्दचरण विरचित ''अध्याय (परपक्ष) गिरिवज्र'' ग्रंथ- जो श्री शंकराचार्य जी के अध्यास रूपी गिरि पर वज्र प्रहार के समान है- का सरल हिंदी भाषा में अत्यन्त परिश्रम पूर्वक सरल, हृदय, परम पूज्य विद्वत्वर श्रद्धेय पं. श्री वैद्यनाथ झा गुरु जी के द्वारा अनुवाद करवाकर प्रकाशित कराया जा रहा है। निश्चय ही उनका यह प्रयास श्री निम्बार्क सम्प्रदायानुयायियों को सदैव आह्लादित करता रहेगा।

महान् आचार्यों के ग्रंथों को पढ़ना, समझना उनकी कृपा के अभाव में संभव नहीं है, अत: मुझे यह कहने में किंचित् भी संकोच नहीं कि मेरे द्वारा इस महान् ग्रंथ की प्रूफ रीडिंग करना सद्गुरु, प्रभु एवं शास्त्र कृपा का ही फल है। आचार्य चरणों के अनुग्रह से तीन बार इस ग्रंथ के आद्योपान्त अध्ययन तथा श्री निम्बार्क सम्प्रदाय की सेवा करने का अवसर मिला, इस कार्य से मैं निश्चय ही अभिभूत हूँ। मेरा यह मानना है कि मेरे पूज्य सद्गुरुदेव ने हम निम्बार्कीय जनों का भारी उपकार किया है तथा इस सम्प्रदाय को सामान्य और विद्वज्जनों दोनों में प्रतिष्ठित करने का महनीय कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन श्री निम्बार्क सम्प्रदाय की अपूर्व सेवा है।

मंगल कामनाओं के साथ

दीपक

आचार्य दीपक

वृन्दावन

अथ सद्विलक्षणत्वे सत्यसद्विलक्षणत्वे सति सदसद्विलक्षणत्वमिति चेन्न, परस्परविरहरूपयोरेकत्र निषेधस्य व्याघातात्। न च सत्त्वरहितत्वे सत्यसत्त्वरहितत्वे सति सदसद्राहित्यमिति वाच्यम्। द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सातिशयं गमयत इति, न्यायेनैकतरस्य निषेधस्यान्यतरविधिरूपत्वात् माता बन्ध्येतिवद्व्याघातसाम्यात्। नन्वनिर्वाच्यवादे विरोधासिद्धेरितिचेन्न, अन्योन्याश्रयात्। अन्यथा मे माता बन्ध्येति वादेऽपि विरोधासिद्धिप्रसङ्गात्। ननु निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वान्न विरोधः। न च सदादिवैलक्षण्योक्तेर्वैयर्थ्यं तावतैवेष्टसिद्धेरिति तन्निषेधवाच्यम्। तदुक्तेस्तत्तत्प्रतियोगिदुर्निरूपत्वमात्रप्राकट्यार्थत्वात्। नहि

ननु रूप्ये सद्वैलक्षण्यासद्वैलक्षण्यरूप निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वे रूप्ये ख्यातिबाधान्यथानुपपत्त्या तयोः साधनमयुक्तं स्यात् नह्यतात्त्विकसाधनाय प्रमाणोपन्यासो युक्त इत्यतः आह—**सदीति।** सदादिवैलक्षण्यसाधकख्यातिबाधान्यथानुपपत्ति-रूपप्रमाणोक्तिस्त्वित्यर्थः। तदुक्तेः=सदादिवैलक्षण्योक्तेः। **तत्तत्प्रतियोगीति।** रूप्यसत्त्वादिनिषेधप्रतियोगिनः सत्त्वादेरित्यर्थः। तथा च सच्चेन्न बाध्येत, असच्चेन्न प्रतीयेत प्रतीयते बाध्यते च तस्मात्सत्त्वेनासत्त्वेन च तत्स्वरूपं दुर्निरूपमतः सदसद्वैलक्षण्ययोः सदसद्वैलक्षण्यरूपानिर्वाच्यत्वव्यवहार इत्यव्यवहार इत्यत्रैवार्थापत्तेस्तात्पर्यं नतु रूप्ये सद्वैलक्षण्यासद्वैलक्षण्ययोः सत्त्व इत्याशयः। ननु रूप्यस्य सत्त्वासत्त्वाभ्यां दुर्निरूप्यत्वमात्रेण सदादिवैलक्षण्योक्तिर्वा कुतः ख्यात्यन्यथानुपपत्त्या सत्त्वस्य बाधान्यथानुपपत्त्याऽसत्त्वस्य सम्भवेन सदसदात्मकत्वसम्भवादित्य आह—**नहीति।** स्वतः=स्वरूपतः। रूपं=धर्मः। तथाच

यदि कहें कि निषेध का समुच्चय तात्त्विक नहीं है, इसलिये विरोध नहीं होगा—अर्थात् असत्त्व के निषेध होने से सत्त्व की प्राप्ति होने के कारण पश्चात् पुनः सद्विलक्षण कहने पर भी व्याघात नहीं होगा, क्योंकि सद्विलक्षणत्व तात्त्विक नहीं है, इसी प्रकार सत्त्व के निषेध में परस्पर विरुद्धयो—इस न्याय से असत्त्व की प्राप्ति के कारण पुनः उसके वैलक्ष्य कहने पर भी व्याघात नहीं होगा, क्योंकि असद् वैलक्षण्य अतात्त्विक है। कहें कि रजत में असद् वैलक्षण्य रूप निषेध समुच्चय रूप सद् वैलक्षण्य को अतात्त्विक मानने पर रजत में ख्याति बाध की अन्यथा अनुपपत्ति से उन दोनों का साधन अयुक्त होगा, कारण अतात्त्विक वस्तु के साधन के लिये प्रमाण का उपन्यास युक्त नहीं होता, इसलिये कहा 'सदितिः' अर्थात् सदादि वैलक्षण्य साधक ख्याति बाध की अन्यथा अनुपपत्ति रूप प्रमाणोक्ति कहें कि सदादि से वैलक्षण्य के कथन का वैयर्थ्य हैं, क्योंकि तावन्मात्र से इष्टसिद्धि है,

स्वतोदुर्निरूपस्यकिञ्चिदपि रूपं वास्तवमस्तीति चेन्न, सत्वादिराहित्यस्यातात्त्विकत्वेऽपि सत्त्वादेर्दुनिरूपत्वमात्रेणानिर्वाच्यत्वे पंचमप्रकाराविद्यानिवृत्तौ नानिर्वाच्योऽपि तत्क्षय इत्यनिर्वाच्यत्वनिषेधायोगात्। सत्त्वादिवत्तद्राहित्यस्याप्यतात्त्विकत्वे सत्त्वादौ प्रमाणनिरासेन तदुक्तेरयोगाच्च।

रूप्यस्य स्वरूपत एव दुर्निरूपत्वात् तत्र सत्त्वमसत्त्वं सदसदात्मकत्वं वा तद्वैलक्षण्यं वा किमपि रूपं वास्तवं नास्ति येन सदसदात्मत्वेनाप्युपपत्तिः शङ्क्येतेतिभावः। एवञ्च रूप्यं सत्त्वासत्त्वादिवास्तवं किञ्चिद्रूपरहितं स्वरूपेण दुर्निरूपत्वादित्यनुमानमुक्तं भवति। परिहरति—**नेति। नानिर्वाच्योऽपीति।** न सन्नासन्न सदसन्नित्यादि। तत् क्षयः=अविद्यानाशः। **निषेधायोगादिति।** रूप्यादाविवाविद्यानिवृत्तावपि सत्त्वादेदुर्निरूपत्वमात्रेण सदसद्वैलक्षण्यरूपानिर्वाच्यत्वस्यैव वक्तुं शक्यत्वात्। नानिर्वाच्यश्च तत्क्षय इत्यनिर्वाच्यत्वनिषेधायोगादित्यर्थः। **सत्त्वादिवदिति।** रूप्यादेः सत्त्वादौ प्रमाणं नास्ति प्रत्युत तद्वैलक्षण्य एव

इसलिये निषेध वाच्य है, सदादि से वैलक्षण्य का कथन रूप्य सत्वादि निषेध प्रतियोगी सत्त्व आदि के दुर्निरूप्यत्व मात्र के प्रकटनार्थ है। आशय यह है कि सत् होता तो बाध नहीं होता, असत् होता तो प्रतीत नहीं होता, प्रतीत भी होता है और बाधित भी होता, इसलिये उसके स्वरूपात्मना तो सत्त्व रूप से ना ही असत्त्व रूप से निरूपण हो सकता है, सत् असत् उभय से विलक्षण होने से उसमें सद्सद् विलक्षणत्व रूप अनिर्वाच्यत्व का व्यवहार होता है—इसी अर्थापत्ति का तात्पर्य है न कि रूप्य में सद्वैलक्षण्य एवं असद् वैलक्षण्य के सत्त्व में यह आशय है। जो स्वतः दुर्निरुप्य है—उसका कुछ भी वास्तव रूप नहीं होता तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण सत्त्वादि राहित्य में अतात्त्विक होने पर भी सत्त्व आदि के दुर्निरुप्यत्वमात्र से अनिर्वाच्य कहने पर पञ्चम प्रकार अविद्या वृत्ति में अनिर्वाच्य भी उसका क्षय नहीं है, इस तरह अनिर्वाच्यत्व का निषेध नहीं है और सत्त्व आदि की तरह सत्त्वादि में राहित्य के भी अतात्त्विक होने पर सत्त्व आदि में प्रमाण के अभाव से उसका कथन अयुक्त है—दूसरी बात विधिसमुच्चय के ही तात्त्विक होने से प्रतियोगी में दुर्निरूप्यत्व संभव नहीं है। अतएव दूसरा पक्षभी नहीं कह सकते, क्योंकि एकैक यानी प्रत्येक के अतात्त्विक होने से निषेध समुच्चय में अतात्त्विकत्व हो जाने के कारण—जिसका निषेध है, उसके प्रतियोगी के अतात्त्विक होने पर भी जिसका निषेध अतात्त्विक है, उसके प्रतियोगी विधिरूप धर्म में तात्त्विकत्व हो जाएगा, यह अर्थ है। क्योंकि अतात्त्विकत्व है, तात्त्विकात्यन्ताभाव प्रतियोगी। अब सत्त्व

विधिसमुच्चयस्यैव तात्त्विकत्वान्न विरोध इति वक्तुं सुवचत्वाच्च। अथ च निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वं किमुभयातात्त्विक-त्वेनैकैकातात्त्विकत्वेन वा, नाद्यः। उभयतात्त्विकत्ववदुभयातात्त्वि-कत्वस्यापि विरुद्धत्वात्, विधिसमुच्चयस्य तात्त्विकत्वेन प्रतियोगिदुर्निरूप्यत्वस्यायोगाच्च। अतएव न द्वितीयः। तत्प्रतियोगिन एकस्य विधेस्तात्त्विकत्वापातात्। अतात्त्विकत्वं तात्त्विकात्यन्ताभाव-प्रतियोगीति विवेकः। अथ सत्त्वासत्त्वयोः कोवार्थो विवक्षितः सत्ताजातितदभावाविति चेन्न, शुद्धात्मनि सद्वैलक्षण्यस्य

ख्यातिबाधान्यथानुपपत्तिरूपप्रमाणमस्तीत्युक्त्ययोगादुभयोरप्यतात्त्विकत्वाविशेष एकत्र प्रमाणं नास्त्यपरत्र तदस्तीत्युक्त्ययोगादितिभावः। **विधीति**। अर्थापत्त्या सदसद्वैलक्षण्योक्तौ विरोधेऽभिहिते निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वान्न विरोध इति यथोच्यते तथा वयमपि वदामः त्वदीयार्थापत्त्या सदसदात्मकत्वमेवास्तु न च विरोध इति वाच्यम्। तात्त्विकत्वे हि विरोधः विधिसमुच्चयस्यास्माभिरतात्त्विकत्वाङ्गीकारेण विरोधाभावादिति वक्तुं सुशक्यत्वादिति भावः। **उभयेति**। सत्त्वनिषेधासत्त्वनिषेधयोरुभयोरप्यतात्त्विकत्वेन निषेधसमुच्चयोऽप्यतात्त्विक इत्यर्थः। **एकैकातात्त्विकत्वेनेति**। निषेधसमुच्चयोऽप्यतात्त्विक एवेत्यर्थः। एकसत्त्वेऽपि द्वयमिह नास्तीति प्रतीतिसिद्धव्यासज्यवृत्तिप्रतियोगिताकाभावाभिप्रायेणेदम्। **उभयेति**। सत्त्वासत्त्वयोरुभयोरपि तात्त्विकत्वं यथा विरुद्धमुभयोरतात्त्विकत्वमपि विरुद्धमेवेत्यर्थः।

असत्त्व—इन दोनों शब्दों का क्या अर्थ है—जिसमें सत्ता जाति हो वह सत्, जिसमें सत्ता जाति का अभाव हो, वह असत्, ऐसा नहीं कह सकते, तब तो शुद्ध आत्मा (ब्रह्म) में सद् वैलक्षण्य की आपत्ति अर्थात् ब्रह्म सत् नहीं है—आपत्ति होगी और प्रपञ्च में सद्वैलक्षण्य के अभाव की आपत्ति होगी—कारण सत्ता जाति का स्वरूप है—अर्थ क्रियाकारित्व—वह प्रपञ्च में विद्यमान है। इस प्रकार सद्विलक्षण होने से आप के मत में सद्विलक्षणतया अर्थात् रूप के अभीष्ट प्रपञ्च में सत्यत्वापत्ति और सत्त्वेन अभीष्ट आपके ब्रह्म में सद्विलक्षणत्वापत्ति होगी इसीलिये अर्थ क्रिया हेतु सत्य अर्थ क्रिया का अहेतु असत्य यह परिभाषा भी नहीं हो सकती। उक्त दोष के कारण है—बाध्यत्व एवं अबाध्यत्व भी परिभाषा नहीं हो सकती, अर्थात् जो बाधित हो वह असत् जो बाधित न हो वह असत्, यह भी नहीं हो सकता। अत्यन्त असत् (तुच्छ) शश विषाण को आपने सद्विलक्षण रूप अबाध्य स्वीकार किया है, क्योंकि उसकी प्रतिपन्न उपाधि का ही अभाव होने से प्रतिपन्न उपाधि में त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व रूप बाध्यत्व स्वीकार नहीं किया है, इस प्रकार तुच्छ

प्रपञ्चेतदभावस्य चापातात्। अतएव नार्थक्रियाहेतुत्वाहेतुत्वे। नापि बाध्यत्वाबाध्यत्वे सत्त्वरहितस्यानिर्वचनीयस्य बाध्यत्वे तत्र सत्त्वराहित्यायोगात्। अतएव न प्रमाणिकत्वाप्रमाणिकत्वे। किञ्चत्वन्मते ब्रह्मण्यपि प्रामाणिकत्वा-प्रमाणिकत्वयोरभावेन तत्रातिव्याप्तेः। अतएव

विधीति। निषेधसमुच्चयस्य तात्त्विकत्वे तत्प्रतियोगिनः सदसदात्मकत्वरूपविधिसमुच्चयस्य तात्त्विकत्वं स्यात् परस्परविरुद्धयोरितिन्यायादिति भावः। **प्रतियोगीति।** विधिसमुच्चयस्य तात्त्विकत्वे निषेधप्रतियोगिनस्तस्य सत्यस्य सुनिरूपत्वात्तत्प्रतियोगिदुर्निरूपत्वप्रकटनाय सदादिवैलक्षण्योक्तिरित्यस्यायोगादित्यर्थः। अतएवेत्यास्यार्थं स्फुटयति—**तत्प्रयोगिन इति।** एकैकातात्त्विकत्वेन निषेध-समुच्चयस्यातात्त्विकत्वे यन्निषेधस्तत्प्रतियोगिनोऽतात्त्विकत्वेऽपि यन्निषेधोऽतात्त्विकस्तत्प्रतियोगिनो विधिरूपधर्मस्य तात्त्विकत्वं स्यादित्यर्थः। कुत इत्यत आह—**अतात्त्विकत्वं हीति।** तात्त्विकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमित्यत्र तात्त्विकपदं किमर्थमिति चेदुच्यते। अतात्त्विकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमेवातात्त्विकत्वञ्चेत्तर्हि तात्त्विके ब्रह्मण्यप्यतात्त्विकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वसत्त्वेनातात्त्विकत्वापत्तेरतस्तदुपात्तम्। एवञ्च प्रकृते यदाऽसत्त्वनिषेधस्यातात्त्विकत्वं तदा तात्त्विकत्वाभावप्रतियोगित्वं वाच्यं

में भी अबाध्यत्व सत्त्व की ही प्राप्ति हो जाने से आप का अभिमत सद्वैलक्षण्य नहीं होगा। इसी प्रकार बाध्यत्व रूप असत्त्व स्वीकार करने पर अनिर्वाच्य रूप्य को बाध्यत्व स्वीकार करने से उसमें असत्व की ही अप्राप्ति हो जाने से आप के अभिमत असद् वैलक्षण्य का उसमें अयोग हो जाएगा और इसीलिये अर्थात् अनिर्वचनीय रूप्य के अप्रामाणिक होने से उसमें असद् वैलक्षण्य के अभाव होने से ही प्रामाणिकत्व सत्त्व न अप्रामाणिक असत्त्व कह सकते हैं। अर्थात् आपके मत से रूप्य में प्रातिभासिकता के कारण अप्रमाण भूत अविद्या वृत्ति में प्रतिबिम्बित साक्षि चैतन्य वेद्यत्त्व होने से प्रमाणभूत अन्तःकरण वृत्ति से वहाँ आपके द्वारा स्वीकार न करने से अप्रामाणिकत्व का अंगीकार हैं इस प्रकार अप्रामाणिकत्व यदि असत्व होगा तो अनिर्वाच्य रूप में अप्रामाणिक होने से उसमें असत्त्व ही प्राप्त होगा—फिर तो उसमें असद् वैलक्षण्य का अयोग होगा—यह आशय है। दूसरा दोष आपके मत में ब्रह्म में भी प्रामाणिकत्व एवं अप्रामाणिकत्व का अभाव होने से वहाँ

न प्रामाणिकत्वतच्छून्यत्वे। नापि शून्यत्वाशून्यत्वेऽनिर्वाच्यस्याशून्यत्वे तद्वैलक्षण्यायोगात्। नापिब्रह्मशून्यत्वे प्रपञ्चे मयापि तथात्वाङ्गीकारेणेष्टापत्तेः। किञ्च रूप्यादौ घटादौ प्रातिभासिकस्य

सत्त्वनिषेधात्यन्ताभावश्च सत्त्वमेवाभावाभावस्यभावत्वात् तथाच सत्त्वस्यतात्त्विकत्वं सिद्ध्यतीति भावः। सत्त्वासत्त्वयोनवविधा विकल्प्य दूषयति—**अथेति। शुद्धेति।** शुद्धात्मनि सत्ताजातिरूपसत्त्वस्यार्थक्रियाकारित्वस्य चाभावेन शुद्धात्मनोऽपि सद्वैलक्षण्यापातात्। प्रपंचे सत्ताजातेरर्थक्रियाकारित्वरूपसत्त्वस्यैव सद्भावेन सद्वैलक्षण्याभावापातादित्यर्थः। तथाचासद्विलक्षणतया त्वदभीष्टस्य प्रपञ्चस्य सत्त्वापत्तिः सत्त्वेन तदभीष्टस्य ब्रह्मणः सद्वैलक्षण्यापत्तिरिति भावः। अतएव=उक्तदोषादेव। **बाध्यत्वइति।** शशविषाणादेरत्यन्तासतस्त्वया सद्वैलक्षण्यमबाध्यत्वमंगीकृतमस्ति तस्य प्रतिपन्नोपाधेरेवाभावेन प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वरूपबाध्यत्वानंगीकारादेवञ्च तुच्छेऽप्यबाध्यत्वरूपसत्वस्यैव प्राप्त्या त्वदभिमतसद्वैलक्षण्यायोगात् एव बाध्यत्वमसत्त्वमित्यंगीकारेऽनिर्वाच्यापि रूप्यस्य बाध्यत्वांगीकारेण तत्रासत्वस्यैवाप्राप्त्या त्वदभिमतासद्वैलक्षण्यायोगादिति भावः। अतएव=अनिर्वाच्यस्य रूप्यस्याप्रमाणिकत्वेनासद्वैलक्षण्यायोगादेव। त्वन्मते रूप्ये प्रातिभासिकतयाऽप्रमाणभूताविद्यावृत्तिप्रतिबिम्बितसाक्षिचैतन्यवेद्यत्वेन प्रमाणभूतान्तःकरणवृत्तेस्तत्र त्वयानंगीकारेणाप्रमाणिकत्वांगीकारादेवञ्चाप्रामाणिकत्व-मसत्त्वंचेदनिर्वाच्यरूप्यस्याप्रमाणिकत्वेनासत्त्वस्यैव प्राप्तत्वात्त्वदभिमतासद्वैलक्षण्यायोग

इस लक्षण की अति व्याप्ति होगी। अतएव उक्त रीति से रूप्य आदि में असद् वैलक्षण के अयोग से ही प्रमाणिकत्व, तच्छून्यत्व लक्षण भी नहीं हो सकता। इसीलिये शून्यत्व तथा अशून्यत्व भी उन दोनों का लक्षण संभव नहीं—अनिर्वाच्य को अशून्य कहने पर उसमें तद् वैलक्षण्य का अयोग होगा। अशून्यत्व रूप सत्त्व यदि माने तो अनिर्वचनीय रूप्य में आप द्वारा अशून्यत्व स्वीकार करने पर उसमें सत्त्व की आपत्ति हो जाएगी आपका अभिमत असद् वैलक्षण्य का अयोग होगा ना ही ब्रह्मत्व, शून्यत्व सत्त्वासत्त्व कह सकते, क्योंकि प्रपञ्च में मैंने भी वैसा स्वीकार किया है—मुझे इष्टापत्ति होगी, अर्थात् अन्य ब्रह्मत्व ही सत्त्व है—तो ब्रह्मरूप, सद् वैलक्षण्य तथा शून्यरूप असद् वैलक्षण्य प्रपञ्च में हमने स्वीकार किया है, यह अनिष्ट नहीं है। दूसरी बात सत्त्व की कोई परिभाषा हो तथापि तद् वैलक्षण्य रूप एवं प्रपञ्च में कह नहीं सकते—कारण उन दोनों में क्रमशः प्रातिभासिकत्व एवं व्यावहारिकत्व सत्त्व अङ्गीकार किया गया है, फिर उसमें सद् वैलक्षण्य कैसे

व्यावहारिकस्य च सत्त्वस्य भावात्कथं सद्वैलक्ष्यण्यम्। किंचासत्त्वं नामाऽस्तिशब्दाभिधेयं नास्तिशब्दाभिधेयम्वा। नाद्यः। भावत्वापत्त्यास्वरूपासिद्धेः। सद्वस्त्वन्तःपातित्वेन सन्निषेधेनैव सिद्धौ सत्यां

इत्याशयः। दोषान्तरमाह—**किञ्चेति।** अतएव=उक्तरीत्या रूप्यादावप्यसद्वैलक्षण्यायोगादेव। रूप्यादेरपि निःस्वरूपत्वरूपशून्यत्वसद्भावेन शून्यत्ववैलक्षण्यरूपासद्वैलक्षण्यायोग इति भावः। **शून्यत्वाशून्यत्वेति।** एवञ्चाशून्यत्वरूपं सत्वञ्चेदनिर्वाच्ये रूप्येऽशून्यत्वस्य त्वयाङ्गीकृतत्वेन सत्त्वापत्त्या त्वदभिमतसद्वैलक्षण्यायोगादित्यर्थः। **इष्टापत्तेरिति।** ब्रह्मत्वमेवासत्त्वञ्च ब्रह्मरूपसद्वैलक्षण्यस्य शून्यरूपासद्वैलक्षण्यास्य च प्रपंचेऽस्माभिरङ्गीकारान्नेदमनिष्टमितिभावः। अस्तु वा सत्त्वं यत्किञ्चित्तथापि तद्वैलक्षण्यस्य न रूप्यप्रपञ्चयोवक्तुं शक्यं प्रातिभासिकत्वव्यावहारिकत्वसत्वयोरङ्गीकारादित्याह—**किंचेति।** अनिर्वचनीयत्वलक्षणनिविष्टसद्विलक्षणत्वस्य लक्ष्येऽसम्भवमुपपाद्य सम्प्रति द्वितीयदलस्य वैयर्थ्यं कर्तुं विकल्पयति—**किंचेति।** असतोऽस्तिशब्दाभिधेयत्वं कथमितिचेदित्थम्, शुक्तावसति रजत इदं रूप्यमस्तीति प्रतीत्या असतोऽप्यस्तिशब्दाभिधेयत्वे न प्रतिपत्तिरन्यथा रजतार्थिनः पुरोवर्तिनि प्रवृत्तिर्नस्यादतस्तथाविधविकल्पस्य नानुपपत्तिरिति भावः। यद्यसतोऽस्तिशब्दाभिधेयत्वं स्यात्तदा तस्य भावत्वं स्यात्तथासति तस्य स्वरूपं व्याहन्येत इत्याशयेनाद्यविकल्पं निरस्यति—**नाद्य इति। स्वरूपासिद्धेरिति।** असतोऽस्तिशब्दाभिधेयत्वेनभावत्वप्राप्त्या।

होगा? अब कहते हैं कि अनिर्वचनीयत्व में निविष्ट सद् विलक्षणत्व रूप लक्षण का लक्ष्य में असंभव का उपपादन कर अब द्वितीय दल असद् विलक्षणत्व को वैयर्थ्य करने के लिये विकल्प करते हैं कि असत्त्व क्या है—अस्ति शब्दाभिधेय है या नास्ति शब्दाभिधेय? पहला नहीं कह सकते—स्वरूपासिद्धि असत् में अस्ति शब्दाभिधेय होने से उसमें भावत्व की प्राप्ति होने के कारण उसका असत्व रूप सिद्ध नहीं होगा। कहेंगे कि इस से हमारा क्या अनिष्ट हुआ उस पर कहते हैं—सद् वस्तु के अन्तःपाती होने से सत् के निषेध से ही सिद्धि हो जाती। विशेषण का वैयर्थ्य होगा, अर्थात् अस्ति शब्द के अभिधेय होने से असत्त्व के सत् कोटि में निविष्ट हो जाने के कारण सद् विलक्षणत्व विशेषण से ही उसकी व्यावृत्ति की सिद्धि हो जाएगी असद् विलक्षण विशेषण व्यर्थ है—यही अनिष्ट आपका हो गया यह भाव है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते नास्ति शब्दाभिधेयत्व रूप असत्त्व का निषेध में अस्ति शब्दाभिधेयत्व जो वियत् आदि प्रपञ्च में हमारे (वैष्णव मत में) सिद्ध है—उसका ही साधन आपने किया—यह सिद्ध साधन दोष आपके मत में और

विशेषणवैयर्थ्याच्च। न द्वितीयः, तन्निषेधे सिद्धसाधनप्रसङ्गात्, व्यावृत्तिनैष्फल्याच्च प्रतीत्यसम्भवेन तन्निषेधायोगाच्च, अन्यथा माता बन्ध्येतिवद्वचनव्याघाताच्चेति सङ्क्षेपः॥ ७१॥

इति पराभिमतानिर्वचनीयलक्षणगिरिनिपातः॥ १९॥

तस्यासत्वरूपस्वरूपं न सिद्ध्येतेत्यर्थः। ततः किमनिष्टं जातमस्माकमिति चेत्तत्राह–**सद्वस्त्वन्तःपातित्वेनेति।** अस्तिशब्दाभिधेयत्वेनासत्त्वस्य सत्त्वकोटिनिविष्टत्वात्सद्विलक्षणत्वविशेषणेनैव तस्य व्यावृत्तिसिद्धाव-सद्विलक्षणविशेषणं व्यर्थमित्यर्थः। तन्निषेधसिद्धौ=असन्निषेधसिद्धौ। **विशेषणमति।** अनिर्वाच्यत्वकुक्षौनिविष्टमसद्विलक्षणविशेषणं तस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्यर्थः, इदमेवानिष्टं भवतां निष्पन्नमितिभावः। नास्तिशब्दाभिधेयत्वरूपासत्वस्य निषेधेऽस्तिशब्दाभिधेयत्वं वियदादिप्रपञ्चेयदस्मन्मते सिद्धं तस्यैव साधनं भवताकृतमिति सिद्धसाधनं तव मतेऽर्थान्तरमित्याशयेन द्वितीयकल्पं व्युदस्यति—**न द्वितीय इति।** तन्निषेधे=नास्ति-शब्दाभिधेयत्वनिषेधे। **सिद्धसाधनेति।** तन्निषेधेऽस्तिशब्दाभिधेयत्वं पर्य्यवसन्नं तच्चास्माभिः प्रपञ्चेऽङ्गीकारात् सिद्धसाधनमित्यर्थः। यदि प्रपञ्चस्योक्तरीत्यासत्वं सिद्धं तदाऽसद्विलक्षणत्वपदेन तद्व्यावृत्तिर्निष्फला स्यादित्यभिप्रेत्याह-**व्यावृत्तिनैष्फल्याच्चेति।** प्रतियोगिप्रमितिं विना निषेधायोगादित्याशयेनाह—**प्रतीत्यसम्भवेनेति।** नास्तिशब्दाभिधेयत्वप्रतीतिः रूपस्यासतःस्यात्तदा तन्निषेधः कर्त्तुंशक्यते नत्वेवमित्यर्थः। विपक्षेबाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** प्रतीतिमन्तरानिषेधाङ्गीकार इति तदर्थ॥ **७१॥**

इति पराभिमतानिर्वचनीयत्वलक्षणगिरिनिपातव्याख्या॥ १९॥

हो गया—इसी आशय से कहते हैं—न द्वितीय नास्ति शब्दाभिधेयत्व के निषेध में सिद्ध साधन दोष का प्रसङ्ग होगा। नास्तिशब्दाभिधेयत्व के निषेध में अस्ति शब्दाभिधेयत्व पर्यवसित होगा—वह तो हम लोग जगत् में मानते ही हैं—इस तरह सिद्ध साधन होगा यदि उक्तरीति से प्रपञ्च में असत्त्व सिद्ध होता है तब असद् विलक्षणत्व पद से उसकी व्यावृत्ति निष्फल होगी और प्रतियोगी की प्रमिति के बिना उसका निषेध असंभव है—अन्यथा प्रतीति के बिना निषेध माने तो माता बन्ध्या इस वचन की तरह वचन व्याघात होगा।।७१।।

इस प्रकार पराभिमत अनिर्वचनीय लक्षण गिरि का निपात हुआ॥ १९॥

(२०) अनिर्वचनीयवादविषयकप्रमाणगिरिनिपातः

अथानिर्वचनीयप्रमाणकथाऽपि मनोरथमात्राऽप्रसिद्धत्वात्। नन्वेतावन्तं कालं शुक्तौ मिथ्यैव रजतमभात् मरीचिकायां मिथ्यैव जलमभादित्यादि प्रत्यक्षप्रतीतेरेवात्र मानं। तथाहि न तावदुक्तप्रत्यक्षस्य सर्वथाऽसद्विषयकत्वं वक्तुं शक्यं शशशृङ्गादीनामपि प्रतीतिविषयतापत्तेः, बाह्यमतप्रवेशाच्च। नापि सद्विषयकत्वं नेदं रजतमपितु शुक्तिः नेदं जलमपितु मरीचिकेत्यादिना

अथानिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षानुमानप्रमाणनिराकरणम्। अथानिर्वाच्यत्वे तावत्प्रत्यक्षप्रमाणं शङ्कते—**नन्विति**। मिथ्यात्वस्याभावघटितत्वान्न तत्प्रत्यक्षानुपपत्तिरभावप्रत्यक्षवादिनां मत इति भावः। अत्र=अनिर्वाच्यत्वे। मिथ्याशब्दस्यासत्वार्थकत्वेनोक्तप्रत्यक्षप्रतीतिरस-द्विषयकत्वावगाह्येवास्तामित्याशङ्क्य निराकरोति—**नतावदिति**। यदि ज्ञानेऽसतःभानं स्यात्तदापत्तिं दर्शयति—शशशृङ्गेति। यद्यसतो भानमुपेयते तदाप्याह—**बाह्यमतेति**। वेदबाह्याःबौद्धचार्वाकमतानुयायिनस्ते ह्यसतोऽसौ भानमङ्गीकुर्वन्ति तन्मतावलम्बने चेतरेऽपि तन्मतप्रविष्टा भवेयुरित्यर्थः। उक्तप्रतीतेरसद्विषयकत्वमपाकृत्य सद्विषयकत्वं निरस्यति—**नापीति**। उत्तरकाले बाधान्यथानुपपत्त्या उक्तप्रतीतेः सद्विषयकत्वमपि न कल्पयितुं शक्यत इत्यर्थः। निगमयति—**तस्मादिति**। एतावन्तं कालं शुक्तौमिथ्यैव रजतमभादिति प्रतीतिः सदसद्विलक्षणमनिर्वचनीयरजतावगाह्येवेत्याशयः। असद्भानेऽ-सदेव रजतमभादिति प्रत्यक्षं विमतमसत्, सत्वानधिकरणत्वात्, शशशृङ्गवत्, विमता अप्रमा असद्विषयिणी,

---

अनिर्वचनीय होने में प्रमाण का खण्डन

अब अनिर्वचनीयत्व में प्रमाण कथा भी मनोरथ मात्र है—कारण इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यदि कहें कि इतनी देर तक शुक्ति में मिथ्या ही रज का भान हुआ—मरीचिका में मिथ्या ही जल था, इत्यादि प्रत्यक्ष प्रतीति ही इसमें प्रमाण है—कारण उक्त प्रत्यक्ष (शुक्ति में इदं रजत यह प्रत्यक्ष) असद् विषयक नहीं हो सकता—कारण यदि असत् विषय का भी प्रत्यक्ष होता तो कदाचित् शश शृङ्ग आदि की भी प्रतीति होती—उसमें भी प्रत्यक्ष विषयता आपत्ति होगी, असत् का भान माने बाह्य मत में प्रवेश होगा—वेद बाह्य—बौद्ध, चार्वाक आदि ही असत् का भान मानते हैं—उसे सद् विषयक भी नहीं कह सकते—कारण उक्त प्रतीति का नेदं रजतम् (यह रजत नहीं है) बल्कि शुक्ति है, यह जल नहीं है, किन्तु मरीचिका है—इत्यादि रूप में उसका बाध देखा जाता है—इसलिये सत्, असत् दोनों से विलक्षण तात्कालिक प्रतीति (क्षणिक प्रतीति) विषय शुक्ति का रजत—मरीचिका का जल

बाधदर्शनात्। तस्मात्सदसद्विलक्षणं तात्कालिकप्रत्ययगोचरमनिर्वचनीयमेवेति सिद्धमिति चेन्न, असदेवेदं रजतमभादिति पूर्वोक्तप्रत्यक्षस्यासद्विषयकत्वादिति केचित्। तत्तुच्छम-सत्वे तज्ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वासिद्धेः। इन्द्रियसन्निकर्षाभावात्, नहि शशशृङ्गं साक्षात्करोमीत्यनुभूयते कैश्चित् किञ्चासन्नाम किञ्चिदस्ति, न वा। नाद्यः।

सत्वानधिकरणविषयकत्वात्, सन्मात्राविषयकत्वे सति सविषयकत्वात्। शशशृङ्गमसदितिवाक्यजन्यपरोक्षवदित्यनुमानञ्च तत्र प्रमाणं प्रतिपादयनसत्ख्यातिवादी, अनिर्वाच्यत्वपक्षं निराकरोति—**नेति**। असत् ख्यातिवादिनां मतमपाकरोति—**तत्तुच्छमिति**। भवदुक्तराद्धान्तोऽनुपपन्न इत्यर्थः। प्रतिज्ञातार्थे हेतुमाह—तज्ज्ञानस्येति। नह्यसदिन्द्रियसन्निकृष्टं भवतीत्याह—**इन्द्रियसन्निकर्षेति**। **स्वरूपहानेरिति**। असतोऽस्तित्वे तस्यासत्स्वरूपस्य हानिःस्यादित्यर्थः। **व्याघाताच्चेति**। असत्वाभाव एव सत्वं तत्प्राप्तौ कथमसत्वं स्यात् सत्वाभावएवासत्वं तत्प्राप्तौ कथं सत्वमुपपद्येतेति सत्वासत्वयोर्व्याहतिरित्यर्थः। **पूर्वविज्ञानसामर्थ्यादिति**। पूर्वज्ञानस्य पुरोवर्तिसामान्यांशविज्ञानस्य व्यावहारिकरजतादिज्ञानस्य वा शक्तेरित्यर्थः। तस्या एष स्वभावः यदसत्प्रकाशयतीति। अतएवाहुः। असत्प्रकाशनशक्तिरेवास्याविद्येति अस्य=अज्ञानस्य। असत्प्रकाशन-शक्तित्वात्=मिथ्यारजतादिविषयकव्यवहारजननानुकूलशक्तित्वात्। उक्तानुभवः=

अनिर्वचनीय ही है (या था) यह सिद्ध होता है, तो यह ठीक नहीं—असत् ही रजत का भान हुआ था—इसलिये पूर्वोक्त प्रत्यक्ष असत् विषयक ही है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं—असत् ख्याति वादी (उनके अनुसार—असद् माने असदेव रजतं अभात् इति प्रत्यक्षं विमतम् असत् सत्त्वानधिकरणत्वात् शशशृङ्ग्वत्, दूसरा अनुमान—विमता अप्रमाण असत् विषयिणी सत्त्वानधिकरण विषयकत्वात्, सन्मात्रा विषयकत्वे सति सविषयकत्वात् शशशृङ्गम् असत् एतद् वाक्यजन्य परोक्षवत्—इत्यादि अनुमान प्रमाण है)। पर यह मत असत् ख्यातिवाद—अत्यन्त तुच्छ है—असत् ख्यातिवाद वाला सिद्धान्त अनुपपन्न है—कारण उसे असत् मानने पर उस ज्ञान में प्रत्यक्षत्व की सिद्धि नहीं हो सकती—कारण उसके इन्द्रिय सन्निकर्ष का अभाव है—मैं शशशृङ्ग का अनुभव (प्रत्यक्ष) कर रहा हूँ—ऐसा कोई अनुभव नहीं करता। दूसरी बात असत् नाम की कोई वस्तु है या नहीं? पहला पक्ष कह नहीं सकते कारण है कहें तो असत् स्वरूप भी हानि (जो है—वह असत् कैसे) दूसरी—वह तो व्याघात भी है—कारण असत्त्वाभाव ही सत्त्व है—तो यदि सत्त्व है—तो असत्त्व कैसे—दूसरा

स्वरूपहानेः, व्याघाताच्च। द्वितीये यदि नास्त्येव कुतस्तज्ज्ञानं तस्मादुक्त-प्रतीतिगोचररजतस्यासत्वमनुपपन्नम्। ननु विषयस्यासामर्थ्ययोगेऽपि पूर्वज्ञानसामर्थ्यादुपजातं प्रकाशते, अस्यासत्प्रकाशनशक्तित्वादेवोक्तानुभवः सूपपन्न इति चेन्न, शक्याभावे शक्तेरेवासम्भवात्। न चासदेवास्याः शक्यमिति वाच्यम् विकल्पासहत्वात्। असद्विज्ञानकार्यं वा तज्ज्ञाप्यं वा ? नाद्यः। असतः कार्यत्वासम्भवात्। अन्यथा खपुष्पादिकमपि कस्य-

---

असदेवेदं रजतमभादित्यनुभवः। परिहरति—**नेति**। शक्याभावे=ज्ञाननिष्ठशक्ति-विषयस्याभावे। शक्तेः=ज्ञाननिष्ठशक्तेः। अस्याः=ज्ञाननिष्ठासत्प्रकाशनशक्तेः। असद्विज्ञानकार्य्यम्=असद्रजतादिकं कार्यं विज्ञाननिष्ठशक्तिजन्यम्। तज्ज्ञाप्यम्=ज्ञाननिष्ठशक्ति जन्यज्ञानविषयः। असतः कार्य्यानुपपत्तेरित्याशयेनाद्यविकल्पं निरस्यति—**नाद्य इति**। विपक्षे बाधकमाह—**अन्यथेति**। असतः कार्यत्वाभ्युपगम इति तदर्थः। विज्ञानान्तर-द्वारा=ज्ञाननिष्ठशक्तिजन्यज्ञानद्वारा। **अनवस्थापत्तेश्चेति**। विज्ञानमसत्प्रकाशने विज्ञानान्तरमपेक्षते तत्रापि विज्ञानान्तरमित्यनवस्थेत्यर्थः। ननु सदसतोः सम्बन्धाभावेऽपि ज्ञानम-सद्विषयकव्यवहारं जनयत्वित्याशङ्क्याह—**न हीति**। असम्बद्धम्=ज्ञानासम्बद्धम्। अन्यथा=असम्बद्धस्यापि प्रकाशकत्वे। असदधीननिरूपकम्=असदधीननिरूपणत्वम्। कस्य ज्ञानमिति

सत्त्वाभाव ही असत्व है और ऐसा असत्त्व प्राप्त है तो सत्त्व कैसे उपपन्न होगा—इस प्रकार सत्त्वासत्त्व में व्याघात है। द्वितीय पक्ष—यदि नास्त्येव है—वस्तु है ही नहीं तब उसका ज्ञान कैसा—इसलिये शुक्ति में प्रतीयमान रजत का असत्त्व अनुपपन्न है—अर्थात् शुक्ति में इदं रजतम् यह रजतविषयक ज्ञान असत् विषयक नहीं कहा जा सकता। कहें कि विषय में असामर्थ्य होने पर पुरोवर्ति (शुक्ति वृत्ति) सामान्यांश (इदमंश) विज्ञान अथवा व्यावहारिक रजतादि ज्ञान की शक्ति से यानी उसका यह स्वभाव है असत् प्रकाशन—इसीलिये कहते हैं—असत् प्रकाशन शक्ति ही अविद्या है, अज्ञान (अविद्या) की इस असत् प्रकाशन शक्ति से ही—शुक्ति के असत् रजत का अनुभव हो सकता है—तो ऐसा नहीं कह सकते, शक्य के अभाव में शक्ति ही संभव नहीं है। कहें कि ज्ञाननिष्ठ शक्ति का असत् ही शक्य है तो ऐसा नहीं कह सकते—यह कथन विकल्पों (प्रश्नों) का उत्तर नहीं दे सकता, अर्थात् यदि हम पूछें कि असत् विज्ञान का कार्य है, यानी विज्ञाननिष्ठ शक्ति जन्य है अथवा ज्ञाननिष्ठ शक्तिजन्य ज्ञान का विषय है ? पहला नहीं कह सकते, असत् में कार्यत्व संभव नहीं

चित्कार्यं स्यात्। द्वितीयेऽपि विज्ञानं विज्ञानान्तरद्वाराऽसत्प्रकाशकम्, उत स्वयमेव विज्ञानं तज्ज्ञापकम्। नाद्यः। विज्ञानान्तरानुपपत्तेः, अनवस्थापत्तेश्च। नान्त्यः। सदसतोः सम्बन्धासम्भवात्, नह्यसम्बद्धं वस्तु प्रकाशयितुं विज्ञानसहस्त्रस्यापि शक्यत्वमन्यथा ध्रुवप्रत्यक्षे तन्मध्यदेश-वृत्तिवस्तुजातस्यापि प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्। नचासदधीननिरूपकत्वं सद्रूप-विज्ञानस्यासता तेन सम्बन्धाभ्युपगमान्नोक्तदोष इति वाच्यम्। असतोऽ-भावरूपस्य निरूपकत्वासम्भवात्, तस्मान्नासतः प्रतीतिविषयत्वमिति। ननु मास्तु रजतादेर्विषयस्यासतो भानमुक्तयुक्त्यसहत्वात्, किन्तु सदेवास्तु

प्रश्नेऽसतोज्ञानमित्यसदधीननिरूपकत्वमेवासता सह ज्ञानस्य सम्बन्धो निरूप्यनिरूपकभाव इति भावः। नह्यसति निरूपकत्वं घटत इत्यत आह—**असतोऽ-भावस्येति**। नापि स्वभावः सम्बन्धः सन्मात्रनिष्ठस्यकार्यकारणभावस्याविनाभावस्य वा स्वभावस्य सदसतोरयोगादित्यपि बोध्यम्। **तस्मादिति**। ज्ञानासतोसम्बन्धाभावादित्यर्थः। विमतमसतमिति प्रागुदाहृतप्रथमानुमाने शब्दैकसमधिगम्यत्वस्य द्वितीयतृतीययोः परोक्षत्वस्योपाधित्वात्, प्राङ्निर्दिष्टमनुमानत्रयं दुष्टम्। इत्यसत्ख्यातिवादिमतस्य निरसनम्। सम्प्रति सत्ख्यातिवादिमतमपाकर्त्तुमुपन्यस्यति—**नन्विति**। तन्मतं दूषयति। **तत्तुच्छमिति**। विकल्पं दर्शयति—**सद्रूपमिति**। तस्य=रजतस्य। पूर्वाचार्य्यैः=योगाचार्य्यैः। ननु

है। अन्यथा खपुष्प आदि भी किसी के कार्य हो तो द्वितीय पक्ष भी नहीं कह सकते—इसमें भी पूछ सकते हैं कि विज्ञान किसी अन्य विज्ञान के द्वारा असत् का प्रकाशक है या स्वयमेव विज्ञान उसका ज्ञापक है—पहला नहीं हो सकता—अन्य विज्ञान की उपपत्ति नहीं है, दूसरा अनवस्था दोष है। दूसरा पक्ष भी संभव नहीं है। सत् और सत् में सम्बन्ध असंभव। असम्बद्ध वस्तु को प्रकाशित करने में सहस्त्रों विज्ञानों की सामर्थ्य नहीं है। अन्यथा ध्रुव के प्रत्यक्ष होने पर उसके मध्यवर्ती अन्यान्य समस्त वस्तुओं के प्रत्यक्षत्व का प्रसंग होगा। कहें कि असदधीन निरूपकत्व है असदधीन निरूपणत्व। किसका ज्ञान? ऐसा प्रश्न होने पर असतो ज्ञानम् यह उत्तर असद्हीन निरूपकत्व है। असत् के साथ ज्ञान का सम्बन्ध है, अर्थात् निरूप्य निरूपकभाव—उससे सम्बन्ध स्वीकार करने से उक्त दोष नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते। अभाव रूप असत् में निरूपकत्व संभव नहीं है—इसलिये असत् प्रतीति का विषय नहीं हो सकता—इसलिये 'इदं रजतम्' यह प्रतीति सत् विषयक ही है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं—यह भी अति तुच्छ है—यहाँ भी विकल्प सहन

इत्याहुरन्ये। तत्तुच्छम्। विकल्पासहत्वात्। तथा सद्रूपं रजतं वाह्यम्, आन्तरं वा, न तावदान्तरं तस्य विज्ञानत्वे मानाभावात् सुखादिवत् केवलसाक्षि-वेद्यत्व लक्षणान्तरत्वस्य विज्ञानत्वस्य तव पूर्वाचार्य्यैरनङ्गीकारेणाप-सिद्धान्तापातात्, सत्वस्य विज्ञानाभिन्नत्वेरजतं जानामीति भेदानुभव-विरोधात्, प्रतिपत्तुः प्रत्ययाभेदेनाहं रजतमिति प्रतीतिः स्यात्। न चानु-भवस्यैवात्रप्रमाणत्वात् कथं प्रमाणाभावत्वमिति वाच्यम्। अविचारित-त्वात् तथाचेदं रजतमिति प्रत्ययस्यान्तरत्वे मानत्वमभिप्रेतं बाधरूपस्य नेदं रजतमिति प्रत्ययस्य वा, नाद्यः। तस्य रजतत्वासमानाधिकरणय-

रजतादिकं ज्ञानाभिन्नमिन्द्रियजम्प्रयोगमन्तरेणापरोक्षत्वात्सम्वेदनवत्। न च रजतस्य रूपादिमत्वेनेन्द्रिययोग्यत्वादिन्द्रियसम्प्रयोगमन्तरेणेति विशेषणस्याभावाद्विशेषणा-सिद्धिरिति वाच्यम्। रजतस्यान्तरविज्ञानरूपत्वेनेन्द्रियेण सह संयोगाभावात्। नच रजतेन सहेन्द्रियस्य ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिरस्ति। ज्ञानस्य प्रत्यासत्तेरनभ्युपगमादित्याशयेनाह—**सत्वस्येति**। सद्रूपस्यरजतस्येति तदर्थः। **प्रमाणत्वादिति**। रजतनिष्ठान्तरत्वविषयकावरणनिवर्त्तकत्वादित्यर्थः। रजतमितिप्रत्ययस्य वा बाधकप्रत्ययस्य वा तत्र मानत्वमित्याह—**तथा चेति**। तस्य=इदं रजतमिति प्रत्ययस्य। अन्यत्र=रजतनिष्ठान्तरत्वे। तद्भेदमात्रम्=रजतभेदमात्रम्। रजतस्य ज्ञानाकारत्वं स्वाभाविकं हेत्वन्तराधीनं वेत्याह—**किं चेति**। स्वभावतः=ज्ञानातिरिक्तकारणानधीनतः। **हेत्वन्तरेति**। ज्ञानातिरिक्तकारणनिरूप्यमित्यर्थः।

की योग्यता नहीं है। हम पूछते हैं कि सत् रूप रजत बाह्य है या आन्तर? इसे आन्तर नहीं कह सकते—उसके विज्ञानत्व में कोई प्रमाण नहीं है—सुख आदि की तरह केवल साक्षिवेद्यत्व मानने पर लक्षणान्तरत्व या विज्ञानत्व आप के पूर्वाचार्य[१] योगाचार आदि ने स्वीकार नहीं किया है—इसलिए यह अप सिद्धान्त होगा। सत्त्व को विज्ञान से अभिन्न मानने पर रजतं जानामि इस भेदानुभव का विरोध होता है। ज्ञाता का ज्ञान के साथ अभेद होने से 'अहं रजतम्' ऐसी प्रतीति होगी। कहें कि अनुभव ही यहाँ प्रमाण है—फिर प्रमाण का अभाव है—यह कैसे कहा जा सकता तो यह कथन विवेक शून्य है—जैसे 'इदं रजतम्' यह प्रतीति रजत के आन्तरत्व में प्रमाणत्वेन अभिप्रेत है अथवा 'नेदं रजतम्' इस बाध रूप प्रतीति का? पहला पक्ष नहीं कह सकते—कारण उक्त प्रतीति के रजतत्वासामानाधिकरण बोधन मात्र से

१. क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार्य मत मानने से ही यहाँ का भाव स्पष्ट होता है।

बोधनमात्रेणोपक्षीणत्वान्नान्यत्र मानत्वम्। नापि द्वितीयः। नहि बाधज्ञानं तस्य ज्ञानाकारत्वमवगाहते, अपितु पुरोवर्तिनि तद्भेदमात्रम्, इदन्त्वेन निषिद्धस्य रजतस्य देशान्तरे सत्वेनाप्युपपत्तेः। किञ्च रजतस्य ज्ञानाकारत्वं तत्स्वभावतो वा, हेत्वन्तरनिरूप्यं वा, नाद्यः। विज्ञानत्वावच्छिन्नमात्राणां सर्वविज्ञानानां रूप्याकारत्वप्रसङ्गात्। न द्वितीयः। हेत्वन्तररूपवस्तुमात्रानङ्गीकारात्। अपि चान्तरस्य रजतस्य बाह्ये शुक्त्यादावध्यासोऽभिप्रेतः, आन्तरे रजते बहिष्ट्वस्य वा, नाद्यः। तव मते बाह्यस्यालीकत्वात्कथं तत्राध्यासः। न द्वितीयः। रजतस्यापि बाधार्हत्वेन तत्र बहिष्ट्वारोपायोगात्, नेदं रजतमिति बाधस्य

हेत्वन्तररूपेति। सर्वं विज्ञानं तदतिरिक्तवस्तुनोऽसत्वादिति भावः। न तावद्रजतमान्तरं शुक्तिशकलादावध्यस्यते विज्ञानवादिमते बाह्यस्यालीकत्वेन तत्राध्यासायोगादित्याशयेनाद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति**। द्वितीयपक्षमपाकरोति—न द्वितीय इति। **विशिष्टरजतेति**। रजतत्वविशिष्टरजताभावविषयकत्वेनेत्यर्थः। तत्कल्पना-सम्भवात्=आन्तररजतकल्पनासम्भवात्। अतएव=रजतत्वविशिष्टरजताभावविषयक-त्वादेव। बाह्याधिष्ठानावधिकः=बाह्यशुक्त्यधिष्ठानावशेषिकः। बाह्यशुक्त्यधिष्ठानातिरिक्तेदन्त्वतत्संसर्ग रजततत्संसर्गादीनां सर्वेषां बाधोभवतीतिभावः। अन्यथा=नेदंरजतमिति-प्रत्ययस्य रजताभावविषयकत्वानङ्गीकारे। आन्तरं सद्रूपमिति

उपक्षीण होने के कारण अन्यत्र उससे प्रमाणत्व नहीं है। दूसरा भी नहीं कह सकते, क्योंकि बाध ज्ञान उसके ज्ञानाकारत्व का अवगाहन नहीं करता, बल्कि पुरोवर्ती में पदार्थ से उसका भेदमात्र बोधन कराता है। इदन्त्वेन निषिद्ध रजत की देशान्तर में सत्ता से भी उपपत्ति है। दूसरी बात रजत का ज्ञानाकारत्व स्वभाविक है अथवा हेत्वन्तर निरूप्य (अन्य हेतु से) पहला पक्ष कह नहीं सकते तब तो विज्ञानत्वावच्छिन्न सकल विज्ञान में रजताकारत्व का प्रसङ्ग होगा—दूसरा भी नहीं कह सकते—अन्य हेतु रूप वस्तुमात्र आपके मत में अस्वीकार है। और दूसरी बात—आन्तर रजत का बाह्य शुक्ति आदि में अध्यास अभिप्रेत है? या आन्तर रजत के बाह्य का, पहला हो नहीं सकता—कारण आपके मत में बाह्य पदार्थ अलीक (मिथ्या) माना गया है, फिर उसमें अध्यास कैसे होगा? दूसरा भी नहीं हो सकता रजत भी बाध का विषय होने से उसमें बाह्य का आरोप संभव नहीं है। न इदं रजतम्—इस बाध का जो विशिष्ट रजताभाव विषयक है, अनुभव सिद्ध होने के कारण उसकी कल्पना भी संभव नहीं है। इसीलिये 'न इदं रजतम्' किन्तु शुक्ति इयम् यह बाध बाह्य अधिष्ठानावधिक बाध है। अन्यथा न इदं रजतम् किन्तु आन्तरम्—ऐसे अनुभव

विशिष्टरजतविषयकस्यानुभवसिद्धत्वेन तत्कल्पनासम्भवात्। अतएव नेदं रजतं किन्तु शुक्तिरिति बाह्याधिष्ठानावधिको बाधोऽन्यथा नेदं रजतं किन्त्वान्तरमित्यनुभवापत्तेः, तस्मान्नान्तरं रजतमत्रविषय इति सिद्धम्। नापि बाह्यं तस्य विषयः तथाचात्र पुरोवर्त्तिवा, देशान्तरस्थं वा, आद्ये पुरोवर्त्तिद्रव्यपरिणामोऽविद्यापरिणामो वा विषयोऽभिप्रेतः। नाद्यः। शुक्तिपरिणामस्य रजतस्य शुक्तिसमसत्ताकत्वापत्त्या बाधायोगात्। द्वितीये तु क्लृप्तोपादानाभावेऽविद्यायास्तदुत्पादकत्वाभावात्। तस्या दोषादिसहकारिमात्रत्वात्। देशान्तरवृत्तित्वाङ्गीकारे द्वितीये च न

द्वितीयविकल्पमुपसंहरति—**तस्मादिति**। बाह्यं सद्रूपमिति द्वितीयविकल्पं दूषयति—**नापीति**। तस्य=इदं रजतमिति प्रत्ययस्य। आद्यपक्षेऽपि तद्रजतं किं पुरोवर्त्तिदेशान्तरवर्त्तिवेति विकल्पद्वयमाह—**तथा चेति**। आद्ये=पुरोवर्त्तीतिकल्पे। शुक्त्यवयवोत्पन्नस्य रजतस्य शुक्तित्वात् पारमार्थिकत्वेन बाधानुपपत्तेरित्याशयेनाद्यविकल्पमपाकरोति—**नाद्य इति**। दोषसापेक्ष-तदवयवोत्पन्नस्य रजतस्य दोषापगमनाशेन बाध्योपपत्तिरिति चेन्न, दोषस्य निमित्तकारण-मात्रत्वेन तदपगमस्य रजताविनाशकत्वान्नहि दण्डापाये घटापायो दृष्टस्ततश्चरजतं न पुरोवर्त्तिपरिणाम इत्यपि द्रष्टव्यम्। अविद्यापरिणामपक्षेऽपि न केवलाविद्यापरिणामो दोषरहितस्यानुबद्धरजतसंस्कारस्यापि पुंसस्तत्प्रसङ्गात्। नापि

की आपत्ति होगी—इसलिये केवल आन्तर रजतमात्र विषय नहीं है—यह सिद्ध होता है। अब द्वितीय विकल्प का निराकरण करते हैं, कहते हैं—नाही बाह्य उसका विषय है—क्योंकि पूछेंगे—वह पुरोवर्ती है या देशान्तरस्थ? ब्रह्म प्रथम पक्ष के विकल्प हैं—आदिन के भी विकल्प होगा—पुरोवर्ती द्रव्य का परिणाम है या अविद्या का परिणाम विषय अभिप्रेत है? प्रथम पक्ष में शक्ति के परिणाम रजत में शुक्ति के समान सत्ताकत्व की आपत्ति से बाध का अभाव होगा। द्वितीय पक्ष में—निश्चित उपादान के अभाव में अविद्या में उसके उत्पादकत्व का अभाव है—वह केवल द्वेष आदिका सहकारी मात्र है। देशान्तरवर्ती द्वितीय पक्ष में केवल चाक्षुष तद्विषयक ज्ञान होता है—ऐसा नहीं कह सकते—कारण उसका सन्निकर्ष नहीं है—इन्द्रियों में समीचीन ज्ञानोत्पत्ति की सामर्थ्य का नियम है, नाही दोष सहित अचाक्षुष ज्ञान की उत्पत्ति संभव है। क्योंकि दोष प्रकृत कार्य की उत्पत्ति सामर्थ्य के विघात मात्र में हेतु होता है। कहें कि सत् इदं रजतम् ऐसा प्रत्यक्ष कैसे होता है? तो कहते हैं—आरोपित पदार्थ का स्वतः सत्ता का अभाव होने पर भी उसके प्रत्यक्ष

तावत्केवलचाक्षुष तद्विषयकं ज्ञानं जायत इति वक्तुं शक्यं तस्यासन्निकर्षात्, इन्द्रियाणां समीचीनज्ञानजननसामर्थ्यनियमात्। नापि दोषसहिताच्चाक्षुषतज्ज्ञानोत्पत्तिः सम्भवति दोषस्य प्रकृतकार्योपजनन-सामर्थ्यविघातमात्रहेतुत्वात्। नच सदिदं रजतमिति प्रत्यक्षं कथमिति वाच्यम्। आरोपितस्य स्वतः सत्ताभावेऽपि तत्प्रत्यक्षस्याधिष्ठान-सत्वविषयत्वात्। तस्माद्देशान्तरवर्त्तिरजतारोपो मनोरथमात्रएवेति नात्मख्यातिवादः सम्भवतीतिसिद्धम्॥ ७२ ॥

दोषसहिकृताविद्यापरिणामः। रजतावयवानां क्लृसरजतोत्पादकानामभावेन दोषादिसहकारिमात्रेणाविद्यायास्तदुत्पादकत्वायोगादित्याशयेन द्वितीयविकल्पं निरसितुमाह—**द्वितीयइति**। अविद्यापरिणामपक्ष इति तदर्थः। बाह्यपक्षे किं तद्रजतं पुरोवर्त्ति देशान्तरस्थं वेति प्राङ्निर्दिष्टं विकल्पद्वयं तत्र प्रथमं निरस्य द्वितीयपक्षं निरसितुं तं स्फुटयति—**देशान्तरेति**। **प्रकृतकार्येति।** शुक्तित्वादिप्रकारकशुक्तिविशेष्यकज्ञानमित्यर्थः। अन्यथा दुष्टादपि कुटजवी-जाद्यवांकुरोत्पत्तिस्स्यादिति भावः। देशान्तरवर्तिपक्षमुपसंहरति—**तस्मादिति**। इत्यात्म-ख्यातिवादिबौद्धमतस्य निराकरणम्। अख्यातिवादिनो मीमांसकस्य मतमुत्थापयति—**अन्येत्विति**। विशिष्टज्ञानस्य प्रवर्तकत्वानुरोधेनेदं रजतमितिज्ञानस्येदन्त्वावच्छिन्ने रजतत्व-विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वमावश्यकमन्यथा रजतार्थिनस्तत्र प्रवृत्त्यनुपपत्तेरिति तार्किका अन्यथाख्यातिवादिनो मन्यन्ते तन्मतमाक्षिपन्नाह—**इदमिति**। **यथार्थत्वेनेति**। तद्धर्मप्रकारकज्ञानत्वव्यापकं तद्धर्मवद्विशेष्यकमिति फलितार्थः तदर्थः। उक्तार्थमनुमानेन द्रढयति—**सर्वे प्रत्यया इति**। शुक्ताविदं रजतमिति भ्रमस्थले रजतत्वेनेदं जानामीत्यनुभवेन रजतत्वावच्छिन्नशुक्तिनिष्ठविशेष्यताक ज्ञानसिद्ध्या रजतत्वस्य शुक्तिनिष्टविशेष्यतावच्छेदकत्वसिद्धेरुक्तानुमाने बाधमाशङ्क्य परिहरति न चेति प्रवृत्तीति। इदं रजतमिति ज्ञानस्य रजतत्वविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वं यदि नाभ्युपेयते तदा रजतार्थिनः प्रवृत्तिरनुपपन्ना स्यात्तथाच तादृशार्थापत्तिरेव विशिष्टज्ञाने प्रमाणभूतेति भावः ।।७२।।

अधिष्ठान सत्त्वविषयक होता है, इसलिये देशान्तरवर्ती रजत का आरोप है, यह कथन मनोरथ मात्र ही है—इसलिये बौद्धमत सम्मत आत्मख्यातिवाद कथमपि संभव नहीं है, यह सिद्ध होता है ।।७२।।

अन्ये तु इदं रजतमिति विशिष्टज्ञानमेव नास्ति प्रमाणाभावात्सर्वेषां प्रत्ययानां यथार्थत्वेन भ्रमस्यैवासिद्धेः। विमताःसर्वे प्रत्यया यथार्थाः प्रत्ययत्वात्, अयं घटइत्यादिप्रत्ययवदित्यनुमानात्। नच प्रवृत्त्यन्यथानुपपत्तेरेव मानत्वात्कथमप्रमाणत्वमिति वाच्यम्। प्रवृत्तेरन्यथोपपन्नत्वात्तथाहि, इदमिति ग्रहणात्मकं रजतमिति स्मरणात्मकं तयोः स्वरूपते। विषयतश्चाग्रहीतसंसर्गयोर्ज्ञानयोः प्रवर्त्तकत्वात्

अख्यातिवादिनोमीमांसकस्य मतमुत्थापयति—**अन्येत्विति**। इदं रजतमिति ज्ञानस्येदन्त्वावच्छिन्नो रजतत्वविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वं वाच्यमन्यथा रजतार्थिनस्तत्रप्रवृत्यनुपपत्तिरिति तार्किका अन्यथाख्यातिवादिनो मन्यन्ते तान्नाक्षेसुमाह—**इदमिति**। यथार्थत्वेनेति। तद्धर्मप्रकारकज्ञानत्वव्यापकं तद्धर्मवद्विशेष्यकमिति फलितार्थः। उक्तार्थमनुमानेन द्रढयति—**सर्वं इति**। शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानएव रजतत्वविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वं नाभ्युपेयते तदा रजतार्थिनः प्रवृत्तिरनुपपन्ना स्यात्तथाच तादृशप्रवृत्त्यन्यथानुपपत्तिरेवोक्तविशिष्टज्ञाने प्रमाणभूतेत्याशंक्य निषेधति—**न चेति**। प्रमाणत्वमिति। शुक्ताविदं रजतमिति भ्रमस्थले रजतत्वेनेदं जानामीत्यनुभवेन रजतत्वावच्छिन्नशुक्तिनिष्ठविशेष्यताकज्ञानसिद्ध्या

अब अख्यातिवादी मीमांसकों का मत प्रस्तुत कर खण्डन करते हैं—'अन्ये तु इदं रजतम्' इत्यादि ग्रन्थों द्वारा—तात्पर्य है कि नैयायिकों की मान्यता है कि विशिष्ट ज्ञान ही प्रवृत्ति का जनक होता है—एतदर्थ इदं रजतम् इस ज्ञान को इदन्त्वावच्छिन्न (पुरोवर्ती पदार्थ) में रजतत्व विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाहित्व मानना आवश्यक है—अन्यथा रजतार्थी की उसमें प्रवृत्ति की उपपत्ति ही नहीं हो सकती—इसलिये तार्किक लोग अन्यथा ख्याति मानते हैं—(अन्य में अन्यथा ख्याति—शुक्ति में—रजतत्व प्रकारक ख्याति) उस मत का खण्डन करते हुए अख्यातिवादी मीमांसक कहते हैं। इदं रजतम् यह विशिष्ट ज्ञान नहीं है(अर्थात् शुक्ति में रजतत्व प्रकारक ज्ञान नहीं है—कारण इसमें कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि सभी प्रमाण यथार्थ होते हैं—इस तरह भ्रम ही असिद्ध है—तद्भाववति तत्प्रकारक ज्ञान—असंभव है—यह मत अनुमान से भी सिद्ध होता है, अनुमान होगा—विमताः सर्वे प्रत्ययाः यथार्थाः प्रत्ययत्वात अयं घट इत्यादि प्रतीतिवत्—यानी जितने भी प्रत्यय (प्रतीति) होते हैं—वे सभी यथार्थ होते हैं, जैसे यह घट यह प्रतीति—यथार्थ है।

दुष्टकरणस्य रजतार्थिनः पुंसः पुरोवर्त्तिनि प्रवृत्तिः सूपपन्ना, अन्यथा ज्ञानस्यायथार्थत्वेन तत्र विश्वासासम्भवाज्ज्ञानस्य व्यभिचारित्वे विश्वासः किन्निबन्धन इति वचनात्तस्य भ्रमत्वासिद्धेरित्याहुः ॥ ७३ ॥

रजतत्वस्य शुक्तिनिष्ठ विशेष्यतावच्छेदकत्वसिद्धेरुक्तानुमानस्य बाध इति भावः। भ्रमस्थल इदं रजतमिति ज्ञान इदमंशस्यैव प्रत्यक्षं नतु रजतांशस्य तदंशे तु केवलं स्मरणं जायते तथाच तत्रेदमंशं प्रत्यक्षं रजतस्मरणञ्चेति ज्ञानद्वयं तादृशज्ञानद्वयेन प्रवृत्त्युपपत्तौ विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानकल्पनस्यायुक्तत्वादित्याशयेनाह— **प्रवृत्तेरिति**। तयोः=प्रत्यक्षात्मकस्मरणात्मकज्ञानयोः। दोषवशेन देशान्तरीयरजतस्य ज्ञानलक्षणं। प्रत्यासत्या ज्ञातस्य रजतस्य नेदं रजतमिति प्रतीत्या पुरोवर्त्तिन्येवाभाव प्रतियोगित्वमभ्युपगम्यते। तेनानुमानस्य प्रत्यक्षबाधापहृतविषयत्वं बोध्यते तदेतत् सिद्धं विवादास्पदं रजतज्ञानं पुरोवर्त्तिविशेष्यकं तद्विशेष्यकरजतार्थिप्रवृत्तिहेतुज्ञानत्वात्। यद्विशेष्यक-प्रवृत्तिहेतुज्ञानं तद्विशेष्यकं यथोभयसिद्धसमीचीनज्ञानं तथाचेदं **तस्मात्तथेति**। न चाप्रयोजकं विशिष्टज्ञानं तथा चेदं तस्मात्तथेति। न चाप्रयोजकं विशिष्टज्ञानकारणतायां लाघवस्य सत्वात् प्रवृत्त्यनुपपत्तेश्च तस्माद्विसंवादिप्रवृत्तिजनकं ज्ञानमयथार्थमिति तार्किकाणां राद्धान्तमनुसृत्य मीमांसकमतं निरस्यति—**तच्चिन्त्यमिति** ।।७३।।

यदि कहें—प्रवृत्ति की अनुपपत्ति ही विशिष्ट ज्ञान में प्रमाण हैं, फिर कैसे कह सकते हैं कि इसमें कोई प्रमाण नहीं है—तो ऐसा नहीं कह सकते—प्रवृत्ति की अन्य प्रकार से उपपत्ति हो सकती है—(मीमांसक कहते हैं कि) 'इदं रजतम्' यहाँ इदम् यह प्रत्यक्षात्मक ज्ञान है—और रजतम् यह स्मरणात्मक ज्ञान है—इस प्रकार यहाँ दो ज्ञान है (विशिष्ट ज्ञान नहीं) परन्तु इनमें भेदाग्रह के कारण प्रवृत्ति हो जाती है—इस प्रकार भेदाग्रह निबन्धक प्रवृत्ति संभव होने से विशिष्ट ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है—और न यह विशिष्ट ज्ञान है। यह भेदाग्रह रजतार्थी के इन्द्रिय दोष के कारण होने से पुरोवर्ती में प्रवृत्ति अच्छी तरह उपपन्नहै। ऐसा नहीं माने तो ज्ञान के अयथार्थ होने पर उस पर लोगों का विश्वास असंभव हो जाएगा—विश्वास उठ जाएगा—विद्वानों का कथन है—ज्ञानस्य व्यभिचारित्वे विश्वासः किं निबन्धनः? ज्ञान यदि व्यभिचारी हो जाए तो फिर ज्ञान का क्या विश्वास—इस वचन के अनुसार भ्रम असिद्ध है—अतः अख्यातिवाद समीचीन है—ऐसा मीमांसकों का मत है।।७३।।

तच्चिन्त्यं तत्र यदुक्तं विशिष्टज्ञाने प्रमाणाभावस्तत्साहसमात्रं पुरोवर्त्तिनि रजतार्थिनः प्रवृत्तिर्विशिष्टानुभवसाध्या प्रवृत्तित्वात्सम्वादि-प्रवृत्तिवदित्यनुमानस्यैव मानत्वात्। सर्वप्रत्ययानां यथार्थत्वकथापि विचारशून्या तेषां स्वरूपेण यथार्थत्वेऽपि विषयबाधाबाधाभ्यां यथार्थायथार्थत्वयोरवश्यम्भावेनाकामैरपि स्वीकार्य्यत्वात्। अन्यथा नेदं रजतमिति बाधो न स्यादप्रसक्तनिषेधासम्भवात्। न च निषेधस्य व्यवहारएव विषयो न ज्ञानं नापि तद्विषयो रजतादिरिति वाच्यम्। विषयनिषेधस्यानुभवसिद्धत्वान्नेदं रजतमित्यत्र व्यवहारोल्लेखाभावाच्च।

प्रागुक्तार्थमनूद्य दूषयति—**तत्रेति**। शुक्ताविदं रजतमिति भ्रमस्थले रजतत्वविशिष्ट-वैशिष्ट्यावगाहित्वमावश्यकमन्यथा रजतानयनादौ प्रवृत्त्यनुपपत्तेरिति तर्कजीविनमनुमानं दर्शयति—**पुरोवर्त्तिनीति**। ज्ञानत्वव्यापकं याथार्थ्यमिति मीमांसकमतं दूषयितुमाह—**सर्वप्रत्ययानामिति**। तेषां=सर्वप्रत्ययानाम्। सर्वं ज्ञानं धर्मण्यभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्ययइति न्यायेन भ्रमस्यापि धर्म्यंशे प्रमात्वं रजतत्वरूपप्रकारांशे तु भ्रमत्वं वाच्यमन्यथा इदं रजतमिति ज्ञानं प्रति नेदं रजतमितिज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वं न स्यादित्याशयेनाह—**स्वरूपणेति**। यस्य विषयो बाध्यते तदयथार्थं यस्य विषयो न बाध्यते तत्प्रमेत्याह—**विषयबाधेति**। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। इदं रजतमितिज्ञानस्य रजतत्ववैशिष्ट्यानङ्गीकार इति तदर्थः। प्राप्तौ सत्यां निषेध इति वचनमनुसृत्याह—

इसके बाद अख्यातिवाद का खण्डन प्रारम्भ होता है—नैयायिक कहते हैं—अख्यातिवाद का सिद्धान्त चिन्त्य है—मीमांसकों ने जो यह कहा है कि विशिष्ट ज्ञान में कोई प्रमाण नहीं है—यह साहस मात्र है—कारण पुरोवर्ती (अज्ञात शुक्ति) में रजतार्थी की प्रवृत्ति विशिष्ट अनुभव साध्य है—अर्थात् पुरोवर्ती इदं पदार्थ में (रजतत्वविशिष्टम् इदम्) ऐसा ज्ञान होने पर ही संभव है—इसलिये अनुमान होगा—रजतार्थी की प्रवृत्ति विशिष्ट प्रत्यक्ष साध्य है—प्रवृत्ति होने से सम्वादि प्रवृत्ति की तरह (सम्वादि प्रवृत्ति समान प्रवृत्ति—सत्व रजत स्थल की प्रवृत्ति) यह (ज्ञान) यथार्थ ही होते हैं—यह कथन सर्वथा विचार शून्य है—सभी प्रत्यय स्वरूपतः यथार्थ होने पर भी—'सर्वं ज्ञानं धर्मण्यभ्रान्तं प्रकारेतु विपर्यय इति' इस न्याय से भ्रमात्मक ज्ञान का धर्मी अंश (इदमंशमे) प्रमात्व तथा रजतत्व रूप प्रकारांश में भ्रम है—यह कहना पड़ेगा, अर्थात् जिसका विषय बाधित होता है—वह अयथार्थ है—जिसका विषय बाधित नहीं होता, वह यथार्थ—ऐसा अवश्यंभाव होने से इच्छा के बिना भी यथार्थ और अयथार्थ दो तरह के ज्ञान मानने ही पड़ेंगे—अन्यथा यदि इदं रजतम् यह ज्ञान

नच प्रवृत्तेरन्यथा सिद्ध्या तस्याप्रयोजकत्वमिति वाच्यम्। तर्हि सर्वदा प्रवृत्तिप्रसङ्गात्। न च स्वतन्त्रोपस्थितेष्टभेदाग्रहादेवप्रवृत्त्युपपत्ते किं विशिष्टज्ञानेनेतिवाच्यम्। लाघवादिष्टोपस्थितेरेव प्रवर्त्तकत्वोपपत्तेः। न च रजतस्मरणमेव प्रवर्त्तकमस्त्विति वाच्यम्। स्मृतिविषयस्य देशान्तरवृत्तितया

अप्रसक्तेति। नेदं रजतमिति-प्रतीतिमन्यथोपपादयति—**निषेधस्येति**। तद्विषयः=ज्ञानविषयः। इदं रजतं नेतिप्रतीतौ विषयस्य रजतत्वस्यैव निषेधः प्रतीयते नतु व्यवहारस्तद्वाचकपदाभावादित्याह—**विषयेति**। उल्लेखः=भानम्। रजतादौ प्रवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या नेदं रजतमितिज्ञानस्य बाधकत्वं नाभ्युपेयत इत्याशङ्क्य निषेधति—**न चेति**। इदं रजतमितिज्ञानं प्रति नेदं रजतमितिधियः यदि प्रतिबन्धकत्वं न कल्प्यते तर्हि रजतार्थिनःप्रवृत्तेः कदापि विरामो न स्यादित्याह—**तर्हीति**। प्रभाकरः पुनः प्रत्यवतिष्ठते—**स्वतन्त्रोपस्थितेरिति**। स्वातन्त्र्येणाभावाविशेषणत्वेनोपस्थित्याः रजतत्वावच्छिन्नेदन्त्वावच्छिन्नयोर्भेदाग्रहादेवेत्यर्थः। **प्रवृत्त्युपपत्तेरिति**। शुक्तौ रजतत्वादिप्रकारकप्रवृत्त्युपपत्तेरित्यर्थः। **किं विशिष्टज्ञानेति**। किं शुक्तौ रजतत्वादिप्रकारक ज्ञानेनेत्यर्थः। तथाच स्वातन्त्र्येणेदन्त्वावच्छिन्नरजतत्वावच्छिन्नयोरुपस्थितिरिदन्त्वावच्छिन्नरजतत्वावच्छिन्नयोर्भेदाग्रहश्च रजतत्वप्रकारक प्रवृत्तिहेतुरितिभावः। अत्रेदं रजतयोरनुपस्थितिदशायामपि तयोर्भेदाग्रहस्य सत्वात्तदानीं प्रवृत्तिवारणायोपस्थितेरादरः, रजते नेदं रजतमितिज्ञानस्याप्यन्यथाख्यात्यापत्त्या ज्ञानद्वयात्मकत्वेनेदन्त्वरूपेण रजते रजतभेदाविषयकत्वात्ततोऽपि प्रवृत्तिप्रसङ्गवारणाय—**स्वातन्त्र्येणेति**। रजतत्वावच्छिन्नोपस्थितिविशेषणम्। यत्र चात्र भेद इत्यनुभवो रजतस्मरणञ्चेति क्रमेण रजते नेदं रजतमिति भ्रमस्तत्र प्रवृत्तिवारणाय स्वातन्त्र्येणेति इदन्त्ववच्छिन्नोपस्थितेरपि विशेषणम्। प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानस्याभावलौकिकप्रत्यक्षहेतुतया शुक्तौ नेदं रजतमितिभेदलौकिक प्रत्यक्षदशायामपि स्मरणादिलक्षणस्वतन्त्ररजतत्वावच्छिन्नो-

---

अयथार्थ नहीं होता तो फिर नेदं रजतम् ऐसा बाध नहीं होता—अप्राप्त का निषेध नहीं होता। यदि कहें कि न इदं रजतम् इस निषेध का विषय व्यवहार ही है, न ज्ञान न उसका विषय रजत (अर्थात् नेदं रजतम् से वक्ता का यही भाव है कि इसे रजत रूप में व्यवहार न करो) ऐसा नहीं कह सकते—उक्त प्रतीति में विषय का ही निषेध है—यह अनुभव सिद्ध है—नेदं रजतम् यहाँ व्यवहार का उल्लेख नहीं है। ऐसा कहाँ कहता है—व्यवहार मत करो। कहें कि प्रवृत्ति ही अन्य प्रकार से सिद्धि होने से निषेध प्रयोजक नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते—इदं रजतम् इस ज्ञान के प्रति यदि नेदं रजतम् इस बुद्धि को प्रतिबन्धक नहीं माने तो रजतार्थी की प्रवृत्ति

पुरोवर्त्तिनि प्रवृत्त्यसम्भवात्। यदप्युक्तमगृहीतभेदयोर्ज्ञानयोः प्रवृत्तिहेतुत्वं तदपि मनोरथमात्रं तथात्वे इदं पश्यामि रजतं स्मरामीति स्वार्थविवेचकानुव्यवसायप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात्। किञ्च न भेदाग्रहमात्रात् पुरुषप्रवृत्तिसम्भवश्चेतनव्यवहारस्य ज्ञानपूर्वकत्वात्, अन्यथा सुषुप्तावपि

पस्थितिसत्वादेवं रजतशुक्त्योरिमे रजत-रजताभिन्न इति समूहालम्बनदशायामपि इदन्त्व-रजतत्वरूपेण शुक्तिरजतयोः स्वतन्त्रोपस्थितिसत्वाच्च तदानीं शुक्तौ रजतत्वप्रकारक-प्रवृत्तिवारणाय भेदग्रहादरः। भेदपदञ्चोपलक्षणं रजतत्वात्यन्ताभावेऽपि द्रष्टव्यः। प्रवृत्तिमात्रं प्रतीष्टोपस्थितेरेवहेतुत्वं वाच्यं तथासतीष्टोपस्थितित्वमेव कारणतावच्छेदकं कल्प्यते लाघवात् स्वतन्त्रोपस्थितेष्टभेदाग्रहस्य कारणत्वे तु तादृशभेदाग्रहत्वं कारणतावच्छेदकं तच्च गौरवात्त्याज्यमित्याशयेन समाधत्ते—**लाघवादिति**। लाघवानुरोधेनेष्टज्ञानं शुक्तौ प्रवर्त्तकं नतूक्तज्ञानं गौरवादिति भावः। शुक्तौ रजतस्मरणात् प्रवृत्तेर्निर्वाहस्स्यादित्याशङ्क्य परिहरति। **न चेति**। शुक्तौ रजतस्य न स्मृतिः प्रागननुभवात्। यदि देशान्तरवर्त्तिरजतस्य स्मरणमभ्युपेयते तर्हि तस्य पुरोवर्तिनि शुक्तौ कथं प्रवर्त्तकत्वमित्याशयेनाह—**स्मृतिविषयस्येति**। प्रागुक्तार्थं दूषयितुमनूद्यति—**यदप्युक्तमिति**। रजतस्मरणेदंपदार्थग्रहणरूपज्ञानद्वयकल्पने इदं पश्यामि रजतं स्मरामीति तत्रानुभवप्रसङ्ग इत्यभिप्रेत्याह—**तथात्वेति**। रजतस्मरणपुरोवर्त्तिग्रहणरूपज्ञानद्वयाङ्गीकार इति तदर्थः। अस्ति तावत्पुरोवर्त्तिनि इदं रजतमिति सामानाधिकरण्यव्यपदेशो रजतार्थिप्रवृत्तिश्चेति सार्वजनीनं तदेतन्न भेदाग्रहमात्राद्भवितुमर्हति किन्तु ज्ञानमेव स्वविषये प्रवर्त्तकमित्याद्यप्रवृत्तौ सम्वादिप्रवृत्तौ च सर्वैरवधारितं लाघवाद्बाधकाभावाच्च तत इष्टज्ञानं शुक्तौ प्रवर्तकं नतु भेदाग्रहमात्रमित्याशयेनाह—**किंचेति**। विपक्षे बाधकदण्डमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। भेदाग्रहमात्रस्य प्रवृत्तिहेतुत्व इति तदर्थः।

में कभी विराम नहीं होगा—सदा प्रवृत्ति बनी रहेगी। अब प्रभाकर[१] (मीमांसक इसके मत को मीमांसा में गुरुमत कहते हैं शंका करते हैं—कि ज्ञानोदय—इदम् इत्याकारक प्रत्यक्ष ज्ञान तथा रजत इत्याकारक स्मरणात्मक उभय ज्ञान के भेदाग्रह से ही प्रवृत्ति की उपपत्ति होगी—विशिष्ट ज्ञान (अन्यथा ख्याति) की क्या आवश्यकता है? तो ऐसा नहीं कह सकते—भेदाग्रह को प्रवृत्ति मानने की अपेक्षा लाघवात् विशिष्ट ज्ञान ही शुक्ति में प्रवर्तक है भेदाग्रह नहीं—लाघवानुरोध से शुक्ति में इष्ट ज्ञान (रजत ज्ञान) प्रवृत्ति का जनक है, न कि भेदाग्रह, क्योंकि गौरव है। प्रवृत्ति

१. प्रवृत्ति के लिये विशिष्ट ज्ञान मानना पड़ेगा, तभी नेदं रजतं इस निषेध की सार्थकता होगी, यह निषेध भ्रम का समर्थक है, इसपर कहते हैं प्रवृत्ति अन्यथा यानि विशिष्ट ज्ञान के बिना सिद्ध है निषेध प्रयोजक नहीं।

तत्प्रसङ्गात्। उक्तानुमानस्यापि बाधितहेत्वाभासत्वेनाप्रामाण्यं ज्ञेयं विप्रतिपत्तिज्ञानं रजतत्व प्रकारकं तत्प्रकारकवृत्ति-

प्रत्यक्षमप्यन्यथाख्यातौ मानं कारणबाधाभावात्तथाहि इदं रजततया जानामीत्यनुव्यवसायसाक्षिकं शुक्त्यादिविशेष्यकत्वावच्छिन्नरजतत्वप्रकारकं ज्ञानं नहि विषयत्वेऽनुव्यवसायादन्यत्प्रमाणमस्ति नह्यतद्विषयस्तज्ज्ञानविषयत्वेन वा तदविषयकं तद्विषयत्वेनावसीयते। अनुव्यवसायस्य प्रमात्वनियमात् अन्यथा घटज्ञानेऽपि कदाचित् पटज्ञानामीति स्यात्। तथाचान्यथाख्यातिः प्रमाणत्वेनावधारिता तथासति सर्वे प्रत्यया यथार्था इत्यनुमानं बाधितं भवतीत्याशयेनाह—**उक्तानुमानस्यापीति**। बाधकानुमानं निर्वक्ति—**विप्रतिपत्तिज्ञानमिति**। एकमात्र विशेष्यकत्वेन ज्ञानं विशेषणीयं तेन शुक्तिरजतोभयसमूहालम्बनेनांशतः सिद्धसाधनमिति भावः। **रजतत्वप्रकारकमिति**। अत्राप्यग्रावच्छिन्नो वृक्षः कपिसयोगीतिवत्पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धौ शुक्तिविशेष्यकत्वावच्छिन्नरजतत्वप्रकारिताकज्ञानसिद्धिस्तदेव चान्यथाख्यातिरिति भावः। बाध्यबाधक-व्यवस्थया शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानस्य मिथ्यात्वं सिद्ध्यतीत्याह—**तस्येति**। रजतभ्रमस्येति तदर्थः। ननु शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानस्य बाध्यत्वं तदुत्तरोत्पन्नस्य नेदं रजतमिति ज्ञानस्य बाधकत्वं कथं निश्चीयते परस्परविरुद्धार्थवैशिष्ट्यावगाहित्वरूपा विशेषादितिचेन्न, अनन्यथासिद्धाया धियो बाधकत्वात्, तथाहि यत्र दुष्टादुष्टेन्द्रियजन्यं परस्परनिरपेक्ष्यमेकत्र विरुद्धं ज्ञानद्वयमुत्पद्यते प्रथममनुपजातविरोधित्वान्नानागतं बाधते

मात्र के प्रति इष्टोपस्थिति के ही हेतु है कहना चाहिये—ऐसा मानने पर इष्टोपस्थितित्व कारणतावच्छेदक होगा। लाघवात् स्वतन्त्रोपस्थित इष्ट भेदाग्रह को कारण मानने पर तो तादृश भेदाग्रहत्व कारणतावच्छेदक होगा—उसमें तो गौरव है—इस इष्टोपस्थिति को अर्थात् शुक्ति में रजतत्वोपस्थिति को प्रवर्तक मानना चाहिये। कहें कि रजत के स्मरण को प्रवर्तक मान लें तो क्या हर्ज—अन्यथा ख्याति नहीं माननी पड़ेगी। तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि स्मृति का विषय रजत देशान्तर वृत्ति है—उससे पुरोवर्ती इदमर्थ में प्रवृत्ति असंभव है। और यह कथन भी कि इदं रजतम् के दो ज्ञान हैं—इदमर्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान रजत का स्मरणात्मक ज्ञान पर दोनों ज्ञान के भेदाग्रह के कारण प्रवृत्ति होती है—अतः भेदाग्रह ही प्रवृत्ति का हेतु है—यह भी मीमांसकों का मनोरथ मात्र है—यदि रजत का स्मरण तथा पुरोवर्ती वस्तु के ग्रहण (प्रत्यक्ष) रूप ज्ञानद्वय स्वीकार करें तो इदं पश्यामि रजतं स्मरामि इत्याकारक स्वार्थ विवेचक (ज्ञानद्वय बोधक) अनुव्यवसाय का दुर्वार होगा (पर ऐसा होता नहीं है) दूसरी बात केवल भेदाग्रह मात्र से पुरुष की प्रवृत्ति संभव नहीं है, क्योंकि चेतन के सारे व्यवहार ज्ञान पूर्वक ही होते हैं—अन्यथा भेदाग्रह मात्र को प्रवृत्ति हेतु मानने पर

जनकत्वात्समीचीनरजतज्ञानवदित्यनुमानात्, पुरोवर्त्तिरजतत्वसिद्धौ तस्य च बाधदर्शनेन मिथ्यात्वावगमात्, तद्विषयकयथार्थानुमानस्यापि बाधितत्वादयथार्थत्वे सिद्धेस्तस्मादख्यातिवादोऽत्यन्तासम्भवः ॥ ७४ ॥

तस्याप्राप्तत्वात्। उत्तरन्तु स्वकारणादुत्पद्यमानमुपजातविरोधितया नानुपमृद्यपूर्वमुत्पत्तुमर्हतीति पूर्वं बाधात्मक-मुत्पद्यते, अन्यथा नोत्पद्यत एव नचैवमेवेति वाच्यम्। अनुभवविरोधात्। यदाहुः। 'पूर्वात्परवलीयस्त्वं तत्र नाम प्रतीयते। अन्योन्यनिरपेक्षाणां यत्र जन्मधियां भवे' दिति। यत्र पूर्वापेक्षमुत्तरंज्ञानमुत्पत्तुमुन्मुखं तत्रोपजीव्यपूर्वविरोधेनोत्तरं नोत्पद्यते, अतोऽजातं सत्पूर्वं कथं बाधकं यथा प्रत्यक्षादिविरुद्धानुमितिः। ननु भ्रमस्य किं बाध्यते, न स्वरूपं तस्य सत्वात्। नापि रजतत्वप्रकारकत्वं शुक्तिविषयकत्वं वा तयोरपनेतुमशक्यत्वात्। जातं हि तद्रजतत्वेन शुक्तिंविषयीकृत्यनापि व्यवहारः प्रवृत्त्यादेर्वृत्तत्वात् नाप्यनागत व्यवहारजनकत्वं तस्य कारणाभावादेवासम्भवात्। उच्यते। बाधकेन भ्रमस्य भ्रमत्व-बुद्धिरेव बाध इत्यभिसन्धिः। **तद्विषयकेति**। रजतत्वविषयकेत्यर्थः। निगमयति—**तस्मादिति**। इत्यख्यातिवादिनः प्रभाकरमतस्य निरसनम् ।।७४।।

सुषुप्ति में भी प्रवृत्ति का प्रसंग होगा—सुषुप्ति में तो कोई प्रवृत्ति नहीं होती भेदाग्रह मात्र को प्रवृत्ति हेतु मानने पर सुषुप्ति में भी प्रवृत्ति का प्रसंग हो जाएगा। पहले जो अनुमान किया था—'सर्वे प्रत्ययाः यथार्थाः' यह अनुमान बाध रूप हेत्वाभास से युक्त होने के कारण अप्रमाण है। यहाँ बाधक अनुमान है—विप्रत्तिज्ञानं रजतत्त्वप्रकारकम् तत्प्रकारक प्रवृत्ति जनकत्वात् समीचीन रजत ज्ञानवत्—अर्थात् शुक्ति स्थानी रजत ज्ञान रजतत्त्व प्रकारक (रजतत्व प्रकारक इदं विशेष्यक) है, क्योंकि रजतत्त्व प्रकार प्रवृत्ति यानी इदंपद बोध्य शुक्ति में रजतत्त्व मानकर होने वाली प्रवृति का जनक है—जैसे सत्य रजत का ज्ञान इस अनुमान से तो पुरोवर्ती तत्त्व में रजतत्त्व की सिद्धि है और उसका (रजतत्त्व) का तो नेदं रजतं से बाध देखा गया है, जिससे उसका मिथ्यात्व ज्ञात होता है, इसलिये तद्विषयक यथार्थ अनुमान के बाधित होने से अयथार्थत्व की सिद्धि होती है, इसलिये अख्यातिवाद अत्यन्त असंभव है ।।७४।।

अन्ये तु रजतमिति ज्ञानमयथार्थमेव तद्वति तत्प्रकारकत्वाभावात्। ननु तस्यायथार्थत्वे रजतार्थिनः कथं प्रवृत्तिरितिचेन्न, पुरोवर्ति विशेष्यकरजतत्वप्रकारकरूपविशिष्टज्ञानस्य तत्प्रवर्त्तकतया क्लृप्तस्या-त्रापि सम्भवात्। भ्रमविषयस्य देशान्तरे सत्त्वेन पुरोवर्तीन्द्रियसन्निकर्षा-नन्तरं दोषवशेन देशान्तररजतात्मना पुरोवर्त्तिद्रव्यग्रहादिदं रजतमिति प्रत्ययजन्म, तथाच भ्रान्त्या प्रसक्तत्वात्तद्बाधः सूपपन्न इत्याहुः। तत्तुच्छं रजतेन्द्रियसन्निकर्षाभावेन रजतज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं न स्यात् विशिष्टप्रत्यक्षे विशेषणसन्निकर्षस्य

अन्यथाख्यातिवादिनस्तार्किकस्य मतमुपन्यस्यति—**अन्येत्विति**। तद्वति= रजतत्ववति। तत्प्रकारकत्वाभावात्= रजतत्वप्रकारकत्वाभावात्। शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानस्य यथार्थत्वमेव वाच्यमन्यथा रजतार्थिनः पुंसस्तत्रप्रवृत्तिर्न स्यादितिशङ्कते—**नन्विति**। तस्य=रजतज्ञानस्य। तद्विशेष्यकतत्प्रकारकप्रवृत्तिं प्रति तत्प्रकारकतद्विशेष्यकज्ञानस्य हेतुतया प्रकृतेऽनुभवसिद्धशुक्ति विशेष्यकरजतत्वप्रकारकप्रवृत्त्यनुरोधेन तत्कारणतया शुक्तिविशेष्यकरजतत्वप्रकारक ज्ञानमवश्यं स्वीकार्यमित्याशयेन परिहरति—**नेति**। सत्यरजतस्थले प्रवृत्तिं प्रति क्लृप्तकारणताकस्य विशिष्टज्ञानस्यात्रापि सत्वात्प्रवृत्त्युप-पत्तिस्तथाच विसम्वादि प्रवृत्तिरपि विशिष्टज्ञानसाध्या प्रवृत्तित्वात् सत्यप्रवृत्ति वदित्यनुमानं फलितमिति भावः। ननु रजतचाक्षुषं प्रति रजतचक्षुसंयोगस्य कारणत्वात्तस्य चासत्वात्कथं शुक्तौ रजतज्ञानं तत्र रजतत्वस्य कालत्रयेप्यसत्वाद्देशान्तरीयरजतस्यासन्निकृष्ट-त्वादित्यतआह—**भ्रमविषयस्येति**। **पुरोवर्त्तीति**। प्रत्यक्षहेतुत्वे नक्लृप्तविशेष्यसम्बन्धादेव

अब अन्यथा ख्यातिवादी तार्किकों का मत प्रस्तुत कर खण्डन करते हैं—उनका कथन है कि 'इदं रजतम्' यह ज्ञान अयथार्थ है—क्योंकि यह रजतत्ववत् पदार्थ में रजतत्त्व प्रकारक ज्ञान नहीं है। कहें कि शुक्ति में इदं रजतम् यह यथार्थ ही है—अयथार्थ होता तो उसमें रजतार्थी की प्रवृत्ति कैसे होती तो ऐसा नहीं कह सकते—रजतार्थी की प्रवृत्ति में पुरोवर्ती इदमर्थ विशेषक रजतत्त्व प्रकारक रूप विशिष्ट ज्ञान कारण रूप से निश्चित है, जो यहाँ भी है—इसलिये प्रवृत्ति संभव है। कहें कि रजत के चाक्षुष प्रत्यक्ष के प्रति रजत के साथ चक्षुः संयोग तथा रजतत्त्व के प्रत्यक्ष के प्रति चक्षुः संयुक्त समवेत सन्निकर्ष करण हैं। ये दोनों सन्निकर्ष यहाँ नहीं हैं—शुक्ति में रजतत्व कालत्रय में असंभव है—देशान्तरीय रजत सन्निकृष्ट नहीं है—इस पर कहते हैं कि भ्रम का विषय देशान्तर में विद्यमान है—पुरोवर्ती के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष के अनन्तर दोषवशात् देशान्तरस्थ रजत के रूप पुरोवर्ती द्रव्य का ज्ञान हो जाता है—इसलिये इदं रजतम् इस प्रतीति का जन्म होता है—जो कि भ्रान्ति से प्राप्त होता है, इसलिये उसका बाध उपपन्न है—ऐसा कहते हैं। यहाँ—''प्रसक्त प्रतिषेधात्मा

हेतुत्वाद्विशेष्यसन्निकर्षवदन्यथा व्यवहितदण्डकेऽपि पुंसि दण्डीति प्रत्यक्षप्रसङ्गात्, विशेष्यसन्निकर्षस्यापि तत्रापि तुल्यत्वात् न च जन्य यथार्थप्रत्यक्ष एव विशेषणसन्निकर्षस्य कारणत्वं नतु सर्वत्रेति वाच्यम्। लघवाज्जन्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रत्येव तस्य कारणत्वात्संकोचे मानाभावाच्च। अन्यथा वह्निसन्निकर्षाभावेन सन्निकृष्टेऽपि पर्वतादौ तद्विशिष्टप्रत्यक्षाभाववर्णनं तवापि विरुद्धमित्यर्थः। ननु विशेषणविशेष्येन्द्रियसन्निकर्षविशेषणविशेष्यासंसर्गाग्रहादीनां विशिष्टप्रत्यक्षसामग्रीत्वेन रजतप्रत्यक्षसम्भवाद्रजतेन्द्रियसन्निकर्षस्या-

शुक्तौ रजतत्वविशिष्टसाक्षात्कार उपपद्यत इत्यर्थः। दोषाद्भ्रम इत्युभयसिद्धत्वेन दोषस्यापि भ्रमं प्रति कारणत्वमित्याशयेनाह—**दोषवशेनेति**। प्रसक्तस्यैव प्रतिषेधो भवति नत्वप्रसक्तस्येतिनियमस्योपपत्तिमाह—**तथा चेति**। प्रसक्तस्य=तत्रारोपितस्य रजतत्वस्य। ''प्रसक्तप्रतिषेधात्माबाधोऽख्यातौ न युज्यते साधयत्यन्यथा ख्यातिं बाध एव हि नः स्फुटमिति प्राचीनानामुक्तिरनुसन्धेया इत्यन्यथाख्यातिवादिनस्तार्किकमतस्योपपादनम्। लौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषम्प्रति चक्षुसंयोगस्य हेतुत्वात्तं विना शुक्तौ रजतसाक्षात्कारोऽनुपपन्न इत्याशयेन तार्किकमतं दूषयति—**तत्तुच्छमिति**। प्रत्यक्षं प्रति विशेष्यसम्बन्धस्य हेतुत्वं क्लृप्तं तथाच शुक्तीन्द्रियसन्निकर्षादेव

बाधोऽख्यातौ न युज्यते। साधयत्यन्यथाख्यातिं बाध एव हि न स्फुटम्?'' यह प्राचीन विद्वानों की उक्ति अनुसंधेय है ऐसा तार्किकों का कथन है—जो ठीक नहीं है—यहाँ रजत के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष के अभाव से रजत ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता कारण—विशिष्ट प्रत्यक्ष में विशेष्य सन्निकर्ष की तरह विशेषण का सन्निकर्ष हेतु माना गया है अन्यथा दण्ड के अभाव में पुरुष में दण्डी ऐसा इत्याकारक प्रत्यक्ष का प्रसङ्ग होगा—क्योंकि विशेष्य सन्निकर्ष वहाँ भी बराबर है। यदि कहें कि जन्य यथार्थ प्रत्यक्ष में ही विशेषण सन्निकर्ष कारण है न कि सर्वत्र तो ऐसा नहीं कह सकते—लाघवात् जन्य प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न के प्रति ही विशेषण सन्निकर्ष कारण मान्य है—(यथार्थ रूप) संकोच में कोई प्रमाण नहीं है। अन्यथा वह्नि के सन्निकर्ष के अभाव से समीपस्थ पर्वत आदि में भी—वह्निमान् पर्वतो न इत्याकारक प्रत्यक्ष में अभाव का वर्णन आप के लिये भी विरुद्ध ही है। अब जन्य प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न के प्रति तत् तत् कारणों के तत् तत् व्यक्तित्वेन कारणता कल्पना की अपेक्षया विशिष्ट सामग्रीत्वेन[१] अनुगत कारणता की कल्पना में लाघव है। इस आशय से शंका करते

१. ज्ञान लक्षण सन्निकर्ष से इन्द्रियासंयुक्तरजतत्व का प्रत्यक्ष हो सकता है, ऐसा कहना चाहिये।

प्रयोजकत्वादुक्तविशिष्टप्रत्यक्षसामग्र्यैव रजतविशिष्टप्रत्यक्षसम्भवेन देशान्तरीयरजतत्वप्रकारकपुरोवर्त्तिविशेष्यकमिदं रजतमिति ज्ञान मन्यथाख्यातिरेव तस्मान्न भ्रमविषयस्य मिथ्यात्वमिति चेन्न, भ्रमविषयरजतस्य देशान्तरसत्वे तत्सन्निकर्षाभावेन तज्ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वाऽसम्भवात्। न च विशेषणज्ञानाभाव विशिष्टप्रत्यक्षसामग्र्या तत्प्रत्यक्षसम्भव इति वाच्यम्। विशेषणसन्निकर्षस्यैवान्वयव्यतिरेकाभ्यां क्लृप्तकारणत्वावगमात्। न च सोऽयं देवदत्त इति प्रत्यभिज्ञानस्य प्रत्यक्षं न स्याद्विशेषणसन्निकर्षाभावसाम्यादिति वाच्यम्। तत्तांशे परोक्षस्येष्टत्वात्, तत्तांशविषयकज्ञानस्य स्मृतित्वाभ्युपगमात्।

रजतत्वविशिष्टसाक्षात्कारोपपत्तिरितिचेत्तत्राह—**विशिष्टप्रत्यक्ष इति**। रजतत्वविशिष्टरजतप्रत्यक्षे विशेषणसन्निकर्षस्यापि हेतुत्वमावश्यकमन्यथा कदाचित् दण्डासत्वदशायामपि दण्डीपुरुष इति प्रत्यक्षापत्तेः विशेष्यसन्निकर्षस्य सत्वात्। नच दण्डविशिष्टत्वेन प्राग्ज्ञाते पुंसि दण्डाभावेऽप्ययं दण्डीतिज्ञानसम्भवेन कथं विशेषणसन्निकर्षस्य हेतुत्वमिति वाच्यम्। तत्रापि तव मते ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्त्या चक्षुषो गमनेन विशेषणसन्निकर्षस्य सत्वादतोविशेषणसन्निकर्षस्यापि हेतुत्वं सिद्धं तथाच रजतत्वप्रत्यक्षे विशेषणसन्निकर्षस्य प्रत्यासत्तित्वेन हेतुत्वात्तं विना न तदित्यर्थः। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। विशेषणसम्बन्धस्य। हेतुत्वइतितदर्थः। लौकिकजन्यप्रमाप्रत्यक्ष एव तस्य कारणत्वं भवत्वित्याशङ्क्य निषेधति—**नचेति**।

हैं—कहें कि विशेषण विशेष्येन्द्रिय सन्निकर्ष तथा विशेषण विशेष्यासंसर्ग के अग्रह आदि के विशिष्ट प्रत्यक्ष सामग्री होने से रजत का प्रत्यक्ष संभव है, रजतेन्द्रिय संन्निकर्ष प्रयोजक नहीं है—फिर तो उक्त विशिष्ट प्रत्यक्ष सामग्री से ही रजतत्वविशिष्ट का प्रत्यक्ष संभव इस प्रकार देशान्तरीय रजतत्व प्रकारक पुरोवर्ती (इदं) विशेष्यक इदं रजतम् यह अन्यथा ख्याति ही है। इसलिये भ्रम का विषय रजत[२] मिथ्या नहीं है, तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण भ्रम का विषय रजत के देशान्तर में रहने से उसके साथ सन्निकर्ष का अभाव होने से उसका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। वह रजत का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। कहें कि विशेषण सन्निकर्षाभाव घटित्यादि सामग्री रजत साक्षात्कार का प्रयोजक है—उससे रजत का प्रत्यक्ष हो जाएगा तो ऐसा नहीं कह सकते—विशेषण सन्निकर्ष ही अन्वय व्यतिरेक से कारणत्वेन अवगत है—कारण है- कहें कि सोऽयं देवदत्तः (यह वही देवदत्त है—जिसे मैंने मिथिला में देखा था) इस प्रत्यभिज्ञा में प्रत्यक्षत्व नहीं होगा, क्योंकि यहाँ विशेषणांश-तद्देश

२. मिथ्या अनिर्वचनीय नहीं है, तुच्छ मानें अलीक अत्यन्तासत बन्ध्या सुत आदि।

न च ज्ञानद्वयाङ्गीकारे जातिसाङ्कर्यापत्तिरिति वाच्यम्। अविद्यातिरिक्तजडजातेरनङ्गीकारात्। न च तर्हि ज्ञानमेव सन्निकर्षोऽभ्युपगन्तव्य इति वाच्यम्। अनुमित्यादौ विशेषणज्ञानायुक्तविशिष्टप्रत्यक्षसामग्र्याः सत्वेनाग्निप्रत्यक्षमेव स्यात्तदनुमानादावतिव्याप्तिश्च किञ्च का वा ज्ञानप्रत्यासत्तिर्नाम यदवच्छेदेन यदनुभूतं तदवच्छेदेन तज्ज्ञानं प्रत्यासत्तिरिति चेन्न, तर्हि शुक्तित्वावच्छेदेन रजतस्य पूर्वाननुभूतत्वात्कथं तज्ज्ञानस्य प्रत्त्यासत्तित्वमन्यथा सामान्यप्रत्याङ्गीकारेऽपि प्रमाणाभावात्। नच व्याप्तिग्रहान्यथानुपपत्तिरेव मानमितिवाच्यम्। सिद्धान्ते

लाघवादिति। कार्यतावच्छेदककुक्षौ प्रमात्वस्य निविष्टतया तस्य च तद्वति तत्प्रकारकरूपत्वेन गुरुत्वादेव तत्परित्याज्यमिति भावः। तस्य=विशेषणसन्निकर्षस्य। विपक्षे बाधकं दण्डमाह—**अन्यथेति**। **तद्विशिष्टेति**। वह्निविशिष्टप्रत्यक्षाभाववर्णनमित्यर्थः। वह्निसन्निकर्षाभावप्रयोज्यस्तद्विशिष्टाभावइति व्यतिरेकनिश्चयेन विशेषणसन्निकर्षप्रत्यक्षयोर्हेतुहेतुमद्भावः सिद्ध्यति तस्याकरणत्वे तु तद्विरोधो जागरूक इति भावः। जन्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तत्तत्कारणानां तत्तद्व्यक्तित्वेन कारणताकल्पनामपेक्ष्य विशिष्टसामग्रीत्वेनानुगतकारणताकल्पनायाः लघीयस्त्वादिति शङ्कते—**नन्विति**। असंसर्गाग्रहः=बाधनिश्चयः। रजतसाक्षात्कारे रजतसंयोगादीनां विशिष्टप्रत्यक्ष सामग्रीत्वेन हेतुता नतु रजतसंयोगत्वादिना गौरवादित्याह—**विशिष्टेति**। विशिष्टज्ञानहेतुप्रत्यक्षसामग्र्याः

के साथ सन्निकर्ष नहीं है—क्योंकि सोऽयं से तमिति परोक्षे विजानीयात्—के अनुसार तत्तांश विशेषण परोक्ष है। यहाँ विशेषण तद्देशकाल वृत्तित्व रूप है—उसके साथ इन्द्रिय से योग नहीं है—विशेष्यांश में ही प्रत्यक्षत्व है—विशेषणांश में नहीं—तत्तांश में स्मृतित्व है—इस पर कहते हैं यहाँ तत्तांश का परोक्षत्व इष्ट है—वहाँ तत्तांश विषयक ज्ञान में स्मृतित्व स्वीकार हैं। कहें कि दो ज्ञान मानने पर जाति सांकर्य की आपत्ति होगी। परस्पर विरुद्ध परोक्षत्व अपरोक्षत्व को सोऽयं देवदत्तः इस ज्ञान में समावेश होने से सांकर्य होगा। ज्ञान में ऐसा स्वीकार करने पर जाति सांकर्य का प्रसंग होने से जातित्व की अनुपपत्ति ही बाधक होगी। तो ऐसा नहीं कह सकते—क्योंकि अविद्या से अतिरिक्त जड़ जाति अङ्गीकार नहीं है—जातित्व और उपाधित्व की परिभाषा समस्त प्रमाणों के अगोचर होने से अप्रामाणिक होने के कारण जड़ जाति की सिद्धि नहीं है। कहेंगे ज्ञान ही सन्निकर्ष है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि यदि ज्ञान को सन्निकर्ष मानें तो उसी ज्ञान सन्निकर्ष से पर्वत आदिक साध्य वह्नि आदि का प्रत्यक्ष हो जायेगा अनुमान आदि प्रमाणों का उच्छेद हो जाएगा

सन्निकृष्टधूमादिव्यक्तिविषयत्वेन सर्वं धूमाविषयतया तस्य सामान्यप्रत्यासत्तिकल्पनायोगात्। न च धूमो वह्निव्यभिचारी न वेतिसंशयानुपपत्तिरिति वाच्यम्। तस्य तत्तद्धूमत्वेन वह्निसामानाधिकरण्यनिश्चयोऽपि प्रसिद्धे धूम एवाप्रसिद्धधूमाविषयत्वात्, न सामान्यप्रत्यासत्तौ किञ्चिदपि मानमितिसिद्धम्। न च दोष एव प्रत्यासत्तिरिति वाच्यम्। तस्य स्वतन्त्रान्वयव्यतिरेकाभ्यां भ्रमकारणत्वेन क्लृप्तस्य तत्त्वे मानाभावात्। किञ्च विशेष्येन्द्रियसन्निकर्षत्वेन करणत्वे गौरवात्। विषयेन्द्रियसन्निकर्षत्वेन तद्वाच्यं तत्रापि न किञ्चिद्विषयेन्द्रियसन्निकर्षत्वेन

सत्वाच्छुक्तौ रजतत्वविशिष्टस्य साक्षात्कारो जायत इत्यर्थः। किं देशान्तरवर्त्ति रजतमसन्निकृष्टमपि भ्रमे भासते सन्निकृष्टं वा नाद्यः। सन्निकर्षाभावेन तद्घटितसामग्रीविरहादित्याह—**भ्रमेति**। नापि द्वितीयः। शुक्तौ कालत्रयेऽपि रजतसद्भावाभावात् तथाच रजतप्रत्यक्षकारणस्य रजतेन्द्रियसन्निकर्षस्याभावाच्छुक्तौ रजतबुद्धेरनुपपत्तिरिति भावः। विशेषणसन्निकर्षाभावघटितासामग्री रजतसाक्षात्कार-प्रयोजिका भवत्वित्याशङ्क्यापाकरोति—**न चेति**। विशेषणसन्निकर्षस्यापि प्रत्यक्षसामग्री-त्वादन्यथा दण्डेन समं चक्षुसंयोगविरहकालेऽपि दण्डीपुरुष इति प्रत्यक्षापत्तेः। तथाच रजतत्वेन समं सन्निकर्षाभावान्न शुक्तौ रजतत्वस्य साक्षात्कार इत्याशयेन समाधत्ते—**विशेषणेति**। **अन्वयेति**। विशेषणेन रजतत्वेन समं सन्निकर्षस्तस्य रजतत्वविशिष्ट-

---

(कहें कि अलौकिक सामग्री से अनुमिति सामग्री बलवान् होती है—इसलिये वहाँ वह्नि आदि का प्रत्यक्ष नहीं अनुमान ही होगा—तो ऐसा नहीं कह सकते—समान विषय के प्रत्यक्ष सामग्रीत्वेन ही लाघव होने से बलवान् होने के कारण अनुमिति सामग्री ही दुर्बल है। अन्यथा संशय के पश्चात् प्रत्यक्ष भ्रम की अनुपपत्ति होगी। यह विचार अन्यत्र विस्तार से है। दूसरी बात हम पूछते हैं ज्ञान प्रत्यासत्ति पदार्थ क्या है? यद्वच्छेदेन (यानी भूतलावच्छेदेन यत् घटादिका अनुभव किया। तद्वच्छेदेन तद्वस्तु का अनुभव प्रत्यासत्ति है? ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि शुक्तित्वावच्छेदेन पूर्व में रजत का अनुभव नहीं किया है, फिर कैसे उसका ज्ञान प्रत्यासत्ति होगा? अन्यथा—सामान्य ज्ञान के प्रत्यासत्तित्व के अभाव में भी सामान्य को प्रत्यासत्ति स्वीकार करने में भी प्रमाण का अभाव है। कहें कि सामान्य प्रत्यासत्ति स्वीकार न करने पर—व्याप्ति ग्रह की उपपत्ति नहीं होगी—इसलिये व्याप्ति ग्रहानुपपत्ति ही प्रमाण है—सामान्य प्रत्यासत्ति में तो ऐसा नहीं कह सकते—सिद्धान्त में सन्निकृष्ट धूमादि व्यक्ति के ही प्रत्यक्ष विषय होने से वह सकल धूम का अविषय होने से उसमें

तथात्वेऽतिप्रसङ्गात्, किन्तु यावद्विषयेन्द्रियसन्निकर्षत्वेन प्रत्यक्षकारणत्वमवश्यं वक्तव्यं तथात्वे विशेषणसन्निकर्षस्यापि कारणत्वं भवत्येवान्यथोष्णीषादियुते कुण्डलिनि कुण्डलविशिष्टप्रत्यक्षत्वापत्तेः। न चेष्टापत्तिरिति वाच्यम्। अनुभवादर्शनात्। तस्माद्देशान्तरीयविषयस्यान्यत्र सत्वेऽपि तदिन्द्रियसन्निकर्षाभावेन तज्ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं सर्वथाऽपि न सम्भवत्येवान्यथा रजतार्थिनोऽपि रजतदेश एव प्रवृत्तिः स्यान्नतु पुरोवर्त्तिनि ज्ञानस्य स्वविषय एव प्रवर्त्तकत्वनियमात्। न च रजतज्ञानं शुक्तिमपि विषयीकरोति पुरोवर्त्तिनि रजतार्थिप्रवृत्तिः सूपपन्नेति वाच्यम्। अन्याकारज्ञानस्यान्यविषयत्वे

साक्षात्कारं प्रतिहेतुत्वंसत्यरजतत्वविशिष्टप्रत्यक्षे तदन्वयव्यतिरेकानुविधानदर्शनादिति भावः। विशेषणसन्निकर्षस्य यदि साक्षात्कारजनकत्वमभ्युपेयते तदा प्रत्यभिज्ञाया इन्द्रियजन्यतया साक्षात्कारित्वेन तत्तांशे व्यभिचार इति शङ्कते—**सोऽयं देवदत्त इति**। **विशेषणसन्निकर्षाभावादिति**। विशेषणं तद्देशकालवृत्तित्वरूपं तेन समं संयोगाभावादित्यर्थः। विशेष्यांश एव प्रत्यक्षत्वं नतु विशेषणांशे तत्तांशे स्मृतित्वमेवेत्याह—**तत्तांश इति**। तत्र परोक्षत्वापरोक्षत्वस्वीकारे जातिसाङ्कर्यं स्यादित्याह—**ज्ञानद्वयाङ्गीकारइति**। **जातिसाङ्कर्यापत्तिरिति**। परस्परविरुद्धयोः परोक्षापरोक्षत्वयोरेकत्र सोऽयं देवदत्त इति ज्ञाने समावेशात्साङ्कर्यं बोध्यम्। ज्ञाने तदभ्युपगमे जातिसाङ्कर्यप्रसङ्गेन जातित्वानुपपत्तिरेव बाधिकेतिभावः। **अविद्यातिरिक्तेति**। जातित्वोपाधित्वपरिभाषायाः। सकलप्रमाणागोचर-

---

सामान्य प्रत्यासत्ति की कल्पना नहीं हो सकती। कहें कि सामान्य प्रत्यासत्ति नहीं मानने पर धूमो वह्नि व्यभिचारी नवा इस संशय की उपपत्ति नहीं होगी तो ऐसा नहीं बोल सकते। व्याप्ति ग्रह तत् तत् धूमवत्त्वेन (महानसीय धूमवत्त्वेन्) वह्नि सामानाधिकरण का निश्चय भी प्रसिद्ध धूम में ही होता है—अप्रसिद्ध धूम में नहीं—इसलिये सामान्य प्रत्यासत्ति में कुछ भी प्रमाण नहीं है, यह सिद्ध होता है। कहें कि दोष ही प्रत्यासत्ति हो जाएगा तो ऐसा नहीं हो सकता। दोष स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक के द्वारा भ्रम के प्रति ही कारण है—वह प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) नहीं हो सकता दूसरी बात विशेष्य के साथ इन्द्रिय सन्निकर्षत्वेन कारण मानने पर गौरव होगा। विषयेन्द्रिय सन्निकर्षत्वेन कहें तो उसमें भी किञ्चित् विषयेन्द्रिय सन्निकर्षत्वेन कारण नहीं कह सकते, क्योंकि तब घट और इन्द्रिय सन्निकर्ष से पट के प्रत्यक्ष की आपत्ति होगी—इसलिये यावत् विषयेन्द्रिय सन्निकर्षत्वेन प्रत्यक्ष कारणत्व कहना होगा। इस प्रकार तो विशेषण सन्निकर्ष भी कारण हो ही जाता है। अर्थात् यावत्

सम्विद्विरोधात्। ननु ज्ञानं यत्रेष्टता-वच्छेदकवैशिष्ट्यं विषयीकरोति तत्रैव पुरुषं प्रवर्त्तयतीतिनियमाद्-भ्रान्तिज्ञानमपिशुक्तौ रजतत्ववैशिष्ट्यं विषयीकुर्वत् रजतार्थिनं प्रवर्त्तयतीत्यदोष इति चेन्न, रजतत्वस्य स्वतन्त्रोपस्थित्यभावेन शुक्तौ तदारोपानुपपत्तेः। नहि पूर्वं रजतत्वं विशेष्यत्वेनानुभूतं। येन तस्य स्वतन्त्रोपस्थितिः स्यादपितु रजतविशेषणत्वेन तथात्वे तस्य स्वातन्त्र्येणानुपस्थिततया तत्संसर्गारोपोऽनुपपन्न एव न च रजतोपस्थिति-सामग्र्यां सत्यां रजतत्वस्य स्वातन्त्र्येणोपस्थितिरिति वाच्यम्। रजतत्वस्य जातित्वेन तत्परतन्त्रत्वात्तस्माच्छुक्तौ रजतत्वारोपो न सम्भवत्येव। किञ्च तन्मते

तयाऽप्रामाणिकत्वेन न जडजातेः सिद्धिरिति भावः। ज्ञानमेव प्रत्यासत्तिरित्याशङ्क्य निषेधति—**न चेति**। ज्ञानस्य सन्निकर्षत्वे तत एव साध्यादेः प्रत्यक्षोपपत्तेरनु-मानाद्युच्छेदस्स्यादित्याह—**अनुमित्यादाविति**। नन्वलौकिकसामग्रीतोऽनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वात्वह्न्यादेः कथं प्रत्यक्षत्वमिति चेन्न समाने विषये प्रत्यक्षसामग्रीत्वेनैव लाघवेन बलवत्तयाऽनुमितिसामग्र्या एव दुर्बलत्वादन्यथा संशयोत्तरप्रत्यक्षभ्रमानुपपत्तेरित्यन्यत्र विस्तरः ज्ञानप्रत्यासत्तिशब्दार्थं पृच्छति—**कावेति**। यदवच्छेदेन=भूतलावच्छेदेन। यदनु-भूतम्=घटादिकमनुभूतम्। यदि शुक्तौ रजतानुभवस्स्यात्तदा तज्ज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्व-मुपपद्येत नत्वेवमित्याशयेन परिहरति—**नेति**। अन्यथेति। सामान्यज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वा-भावेऽपि सामान्यस्यैव प्रत्यासत्तित्वस्वीकार इति तदर्थः। इदमत्राकूतं न ज्ञानं प्रत्यासत्तिः प्रमाणाभावात्। नच घटमहं जानामीत्यनुव्यवसायो व्यवसायस्य प्रत्यासत्तित्वे प्रमाणं तस्य मनोजन्यतया ज्ञानान्तरानपेक्षणात्। अतएव न चाक्षुषज्ञाने तन्नियमः। प्रत्यभिज्ञाबलात् संस्कारादिसहकारिबलादसन्निकृष्टविषये चाक्षुषज्ञानोपपत्तेः। न च तत्रापि चाक्षुषत्वा-

विषयेन्द्रिय सन्निकर्षत्वेन कारण मानने पर सबके अन्तःपाति होने से विशेषण सन्निकर्ष में करणत्व प्राप्त हो जाता है—यह भाव है—उष्णीष (पगड़ी) आदि से युक्त कुण्डलधारी में कुण्डल विशिष्ट में प्रत्यक्षत्व की आपत्ति होगी। उष्णीषयुक्त इस विशेषण से उष्णीष के साथ ही चक्षु संयोग है—कुण्डल के साथ यह सूचित होता है। कहें कि इसे इष्टापत्ति कर लेगें तो ऐसा नहीं कह सकते—ऐसा अनुभव नहीं देखा जाता है। इसलिये देशान्तरीय विषय (रजत) के अन्यत्र सत्ता होने पर भी उसके साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष के अभाव से उसका ज्ञान कभी प्रत्यक्ष संभव नहीं है। अन्यथा रजतार्थी की भी रजत देश में ही प्रवृत्ति होगी न कि पुरोवर्ती पदार्थ में, क्योंकि ज्ञान का स्वभाव है, वह अपने विषय में ही प्रवर्तक होता है। कहें कि ज्ञान का जो जो विषय है—उस विषय में ज्ञान विषयार्थी को प्रवृत्त करता है, यहाँ

आरोप्यस्य देशान्तरस्थत्वेन बाधोऽपि न स्यात् ज्ञानस्य स्वरूपेण बाधानर्हतया विषयबाधात्तस्य वक्तव्यतया विषयस्यान्यत्र सत्वेन तद्बाधानुपपत्तेः। न च तद्वैशिष्ट्यस्यैव बाध इति वाच्यम्। तस्य सद्रूपतया ख्यातिबाधयोरसम्भवात्। अन्यथा खपुष्पादेरपि ख्यातिबाधौ तर्ककुशलैःसम्भावनीयावित्यर्थः।

त्सन्निकर्षजन्यत्वं कल्प्यत इतियुक्तं चक्षुजन्यस्यापि कस्यचित्परोक्षत्वे बाधकाभावात्, प्रमात्वाप्रमात्वयोरिवपरोक्षत्वापरोक्षत्वयोरेकज्ञानधर्मत्वोपपत्तेश्च तस्मान्न ज्ञानं **प्रत्यासत्ति-रिति**। व्याप्तिग्रहश्च सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्यासकलधूमादिविषयकः कथमन्यथा पर्वतीय-धूमे व्याप्त्यग्रहे तस्मादनुमितिरित्याह—**व्याप्तिग्रहेति**। धूमत्वावच्छिन्ना व्याप्तिः सन्निकृष्ट-धूमविषये धूमत्वेन प्रत्यक्षेण ज्ञायते ततःस्मृता सा लिङ्गपरामर्शे पक्षनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायते ततोऽनुमितिः सामान्यलक्षणानभ्युपगमेऽपि सन्निकृष्टधूमविषये धूमत्वेन धूमो वह्निव्याप्यइत्यनुभव इत्याशयेनाह—**सिद्धान्त इति**। वेदान्तिन इत्यर्थः। तस्य=व्याप्ति-ग्रहस्य। सन्निकृष्टेतत्तद्धूमे सन्निकृष्टतत्तद्वह्निनिरूपिता व्याप्तिर्नहि निखिलवह्निनिरूपिता येन सामान्यप्रत्यासत्तिरभ्युपगन्तव्या स्यादिति भावः। यदि सामान्यलक्षणा नास्ति तदानुकूलतर्कादिकं बिना धूमादौ व्यभिचारसंशयो न स्यात्, प्रसिद्धधूमे वह्निसम्बन्धावगमात् कालान्तरीयदेशान्तरीयधूमस्य मानाभावेनाऽज्ञानात्। सामान्येन तु सकलधूमोपस्थितौ धूमान्तरे विशेषादर्शनेन संशयो युज्यत इति मनसि निधायाह—**धूम इति**। पक्षधर्मताबलात् धूमो वह्निव्याप्य इत्यनुभवो न तु सर्वोधूमो वह्निव्याप्य इति येन सर्वभानार्थं सामान्यलक्षणास्वीकारइत्याशयेन समाधत्ते—**तस्येति**। व्याप्तिग्रहस्येति तदर्थः। **तत्तदिति**। महानसीयधूमत्वावच्छिन्न इत्यर्थः। **वह्निसामानाधिकरण्यनिश्चयेऽपि**= वह्निनिरूपितव्याप्तिनिश्चयेऽपि। प्रसिद्धधूम एव=पर्वतीयधूमे महानसीयधूमएव वा नतु देशान्तरीयधूमादौ। ननु तद्धूमे वह्निनिरूपितव्याप्तिनिश्चयसत्वेन कथं संशय इति चेन्न,

---

रजतमात्र ज्ञान का विषय नहीं है, किन्तु शुक्ति भी—इसलिये पुरोवर्ती में रजतार्थी की प्रवृत्ति अच्छी तरह उपपन्न होती है—तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण अन्य आकार वाला ज्ञान उससे भिन्न अन्य विषयक नहीं हो सकता रजताकारक ज्ञान रजत को ही विषय करता है—न कि शुक्ति को—फिर तो इयं शुक्तिः इत्याकारता ज्ञान में होगी—पर ऐसा नहीं है। इसमें संविरोध है—रजत के ज्ञान में अरजत विषयकत्व होने में विरोध है—जैसा कि कहा—''अन्यस्य ह्यन्यथा ज्ञानं प्रतीत्यैव पराहतम् परस्मिन् भासमाने तु न परम्भासते यतः'' कहें कि ज्ञान जहाँ इष्टतावच्छेदक (रजतत्व) को विषय करता है—उसी में पुरुष को प्रवृत्त करता है—ऐसा नियम होने से भ्रान्ति ज्ञान की शुक्ति में रजतत्व वैशिष्ट्य को विषय करता हुआ रजतार्थी को उसमें प्रवृत्त कर देता है—इस तरह कोई दोष नहीं है तो ऐसा नहीं बोल सकते

परिशेषाद्भ्रमविषयभूतं रजतं भ्रमकाल एव तत्रैवानिर्वचनीयं जायत इत्यभ्युपगन्तव्यम्। न च तज्जन्मसामग्र्यभावात्कथं रजतोत्पत्तिरितिवाच्यम्।

समानप्रकारकनिश्चयस्यैव संशयविरोधित्वात् धूमो वह्निव्यभिचारी नवेति संशयं प्रति धूमो वह्निव्याप्य इति व्याप्तिनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वं नतु तत्तद्धूमेषु वह्निनिरूपितव्याप्तिनिश्चयस्यातएव घटत्वेनेतरभेदनिश्चयेऽपि पृथिवीत्वेन घटे तत्संशय इति तवापि राद्धान्तस्तस्मान्न सामान्यं प्रत्यासत्तिरिति भावः। दोषस्य भ्रमं प्रत्येवान्वयव्यतिरेकाभ्यां कारणत्वं नतु तस्य प्रत्यासत्तित्वमिति शङ्कोत्तराभ्यामाह—**न चेति**। विशेष्येन्द्रियसन्निकर्षत्वेन कारणत्व-वद्विशेषणेन्द्रियसन्निकर्षत्वेनापि विनिगमनाविरहात्कारणत्वं स्यादिति कार्यकारणभाव-द्वयकल्पने गौरवम्, यद्वा विशेषणविशेष्येन्द्रियसन्निकर्षत्वेन कारणताकल्पने कार्यकारण-भावद्वयं कारणतावच्छेदककोटौ विशेषणविशेष्ययोर्वैपरीत्येन कार्यकारणभावे विनिग-मनाविरहादुभयोर्व्यत्यासेन तथात्वकल्पने गौरवं स्यात्तद्वारणाय विशेषणत्वविशेष्यत्व-योर्विषयतात्वेन द्वयोरनुगमय्य विषयसन्निकर्षत्वेन कार्यकारणभावकल्पने लाघवमित्यभि-प्रेत्याह—**किं चेति**। विषयत्वस्य किञ्चिद्विषयतात्वेन यावद्विषयतात्वेन वा कारणत्व-घटकमिति विकल्प्याद्यपक्षं निरस्यति—**तत्रापीति**। तथात्वे=कारणत्वे। अतिप्रसङ्गात= घटेन्द्रियसन्निकर्षात्पटप्रत्यक्षापत्तेः। द्वितीयविकल्पं निरसितुमुपपादयति—**किन्त्विति**। तथात्वेन=यावद्विषयेन्द्रियसन्निकर्षत्वेन। यावद्विषयेन्द्रियसन्निकर्षत्वेन कारणत्वे यावदन्तः पातितयाविशेषणसन्निकर्षस्यापि कारणत्वं प्राप्तमिति भावः। उष्णीषायुत इत्यनेन विशेषणेनोष्णीषेण सममेव चक्षुसंयोगो नतु कुण्डलेन सार्धमिति सूचितम्। अनुभवेति। यदंशे चक्षुसंयोगस्तदंशस्यैवानुभवो नत्वेकदोभयोरिति भावः। एतावता प्रबन्धेन यत्फलितं तं दर्शयति—**तस्मादिति**। विशेषणसन्निकर्षस्य कारणत्वादिति तदर्थः। देशान्तरवर्त्तिनम-

रजतत्त्व की वहाँ स्वतन्त्र उपस्थिति नहीं होने से शुक्ति में उसका आरोप नहीं हो सकता। वहाँ रजतत्त्व पहले विशेष्यत्वेन अनुभूत नहीं है—जिससे उसकी स्वतन्त्र उपस्थिति होती, बल्कि रजत के विशेषण रूप से उपस्थिति है—इस प्रकार रजतत्व की स्वातन्त्रेण उपस्थिति नहीं होने से उसमें संसर्ग का आरोप अनुपपन्न ही है। कहें कि रजत की उपस्थिति की समग्र सामग्री उपस्थित होने पर रजतत्त्व की स्वातन्त्र्येण उपस्थिति है तो ऐसा भी नहीं कह सकते—कारण रजतत्त्व जाति है। वहाँ व्यक्ति परतन्त्र होने से शुक्ति में रजतत्त्व का आरोप कथमपि संभव नहीं है। दूसरी बात आरोप्य रजत देशान्तरस्थ होने से उसका बाध भी नहीं होगा। ज्ञान स्वरूप से बाध योग्य नहीं होता। विषय के बाध से ही बाध होता है—यहाँ विषय रजत के देशान्तर में होने से उसका बाध उपपन्न नहीं हो सकता। कहें कि उसके वैशिष्ट्य का ही

तस्या लोकप्रसिद्धसामग्रीविलक्षणायाः सत्वात् का सेति चेत् श्रूयताम्-अधिष्ठानेन्द्रियसन्निकर्षानन्तरमिदमाद्याकारवृत्तौ

सन्निकृष्टं रजतं प्रसिद्धमपि न भ्रमे भासते तथाच रजतत्वेन समं चक्षुसन्निकर्षाभावाच्छुक्तौ न रजतत्वसाक्षात्कार इत्यर्थः। तज्ज्ञानस्य=इदं रजतमितिज्ञानस्य। **अन्यथेति**। विषय-संयोगमन्तराऽपि रजतार्थिनः पुंसो रजतज्ञानादेव प्रवृत्त्युपगम इति तदर्थः। यत्र ज्ञानस्य विषयः स्यात्तत्रैव प्रवृत्तिर्भवितुं युक्ता नान्यत्र, ज्ञानं हि विषये प्रवर्तकमित्याद्यप्रवृत्तौ सम्वादिप्रवृत्तौ सर्वैरवधारितमित्यर्थः। ज्ञानस्य यो यो विषयस्तस्मिन्तस्मिन् विषये ज्ञानं विषयार्थिनं प्रवर्त्तयति नात्ररजतमात्रं ज्ञानस्य विषयः। किन्तु शक्तिरपीत्याशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। रजताकारं ज्ञानं रजतमेव विषयीकरोति नतु शुक्तिं तथासति इयं शुक्तीत्याकारकताज्ञानस्य स्यान्नत्वेवमित्याह—**अन्याकारज्ञानस्येति**। सम्विद्विरोधादिति। रजतज्ञानस्यारजतविषयकत्वे विरोधः. तदुक्तम्—"अन्यस्य ह्यन्यथा ज्ञानं प्रतीत्यैव-पराहतम्। परस्मिन् भासमाने तु नपरम्भासते यत इति विषयं विनैव तदाकारं ज्ञानमिति-साकारवादइति भावः"। पुरोवर्त्तित्वावच्छिन्नइष्टतावच्छेदकवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमेव प्रवर्तकमित्याशयेन शङ्कते—**नन्विति**। इष्टतावच्छेदकवैशिष्ट्यमिति। इष्टतावच्छेदकं रजतत्वादि तस्य वैशिष्ट्यमित्यर्थः। रजतार्थि प्रवृत्तिःरजतत्ववैशिष्ट्यावगाहिज्ञानसाध्या रजतार्थिप्रवृत्तित्वात्रजतप्रवृत्तिवदित्यनुमानं फलितं भवति। यदि स्वातन्त्र्येण रजतत्वस्यो-पस्थितिःस्यात्तदा तत्संसर्गारोपःस्यान्नत्वेवमित्याशयेन परिहरति—**नेति**। स्वातन्त्र्यो-पस्थित्यभावमेव विवृणोति—**न हीति**। तस्य=रजतत्वस्य। तथात्वे=उपस्थितत्वे। तत्संसर्गारोपः=रजतत्ववैशिष्ट्यारोपः। निगमयति—**तस्मादिति**। देशान्तरस्थस्यारोप्यस्य रजतस्य बाधो न घटत इत्याह—**किंचेति**। तदेव विशदयति—**ज्ञानस्येत्यादिना**। तद्वैशिष्ट्यम्=रजतत्ववैशिष्ट्यम्। असतः भानं बाधश्च न सम्भवतीत्याह—**तस्येति**। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। असतःभाने बाधे चेत्यर्थः। एतावता प्रबन्धेनान्यथाख्यातिवादिनस्तार्किकस्य मतं निरस्यानिवर्चनीयाख्यातिवादिमायावादिमतं

बाध है तो ऐसा भी नहीं हो सकता, उसके सद्रूप होने से उसकी ख्याति एवं बाध संभव नहीं है। अन्यथा खपुष्प आदि अलीक पदार्थों के भी ख्याति एवं बाध तर्क के कुशल जनों के लिये सम्भव हो जायेंगे। इसलिये परिशेषात् भ्रम का विषयभूत (शुक्ति का रजत) भ्रम काल में ही शुक्ति में अनिर्वचनीय उत्पन्न होता है—ऐसा मानना चाहिये।

कहें कि उस अनिर्वचनीय रजत के जन्म की सामग्री न होने से उसकी उत्पत्ति कैसे होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—वहाँ लोक प्रसिद्ध सामग्री से विलक्षण

सत्यामिदमच्छिन्नचैतन्यनिष्ठाशुक्तित्वप्रकारकाविद्या सादृश्यदर्शनसमुद्बुद्धसंस्कारसहकृता रजताकारेण तज्ज्ञानाकारेण परिणमते तदेव तस्य जन्माज्ञानोपादेयत्वादेवाधिष्ठान-तत्त्वज्ञानेन तन्नाशोऽनिर्वचनीयत्वादेव रजतस्य मिथ्यात्वं तस्माद-निर्वचनीयत्वमेव रजतमस्याः प्रत्यक्षप्रतीतेर्विषयइति सिद्धम्।।७५।।

दूषयितुमुपन्यस्यति। **परिशेषादिति**। रजतोत्पादकानां रजतावयवानामभावे शुक्तौ कथं रजतमुत्पद्यत इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। **अधिष्ठानेति**। काचादिदोषदूषितनेत्रस्य पुंसः पुरोवर्तिद्रव्यसन्निकर्षेणेदमाकारा चाकचिक्याकारा विलक्षणान्तःकरणस्य वृत्तिर्जायते तत्रेदमंशावच्छिन्नं चैतन्यं प्रतिबिम्बते तत्र वृत्तेर्वहिर्निगमनेनेदमंशावच्छिन्नचैतन्यं वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यं प्रमातृचैतन्यञ्चाभिन्नं भवति ततश्च प्रमातृचैतन्याभिन्नविषय-चैतन्यनिष्ठाशुक्तित्व प्रकारिकाविद्या चाकचिक्यादिसादृश्यसन्दर्शनसमुद्बोधिरजत-संस्कारसध्रीचीना चाकचिक्यादिद्रोषसमवहिता रजतरूपार्थाकारेण रजताभासाकारेण च परिणमत इत्यर्थः। अनिर्वचनीयरजतोत्पत्तावविद्याया उपादानकारणत्वं संस्कारो-निमित्तकारणं दोषसंस्कारावसाधारणकारणाविति विवेकः। अस्याः=इदं रजतमिति-पूर्वोक्तायाः। एवम्भूते पूर्वपक्षे प्राप्ते समाधानमाह—**अत्रेति**।।७५।।

सामग्री होती है—जिससे अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति संभव होती है, कहें कि वह सामग्री क्या है? तो सुनिये अधिष्ठान पुरोवर्ती इदं पदवाच्यार्थ के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष के पश्चात्—अन्तःकरण की इदमाकार वृत्ति होने पर इदमवच्छिन्न चैतन्य (जीव) निष्ठ जो अशुक्तित्व प्रकारक अविद्या (अशुक्त्यात्मिका अविद्या, शुक्ति विषयणी अविद्या) सादृश्य दर्शन (चाकचिक्य दर्शन) से उद्बुद्ध संस्कार सहकृत होकर रजताकार में परिणत हो जाता है—वही उसका जन्म है। उस रजत का अज्ञान ही उपादान है—वह रजत अज्ञान का उपादेय है अधिष्ठान तत्त्वज्ञान से उसका नाश होता है। अनिर्वचनीय होने से ही रजत में मिथ्यात्व होता है। इसलिये अनिर्वचनीय रजत ही इदं रजतम् इस प्रतीति का विषय है।

श्रीशंकराचार्य का कहना है कि शुक्ति में इदं रजतम् यह ज्ञान रजतत्वाभाववत् इदमर्थ शुक्ति में रजतत्व प्रकारक अयथार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है—अन्यथा ख्याति नहीं है—इसका जोरदार खण्डन यहाँ तक किया है। उनका कथन है कि अन्यथा ख्याति नहीं हो सकती, किन्तु भ्रमकाल में शुक्ति में यह अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न होता है—इसका नाना उक्तियों से वे समर्थन करते हैं—यहाँ इस ग्रन्थ से उसका जोरदार खण्डन है।।७५।।

अत्र ब्रूमः, एतावन्तं कालमसदेव रजतमभादित्यसत्यस्यैव तत्रानुभवात्। न च निर्वाच्यैकदेशसत्वाभावविषयत्वेनासद्बुद्ध्युपपत्तिः सुकरेतिवाच्यम्। असद्भेदमादाय सदेव रूप्यमभादित्यापत्तेः। सत्यज्ञानमित्यत्र सत्यमित्यस्यासद्भेदविषयत्वापत्त्या ब्रह्मणः सद्रूपत्वासिद्धिप्रसङ्गाच्च। अपिचेदं रजतमित्यादिप्रतीतेः। प्रत्यक्षत्वाङ्गीकारे विषयस्य प्रमितत्वेन सत्यत्वप्रसङ्गात्। किञ्चेदं रजतमित्यादिप्रतीतेरिन्द्रियसन्निकर्षादिरूपसामग्रीजन्यत्वं वा तवाभिप्रेतवृत्तिविषयत्वं वा नाद्यः। आवयोरनङ्गीकारात्। द्वितीये वृत्तिव्याप्यं फलव्याप्यं वोभयव्याप्यं वा,

---

अथानिर्वचनीयख्यातिनिरासः

एतावन्तमिति। असत्यस्येति। उक्तप्रतीतौ नानिर्वचनीयत्वसिद्धिरिति भावः। अनिर्वाच्यत्वं नाम सदसद्विलक्षणत्वं तस्यैकदेशसत्वाभावविषयकत्वेनैव तस्यासद्विषयकत्वोपपत्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। अनिर्वाच्यैकदेशासद्भेदावगाहित्वेन सद्रूपत्वमप्युक्तप्रतीतेःस्याद्विनिगमनाविरहेणैकतरशेषस्य कर्त्तुमशक्यत्वादित्याह—**असद्भेदमिति**। एवं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्यत्रासत्वाभावविषयकत्वेनैव चारितार्थ्ये सिद्धे ब्रह्मणः सद्रूपता न सिद्ध्येदित्याह—**सत्यमिति। उभयव्याप्यमिति**। वृत्तिफलोभयव्याप्यमित्यर्थः। ब्रह्मणो वृत्तिव्याप्यत्वेन यथा बाधो न भवति तद्वदेव रजतस्य बाधोन स्यादित्याशयेनाद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति। घटवदिति**। यथा घटस्योत्पत्त्यनन्तरं न बाधोऽपितु कालान्तरे तद्वदेव रजतस्याप्युत्पत्त्यनन्तरं बाधो न स्यात्किन्तुकालान्तर इति

अनिर्वचनीय ख्यातिवाद का खण्डन

अत्र ब्रूमः, हम यहाँ कहते हैं—इतनी देर असत् रजत ही प्रतीत हुआ—ऐसा अनुभव होने से हम कह सकते हैं कि वहाँ असत्य रजत का ही भान हुआ था—न कि अनिर्वचनीय कहें कि अनिर्वाच्यत्व है—सदसद् विलक्षणत्व। उसके एक देश (एक भाग) सत्वाभान विषयक होने से—'इदं रजतम्' प्रतीति में असद् विषयकत्व की उपपत्ति सुलभ है तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण इस तरह तो अनिर्वाच्य के एक देश असद् भेद का अवगाही होने से उस प्रतीति में सद्रूपत्व भी हो जाएगा—इस प्रकार विनिगमना विरह होने से उन दोनों में कोई भी एक नहीं, कह सकते—यही भाव है। दूसरी बात इस प्रकार "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस श्रुतिवाक्य में सत्य शब्द से असत्वाभाव अर्थ करके ही उक्त श्रुति की चरितार्थता हो जाएगी ब्रह्म की सद्रूपता सिद्ध नहीं होगी। और दूसरी बात 'इदं रजतम्' इत्यादि प्रतीति को प्रत्यक्ष ज्ञान स्वीकार करें तो विषय के प्रमित हो जाने से उसमें

नाद्यः। ब्रह्मवदबाध्यत्वापत्तेः। न द्वितीयः वृत्तिं विना फलव्याप्यत्वासम्भवात्। न तृतीयः। उभयव्याप्यत्वेऽपि घटादिवत् तात्कालीनबाधानुपपत्तेः। न च मन्मते प्रातीतिकरूप्यादेःसाक्ष्यैकवेद्यत्वाङ्गीकारेण वृत्तेस्तत्प्रयोजकसन्निकर्षादेश्चानुपयोगान्नोक्तदोषावकाश इति वाच्यम्। चाक्षुषवृत्तिं विना साक्षिणा तद्ग्रहणासम्भवादन्यथाऽन्धस्यापि शुक्तौ रूप्यप्रत्ययापत्तेरित्यलं विस्तरेण। किञ्च यदुक्तमज्ञानोपादेयं रजतमधिष्ठानतत्त्वज्ञानात्तन्नाश इति। तत्तुच्छम् तथात्वे रूप्यं जातन्नष्टञ्चेति धीप्रसङ्गात् त्रैकालिकनिषेधायोगाच्च। ननु रजतोत्पत्तिविनाश-

भावः। वृत्तिविषयत्वमङ्गीकृत्योक्तदोषं निरस्यति—**मन्मतइति। उक्तदोषइति।** तात्कालीनबाधानुपपत्तिदोष इत्यर्थः। **अन्यथेति**। चक्षुषोवृत्तिं विना साक्षिग्राह्यत्व इत्यर्थः। अनिर्वचनीयं वस्तु रजतमज्ञानोपादानकं तत्त्वज्ञानेन नाश्यञ्चेति यत्प्रागभिहितं तमनूद्य दूषयति—**किंचेति।** तथात्वे=अज्ञानोपादानकत्वे। रजतोत्पत्तिसमयेत्रैकालिकनिषेध-प्रतियोगित्वरूपमिथ्यात्वलक्षणमव्याप्तमिति भावः। **पूर्वोत्पन्नेति**। पूर्वोत्पन्नस्थविनष्टस्य च रजतस्याधिष्ठानरूपा या शुक्तिस्तदभिन्नतयेत्यर्थः। **तद्धीति**। रूप्यमुत्पन्नं नष्टञ्चेति धीप्रतिबन्धकत्वात्। द्वितीयोऽस्तु निरवद्यत्वादित्यतआह=न द्वितीय इति। रजतत्वाभावात्मकबाधनिश्चयः रजतोत्पादविनाशबुद्धिं प्रतिबध्नातीतिदृष्टान्तपुरःसरं प्रतिपादयन्नाह—**अत्यन्ताभावेति।** परिहरति—**नेति।** कदाप्यप्रतीतायाम्=इदानीमुत्पन्न-

सत्यत्व का प्रसंग हो जाएगा। दूसरी बात 'इदं रजतम्' इत्यादि प्रतीति इन्द्रिय सन्निकर्ष रूप सामग्री जन्य है—किंवा आपके अभिप्रेत वृत्तिविषयत्व? पहला पक्ष तो नहीं कह सकते—कारण यह तो हम दोनों को अङ्गीकार नहीं है। द्वितीय पक्ष विकल्प हैं—वृत्तिविषयत्व क्या वृत्तिव्याप्य है, कि फल व्याप्य है अथवा उभयव्याप्य? वृत्तिव्याप्य मानें तो ब्रह्म की तरह 'इदं रजतम्'—यह प्रतीति अबाध्य हो जाएगी द्वितीय भी नहीं कह सकते—वृत्ति के बिना फल व्याप्यत्व संभव नहीं है—तीसरा भी नहीं हो सकता—कारण उभय व्याप्यत्व के भी घट आदि की तरह तात्कालीन बाध की अनुपपत्ति होगी। जैसे घट की उत्पत्ति के अनन्तर बाध नहीं होता—बल्कि कालान्तर में होता है—उसी तरह रजत की उत्पत्ति के अनन्तर बाध नहीं होगा। किन्तु कालान्तर में होगा। अब वृत्तिविषयत्व पक्ष को स्वीकार करके उक्त दोष का निराकरण करते हैं—कहें कि मेरे मत में प्रतीति विषय रजत आदि के एकमात्र साक्षी वेद्यत्व स्वीकार करने से—वृत्ति एवं तत्प्रयोजक सन्निकर्ष आदि से अनुपयोग के कारण तात्कालीन बाधानुपपत्ति दोष नहीं होगा। तो ऐसा संभव नहीं

धीर्भ्रान्तिदशायां बाधसमये वा नाद्यः। पूर्वोत्पन्नाविनष्टाधिष्ठानरूप-शुक्त्यभिन्नतया ग्रहस्यैव तद्धीप्रतिबन्धकत्वात्। न द्वितीयः। अत्यन्ता-भावस्यैव प्रतियोगिग्रह इव तदुत्पादविनाशग्रहेपि प्रतिबन्धकत्वादिति-चेन्न, कदाप्यप्रतीतायां प्रातीतिकस्य प्रातीतिकोत्पत्तौ मानाभावात्। त्रयाणां सत्वेऽत्यन्ताभावबुद्धेरेवासम्भवाच्च। त्रैकालिकव्याप्य-वृत्त्यन्ताभावाधिकरण उत्पत्त्यादेर्व्याहतत्वाच्च। नच पारमार्थिकत्वेनैव तन्निषेधान्न स्वरूपेणेत्युत्पादाद्युपपत्तिरविरुद्धेति वाच्यम्। पारमार्थिकत्वस्यापि रूप्यवत्प्रतीतिमात्रशरीरत्वेन तत्काले सत्वात्तस्यापि

रूप्यायाम्। प्रातीतिकस्य=रजतस्य। इदानीमुत्पन्नरूप्यायामभेदेनेदं विशिष्टरूप्ये, उत्पत्त्यादिप्रत्ययस्य चोदितत्वात्समारोप्यधर्मस्यैव विषये प्रतीतेश्च उत्पादितप्रत्यये-नैवात्यन्ताभावप्रतीतिप्रतिबन्धसम्भवेन बाधासिद्धिः नहि तदुत्पत्त्यधिकरणे तदत्यन्ता-भावप्रतीतिरस्तीत्याशयेन समाधत्ते—**त्रयाणामिति**। इदं विशिष्टरूप्योत्पत्तिप्रत्ययाना-मित्यर्थः। सत्वे=विद्यमानत्वे। कथमत्यन्ताभावबुद्धिसम्भावनापीत्यर्थः। त्रैकालिकेति। रजतं नास्ति नासीन्न भविष्यतीतिसिद्धव्याप्यवृत्त्यभावाधिकरणशुक्तौ न कथमप्य-निर्वचनीयरजतादेरुत्पादोभवितुमर्हति व्याघातात्। अनिर्वचनीयरजतोत्पत्तौ न तदत्यन्ता-भावस्तदत्यन्ताभावे न रजतोत्पत्तिरिति व्याहतिरित्यर्थः। न स्वरूपेण त्रैकालिकनिषेध-प्रतियोगित्व रजतस्येति प्रतिपादयामो येन व्याघातः प्रसज्येतापितु पारमार्थिकत्वाकारेणे-

---

है—कारण चाक्षुष वृत्ति के बिना साक्षी द्वारा उसका ग्रहण संभव नहीं है, अन्यथा—अन्धे व्यक्ति को भी शुक्ति में रजत की प्रतीति की आपत्ति—अर्थात् चक्षु की वृत्ति के बिना साक्षी ग्राह्यत्व मानने पर यह अर्थ है। अब रजत अनिर्वचनीय वस्तु है जो अज्ञानोपादानक है—अविद्या से उत्पन्न हुआ है, वह अधिष्ठान के तत्त्वज्ञान से नाश्य है—यह जो पहले कहा गया—अब उसीका अनुवाद करके उसे दूषित करते हैं, यह अति तुच्छ कथन है, कारण यदि रजत अज्ञानोपादानक हो तो रजत उत्पन्न हुआ और नष्ट हो गया, ऐसी बुद्धि का प्रसंग होगा दूसरी बात अज्ञानोपादानक होने पर रजत की उत्पत्ति के समय त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व लक्षण की वहाँ अव्याप्ति हो जाएगी। कहें कि रजत की उत्पत्ति के विनाश की बुद्धि भ्रम दशा में होती है या बाध के काल में—पहली बात नहीं कह सकते—क्योंकि पूर्व उत्पन्न तथा विनष्ट रजत की अधिष्ठान स्वरूप शुक्ति के अभिन्नतया ग्रहण ही रजतम् उत्पन्नम् नष्टञ्च इस बुद्धि का प्रतिबन्धक है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते, कारण अत्यन्ताभाव ही प्रतियोगी ज्ञान की तरह—रजत की उत्पत्ति एवं विनाश के

पारमार्थिकत्वेन निषेधेऽनवस्था प्रसङ्गात्। स्वरूपेण निषेधे तदुत्पादाद्यसम्भवात्। अयमभिप्रायो नेदं रजतमिति निषेधस्य त्रैकालिकत्वाभ्युपगमे को वा तद्विषयः प्रातीतिकं रजतं वा अर्थक्रियाकारित्वावच्छिन्नव्यावहारिकं वा पारमार्थिकसत्त्वावच्छिन्नं वा आपणस्थरूप्यम्वा नाद्यः। वर्त्तमानस्य प्रतिपन्नोपाधिसम्बद्धस्य त्रैकालिकनिषेधासम्भवात्। नापि द्वितीयः। अर्थक्रियाकारित्वाभावमात्रेण निषेधायोगात्। अन्यथा निर्धर्मकब्रह्मणोऽपि तत्त्वापत्तेर्वक्तुं शक्यत्वात्। नापि तृतीयः। स्वतन्त्र सत्ताहीनस्यास्माभिरपि स्वीकारेणावयोरभीष्टसाम्यात्। वस्तुतस्तु

त्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। तत्काल इति प्रतिभाससमय इतितदर्थः। पारमार्थिकत्वस्यापि प्रातीतिकत्वेन तन्निषेधः कर्त्तुं शक्यत इति भावः। ननु न प्रतीतिकालप्रतीतं पारमार्थिकत्वं निषिद्ध्यते किन्त्वन्यवृत्तेरेवेति तेनाकारेण रजतस्यैव निषेध इति चेन्न, येनाकारेण निषेधस्तेन रूपेण प्रतियोगिप्रसक्तौ पारमार्थिकत्वस्य रूप्यतुल्यत्वात्। नच व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावप्रतीतौ न विशिष्टप्रसक्तिरुद्देश्या प्रत्येकप्रसिद्ध्यैव तत्प्रतीत्युपपत्तेरिति वाच्यम् तथापि निषिद्ध्यमानस्य निषेध्यतावच्छेदकवैशिष्ट्येन प्रतीतिं विना निषेधायोगेन निषिध्यमानस्यानिर्वचनीयस्य तदवच्छेदकपारमार्थिकवैशिष्ट्यज्ञानमवर्जनीयमिति पारमार्थिकत्वमपि रजततुल्यमेवेत्यभिमतसिद्धिः। तस्यापि= पारमार्थिकस्यापि। प्रागुक्तार्थं विशदीकर्त्तुं चतुर्धा विकल्पयति—**अयमभिप्रायइत्यादिना।**

ज्ञान में प्रतिबन्धक हो जायेगा तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि पहले कभी भी प्रतीत नहीं होने वाली इस समय प्रतीति विषय रजत की प्रातीतिक उत्पत्ति में कोई प्रमाण नहीं है। दूसरी बात इदं विशिष्ट रजतोत्पत्ति के सत्त्व होने पर अत्यन्ताभाव बुद्धि ही असंभव है। दूसरी त्रैकालिक व्याप्य वृत्ति अत्यन्ताभाव के अधिकरण में उत्पत्ति आदि का व्याघात ही है—रजत न है, न था न होगा—इत्याकारक त्रैकालिक व्याप्यवृत्ति अभावाधिकरण शुक्ति में कभी भी अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति होगी—यह व्याघात है। कहें कि रजत में त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व हम स्वरूप से नहीं कहते हैं—जिससे व्याघात का प्रसंग होगा, बल्कि पारमार्थिकत्वाकारेण ही कहते हैं, इसलिये उत्पाद आदि की उत्पत्ति में कोई विरोध नहीं है—ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि पारमार्थिकत्व भी रजत की तरह प्रतीति मात्र होने से प्रतिभास काल में सत् होने से—उसका भी पारमार्थिकत्वेन निषेध होने पर अनवस्था होगी। स्वरूप से निषेध करने पर उसमें उत्पाद आदि असंभव है। अब पूर्व प्रातिपदिक अर्थ को स्पष्ट करने के लिये यहाँ चार विकल्प करते हैं—अभिप्राय यह है कि नेदं

पारमार्थिकत्वस्य तत्राप्रसक्तत्त्वेनतन्निषेधस्यैवासम्भवात्। नापि चरमः। तस्याकाशादिप्रपंचान्तःपातित्वेनाप्रसक्तेः अन्यथाख्यातिप्रसङ्गाच्च, निषेधस्योत्तरकालिकमात्रत्वेऽनित्यत्वमेव स्यात्, नतुत्वदभीष्टत्वमस्मदिष्टञ्च। किंच रूप्यस्याज्ञानोपादेयत्वेऽज्ञानं रूप्यमिति प्रत्ययःस्यादुपादानस्योपादेयानुविद्धतयाभाननियमात्। ननु तवापि प्रकृतेर्घटानुविद्धतया भानापत्तेः नतु तदस्ति किन्तु मृद्घट इति मृत्त्वेनैव भानादिति चेन्न, प्रकृतित्वरूपावस्थाया अज्ञातसत्ताकत्वेन घटावस्थानेऽपि प्रतीतिकरूप्याद्युपादानस्य प्रातीतिकस्याज्ञानस्याज्ञातसत्ताकत्वा-

---

आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति। प्रतिपन्नेति।** स्वसम्बन्धितया ज्ञाते धर्मिणि सम्बद्धस्येत्यर्थः। **अर्थक्रियेति।** शुक्तौ रजतं नास्ति नासीन्न भविष्यत्याकारकप्रतीतिसिद्ध एव निषेधाकारो नत्वर्थक्रियाकारित्वावच्छिन्न व्यावहारिकरजतं नास्तीत्याकारकोऽतो निषेधप्रतियोगित्वमर्थक्रियाकारित्वावच्छिन्नव्यावहारिके रजते नास्तीति भावः। अन्यथेति। निषेधाविषये प्रतियोगित्वस्वीकार इति तदर्थः। तत्त्वापत्तेः=ब्रह्मणि धर्मनिषेधीय-प्रतियोगित्वापत्तेः। **स्वतन्त्रसत्ताहीनेति।** सत्ता तावद् द्विविधा स्वतन्त्रपरतन्त्रभेदात्। तत्र स्वतन्त्रसत्तानाम, **आत्माश्रितत्वेसति** स्वायत्तस्थितिप्रवृत्तिकता सा परब्रह्मविश्वात्मनिष्ठा सदेव सोम्येदमग्र आसीदित आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुण इत्यादिश्रुतिभ्यः। परतन्त्रसत्वं द्विविधं कूटस्थं विकारशीलञ्चेति तत्र कौटस्थ्यं नाम जन्मादिविकार शून्यत्वे

रजतम् (यह रजत नहीं है) इस निषेध को त्रैकालिक मानने पर कौन विषय है—प्रतीयमान रजत? अथवा अथक्रियाकारित्व विशिष्ट व्यावहारिक रजत? किंवा पारमार्थिकसत्ताविशिष्ट रजत? अथवा बाजार का रजत? पहला नहीं कह सकते कारण प्रतिपन्न उपाधि सम्बद्ध यानी स्वसम्बन्धितया ज्ञात धर्मी में सम्बद्ध रजत का त्रैकालिक निषेध असंभव है, दूसरा पक्ष इसलिये नहीं हो सकता क्योंकि अर्थक्रियाकारित्वाभाव मात्र से निषेध नहीं हो सकता, भाव यह है—शुक्ति में रजत नहीं है, न कभी था, न होगा इत्याकारक प्रतीति सिद्ध ही निषेध का आकार है—न कि अर्थक्रियाकारी व्यावहारिक रजत नहीं है—इत्याकारक निषेध—इसलिये निषेध प्रतियोगित्व अर्थक्रियाकारित्वावच्छिन्न व्यावहारिक रजत में नहीं है, यह भाव है। अन्यथा निषेध विषय में प्रतियोगित्व स्वीकार करने पर निर्धर्मक ब्रह्म में भी धर्म निषेधीय प्रतियोगित्व की आपत्ति होगी। ना ही तीसरा पक्ष भी संभव है। स्वतन्त्र सत्ताहीन को हमने भी स्वीकार किया है—इसमें हम दोनों के अभीष्ट में समानता है। सत्ता दो तरह की होती है—स्वतन्त्र सत्ता, परतन्त्र सत्ता—स्वतन्त्र सत्ता

सम्भवान्नोक्त दोषावकाशः। नापि तस्यानिर्वचनीयत्वमनिर्वचनीय-त्वस्याद्याप्यसिद्धत्वात्। नापि तस्य मिथ्यात्वं पूर्वमेव निरस्तत्वात्। नाप्यधिष्ठानतत्वज्ञानबाध्यत्वं वृक्षप्रतिबिम्बस्थले तज्ज्ञानोत्तरसमये वृक्षाधोग्रत्वादिभ्रमस्य तादवस्थ्यदर्शनाद् व्यभिचारः। न च सोपाधिकप्रतिबिम्बभ्रमोपादानाज्ञानमुपाधिनिवृत्तौ सत्यां ज्ञानेन निवर्त्तते न केवलेनेति वाच्यम्। स्वप्रागभावनिवृत्ताविवाज्ञाननिवृत्तावपि ज्ञानस्येतरानपेक्षात्वात्। अन्यथा केवलज्ञाननिवर्त्यत्वाभावे कल्पितत्वासिद्धेः। एतदुक्तं भवति ज्ञानं द्विविधं परोक्षापरोक्षभेदात्। तत्र

सति नित्यत्वं तच्च जीववर्गाश्रितं, द्वितीयं विक्रियाद्युक्तत्वेसत्यनाद्यनन्तत्वं तत्तु प्रकृतिवर्गाश्रितमिति विवेकः। सप्रसक्तस्यैव प्रतिषेधो भवति नत्वप्रसक्तस्य शुक्तिरजते प्रपञ्चे च पारमार्थिकत्वस्याप्रसक्ततया तन्निषेधः कथमपि कर्त्तुंन शक्य इत्याह— **वस्तुतस्त्वति।** तस्य=आपणस्थरूप्यस्य। प्रसक्तस्यैव प्रतिषेधो भवति नत्वप्रसक्तस्येतिन्यायेन केवलाद्वैतवादिनये वियदादि प्रपञ्चस्यासत्वेन तन्निषेधो यथा न भवति तदन्तर्गतापणस्थरूप्यस्याप्रसक्तत्वेन न तन्निषेधोऽपि भवितुं शक्यं इति नापणस्थरूप्ये निषेधविषयतेति भावः। आपणस्थरूप्यस्यापि निषेधप्रतियोगि-त्वाङ्गीकारेऽन्यथाख्यातिवादितार्किकमते प्रवेशः स्यादित्याह—**अन्यथाख्यातीति।** वियदादि प्रपञ्चस्य रजतादेर्वा निषेधात् प्राक् सत्वमेवोत्तरकाले तान्निषिध्यत इति चेत्तत्राह—

एकमात्र परमेश्वर में ही हैं—''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'', ''आत्मादि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः'' इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण हैं। परतन्त्र सत्ता दो तरह की होती है—कूटस्थ और विकारशील—जन्मादि विकार शून्य होकर नित्यसत्ता कूटस्थ सत्ता—वह जीववर्ग में है। दूसरी सत्ता—विकार आदि युक्त होकर जो अनादि अनन्त सत्ता होती है वह प्रकृति वर्गाश्रित है। प्रसक्त का ही प्रतिषेध होता है—अप्राप्त का नहीं—शुक्ति रजत एवं प्रपञ्च में पारमार्थिकत्व (सत्ता) अप्राप्त है—अतः उसका निषेध कथमपि नहीं किया जा सकता। चौथा मत भी नहीं कह सकते आपणस्थ रजत आकाश आदि प्रपञ्च के अन्तर्गत आ जाने से—प्रसक्त का ही प्रतिषेध होता है अप्रसक्त का नहीं इस न्याय से केवलाद्वैतवादी के मत में वियत् आदि प्रपञ्च के असत् होने से जैसे उसका निषेध नहीं हो सकता उसी प्रकार बाजार में स्थित रजत भी अप्राप्त होने से उसका निषेध भी नहीं हो सकता इसलिये आपणस्थ रजत में भी निषेधविषयता नहीं होगी। यदि आपणस्थ रजत में निषेधविषयता मानें तो अन्यथा

परोक्षतत्त्वज्ञानस्यज्ञानानिवर्त्तकत्वे शङ्खश्वैत्यानुमित्याप्यज्ञाननिवृत्तौ भ्रमानुपपत्तिप्रसङ्गात्। अपरोक्षतत्त्वज्ञानस्य च परोक्षेऽभावेन परोक्षाध्यासस्यानिवृत्तिप्रसङ्गाच्च। रूप्यं दृष्ट्वाऽधिष्ठानतत्वज्ञानं विना निवृत्तस्य पुंसोऽज्ञाननिवृत्त्यभावेन मिथ्यात्वेन तत्त्वज्ञानैकनिवर्त्ययोः रूप्यरूप्यज्ञानाकाराविद्यापरिणामयोर्निवृत्यभावेन रूप्यधीसामग्रीसद्भावेन

निषेधस्येति। नतुत्वदभीष्टमिति। जगति दृष्टान्ते रजतादौ च केवलाद्वैतवादिभिरिष्टं तन्नसिद्धमित्यर्थः। **अस्मदिष्टश्चेति।** साम्प्रदायिकैर्वैष्णवैः श्रुति स्मृत्यादिप्रतिपाद्यं यत्प्रपञ्चेऽनित्यत्त्वमिष्टं तदुत्तरकालनिषेधपक्षे सिद्धमित्यर्थः। यद्यज्ञानं रूप्यस्य कारणं स्यात्तदाऽज्ञानं रूप्यमिति प्रत्ययस्यान्नत्वेवमतो न रूप्यं प्रत्यज्ञानस्य हेतुता सिद्ध्यतीत्याह—**किं चेति।** तत्र हेतुमुपन्यस्यति—**उपादानस्येति।** नियमात्=व्याप्तौ व्यभिचारं शङ्कते—**नन्विति।** घटादिकार्यमात्रं प्रति प्रकृतिः कारणमिति भवतामभिमतं तथाचोक्तनियमात् प्रकृतिः घट इति प्रत्ययः स्यादित्यर्थः। नतु तदस्तीति। प्रकृतित्वेन घट भानमस्तीत्यर्थः। तर्हि किमस्तीत्यत आह—**किन्त्विति।** ज्ञातसत्ताकत्वेसत्युपादान-त्वमुपादेयानुविद्धत्वव्यापकमिति सङ्कोचयन्नुक्तदोषं परिहरति—**नेति।** प्रकृतिरूपा-वस्थायाइति। कार्यमात्रावस्था द्विविधा स्थूलावस्था सूक्ष्मावस्थाच सूक्ष्मावस्थापन्नत्वेन प्रकृतेर्कारणत्वमिदानींघटः स्थूलावस्थापन्नत्वेन ज्ञायते न तु सूक्ष्मावस्थापन्नत्वेन तथाच

ख्यातिवादी तार्किक मत में प्रवेश होगा। यदि वियद् आदि अथवा रजत आदि के निषेध से पहले सत्ता है—जिसका उत्तर वाले में निषेध होता है—ऐसा कहें तो अनित्यत्व ही होगा—यह आपको अभीष्ट नहीं है क्योंकि जगत् में और दृष्टान्त रजत आदि में केवलाद्वैतवादी के लिये इष्ट वह सिद्ध नहीं हुआ और हमारा इष्ट सिद्ध हुआ कारण साम्प्रदायिक वैष्णवों को जो श्रुति स्मृति आदि प्रतिपाद्य प्रपञ्च में अनित्यत्व इष्ट है—वह उत्तर काल के निषेध पक्ष में सिद्ध होता है। दूसरी बात आप जो यह मानते हैं कि रजत अज्ञानोपादानक है—रजत अज्ञान का उपादेय है तब तो अज्ञान (रुप्यम्—रजत अज्ञान है) ऐसी प्रतीति होती—क्योंकि उपादान उपादेय में (मृत्तिका घट में) अनुविद्ध होता है ऐसा नियम है। उपादान उपादेय में अनुविद्ध होता है—इस नियम में व्यभिचार की शंका करते हैं—'ननु तथापि' कहें कि घट आदि कार्य के प्रति प्रकृति कारण है—यह आपका मत है—फिर तो उक्त नियम के आधार पर प्रकृतिः घटः ऐसी प्रतीति होगी—परन्तु ऐसी प्रतीति नहीं होती—बल्कि मृद् घट—घड़ा मिट्टी है—इस प्रकार मृत्तिकात्वेन ही भान होता है—तो ऐसा नहीं कह सकते—यहाँ ज्ञात सत्ताकत्व होकर जो उपादान होता है—उसी में उपादेयानुविद्धत्व

रूप्यप्रतीतेर्दुर्वारत्वाच्च। अपरोक्षतत्त्वज्ञानस्याज्ञाननिवर्त्तकत्वे तु त्वन्मते बिम्बप्रतिबिम्बयोरैक्यपरस्य वेदान्तवाक्यस्य प्रत्यक्षतया एक्याज्ञानाभावेनोपाधिवशादपि तव भेदभ्रमायोगाच्चाघटत्वेन साक्षात्कृते

प्रकृत्यात्मकोपादानस्य ज्ञातसत्ताकत्वविरहान्नोक्तनियमानाक्रान्ततया न प्रकृतित्वेन घटभानापत्तिरूपदोषावकाश इत्यर्थः। तन्मते दोषस्यानुद्धारत्वमित्याह—**प्रतीतकस्येति**। तथाचाज्ञाने ज्ञातसत्ताकत्वविशिष्टोपादानत्वरूपहेतोः सत्वेनावश्यं साध्यसत्वं भाव्यमित्यज्ञानं रूप्यमिति प्रत्ययस्य दुर्द्धरत्वमेवेत्यर्थः। **नापीति**। तस्य=अज्ञानस्य। अधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारेणाज्ञानं निवर्त्तत इति नियमे व्यभिचारमुपन्यस्यति—वृक्षेति। **तज्ज्ञानोत्तरेति**। वृक्षादिज्ञानोत्तरेत्यर्थः। अधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारेऽपि भ्रमानिवृत्तेरिति व्यभिचार इत्यर्थः। उपाधिनिवृत्तिसहकृतज्ञानेन सोपाधिकप्रतिबिम्बभ्रमो निवर्तत इत्याशयेन व्यभिचारं निराकुर्वन्नाह—**सोपाधिकेति**। यथा ज्ञानप्रागभावनिवृत्तिर्ज्ञानमात्रमपेक्षते तद्वदज्ञाननिवृत्तिरपि ज्ञानातिरिक्तं नापेक्षत इत्याह—**स्वप्रागभावेति**। **अन्यथेति**। इतरसापेक्षज्ञानस्याज्ञाननिवर्त्तकत्व इत्यर्थः। उक्तार्थं विशदीकर्त्तुमाह—एतदुक्तं भवतीति। यत् उक्तं तदेतद्भवतीत्यर्थः। **तत्रेति**। तयोर्द्वयोर्मध्य इत्यर्थः। परोक्षतत्त्वज्ञान-स्याज्ञाननिवर्त्तकत्वेऽतिप्रसङ्गं दर्शयति—**परोक्षत्वज्ञानस्येति**। अपरोक्षतत्त्वज्ञान-स्याज्ञाननिवर्त्तकत्वेऽतिप्रसङ्गमाह—अपरोक्षतत्त्वज्ञानस्येति। त्वन्मते=अत्यन्ताभेदवादिमते **बिम्बप्रतिबिम्बयोरिति**। बिम्बोब्रह्म। प्रतिबिम्बोजीवः तयोर्यदैक्यं तत्परं तद्विषयक-

व्यापकता होती है—इतना संकोच करते हुए उक्त दोष का परिहार करते हैं—अर्थात् प्रवृत्तित्व अवस्था के अज्ञात सत्ता होने से घटावस्था में भी प्रतीतिविषय रजत आदि के उपादान प्रातीतिक अज्ञान में अज्ञात सत्ताकत्व संभव नहीं है—यहाँ उक्त दोष का अवकाश नहीं है अर्थात् कार्यमात्र की अवस्था दो प्रकार की होती है—सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था, प्रकृति में कारणत्व सूक्ष्मावस्थापन्नत्वेन है और इदानीं घटः यह स्थूलावस्थापन्नत्वेन जाना जाता है सूक्ष्मावस्थापन्नत्वेन नहीं—इस तरह प्रकृत्यात्मक उपादान में ज्ञातसत्ताकत्व का अभाव है—इसलिये उक्त नियम के अनाक्रान्त होने से—प्रकृतिः घटः इत्याकारक दोष का यहाँ अवकाश नहीं है। नाही अज्ञान को अनिर्वचीय कह सकते हैं—अनिर्वचनीयत्व तो आज तक सिद्ध नहीं हो सका है। मिथ्या भी नहीं कह सकते—इसका तो हमने पहले ही खण्डन कर दिया है। ना ही अधिष्ठान तत्त्व के साक्षात्कार के अज्ञान की निवृत्ति होती है—यह नियम भी व्यभिचारित है—वृक्ष के प्रतिबिम्ब स्थल में वृक्ष ज्ञान के उत्तर काल में अधिष्ठान तत्त्व के साक्षात्कार होने पर भी भ्रम की निवृत्ति नहीं होती (वृक्ष में अधः) तथा अग्रत्वादित्व का भ्रम तदवस्थ रहता है। कहें कि उपाधि

घटत्वाज्ञानाभावेन पटोऽयमिति वाक्याभासाद्भ्रमानुपपत्तिप्रसङ्गाच्चेत्यलं विस्तरेण तस्मादनिर्वाच्ये प्रत्यक्षप्रमाणं नास्तीतिसिद्धम्॥ ७६ ॥

बोधेच्छयोच्चरितं वेदवाक्यमित्यर्थः। **प्रत्यक्षतयेति**। अत्यन्ताभेदवादिभिः दशमस्त्वमसीत्यादिवाक्याद्यथा प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानं स्वीकृतं, तद्वत्तत्त्वमसीत्यादिवाक्यजन्यज्ञानमपि प्रत्यक्षात्मकमङ्गीकृतं, तथाच तत्त्वमसीत्यादिवाक्यजन्यजीवब्रह्मणोरभेदावगाहि-प्रत्यक्षात्मकज्ञानस्य सत्वादुपाधिवशादपि तव भेदभ्रमो न स्यादिति भावः। **घटत्वेनेति**। घटत्वप्रकारकघटसाक्षात्कारेण भ्रममात्रनिवृत्तौ पटोऽयमिति वाक्याभासादपि भ्रमो न स्यात्, यतो भ्रमो जायतेऽतोऽपरोक्षतत्त्वज्ञानस्य न भ्रमनिवर्त्तकत्वमिति भावः। अनिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षप्रमाणं नास्तीत्युपहसन्नाह—**तस्मादिति** ।।७६ ।।

निवृत्ति सहकृत् ज्ञान से सोपाधिक प्रतिबिम्ब भ्रम की निवृत्ति होती है—केवल ज्ञान में नहीं, फिर कोई व्यभिचार नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते—जैसे ज्ञान के प्रागभाव की निवृत्ति ज्ञानमात्र की अपेक्षा करती है—उसी प्रकार अज्ञान की निवृत्ति भी ज्ञान से अतिरिक्त किसी की अपेक्षा नहीं करती। यदि अन्य सापेक्ष ज्ञान को अज्ञान का निवर्तक माने तो कल्पितत्त्व की सिद्धि नहीं होगी भाव यह है कि—ज्ञान दो तरह के होते हैं—परोक्ष एवं अपरोक्ष। इनमें परोक्ष तत्त्व ज्ञान को अज्ञान निवर्तक मानने पर—शङ्ख के श्वैत्य की अनुमिति से भी अज्ञान की निवृत्ति होने पर भ्रम की अनुपपत्ति का प्रसंग भी होगा और अपरोक्ष तत्त्वज्ञान को अज्ञाननिवर्तक मानने पर अपरोक्षतत्व ज्ञान का परोक्ष में अभाव होने से परोक्ष अध्यास की अनिवृत्ति का प्रसंग भी हो जाएगा और रजत को देखकर अधिष्ठान तत्त्वज्ञान के बिना निवृत्त पुरुष को अज्ञाननिवृत्ति के अभाव से मिथ्या होने से एकमात्र तत्त्वज्ञान से ही निवृत्त होने वाले रजत एवं रजत ज्ञानाकार अविद्या परिणाम की निवृत्ति के अभाव होने से रजत ज्ञान की सामग्री में सद्भाव के कारण रजत की प्रतीति का दुर्वार हो जाएगा—उसे कोई रोक नहीं सकता। और यदि अपरोक्ष तत्त्वज्ञान को अज्ञान का निवर्तक मानें तो अत्यन्ताभेदवादी आपके मत में तो बिम्ब और प्रतिबिम्ब उभय के एकत्व प्रतिपादक वेदान्त वाक्य के प्रत्यक्षरूप में ऐक्यज्ञान के अभाव से उपाधि के वश से भी आपको भेद भ्रम नहीं होगा। घटंत्व प्रकारक घट साक्षात्कार से भ्रममात्र की निवृत्ति में 'पटोऽयम्' इस वाक्याभास से भी भ्रम नहीं होगा—जब कि भ्रम होता है—अतः अपरोक्ष तत्त्वज्ञान भ्रम का निवर्तक नहीं होता, इस सम्बन्ध में अब विस्तार निरर्थक है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि अनिर्वाच्यत्व प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है।।७६ ।।

ननु विमतं सत्त्वरहितत्वे सत्यसत्त्वरहितत्वेच सति सत्त्वासत्वरहितं बाध्यत्वात्, दोषप्रयुक्तभानत्वाद्व्यतिरेके ब्रह्मवदित्यनुमानस्यानिर्वचनीयवादे प्रामाण्यमितिचेन्न, सत्त्वासत्त्वयोः परस्परविरहरूपयोरेकत्र व्याहतत्वात्, ब्रह्मवत्सत्त्वराहित्येऽपि सद्रूपत्वे नानिर्वाच्यत्वासिद्ध्याऽर्थान्तरत्वाच्च, साध्याप्रसिद्धेश्च। तथाहि सत्त्वासत्त्वयोः सत्ताजाति तदभावविवक्षायाम्, अर्थक्रियाहेतुत्वाहेतुत्वविवक्षायां वा जगति सत्त्वराहित्यांशे बाधस्तत्र सत्ताजातेरर्थक्रियाहेतुत्वस्य च सत्वात्। शुक्तिरूप्यादावसत्त्वराहित्यांशे बाधस्तत्र सत्ताजात्यभावस्या-

इत्यनिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षप्रमाणनिराकरणम्

अनिर्वाच्यत्त्वेऽनुमानप्रमाणं शङ्कते—**नन्विति**। विमतम्=विवादाध्यासितम्। प्रपञ्चे सिद्धसाधनतानिराकरणाय प्रथमसत्यन्तं साध्यकौटौ निवेशितम्, तावन्मात्रोक्तौ शशशृङ्गादावर्थान्तरता तद्वारणाय द्वितीयं सत्यन्तम्, विशेषणभावप्रयुक्तविशिष्टाभावस्य ब्रह्मणि सत्वात्तत्रसिद्धसाधनतावारणाय विशेष्यदलम्। न च तदुपादानेऽपि नोक्तदोषवारणम्, अनुपदमेव तद्दोषस्य स्वयं वक्ष्यमाणत्वादित्याशयः। उक्तानुमानं निराकरोति—**नेति। सत्त्वासत्त्वयोरिति**। सत्वनिषेधेनासत्वमापद्येत, तथाचासत्वरहितत्वस्य व्याहतिः। असत्वनिषेधेन सत्यत्वं समायाते सत्यत्वरहितस्य व्याहतिरिति व्याहतिदोषदूषितत्वान्नायं प्रयोगस्साधीयानिति भावः। निर्धर्मकस्य ब्रह्मणःसत्वासत्वाभावेऽपि, यथा सद्रूप

अनिर्वचनीयत्व में अनुमान प्रमाण का खण्डन

सम्प्रति अनिर्वचनीयवाद को अनुमान प्रमाण से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं—यदि कहें कि—विवादाध्यासित विषय सत्त्वरहित होने के साथ-साथ असत्वरहित भी है—इसलिये सत्वासत्वरहित है—क्योंकि वह उत्तर काल में बाधित होता है, तथा उसका दोषजनित भान है—व्यतिरेकी दृष्टान्त से ब्रह्म की तरह, यह अनुमान ही अनिर्वचनीयवाद में प्रमाण है, तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सत्त्व एवं असत्त्व परस्पर विरह रूप होने से दोनों का एकाधिकरण्य में व्याघात है—विरुद्ध है—सत्त्व के निषेध से असत्त्व की प्राप्ति—तब असत्त्वरहितत्व का व्याघात, असत्व में निषेध होने पर सत्त्व की प्राप्ति होने पर सत्त्वरहितत्व भी व्याघात इस प्रकार व्याघात दोष से दूषित होने के कारण यह अनुमान का प्रयोग सही नहीं है। निर्धर्मक ब्रह्म सत्त्व तथा असत्त्व के अभाव में भी जैसे ब्रह्म में सद्रूपता होती है प्रपञ्च तथा शुक्ति रजत के अनिर्वाच्यत्व की असिद्धि से अर्थान्तरता और साध्या प्रसिद्धि भी होगी—यही बात कहते हैं—'ब्रह्म सत्त्वराहित्येऽपि....' साध्याप्रसिद्धि को ही स्पष्ट करते हैं—'तथा हि सत्त्वासत्वयो'

सत्वस्यार्थक्रियाहेतुत्वाभावस्य च सत्वात्। बाध्यत्वाबाध्यत्वे वा प्रामाणिकत्वाप्रमाणिकत्वे वा सत्वासत्वे विवक्षित इति चेत्, उभयत्रासत्वराहित्यांशे बाधः। तव मते त्रैकालिकबाध्यत्वस्य पारमार्थिकाप्रामाणिकत्वस्य चासत्वस्याकाशादौ शुक्तिरूप्यादौ च सत्वेन तदभावस्यासत्वात्। किञ्च शून्यत्वाशून्यत्वे सत्वासत्वे विवक्षिते चेदुभयत्र शून्यत्वाभावस्य सत्वलक्षणस्याङ्गीकारेण तद्राहित्याभावात्सत्वराहित्यांशे बाधः। अबाध्यत्वशून्यत्वे वा प्रामाणिकत्वाशून्यत्वे वाऽभिप्रेते चेदुक्तन्यायेनोभयत्राप्यसत्वराहित्यांशे बाधः। ब्रह्मशून्यत्वेऽभिप्रेते

ताप्रपञ्चस्यशुक्तिरूप्यस्य चानिर्वाच्यत्वासिद्ध्याऽर्थान्तरता, साध्याप्रसिद्धिश्चेत्याह—**ब्रह्मवदिति**। साध्याप्रसिद्धिमेव विशदयति—**तथाहीति**। **सत्त्वासत्वयोरिति**। अर्थात्सत्वासत्वपदयोरित्यर्थः। तयोराधेयतासंसर्गेण विवक्षापदबोध्यतात्पर्य्यीय-विषयतायामन्वयः। सत्ताजाति तदभावार्थ विषयकबोधजनकत्वनिष्ठप्रकारता-निरुपितेच्छीय विशेष्यता सत्वासत्वपदनिष्ठा, इति बोधः। एवमग्रेऽपि। बाध इति। साध्यकोटौ निविष्टसत्वाभावांशे बाधः इत्यर्थः। सत्ताजात्यभावाभावस्य सत्तास्वरूपात्म-कस्य बाधस्य सत्वेन कथमप्यनुमितेरुत्पादो भवितुमर्हतीति भावः। बाधमेव स्पष्टयति—**तत्रेति**। जगतीत्यर्थः। तत्र=शुक्तिरूप्ये। साध्यः सत्ताजात्यभावात्मकसत्वाभावस्तदभावो जात्यभावाभाव इति यावत् स च सत्ताजातिस्स्वरूपस्तस्याभावश्शुक्तिरूप्ये सत्त्वाद्बाधस्तं

ग्रन्थ से—सत्त्वासत्त्व का अर्थ है—सत्त्वासत्त्व पदों का। इन दोनों का आधेयता संसर्ग से विषय पद बोध्य तात्पर्यीय विषयता में अन्वय होता है। इस प्रकार सत्ताजाति तथा तदभावार्थ विषयक बोधजनकत्वनिष्ठ प्रकारता निरूपित इच्छीय विशेष्यता सत्त्वासत्त्व पदनिष्ठ, ऐसा बोध होता है। इत्याकारक विवक्षा में अथवा अर्थक्रिया हेतुत्व एवं अहेतुत्व विवक्षा में जगत् में सत्त्वराहित्य अंश में बाध है—कारण वहाँ सत्ता जाति एवं अर्थ क्रिया हेतुत्व विद्यमान है। शुक्ति के रजत आदि में असत्त्वराहित्यांश में बाध है कारण शुक्ति रूप असत्त्वराहित्य अंश को बाध है—क्योंकि वहाँ सत्ता जाति का अभाव असत्त्व तथा अर्थ क्रिया हेतुत्व का अभाव भी विद्यमान है। कहें कि—बाध्यत्व एवं अबाध्यत्व में अथवा प्रामाणिकत्व अथवा अप्रामाणिकत्व रूप सत्त्वासत्त्व विवक्षित है—तो ऐसा नहीं होगा—शुक्त रूप स्वप्रपञ्च दोनों स्थलों में असत्त्वराहित्य अंश में बाध होगा। आपके मत में त्रैकालिक बाध्यत्व तथा पारमार्थिक अप्रामाणिकत्व रूप असत्त्व आकाश आदि में तथा शुक्ति रजत आदि में सत्त्व होने से उसका अभाव नहीं है। दूसरी बात शून्याशून्यत्व यदि

चेदबाध्यत्वसत्वाभ्यामभ्युपपत्त्याऽर्थान्तरम्। किञ्च निर्धर्मकस्य ब्रह्मणोऽपि सत्वादिराहित्येन तस्याऽपि पक्षान्तःपातित्वेनानिर्वचनीय-त्वसिद्ध्या विपक्षाभावेन दृष्टान्तासिद्धेः, ''अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यत'' इति शास्त्रात्। किञ्चोक्तलक्षणस्य सर्वथाप्यसिद्धत्वे कथं तत्रानुमानमन्यथा शशशृङ्गादीनामप्यनुमेयत्वापत्तेः। ननु सत्त्वासत्त्वे समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिनी धर्मत्वात् रूपरसादिवत्। साध्यरूपसत्वम्, असत्वानधिकरणानिष्ठम्, असत्त्वं वा सत्वानधि-रणानिष्ठं धर्मत्वात्, रूपादिवदिति सामान्यतः सा सिद्धिरितिचेन्न,

---

स्पष्टयति—**सत्ताजात्यभावस्येति**। सत्त्वासत्त्वयोरन्यथात्वं निर्वाच्य तदभावसाद्ध्यत इत्याह—बाध्यत्वाबाध्यत्वइति। **उभयत्रेति**। शुक्तिरूप्ये प्रपञ्चेचेति तदर्थः। बाध इति। असत्त्वं त्रैकालिकबाध्यत्वं तदभावोऽसत्त्वाभावः साध्यः स च शुक्तिरूप्ये प्रपंचे नास्ति भवतां नये त्रैकालिकबाध्यत्वस्योभयत्रापि सत्वादिति भावः। बाधमेवविवृणोति=**तवेति**। तदभावस्य=त्रैकालिकबाध्यत्वाभावस्य। उभयत्र=शुक्तिरूप्ये, प्रपंचे। तद्राहित्याभावात्=शून्यत्त्वाभावाभावात्। **उक्तन्यायेनेति**। सत्त्वनिषेधे सत्त्वाभावरूपमसत्त्वमावश्यकमितिन्यायेनेत्यर्थः। ब्रह्मत्वरूपसत्त्वराहित्येन व्यावहारिकं सत्वं प्रपंचे शुक्तिरूप्यादौ प्रातिभासिकं सत्वं साधितं तच्चानुमानात् प्रागेव भवतां नये सिद्धं तथाचोक्तानुमानेन प्रपंचे शुक्तिरूप्यादौ चानिर्वचनीयत्वं साधयतस्तव न

सत्त्वासत्त्वरूप विवक्षित है—तब तो दोनों जगत्—शुक्तिरूप एवं प्रपञ्च में शून्यत्वाभाव रूप सत्त्व लक्षण स्वीकार होने से उसके राहित्य में अभाव होने से सत्त्व राहित्य अंश में बाध है—ब्रह्मशून्यत्वरूप यदि अभिप्रेत है तब तो अबाध्यत्व एवं सत्त्व से अर्थान्तर हो जाएगा। दूसरी बात निर्धर्मक ब्रह्म में भी सत्त्व आदि धर्म के अभाव होने से उसके भी पक्ष कोटि में प्रविष्ट हो जाने के कारण अनिर्वाच्यत्व सिद्धि के कारण विपक्ष कोई होगा नहीं—फिर तो दृष्टान्त भी कोई सिद्ध नहीं होगा। कारण श्रुति का वचन है—

''अनादिमत् परंब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते'' ब्रह्म न सत् है न असत्। अप्रसिद्ध होने पर अनुमान माने तो—शशशृङ्गादि अनुमेय हो जायेंगे। अब अप्रसिद्धत्व रूप विशेषण आशंका का अनुमान द्वारा निराकरण करते हैं। ननु इति—कहें कि सत्त्व एवं असत्त्व समानाधिकरण अत्यन्ताभाव के प्रतिभागी है क्योंकि ये धर्मरूप है—दृष्टान्त रूप रस आदि की तरह—दूसरे प्रकार से भी साध्य की प्रसिद्धि बताते हैं—साध्यरूप सत्त्व, असत्त्व के अनधिकरण में निष्ठ है अथवा असत्त्व सत्त्व के

सत्त्वासत्वे समानाधिकरणभावप्रतियोगिनी न भवतः परस्परात्यन्ताभावरूपत्वात्, घटत्वाघटत्ववत्। सत्त्वमसत्त्वानधिकरणानिष्ठं न, असत्त्वं वा सत्त्वानधिकरणानिष्ठं न भवति तत्प्रतिषेधरूपत्वात् यथाऽनित्यत्वं नित्यत्वानधिकरणानिष्ठं न तद्वत्। घटत्वाघटत्वे सामानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिनी धर्मत्वात्, रूपरसवत्। कल्पितत्वमकल्पितत्वानधिकरणानिष्ठं धर्मत्वात्, रूपरसादिवदित्याभाससाम्यात्। किञ्च तवाभिप्रेतं ब्रह्म सत्वरहितत्वे सत्यसत्वरहितत्वे च सति सत्त्वासत्त्वरहितं सर्वधर्मशून्यत्वात्,

स्वाभिमतानिर्वाच्यत्वसिद्धिः। अतएवोक्तानुमानेनानिर्वाच्यत्वं साधयन्तं प्रति सिद्धसाधनमर्थान्तरोद्घाटनम् सुकरमित्याशयेनाह—**ब्रह्मशून्यत्वम् इति**। शून्यत्वरूपासत्वराहित्योक्त्याऽबाध्यत्वमेवोक्तानुमानेन सिद्धमित्यर्थान्तरमित्यर्थः। अनभिमतापादनमर्थान्तरं प्रकृतार्थं निषिद्ध्यान्यार्थसिद्धिरिति यावत्। उक्तलक्षणस्य ब्रह्मण्यपि सत्वात्तस्य पक्षकोटिनिविष्टतयाऽनिर्वाच्यत्वं सिद्ध्यति तथाचोक्तानुमाने दृष्टान्तासिद्धिरित्याह—**किं चेति। अन्यथेति**। अप्रसिद्धत्वेप्यनुमानाङ्गीकार इति तदर्थः। अप्रसिद्धत्वविशेषणमाशङ्कामनुमानेन निराकरोति—**नन्विति**। सत्वसमानाधिकरणे वर्त्तमानोऽत्यन्ताभावोऽसत्वाभावस्तत्प्रयोगित्वस्य सत्वे सत्वात्साध्यप्रसिद्धिः। रूपाधिकरण तेजोवृत्त्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य रसे सत्वाददृष्टान्तोपपत्तिः। प्रकारान्तरेणापि

अनधिकरण में निष्ठ है—क्योंकि वह धर्म है—रूप आदि की तरह इस तरह साध्य की प्रसिद्धि है तो ऐसा नहीं कह सकते सत्त्व एवं असत्त्व समानाधिकरण वृत्ति अभाव के प्रतियोगी नहीं होते—क्योंकि ये परस्पर अत्यन्ताभावरूप है—घटत्व एवं अघटत्व की तरह। सत्त्व असत्वानधिकरणनिष्ठ नहीं, और असत्त्व सत्त्वानधिकरणनिष्ठ नहीं, क्योंकि असत्त्व का प्रतिषेध स्वरूप है सत्त्व। जैसे अनित्यत्व—घटनिष्ठ अनित्यत्व नित्यत्वानधिकरण पदादि में अनिष्ठ नहीं होता किन्तु निष्ठ ही होता है—गगन कुसुम वृत्ति असत्त्व सत्त्व में अनधिकरण शशशृङ्ग आदि में अनिष्ठ नहीं होता किन्तु निष्ठ ही होता है—इन अनुमानों द्वारा पूर्वोक्त अनुमानों में बाध होने से साध्य की प्रसिद्धि नहीं है।

इस प्रकार विवादास्पद सत्त्वरहितत्त्वे सति तथा असत्त्व रहितत्त्वे सति सत्त्वासत्त्वरहितम् है। क्यों कि बाध्य होता है। दोष प्रयुक्त भान (ज्ञान) ही व्यतिरेक में दृष्टान्त ब्रह्म के समान यह अनुमान अनिर्वचनीयवाद में प्रमाण है तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण सत्त्व और असत्त्व परस्पर विरुद्ध होने से इनमें परस्पर व्याघात

सर्वप्रमाणहीनत्वाच्च, यन्नैवतन्नैवमस्मदभीष्टौपनिषद्ब्रह्मवदित्यपि वक्तुं शक्यत्वात्। नापि दोषप्रयुक्तभानत्वादित्यस्य सद्धेतुत्वं स्वरूपासिद्धत्वात्, न हि मूलाज्ञानस्य दोषप्रयुक्तभानत्वं वक्तुं युक्तमज्ञानात्प्राक् तत्प्रयोजकदोषान्तरस्याभावात्, सर्वदोषाणामपि तत्कार्यत्वे-नोत्तरभावित्वात्, स्वस्यैव दोषरूपत्वेन स्वप्रयोजकत्वाभ्युपगम आत्मा-श्रयत्वापत्तेः, दोषान्तरकल्पने चानवस्थादिप्रसङ्गात्, तस्मादुक्तानु-मानस्यानिर्वचनीयत्वे मनोरथमात्रमेवेति सिद्धम्। ननु विमतं सच्चेन्न बाध्येतासच्चेन्न, प्रतीयेत बाध्यते प्रतीयते च तस्माद्बाधान्यथानुपपत्तेः,

साध्यप्रसिद्धिमाह—**साध्यरूपसत्वमिति**। असत्वानधिकरणमित्यनेनासत्वरहितत्वस्यार्थो विवृतः। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। अद्वैतवादिनां नयेऽसत्वानधिकरणे घटादिप्रपञ्चे सत्त्वं न वर्त्तते इति तदर्थः। पूर्वोक्तानुमानात्स-प्रतिपक्षविधयादूषयति—**नेति**। सत्वासत्व इति पटादौ घटत्वाभावोऽस्ति तत्राघटत्वमपि घटादावघटत्वाभावोऽस्ति तत्र घटत्वमपीति परस्परात्यन्ताभावरूपतया घटत्वाघटत्वे यथाऽस्ति तथैव सत्वाभावाधिकरणेऽसत्वाभावो न वर्त्ततेऽसत्वस्य विद्यमानत्वात्, एवमसत्वाभावाधिकरणे न सत्वाभावोऽस्ति तत्र सत्वस्यैव विद्यमानत्वात्, अतः सत्वासत्वयोः सामानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्त्वाभावसत्वात्साध्योपपत्तिः। **सत्त्वमिति**। असत्त्वानधिकरणे घटादौ सत्त्वमनिष्ठं न भवति किन्तु निष्ठमेवेत्यर्थः।

है। कारण जब ब्रह्म सत् नहीं है—यह सिद्ध हो जाये तो असत्त्व की सिद्धि होती—असत्त्व नहीं है कहने पर सत्त्व की सिद्धि है। इस तरह दोनों एक साथ नहीं कह सकते—शंकर का कहना है जगत् न सत् है न असत् इसलिये अनिर्वचनीय इस प्रकार जगत् को शुक्ति में रजत आदि को अनिर्वचनीय सिद्ध करते हैं—इसका खण्डन है।

घटत्व अघटत्व समानाधिकरण अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी हैं धर्म होने से—रूप तथा रस की तरह। कल्पितत्व अकल्पितत्त्व के अनधिकरण में निष्ठ नहीं है—धर्म होने के कारण रूप रसादि की तरह। दूसरी बात प्रतिद्वन्द्वी के निरुक्त अनुमान को दूषित करते हैं—हम अनुमान करेंगे आपका ब्रह्म सत्त्वरहितत्त्वे सति असत्त्वरहितत्वे सति सत्त्वासत्त्वरहितम्—सत्त्वासत्त्वरहित है। क्योंकि वह सर्वधर्म शून्य है—और सर्वप्रमाण हीन भी है व्यतिरेकि दृष्टान्त जो सर्वधर्म शून्य नहीं है—वह सत्त्वासत्त्वरहित नहीं है हमारे इष्ट औपनिषद् ब्रह्म की तरह हम ऐसा भी तो कह सकते हैं। साध्य का खण्डन करके अब हेतु का भी खण्डन करते हैं। पहले जो

प्रतीत्यन्यथानुपपत्तेश्चात्र मानत्वमिति चेन्न, असम्भवेनाभासमात्रत्वात्। तथाहि सेतुदर्शनात्सत एव ब्रह्महत्यादिजन्यपापस्य बाधश्रवणेन सतो बाधाभावस्यानियमात्। न च तस्य नियमादिसहकृतदर्शनेन निवृत्तिर्न केवलदर्शनेनान्यथा तत्रत्यम्लेच्छानामपि दर्शनसाम्यात्, पापनाशप्रसङ्गः, प्रकृते नेदं रजतमितिवद्बाधज्ञानमात्रबाध्यत्वाद्विषमदृष्टान्त इति वाच्यम् नियमादीनामधिकारित्वसम्पादनोपक्षीणत्वेन निवृत्तौ तेषामसहकारित्वात्। केवलदर्शनादेव सतः पापस्य बाधात्, दृष्टान्तसिद्धिः सुकरा म्लेच्छादीनामधिकारित्वाभावान्नातिप्रसङ्गः, अन्यथा विवेकविरागादि-

---

तत्प्रतिषेधरूपत्वादिति। असत्त्वप्रतिषेधरूपत्वात्सत्वस्येत्यर्थः। **अनित्यत्वमिति।** घटादिनिष्ठमनित्यत्वं नित्यत्वानधिकरणपटादावनिष्ठं न किन्तु निष्ठमेवेत्यर्थः। गगनकुसुमवृत्त्यसत्वं सत्वानधिकरणे शृङ्गादावनिष्ठं न किन्तु निष्ठमेवेत्यर्थः। एतैरनुमानैर्प्रागुक्तानुमानानां बाधान्न साध्यस्य प्रसिद्धिस्तथाच विमतं सत्वरहितत्वेसत्यसत्वरहितत्वेसति सत्वासत्वरहितं बाध्यत्वादित्यनुमान अप्रसिद्धविशेषणत्वं तादवस्थ्यमिति भावः। **घटत्वाघटत्वेति।** अघटत्वाधिकरणे पटादौ वृत्यन्ताभावोघटत्वाभावस्तत्प्रयोगित्वस्य घटत्वे सत्वात्, घटत्वाधिकरणे घटे वृत्यन्ताभावोऽघटत्वाभावस्तत्प्रयोगित्वस्याघटत्वे सत्वादिति साध्यसत्वं बोध्यम्। प्रतिवन्द्यानिरुक्तानुमानं दूषयति—**किञ्चेति।** साध्यमपाकृत्य हेतुं निरस्यति—**नापीति।** स्वरूपासिद्धिमेव

दोष प्रयुक्त मानत्वात्? हेतु दिया था—वह भी सद्हेतु नहीं है—इसमें स्वरूपासिद्ध दोष है। कारण मूल अज्ञान (मूल अविद्या) में दोष भान प्रयुक्तत्व नहीं है—जो ब्रह्म साक्षात्कार से निवृत्त होता है, उसे मूलाज्ञान कहते हैं, उसमें दोष प्रयुक्त भानत्व का अभाव है, कारण उस अज्ञान से पहले उसका प्रयोजक दोषान्तर का अभाव है, इस प्रकार दोष प्रयुक्त भानत्वाभावात्मक हेतु के अभाव होने से यह स्वरूपासिद्ध हेतु है—इससे परामर्श का प्रतिबन्ध होने से उक्त अनुमिति नहीं हो सकती। कार्य से पहले कारण की सत्ता अपेक्षित है—अज्ञान में मूल अज्ञान का प्रयोजक दोषान्तर नहीं है—क्योंकि सभी दोष भी मूला अविद्या के ही कार्य है—इसलिये वे उत्तर काल भावी हैं। कहें कि मूलाज्ञान में दो धर्म हैं—अज्ञानत्व तथा दोषरूप—इस प्रकार मूलाज्ञान के प्रति मूलाज्ञान ही दोष रूप में कारण होगा—तो ऐसा नहीं कह सकते—स्व को स्वप्रयोजक मानने पर आत्माश्रय दोष होगा। मूलाज्ञान रूप दोष की अपेक्षया अतिरिक्त दोष को मूलाज्ञान के प्रति कारण की कल्पना करने पर—उसमें भी जिज्ञासा होगी उस दोष का क्या कारण—उसकी निवृत्ति के लिये उसमें

साधनचतुष्टयस्याधिकारिविशेषणस्य मूलाज्ञाननिवृत्तौ ज्ञानसहकारित्वापत्तेस्त्वयाप्यवर्जनीयत्वात्, नियमविध्यङ्गीकारवैयर्थ्याच्च। म्लेच्छादीनामपि वेदान्तार्थभूतम्लेच्छभाषाप्रबन्धादिभिरप्याज्ञानबाधो मोक्षापत्तिश्च स्वीकार्य्यौ स्यातां पण्डितम्मन्यैः, तस्मात्सतोबाध-

---

विवृणोति—**नहीति**। यद्ब्रह्मसाक्षात्कारेण निवर्त्तते तन्मूलाज्ञानं तत्र दोषप्रयुक्तभानत्वाभावात्मकहेत्वभावस्य सत्वात्स्वरूपासिद्धोऽयं हेतुस्तेन परामर्शप्रतिबन्धान्नानुमितेरुत्पाद इति भावः। कार्यात् प्राक्कारणसत्वमपेक्षितं भवतीत्याह—**अज्ञानादिति**। **तत्प्रयोजकेति**। मूलाज्ञानप्रयोजकेत्यर्थः। तत्कार्यत्वेन=मूलाज्ञानकार्यत्वेन। स्वस्यैव=मूलाज्ञानस्यैव। मूलाज्ञाने धर्मद्वयमज्ञानत्वं दोषरूपंच तथाच मूलाज्ञानं प्रति मूलाज्ञानस्यैव दोषरूपत्वेन कारणत्वमित्याशङ्क्य निराकरोति—**दोषरूपत्वेनेति**। स्वप्रयोजकत्वाभ्युपगमे=मूलाज्ञानप्रयोजकत्वाभ्युपगमे। **आत्माश्रयापत्तेरिति**। स्वोत्पत्तौ स्वस्यापेक्षणादात्माश्रय इत्यर्थः। **दोषान्तरेति**। मूलाज्ञानरूपदोषापेक्षयाऽतिरिक्तदोषस्य मूलाज्ञानं प्रति कारणत्वं कल्प्यते चेत्तत्रापि दोषस्य किं कारणमिति जिज्ञासा जायते तन्निवृत्यर्थं तत्रापि दोषान्तरमित्येवं परम्परयामनवस्थादोष इत्यर्थः। उपसंहरति—**तस्मादिति**। इत्यनिर्वाच्यत्वेऽनुमानप्रमाण निराकरणम्।

दोषान्तर की कल्पना—इस प्रकार (अनवस्था दोष) इस तरह उक्त अनुमान से अनिर्वचनीयत्व की सिद्धि मनोरथ मात्र ही है। अब अनिर्वचनीयत्व में अर्थापत्ति प्रमाण की शङ्का करते हैं—इसमें पहले अर्थापत्ति में विषय शोधक तर्क कहते हैं—कहें कि विमतम्-विवादास्पद रजत आदि सत् होता तो बाधित नहीं होता—असत् होता तो प्रतीत नहीं होता—बाधित भी होता है और प्रतीत भी होता है—इसलिये बाध की अन्यथा अनुपपत्ति तथा प्रतीति की अन्यथा अनुपपत्ति ही—अनिर्वचनीयत्व में प्रमाण है तो ऐसा नहीं कह सकते हैं—असंभव के कारण यह हेतु आभासमात्र है—कारण पुराण आदि सेतु दर्शन से सत् ब्रह्म हत्या आदि पाप के ही बाध का श्रवण है—अतः सत् के बाधाभाव में कोई नियम नहीं है—व्याप्ति नहीं है इस दृष्टान्त में वैषम्य बताते हुए शंका करते हैं—कहें कि सेतु दर्शन नियम आदि सापेक्ष है—अर्थात् नियम-श्रद्धा आदि पूर्वक सेतु दर्शन से ही पाप की निवृत्ति होती है—केवल दर्शन से नहीं—अन्यथा उस स्थान में रहने वाले म्लेच्छ निषाद आदि-जनों के भी पाप के नाश का प्रसंग होगा। दर्शन की समानता वहाँ भी है—उसने भी सेतु दर्शन किया है—प्रकृत में तो 'नेदं रजतम्' इत्याकारक बाधज्ञान मात्र से बाध्यत्व है—इस प्रकार यह विषम दृष्टान्त है—इसलिये इस विषय में दृष्टान्त के आधार पर यहाँ सत् के बाध्याभाव का समर्थन नहीं किया जा सकता—ऐसा नहीं कह सकते—नियम

सम्भवेनोक्तार्थापत्तेराभासत्वमिति पूर्वोक्तत्त्वाद्वक्ष्यमाणत्वाच्च। किञ्च शशशृङ्गयोरत्यन्ताज्ञानवतो जडस्य पुंसः शशशृङ्गशब्दश्रवणात्परोक्ष-भ्रमस्यापि सम्भवेन द्वितीयार्थापत्तेरपि प्रमाणाभासत्वमात्रत्वस्य परैः स्वीकारान्न प्रामाण्यमिति विवेकः॥ ७७॥

अथानिर्वचनीयत्वेऽर्थापत्तिप्रमाणमाशङ्कते—**नन्विति**। अर्थापत्तेर्विषय शोधकतर्कमाह—**विमतमिति**। रूप्यादिकमिति तदर्थः। विपर्य्यानुमाने हेतोः पक्षधर्मतामाह—**बाध्यत इति**। **तस्मादिति**। सदसद्विलक्षणत्वादिति तदर्थः। अत्र=अनिर्वाच्यत्वे। सच्चेन्न बाध्येतेत्यंशं दूषयति—**नेति**। श्रूयते च पुराणादौ सेतुदर्शनात्सतः पापस्य बाधस्तथाच सत्वं बाधाभावत्वव्याप्यमिति व्याप्तौ व्यभिचारं दर्शयन्नाह—**तथाहीति**। दृष्टान्त-वैषम्यमुपपादयति—न चेति। तस्य=ब्रह्महत्यादिजन्यपापस्य। दृष्टान्तसाम्यमुपपादयति—**नियमादीनामिति**। तेषाम्=नियमादीनाम्। **अन्यथेति**। नियमादीनामधिकारिसम्पादन-त्वानभ्युपगम इति तदर्थः। निगमयति—**तस्मादिति**॥७७॥

आदि की सामर्थ्य केवल आधिकारित्व सम्पादन में क्षीण होने से पापनिवृत्ति में उनकी सहकारिता नहीं है—कारण नहीं है—वहाँ केवल दर्शन से ही सत्-पाप का बाध होता है—दृष्टान्त सिद्धि सुकल है—म्लेच्छ आदि में अधिकारित्व के अभाव से उनमें कोई अतिप्रसङ्ग नहीं है। यदि नियम आदि का अधिकारित्व सम्पादनत्व सिद्धान्त स्वीकार नहीं करें तो विवेक वैराग्य आदि साधन चतुष्टय—अधिकारि विशेषण के मूलाज्ञान की निवृत्ति में ज्ञान के सहकारित्व की आपत्ति होगी इसे आप भी रोक नहीं सकते। नियम विधि का अङ्गीकार भी व्यर्थ होगा—मलेच्छ आदि को भी वेदान्तार्थ रूप म्लेच्छ भाषा प्रबन्ध से भी अज्ञान का बाध तथा मोक्षापत्ति स्वीकार करनी होगी। आप जैसे पण्डितम्मन्यों को। इसलिये सत् का बाध संभव होने से उक्त अर्थापत्ति प्रमाण भी प्रमाणाभासमात्र है (अर्थापत्ति वैसे भी कोई प्रमाण नहीं है—इसकी अनुमान में ही गतार्थता है—इसे केवल मायावादियों ने ही माना है) यह बात पहले कही गई और आगे भी कहेंगे। अब असत् चेत् न प्रतीयेत—असत् होता तो प्रतीत नहीं होता—इसका भी खण्डन करते हैं—'किञ्च शशशृङ्ग' इत्यादि ग्रन्थ से कहते हैं कि जिस पुरुष को शश के शृंगाभाव का ज्ञान नहीं है—अर्थात् जिसे यह मालूम नहीं है कि शश को शृङ्ग नहीं होता—ऐसे अत्यन्त अज्ञानी जड़ पुरुष को गोः शृङ्गमस्ति (गाय की सींग है) इस वाक्य की तरह शशशृंगे नास्तीति इस वाक्य से भी भ्रम की उत्पत्ति होती है। इसमें असत् चेत् न प्रतीयेत का खण्डन होता है। यह उस जड़ व्यक्ति का परोक्ष शशशृङ्ग भ्रम है। इदं रजतम्—यह प्रत्यक्ष भ्रम है। इस प्रकार यहाँ द्वितीय अर्थापत्ति (असत् चेत् न प्रतीयेत) का प्रमाणाभासत्व सिद्ध होता है—यह भी प्रमाण नहीं है॥७७॥

किञ्च सच्चेदित्यादिवाक्यवृत्तिसच्छब्दःकिमर्थक इति विवेचनीयम् प्रामाणिकः सच्छब्दवाच्यस्तत्र प्रमाणञ्च यथार्थत्वनिश्चायकमेव तच्च लक्षणया शुद्धब्रह्मबोधकं वेदान्तवाक्यमेवेति चेन्न, स्वप्रकाशचिन्मात्रे ब्रह्मणि तस्य वैयर्थ्ययोगेन प्रामाणिकत्वाबाध्यत्वयोर्व्याप्त्यसिद्धेः। यत्र यत्र प्रामाणिकत्वं तत्र तत्राबाध्यत्वमिति व्याप्तेर्ब्रह्मणि व्यभिचारात्, निर्विशेषचिन्मात्रस्याबाध्यत्वयोगेऽपि तत्र प्रामाणिकत्वाभावादित्यर्थः। प्रत्युत निर्विशेषब्रह्मभिन्न एव प्रामाणिकत्वस्य सत्वेन तस्य बाध्यत्वेऽपि तेन सह व्याप्तिदर्शनात्प्रपञ्चे बाध्यत्वप्रामाणिकत्वयोस्सत्त्वात्। तथात्वे

येन पुंसा शशशृङ्गाभावो नावगतस्तस्य गोःशृङ्गमस्तीतिवाक्यादिव शशशृङ्गन्नास्तीतिवाक्यादपि भ्रान्तिरुत्पद्यत इत्याशयेनासच्चेन्न प्रतीयेतेत्यंशमपि दूषयति—किं चेति। द्वितीयार्थापत्तेः=प्रतीत्यर्थारूपाऽर्थापत्तेः। तच्च=यथार्थत्वनिश्चायकञ्च। **लक्षणयेति**। नतु शक्त्या ब्रह्मबोधकत्वं वेदान्तानां तथा सति ब्रह्मणो मिथ्यात्वं स्यादितिभावः। स्वप्रकाशे ब्रह्मणि प्रमाणस्य प्रवृत्तिरेव नास्तीतिवेदान्तानां वैयर्थ्यमित्याशयेन दूषयति—**स्वप्रकाशइति**। तस्य= वेदान्तशास्त्रस्य। प्रामाणिकत्वाबाध्यत्वयोव्याप्तौ व्यभिचारं दर्शयति—**प्रामाणिकत्वेति**। व्याप्तिमभीनीय दर्शयति—यत्रेति। तत्र=ब्रह्मणि। दृश्यते च प्रामाणिकत्वबाध्यत्वयोर्व्याप्तिनिश्चय इत्याह—**प्रत्युत** इति। तस्य=प्रपञ्चस्य। तथात्वे=बाध्यत्वप्रामाणिकत्वे। तस्य—प्रपञ्चस्य। प्रवर्त्तते च प्रमाणं स्वप्रकाशे ब्रह्मणि

दूसरी बात 'सत् चेत् न बाध्येत' इस वाक्य में वाक्य वृत्ति सत् शब्द का क्या अर्थ है यह पहले विवेचनीय है, सत् शब्दवाच्य प्रामाणिक है—इसमें प्रमाण है, यथार्थत्वनिश्चायक है। वह यथार्थत्वनिश्चायक वाक्य है। लक्षणा से शुद्ध ब्रह्म बोधक वेदान्त वाक्य ही है तो ऐसा नहीं कह सकते स्वप्रकाश चिन्मात्र ब्रह्म में उसका वैयर्थ्य होने से प्रामाणिकत्व तथा अबाध्यत्व में—व्याप्ति की सिद्धि नहीं है। जहाँ-जहाँ प्रामाणिकत्व है—वहाँ-वहाँ अबाध्यत्व है—इस व्याप्ति का ब्रह्म में व्यभिचार है—निर्विशेष चिन्मात्र में अबाध्यत्व योग होने पर भी—उसमें प्रमाणिकत्व का अभाव है—बल्कि प्रामाणिकत्व स्व बाह्यत्व में व्याप्तिनिश्चय देखा जाता है—प्रपञ्च में बाध्यत्व प्रामाणिकत्व की सत्ता है और बाध्यत्व प्रामाणिकत्व के व्याप्ति होने पर प्रपञ्च में अनिर्वचनीयत्व की सिद्धि नहीं होती। कहें कि ब्रह्म के स्वप्रकाश होने पर भी व्यवहार प्रतिबन्धक अज्ञान की निवृत्ति के लिये प्रमाण की प्रवृत्ति में सफलता है—तो ऐसा भी नहीं कह सकते, स्वप्रकाश ब्रह्म में प्रतिबन्धक अज्ञान का असंभव है यह बात पहले ही कही गई है—प्रत्यक्ष प्रामाण्य में प्रत्यक्ष

च तस्यानिर्वचनीयत्वासिद्धेः। न च ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वेऽपि व्यवहार-प्रतिबन्धकाज्ञाननिवृत्त्यर्थं प्रमाणप्रवृत्तेः साफल्यमिति वाच्यम्। स्वप्रकाशे प्रतिबन्धकाज्ञानासम्भवादिति पुरस्तादेवोक्तं प्रत्यक्षाप्रामाण्ये च तन्निबन्धनं शुक्तिरूप्यादेरप्रामाणिकत्वं न स्यात्, बाध्यत्वाकारेण बाध्यत्वस्यापि प्रामाणिकत्वेन तस्याप्रामाणिकत्वं न स्यात् सत्वेन प्रामाणिकत्वे चात्माश्रयापत्तेः। मानान्तराप्राप्तस्य तत्त्वावेदकश्रुतिवेद्यत्वेन प्रामाणिकत्वस्य ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्वादिब्रह्मधर्मस्य त्वन्मते ब्रह्मात्मत्वेन

व्यवहारप्रतिबन्धकाज्ञाननिवृत्तय इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति। पुरस्तादेवेति।** नहि प्रचण्डमार्तण्डमण्डलस्यान्धकाराश्रयत्वं केनाप्यनुन्मत्तेन वक्तुं शक्यमित्यादिग्रन्थेन प्रागेवाभिहितमित्यर्थः। प्रत्यक्षप्रमाणेनैव शुक्ति-रूप्यस्याप्रामाणिकत्वं निश्चीयते तस्याप्रमाण्ये तन्न स्यादित्याह—**प्रत्यक्षप्रामाण्येति।** तन्निबन्धनम्=प्रत्यक्षप्रमाणनिबन्धनम्। प्रत्यक्षप्रमाणप्रयुक्तं शुक्तिरूप्यस्याप्रामाणिकत्वं न ब्रूमः किन्तु बाध्यत्वात्तस्याप्रमाणिकत्वमिति चेत्तत्राह—**बाध्यत्वाकारेणेति।** तस्य= शुक्तिरूप्यस्य। यदि प्रामाणिकत्वप्रयोजकसत्वमित्युच्यते तदा सत्वमेव प्रामाणिकत्वं स्वोत्पत्तौ स्वस्यापेक्षणादात्माश्रय इत्याह—**सत्त्वेनेति।** अबाध्यत्वरूपमेवसत्वंयद्युच्येत

प्रमाण प्रयुक्त शुक्ति रूप्य आदि का अप्रमाणिकत्व नहीं होगा—क्योंकि बाध्यत्वाकार से बाध्यत्व के भी प्रामाणिक होने से—उसकी अप्रमाणिकता नहीं होगी—सत्त्वरूप में प्रामाणिकत्व माने तो आत्माश्रय दोष होता है। यदि अबाध्यत्व रूप ही सत्त्व कहें तब भी कहते हैं कि प्रमाणान्तर से अप्राप्त अबाध्यत्वाभाववत् ब्रह्मनिष्ठ निर्विशेषत्व आदि में 'केवलो निर्गुणश्च' इत्यादि श्रुतितात्पर्य विषयत्व रूप प्रामाण्य होने में व्यभिचार है—यह भाव है। व्यभिचार को स्पष्ट करते हैं—उस ब्रह्मनिष्ठ निर्विशेषत्व में प्रामाणिकत्व है अबाध्यत्व नहीं है। अब कहते हैं कि रजत आदि में बाधक में तत्वावेदकत्व पारमार्थिक प्रमाण रूप है अतत्त्वावेदक व्यावहारिक है? पहला पक्ष नहीं कह सकते—क्योंकि 'नेदं रजतम्' इस शुक्ति आदि रूप्यादि बाध के तत्त्वावेदक होने से उसके अप्रामाणिकत्व का अभाव है। अर्थात् यदि बाधक में तत्त्वावेदकत्व स्वीकार करते हैं तो प्रामाणिक रजतत्वाभाव बोधक में तात्त्विकत्व आ जाएगा। इसे इष्टापत्ति नहीं कह सकते—क्योंकि तब अद्वैत की हानि होती है 'तदप्रामाणिकत्व'—

बाध्यत्वेन व्यभिचारात्, तत्र प्रामाणिकत्वं वर्त्ततेऽबाध्यं नास्तीत्यर्थः। नेदं रजतमिति शुक्त्यादिरूप्यादिबाधस्य तत्त्वावेदकत्वेन तदप्रामाणिकत्वानापादनाच्चा, अतत्त्वावेदकव्यावहारिक-प्रमाणबाधितस्यापि शुक्तिरूप्यादेरद्वैतवस्तुवत्स्वतः प्रामाण्यप्रयुक्त-पारमार्थिकत्वापत्तेः। नचास्य तत्त्वावेदकाद्वैतश्रुतिबाध इति वाच्यम्। तस्याः भेदश्रुतिवत् प्रत्यक्षप्राप्तव्यावहारिकरूप्यनिषेधानुवादक-त्वोपपत्तिरिति सङ्क्षेपः। ननु सत्ताजातिमान्वाऽर्थक्रियाकारी वा

तदाप्याह—**मानान्तरेति**। अबाध्यत्वाभाववति ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्वादौ ''केवलोनिर्गुण'' इति श्रुतितात्पर्य्यविषयत्वरूपं यत् प्रामाणिकत्वं तस्य सत्वाद्व्यभिचार इत्यर्थः। व्यभिचारं स्फोरयति—**तत्रेति**। ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्व इति तदर्थः। रूप्यादिबाधकस्य तत्वावेदकत्वं पारमार्थिकप्रमाणरूपं वा अतत्त्वावेदकं व्यावहारिकं वा नाद्य इत्याह—**नेदमिति**। यदि बाधकस्य तत्वावेदकत्वमभ्युपेयते तर्हि प्रामाणिक रजतत्वाभावबोधकस्य तात्विकत्वं प्रसज्जेत। न चेष्टापत्तिरद्वैतहान्यापत्तेरित्यर्थः। **तदप्रामाणिकत्वेति**। रजतत्वाऽभावांशेऽ-प्रामाणिकत्वानापादकत्वात्, प्रामाणिकत्वादित्यर्थः, रूप्यांशेत्वाप्रामाणिकत्वापादक इति भावः। अतत्त्वावेदकमप्युक्तबाधज्ञानं व्यावहारिकप्रमाणरूपं

रजतत्वाभावांश में अप्रामाणिक-अप्रामाणिकत्व न होने से प्रामाणिक होने से यह अर्थ है रजतांश में तो अप्रामाणिकत्वापादक है—यह भाव है। अब अतत्त्वावेदक भी उक्त बाधज्ञान व्यावहारिक प्रमाणरूप है—इस द्वितीय पक्ष को लेकर कहते हैं—अर्थात् अतत्त्वावेदक व्यावहारिक प्रमाण में बाधित भी शुक्ति रूप्य आदि की अद्वैत वस्तु की तरह स्वतः प्रामाण्यप्रयुक्त पारमार्थिकत्वापत्ति होगी। अर्थात् बाधकज्ञान से शुक्ति-रजत के बाध में भी शुक्तिरूप्य से अभिन्न इदम् इस पदार्थ का अभेदावगाही होने से द्वैत निषेध की तरह स्वतः प्रमाण होने से पारमार्थिकत्व होगा। यह भाव है। यदि कहें कि ''नेह नानास्ति किञ्चन'' इत्यादि श्रुति के द्वारा शुक्ति का रजत भी बाधित होता है तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि जैसे आपके मत में भेद श्रुति प्रत्यक्ष प्राप्त भेद की अनुवादिका है, उसी प्रकार ''नेह नानास्ति किञ्चन'' यह श्रुति भी 'नेदं रजतम्' इत्याकारक प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त व्यावहारिक रजत के निषेध की अनुवादक है—इस प्रकार रजत का पारमार्थिकत्व दुर्वार है। यदि कहें कि सत्ता जातिमान् अथवा अर्थ क्रियाकारी पदार्थ सत् पदार्थ है तो ऐसा भी नहीं कह

सत्पदार्थोऽस्त्विति चेन्न, त्वन्मते प्रपंचे व्यभिचारात्। अबाध्यत्वं सत्पदवाच्यमिति चेन्न, यदबाध्यं तदबाध्यमेवेति साध्यावैशेष्यात्। एतेनाबाध्यत्वावच्छेदकावच्छिन्नं सत्पदार्थ इत्यपिनिरस्तम-

द्वितीयपक्षमभिप्रेत्याह—**अतत्त्वावेदकत्वेति**। बाधकज्ञानेन शुक्तिरूप्यस्य बाधनेपि शुक्तिरूप्याभिन्नमिदमित्यस्याभेदावगाहित्वेन द्वैतनिषेधवत् स्वतः प्रामाण्येन पारमार्थिकत्वं स्यादित्यर्थः। "नेह नानास्ति किञ्चने" त्यादिश्रुत्या शुक्तिरूप्यमपि बाध्यत इत्याशङ्क्य परिहरति—न चेति। अस्य=शुक्तिरूप्यस्य। यथा तव मते भेदश्रुतिःप्रत्यक्षप्राप्तभेदानुवादिका तथा "नेह नानास्ति किञ्चनेति" श्रुतिरपि नेदंरजतमिति प्रत्यक्षप्रमाणप्राप्तव्यावहारिक-रूप्यनिषेधानुवादिकाऽस्तु तथाच रूप्यस्य पारमार्थिकत्वं दुर्वारमित्याह—**तस्या इति**। श्रुतेरित्यर्थः। एतावता सत्पदार्थस्य पराभिमतप्रामाणिकत्वं निरस्य तस्यार्थान्तरं निराकर्तुमाशङ्कते—**नन्विति**। **व्यभिचारादिति**। तत्र सत्ताजातिरर्थक्रियाकारित्वञ्चास्ति, अबाध्यत्वं नास्तीति व्यभिचार इत्यर्थः। **साध्यावैशेष्यादिति**। सच्चेन्न बाध्येत इतिव्याप्तौ सत्वमबाध्यत्वरूपं विवक्षितञ्चेत्तदा साध्यहेतोरैक्यं प्रसज्जेत तथासत्युपनयवाक्याच्छाब्द-बोधानुपपत्तिरित्यर्थः। अवच्छेदकभेदेन साध्यहेत्वोरभेदं परिहरति—**एेतेनेति**। वक्ष्यमाण-हेतुनेत्यर्थः। अबाध्यतावच्छेदकं किमिति जिज्ञासायां प्रामाणिकत्वं त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं वा वाच्यं तथा सति

सकते—आपके मत में प्रपञ्च में व्यभिचार होगा। क्योंकि प्रपञ्च में सत्ता जाति भी है और अर्थक्रिया कारित्व भी है—पर अबाध्यत्व वहाँ नहीं है। कहेंगे अबाध्यत्व सत् पदवाच्य है, वह भी नहीं हो सकता, कारण जो अबाध्य है वह अबाध्य ही है—वह तो साध्य ही होगा, साध्य से उसमें कोई विशेषता नहीं है—अर्थात् सत् यदि होगा तो बाध्य नहीं होगा—इस व्याप्ति में सत्त्व यदि अबाध्यत्व रूप विवक्षित होगा तब तो साध्य और हेतु में ऐक्य हो जाएगा—फिर तो उपनय वाक्य से शब्द बाध की अनुपपत्ति होगी। अब अवच्छेदक भेद से साध्य और हेतु में अभेद का परिहार करते हैं—एतेन अर्थात् वक्ष्यमाण हेतु से—अबाध्यत्वावच्छेदकावच्छिन्न सत्पदार्थ है यह प्रतिपादन भी खण्डित हो गया—अप्रामाणिक होने से अन्य कोई उसका अवच्छेदक नहीं है। अबाध्यतावच्छेदक क्या है? इस जिज्ञासा में प्रामाणिकत्व है—त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्व कहें तो ऐसी स्थिति में साध्याविशेष रूप उक्त दोष का तादवस्थ्य है—यही बात कहते हैं 'प्रामाणिकत्वात्' से। तदवच्छेदकाभावात्—का तात्पर्य है- अबाध्यतावच्छेदक का अभाव है—अर्थात् अनुगत अनतिप्रसक्त

प्रामाणिकत्वादन्यस्य तदवच्छेदकस्याभावात्। नाप्यसत एव विलक्षणमिह सत्पदार्थ इति वाच्यम्। अत्रावधारणस्य सदसद्विलक्षणं नचेदित्यर्थकत्वेनासद्विलक्षणाभाव सिद्ध्या प्रतियोग्यसम्भवेनापादकसिद्धेः, विस्तरस्त्वाकरे द्रष्टव्यः ॥ ७८ ॥

साध्याविशेषरूपोक्तदोषस्तादवस्थ्यमित्याह — **प्रामाणिकत्वादिति**। तदवच्छेदकाभावात्=अबाध्यतावच्छेदकाभावात्। अनुगतानतिप्रसक्तप्रामाणिकत्वातिरिक्तस्यावच्छेदकस्याभावादिति तदर्थः। सत्पदार्थस्यार्थान्तरमाशङ्क्य निषेधति—**नापीति**। असन्मात्रविलक्षणरूपं सत्वञ्चेन्न बाध्येतेत्यर्थापत्तेस्तर्काकारः। इह=अर्थापत्तेर्विषयशोधकतर्के। असत एव विलक्षण इत्यत्रैवकारार्थमवधारणं निरुच्य दूषयति—**अत्रेति**। असत एव विलक्षणमित्युक्तौ सदसद्भ्यां विलक्षणं नेत्यर्थे पर्य्यवसाने सदसद्विलक्षणरूपप्रतियोगिनोऽप्रसिद्धतया सुतरां तादृशार्थ रूपापादकाप्रसिद्धेरित्यर्थः ।।७८।।

प्रमाणिकत्व से अतिरिक्त अवच्छेदक का अभाव है। कहें कि असत् से ही विलक्षण यहां सत् पदार्थ है—तो वह भी नहीं कह सकते कारण असन्मात्र विलक्षणरूप सत्व यदि है तो बाधित नहीं होगा—इत्याकारक अर्थापत्ति का तर्काकार होगा। अब यहाँ असतः एव विलक्षणम् यहाँ एवकार का अर्थ अवधारण मानकर उसे दूषित करते हैं 'अत्रावधारणस्य' अर्थात् अवधारण का सत् असत् से विलक्षण न यदि—ऐसा अर्थ होने से असद् विलक्षणाभाव की सिद्धि होने पर उसका प्रतियोगी संभव न होने से आपादक की असिद्धि है—अर्थात् असतः एव विलक्षणम् (असत् से ही विलक्षण) ऐसा कहने पर सद् असत् से विलक्षण नहीं—ऐसा अर्थ पर्यवसित होने पर सद् असत् विलक्षण रूप प्रतियोगी के अप्रसिद्ध होने के कारण स्वतः तादृश अर्थ रूपापादक की अप्रसिद्धि होगी ।।७८।।

किंच न बाध्येतेत्यत्र बाधो नाम किं ज्ञानेन निवृत्तिः, प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधो वा, नाद्यः। ज्ञाननिवर्त्यस्य सत्त्वेनैव व्याप्तेः सम्भवात् घटज्ञानात्पटादिज्ञानस्य सत्यस्यैव निवृत्तिदर्शनात्। न द्वितीयः। शुक्तिज्ञानाद्रजतबाधवत्, ब्रह्मज्ञानात्सर्वबाधादर्शनात्। अन्यथा सर्वबाधस्वीकारे, औपनिषद्सिद्धान्तसम्प्रदायोच्छेदप्रसङ्गात्, ब्रह्मसाक्षात्कारवतो उपदेष्टॄणाञ्च गुरुशिष्यादिभेदादर्शनात्तद्दर्शिनाम-ज्ञानत्वेनाचार्य्यत्वासम्भवात् ''यत्त्वं पश्यति तद्वद'' उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिन'' इति श्रुतिस्मृतिभ्यां ब्रह्मदर्शिनामेवोपदेष्टृत्वोक्तेः,

सच्चेन्न बाध्येतेत्यत्र को वा बाधशब्दार्थस्तवाभिप्रेत इति जिज्ञास्यते—बाधे नाम किमिति। प्रतिपन्नोपाधौ=स्वाश्रयत्वेनाभिमते धर्मिणि। त्रैकालिकनिषेधः=नास्ति नासीन्नभविष्यतीत्याकारकप्रतिसिद्धो निषेधः। यत्सत्तज्ज्ञाननिवर्त्यमिति नियमाभिप्रायेण प्रथमविकल्पं निरस्यति—**नाद्यइति**। सच्चेद्बाध्येतेति तर्केण सच्चेन्नबाध्येतेति तर्कः पराहत इति भावः। निरुक्तत दृष्टान्तेन दृढयति—**घटज्ञानादिति**। प्रथमज्ञानस्योत्तरज्ञाननाश्यत्वं तार्किकसिद्धम्। अत्यन्ताभेदादिभिरप्येतदभ्युपगतं वृत्तेः स्वविरोधिवृत्त्युत्पत्ति-पर्य्यन्तस्थायित्वाभ्युपगमादिति तदुक्तेः। यथा शुक्तिज्ञानेन रजतं निषिद्ध्यते तद्वद्ब्रह्मज्ञानेन सर्वं निषिद्ध्यत इति त्रैकालिक निषेधपक्षो न साधीयानित्याह—**नद्वितीय इति**। विपक्षे बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति**। अन्यथाशब्दं स्वयंव्याचष्टे—**सर्वेति**। तद्दर्शिनाम्=गुरुशिष्यादि

दूसरी बात हम पूछते हैं कि सत् चेत् न बाध्यते यहाँ बाध क्या है? ज्ञान से निवृत्ति? अथवा स्वाश्रयत्वेन रजतत्त्वाश्रयत्वेन अभिमत शुक्ति में रजत का त्रैकालिक निषेध—नास्ति, नासीत्, न भविष्यति इत्याकारक? यहाँ प्रथम पक्ष नहीं कह सकते—कारण जो सत् होता है वह ज्ञान निवर्तक होता है—उदाहरणार्थ घट ज्ञान से सत्यस्वरूप पटादि ज्ञान की निवृत्ति देखी जाती है (अर्थात् घट का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर यह घट है यह ज्ञान होने पर पट नहीं है—इस ज्ञान की निवृत्ति होती है कि नहीं। दूसरा त्रैकालिक निषेध वाला पक्ष भी नहीं हो सकता—शुक्ति ज्ञान से रजत के बाध की तरह ब्रह्मज्ञान से सबका बाध नहीं देखा जाता अन्यथा यदि ब्रह्मज्ञान से सबका बाध माने तो औपनिषद् सिद्धान्ती सम्प्रदाय का उच्छेद होगा औपनिषद् सिद्धान्त में ब्रह्मज्ञानी ही उपदेश का अधिकारी है—जैसा कि श्रीमुख का वचन है—''उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'' तत्त्वदर्शी ही उपदेश का अधिकारी है और आपके मत में तत्त्वज्ञान से सबका बाध हो जाता है—त्रैकालिक निषेध हो जाता है—ब्रह्म साक्षात्कार करने वाले उपदेष्टाओं का गुरु-शिष्यादि भेद समाप्त हो जाता है। तब उपदेश कैसे

अन्यथाऽन्धपरम्पराप्रसङ्गात् जीवन्मुक्तेर्निरस्यमानत्वाच्चेत्यलं प्रासङ्गिकेन। किंचासन्नामकिं सत्ताहीनं वा बाध्यं वापदवृत्त्यविषयरूपनिरूपाख्यं वा निरुपाख्यत्वावच्छेदकावच्छिन्नं वा निःस्वरूपं वा। नाद्यः। सत्ताहीनस्यापि निर्धर्मकस्यापि ब्रह्मणः प्रतीत्या व्यभिचारात्, सामान्यादौ व्यभिचाराच्च। न द्वितीयः। शुक्तिरूप्यादेर्बाध्यस्यापि प्रतीत्या व्यभिचारात्। न तृतीयः। पदवृत्यविषयेवाक्यार्थे प्रतीतिसत्वेन व्यभिचारात्। पदवृत्यविषयत्वेऽपि तत्र प्रतीत्यभावोनास्तीति व्यभिचारपदार्थः। ननु वाक्यार्थरूपपदवृत्तिविषयत्वस्य तत्र भावेनाविषयत्वाभावान्नोक्त

भेददर्शिनाम्। भेददर्शिनामुपदेष्ट्रत्वे श्रुतिस्मृतीः प्रमाणयति—**यत्वमिति**। **अन्यथेति**। यस्यकस्याप्युपदेष्ट्रत्वइति तदर्थः। जीवन्मुक्तानामेवोपदेष्ट्रत्वमस्त्वित्यतआह—**जीवन्मुक्तिरिति**। असच्चेदित्यत्राप्यसत्वं पञ्धा विकल्पयति—**किं चेति**। असच्चेन्न-प्रतीयेतेत्यस्य सत्ताराहित्ये प्रतीतिविषये निर्धर्मके ब्रह्मणिः व्यभिचारान्नाद्यविकल्पः प्रमाणपदवीमारोढुमर्हतीत्याह—**नाद्य इति**। प्रतीतिमति सत्ताहीने जात्यादावपि निरुक्तव्याप्तेर्व्यभिचारमाह—**सामान्यादाविति**। प्रतीत विषये बाध्ये शुक्तिरूप्यादौ व्यभिचारान्न द्वितीयविकल्पः समीचीन इत्याह—**न द्वितीय इति**। तृतीयविकल्पं दूषयति—**न तृतीय इति**। **पदवृत्त्यविषयइति**। लाघवात् पदानां पदार्थमात्रे शक्तिः नत्वन्वयांशेऽपि गौरवादन्यलक्ष्यत्वाच्च, एकपदार्थेऽपरपदार्थसंसर्गावगाहि

संभव होगा और जो भेददर्शी है वे तो अज्ञानी है—उनमें आचार्यत्व संभव नहीं है—''यत्त्वं पश्यसि तद्वद् उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानम् ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'' इत्यादि श्रुति-स्मृति प्रमाणों के आधार पर ब्रह्मदर्शी ही उपदेष्टा हो सकते हैं ऐसा कहा गया है—अन्यथा जिस किसी को उपदेष्टा मानें तो अन्ध-परम्परा की प्रसक्ति होगी—'अन्धेनैवनीयमानाः अन्धा यथा गर्तेपतन्ति' न्याय से अज्ञानी गुरु से पतन ही होगा कहें कि जीवन्मुक्त उपदेष्टा हो सकते हैं—उनमें प्रारब्ध कर्म क्षय तक सब संभव है तो कहते जीवन्मुक्ति हम मानते नहीं हैं—इसका खण्डन आगे करेंगे। अब असत् चेत् न प्रतीयते—असत् हो तो प्रतीत नहीं होगा—इसमें विकल्प करते हैं कि असत् क्या है? सत्ताहीन? अथवा बाध्य? किंवा पदवृत्त्यविषय रूप निरुपाख्य? अथवा निरुपाख्यत्वावच्छेदकावच्छिन्न या निःस्वरूप (जिसका कोई स्वरूप हो)? यहाँ पाँच विकल्प हैं—तो पहला नहीं कह सकते—सत्ता धर्महीन निर्धर्मिक ब्रह्म की प्रतीति होने से व्यभिचार (सत्ता भी धर्म है—जाति है) ब्रह्म में कोई धर्म नहीं—इस तरह ब्रह्म सत्ताहीन है—पर उसकी प्रतीति होती है। दूसरा जाति में सत्ता जाति नहीं है—वह

व्यभिचारावकाश इति चेन्न, निरुपाख्यत्वपदवृत्यविषयत्वादि रूपपदवृत्तिविषयताया निरुपाख्येपि सत्वेन व्यभिचारस्य तादवस्थ्यात्, निरुपाख्यं चेन्नख्यायेतेति साध्यावैशेष्याच्च। अत एव न चतुर्थः।

वाक्यार्थोऽपदार्थोप्यकांक्षादिवशात्प्रतीयत इत्यभिहितान्वयवादिमताभिप्रायेणेदम्। व्यभिचारं स्फुटयति—**पदवृत्त्यविषयत्वेऽपीति**। अन्वयरूपे वाक्यार्थेपि पदानां शक्तिः व्यवहारेणान्वितस्यैवोपस्थापनात्तत्रैव शक्तिव्यवहारस्तदुक्तं पट्टयादैः, न विमुञ्चति सामर्थ्यं वाक्यार्थोऽपि पदानि नः। वाक्यार्थो लक्ष्यमाणो हि सर्वत्रैवेति च स्थितिः। नसाक्षादपि कुर्वन्ति पदार्थप्रतिपादनम्। "वर्णास्तथापि नैतस्मिन् पर्य्यवस्यन्ति निष्फले। वाक्यार्थमितये तेषां प्रवृत्त्यानान्तरीयकम्। पाके ज्वालेव काष्ठानां पदार्थ प्रतिपादन मिति"। अन्विताभिधानवादिमताभिप्रायेणोक्तदोषं परिहरन्नाह—**नन्विति**। पदवृत्यविषयत्वात्मकमित्याख्यावरूपसाध्याभाववति निरूपाख्ये निरूपाख्यं पदवृत्य-विषयमित्याकारकप्रतीतिविषयत्वरूपहेतोस्सत्वाद्व्यभिचार इत्याशयेनोक्तशंकां परिहरति—**नेति। निरूपाख्येति**। निरुपाख्यत्वरूपं यत् पदवृत्यविषयत्वं तदात्मकपदवृत्यविषयताया इत्यर्थः। निरुपाख्यत्वं नाम ख्यात्यभावः स च प्रतीत्यमानरूपतया साध्यस्वरूप एवेति साध्यहेत्वोरैक्यापत्तिरित्याह—**साध्यावैशेष्यादिति**। अतएव= साध्यहेतोरैक्यादेव। निरुपाख्यतावच्छेदकं निरूपाख्यत्वञ्चेत्तदा स्वस्य स्वावच्छेदकत्वे, आत्माश्रयापत्तिरन्यस्यानुगताननतिप्रसक्तस्यावच्छेदकस्य दुर्वचत्वमित्यतश्चतुर्थपक्षोऽपि न

सत्ताहीन है—पर उसकी प्रतीति होती है—यह दूसरा व्यभिचार। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते—शुक्ति का रजत बाध्य है (इसमें बाध्य रूप असत्त्व आ गया, पर उसकी प्रतीति होती है—व्यभिचार)। तृतीय पक्ष—पदवृत्त्य विषय भी नहीं कह सकते—अभिहितान्वयवादी के मत में वाक्यार्थ पदवृत्ति का अविषय होने पर भी उनके मत में वाक्यार्थ आकांक्षावशात् प्रतीत होता है—इसलिये व्यभिचार। अब अन्विताभिधानवादी मीमांसक मत के अनुसार उस दोष का निराकरण करते हुए शंका करते हैं—यदि कहें कि अन्विताभिधानवादी के मत में अन्वितघटादि में शक्ति हैं—इस प्रकार इस मत में वाक्यार्थ भी पदवृत्ति का ही विषय है—इसलिये उसमें अविषयत्व नहीं है—इसलिये उक्त व्यभिचार का यहाँ कोई अवकाश नहीं है तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण

१. पदों का लाघवात् पदार्थमात्र में शक्ति है न कि अन्वयांश में गौरव होने तथा अन्वयांश अन्यलभ्य होने से। एक पदार्थ का अपर पदार्थ संसर्गावगाही वाक्य इसी पद का अर्थ न होने पर भी आकांक्षादिवशात् प्रतीत हो जाता है, इस अभिहितान्वय वादी के मत के अनुसार यह विकल्प है।

निरूपाख्यत्वान्यस्यावच्छेदकस्याभावाच्च। नापि पंचमः। निःस्वरूपस्य स्वरूपेण निषेधप्रतियोगित्वे तस्य प्रपञ्चसाधारणतया तत्र व्यभिचारात्। न च पारमार्थिकत्वाकारेण निषेधो न स्वरूपतः प्रपञ्चस्येति वाच्यम्। निधर्मकब्रह्मण्यपि तेन रूपेण निषेधात्तस्यापि मिथ्यात्वापत्तेः ॥ ७९ ॥

सामञ्जस्यतां भजत इत्याह—**न चतुर्थ इति**। तस्य=स्वरूपेण निषेधप्रतियोगित्वस्य। तत्र= प्रतीतिमति प्रपञ्चे। व्यभिचारात्। तत्र निषेधप्रतियोगित्वरूपहेतोः सत्वाद्व्यभिचारात्। श्रुत्यादिसिद्धोत्पत्तिकस्यार्थक्रियाकारित्वस्य प्रपञ्चस्य न स्वरूपेण निषेधः कर्तुं शक्यतेऽपितु पारमार्थिकत्वाकारेण इत्याह—**पारमार्थिकत्वेति**। प्रपञ्चे स्वरूपतोनिषेध-प्रतियोगित्वरूपनिःस्वरूपहेतोःसत्वान्न व्यभिचार इति भावः। यतो ब्रह्मनिधर्मकमतः पारमार्थिकत्वाकारेण ब्रह्म नास्तीतिप्रतीतिसिद्धाभावीयप्रतियोगित्वस्य तत्र सत्वात्तस्य मिथ्यात्वलक्षणाक्रान्तत्वापत्तिस्तद्वारणाय स्वरूपेण निषेधप्रतियोगित्वं वाच्यं तथात्वे तु नोक्तदोषस्य निवृत्तिरित्याशयेनाह—**निधर्मकेति**। तेन रूपेण=पारमार्थिकत्वाकारेण ।।७९ ।।

निरुपाख्यत्व पदवृत्त्यविषयत्वादि रूप पदवृत्ति विषयता निरुपाख्य में भी होने से व्यभिचार तदवस्थ ही है। निरुपाख्य माने ख्याति का अभाव—वह प्रतीत्यभाव होने से साध्यस्वरूप ही है—इस तरह यहाँ साध्य हेतु में ऐक्यापत्ति। इसी हेतु से यहाँ चौथा विकल्प भी नहीं संभव है—निरूपाख्यतावच्छेदक यदि निरुपाख्य हो जाये तब स्व के स्वावच्छेदकत्व में आत्माश्रय की आपत्ति अन्य कोई अनुगत तथा अनतिप्रसक्त अवच्छेदक कह नहीं सकते अतः चौथा विकल्प भी असमंजस है। नाही पाँचवाँ विकल्प संभव है—निःस्वरूप असत् के निषेध प्रतियोगित्व मानने पर प्रतीति-मात्र प्रपञ्च में व्यभिचार। कहें कि श्रुति आदि से सिद्ध उत्पत्तिमान् तथा अर्थक्रियाकारी प्रपञ्च का स्वरूप से निषेध नहीं कर सकते—क्योंकि श्रुति कहती है—जगत् की ईश्वर से उत्पत्ति हुई है और समस्त लौकिक व्यवहार भी होते हैं। अतः स्वरूप से उसका निषेध नहीं कर सकते किन्तु पारमार्थिकत्वाकार से ही पारमार्थिक रूप में है। तो ऐसा भी नहीं कह सकते—निर्धर्मक ब्रह्म में भी उक्त रूप से निषेध होने से उसमें भी मिथ्यात्व की आपत्ति होगी अर्थात् ब्रह्म निर्धर्मक है—अतः पारमार्थिकत्वाकार से ब्रह्म नास्ति इत्याकारक प्रतीति सिद्ध अभावीय प्रतियोगित्व के वहाँ होने से उसमें मिथ्यात्वलक्षण की आक्रान्तत्वापत्ति हो जाएगी इससे निवारणार्थ स्वरूपेण निषेध प्रतियोगित्व कहना पड़ेगा—और ऐसा करने पर उक्त दोष की निवृत्ति नहीं होगी ।।७९।।

अथ न प्रतीयेतेत्यत्र को वाऽर्थोऽभिप्रेतः प्रतीतिमात्रमिति चेन्न, असन्नृसङ्गमित्यादिवाक्यादसतोऽपि प्रतीतेरन्यथाऽ सतोऽप्रतीतावसद्वैलक्षण्यज्ञानसिद्धेः। असत्प्रतीतिनिरासानुपपत्तेश्च, असत्पदस्यानर्थकतायाश्च प्रयुक्तपदानां सम्भूयकारित्वायोगेनासतोऽसत्वेनाप्रतीतावसद्व्यवहारानुपपत्तेश्च। ''असद्विलक्षणज्ञप्तौ ज्ञातव्यमसदेव हि। तस्माद-

तस्य=ब्रह्मणः। प्रतीतिमात्रम्=प्रतीतिसामान्यविरहः। असतः=गगनकुसुमादेः। असत् गगनकुसुममित्याकारकवाक्यजन्यज्ञानविषयत्वस्य सत्वादसच्चेन्न प्रतीयेतेत्यस्य व्यभिचारो दुर्वार इति भावः। अन्यथा=असतः प्रतीत्यनङ्गीकारे। असद्वैलक्षण्येति। यथा घटात्मकज्ञानदशायामेव घटः पटाद्विलक्षणमिति ज्ञानमुत्पत्तुमर्हतिं नान्यथा तथा, असद्रूपधर्मिज्ञानाभावेऽसद्वैलक्षण्यज्ञानमपि न जातुमर्हतीति भावः। **असदिति**। प्रतियोगिप्रमितिं विना निषेधानुपपत्तेरितिनियमेनासतः गगनकुसुमादेः प्रतीत्यभावे तन्निरासोनोपपद्यते तदुपपत्यर्थमसतोऽपि प्रतीतत्वमावश्यकं तथात्वे चोक्तव्याहतिर्दुर्वारैवेत्याशयः। वाक्ये प्रयुक्तानां सर्वेषां पदानां सम्भूय वाक्यार्थबोधरूपकार्यकारित्वं कस्यचित्पदस्यानर्थकत्वे तन्नोपपद्येत इत्याशयेनाह—**असत्पदस्येति**। उक्तार्थमभियुक्त-वचसा दृढयति—**असद्विलक्षणेति**। ज्ञप्तौ=ज्ञाने। न प्रतीयेत इत्यत्र सत्वेन प्रतीत्यभावोऽभिप्रेतस्तथाचासतः गगनकुसुमादेः सत्वेनाप्रतीतत्वान्न व्यभिचार इत्याङ्क्य निरस्यति—**न चेति**। सत्वप्रकारकप्रमाया निषेधो

अब हम पूछते हैं—'न प्रतीयेत' में प्रतीति पद का क्या अर्थ आपको अभिप्रेत है? प्रतीति मात्र कहें अर्थात् प्रतीति सामान्य का अभाव तो ऐसा नहीं कह सकते गगन कुसुम आदि असत् पदार्थों की प्रत्यक्षादि प्रतीति भले न हो—गगनकुसुमं नास्ति—असत् नृशृङ्गम् इत्यादि वाक्य द्वारा असत् का भी असत् गगनकुसुम इत्याकारक वाक्यजन्य ज्ञान विषयत्व रूप प्रतीति विषयत्व होने से प्रतीयेत का व्यभिचार होगा—अन्यथा यदि असत् की प्रतीति न मानने पर—असत् की अप्रतीति दशा में असद् विलक्षण ज्ञान की सिद्धि नहीं होगी—जैसे घटात्म के ज्ञान की दशा में ही घट पट से विलक्षण (भिन्न) है—ऐसा ज्ञान हो सकता, अन्यथा नहीं, उसी प्रकार असत् रूप धर्मी के ज्ञान के अभाव में—असद् वैलक्षण्य ज्ञान भी कदापि नहीं हो सकता—प्रतियोगी की प्रमिति के बिना निषेध की उपपत्ति नहीं होती, ऐसा नियम होने से—असत् गगनकुसुम आदि की प्रतीति के अभाव में उसका निरास उत्पन्न नहीं हो सकता—खण्डन से उपपत्ति के लिये असत् की प्रतीति आवश्यक है इस प्रकार उक्त व्याघात अनिवार्य होगा। असत् पद की अनर्थकता में

सत्प्रतीतिश्च कथं तेन निवार्य्यत'' इत्यभियुक्तोक्तेः। नच सत्वेन प्रतीतिरभिप्रेतेति वाच्यम्। विकल्पासहत्वात् सत्वेन प्रतीतिः प्रमारूपा निषिध्यते भ्रमरूपा वा नाद्यः। इष्टापत्तेः। अस्मन्मतेऽप्यविशेषात्। न द्वितीयः।उक्तन्यायेनासतःप्रतीतिसिद्धौ सतोऽसत्वेनैवारूप्यस्यैव रूप्यत्वेन भ्रान्तित्वात्, असतः सत्वेन प्रतीत्युपपत्तेः अपरोक्षप्रतीतिविवक्षितेति चेन्न,

---

भ्रमस्यवेति द्विधा विकल्पयति—**सत्वेनेति**। असतः सत्वेन प्रमाणप्रतीत्यभाव इष्ट एवेतीष्टापत्या आद्यविकल्पमपाकरोति—**नाद्य इति। इष्टापत्तेरिति**। नह्यसतः सत्त्वेन प्रतीतिः केन चित्प्रमोच्यत इति भावः। येन पुंसा शशशृङ्गाभावो न ज्ञातस्तस्य शशशृङ्गमस्तीति वाक्याभासादपि भ्रमात्मकशाब्दबोधो जायते तथाच सत्वेन भ्रमात्मकप्रतीत्यभाववति शशशृङ्गादावसत्वरूपहेतोस्सत्वाद् व्यभिचारो दुर्वार इत्याशयेन द्वितीयविकल्पं व्युदस्यति—**न द्वितीय इति। उक्तन्यायेनेति**। असद्विलक्षणज्ञसौ ज्ञातव्यमसदेव हीतिन्यायेनेत्यर्थः। **असतः प्रतीतिसिद्धाविति**। सत्यामितिशेषः। तस्यासतः सत्वेन प्रतीत्युपपत्तेरित्यनेनान्वयः। न प्रतीयेतेत्यत्र किं प्रतीतिमात्रं विवक्षितमिति शङ्कते—**अथेति**। असत्वमपि वाक्यात्प्रतीयत इत्याशयेन

प्रयुक्त पदों में सम्भूय कार्यकारित्व के अभाव से असत् के असत् होने के कारण उसकी अप्रतीति में असद् व्यवहार की अनुपपत्ति भी होगी। इस सम्बन्ध में प्राचीन विद्वानों का कथन है—''असद् विलक्षणज्ञसौ ज्ञातव्यमसदेवहि। तस्मादसत्प्रतीतिश्च कथं तेन निवार्यते'' इस प्रकार जब असत् की प्रतीति सिद्ध होती है—तब असत् चेत् न प्रतीयेत इस नियम का व्यभिचार स्पष्ट है। यदि कहें कि असत् चेत् न प्रतीयेत यहाँ न प्रतीयेत का अर्थ है सत्त्वेन न प्रतीयेत—असत् होगा तो न प्रतीयेत मतलब सत्त्वेन न प्रतीयेत ऐसा अर्थ है—गगनकुसुम आदि की सत्त्वेन प्रतीति नहीं होती—फिर तो कोई व्यभिचार नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते यहाँ भी विकल्प होने पर उत्तर नहीं है—हम पूछते हैं सत्त्वेन प्रतीति प्रमारूप का निषेध है या भ्रमरूप का? पहला पक्ष कह नहीं सकते—यह हमें भी इष्ट है—असत् की सत्त्वेन प्रतीति को कोई भी प्रमा नहीं कहता। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते, उक्तन्याय—असद् विलक्षण जसौ ज्ञातव्यमसदेव हि—इस न्याय से असत् की प्रतीति की सिद्धि होने पर सत् के असत्त्व से ही (असद् शुक्ति) रजतत्वेन भ्रम है यदि कहें

यदसत्तन्न प्रतीत इति व्याप्तिज्ञाने प्रत्यक्षत्वस्यावश्यकत्वात् ज्ञानज्ञानस्य तद्विषयकत्वनियमात्। शशशृङ्गात्यन्ताभावस्य प्रत्यक्षतापत्त्याऽसतोऽसत्वासिद्धेश्च। नच सत्वेनापरोक्षप्रतीतिर्विवक्षितेति

परिहरति। **नेति**। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। असतः प्रतीत्यनङ्गीकार इति तदर्थः। असच्चेन्न प्रतीयेतेत्यत्रापरोक्षप्रतीत्यभावोऽपाद्योऽभिप्रेत इति शङ्कते—**अपरोक्षइति**। यदसत्तन्न प्रतीयत इति व्याप्तिज्ञानं प्रत्यक्षप्रमाणेन निश्चेतुं शक्यते, अतोऽसतोपि प्रत्यक्षत्वं ज्ञानज्ञानस्य तद्विषयविषयत्वनियमात्, यथा घट ज्ञानवानहमिति ज्ञानविषयकप्रत्यक्षे यथा ज्ञानांशेऽपरोक्षत्वं तथा घटांशेऽपि तद्वत् यदसत्तन्नप्रतीयेत इति व्याप्तिज्ञानांशेऽपरोक्षत्वम्; असदंशेऽपि तथात्वं तथाचापरोक्षप्रतीत्यभावाभाववति; असत्वरूपहेतोस्सत्वाद्व्यभिचार इत्याशयेन परिहरति—**नेति**। यदसत्तन्न प्रतीयेत इति व्याप्तिज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे तद्विषयीभूतस्यासतोऽपि प्रत्यक्षत्वमावश्यकं ज्ञानज्ञानस्य तद्विषयविषयकत्वनियमादित्यर्थः। दूषणान्तरमप्याह—**शशशृङ्गेति**। शशशृङ्गात्यन्ता-भावस्य प्रत्यक्षत्वमावश्यकम्; अन्यथाऽप्यसतोऽसत्वबुद्धिर्न स्यात्तथाचात्यन्ताभाव-प्रतियोगितया शशशृङ्गादेः प्रत्यक्षत्वं तथासति; अपरोक्षप्रतीत्यभावाभाववति

कि असत् चेत् न प्रतीयेत यहाँ अपरोक्ष प्रतीति प्रत्यक्ष प्रतीति नहीं होती। यह भाव है तो यह भी नहीं कह सकते—क्योंकि जो असत् है, वह प्रतीत नहीं होता—इस व्याप्ति ज्ञान में प्रत्यक्षत्व आवश्यक है अर्थात् जो असत् है—वह प्रतीत नहीं होता, यह व्याप्ति ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से ही निश्चय हो सकता है—इसलिये असत् का भी प्रत्यक्षत्व है—क्योंकि ज्ञान के ज्ञान में ज्ञान के विषय ज्ञान का विषय भी विषय होता है—ऐसा नियम है—जैसे घटविषयक ज्ञानवान् अहम् इस अनुव्यवसायात्मकं ज्ञान में अर्थात् ज्ञानविषयक प्रत्यक्ष में जैसे ज्ञानांश में अपरोक्षत्व यानी प्रत्यक्षत्व है—उसी प्रकार घटांश में भी—इसी प्रकार यत् असत् तन्न प्रतीयेत—इस व्याप्तिज्ञानांश में अपरोक्षत्व—असदंश में अपरोक्षत्व है—इस प्रकार अपरोक्ष प्रतीत्यभाव के अभावाधिकरण में असत्त्व रूप हेतु के सद्भाव से व्यभिचार है यह भाव है। अर्थात्

वाच्यम्। भ्रान्तित्वादेव तदुपपत्तेः, तस्मान्नोक्तयोरर्थापत्त्योरत्र प्रामाण्यमिति सिद्धम्॥ ८०॥

शशशृङ्गादावसत्वरूपहेतोः सत्वाद् व्यभिचार इत्यर्थः। सत्वेनापरोक्षप्रतीत्यभाव एवापाद्यस्तथाचासति शशशृङ्गादौ सत्वेनापरोक्षप्रतीत्यभावस्य सत्वान्न व्यभिचार इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। असतोऽपि भ्रान्त्या सत्वेन प्रतीतिर्जायत इति व्यभिचारो दुर्वार इत्याह—भ्रान्तित्वादेवेति। तदुपपत्तेः=असतोऽपि सत्वेन प्रतीत्युपपत्तेः। निगमयति—**तस्मादिति**। उक्तदोषादिति तदर्थः। उक्तयोरिति। असच्चेन्न बाध्येत इत्यर्थापत्तेर्विषय-शोधकतर्कयोरित्यर्थः ।।८०।।

यत् असत् तन्न प्रतीयेत—इस व्याप्ति ज्ञान में प्रत्यक्ष होने पर—उसके विषयीभूत असत् का भी प्रत्यक्ष आवश्यक है—कारण ज्ञान ज्ञान में तद् विषय विषयकत्व का नियम है। अब दूसरा दोष देते हैं—शशशृङ्ग के अत्यन्ताभाव का प्रत्यक्ष आवश्यक है—अन्यथा असत् में असत्त्व बुद्धि नहीं होगी—इस प्रकार अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी होने से शशशृंग आदि का प्रत्यक्षत्व है—ऐसा होने पर अपरोक्ष प्रतीति के अभावाभावाधिकरण शशशृंग आदि में असत्व रूप हेतु का सद्भाव होने से व्यभिचार है। यदि कहें कि सत्त्वेन अपरोक्ष प्रतीति का अभाव विवक्षित है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते, असत् का भी भ्रम से सत्त्वेन प्रतीति की उपपत्ति की उपपत्ति होती है—इस प्रकार उक्त अर्थापत्ति प्रमाण भी रजत के अनिर्वचनीयत्व में प्रमाण नहीं हो सकता यह सिद्ध होता है ।।८०।।

न च ''नासदासीन्नोसदासीत्तम आसीदित्यादिश्रुतीनामत्र प्रामाण्यमिति वाच्यम्। तासां स्थूलसूक्ष्मनिषेधपरत्वेन पूर्वैर्व्याख्यातत्वात्''। यद्वा सदसच्छब्दयोः पञ्चभूतपरत्वात्सामञ्जस्यम्, ''यदन्यद्वायोरन्तरिक्षाच्चैतत् सत् वायुश्चान्तरिक्षञ्चास''दिति श्रुत्यन्तरात्, अन्यथा नासदासीदित्यत्राप्रसक्तनिषेधापत्तेः। न च नो सदासीदित्यनेन सद्भिन्नत्व उक्तेऽसत्वप्रसक्तिस्तदानीमिति वैयर्थ्यापत्तेः। न चासीद्रजो व्योमेति रजो निषेधादावेव तदन्वय इति वाच्यम्। नो सदासीदित्यनेनैव

इत्यनिर्वचनीयत्वेऽर्थापत्तिप्रमाणनिराकरणम्। श्रुतिमनिर्वाच्यत्वे प्रमाणमाशङ्क्य निषेधति—**नचेति**। न सदासीन्नोसदासीद्रजो न व्योमापरोयत् किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नाम्भः किमासीत् गहनं गम्भीरं न मृत्युरासीदमृतञ्च नतर्हि नरात्र्या अन्ह आसीत् प्रकेतः; आनीदवातं स्वधया सदैकं तस्माद्वान्यन्नपरः किञ्चनास तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलीलमित्यादिश्रुतिवाक्यमनुसन्धेयम्। अस्यार्थः। तदानीं प्रलये असत् सूक्ष्मं नासीत् सत् स्थूलं नासीत्। **रजइति**। रजांसि लोक इति यास्कः। एकवचनन्तु सामान्यापेक्षं व्योमादेर्वक्ष्यमाणत्वात् तदन्यलोकास्तदानीं नासीत्। तथा व्योम आन्तरीक्ष लोकः परस्तदुपरि द्युलोकादि सत्यलोकान्तञ्च तदानीं नासीत्; आवृणोतेर्यङ्लुङन्ताच्छन्दसि लटि तिपि रूपमावरीव इति किमावरणीयं भूतान्यावृण्वन्तु

इस प्रकार अनिर्वचनीयत्व में अर्थापत्ति प्रमाण का खण्डन पूरा हुआ

अनिर्वाच्यत्व में श्रुति प्रमाण का खण्डन

यदि कहें कि ''नासदासीन्नो सदासीत्तम आसीत्'' इत्यादि श्रुतियाँ ही अनिर्वाच्यत्व में प्रमाण हैं—तो ऐसा नहीं कह सकते—ये श्रुतियाँ स्थूल-सूक्ष्म निषेध परक है—ऐसी पूर्वाचार्यों ने व्याख्या की है। अर्थात् उस समय प्रलयकाल में—असत् माने सूक्ष्म नहीं था—सत् माने स्थूल नहीं था। 'रज' इति रजांसि लोक ऐसा यास्क का वचन है। लोकः मे एकवचन सामान्यापेक्ष है—व्योम आदि आगे कहेंगे—उससे भिन्न अन्य लोक उस समय नहीं थे। तथा व्योम अन्तरिक्ष लोक, उसके ऊपर द्युलोक आदि सत्य लोकान्त उस समय नहीं थे—कोई भी आवरणीय नहीं था। रात और दिन का प्रज्ञान नहीं था, क्योंकि सूर्य और चन्द्र नहीं था अथवा सत् असत् शब्द पञ्चभूत परक होने से यहाँ सामञ्जस्य है। सत् शब्द के भूतार्थपरक होने में श्रुति प्रमाण है—''यदन्यद् वायोरन्तरिक्षाच्चैतत् सत् वायुञ्चान्तरिंक्षं चासत्'' अन्यथा सत् असत् शब्द के पञ्चभूतपरत्व के अभाव में 'न असदासीत्' यहाँ प्रसक्त का ही

रजःप्रभृतिनिषेधसिद्धौ पृथक् तन्निषेधवैयर्थ्यात्। न च "नोसदासी" दित्यत्र सच्छब्दस्य पारमार्थसत्वेन व्यावहारिकसतोरजः प्रभृतेर्निषेधस्य न ततः प्राप्तिः रजः प्रभृतीनां स्वरूपेण तमसश्चपारमार्थिकत्वेन निषेध इति वाच्यम्। आनीदवातं स्वधया तदेकमिति वाक्यशेषाद्ब्रह्मणोप्य-निर्वाच्यत्वापत्तेः। न च ब्रह्मसत्यत्वप्रतिपादकश्रुत्यन्तरविरोधान्न तत्परत्वं

आवरणीयाभावात्। रात्र्या अह्नश्च प्रकेतः प्रज्ञानं नासीत् चन्द्र सूर्याभावादिति श्रुत्यर्थः। न सत्तन्नासदुच्यत इत्यादौ सदसच्छब्दाभ्यां भूतानामभिधानादत्रापि तौ शब्दौ पञ्चभूतपरावित्याशयेनाह—**यद्वेति**। सच्छब्दस्य भूतार्थत्वे श्रुतिं प्रमाणयति—यदन्यद्वायोरिति। विपक्षो बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। सदसदच्छब्दयोःपञ्चभूतपरत्वाभावे, इत्यर्थः। न सदासीदिति प्रसक्तस्यैव प्रतिषेधो भवति नाप्रसक्तस्येति नियमेनासतोऽप्रसिद्धत्वान्नतन्निषेधः कथमपि कर्त्तुं शक्यते तस्मात्सदसच्छब्दाभ्यां स्थूलसूक्ष्मभूतावेवात्राभिधातव्यावित्यर्थः। नोसदासीदित्यनेन सद्भिन्नत्व उक्ते असत्वस्य प्रसक्तत्वान्नाप्रसक्तप्रतिषेध इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। उक्तश्रुतौ सद्भिन्नत्वेनासत्वस्याप्यानुमानिकप्रसक्तिरिति भावः। निरासे हेतुमाह—**तदानीमिति**। सद्भिन्नत्वेनासतः प्रसिद्धिः सार्वदिकत्वात्तदानीमित्यस्य वैयर्थ्यमित्यर्थः। 'आसीद्रजो व्योम' इत्यत्रान्तरिक्षलोकादीनां निषेधादावेव तदानीमित्यस्यान्वयान्न वैयर्थ्यमित्याशङ्क्य निरस्यति—**न चेति**। तदन्वयः=तदानीमितिपदान्वयः।

निषेध होता है—अप्रसक्त का नहीं, इस नियम से असत् के अप्रसिद्ध होने से उसका निषेध कथमपि नहीं किया जा सकता—इसलिये सत् असत् शब्द से स्थूल-सूक्ष्मभूत ही यहाँ कहना होगा। कहें कि 'नो सदासीत्' इस प्रमाण से सद्भिन्नत्व उक्त होने पर असत्त्व के प्राप्त होने से अप्रसक्त प्रतिषेध नहीं है, अर्थात् उक्त श्रुति में सद्भिन्नत्वेन असत्त्व की भी आनुमानिक प्रसक्ति है—यह भाव है। तो ऐसा भी नहीं कह सकते—सद्भिन्नत्वेन असत् की प्रसिद्धि सार्वदेशिक होने से तदानीं शब्द का वैयर्थ्य होगा। कहें कि उक्त श्रुति में अन्तरिक्ष लोकादि के निषेध आदि में ही तदानीं शब्द का अन्वय है—इसलिये इसका वैयर्थ्य नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह

---

१. पूरा श्रुति वाक्य संस्कृत टीका में देखें।

२. उक्त श्रुति का यह अर्थ नहीं है जगत सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं बल्कि अनिर्वचनीय है ऐसा भाव नहीं है बल्कि भाव है।

शास्त्रस्येति वाच्यम्। ''विश्वं समं प्राणा वै सत्यं तेषामेषसत्य'' मित्याद्यन्वयश्रुतेः, असत्यमाहुजगदेतदज्ञा इति व्यतिरेकश्रुतेश्च विरोधस्य प्रकृतेऽपि सत्वेनोक्तन्यायसाम्यादुक्त शास्त्रस्य नात्र प्रामाण्यमिति

तन्निषेधः=रजआदिलोकनिषेधः। तथाच तन्निषेधे न तदानीमित्यस्यान्वयस्तस्य वैयर्थ्यदुर्वारमितिभावः। 'नोसदासीदित्यत्र' सच्छब्देन परमार्थसत्वमुच्यते रजः प्रभृतीनां सत्वं व्यावहारिकं वाच्यमतो व्यावहारिकरजो निषेधे न पारमार्थिकसत्वं निषेधयितुं शक्यत इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। **आनीदवातमिति**। तम आसीदित्यादि-वाक्यशेषादविद्यायास्तदात्मककार्यसामान्यस्य च सदसदन्यत्वं लभ्यते तदा आनीदित्यस्यासीदर्थकतया आनीदित्याद्युपसंहारेण ब्रह्मणोऽपि सदसदन्यत्वे लब्धे तस्यानिर्वचनीयत्वं स्यादित्यर्थः। सदेव सोम्येति सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादिश्रुतिभिः ब्रह्मणः सत्यत्वं प्रतिपाद्यते ततः कथं सदसदन्यत्वं तस्य स्यादित्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। तत्परत्वम्=सदसदन्यपरत्वमुक्तश्रुतेः। विश्वं सत्यमित्यादिना विश्वस्य सत्यत्वं बोध्यते; असत्यमाहुरित्यनेन प्रपञ्चस्यासत्यत्वबोधनादिति श्रुत्योर्यथाविरोधस्तद्वत् सदेव सोम्येति सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्यादिना विश्वस्य सत्यत्वं निश्चीयते नासदासीन्नोसदासीदिति श्रुत्या अविद्याया स्तदात्मककार्यसामान्यस्य ब्रह्मणश्च सदसदन्यत्वं तात्पर्य्यवृत्त्या बोध्यते तथात्वबोधने

सकते—कारण 'नो सदासीत' इसी श्रुति से रजः प्रभृति का निषेध सिद्ध है उसके लिये पृथक् निषेध का वैयर्थ्य है। कहें कि ''आसीत् रजो व्योम'' यहाँ अन्तरिक्ष लोक आदि के निषेध आदि में ही तदानीं शब्द का अन्वय है—वैयर्थ्य नहीं है। कहें कि 'नो सदासीत्' यहाँ सत् शब्द से परमार्थ सत् कहा जाता है रजः प्रभृति का सत्त्व व्यावहारिक कहना पड़ेगा—इसलिये व्यावहारिक रज का निषेध होने पर पारमार्थिक सत्त्व का निषेध नहीं कह सकते तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि— ''आनीदवातं स्वधया तदेकम्'' इस वाक्य शेष से ब्रह्म में भी अनिर्वाच्यत्व की आपत्ति होगी। कहें कि ब्रह्म में सत्यत्व प्रतिपादक अन्य श्रुति का विरोध होगा—इसलिये उक्त श्रुति का सदसदन्यत्व परत्व नहीं हो सकता—तो ऐसा भी नहीं बोल सकते—''विश्वं समं प्राणाः वै सत्यम् तेषामेवसत्यम्'' इत्यादि अन्वय श्रुति एवं ''असत्यमाहुः जगदेतदज्ञाः'' इस व्यतिरेक श्रुति का विरोध प्रकृत में भी होने से

सिद्धमतः सर्वप्रमाणशून्यत्वमेवास्या निर्वचनीयवादस्येत्यलं विस्तरेण एतावता ग्रन्थेन मिथ्याज्ञानस्य तत्कारणस्य भावादिति तृतीयो हेतुरपि निरस्तः ॥ ८१ ॥

इति पराभिमतानिवर्चनीयवादविषयप्रमाणगिरिनिपातः ॥ २० ॥

श्रुतिद्वयस्य विरोधो दुष्परिहरो भवतां मते तत्परिहाराय न सदासीन्नोसदासीदिति सूक्तोक्ताः श्रुतयस्सन्ति ताभिरज्ञानतत्कार्यब्रह्मवृत्तिसदसदन्यत्वरूपमनिर्वाच्यत्वं न बोध्यत अपितु स्थूलसूक्ष्मनिषेधपरत्वं पञ्चभूतपरत्वं वा सदसच्छब्दाभ्यां प्रत्याय्यते तथासति न कोऽपि विरोधावकाश इति भावः । उक्तशास्त्रस्य=न सदासीन्नोसदासीदिति शास्त्रस्य । नात्रप्रमाणम्=अनिर्वाच्यत्वे प्रमाणम् । निगमयति—**अतइति** । एतावता प्रबन्धेन यत्पर्यवसितं तन्निर्वक्ति—**एतावतेति** । इतिश्रुत्यर्थापत्त्युपपत्तिनिरासः ।।८१ ।।

इति पराभिमतानिर्वचनीयवादविषयप्रमाणगिरिनिपातव्याख्या ॥ २० ॥

उक्त न्याय की समानता से 'न सदासीन्नो सदासीत्' इस शास्त्र का अनिर्वाच्यत्व में प्रमाण नहीं हो सकता, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार श्रीशंकराचार्य का यह अनिर्वचनीयवाद का सिद्धान्त सर्वप्रमाण शून्य ही है—इत्यलम् विस्तरेण इन उपर्युक्त व्याख्यानों से मिथ्याज्ञानस्य तत्कारणस्य भावात् यह तीसरा हेतु भी खण्डित हो गया ।।८१ ।।

इस प्रकार अनिर्वचनीयवादविषयक प्रमाणरूपी गिरि निपात का अनुवाद पूरा हुआ

(२१) अहमर्थानात्मत्वोक्तिगिरिनिपातः

अथ यदप्युक्तं सत्यमनिदं चैतन्यमनृतं युष्मदर्थोऽचेतनस्तयोर्मिथुनीकरणमध्यासः, तत्राहमित्याध्यात्मिककार्याध्यासेषु प्रथमोऽध्यास इति, सत्यानृते मिथुनीकृत्याहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यावहार इति श्रीभगवत्पादभाष्यकारोक्तेस्तस्मादहमर्थो नात्मा पश्चात्परामर्शान्यथानुपपत्त्या सुषुप्तौ स्वप्रकाशस्यात्मनः सत्वेप्यनेवंविधस्याहमर्थस्याभावात्। ''अथातोऽहङ्कारादेशः'', अथात आत्मादेश इत्यादिश्रुत्युभयोः

अथाहमर्थानात्मोक्तिनिराकरणम्

नन्वात्मनात्मनोः परस्पराध्यस्तत्वे शून्यवादापत्तिरित्याशङ्क्याह—**अथेति**। यद्वा विविक्तयोर्वस्तुसतोर्भेदाग्रहनिबन्धनस्तादात्म्यविभ्रमो युज्यते शुक्तेरिव रजताद्भेदाग्रहे रजततादात्म्यविभ्रमः, इह तु परमार्थसतश्चिदात्मनो न भिन्नदेहादि वस्तुसत् तत्कुतश्चिदात्मनोभेदाग्रहः कुतश्च तादात्म्यविभ्रम इत्यतः सत्यानृतेतिशाङ्करीयं भाष्यमवतारयति—**अथेति**। भाष्यार्थं विवृणोति—**सत्यमिति**। अनिदं चेतनं चिदात्मेति यावत्। अनृतमिति भाष्यस्थं तस्य व्याख्यानं युष्मदर्थोऽचेतन इति बुद्धीन्द्रियदेहादिरिति तदर्थः। ते द्वे धर्मिणी मिथुनीकृत्य युगलीकृत्येत्यर्थः। तस्य स्वरूपतोऽप्यध्यासात्तयोर्मिथुनीकरणमध्यास इति न शून्यतेत्यर्थः। **प्रथमाध्यास इति**। अध्यासो द्विविधो मनुष्योऽहमित्यर्थाध्यासस्तद्विषयो

अहमर्थ आत्मा नहीं है—इस मत का खण्डन

आत्मा और अनात्मा के परस्पर अध्यस्त मानने पर शून्यवाद की आपत्ति होगी—इस आशङ्का से कहते हैं—'अथ यदप्युक्तम् या विविक्त'—परस्पर भिन्न रूप से ज्ञात दो सत् वस्तुओं में भेदाग्रह प्रयुक्त भ्रम (अज्ञान) समीचीन होता है—जैसे शुक्ति से रजत के भेद का अज्ञान होने पर—शुक्ति में रजत के तादात्म्य का विभ्रम होता है—यहाँ तो परमार्थ सत् चिदात्मा से भिन्न देहादि वस्तु सत् नहीं है फिर कैसे चिदात्मा से भेदाग्रह होगा और तादात्म्य का भ्रम होगा—इसलिये यहाँ—''सत्यानृतेमिथुनीकृत्य'' इस शांकर भाष्य का अवतरण प्रस्तुत करते हैं—''अथ यदप्युक्तं सत्यमनिदम्'' इत्यादि। भाषार्थ का विवरण करते हैं—अनिदम्—यानी इदन्तानास्पद चेतन चिदात्मा सत्य—और युष्मदर्थ—युष्मत् शब्दवाच्य अचेतन प्रपञ्च अनृत असत्य है यानी युष्मदर्थ

पार्थक्योपदेशात्। "अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधे" तिस्मृत्या च क्षेत्रान्तः पातित्वोपदेशादहमर्थो नात्मा सुषुप्त्याद्यवस्थाननुगतत्वात् स्थूलदेहादिवत् करणात्वाच्च चक्षुरादिवदित्यनुमानाद्वेत्यादि तन्न सम्यक्, असम्भवात्। तथाहि इदंरजतमिदं जलमयं सूर्य इत्यादिवदध्यासमात्र-स्याधिष्ठानारोप्यांशद्वयभानवत्वात्, अहमर्थेऽशद्वयभानाभावात्, नन्वयो

व्यवहारोऽभिमान इति ज्ञानाध्यास इति लोकव्यवहार इत्यनेन स्फोरितम्। **नैसर्गिकइति**। प्रत्यगात्मनि हेतुहेतुमद्भावेनाध्यासप्रवाहोऽनादिरित्यर्थः। अहमर्थोनात्मा प्रकाशमानेऽप्यप्रकाशमानत्वादित्यनुमाने विशेषणासिद्धिं परिहरति—**पश्चादिति**। परामर्शः=स्मरणम्। हेतौ विशेष्यभागं दर्शयति—**अनेवंविधस्येति**। अप्रकाशमानस्येति तदर्थः मानानुग्राहिकां श्रुतिञ्चाह—**अथात इति**। छान्दोग्ये भूमप्रकरणे यत्र नान्यत् पश्यतीत्याद्युक्त्वा सएवाधस्तादित्यादिना भूमानं सर्वात्मकत्त्वेनोक्त्वा स एवाधस्तादित्यादिना अहङ्कारादात्मनः पार्थक्येनोपदेशाच्चाहमर्थो नात्मा अन्यथा तदुपपत्तेरित्यर्थः। क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषइत्यभिधानादिति भावः। श्रुतिस्मृतिभ्यामहङ्कारादात्मः पार्थक्यं निर्णीय द्विर्बद्धं सुबद्धं भवतीतिन्यायादनुमानमपि तत्र प्रमाणत्वेनोपन्यस्यति—**अहमर्थ इति**। अहमर्थत्वमहमितिधीविषयत्वं तच्च सुषुप्तौ नभासतअन्यथा सुषुप्तिभङ्गा-पत्तेरित्याशयः। अहमर्थस्य द्व्यंशतानिराकरणम्, सर्वोऽपि भ्रमः द्व्यंशविषयोऽन्यथा-निरधिष्ठानकभ्रमानुपपत्तेः नचाहमितिबुद्धेर्द्व्यंशविषयत्वमनुभूयत इत्याशयेन निरा-कुर्वन्नाह—

अचेतन—बुद्धि, इन्द्रिय-देहादि। इन दोनों को मिथुनी करके यानी युगल बनाकर एतावता युष्मदर्थ का स्वरूप से भी अध्यास होने से उन दोनों का मिथुनीकरण अध्यास है—इसलिये शून्यवाद नहीं है—यह अर्थ है। यह मिथुनी करण अध्यास है, इनमें अहम् यह आध्यात्मिक कार्याध्यासों में प्रथम अध्यास है। अध्यास दो तरह के होते हैं—मैं मनुष्य हूँ यह अर्थाध्यास है और तद्विषयक व्यवहार-अभिमान ज्ञानाध्यास है—यह लोक व्यवहार (भाष्योक्त) शब्द से स्पष्ट होता है—ऐसा भगवत्पाद भाष्य कार भगवान् श्रीशंकराचार्य का कथन है—"नैसर्गिक" का भाव है—प्रत्यगात्मा का अध्यास प्रवाह अनादि है। इसलिये—अहमर्थः नात्मा प्रकाशमानेऽपि अप्रकाशमानत्वात्। इस अनुमान से विशेषणासिद्धि को परिहारार्थ कहते हैं—पश्चात् यहाँ परामर्श है—स्मरण। हेतु में विशेष्य भाग दिखाते हैं—'अनेवंविधस्य' माने अप्रकाशमान का यानी अप्रकाशमान का अहमर्थ का अभाव है—इसमें प्रमाण की श्रुति दिखाते हैं। 'अथातोऽहङ्कारादेशः' 'अथातः आत्मादेशः।' इन श्रुतियों में अहंकार इन्द्रिय और आत्मा में पार्थरूपक उपदेश है। 'अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा' इस स्मृति से

दहतीतिवदहमुपलभ इति दृग्दृश्ययोरुपलम्भादिति चेन्न, उक्तवाक्यस्याग्निना सिञ्चेदितिवद्वाक्याभासत्वेन त्वदीयकल्पनामात्रत्वात्, अपितु तत्रत्यायोदहतीत्यस्य वाक्यत्वेन तत्राप्यंशद्वयस्य भानाभावादन्यथाऽग्निना सिञ्चेदित्यर्थाध्यासत्वेनाभ्युपगन्तव्यं पण्डितं मन्यैः किञ्चास्तु वा, अयोदहतीत्यस्य प्रामाण्यं तत्रायश्शब्दोऽजहल्लक्षणयादाहा-

---

तन्नेति। तमेव विशदयति तथाहीति। इदं रजतमिति बुद्धेर्द्व्यंशविषयत्वमिदमित्यधिष्ठानविषयत्वं रजतमित्यारोपविषयत्वं यथाऽनुभूयते न तथाहमिति बुद्धावित्यर्थः। समानाकारकप्रतीतिदृष्टान्तेनाहमुपलभ इति बुद्धेरपि ज्ञानार्थोपलब्ध्या द्व्यंशत्वमुपपादयति—**नन्विति**। यथा सेके वह्निकरणकत्वाभावाद्वह्निना सिञ्चतीति वाक्यस्य सद्वचनाभासता तथाऽयोदहतीत्यस्यापि अयसि दहनकर्तृत्वाभावेनासद्वचनाभासतेत्याशयेन निराकरोति—**नेति**। **अंशद्वयस्येति**। अयोऽर्थे वह्निभागोऽस्तीति दहनाश्रयवह्नितादात्म्याध्यासादयो दहतीति प्रयोग इति शङ्कितुराशयः। दूषयति—**भानाभावादिति**। बाधकमुपन्यस्यति—**अन्यथेति**। अंशद्वयस्वीकार इति तदर्थः। तुष्यतु दुर्जन इतिन्यायेनाह—**किंचेति**। **शोण इति**। शोणपदस्य रक्तरूपाश्रये लक्षणा। **अग्निरिति**। अत्राग्निपदस्याग्निसदृशे लक्षणा अहमितिबुद्धेर्द्व्यंशत्वमनुभूयत इत्याह—**अननुभूयमान इति**। **अन्यथेति**। अननुभूयमाने द्व्यंशताकल्पन इति तदर्थः। **आत्मेति**। आत्मेत्यत्र तु

भी अहंकार का क्षेत्र के रूप में उपदेश होने से हम अनुमान करेंगे कि अहमर्थ आत्मा नहीं है, क्योंकि वह सुषुप्ति आदि अवस्था में अनुगत नहीं है। अहम् इस प्रतीति का विषय आत्मा नहीं है—वह सुषुप्ति भाषित नहीं है—अन्यथा सुषुप्तिभङ्ग की आपत्ति स्थूल देह आदि की तरह—दूसरा करणत्वात्-करण होने से चक्षु आदि की तरह, यह ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा संभव नहीं है—कारण सभी भ्रम दो अंश वाले विषयात्मक होते हैं—अन्यथा निरधिष्ठानक भ्रम की अनुपपत्ति होगी—जैसे इदं रजतम् इस बुद्धि में दो अंश है—यहाँ इदम्—यह अधिष्ठान विषय है—और रजतम् यह आरोपविषय है—वैसा अहम् इस बुद्धि में नहीं है—इदं जलम् अयं सूर्यः इत्यादि की तरह आभास मात्र में अधिष्ठान और आरोप दो विषयों का भान होता है—अहम् इस अर्थ में दो अंशों का भान नहीं है कहें कि जैसे अयो दहति की तरह अहम् उपलभे इस बुद्धि में भी ज्ञानरूप अर्थ की उपलब्धि होने से इसमें भी द्व्यंशत्व है तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण यह वाक्य अग्निना सिञ्चति की तरह वाक्याभास होने से आपकी कल्पना मात्र है। बल्कि अयो दहति इस वाक्य में भी अंशद्वय के भान का अभाव है।

श्रयाग्निविशिष्टायोऽर्थे वर्त्तमानतया लाक्षणिक एव शोणो धावतीतिवत्, अग्निर्माणवक इति वद्वा तात्पर्यानुपपत्तेर्लक्षणाबीजत्वात्, अन्यत्राप्यध्यासः कल्पनीयो मनीषिभिः। अननुभूयमाने हिद्वयंशता कल्पने मानाभावादन्यथात्मेत्यत्रापि द्वयंशताकल्पनापत्तेः। नाप्यहमुपलभ इत्यत्र द्वयंशताभानसम्भवः ब्रह्म स्फुरति आत्माऽस्तीति चैतन्यं भवतीत्यादावपि

द्वयंशविषयत्वेनैव प्रमाणमस्ति येन तथात्वं कल्प्येत इति भावः। उपसंहरति—**तस्मादिति**। उक्तार्थमाद्याचार्यवचसा दृढ़यति—**द्वयंशतापीति**। अहमर्थके प्रत्यगात्मनि द्वयोरंशौ द्वयंशौ तयोर्भावोद्वयंशौ तयोर्भावोद्वयंशता चेतनाहङ्काराध्यासरूपतेति यावत्। तत्र हेतुमाह—**अहमिति**। अहं जानामीत्यादिप्रतीतिविषयत्वात्, ननु पूर्वोक्तरीत्या प्रतीतिविषयो नात्मा किन्त्वहङ्कार एवेति पूर्वमेवोक्तं व्यभिचारादिना तस्यानात्मत्वमेवेति चेन्न, उक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वेनाभासमात्रत्वादित्याह—**चेतनइति**। चेतनाभिन्नत्वान्नव्यभिचारो वाच्यस्तस्य मानसिद्धत्वात्, एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्समिति प्रत्यभिज्ञानस्य मानत्वादित्यर्थः। सुषुप्ताहमर्थस्य स्फुरणाभावान्न तस्यात्मत्वं प्रत्येतुं शक्यत इति शङ्कते—**नन्विति**। ज्ञानेच्छादीनां सम्बन्धेनैवात्मनो प्रत्यक्षत्वमिति तावन्निर्विवादमित्याशयेन समाधत्ते—**मैवमिति**। इच्छादिग्रहणमन्तराऽप्यात्मनः प्रत्यक्षत्वमिति शङ्कते—**इच्छादिग्रहमिति**। सुखमहमस्वाप्समिति परामर्शे सुखमित्यनेन तदनुकूलतया भासमानत्वमनुसंहतं भवति, अहमित्यनेन स्वस्मै भासमानरूपप्रत्यक्त्वञ्चानुसंहतं भवति यथा मन्दमगच्छं

अन्यथा 'अग्निना सिञ्चेत्' इसे अर्थाध्यास मानना पड़ेगा—आप जैसे पण्डितम्मन्यों को। यहाँ तुष्यतु दुर्जन न्याय से कहते हैं—किञ्च अथवा मान लें 'अयो दहति' इस वाक्य में प्रामाण्य—वहां अयः शब्द अजहल्लक्षणासे—दाह के आश्रय अग्निविशिष्ट अयस् (लोहा) अर्थ में वर्तमान होने से लाक्षणिक ही है—जैसे शोणोधावति यहाँ शोण शब्द लालवर्ण विशिष्ट अश्व अर्थ में तथा 'अग्निर्माणवकः' में अग्नि शब्द तेजो विशिष्ट अर्थ से लाक्षणिक है—लक्षणा का बीज तात्पर्यानुपपत्ति है। इस तरह अन्यत्र भी आप जैसे मनीषियों को अध्यास की कल्पना करनी चाहिये। जिसमें द्वयंशता का अनुभव नहीं होता उसमें द्वयंशता की कल्पना में भान का अभाव है। अन्यथा अननुभूयमान में द्वयंशता की कल्पना करने पर आत्मा में द्वयंशता की कल्पना की आपत्ति होगी—और नाही अहम् उपलभे भी यहां द्वयंशता का भान संभव है। ब्रह्म स्फुरति आत्मा अस्ति चैतन्यम् भवति इत्यादि स्थलों में भी द्वयंशता की आपत्ति होगी इसलिये द्वयंशता के भान का अभाव होने से अहमर्थ आत्मा ही है—यह सिद्ध होता है। इस कथन को पूर्वाचार्य के वचन द्वारा प्रमाणित करते हैं—''द्वयंशतापि न च भातिः चेतनेऽहं प्रतीति

द्व्यंशतापत्तेस्तस्माद्द्व्यंशताभानाभावादहमर्थ आत्मैवेति सिद्धम्। ''द्व्यंशतापि नच भाति चेतनेऽहंप्रतीतिविषयेऽहमर्थके'' इति पूर्वाचार्योक्तेः। ननु यद्यात्मस्वरूपएवाहमर्थोऽभिप्रेतश्चेत्तर्हि सुषुत्प्यादौ किमिति न स्फुरतीति चेन्नैवम्, अहमर्थस्तावदिच्छादिविशिष्ट एव स्फुरत्यावयोर्निर्विवादत्वात्समं सुषुप्तौ चेच्छादेरभावादहमर्थस्य

मधुरमगायमिति परामर्शेन पूर्वं गमनगानाभ्यां सह तदानीन्तनमान्द्यं माधुर्य्यञ्चानुसंहतं भवति तद्वत् तथाचाहमर्थस्यात्मनः सुखत्वेनानुभवादहमर्थ स्यात्मत्वमविरुद्धमित्याशयेन समाधते—**सुखमहमिति**। सुखमहमस्वाप्समिति प्रत्यभिज्ञायां सुखस्य स्वापक्रियाविशेषणत्वे प्रतीयमाने कथमात्मविशेषणत्वमुच्यत इति चेन्न, क्रियायाः सुखाश्रयत्वायोगेन पुरुषद्वारा क्रियाविशेषणस्य युक्तत्वात्। आत्मनस्तदानीं न किञ्चिदवेदिषमित्यज्ञानसाक्षित्वेन स्थितिं वदता अज्ञानभूतादहमर्थानुभवोऽभ्युपगन्तव्य इत्याशयेनाह—**न किञ्चिदवेदिषमिति**। सुषुप्तावहमर्थस्याहम्बुद्धेर्विनाशमिच्छतां चोद्यमाह—**नन्विति**। यथा पूर्वदिनेऽनुभूतोऽहमर्थः परेद्युः स्मर्यते तथा सुषुप्तावहमर्थोऽनुभूतश्चेत्सुप्तोत्थितेन स्मर्य्येत यदि सुषुप्तावहमर्थो नानुभूयते तदा तत्स्मरणानुपपत्तिरित्यन्यथानुपपत्त्या सुषुप्तावप्यहमर्थानुभवोस्तीत्याशंक्याक्षिपति—**न चेति**। नाहमर्थस्य परामर्शविषयत्वं किन्त्वात्मन इत्याशयेन वादी समाधत्ते—परामृश्यमानइति। **आत्मेति**। नाहमंशे परामर्श अपित्वात्मांशेऽहमर्थेत्वनुभव इति भावः। नन्वहमस्वाप्समित्यहन्त्वाश्रय

विषयेऽहमर्थको''। द्व्यंशता माने चेतन में अहंकाराध्यासता हेतु है—अहम् जानामि इत्यादि प्रतीति विषयत्वात्। कहें कि पूर्व में उक्त रीति के अनुसार प्रतीति विषय आत्मा नहीं हैं किन्तु अहंकार से ऐसा पहले ही कहा है—व्यभिचार आदि दोषों के कारण उसमें अनात्मत्व ही है, वह आत्मा नहीं है—ऐसा नहीं कह सकते—कारण उक्त हेतु स्वरूपासिद्ध दोष युक्त होने से हेत्वाभास मात्र है। यही बात कहते हैं—'चेतने' शब्द से अर्थात् चेतन से अभिन्न होने से व्यभिचार नहीं कह सकते—क्योंकि वह भान सिद्ध है—इसमें एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्सम। इतनी देर मैं सुखपूर्वक सोया—यह प्रत्यभिज्ञा ही यहाँ भान है। कहें कि यदि अहमर्थ आत्मा है तो सुषुप्तिकाल में उसकी स्फूर्ति क्यों नहीं होती, तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण ज्ञांन इच्छा आदि के सम्बन्ध से ही आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। यह हमारा आपका सब का निर्विवाद सिद्धान्त है। सुषुप्ति में—इच्छा आदि के अभाव के कारण अहमर्थ का विशेष अनुभव अविरुद्ध है, ऐसा हम कहते हैं। इसी प्रकार अहं सुखी अहम् इच्छामि—इत्याकारक प्रतीति से भिन्न आत्मविषयक प्रतीति के अभाव होने से आत्मा का भी इच्छा आदि गुणों के

विशेषानुभवोऽविरुद्ध इति ब्रूमः। एवमहं सुखीच्छामीति प्रतीतिभिन्नात्मविषयकप्रतीतेरसत्वेनात्मनोऽपीच्छादिविशिष्टतयैवग्रहणात्, इच्छादिग्रहं विनाऽऽत्मग्रहाङ्गीकारेऽहमर्थस्याप्यङ्गीकारे क्षतेरभावात्, सुखत्वेनात्मनोऽनुभवादिति चेत्तर्हि सुखमहमस्वाप्समित्यहमर्थस्यैव सुखत्वेनात्मनोऽनुभवादात्मत्वमविरुद्धमिति ''न किञ्चिदवेदिष''

एव परामृश्यते नात्मातस्याहन्त्वानाश्रयत्वादित्यत आह—**इदानीमिति**। जाग्रद्दशायामिति तदर्थः। सुषुप्तावहंकाराभाव इदानीं तस्योत्पन्नत्वादिति भावः। अवच्छेदात्=सम्बन्धात्। तथात्वेन=अहन्त्वेन। अनुभूयते=ज्ञायते। तथा च नृसिंहाकारज्ञानमिदमितिभावः। परिहरति=नेति। **न किञ्चिदिति**। अविद्यायाः सुषुप्तौ सद्भावात्तदंशे परामर्शरूपत्वं तवापि सम्मतं तन्न स्यादिति भावः। कुत इत्यत आह—न ह्येति अन्याश्रयम्=अहमर्थान्याश्रयम्। येन सुषुप्तावपि तथैवानुभवः सिद्ध्येदिति भावः। **अहमर्थेति**। तथाच न किञ्चिदवेदिष-मित्यहमर्थाश्रितत्वेनैवाज्ञानस्य परामृश्यमानत्वात्सुषुप्तावपि तथैवानुभवो वाच्यः स तु न सम्भवति तदा त्वयाऽहमर्थानङ्गीकारात्तथाचाहमर्थांश इवाज्ञानांशेप्यनुभवापत्त्या सुषुप्तावविद्या न सिद्ध्येदिति सुषुप्तावपि परामर्शानुसारेणाहमर्थाश्रितत्वेनैवानुभवे वाच्ये तदाऽहमर्थसिद्ध्याऽस्मदिष्टसिद्धिरितिभावः। **एतावन्तमिति**। यथा स्वप्नावस्थायामहमर्थ-सद्भावात् स्वप्नादुत्थितस्य स्वप्नं पश्यन्नाहमासमिति परामर्शो भवति तस्मिंश्च परामर्शे स्वप्नं पश्यन्नासमितिपरामर्शवानस्मीत्यनुव्यवसायेनाहमर्थविषयकपरामर्शत्वमनुभूयते,

---

विशिष्टरूप में ही ग्रहण होता है, इच्छा आदि के ग्रहण के बिना आत्म का ज्ञान स्वीकार करने पर अहमर्थ को भी स्वीकार करने में कोई क्षति नहीं है—सुखत्वेन आत्मा का अनुभव होता है—जैसे 'सुखमहम् अस्वाप्सम्' इस प्रतीति में अहमर्थ का ही सुखत्वेन अनुभव होता है इसलिये अहमर्थ में आत्मत्व अविरुद्ध है—न किञ्चित् अवेदिषम्—इस अन्य ज्ञान का निषेध है—आत्मा का नहीं—उस स्थिति में भी अज्ञान के आश्रय के रूप में आत्मा का अनुभव है ही—इस प्रकार अहमर्थ में आत्मत्व अविरुद्ध है। अब जो लोग सुषुप्ति में अहमर्थ एवं अहम् बुद्धि का विनाश मानते हैं उनकी कहते हैं—यदि कहें कि सुषुप्ति में अहमर्थ का अनुभव नहीं होता है—कहें कि यदि सुषुप्ति में अहमर्थ का अनुभव न माने तो सुषुप्ति के पश्चात् उसके स्मरण की अनुपपत्ति होगी—इसलिये सुषुप्ति में अहमर्थ का अनुभव है, तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण अहमर्थ परामर्श (स्मरण) का विषय नहीं है किन्तु आत्मा परामर्श का विषय इसी आशय से वादी समाधान करता है—'परामृश्यमान् आत्मा' इस ग्रन्थांश से अर्थात् अहम् इस अंश में परामर्श (स्मरण) नहीं है, बल्कि आत्मांश में तो अनुभव

मित्यज्ञानाश्रयत्वेनानुभवाच्च। ननु सुषुप्तौ नाहमर्थानुभवः। न च परामर्शानुपपत्तिरिति वाच्यम्। परामृश्यमान आत्मा इदानीं जातेनान्तः-करणेनाहमर्थेनावच्छेदादहन्त्वं गतस्तस्थात्वेनानुभूयते तथाच नोक्तपरामर्शानुपपत्तिरिति चेन्न, न किञ्चिदवेदिषमित्यादावज्ञानाद्यंशेऽप्य-परामर्शत्वप्रसङ्गात् नह्यज्ञानादिकं निराश्रयमन्याश्रयं वा प्रतीयते किंत्वह-मर्थाश्रयम्, एतावन्तं कालं स्वप्नं पश्यन्नासं जाग्रदासमित्यत्रैवाहमस्वाप्स-मित्यत्राप्यहमंशे परामर्शानुभवाच्च, अन्यथा यः पूर्वं दुःखी सोऽधुना सुखी जात इति वद्यः पूर्वं मदन्यः सुप्तः सोऽधुना जात इति धीः स्यात्।

यथाजाग्रदवस्थायामहमर्थसद्भावाज्जाग्रदनुभूताहमर्थविषयकः परामर्शो जाग्रदन्तरकाले भवति तस्मिंश्च परामर्शे जाग्रदहमासमिति परामर्शवानस्मीत्यनुव्यवसायेनाहमर्थ-विषयकपरामर्शत्वमनुभूयते, तथाहमस्वाप्समिति परामर्शवानस्मीत्यनुव्यवसायेनाहमर्थ-विषयकज्ञाने परामर्शत्वमनुभूयतेऽतो नाहमंशे परामर्श इत्युक्तमसदिति भावः। **अन्यथेति**। अहमंशे परामर्शत्वमनङ्गीकृत्यानुभवत्वाङ्गीकार इति तदर्थः। **मदन्यइति**। मदित्यहमर्थ उच्यते, अहमर्थान्य इत्यर्थः। परामर्शत्वमुपपादयति—नन्वित्यादिना। **अन्यथेति**। यद्यहमर्थो न परामृश्येतेति तदर्थः। यथा पूर्वदिनानुभूतदेवदत्तादभिन्नतयाऽनुभूते चैत्रे सोऽयं नवेति न संशयः किन्तु स एवेति निश्चयस्तथात्रापि सुषुप्तिकालानुभूतात्मैक्याध्यासात्तदुपपत्तिरिति शङ्कते—**नन्विति**। परिहरति—**नेति**। **परामृश्यमानइति**। परामृश्यमानो यआत्मा

है यह भाव है। कहें कि अहम् अस्वाप्सम्—इत्याकारक परामर्श में अहन्त्वाश्रय का परामर्श है, न कि आत्मा क्योंकि वह अहन्त्व का अनाश्रय है। इदानी का अर्थ है—जाग्रत् अवस्था। यानी सुषुप्ति में अहंकार का अभाव है—इस समय जाग्रत् अवस्था में उत्पन्न हुआ है। इस समय अहमर्थ के साथ सम्बन्ध होने से अहन्त्वेन ज्ञात होता है। अर्थात् नृसिंहाकार यह ज्ञान है—यह भाव है—तो ऐसा भी संभव नहीं है—क्योंकि तब तो 'न किञ्चित् अवेदिषम्' इत्यादि स्थलों में अज्ञान आदि के अंश में भी परामर्श का अभाव प्रसंग होगा सुषुप्ति में अविद्या का सद्भाव होने से उस अंश में परामर्श आपका भी सम्मत है—वह नहीं होगा, क्योंकि अज्ञान आदि न तो निराश्रय बिना आश्रय का होता है और ना ही अन्याश्रय—जिससे सुषुप्ति में भी वैसा ही अनुभव हो—किन्तु अहमर्थाश्रय होता है—इस तरह न किञ्चित् अवेदिषम्—इस प्रतीति में अज्ञान अहमर्थाश्रितत्वेन ही—ज्ञायमान होता है—इसलिये सुषुप्ति में भी वैसा ही अनुभव कहना पड़ेगा—वह संभव नहीं है—तब आपके द्वारा अहमर्थ नहीं स्वीकार किया है फिर तो अहमर्थांश की तरह अज्ञानांश में भी अनुभव की आपत्ति से सुषुप्ति में अविद्या

ननु जागरे समुत्पन्नेऽनुभूयमानेऽहमर्थे परामृश्यमानात्मभिदारोपात् परामर्शत्वोपपत्तेरिति चेन्न, इदं रूप्यमित्यादावारोप्याभिन्नतये-दमर्थस्येवाहमित्यत्राहमर्थाऽभिन्नतयाऽत्मनोऽप्रतीतेः, अन्यथैतावन्तं कालं सुप्तोऽहमन्यो वेति कदाचित् संशयः स्यान्नत्वहमेवेति निश्चयः। ननु सुषुप्तिकालानुभूतात्मैक्याध्यासान्निश्चयोपपत्तिरितिचेन्न, अहमर्थाति-रिक्तात्मानुभवस्यालीकत्वात्। नच परामृश्यमानात्मैक्या-रोपात्तदुपपत्तिरिति वाच्यम्। अपरामर्शे परामर्शत्वारोपस्य क्वाप्यदर्शनात्।

तदैक्यारोपात्तज्ज्ञानेऽनुभवरूपे परामर्शत्वस्य स्मृतित्वस्याभिमानारोप इत्यर्थः। **अपरामर्शइति**। अनुभव इत्यर्थः। परामर्शत्वारोपस्य=स्मृतित्वारोपस्य। पुरोवर्त्तिन्यारोपो-युक्तोऽनुभवे स्मृतित्वारोपस्य कुत्राप्यदर्शनात्तथात्वे चानुव्यवसायस्य प्रमात्वमितिनियमस्य भङ्गापातादित्याशयः। **सिद्ध इति**। अहमर्थस्य परामृश्यमानत्वे तु वास्तवैक्यप्राप्त्या न तयोरैक्यारोपः सम्भवतीतिभावः। **सिद्धेचतस्मिन्निति**। परामृश्यमानात्मैक्यारोपे सिद्धे तन्निबन्धनाऽहमर्थानुभवेपि परामर्शत्वाभिमानस्तस्य परामृश्य मानत्वसिद्धौ च सुषुप्ताव-प्रकाशमानत्वेन प्रकाशमानात्मान्यत्वसिद्धिरित्यर्थः। अहंज्ञानस्यैवात्मपरामर्शत्वानङ्गीकारे दृष्टहानादिकमित्याह—**अहमिति**। दृष्टशब्दोऽनुभवसिद्धत्वपर इत्यर्थः। अहमर्थस्यैवा-त्मत्वेनाहमर्थज्ञानस्यैवात्मपरामर्शत्वस्यानुभवसिद्धस्य हानमित्यर्थः। अहमित्यतोऽन्य

की सिद्धि नहीं होगी—इसलिये सुषुप्ति में भी परामर्श के अनुसार अहमर्थ के आश्रित रूप में ही अनुभव कहना होगा। फिर तो अहमर्थ की सिद्धि होने से हमारा इष्टसिद्ध होता है यह भाव है। इतनी देर तक मैं स्वप्न देख रहा था—जाग रहा था—इत्यादि स्थलों में जिस प्रकार अहम् इस अंश का अनुभव होता है, उसी तरह अहम् अस्वाप्सम्—मैं सोया—यहाँ भी अहम् अंश में परामर्श का अनुभव ही है। अन्यथा अहम् इस अंश का परामर्श नहीं मानकर अनुभवत्व स्वीकार करें तो जैसे जो पहले दुःखी था—वह अब सुखी हो गया—इस प्रतीति की तरह—जो पहले मुझ से भिन्न कोई सो रहा था, वह अब उत्पन्न हुआ है, ऐसी बुद्धि होगी, ऐसी तो होती नहीं। यदि कहें कि जागरण हो जाने पर उत्पन्न अनुभूयमान अहमर्थ में परामृश्यमान आत्मा में भेद का आरोप करके परामर्श की उपपत्ति होगी—तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण इदं रजतम् इस प्रतीति में जैसे आरोप्य रजत से अभिन्न रूप में इदमर्थ की तरह—यहाँ अहम् इस प्रतीति में अहमर्थ से अभिन्न रूप में आत्मा की प्रतीति नहीं होती। अन्यथा इतनी देर तक सोया व्यक्ति मैं ही था या अन्य कोई—कदाचित् ऐसा संशय होता—न कि मैं ही

सिद्धेऽहमर्थस्यात्मान्यत्वे परामृश्यमानात्मैक्यारोपः सिद्धे च तस्मिन् सुषुप्तावप्रकाशेनाहमर्थस्यात्मान्यत्वमित्यन्योन्याश्रयापत्तेश्च। अहमित्यतोऽन्य आत्मपरामर्शइत्युक्तत्वेन दृष्टहानादृष्टकल्पनापत्तेश्च। एतेन सुषुप्तावहमर्थप्रकाशे स्मर्येत ह्यस्तन इवाहमर्थ इति निरस्तम्॥ ८२॥

आत्मपरामर्श इत्यनुभवासिद्धस्य कल्पनमित्यर्थः। अहङ्कारः स्मर्येतइत्यत्राहंशब्दोल्लेखि-परामर्शः स्यादित्यापाद्यते, उताहमर्थविशेष्यकाहन्त्वप्रकारकपरामर्शः स्यादिति वा तत्र तावन्नाद्य इत्याह—**अहमिति। तदुल्लेखीति**। अहंशब्दोल्लेखिनाम सविकल्पकं नास्तीत्यर्थः। तदुल्लेखीति। स्मृतेः समानविषयकानुभवजन्यत्वादिति भावः। नन्वेतावता सुषुप्तावहमर्थ-प्रकाशोङ्गीकृतस्तर्हि ह्यस्तनेऽपि जाग्रदवस्थायामहमर्थानुभवसद्भावात् ह्यस्तनसुषुप्तिवैषम्यं न स्यादित्यत आह—**तावन्मात्रेचेति**। ह्यस्तनेऽहं शब्दोल्लेखिनाम सविकल्पकं तच्चास्ति सुषुप्तौ तन्नास्तीत्येतावन्मात्रेणैव वैषम्यमित्यर्थः ।।८२।।

था ऐसा निश्चय। यदि कहें कि सुषुप्तिकाल में अनुभूत आत्मा के साथ ऐक्य का अध्यास होने से मैं ही था, ऐसा निश्चय की उपपत्ति हो जाएगी—तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि अहमर्थ से अतिरिक्त—आत्मा का अनुभव अलीक है—बन्ध्या पुत्र की तरह तुच्छ है। कहें कि परामृश्यमान आत्मा में ऐक्य के आरोप से उसके अनुभव रूप ज्ञान में परामर्शत्व यानी स्मृतित्व के अभिमान के आरोप से उपपत्ति होगी। तो ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि अपरामर्श अनुभव ज्ञान के परामर्श—स्मृतित्त्व कहीं भी नहीं देखा जाता है। दूसरी बात अहमर्थ में आत्मा से भिन्नत्व सिद्ध होने पर परामृश्यमान आत्मा में ऐक्यारोप होगा और ऐक्यारोप सिद्ध होने पर सुषुप्ति में अप्रकाश के कारण अहमर्थ का आत्मान्यत्व—इस तरह अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति दूसरा दोष अहम् इस प्रतीति से अन्य आत्मतत्त्व का परामर्श है—ऐसा कहने से दृष्ट हानि एवं अदृष्ट की कल्पना की आपत्ति होगी। यहाँ दृष्टि अनुभव सिद्धत्वपरक है। अहमर्थ के ही आत्म पदार्थ होने से अहमर्थ के ज्ञान का ही परामर्श अनुभव सिद्ध है, उसका हान होगा। अहम् इससे अन्य आत्म परामर्श है—इस प्रकार के अनुभव से असिद्ध की कल्पना यह अर्थ है। इससे सुषुप्ति में अहमर्थ के प्रकाश होने पर अहमर्थ बीते हुए कल की-सी है—ऐसा स्मरण होगा—यह मत निरस्त हो गया ।।८२।।

अहं शब्दोल्लेखितपरामर्शापादने सुषुप्तौ तदुल्लेख्यनुभवाभावादेव तदभावोपपत्तेः, तावन्मात्रे च ह्यस्तनवैषम्यात्। अहमर्थविशेष्यक-स्याहन्त्वप्रकारकस्य च परामर्शापादन इष्टापत्तेः। एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्समिति सुषुप्तिकालीनसुखावच्छिन्नोऽहमर्थ इति स्मृतेश्च अन्यथा स्मर्येत ह्यस्तन इवात्मेति चोद्यं निरुत्तरं स्यात्। ननु तथाप्येतावन्तं कालमहमित्यभिमान आसमिति परामर्शः स्यादितिचेन्न, कर्णे स्पृष्टः कटिं चालयसि, अहमर्थप्रकाशेन तदभिमानपरामर्शापादनस्य व्यधिकरण-त्वात्। अन्यथा तवाप्यात्मेति अभिमन्यमान आसमिति परामर्शः स्यात्तस्मात्

द्वितीये त्विष्टापत्तिरित्याह—**अहमर्थेति**। इष्टापत्तिमेवोपपादयति—**एतावन्तमिति**। अहमर्थ इति अहन्त्वप्रकारकइति शेषः। ह्यस्तनवैषम्य मात्रेणाहमर्थे परामर्शत्वाभावे आत्मांशेऽपि परामर्शत्वं न स्यात्, यदि सुषुप्तावात्मा प्रकाशेत् तर्हि स्मर्येत ह्यस्तन इवात्मेति चोद्यमस्मदुक्तोत्तरान्योत्तरशून्यं स्यादित्याह—**अन्यथेति**। ह्यस्तन आत्मैवेति सम्बन्धः। तत्रात्मशब्दोल्लेखिपरामर्शापादने सुषुप्तौ तदुल्लेख्यनुभवाभावादेव तदभावोपपत्तेः। आत्मविशेष्यकपरामर्शापादने, अस्वाप्समिति तत्परामर्शसद्भावेनेष्टापत्तिरेवोत्तरं वाच्यं तदस्माकमपि समानमित्यर्थः। यदि सुषुप्तावहमर्थः प्रकाशेत तर्हि एतावन्तं कालमित्यभिमन्यमान आसमिति परामर्शः स्यादित्यापद्येत इति शङ्कते—**नन्विति**। परिहरति—**नेति**। **अहमर्थेति**। अहमर्थप्रकाशाङ्गीक्रियमाणे तदभिमाने परामर्शापादनस्य व्यधिकरणत्वात् नह्यस्माभिः सुषुप्तावहमर्थाभिमान प्रकाश उक्त इति भावः। बाधकतर्कमाह—**अन्यथेति**।

सुषुप्ति में आत्मा के सद्भाव में प्रमाण

अब कहते हैं कि अहंकारः स्मर्येत इस प्रतीति में अहं शब्द से उल्लेख का परामर्श होगा ऐसा कहते हैं, अथवा अहमर्थ विशेष्यक अहन्त्व प्रकारक परामर्श? इसमें पहला नहीं कह सकते—कारण अहं शब्दोल्लेखित का परामर्श कहने पर सुषुप्ति में उसके अनुभव के अभाव से ही परामर्श के अभाव की उपपत्ति होगी कारण स्मृति समानविषयक अनुभवजन्य होता है कहें कि इस प्रकार सुषुप्ति में अहमर्थ का प्रकाश स्वीकार कर लिया, तब व्यतीत काल में भी (गत दिन में भी) जाग्रत् अवस्था में अहमर्थ के अनुभव का सद्भाव होने से—गत दिन की सुषुप्ति का वैषम्य नहीं होगा—इस पर कहते हैं—'तावन्मात्रे'? अर्थात् गत दिवसीय प्रतीति में अहं शब्दोल्लेखि सविकल्पक है और सुषुप्ति में वह नहीं है—एतावन्मात्र वैषम्य है। द्वितीय पक्ष इष्टापत्ति है—अहमर्थ

सुषुप्तावहमर्थः प्रकाशत एव, अपि च सुषुप्तावहमर्थाभावेऽहं निर्दुःखः स्यामितीच्छया सुषुप्त्यर्थं प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, योऽहं सुप्तः स एव जागर्मीति प्रत्यभिज्ञा न स्यात्, योऽहं पूर्वेद्युरकार्षं सोऽहमद्य करोमीति प्रत्यभिज्ञानुपपत्तिश्च। ननु कृशोऽहं स्थूलः स्यामितिवत्प्रवृत्त्युप-पत्तिरितिचेन्न, कार्श्यस्य परम्परासम्बन्धेनारोपितस्यानारोपितस्य वाऽह-मर्थस्य विद्यमानत्वे प्रवृत्त्युपपत्तावपि सुषुप्तावहमर्थस्य नाशात्तदानींतन-सुखादिसम्बन्धाभावेन प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, विवेकिनां मम देहः स्थूलः स्यादितीच्छयैव प्रवृत्तेश्च, नहि ममात्मा निर्दुखःस्यादितीच्छया कस्यापि सुषुप्तौ प्रवृत्तिर्दृश्यते

अहमर्थप्रकाशेन तदभिमानपरामर्शापादने आत्मप्रकाशमात्रेणात्मेत्यभिमन्यमानपरामर्शः स्यादित्यापादयितुं शक्यत्वात्तत्र व्यधिकरणत्वान्नैवापादनं युक्तमित्युत्तरं वाच्यं तन्ममापि तुल्यमितिभावः। इदं पुनरिहावधेयम्। ननु सुषुप्तावहमर्थप्रकाशे न किञ्चिदवेदिषमित्यर्थावच्छिन्नाज्ञान परामर्शस्तावदनुभूयते स च न स्यात् प्रकाशमानेऽर्थेज्ञानविरोधादितिचेतर्ह्यात्मनोपि सुषुप्तौ प्रकाशे न किञ्चिदवेदिषमिति परामर्शो न स्यात्तस्याप्यज्ञानावच्छेदकत्वप्राप्त्या प्रकाशमाने, आत्मन्यज्ञानायोगात्। आत्मान्यविषयकाज्ञानमस्तु तथाचाहमर्थविषयकाज्ञानादन्यदेव घटादि प्रपञ्चविषयकमेवाज्ञानं सुषुप्तावनुभूतं तत्स्मर्यैतान्यथा विरोधात्प्रकाशमानेऽज्ञानस्य विरुद्धत्वात्साक्षिणोऽप्यज्ञानविरोधित्वमुपपादितमिति अन्तःकरणावच्छिन्नस्य

विशेष्यक अहन्त्वप्रकारक परामर्श का आपाद इष्ट है। एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्सम्—इतनी देर मैं सुखपूर्वक सोया—इत्याकारक सुषुप्तिकालीन सुखावच्छिन्न अहमर्थ है यदि सुषुप्ति में अहमर्थ की सत्ता न माने तब तो यह कल की आत्मा की तरह यह आत्मा है। इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं हो सकता फिर शंका करते हैं—कहते हैं यदि सुषुप्ति में अहमर्थ प्रकाशित होता तो इतनी देर तक (इतने काल तक) ऐसा मैं अभिमान करता या ऐसा परामर्श होता तो ऐसा नहीं कह सकते—कान पकड़ने पर कमर मटकाते हो की तरह अहमर्थ के प्रकाश से अभिमान परामर्श का आपादान विरुद्ध है—इसलिये मानना पड़ेगा कि सुषुप्ति में भी आत्मा प्रकाशित रहता है उसकी सत्ता मौजूद रहती है—दूसरी बात यदि सुषुप्ति में अहमर्थ आत्मा का अभाव हो तो कोई भी व्यक्ति मैं आराम से जीऊँ—पीड़ा का अनुभव न हो, इस इच्छा से—सुषुप्ति के लिये उसकी प्रवृत्ति नहीं होगी—विशेष कष्ट में लोग इञ्जेक्शन लगा लेते हैं—जो गहरी नींद में सो गया तो पीड़ा नहीं होगी। यदि आत्मा सुषुप्ति में रहे ही नहीं तो इन सब प्रवृत्तियों का क्या अर्थ होगा। दूसरी बात यदि सुषुप्ति में आत्मा का विनाश हो जाय—आत्मा रहे ही नहीं—सुषुप्ति के पश्चात् जाग्रत् अवस्था

तस्माद्दृष्टान्तानुपपत्तिरेव वैषम्यात्। अहं व्यक्तिभेदात् कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गश्च, कर्त्तुर्भोक्तुश्चाहमर्थस्य भेदात्। अभिन्ने च चैतन्ये कर्तृत्वाद्यभावात्, कर्तृत्वाद्यारोपस्य च देहादावपि सत्वादहं करोमीत्येव प्रतीत्याऽहमर्थस्यात्मनि कर्तृत्वाद्यारोपस्याप्यसम्भवाच्च। अन्यथाऽऽत्मा करोतीति प्रतीतिः स्यात्। नच सुषुप्तौ कारणात्मना स्थितस्यैवोत्पत्त्यङ्गीकारान्नानुपपत्तिरिति वाच्यम्। कर्तृभोक्तृकारणस्य कर्तृत्वादिशून्यस्य स्थितावपि कृतहान्यादेरनुद्धारात्। ननु पूर्वोक्तयोश्श्रुतिस्मृत्योरनुमानस्य च विरोधस्तदवस्थ एव शास्त्रबाधस्तु

स्मर्तृत्वानुरोधेन तस्यैव तदनुभवितृत्वात् स्मर्तृत्वानुभवितृत्वयोरैकाधिकरण्य-नियमादित्यर्थापत्त्याऽहमर्थसिद्धिमुपपादयन्निगमयति—**तस्मादिति**। **प्रवृत्त्यनुपपत्तेरिति**। प्रत्युताहमर्थस्य सुषुप्तौ नाशादिति भावः योऽहमिति। त्वन्मतेऽहमर्थस्यासुप्तत्वादिति भावः। **प्रत्यभिज्ञेति**। सुषुप्तिजागरयोरहमर्थैक्यावगाहिप्रत्यभिज्ञेत्यर्थः। **प्रत्यभिज्ञानुपपत्तिश्चेति**। त्वन्मतेऽहमर्थस्यैव कर्तृत्वात् कर्तृत्वाधिकरणयो पूर्वतनाद्यतनयोरहमर्थयोरैक्यावगाहिप्रत्यभिज्ञेत्यर्थः। दृष्टान्तेन प्रवृत्त्युपपादनार्थं शङ्कते—**नन्विति**। दृष्टान्तवैषम्यमुपपादयन्निराकरोति—**नेति**। तमेव विशदयति—**सुषुप्ताविति**। दूषणान्तरमाह—**अहंव्यक्तिभेदादिति**। पूर्वतनाहमर्थनाशेन पुनरद्यतनाहमर्थोप-पत्यङ्गीकारेण पूर्वतनाद्यतनाहङ्कारव्यक्त्योर्भेदादित्यर्थः। **कृतनाश इति**। कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुभयोरपि

की आत्मा कोई दूसरा हो तो—जो मैं सोया था वही मैं जाग रहा हूँ, ऐसी प्रत्यभिज्ञा नहीं होती जो मैंने कल काम किया था वही आज कर रहा हूँ। कहें कि जैसे मैं दुबला हो गया हूँ—मोटा होना चाहता हूँ—यहाँ जिस प्रकार स्थूल होने की प्रवृत्ति है—उसी प्रकार प्रकृति की उपपत्ति होगी तो यहाँ दृष्टान्त में वैषम्य का उपपादन करते हुए इस शंका का निराकरण करते हैं ऐसा नहीं कह सकते—कार्श्य आत्मा में परम्परा सम्बन्ध से आरोपित है अथवा अनारोपित अहमर्थ तो विद्यमान है—इसलिये वहाँ तो प्रवृत्ति की उपपत्ति होने पर भी सुषुप्ति में तो आपके अनुसार अहमर्थ का नाश हो जाता है—आत्मा रहता ही नहीं—फिर उसके सुख के लिये कैसे प्रवृत्ति होगी ? कहें कि वहाँ भी सुषुप्ति में शरीर के सुख के लिये ही सुषुप्ति में प्रवृत्ति होती है। तो कहते हैं—विवेकी जन मेरा देह स्थूल हो। इस इच्छा से ही प्रवृत्त होता है—इसी प्रकार विवेकीजन मैं सुखी रहूँ इसलिये सुषुप्ति में

१. सुषुप्ति में कोई ज्ञान नहीं होने का कारण—त्वऽ मनः संयोग का अभाव है, ज्ञान सामान्य में त्वऽ मनः संयोग कारण माना गया है सुषुप्ति काल में मन पुरीतत् नाड़ी में चला जाता है, अतः उस समय त्वऽ मनः संयोग का अभाव होता है।

तवाप्यनिष्ट इति चेन्न, श्रुत्यादेरन्यविषयत्वेन बाधाभावात्। तत्राथातोहङ्कारादेश इत्यादि श्रुतिस्मृत्योः गर्वोऽभिमानोऽहङ्कारइत्यभिधानात् गर्वादिवाचकाहङ्कारो विषयः स तु प्राकृत एव, अहङ्कारश्चाहं कर्त्तव्यश्चेतिश्रुत्यन्तरात्, स च मान्तोऽव्ययरूपः कारप्रत्ययान्तः, आत्मवाच्यहंशब्दस्तु दकारान्तोऽ-स्मच्छब्दस्तस्मादुभयोरर्थतः शब्दतश्च भेदान्नोक्तदोषावकाशः। न चोभयोरप्यहङ्कार एव शक्तिरिति वाच्यम्। अहङ्कारस्यानेकप्रयोग-दर्शनेनैकत्र शक्तेर्नियन्तुमशक्यत्वात्, अहंशब्दस्त्वहङ्कारशब्दवदात्मभिन्ने प्रयोगप्राचुर्याभावादात्मपर एवेति भावः।

त्वन्मतेऽहमर्थनिष्ठत्वेन पूर्वतनकर्तुरिदानीं तत्फलभोक्तुश्चाहमर्थस्य भिन्नत्वात् पूर्वतनाहमर्थस्य कृतहानिरद्यतनाहमर्थस्य कर्माभावेऽपि भोगप्रसङ्ग इत्यर्थः। ननु कर्तृभोक्तृश्चैतन्यानुगमेनाभेदोपपत्तेर्नकृतहानादिदोषप्रसङ्ग इत्यत आह—**अभिन्नइति**। ननु चैतन्ये वास्तव-कर्तृत्वाद्यभावेऽप्यारोपितं कर्तृत्वमस्तीतितादृशकर्तृत्वोपेतचैतन्यानुगमेनाऽभेदसद्भावान्न कृतहानादिप्रसङ्ग इत्यत आह—**कर्तृत्वाद्यारोपस्येति प्रतीत्येति**। स्थूलःकरोतीति प्रतीतेरित्यर्थः। तथाचारोपितकर्तृत्वस्यातिप्रसङ्गेनाप्रयोजकत्वात् न तेन। व्यावहारिककर्तृभोक्तृभेदप्रमा-निर्वाहः। गुञ्जापुञ्जे वह्नित्वारोपेणाऽरोपितदाहकर्तृत्वसद्भावात्तेनापि वास्तवस्फोटादिरूपकार्यापत्तिरिति भावः। बाधकतर्कमुपन्यस्यति। **अन्यथेति**।

प्रवृत्त होता है—मेरी आत्मा सुखी हो—मेरी आत्मा दुःख रहित हो—इस इच्छा से किसी की सुषुप्ति में प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है। कोई बात समझदार की (विवेकी) ही मान्य होती है बुद्धिमान् व्यक्ति—शरीर को बनाने की इच्छा करता है—आत्मा को नहीं। पीड़ाओं में व्यथित बुद्धिमान् व्यक्ति आत्मा की सुखानुभूति या दुःख राहित्य के लिये सुषुप्ति में प्रवृत्त होता—यदि आत्मा का सुषुप्ति में नाश हो जाये, आत्मा का सद्भाव ही नहीं हो तो उक्त प्रवृत्ति नहीं होगी। उक्त दृष्टान्त विषय दृष्टान्त है—उससे सुषुप्ति में आत्मा का खण्डन सम्भव नहीं है। दूसरी बात यदि सुषुप्ति में आत्मा का नाश माने—सुषुप्ति के बाद पूर्व आत्मा से भिन्न कोई दूसरी आत्मा होती है ऐसा मानें तो—कृतनाश एवं अकृताभ्यागम दोष का प्रसंग होगा अर्थात् यदि कल के अहमर्थ का नाश तथा आज का नया अहमर्थ आत्मा माने तो—तब तो गतदिवसीय आत्मा और अद्यतन दिवसीय आत्मा (अहमर्थ) के भिन्न-भिन्न होने से कृतनाश अकृताभ्यागम दोष को कोई रोक नहीं सकता कर्तृत्व और भोक्तृत्व आपके मत में अहमर्थ निष्ठ होता है—पूर्व के कर्त्ता और आज के फल भोक्ता के भिन्न होने से—पूर्वतन कर्ता आत्मा का कृतनाश यह हुआ कि उसने जो शुभ

एवमहमर्थस्य सर्वा-वस्थानुगतत्वसिद्ध्या परोक्तानुमानवृत्तिहेतोः स्वरूपासिद्धत्वेनाप्रमाणत्वं सुप्रसिद्धम्। ननु ज्ञातुः सद्भावे किमिति विशेषज्ञानं न स्यादिति चेन्न तत्र विषयाभावात्, नहि ज्ञातुः सत्वमात्रं

कर्तृत्वाङ्गीकार इति तदर्थः। अहमर्थान्यस्मिन् चैतन्ये कर्तृत्वारोपो न युक्तस्तथाहि चैतन्यं कर्त्रिति कदाप्यारोपादर्शनात् अहं करोमीत्येव तदारोपो वाच्यः सचैतदन्योनास्तीति, अयमेव मुख्यप्रत्यय इति न तदारोप इति भावः। सुषुप्तौ कारणात्मनाऽहङ्कारःस्थीयते स एवोत्पद्यत इति स्वीकारेण नोक्तदोषावकाश इत्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। कृतहान्यादेरिति। कर्त्तुर्भोक्तुश्चाहमर्थस्य भिन्नत्वेन पूर्वतनाहमर्थस्य कृतहानिः, अद्यतनाहमर्थस्य कर्माभावेऽपि भोगप्रसङ्गइत्यर्थः। **श्रुतिस्मृत्योरिति**। 'अथात आत्मादेश' इति श्रुतिः। 'भिन्ना प्रकृतिरष्टधा' इतिस्मृतिः। **अनुमानस्येति**। अहमर्थो नात्मा सुषुप्त्याद्यवस्थाननुगतत्वादित्यर्थः। श्रुतिस्थाहङ्कारशब्दं व्याचष्टे—**तत्रेति**। फलितार्थं दर्शयति—**एवमिति**। शङ्कते—**नन्विति**।

अशुभ किया उसका तो उसे शुभ-अशुभ फल मिला नहीं—इस प्रकार उसका तो कृतनाश हो गया—जो नया आत्मा आया उसे बिना कुछ किये शुभ-अशुभ फल मिल गया। अकृताभ्यागम हो गया—बिना किये फलभोग मिल गया। कहें कि कर्ता तथा भोक्ता में चैतन्य का अनुगमन होने से अभेद की उपपत्ति हो जाएगी—तब कृतहानादि दोष का प्रसङ्ग नहीं होगा, तो ऐसा नहीं हो सकता। चैतन्य में अभिन्न होने पर कर्तृत्व आदि में अभाव होगा तथा कर्तृत्व आदि के आरोप का देह आदि में भी सद्भाव होने से अहं करोमि—यही प्रतीति होने से अहमर्थ आत्मा में कर्तृत्व आदि का आरोप भी असंभव है। अन्यथा कर्तृत्व स्वीकार करने पर आत्मा करोति आत्मा करती है—ऐसी प्रतीति होगी। यदि कहें कि सुषुप्ति में कारणरूप से स्थित की ही उत्पत्ति स्वीकार करने से अनुपपत्ति नहीं होगी तो ऐसा नहीं कह सकते कारण कर्ता और भोक्ता कारण के स्थिति में भी कृतहानि आदि दोषों से छुटकारा नहीं होगा यदि कहें कि पूर्वोक्ति श्रुति 'अथातः आत्मादेशः' तथा भिन्ना प्रकृतिरष्टधा स्मृति तथा अहमर्थो नात्मा सुषुप्त्याद्यवस्थाननुगतत्वात् इस अनुमान का विरोध तो पूर्ववत् रह ही गया और शास्त्र बाध तो आपको भी इष्ट नहीं है तो ऐसा नहीं है—श्रुति आदि का विषय यहाँ अन्य है—इसलिये बाध नहीं होगा। 'अथातोऽहंकारादेशः' इत्यादि श्रुति एवं स्मृति—गर्व, अभिमान, अहंकार का अभिधान होने से—उनका गर्व आदि का वाचक अहंकार विषय है—वह प्राकृत पदार्थ है—इसमें श्रुत्यन्तर भी प्रमाण है—'अहंकारश्चाहं कर्तव्यञ्च' वह गर्वादिवाचक शब्दमान्त है, अव्ययरूप है तथा कारप्रत्ययान्त है (अहंकार)। और आत्म शब्द अहं

विषयानुभवे प्रयोजकमपितु विषयसत्वसहकृतमेव तस्मात् ज्ञातुः सत्वेऽपि विषयाभावाद्विशेष-ज्ञानानुदयोऽविरुद्ध इति भावः ॥ ८३ ॥

तत्र=सुषुप्तौ। यदि ज्ञातृसत्वमात्रं विषयानुभवे प्रयोजकं स्यात्तदा सुषुप्तौ विषयज्ञानं स्यादित्यापादयितुं शक्यते तदेव नास्तीत्याह—**नहिज्ञातुरिति ॥ ८३ ॥**

शब्द—दकारान्त अस्मद् शब्द है—इस प्रकार दोनों में शब्द से तथा अर्थ से भी भेद है, अत: उक्त दोष का यहाँ अवकाश नहीं है। कहें कि दोनों शब्दों की अहंकार अर्थ में ही शक्ति है—तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण अहंकार शब्द का अनेक अर्थ में प्रयोग देखे जाने से किसी एक अर्थ में उसे संकुचित नहीं किया जा सकता और अहं शब्द का अहंकार शब्द की तरह आत्मा से भिन्न अर्थ में प्रयोग का बाहुल्य नहीं होने से अहं शब्द आत्मवाचक ही है। इसलिये अहमर्थ सभी अवस्थाओं में अनुगत होने से परपंथी का यह अनुमान कि 'अहमर्थो नात्मा सुषुप्त्याद्यवस्थाननुगतत्वात्' स्वरूपासिद्धि दोष युक्त होने से अप्रामाणिक है। कहें कि सुषुप्ति काल में ज्ञाता आत्मा अहमर्थ का यदि सद्भाव है तो फिर उस समय कोई विशेष ज्ञान क्यों नहीं होता? तो ऐसा नहीं कह सकते—उस समय कोई विषय नहीं रहता अत: विशेष ज्ञान नहीं होता—केवल ज्ञाता का सद्भाव ही विषयानुभव में कारण नहीं है—विषय की सत्ता के साथ-साथ ज्ञाता का सद्भाव हेतु है—इसलिये ज्ञाता के सद्भाव होने पर विषय के अभाव के कारण विशेष ज्ञान का उदय नहीं होता। इसमें कोई विरोध नहीं है। कहें कि इतनी देर तक (सुषुप्तिकाल तक) अपने आपको भी मैं नहीं जाना—इत्याकारक अस्मद् शब्दवाच्य अर्थ आत्मा के अभावविषयक प्रतीति तथा 'न जानाति अयम् अहमस्मि' इस श्रुति से भी सुषुप्ति में अहमर्थ का अभाव प्रमाण सिद्ध होने से हमारे अनुमान्—(अहमर्थो नात्मा सुषुप्त्याद्यवस्थाननुगतत्वात्) में स्वरूपसिद्धत्व कैसे कह सकते हैं, इस प्रकार सुषुप्ति में आत्मा का अननुगतत्व तदवस्थ ही रह गया तो ऐसा नहीं कह सकते—उक्त प्रतीति में भी अस्मदर्थ की अनुवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है—क्योंकि इस प्रतीति में द्वितीयान्त कर्मज्ञरूप अहमर्थ—जाग्रत् अवस्था में अनुभूत अनादि कर्म संस्कार प्रयुक्त आत्मत्वाभिमत देहाद्यवच्छिन्न विषय है और अहम् इस प्रथमान्त कर्तारूप अस्मदर्थ का देहेन्द्रिय आदि से विलक्षण शुद्ध ब्रह्मात्मक प्रत्यगात्मा ज्ञाता विषय है, इस प्रकार उक्त लक्षण देहेन्द्रियादि से सम्बद्ध कर्म प्रत्ययान्त अस्मदर्थ का सुषुप्ति में अभाव होने से उसी में निषेध विषयत्व है यानी उक्त देहेन्द्रियादि सम्बन्ध विशिष्ट आत्मा का निषेध है। इसी प्रकार नाहमवेदिषम्—के अहम्—इस देहादि वियुक्त एवं देहादि विशिष्टाभाव विषयक अनुभूति के आश्रय अहम् का उस समय भी जिस समय जीव कहता है (एतावन्तं कालं मामपि नाहमवेदिषम्) सत्ता रहती है।।८३।।

न चैतावन्तं कालं मामप्यहं नावेदिषमित्यस्मदर्थाभाव विषयकप्रत्ययस्य नजानात्ययमहमस्मीति श्रुतेश्च सुषुप्तावहमर्थाभावस्य मानसिद्ध्या कथमस्मत्प्रयुक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वं तस्मादननुगमस्य तादवस्थ्यमिति वाच्यम्। उक्तप्रत्ययेऽप्यहमर्थस्यानुवृत्तिदर्शनात्तथाहि तत्र मामितिद्वितीयान्तस्य कर्मरूपाहमर्थस्य जाग्रदनुभूतानादिकर्मसंस्कार-प्रयुक्तात्मत्वाभिमतदेहाद्यवच्छिन्नो विषयः, अहमितिप्रथमान्तस्य कर्तुरस्मदर्थस्य देहेन्द्रियादिविलक्षणशुद्धब्रह्मात्मकप्रत्यगात्मा ज्ञाता विषयः तथाच मामित्युक्तलक्षणस्य देहेन्द्रियादिसम्बद्धस्य तत्राभावान्निषेधविषयत्वं सूपपन्नम्,

अस्मदर्थाभावविषयकप्रत्यभिज्ञाबलेन न जानात्ययमिति श्रुत्या च सुषुप्तावहमर्थो न भासतेऽतः सुषुप्ताद्यवस्थाननुगतत्वरूपहेतोः कथं स्वरूपासिद्धत्वमिति शंकते— **एतावन्तमिति**। **तस्मादिति**। श्रुतिप्रमाणसिद्धस्यास्मदुक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वाभावादिति तदर्थः। **अननुगमस्येति**। सुषुप्ताद्यननुगतत्वहेतोः स्वरूपासिद्धत्वं तादवस्थ्यमित्यर्थः। परपक्षहेतोः स्वरूपासिद्धत्वमुपपादयन्नाह—**उक्तेति**। एतावन्तंकालंमामप्यहं नावेदिषमितिप्रत्यये इति तदर्थः। अहं नावेदिषमित्यत्र वेदनाभावाधिकरणतयाऽहमर्थस्य वेदितुरात्मनः प्रतिपत्तेर्न तन्निषेधः कर्तुं शक्यते नापि तन्निषेधः स्वयंज्योतिष्ट्वश्रुति विरोधात्। बाह्यार्थस्यापि न स्वरूपतो निषेधः सुषुप्तौ विश्वप्रलयत्वासम्भवात्। अतःस्वान्यवेद्यविषयनिषेध एव विवक्षितस्तथाचोक्तप्रत्ययेऽप्यहमर्थस्यानु-वृत्तिदर्शनात्तदुक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वं तादवस्थ्यमित्याशयं हृदि निधाय उक्तप्रत्यभिज्ञाया अर्थं विवृणोति—**तथाहीति**। जागरितावस्थानुभूतदेहादिवैशिष्ट्यमिह निषेध्यमितिवक्तुं

यहाँ अवेदिषम् के कर्ता को उस समय में भी स्पष्ट दीखता है—तब सुषुप्ति अनुगतत्त्व अहमर्थ में कैसे रहा दूसरी बात मामपि नावेदिषम्—इस प्रतीति में अहमर्थ के ज्ञान का ही प्रतिषेध है—न कि सत्ता का किसी वस्तु को ज्ञान के अभाव से उसकी सत्ता का अभाव सिद्ध नहीं होता। सद्वस्तु की भी कई कारणों से प्रतीति नहीं होती—जैसाकि सां० का० में आया है—"अतिदूरात् सामीप्यात्" इत्यादि। इस प्रकार अनुभव कर्ता अहमर्थ (नावेदिसम्) इत्याकारक अनुभव कर्ता का सभी अवस्थाओं में अनुगत होने से हेतु की असिद्धि उपपन्न होने से उक्त अनुमान सुषुप्ति के अहमर्थ में अभाव साधक अनुमान सर्वथा अप्रमाण है। इसी युक्ति से—'न जानात्ययमहमस्मि' इस श्रुति की भी व्याख्या उक्त प्रकार से की जानी चाहिये। अब पुनः अनुमान द्वारा आत्मा के अहमर्थत्व का खण्डन करते हैं—कहें कि अहमर्थ आत्मा नहीं है—क्योंकि वह अहं प्रतीति का

तथैवाहमिति देहादिवियुक्तस्य तद्विशिष्टाभावविषयकानुभूत्याश्रयाभिन्नस्य तत्रापि सत्त्वेन ज्ञातृतया भानमपि सूपपन्नतरं, तथा चाहमर्थस्यानुभवितुः सर्वावस्थानुगतत्वेन हेत्वसिद्धेः सूपपन्नतमत्वादप्रामाण्यमनुमानस्य। एतेनोक्तायाः श्रुतेरपि व्याख्यानमुक्तं भवति तस्याप्युक्तलक्षणविशिष्टप्रतियोगिकाभाव-विधानपरत्वेन तुल्यार्थकत्वात्। नन्वहमर्थो नात्माऽहंप्रतीतिविषयत्वाच्छरीरादिवदिति प्रयोगात्तस्यानात्मत्वावगम इति चेन्न, त्वन्मते ऽहमर्थान्तर्गताधिष्ठानभूतचितोऽपि तत्प्रत्ययविषयत्वेन तत्र

तत्र मामिति पदं व्याचष्टे—**तत्रेति**। एतावन्तं कालमिति प्रत्यय इति तदर्थः। अहमर्थं विवृणोति—**अहमिति**। फलितार्थं दर्शयति—**तथा चेति**। जाग्रदवस्थानुभूत-देहादिसम्बद्धस्यात्मत्वेनाभिमतस्यास्मदर्थस्याभावःसुषुप्तौ मामपि नावेदिष-मितिप्रत्यभिज्ञायां बोध्यते तत्रात्मनोऽहमर्थस्य विशेष्यस्य सत्वेऽपि जाग्रदनुभूतानादिकर्म-संस्कारप्रयुक्तात्मत्वाभिमतदेहावच्छिन्नरूपविशेषणस्याभावाद्विशिष्टाभाव इत्यर्थः। यद्वा मामपि नावेदिषमित्यत्रास्मदर्थे प्रकारीभूतं यद्देहादिवैशिष्ट्यं तदेव निषेध्यं सविशेषणे विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्यबाधे, इतिन्यायात्। एतेनाहमर्थस्य ज्ञातुरात्मनोऽनुवृत्तेर्न तन्निषेधयितुं शक्यत इति। श्रुत्यन्तरे तद्वैशिष्ट्यस्यैवनिषिद्धत्वात्। तद्यथा प्रियया स्त्रियया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमिति। —**तद्विशिष्टाभावेति**। जाग्रदवस्थानुभूतानादिकर्मसंस्कारप्रयुक्तात्मत्वाभि-मतदेहावच्छिन्नत्वरूपविशेषणाभावात्

विषय है—शरीर आदि की तरह—इस अनुमान प्रयोग से अहमर्थ आत्मा नहीं है—यह सिद्ध होता है तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि आपके मत में अहमर्थ के अन्तर्गत अधिष्ठानभूत भी अहं प्रत्यय का विषय होने से उसमें व्यभिचार होगा। कहें कि जिस स्वरूप से अहं इस प्रतीति का विषयत्व उस स्वरूप से अनात्मत्व और स्वरूप से आत्मत्व है—इस प्रकार व्यभिचार नहीं होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण 'अहमात्मा गुडाकेश' यहाँ आत्मत्वेन भी अहं प्रतीति विषयत्व स्पष्ट है। अब पुनः दूसरे प्रकार से अहमर्थत्व का खण्डन करते हैं—कहें कि अनुमान करेंगे—अहमर्थ आत्मा से अन्य है, क्योंकि वह अहं शब्दवाच्य है—जैसे अहंकार (अहं शब्दवाच्य अहंकार आत्मा नहीं अन्तःकरण है) तो ऐसा नहीं कह सकते हैं, कारण इस अनुमान में व्यभिचार है—अहमात्मा गुडाकेश—यह श्रीमुख का वचन ही यहाँ विश्वात्मा भगवान् वासुदेव परमात्मा में अहं शब्द का प्रयोग है—यदि अहं शब्दाभिधेय आत्मा से भिन्न होता तो यहाँ भगवान्

व्यभिचारात्। नच येन स्वरूपेणाहंधीविषयत्वं तेन स्वरूपेणानात्मत्वं स्वरूपेणात्मत्व-मिति न व्यभिचार इति वाच्यम्। "अहमात्मा गुडाकेशे" त्यात्मत्वेनाप्यहं प्रतीतिविषयत्वात्, स्वरूपेणात्मत्वे मानाभावाच्च। न चाहमर्थ आत्मान्यः, अहंशब्दाभिधेयत्वादहङ्कारशब्दाभिधेयवदित्यत्र मानमिति वाच्यम्। "अहमात्मा गुडाकेशे" त्यहंशब्दाभिधेये विश्वात्मनि श्रीवासुदेवे परब्रह्मणि व्यभिचारात्। अथ यत्त्वया आत्मनो गौरोऽहमित्यनात्मरोपाधिष्ठानत्वं मानभूवं भूयासमित्यादिना परमप्रेमास्पदत्वमहमर्थस्य स्वसत्तायां प्रकाश-

---

निरुक्तविशेषणविशिष्टास्मदर्थात्मानास्तीतिप्रतीतिसिद्ध विशिष्टाभावस्तथाच सुषुप्तावहमर्थस्यात्मनोऽनुवर्त्तमानत्वान्नतदभावो नावेदिषमेतद्घटकीभूतनञा प्रत्यायितुं शक्यत इतिनोक्तदोषः प्रसरतीति भावः अहमर्थस्यानुभवितुरात्मन सर्वावस्थानुगतत्वादहमर्थस्यात्मत्वमुपपन्नं तथा सति सर्वावस्थानुगतत्वरूपहेतोर्निदुष्टत्वमित्याह—**तथाचेति**। **एतेन**=पूर्वोक्तार्थप्रदर्शनेन। उक्तायाः=न जानात्ययमहमस्मीतिश्रुतेः। अहमर्थे आत्मत्वाभावमनुमानेन समर्थयन् वादी पुनःप्रत्यवतिष्ठते **नन्विति**। व्यभिचारेणोक्तानुमानं व्युदस्यति—**नेति**। चिदचित्सम्बल-नात्मकाहमर्थान्तर्गतेऽचिद्भागारोपाधिष्ठानभूत आत्मचैतन्यभागेऽहंप्रत्ययविषये व्यभिचार-स्तत्रात्मत्वाभावरूपसाध्यस्याभावसत्वादिति भावः। उक्तव्यभिचारं निरसितुमाह—**येनरूपेणेति**। अहन्त्वेन रूपेणेति तदर्थः। तेन **स्वरूपेण**=अहन्त्वेनरूपेण। अनात्मत्वं चित इति भावः। **न व्यभिचार इति**। अहन्त्वेन रूपेणानात्मरूपस्य साध्यस्य चिद्भागा-रोपाधिष्ठानभूत आत्मचैतन्ये सत्वान्न व्यभिचार इत्यर्थः। आत्मत्वप्रकारकाहमर्थविशेष्यक प्रतीतिविषयत्वं यत्र तत्रात्मत्वमित्येव नियमस्तत्र श्रीमुखवचनं प्रमाणयति—**अहमिति**।

जिस आत्मा के लिये अहं शब्द का प्रयोग करते अब कहते हैं कि भगवान् श्री शंकराचार्य ने अपने ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य में जो कहा है कि आत्मा एवं अनात्मा में परस्पर अन्योऽन्यात्मकता तथा परस्पर एक दूसरे के अन्य धर्म का अध्यास कर सभी प्रमातृत्व तथा भोक्तृत्व आदि व्यवहार प्रकृत होते हैं—ऐसा जो उन्होंने परस्पर इतरेतराध्यास बताकर—वहाँ आत्मा में अनात्मा के आरोप के उपपादन के लिये 'गौरोऽहम्' यह उदाहरण दिया है—अर्थात् गौरोऽहम् इसे अध्यास बताया क्योंकि गौरत्व शरीर का धर्म है—अहमर्थ आत्मा का नहीं—यह उदाहरण अहमर्थ के अनात्मत्व होने पर अयुक्त होता,

व्यतिरेकवैधुर्य्येणात्मनः प्रकाशकत्वं चोक्तं तत्सर्वमहमर्थस्यानात्मत्वेऽयुक्तं स्यात् उक्तस्य सर्वस्याहमर्थ एव पर्यवसानात्॥ ८४॥

प्रकारान्तरेणानुमानमाशंक्य निराकरोति—**न चेति** आत्मान्यत्वाभाववति भगवति श्रीवासुदेवेऽहं शब्दाभिधेयत्वरूपहेतोस्सत्वाद्व्यभिचारइत्यर्थः। आत्मानात्मनोऽन्योन्यात्मकतामन्योन्यधर्मांश्चाध्यस्य सर्वे प्रमातृत्वभोक्तृत्वादिव्यवहाराःप्रवर्तन्ते, इति भगवत्पादश्रीशङ्कराचार्य्यप्रणीतभाष्ये, इतरेतराध्यासं प्रतिपाद्य तत्रात्मान्यनात्मत्वारोपोपपादनाय गौरोऽहमित्युदाहृतं तदहमर्थस्यानात्मत्वेऽयुक्तं स्यादत्र गौरदेहैक्याध्यासोऽहमर्थ एव प्राप्तो नात्मनीत्याह—**अथेति**। **मानभूवमिति**। माहं न भूवमपि तु भूयासमित्यर्थं विवृणोति—**भूयासमिति** आत्मनः परमप्रेमास्पदत्वमुपपादयितुमियं प्रतीतिरुदाहृता, अनया चाहमर्थस्यै व प्रेमास्पदत्वमनुमातुं शक्यतेऽतोऽहमर्थस्यानात्मत्व इदमयुक्तं स्यादित्यर्थः। **अहमर्थस्येति**। आत्मा स्वप्रकाशः स्वसत्तायां प्रकाशव्यतिरेकवैधुर्यात्। अप्रकाशरहितत्वादिति यावत्, इत्यनेनात्मनः प्रकाशत्वं साधितं भवति तत्र च हेतोः स्वरूपासिद्धत्वपरिहारायात्मनः प्रकाशव्यतिरेकवैधुर्य्योपपादनायाहमिति सदा प्रकाशोपपादनं कृतम्, इदमप्य-हमर्थस्यानात्मत्वेऽयुक्तं स्यात् अहमर्थसम्बन्धिप्रकाशव्यतिरेकवैधुर्येणात्मनः स्वप्रकाशत्वसाधनस्याप्ययुक्तत्वादिति भावः। ।।८४।।

यह गौर देह के साथ ऐक्याध्यास अहमर्थ में ही प्राप्त है यदि अहमर्थ को आत्मा नहीं मानें तो अध्यास का गौरोऽहम् यह उदाहरण असंगत होगा—शंकराचार्य वहाँ के भाष्य का अहमर्थ में ही पर्यवसान है ।।८४।।

न च प्रेमास्पदात्मैक्यारोपादहमर्थे तथा प्रतीतिरितिवाच्यम्। अन्योन्याश्रयापत्तेः, अहमर्थप्रेम्णोऽन्यस्यात्मप्रेम्णोऽनुभवाभावाच्च, अहिते हितबुद्ध्या प्रेमोत्पत्तावपि अप्रेमास्पदे प्रेमास्पदत्वस्यारोपादर्शनाच्च "समारोप्यस्य रूपेण विषयोरूपवान् भवेत्। विषयस्य तु रूपेण समारोप्यं न रूपवदिति" वाचस्पत्युक्तेः। अध्यस्तान्तःकरणगताप्रेमास्प-दत्वस्यैवात्मनि प्रतीत्यापत्तेश्च। किञ्चानिदपि रुप्ये शुक्तिनिष्ठेदन्त्वादि-भानवदधिष्ठाननिष्ठसाधारणधर्मस्यारोप्ये भानेऽप्यसाधारणधर्मस्य

आत्मनः प्रेमास्पदत्वोपपादनाय मानभूवमि-त्यहमर्थस्य प्रेमास्पदत्वोक्तिरयुक्तेति यदुक्तं तदयुक्तं परमप्रेमास्पदीभूतात्मैक्यारोपादहमर्थे परमप्रेमास्पदत्वधिय उपपत्तेरित्याशंक्य निराकरोति—**न चेति**। **अन्योन्याश्रयापत्तेरिति**। आत्मनः प्रेमास्पदत्वसिद्धौ। तदैक्यारोपादहमर्थस्य प्रेमास्पदत्वसिद्धिस्तत्सिद्धौ चात्मनः प्रेमास्पदत्वसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः। नन्वात्मनः प्रेमास्पदत्वसिद्धिर्नाहमर्थस्य

यदि कहें कि प्रेमास्पद आत्मा के साथ ऐक्य के आरोप से अहमर्थ में वैसी प्रतीति होती है तो ऐसा नहीं कह सकते—**अन्योऽन्याश्रय** की आपत्ति होगी—आत्मा के प्रेमास्पदत्व सिद्ध होने पर उसके साथ ऐक्यारोप होने से अहमर्थ में प्रेमास्पदत्व सिद्ध होगा और अहमर्थ सिद्ध होने पर प्रेमास्पदत्व—इस तरह अन्योऽन्याश्रय हो जाएगा। कहें कि आत्मा के प्रेमास्पदत्व की सिद्धि अहमर्थ में प्रेमास्पदत्वारोप के अधीन नहीं है—फिर अन्योऽन्याश्रय कैसे होगा? तो कहते हैं—अहमर्थ प्रेम का जो अनुभव है—उससे भिन्न आत्मप्रेम के अनुभव का अभाव होने से प्रेमास्पदत्व अहमर्थाहीन है—इसलिये यहाँ अन्योऽन्याश्रय है यह अर्थ है। कहें कि अनिष्ट के साधन सर्प आदि की माला का भ्रम होने से यह इष्ट साधन है—चूँकि माला है—इस प्रकार इष्ट साधन के भ्रम के अनन्तर—इष्ट साधनता के अभाव में भी यह मुझे प्रास हो जाए ऐसी इच्छा होती है। इस पर कहते हैं—अहित में हितबुद्धि से प्रेम की उत्पत्ति होने पर भी प्रेमास्पद से भिन्न में प्रेमास्पदत्व का आरोप नहीं देखा जाता। आत्मरूप अधिष्ठानगत प्रेमास्पदत्व को आरोप्य में अङ्गीकार करें तो वाचस्पति ग्रन्थ विरोध। इसलिये आरोप्य

प्रेमास्पदत्वादेर्भानासम्भवात्, आरोप्यासाधारणधर्माणां भीषणत्वादीनां रज्वामिवारोप्यासाधारणानामप्रेमास्पदत्वादीनामेवात्मनि भानापत्ते-रित्यर्थः। त्वद्रीत्या सुखानुभवरूपस्यात्मनोऽहं सुखमनुभवामीति सुखानु-भवाद्भेदेनैव प्रतीतेश्च। किञ्च मोक्षेऽहमर्थाभाव आत्मनाशो मोक्ष इति बाह्यमतापत्तिः।

प्रेमास्पदत्वारोपाधीना अतो नान्योन्याश्रय इत्यतआह—**अहमर्थेति**। तथाचाहमर्थप्रेम्णो योऽनुभवस्तद्व्यतिरिक्तात्मप्रेमानुभवाभावादात्मप्रेमास्पदत्वमहमर्थाधीनमित्यन्योन्याश्रय इत्यर्थः। सम्प्रदायस्तु, अहमर्थप्रेमास्पदत्वारोपसिद्धौप्रकारान्तरेणात्म प्रेमास्पदत्वोपपादनासम्भवात्तन्निबन्धनात्मप्रेमास्पदत्वसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयत्वोपपादनं पूर्वमेव कर्त्तव्यम्, इतोप्यहमर्थे प्रेमास्पदत्वधीर्नभ्रान्तिरित्याह—**अहमर्थेति**। अहमर्थप्रेम्णोऽनुभवस्य वक्तुमशक्यत्वादतोमानभूवमित्ययमेवात्मप्रेमानुभव इति वाच्यम्। तथाच प्रधानाभावादस्यैवानुभवस्यानारोपत्वसिद्धिरित्यर्थः। नन्वनिष्टसाधने सर्पादौ मालात्वभ्रमेणेदमिष्टसाधनं मालात्वादितीष्टसाधनताभ्रमानन्तरमिष्टसाधनताया अभावेऽपि इदं मे स्यादितीच्छाऽनुभूयत इति चेत्तत्राह—**अहितइति**। अनिष्टसाधन इष्टसाधनत्वबुद्ध्या प्रेमोत्पत्तौ सत्यामेव वस्तुतः प्रेम्णः सत्वात्प्रेमानुभवो भवति, अहिते प्रेमोत्पत्तिश्च भवति परन्तु प्रेमाभावे प्रेमज्ञानन्तु न भवत्येवेत्याशयः। आत्मरूपाधिष्ठानगतप्रेमास्पदत्वस्यारोप्याङ्गीकारे च वाचस्पतिग्रन्थविरोधोऽत आरोप्यान्तःकरणगताप्रेमास्पदत्वस्यैवात्मनि प्रतीत्यापत्तिरित्याह—समारोप्येति। **समारोप्यस्य** सर्पादेर्भीषणत्वादिरूपेण धर्मेण विषयोधिष्ठानभूतोरज्वादियुक्तो भवति विषयस्य रज्वादे

अन्तःकरणगत प्रेमास्पदत्व की ही आत्मा में प्रतीत्यापत्ति होगी—जैसा कि श्रीवाचस्पत्ति का वचन है—'समारोप्यस्य रूपेण विषयो रूपवान् भवेत्। विषयस्य तु रूपेण समारोप्यं न रूपवत्' इसका अर्थ है कि समारोप्य सर्प आदि के भीषणत्व आदि धर्म से विषय अधिष्ठान भूत रज्जू आदि युक्त होता है—परन्तु रज्जू आदि विषय के रूप से यानी पुरतो गम्यमानत्व आदि से समारोप्य सर्पादि रूप की भाँति अभिगम्यमान नहीं होता। अधिष्ठानगत साधारण धर्म का ही आरोप्य में भान होता है—न कि उसके असाधारण धर्म का—ऐसा मानें तो आरोप्य ही सिद्ध नहीं होगा ऐसा भाव बताते हुए वाचस्पति की उक्त कारिका का अभिप्राय बताते हैं—'किञ्चानिदपि रुप्ये'—अर्थात् इदं भिन्न रजत में जैसे शुक्तिनिष्ठ इदन्त्वादि का भान होता उसी प्रकार अधिष्ठान निष्ठ साधारण धर्म का आरोप्य में भान होने पर भी प्रेमास्पदत्वापि असाधारण धर्म का भान सम्भव नहीं है। आरोप्य असाधारण धर्म भीषणत्व आदि का रज्जू में भान की तरह आरोप्य असाधारण अप्रेमास्पदत्व आदि की ही आत्मा में भानापत्ति होगी—यह भाव है।

प्रेमास्पदाहमर्थस्य त्वन्मतेऽपि नाशात्तदतिरिक्तशून्यस्य तन्मतेऽप्यनाशात्, नह्यहमर्थभिन्ने, आत्मनि प्रेमधीः कदाचिदस्तीति भावः ॥ ८५ ॥

रूपेण पुरतोगम्यमानत्वादिना समारोप्यं सर्पादिरूपवत् अभिगम्यमानं न भवतीति श्लोकार्थः। अधिष्ठानगतसाधारणधर्मस्येवारोप्ये भानं भवति नतु तदसाधारणधर्मस्य तथात्वे त्वारोप्य एव न सिद्ध्येदमुमर्थमुपपादयन् वाचस्पत्युक्तकारिकाभिप्रायं दर्शयति—**किञ्चेति**। इदमिति रजतारोपकाले रजते अनिदन्त्वं न प्रतीयत इति स्फोरयितुमनिदमिरूप्य इत्युक्तम्। रूप्ये शुक्तिनिष्ठेदन्त्वं भासते नतु तदसाधारणधर्मस्य शुक्तित्वस्य भानं तथासत्यारोपो न स्यात् तथाचाधिष्ठानगता असाधारणधर्माः नारोप्ये प्रतीयन्ते परन्तु वाचस्पत्युदाहृतवचनेनान्तःकरणगतासाधारणधर्मा प्रेमास्पदत्वस्यात्मनि भानापत्तिरित्यर्थः। अहमर्थे प्रेमास्पदत्वारोपहेतुमात्मैक्यारोपं दूषयति—**त्वद्रीत्येति**। सुखानुभववानस्मीति प्रतीत्याऽत्मनोऽहमर्थाद्भेदेन प्रतीतेर्न तत्र तस्यारोपइत्यर्थः। **बाह्यमतापत्तिः**=वेदबाह्यो यो बौद्धस्तन्मतापत्तिः। ननु प्रेमास्पदरूपात्मभूतवस्तुनाशाङ्गीकारात्तन्मतस्य निन्द्यत्वं न मन्मतस्येत्यतः प्रेमास्पदवस्तुनाशस्त्वन्मतेऽप्यवशिष्ट इत्याह—**प्रेमास्पदाहमर्थस्येति**। वास्तवं नाहङ्कारस्य प्रेमास्पदत्वं किन्त्वात्मैक्यारोपादहमर्थे तद्धीरित्येतद्दूषितमिति भावः। ननु मोक्षे प्रेमास्पदाहङ्कारनाशेऽपि तदन्यस्य ब्रह्मणोऽविनाशात्तद्भावस्य पुरुषार्थत्वमिति चेत्तर्हि समं शून्यवादेपीत्याह—**तदतिरिक्तशून्यस्येति**। आत्मव्यतिरिक्तस्येति तदर्थः। तद्भाव एव तन्मते पुरुषार्थ इतिसाम्यमिति भावः ।।८५।।

अब अहमर्थ में प्रेमास्पदत्व के आरोप में हेतु आत्मा के ऐक्य के आरोप को दूषित करते हैं—आपके मत में—सुख के अनुभव रूप अहं सुखम् अनुभवामि इस प्रतीति में सुखानुभव से भेदरूप में ही प्रतीति भी है। अर्थात् मैं सुख का अनुभव करने वाला हूँ, इस प्रतीति से आत्मा का अहमर्थ से भेदरूप में प्रतीति से उसमें भेद का आरोप नहीं होगा। दूसरी बात यदि मोक्ष दशा में अहमर्थ का अभावरूप आत्मनाश मोक्ष माने तब तो बाह्यमत बौद्धमत की आपत्ति, बौद्ध ही मोक्ष में आत्मा का भी नाश मानते हैं। कहें कि प्रेमास्पदरूप आत्मभूत वस्तु के नाश स्वीकार के कारण—उस मत की निन्दा है—न कि मेरे मत की प्रेमास्पद वस्तु का नाश तो आपके मत में भी अवशिष्ट है—यही कह रहे हैं—प्रेमास्पदाहमर्थस्य—आदि ग्रन्थ से अहंकार में प्रेमास्पदत्व वास्तविक नहीं है, बल्कि आत्मा के साथ ऐक्य के आरोप के कारण अहमर्थ में प्रेमास्पदत्व बुद्धि है। अहमर्थ के मोक्षान्वयित्व अर्थात् मोक्षदशा में भी अहमर्थ के सद्भाव में श्रुति प्रमाण देते हैं—श्रुति कहती है ।।८५।।

किञ्च ''मामृतं कृन्धि ज्योतिरहं विरजा पाप्मा भूयास'' मितिश्रुत्याऽहमर्थस्यैवामृतत्वोक्तेः। अहं मुक्तःस्यामितीच्छा च न स्यात्तस्यास्तद्विषयत्वात्। नन्वात्मन एव मुक्तिरिष्यत अहङ्कारेतरारोपात् मुक्तःस्यामितीच्छा सूपपन्ना यथा शरीरस्यैव पुष्टीच्छायामप्यात्मनि तदैक्यारोपात् पुष्टः स्यामितीच्छा यथा आत्मन एव सुखेच्छायां तदैक्यारोपाच्छरीरं सुखिस्यादितीच्छाचेति चेन्न, अन्योन्याश्रयापत्तेः। तत्र शरीरं पुष्टं स्यादिति शरीरमात्रे पुष्टीच्छावत्, अहं सुखी

अहमर्थस्य मोक्षान्वयित्वे श्रुतिं प्रमाणयति—**मामृतमिति**। मामहमित्यहमर्थस्यैवामृतत्वप्रार्थनाश्रवणादात्मन एव मुक्तिरित्युक्तमसदितिभावः। यद्यहमर्थस्यात्मत्वं न स्यात्तदाहं मुक्तःस्यामितीच्छा न स्यादित्याह—**अहं मुक्त इति**। **तस्याः=इच्छायाः**। **तद्विषयत्वात्**=अहमर्थविषयत्वात्। उक्तेच्छामुपपादयन्नाशङ्कते—**नन्विति**। यद्यात्मन एव मुक्तिस्तर्ह्यहं मुक्तः स्यामितीच्छा कथं स्यादित्यत आह—**अहङ्कार इति**। अहङ्कारादितरीभूत आत्मा तस्यारोपअर्थादहङ्कार इत्यर्थः। यद्वा अहङ्कारे इतरस्यात्मन आरोपस्तस्मादित्यर्थः। उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**यथेति**। **तदैक्येति**। पुष्टत्वाश्रयशरीरैक्यारोपादित्यर्थः। **तदैक्यारोपात्**=मुख्यात्मैक्यारोपात्। परिहरति—**नेति**। **अन्योन्याश्रयादिति**। आत्माहमर्थयोर्भेदादीनामारोपसिद्धौ, उक्तेच्छया

''मामृतं कृन्धि ज्योति रहं विरजा पाप्मा भूयासम्'' इस श्रुति प्रमाण से अहमर्थ में ही अमृतत्व कहा गया है—अर्थात् अहमर्थ ही आत्मा है—वह मोक्ष दशा में भी शाश्वत् है। यदि अहमर्थ आत्मा न हो तो—मैं मुक्त हो जाऊँ, ऐसी इच्छा भी किसी की न हो—यह इच्छा अहमर्थ विषयिणी है। कहें कि अहमर्थ अहंकार के साथ ऐक्यारोप करके उक्त इच्छा कही गई है—जैसे शरीर की ही पुष्टि की इच्छा में आत्मा में उसका आरोप करके पुष्टः स्याम् में (मैं पुष्ट हो जाऊँ) ऐसी इच्छा होती है, इसी तरह आत्मा के सुख की इच्छा से उसके साथ ऐक्य का आरोप करके शरीर सुखी हो ऐसी इच्छा होती है—इसी तरह अहं मुक्तः स्याम् यह इच्छा भी ऐक्यारोप के कारण है तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण ऐसा मानने पर अन्योऽन्याश्रय की आपत्ति होगी यानी आत्मा तथा अहमर्थ में भेदादि के आरोप सिद्धि में उक्त इच्छा से अबाधकत्व की सिद्धि और उसके अबाधकत्व सिद्धि में भेद सिद्धि इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय होता है। शरीर पुष्ट हो, यहाँ जैसे शरीरमात्र के पुष्टि की इच्छा है, मैं सुखी होऊँ—इस इच्छा की भाँति चिन्मात्र मुक्त हो जाए, ऐसी इच्छा कभी भी नहीं देखी जाने से मुक्ति में अनिष्टत्व का

स्यामित्यपीच्छावच्चेह चिन्मात्रं मुक्तं स्यादितीच्छायाः कदाप्यदर्शनेन मुक्तेरनिष्टत्वप्रसङ्गाच्च। यः कश्चिदात्मा मुक्तःस्यादितीच्छा चेत् न कदापि मुमुक्षुप्रवृत्तिः स्यात् ममात्मा मुक्तःस्यादितीच्छाया अदर्शनात्। ननु यद्यपीच्छासमयेऽन्तःकरणाध्याससम्भवेनात्ममात्रमुक्तीच्छा नास्तीति सत्यं तथापि विशिष्टगतमुक्तीच्छया एव विशेष्यगतमुक्तिविषय-त्वपर्य्यवसानात्तस्या इष्टत्वोपपत्तेरिति चेन्न, अहमर्थभिन्नतयाऽऽ-त्मनोभानस्य क्वाप्यदर्शनेनैतत्कल्पनाया अप्रामाणिकत्वात्। अपिचाहमर्थो यद्यन्तःकरणगर्भितश्चेन्मम मन इति प्रत्ययो न स्यात्तदवच्छिन्नस्य

अबाधकत्वसिद्धिस्तदबाधकत्वसिद्धौ भेदसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः। **तत्रेति**। ऐक्यारोपादहं पुष्टःस्यामितीच्छायामपि कदाचिच्छरीरं पुष्टं स्यादिति मुख्येच्छा भवति यथैक्यारोपादेव शरीरं सुखि स्यादितीच्छायामपि कदाचिदहं सुखी स्यामितीच्छा भवति तद्वत् मुक्त्यन्वय्यात्माभेदारोपेणाहं मुक्तःस्यामितीच्छायामपि कदाचिन्मात्रं मुक्तं स्यादितीच्छा प्रसज्येत नह्येवं कदाचित्कस्यचिदिच्छा दृष्टेति भावः। **अनिष्टत्वप्रसङ्गादिति**। आत्मसम्बन्धितयेच्छाविषयत्वाभावापातादित्यर्थः। ननु कश्चिदात्मा मुक्तः स्यादित्यात्मसम्बन्धितया मुक्तेरिच्छाविषयत्वं सम्भवतीतिचेत्तत्राह—**यःकश्चिदिति**। कस्यचिदात्मनो मुक्तीच्छया मुमुक्षोः स्वस्य प्रवृत्तिर्न युक्ता नह्यन्यस्य स्वर्गेच्छया स्वस्य यागप्रवृत्तिर्दृष्टेति भावः। ननु ममात्मा मुक्तः स्यादित्यात्मनो मुक्तीच्छा सम्भवतीति शङ्कते—

प्रसंग भी हो जाएगा। जो कोई आत्मा मुक्त हो जाए ऐसी इच्छा होने पर तो कभी मुमुक्षु की प्रवृत्ति नहीं होगी—मेरी आत्मा मुक्त हो ऐसी इच्छा न ही देखी जाती। इस तरह मुक्त में अनिष्टत्व का प्रसंग भी होगा। यदि कोई आत्मा मुक्त हो ऐसी इच्छा तो कभी भी मुमुक्षु की प्रवृत्ति नहीं होगी, क्योंकि मेरी आत्मा मुक्त हो, ऐसी इच्छा नहीं है। कहें कि यद्यपि इच्छा के समय में अन्तःकरण का अध्यास संभव होने से आत्ममात्र की मुक्ति की इच्छा नहीं है, यह सत्य है, फिर भी विशिष्टगत मुक्ति की इच्छा का ही विशेष्यगत मुक्ति विषयत्व में पर्यवसान होने से उसमें इष्टत्व की उपपत्ति होगी तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण अहमर्थ से भिन्न रूप में आत्मा के भान का कहीं भी दर्शन नहीं होने से यह कल्पना अप्रमाणिक है। दूसरी बात अहमर्थ यदि अन्तःकरण गर्भित हो तो मेरा मन ऐसी प्रतीति नहीं होगी। दूसरी बात मेरा मन स्फुरित होता है—मेरा मन है—इस ज्ञान से, इस ज्ञान में वैषम्य का अनुमान नहीं होगा। कारण चित् अचित् सम्बलन विषयत्व में कोई फर्क नहीं है। इसलिये अहमर्थ अनात्मा है—इसमें कोई प्रमाण नहीं है। और अहमर्थ आत्मा है—इस विषय में प्रत्यक्ष अनुमान तथा

पुनस्तदनन्वयात्। किञ्चैवं मनः स्फुरति मनोऽस्तीति ज्ञानादहमिति ज्ञानस्य वैषम्यानुभवो न स्यात्, चिदचित्सम्बलनविषयत्वाविशेषात्, तस्मादहमर्थस्यानात्मत्वे किमपि मानं नास्तीति सिद्धम्। आत्मत्वे तु प्रत्यक्षानुमानश्रुत्यादीनां सत्वात्तस्यात्मत्वं सुतरां सिद्धम्। तथाहि जानाम्यनुभवामीच्छामीत्यादि प्रतीतिभ्यः। अहमर्थो मोक्षान्वयी तत्साधनकृत्याश्रयत्वात् सम्मतवदिति। न च स्वर्गसाधनकृत्याश्रये ऋत्विजि व्यभिचार इति वाच्यम्। उद्देश्यतासम्बन्धेन हि यत्र कृतिस्तत्रैव फलमिति नियमः, ऋत्विजान्तु दक्षिणाया एवोद्देश्यत्वान्नोक्तव्यभिचार-योगः।

नन्विति। विशिष्टगतमुक्तीच्छया=अन्तःकरणविशिष्टात्मगतमुक्तीच्छया। यद्यहमर्थातिरिक्तत्वेनात्मनो भानं स्यात्तदैवं कल्पयितुं शक्यं नत्वेवमित्याशयेन परिहरति—**नेति**। अहमर्थस्य चिदचित्सम्बलनात्मकत्वे बाधकान्तरमाह—**अपि चेति**। वस्तुगत्याहमर्थोऽस्मन्मत आत्मैव तत्र त्वयान्तःकरणरूपाचिद्भागाङ्गीकार इत्यर्थः। **मम मन इति**। ममेति प्रतीयमानेऽहमर्थे मनसः प्रविष्टत्वात् मम मन इति प्रतीतिर्न स्यात् नहि दण्डिनो दण्ड इति प्रतीतिः सम्भवतीत्यर्थः। अमुमर्थमाह—**तदवच्छिन्नस्येति**। यथा घटविशिष्टेभूतले घटान्वयस्य निराङ्क्षत्वान्नोपपद्यते यथान्तःकरणविशिष्टेऽहमर्थे मनः पदार्थस्यान्वयो न सम्भवतीत्यर्थः। कुत इत्याह—**चिदचिदिति**। मनः स्फुरतीत्यत्र मनसोऽचित्त्वात्स्फुरणस्यचित्त्वाच्चिदचित्सम्बलनसद्भावादहमर्थेऽपि तत्सम्बलनस्य

श्रुति आदि प्रमाण होने से उसमें (अहमर्थ में) आत्मत्व स्पष्ट सिद्ध है। कहें कि स्वर्ग के साधन कृत्ति के आश्रय ऋत्विक् में इसका व्यभिचार होगा तो ऐसा नहीं कह सकते—कारण उद्देश्यता सम्बन्ध से जहाँ स्वर्ग साधन कृत्ति रहे हैं वहीं स्वर्गरूप फल होगा। यही नियम है—ऋत्विजों में तो दक्षिणादि उद्देश्य हैं न कि स्वर्ग इसलिये वहाँ व्यभिचार नहीं होगा। अहमर्थ, अनर्थ निवृत्ति का आश्रय है, क्योंकि वह अनर्थाश्रय है, सम्मत की तरह, अनर्थाश्रयत्वरूप हेतु स्वरूपा सिद्ध नहीं है, क्योंकि 'अहम् अज्ञः अहम् अनुभवामि'—ऐसा अबाधित अनुभव होता है देह के अनर्थाश्रयत्व का अभाव होने से व्यभिचार नहीं है। दूसरा अनुमान—अनात्मत्व अहमर्थ वृत्ति नहीं है, क्योंकि वह अनात्ममात्र वृत्ति है—घटादि की तरह—इत्यादि अनुमान तथा ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत'' 'एकमेवाद्वितीय' 'तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेय' 'नामरूपे व्याकरवाणि त्रिवृतं, करवाणि'। 'ब्रह्मैवेदमग्र आसीत्' 'सचात्मानं वेदाहं हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता' इत्यादि श्रुतियों से। अब उक्त श्रुतियों द्वारा जो फलित होता है उसे दिखाते हैं—किञ्च ग्रन्थ में पूर्व अनुमानों तथा उदाहृत श्री वचनों द्वारा परब्रह्म

अहमर्थोऽनर्थनिवृत्त्याश्रयः, अनर्थाश्रयत्वात्सम्मतवत्। न चासिद्धः। अहमज्ञोऽहमनुभवामीत्यबाधितानुभवात् देहस्यानर्था-श्रयत्वाभावान्न व्यभिचारः। अनात्मत्वं नाहमर्थवृत्ति, अनात्ममात्र-वृत्तित्वात्। घटादिवदित्याद्यनुमानेभ्यः "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" एकमेवाद्वितीयम्। "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" नामरूपे व्याकरवाणि। त्रिवृतं करवाणि। ब्रह्मैवेदमग्र आसीत्। स चात्मानं वेदाहं हन्ता अहमिमा-स्तिस्रोदेवता इत्यादिभ्यः। किञ्च प्राकृतप्रलये विश्वलयात्मकेऽवशिष्य-माणस्यैकाद्वितीयादिशब्दाभिधेयस्य परब्रह्मणः श्रीपुरुषोत्तमस्यापि

त्वयैवाङ्गीकारात्तयोर्ज्ञानयोश्चिदचित्सम्बलनविषयकत्वाविशेषाद्वैषम्यमनुभूयमानं न स्यादित्यर्थः। सर्वापि भ्रान्तिरधिष्ठानारोप्यरूपांशद्वयविषयेति प्रागेव निरस्तम्। उपसंहरति—**तस्मादिति**। अहमर्थस्यात्मत्वे तु किं तर्हि प्रमाणमित्यत आह—**आत्मत्वेति**। अहमर्थस्यात्मत्वे प्रत्यक्षं प्रमाणं तावदुपन्यस्यति—**जानामीति**। अहमर्थस्यात्मत्वेऽनुमानप्रमाणं निर्दिशति—**अहमर्थ इति**। तत्साधनेति। योयत्फल-साधनकृत्याश्रयः स तत्फलसम्बन्धवान्। यथा स्वर्गसाधनकृत्याश्रयो यजमानः स्वर्गफलान्वयीत्यर्थः। ननु पुत्रः पूतस्स्यादिति पुत्रगतपूतत्वरूपफलोद्देशेन पिता जातेष्टिकरणे प्रवर्त्तते तत्र पुत्रसम्बन्धिपूतत्वरूपफलसाधनीभूतकृत्याश्रये पितरि पूतत्वरूपफलसम्बन्धाभावेन व्यभिचारः स्यादितिचेन्न, उत्तरभङ्गे वक्ष्यमाणरीत्या पुत्रगतं पूतत्वं न जातेष्टिफलं किन्तु

परमात्मा में ज्ञाता से अभिन्न अहमर्थत्व का अवगम होता है—अर्थात् विश्वलयात्मक प्राकृत प्रलय में अवशिष्यमाण एक, तथा अद्वितीय आदि शब्द प्रतिपाद परब्रह्म पुरुषोत्तम में भी प्राण, मन, भूत आदि सृष्टि से पहले भी ज्ञात अभिन्न अहमर्थ स्वरूपत्व ही अवगत होता है—और उसका नित्यमुक्तत्व निर्विवाद सिद्ध है। इसी तरह—उस परमात्मा से साम्यापन्न 'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' इत्यादि श्रुतियों में श्रूयमाण तत्त्वों में अहमर्थ स्वरूपत्व ही है—इस प्रकार मुक्त दशा में भी अहमर्थत्व की सिद्धि होती है। "अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि यदात्मानमेवावेदाहं ब्रह्मास्मि" इस श्रुति में निश्चित रूप में अहमर्थ से अभिन्न ब्रह्म के साथ जीव का तादात्म्य उपदेश होने से उक्त प्रकारक ज्ञान में अभय प्राप्ति रूप मोक्ष फलकत्व का उपदेश भी है। सर्व दोष विवर्जित ब्रह्म के अहम् शब्द में उल्लेख का कथन है। दूसरी बात—"अहमित्येव यो वेद्यः सजीव इति कीर्तितः। स दुःखी स सुखी चैवसपात्रं बन्धमोक्षयोः"। यहाँ स्पष्टरूप में श्रीमुख से अहमर्थ को मोक्षान्वयी बताया गया है। इसी तरह 'अहं मनुरभवम् सूर्यश्च' इस श्रुति में मुक्त वामदेव का अनुभव भी विद्यमान है। इसी तरह

प्राणमनोभूतादिसृष्टेः प्रागपि ज्ञात्रभिन्नाहमर्थस्वरूपत्वमेवेत्येवमवगम्यते तस्य नित्यमुक्तत्वं तावन्निर्विवादम्, एवं तत्साम्यापन्नानां ''निरञ्जनः परमं साम्यमुपैती'' त्यादिश्रूयमाणानामप्यहमर्थस्वरूपत्वमेवेति मुक्तावपि तथात्वसिद्धेः। ''अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि यदात्मानमेवावेदाहं ब्रह्मास्मी'' तीत्यत्रावधारणेनाहमर्थाभिन्नब्रह्मतादात्म्योपदेशात्तथाभूतवेदनस्याभयप्राप्तिरूपमोक्षफलकत्वोपदेशाच्च। अनवद्यस्यापि ब्रह्मणोऽहमुल्लेखोक्तेश्च। ''अहमित्येव यो वेद्यः स जीव इति कीर्त्तितः। स दुःखी स सुखी चैव स पात्रं बन्धमोक्षयोरिति'' कण्ठरवेणाहमर्थस्य मोक्षान्वयित्वश्रवणाच्च। 'अहम्मनुरभवं सूर्य्यश्चेति' मुक्ततयाऽवगतस्य

पूतपुत्रकत्वं तच्च पितृगतमेवेति व्यभिचारशङ्काया एवाभावात्। इममर्थमजानानाः केचित् स्वसम्बन्धिफलसाधनकृत्याश्रयत्वं हेत्वर्थो विवक्षितोऽतो न पितरि व्यभिचार इत्याहुः। स्वर्गसाधनहोमादिकृत्याश्रये ऋत्विजि स्वर्गान्वयशून्ये व्यभिचारमाशङ्क्य निरस्यति—**न चेति**। यद्वा अपरिक्रीतसम्बन्धिकृत्याश्रयत्वं हेतुरतो न व्यभिचारः। **सम्मतवदिति**। यत्र यो यदाश्रयः स तन्निवृत्त्याश्रयः यथा घटाश्रयः कपालस्तन्निवृत्त्याश्रय इति द्रष्टव्यम्। अनर्थाश्रयत्वहेतोरसिद्धिमाशङ्क्य निराकरोति—**नचेति। अहमज्ञ इति।** अज्ञानवैषयिकसुखादेरेवानर्थत्वादिति भावः। अनर्थ-निवृत्त्याश्रयत्वाभाववति देहादावनर्थाश्रयत्वहेतोस्सत्वाद्व्यभिचारइति भ्रमं निरस्यति—**देहस्येति। अनात्ममात्रवृत्तित्वादिति।** प्रमेयत्वादौ व्यभिचारवारणाय मात्रपदं हेतौ निवेशितम्। सर्वेश्वरस्य निखिलकल्याणगुणाश्रयस्य सर्वज्ञस्य परब्रह्मणः वासुदेवस्य ज्ञात्रभिन्नाहमर्थस्वरूपत्वं प्रतिपादयन्त्यः शतशश्श्रुतयस्सन्ति ताभिः श्रुतिभिरात्मनोऽहमर्थत्वं निश्चिनुम इति बोधयन् श्रुतिकदम्बमुदाहरति—सदेवेति। उत्तरवाक्यघटकतच्छब्दनिर्णयाय सदेवेति वाक्यं प्राङ्निर्दिष्टम्। ''बहुस्यामिति'' वाक्ये ''अस्मद्युत्तम'' इत्युत्तमपुरुषबलादहमिति प्रत्ययसिद्धिः। ''तदैक्षत'' इत्यत्र तदा सदेवेति श्रुतिनिर्दिष्टं

'अहमात्मा गुडाकेश' इस वचन द्वारा सर्वात्मकत्व ''न त्वेवाहं जातु नासम्'' इत्यादि वचनों द्वारा कालत्रय में अबाध्यत्व 'ददामि बुद्धि योगं तम्' इस वचन से मोक्षोपयिक ज्ञानदातृत्व 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' द्वारा माया से सन्तरण के उपाय रूप शरणागति विषयत्व, 'अहं कृतस्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा' द्वारा जगत्कारणत्व 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' से सर्ववेदवेद्यत्व 'ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्' से मुक्तजन प्राप्यत्व 'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते' द्वारा अपुनरावृत्तिरूप मोक्षफलत्व, 'मामेकं शरणं व्रज' से सर्वफलत्व 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि

वामदेवस्यानुभवाच्च। 'अहमात्मा गुडाकेशेति सर्वात्मकत्वम्' 'नत्वेवाहं जातु नास' मित्यादिना कालत्रयाबाध्यत्वं 'ददामि बुद्धियोगं तमितिमोक्षोपयिकज्ञानदातृत्वं' 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतामिति मायातरणासाधारणोपायरूपशरणापत्तिविषयत्वम्'। ''अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथे'' ति जगत्कारणत्वम् 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य-इतिशास्त्र-विषयत्वं' 'ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरमिति मुक्तोपसृप्यत्वं' 'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यत' इत्यपुनरावृत्तिलक्षणफलत्वम्, 'मामेकं शरणं व्रजेति' सर्वशरण्यत्वम्, अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामीति सर्व पापनिवर्त्तकत्वञ्चाहमर्थस्यैव श्रीमुखेन निर्णीतं भगवता श्रीपुरुषोत्तमेनेत्यादि-श्रीभगवद्गीतानिर्णयवाक्येभ्यः। किञ्चाहमर्थादन्य आत्मा यदि स्यात्तर्ह्युपलभ्येत नतु तथोपलभ्यत इति योग्यानुपलब्धेरप्यत्र मानत्वात्।

सच्छब्दवाच्यं जगत्कारणं ब्रह्म परामृश्यते; ईक्षणं पर्य्यालोचनमध्यवसायः बहुभवन-महमर्थरूपात्मनिष्ठमित्यर्थः। **त्रिवृतमिति**। नामरूपव्याकर्तृत्वं त्रिवृत्करणत्वञ्चाहमर्थस्यैव ब्रह्मण उपपद्यते नत्वहङ्कारस्य। अनेनाहङ्कारसृष्टेः पूर्वमप्यहं प्रत्ययं ज्ञापयति श्रुतिरिति सूचितम्। अग्र इति। अहमर्थनाशवत्वेन त्वत्सम्मते प्रलयेपीत्यर्थः। तन्मते तु चिदचिद्रूपमनस्सम्बलनात्मकाहमर्थस्य मन आदिसृष्ट्युत्तरकालीनत्वादिति भावः। आत्मानमेव वेदाहमित्यत्रावधारणेनात्मनोऽहन्त्वोक्त्या चाहमर्थस्य नात्मभिन्नत्वशङ्कापीति सूचितम्। त्वन्मतेऽहमर्थसम्बन्धस्यैव मुख्यावद्यत्वेन निरवद्यस्य ब्रह्मणोऽहमित्येव वेदइतिश्रुत्युक्ताहमुल्लेखायोगादिति भावः। उक्तश्रुतिभ्यो यत्फलितं तमर्थं दर्शयति—**किंचेति**। अनुमानेभ्यः, उदाहृतश्रुतिवचनेभ्यश्च परब्रह्मणो ज्ञात्रभिन्नाहमर्थस्वरूपत्वमित्येव गम्यत इति योजना। निर्धूतनिरवद्यशेषाणां ब्रह्मविद्यावतां लब्धतत्साम्यानां मुक्तानां वामदेवप्रभृतीनामहमित्यात्मप्रतिपत्तिदर्शने नाप्यहं प्रत्ययस्य मुक्तावनुवृत्तिमाह—**एवमिति**। तथात्वसिद्धेः। अहमर्थस्वरूपत्वसिद्धेः। अभयं वै जनकेत्यादितादात्म्योपदेशादित्यारभ्य वामदेवस्यानुभवाच्चेत्यन्तानां मुक्तावपि तथात्वसिद्धिरित्यत्रान्वयः।

मा शुचः' द्वारा पापनिवर्तकत्व भी अहमर्थ को ही श्रीमुख से भगवान् पुरुषोत्तम ने निर्णय किया है। दूसरी बात यदि अहमर्थ से भिन्न आत्मा होता तो उसकी उपलब्धि होती—ऐसी उपलब्धि नहीं होती—इस योग्य की अनुपलब्धि भी इसमें प्रमाण है। इसके अतिरिक्त अहमर्थ के आत्मत्व में अन्यथानुपपत्ति भी प्रमाण है। इसके अलावा भगवान् श्रीशंकराचार्य के वाक्यों द्वारा भी आत्मा का अहमर्थत्व सिद्ध होता है। जैसा कि—उनका अपने ब्र०सू० शांकर भाष्य में श्रीमुख का वचन है—सभी व्यक्ति अपनी

अपिचास्मदर्थान्यात्मप्रतीत्यभावान्यथानुपपत्तेरप्यत्र प्रामाण्यम्। किञ्च परैरपि भाष्ये सर्वो ह्यात्माऽस्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति यदि हि नात्मास्तित्वप्रसिद्धिःस्यात्सर्वो लोको नाहमस्मीतिप्रतीयादिति न तावदयमेकान्तेनाविषयोऽस्मत्प्रत्ययविषयत्वादिति चान्वयव्यतिरेकेणात्मनोऽहमर्थतयैव प्रतिपादनात्, अन्यथात्वोक्तिबाधादित्यर्थस्तस्मादहमर्थाभावाभाव एव प्रमाणमित्यलम्पल्लवितेन॥ ८६॥

अहमात्मागुडाकेशेतिसर्वात्मकत्वमित्यारभ्य नवानां त्वान्तानामहर्थस्यैव श्रीमुखेन निर्णीतमित्यग्रतनेन सममन्वयः। अहमर्थस्य मायाकल्पितस्य मिथ्यात्वेनात्मभिन्नत्वे बाधकमाह—**मामेवेत्यादि**। स्वप्रपन्नमायानिरसनासमर्थस्य मायिकाहमर्थस्य सम्बन्धो न युक्त इति भावः। इदं पुनरिहावधेयम्। अस्मदुक्तरीत्याऽहमर्थस्यात्मत्वाङ्गीकारे तद्योहं सोसावित्यादौ विशिष्टयोरैक्यायोगात्पदद्वयस्य भागत्यागेन चैतन्यमात्रलक्षणा जघन्यवृत्तिराश्रीयते, इतः परं सा नाश्रयणीया अहमर्थस्यास्मदुक्तरीत्यात्मत्वेनैकस्य शब्दस्य मुख्यार्थत्वे सम्भवेन पदद्वयस्य लक्षणाश्रयणं न त्वया कार्य्यमिति। सर्वशास्त्रसाररूपायाः श्रीमद्भगवद्गीताया उदाहृतवाक्येभ्यः सर्वज्ञानानन्तविचित्रशक्त्याश्रयः श्रीभगवान् पुरुषोत्तमो रमानिवासः श्रीकृष्ण एवाहमर्थाभिन्न इति निश्चीयत इतिभावः। अनुपलब्धि-प्रमाणेनाप्युक्तार्थं दृढयति—**किञ्चेति**। अहमर्थस्यात्मत्वेऽन्यथानुपपत्तिं प्रमाणयति—**अपिचेत्यादिना**। भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्य्यप्रणीतबादरायणीयसूत्रभाष्यमप्युक्तार्थे-प्रमाणतयोपन्यस्यति—**किञ्चेति**। उपसंहरति—**तस्मादिति** ।।८६।।

इति पराभिमताहमर्थानात्मत्वोक्तिगिरिनिपातव्याख्या॥ २१॥

आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं—कोई भी ऐसा नहीं बोलता जो मैं नहीं हूँ—यह आत्मा सर्वथा प्रमाण का अविषय नहीं है, बल्कि यह अस्मत् प्रतीति (अहं इस प्रतीति का) विषय है इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक से आत्मा का अहमर्थ के रूप में ही प्रतिपादन है—इस प्रकार आत्मा ही अहमर्थ है यह सर्वथा सिद्ध होता है ।।८६।।

इस प्रकार परपक्ष द्वारा अभिमत अहमर्थ का अनात्मत्वरूपी गिरि का निपात पूरा हुआ

इति पराभिमताहमर्थानात्मोक्तिगिरिनिपातः ॥ २१ ॥

(२२) कर्तृत्वाध्यासगिरिनिपातः

ननु स्यादेतन्मोक्षोपायकृत्याश्रयत्वेनाहमर्थस्यात्मत्वं मोक्षान्वयित्वञ्च, कृत्यादिकं यद्यात्मनिष्ठं स्यात्तदेवं तु नास्ति किन्तु यथा जपाकुसुमस्थं लौहित्यं स्फटिके भाति, तद्वन्मनोवृत्तिकृत्यादिकमात्मन्यध्यस्तं भासते नतु तात्त्विकं,

अथात्मनः कर्तृत्वाध्यासस्य निराकरणम्

यद्यात्मनः मोक्षसाधनकृत्याश्रयत्वं स्यात्तदात्मनोऽहमर्थत्वं मोक्षान्वयित्वञ्चोपपद्येत तत्र कृत्याश्रयत्वविरहात्तन्न सम्भवति। यथा जपाकुसुमस्थं लौहित्यं स्फटिके भासते; तद्वन्मनोवृत्तिकर्तृत्वादिकमात्मन्यारोप्यते, अतएवात्मनि ते धर्माः भासन्ते न ते धर्माः-पारमार्थिकास्तथासत्यात्मनोविकारित्वं प्रसज्येतेति शङ्कते—**नन्विति**। मोक्षसाधन-कृत्याश्रयत्वमोक्षान्वयित्वयोर्व्याप्यव्यापकभावस्तत्र स्वरूपासिद्धत्वं दर्शयति—**मोक्षोपायेति**। तदैव=कृत्यादिकमेव। तेनाहमर्थो मोक्षान्वयी तत्साधनकृत्याश्रयत्वा-दित्यनुमाने स्वरूपासिद्धत्वं हेतोरुद्भावितमिति भावः। किन्तर्हीत्यत आह—**किन्त्विति**। **तात्त्विकम्**=पारमार्थिकम्। तत्र बाधकतर्कमुपन्यस्यति—तथात्व इति। वास्तविककर्तृत्व इति तदर्थः। यद्यात्मनो वास्तविकं कर्तृत्वमभ्युपेयते तदा तस्य विकारित्वमापद्येत, तथात्वे निर्विकारत्वबोधकश्रुतीनां व्याकोपः प्रसज्येतेत्यर्थः। अन्तःकरणे सत्यात्मनः कर्तृत्वमित्यन्वयः स्पष्टएव व्यतिरेकञ्चाह—**सुषुप्ताविति**। आत्मनः कर्तृत्वे तस्य सुषुप्तावपि सत्वात्तत्रापि कर्तृत्वापातइत्यर्थः। अकर्तात्मकबोधकश्रुतेरिति। ''ससमानः सन्नुभौ

अब आत्मा में कर्तृत्वाध्यास का निराकरण प्रांरम्भ होता है

अब शंका करते है कि यदि मोक्ष साधन कृति का आश्रयत्व आत्मा में सिद्ध हो तभी आत्मा में अहमर्थत्व एवं मोक्षान्वयित्व की उपपत्ति हो। आत्मा में कृत्याश्रयत्व का अभाव है, अतः आत्मा में अहमर्थत्व की सिद्धि नहीं होगी। बल्कि जैसे जपाकुसुमगत लौहित्य स्फटिक में भासित होता है उसी प्रकार मनोवृत्ति कृत्यादि आत्मा में आरोपित है। इसलिये उक्त धर्म आत्मा में अध्यस्त है, पारमार्थिक नहीं, कारण यदि आत्मा में कर्तृत्वादि धर्म मानें तो आत्मा विकारी हो जायगा, अन्तःकरण होने पर आत्मा में कर्तृत्व होता है, यह अन्वय है, व्यतिरेक सुषुप्ति में स्पष्ट है, उस समय मन में अभाव के कृति आदि का दर्शन नहीं है, आत्मा में कर्तृत्व मानें तो आत्मा में अकर्तृत्वबोधक श्रुति का व्याकोप होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि ऐसा अंसभव है, जैसे प्रत्येक स्फटिक में तथा जपाकुसुम में लौहित्य भेद रूप में भासित होता है, प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा वैसे आत्मा एवं मन में आत्मा में कर्तृत्व का अहसास है—

तथात्वे ह्यात्मनो विकारित्वापत्तेः सुषुप्तौ मनसोऽभावे कृत्यादीनामदर्शनात्। अकर्त्तात्मबोधकश्रुतिव्याकोपाच्चेति चेन्न, असम्भवादिति ब्रूमस्तथाहि। यथा प्रत्येकं स्फटिके जपाकुसुमे च लौहित्यं भेदेन भासते प्रत्यक्षप्रमाणेन, तथाऽऽत्मनि मनसि चात्मकृत्याद्याश्रयत्वे-नाध्यस्तत्वात्कर्त्तेति मनः स्वतः कर्त्रीति कदापि साक्षात्काराभावाद् दृष्टान्तवैषम्यमन्यथा मनः कर्त्रीति आत्माकर्त्तेति कदाचिद्भेदेनापि भानं स्यादित्यर्थः। विकल्पासहत्वाच्च। तथाच सोपाधिकोऽयमध्यासः निरुपाधिकोवा न द्वितीयः। नेदं रजतमितिवत् सकृदेव नायं कर्त्तेति, अकर्तृत्वयथात्म्यज्ञानेन तन्निवृत्त्यापत्तेः।

लोकावनुसञ्चरति ध्यायतीव लोलायतीवेति'' श्रुतावात्मनः कर्तृत्वमवास्तवं प्रतीयते। ''अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यत'' इति स्मृतावपि तथात्वप्रतिपत्तिस्त-योर्व्याकोपस्स्यादित्यर्थः। भ्रमस्थले रक्तः स्फटिक इति प्रतीतिर्जायते, कदाचित्कुसुमं रक्तमिति साक्षात्काररूपा प्रमा च भवति। यथा वा इदंरजतमिति भ्रमो भवति, आपणे कदाचिद्रजतप्रमा भवति एवमिहाप्यन्तःकरणनिष्ठकर्तृत्वस्यात्मान्यध्यासाङ्गीकारे रक्तः स्फटिक इतिवत्कदाचिच्चैतन्यं कर्त्रीति भ्रमः स्यात्। रक्तं कुसुममितिवन्मनः कर्त्रीति प्रत्यक्षप्रमा स्यान्नचैवमस्ति, अतोनायं भ्रम इत्याशयेन परिहरति—**नेति**। असम्भवमेव व्युत्पादयति—**तथाहीति**। प्रत्येकं स्फटिके पुष्पे च रक्तत्वबुद्धिवच्चिति बुद्धौ च कर्तृत्वसाक्षात्कारः कदाचन यदि भवेत्तर्हैवायं भ्रमः स्यान्नचैवमस्तीति भावः। अन्यथेति। दृष्टान्तवैषम्य इत्यर्थः। इत्यर्थ इति। असम्भवादितिहेतोरर्थः। उक्तार्थं दूषयितुं

अध्यस्तत्वेन आत्मा में कर्तृत्व की प्रतीति है, मन स्वतः कर्ता है, ऐसा कदापि साक्षात्कार नहीं होता, इसलिये उक्त दृष्टान्त वैषम्य है, अन्यथा मन कर्ता है, आत्मा अकर्ता है, इस प्रकार कदाचित् भेद रूप से भी भान होता यह भाव है। उक्त अर्थ को दूषित करने के लिये कहते है—**'विकल्पासहत्वाच्च'** इस का **'चेन्न'** इस पूर्व ग्रन्थ से अन्वय है, उसकी व्याख्या करते है—**'तथा च'** इत्यादि ग्रन्थ से —यहाँ विकल्प करते हैं, यह अध्यास सोपाधिक या निरुपाधिक दूसरा पक्ष नहीं कह सकते, कारण ऐसी स्थिति में **'नेदं रजतम्'** की तरह एक बार ही नायंकर्ता (यह आत्मा कर्ता नहीं है) ऐसा कहने से अकर्तृत्व ने याथात्म्य ज्ञान से कर्तृत्व की निृवत्ति की आपत्ति हो जायगी। कारण कुसुमरूपी उपाधि की तरह प्रतिबन्धक का अभाव होने से। पहला पक्ष भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रक्तं पुष्पं इस परमात्मक ज्ञान की तरह कदाचित् मन कर्ता है, इस परमात्म को ज्ञान से लोहितः स्फटिकः इस भ्रम की तरह चैतन्य कर्ता है, ऐसा भ्रम अवश्यंभावी होना चाहिये।

कुसुमस्येवोपाधेः प्रतिबन्धकस्याभावात्। नाप्याद्यः। रक्तं पुष्पमिति प्रमावत्कदाचिन्मनः कर्त्रीति प्रमया लोहितः स्फटिक इति भ्रमवच्चैतन्यं कर्त्रीति भ्रमेण चावश्यम्भाव्यमानत्वात्। ननु कुसुमस्य स्फटिकात्मनानध्यस्त-त्वान्मनसस्तु चिदात्मनाऽध्यस्तत्वादिति वैषम्येन तज्ज्ञानाभावोविरुद्ध इति चेन्न, अधिष्ठात्मनाऽनध्यस्तं जपाकुसुमादिस्थानीयमुपाधिं विना

द्वितीयहेतुमुपन्यस्यति—**विकल्पासहत्वाच्चेति**। अस्य चेन्नेति पूर्वेणान्वयः। तदर्थं विवृणोति—**तथा चेत्यादिना**। शुक्तिका रजतवदाभासत इति निरुपाधिकाध्यासो नात्र रजतमित्यधिष्ठानसाक्षात्कारानन्तरं यथा निवर्तते न त्वेवं प्रकृत इत्याशयेन द्वितीयविकल्पं निरस्यति—**न द्वितीय इति**। आत्मनि सोपाधिककर्तृत्वाध्यासाङ्गीकारे भ्रमस्थले रक्तः स्फटिक इति प्रतीतिर्भवति कदाचित् कुसुमं रक्तमिति साक्षात्काररूपा प्रमा च भवति। एवं चैतन्यं कर्त्रीति भ्रमः स्यात्, मनः कर्त्रीति प्रत्यक्षप्रमा स्यान्नचैवमस्ति, अतो नायं भ्रमइत्याशयेनाद्यपक्षं दूषयति—**नाद्य इति**। ननु रक्तः स्फटिकः रक्तं कुसुममितिवत् प्रतीतिद्वयापादनमयुक्तं वैषम्यात् तत्र ह्यध्यस्यमानरक्तत्वातिरिक्तरक्तत्वाश्रयस्य कुसुमस्य भिन्नस्य सत्वेन धर्म्यैक्यारोपाभावेन धर्ममात्रारोपाद्रक्तद्वयप्रतीतिः, इह तु कर्तृत्वादि-विशिष्टान्तःकरणस्यैव चिदात्मनाऽध्यासाङ्गीकारेण धर्मविशिष्टधर्म्यारोपस्यैवाङ्गी-कारादध्यस्यमानकर्तृत्वातिरिक्तकर्तृत्वाश्रयस्यान्तःकरणान्तरस्याभावेन न कर्तृत्वद्वय-प्रतीतिरिति शङ्कते—**नन्विति**। मनसः=कर्तृत्वादिविशिष्टस्य मनसः। सोपाधिके हि भ्रमे

कहें कि कुसुम स्फटिक रूप में अनध्यस्त होने तथा मन का तो चिदात्मा रूप से अध्यस्त होने से वैषम्य होने के कारण उसके ज्ञान का अभाव अविरुद्ध है, तो ऐसा नहीं कह सकते अधिष्ठात्मना अनध्यस्त जपाकुसुमादि स्थानीय उपाधि के बिना भीषणत्वयुक्त सर्प का रज्ज्वात्मना की तरह कर्तृत्वादि युक्त बुद्धि का चिदात्मा के साथ अध्यास मानने पर रज्जू में भीषणत्वान्तरकी भाँति आत्मा में कर्तृत्वान्तरका अनध्यास होने से उस अध्यास में सोपाधिकत्व का अयोग है। कहें कि आत्मा में भिन्न कर्तृत्वान्तर ही अध्यस्त है तो ऐसा नहीं कह सकते कारण अध्यस्यमान धर्म के आरोप में औपाधिकत्व असम्भव है। यदि कहें कि रज्जू के सर्प आदि में अध्यस्यमान भीषणत्वादि विशिष्ट सर्प की अपेक्षया अधिक सत्ता युक्त सर्पान्तर का संभव होने से इसमें निरुपाधिकत्व है परन्तु यहाँ तो अध्यस्यमान अन्तःकरण की अपेक्षया कर्तृत्वादि विशिष्ट अन्य अधिक सत्ता वस्तु के अत्यन्ताभाव होने से अन्तःकरण मात्र में उपाधित्व है तो ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि स्फटिक में अध्यस्यमान प्रातिभासिक लौहित्य

भीषणत्वयुक्तसर्पस्य रज्ज्वात्मनेव कर्तृत्वादियुक्तबुद्धेश्चिदात्मनाध्यासे रज्जौ भीषणत्वान्तरस्येवात्मनि कर्तृत्वान्तरस्यानध्यासेन तदध्यासस्य सोपाधिकत्वायोगात्। न चात्मनि कर्तृत्वान्तरमेवाध्यस्तमिति वाच्यम्। अध्यस्यमानधर्माश्रयस्यारोपे औपाधिकत्वासम्भवात्। ननु रज्जुसर्पादावध्यस्यमानभीषणत्वादिविशिष्टसर्पापेक्षयाऽधिकसत्ताकसर्पान्तरस्य

जपाकुसुमादिरूपोपाधिर्न स्फटिकात्मनाध्यस्यते किन्तु तत्र तद्गतधर्मसदृशधर्मान्तरं निरुपाधिके तु भ्रमे भीषणत्वादियुक्तं सर्पादिकमेव रज्ज्वात्मनाऽऽरोप्यते नतु सर्पगत-भीषणत्वातिरिक्तभीषणत्वान्तरम् अत्र तु कर्तृत्वमदन्तःकरणमेव चिदात्मतयाऽध्यस्यते नतु तद्गतकर्तृत्वसदृशकर्तृत्वान्तरमतः सर्पाध्याससदृशोऽयं निरुपाधिक एव भ्रमःस्यान्न सोपाधिकः त्वया त्वयं भ्रमः सोपाधिकतयाङ्गीकृत इत्यपसिद्धान्तःस्यादित्याह—**अधिष्ठानेति**। आत्मनि कर्तृत्वान्तरस्यैवाध्यासात्सोपाधिकोऽयमध्यास इत्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। यद्यात्मनि कर्तृत्वान्तरमारोप्यते तर्हि तत्र कर्तृत्वस्य प्रतीतिःस्यात्त-द्वारणाय कर्तृत्वादिविशिष्टस्य मनस आत्मन्यारोपो वाच्यस्तथासति तस्य सोपाधिकत्वं नोपपद्यत इत्याशयेनाह—**अध्यस्यमान इति**। यत्राध्यस्यमानधर्मविशिष्टधर्म्यपेक्षया, अधिकसत्ताकस्य धर्म्यन्तरस्य सम्भावना तत्राध्यासस्य निरुपाधिकत्वं यत्र त्वध्यस्यमान-धर्म्यपेक्षया अध्यस्यमानधर्मविशिष्टमन्यदधिकसत्ताकं नास्ति तत्र सोपाधिकत्वमित्याशयेन शङ्कते=**नन्विति**। अध्यस्यमानधर्मापेक्षया, अधिकसत्ताकधर्मकत्वं यत्र तत्र निरुपाधि-

की अपेक्षया अधिक सत्ताक अन्य लौहित्य के सद्भाव होने से उसमें भी निरुपाधिकत्व की आपत्ति होगी। यदि कहे कि जहाँ धर्मी तादात्म्य सम्बन्ध से आरोपित होता है और उससे अधिक सत्ताक अतिरिक्त भी है, वह निरुपाधिक अध्यास है=रज्जु सर्पादि की तरह। परन्तु लोहितः स्फटिकः यहाँ तो धर्मी का तादात्म्य सम्बन्ध से आरोप नहीं है, इस तरह सोपाधिक लोहित की उपपत्ति होगी तो ऐसा भी नहीं कह सकते कारण—मेरा मन मेरी बुद्धि तथा मेरा अन्तःकरण इत्याकारक भेद बुद्धि से प्रतिबन्ध होने के कारण अभेद का आरोप असंभव होने से धर्ममात्र ही वक्तव्य होने से लौहित्य आदि की तरह कर्तृत्व आदि का उभय स्थलों में प्रतीति दुर्वार होगी। सोपाधिक स्थल में धर्म के आरोप से ही उपपत्ति संभव होने से धर्मी के आरोप में अप्रामाणिकत्व भी है। समीप में स्थित में जो अपने धर्म का आधान करे। (अपने धर्म का अन्य में जो आरोप करे) वह उपाधि कहलाता है—ऐसा उपाधि का लक्षण है। अभेद ग्रह दशा में भी यह भीषण सर्प है, मैं गोरा हूँ, शरीर गोरा है, इस तरह मन कर्ता है चैतन्य कर्ता है। इत्याकारक प्रतीति की आपत्ति होगी। दूसरी बात—कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् इस अधिकरण

सम्भवेनास्य निरुपाधिकत्वम्, अत्र त्वध्यस्यमानान्तःकरणापेक्षया कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टेतरस्याधिकसत्ताकस्यात्यन्ताभावात्, अन्तःकरण-मात्रस्योपाधित्वमितिचेन्न, स्फटिकेऽध्यस्यमानप्रातिभासिकलौहित्या-पेक्षयाऽधिकसत्ताकलौहित्यान्तरस्य सत्त्वेन तस्यापि निरुपाधिकत्वापत्तेः। नच यत्र धर्मी तादात्म्येनारोपितस्ततोऽधिकसत्ताकोऽतिरिक्तश्चास्ति स

काध्यासत्वमितिनियमाक्रान्तत्वात् स्फटिके लौहित्याध्यासस्यापि निरुपाधिकत्वमापद्येते-त्याशयेनोक्तशङ्कां परिहरति—**नेति**। यत्र धर्मिणस्तादात्म्येनारोपोधर्म्यपेक्षया अधिक-सत्ताकधर्मस्य सम्भावना तत्र निरुपाधिकाध्यासत्वं यत्र तु न तथात्वं तत्र सोपाधिकाध्यास-इत्याशङ्क्य परिहरति। **न चेति**। मम मन इति प्रतीत्या तादात्म्यारोपविरोधिभेदग्रहस्य सत्वात्तादात्म्येन मनोध्यासो न भवितुमर्हति किन्तु तद्गतधर्माध्यास इत्याह—**ममेति**। यत्र धर्मिणस्तादात्म्येनारोपस्तत्र निरुपाधिकाध्यासइतिप्राङ्निर्दिष्टं तन्न सम्भवदुक्तिकमिति भावः। धर्मारोपपक्षे उपाधेर्लक्षणस्य स्वारस्यं दर्शयति—**समीपइति**। इदंसर्पयोः शरीरात्मनोश्चाभेदग्रहणदशायामप्ययं भीषणःसर्पो भीषणः अहं गौरः शरीरं गौरमितिवत्, मनश्चितोरभेदग्रहदशायामपि मनः कर्तृ चैतन्यं कर्त्रितिधीः स्यादित्याह—**अभेदग्रहदशा यामिति**। अयमितीदमंशापेक्षया अङ्गुल्या निर्दिश्यायं भीषण इति वदति सर्पोभीषण इति च वदति इत्यनुभवसिद्धं ज्ञातव्यम्। ''कर्ता शास्त्रार्थवत्वादि'' त्यधिकरणे बुद्धेरेव कर्तृत्वं भोकृत्वन्तु चैतन्यस्येति पूर्वपक्षे तयोः सामानाधिकरण्यनियमेन चैतन्यस्य भोकृत्ववत्कर्तृत्वमप्यङ्गीकृतं तद्विरुद्ध्येत इत्याह—**अपिचेति। स्वोक्तिविरोधाच्चेति।** अन्तःकरणगतमेव कर्तृत्वं नतु जीवगतमितिस्वोक्तेर्विरोधइत्यर्थः। ननु कर्तृत्वाश्रयबुद्ध्य विवेकमात्रेण जीवस्य कर्तृत्वं मया सिद्धान्तितमिति चेत्तत्राह—**बुद्ध्यात्मनोरिति**। तथाच त्वन्मते तदधिकरणसिद्धान्तानुत्थानप्रसङ्ग इति भावः। स्वध्वंसाभावइति। स्वं बन्धस्तस्य ध्वंसाभावस्तस्य फलेन सममन्वयः। स्वफलभोकृभ्याम्=स्वं बन्धनिवृत्त्योपयिका-

में आपने भी सांख्य दर्शन की रीति से बुद्धि में कर्तृत्व प्राप्त होने पर जीव में ही कर्तृत्व सिद्धान्ततया स्वीकार किया है, इस प्रकार आपका स्वकथन से विरोध भी हो जाएगा।

बुद्धि तथा आत्मा में अविवेक जन्य जीवनिष्ठ कर्तृत्व तो सांख्य मत में भी होने से आपमें क्या वैशिष्ट्य रहेगा दूसरी बात बन्ध तथा बन्धन निवृत्ति के उपायभूत कृति में बन्धध्वंसाभाव तथा फलभोक्तृत्व के साथ सामानाधिकरण्य का नियम होने से बुद्धि में कर्तृत्व का योग नहीं हो सकता। कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि अनर्थ रूप बन्ध

निरुपाधिकोऽध्यासः, रज्जुसर्पादिवत् लोहितः स्फटिक इत्यत्र तु न धर्मिणस्तादात्म्येनारोप इति सोपाधिकलोहितोपपत्तेरिति वाच्यम्। मम मनो मम बुद्धिर्ममान्तःकरणमिति भेदधिया प्रतिबन्धादभेदारोपासम्भवेन धर्ममात्रस्यैव वक्तव्यतया लोहित्यादेरिव कर्तृत्वादेरुभयत्र प्रतीतेर्दुर्वारत्वात्, सोपाधिकस्थले धर्मारोपेणैवोपपत्त्या धर्म्यारोपस्या-प्रामाणिकत्वाच्च। समीपे स्थित उपदधाति स्वीयं धर्ममन्यत्रेत्युपाधि लक्षणत्वात्, अभेदग्रहदशायामप्ययं भीषणः सर्पो भीषणोऽहं गौरः शरीरं गौरमितिवन्मनः कर्तृ चैतन्यं कर्त्रीति प्रतीत्यापत्तेः। अपि च "कर्त्ता शास्त्रार्थवत्वात्" इत्यधिकरणे भवद्भिरपि सांख्यरीत्या बुद्धेः कर्तृत्वे प्राप्ते जीवस्यैवेति सिद्धान्तितत्वेन स्वोक्तिविरोधाच्च। बुद्ध्यात्मनोर-विवेकनिबन्धस्य जीवनिष्ठकर्तृत्वस्य सांख्यमतेऽपि सत्वेनाविशेषात्। किञ्च बन्धतन्निवृत्त्यौपयिककृत्योः स्वध्वंसाभावस्वफलभोक्तृत्वाभ्यां सामानाधिकरण्यनियमेन बुद्धेःकर्तृत्वायोगात्, कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यनर्थ-रूपोबन्धो बुद्धिगतश्चेत्ततो मोक्षोऽपि तद्गतः स्यात् बन्धमोक्षयोः-सामानाधिकरण्यनियमात् अज्ञानमपिदुःखादिभोगद्वारेणैवानर्थ इति तव सिद्धान्तादित्यर्थः॥ ८७॥

कृतिस्तस्याः फलं मोक्षः भोक्ता च ताभ्याम् स्यादिति। तथाच नात्मनो मोक्षः स्यात्। तथाच "सपात्रं बन्धमोक्षयोरितिवचनविरोध इति भावः"। ननु कर्तृत्वादिरूपबन्धस्य बुद्धिगतत्वेप्यज्ञानरूपबन्धस्यात्मगतत्वान्मोक्षसामानाधिकरण्यमस्तीति चेत्तत्राह— **अज्ञानमपीति**। अज्ञानं न स्वरूपेण बन्धः किन्तु दुखादिभोक्तृत्वादिरूपानर्थापादकतया तथाच दुःखादिभोक्तृत्वाद्यनर्थरूपमुख्यबन्धस्य बुद्धिगतत्वाद्बुद्धेरेव मोक्षापात इति भावः।।८७।।

यदि बुद्धिगत है फिर तो मोक्ष भी तद्गत ही होगा। कारण बन्ध और मोक्ष में सामानाधिकरण्य रूप का नियम है अज्ञान भी दुःख आदि के भोग द्वारा ही अनर्थ है। यह आपका सिद्धान्त।।८७।।

न च बुद्धिगतं सद्रूपं भोक्तृत्वादिकं तद्धर्म्मत्वान्नानर्थरूपं किन्तु तदुपाधिकं मिथ्याभोक्तृत्वादिकमिति वाच्यम्। एतत्कल्पनायाः कर्तृत्वाध्याससिद्ध्यधीनत्वेनान्योन्याश्रयात्, मोक्षस्यापि सत्यस्यैव पुरुषार्थत्ववत् भोक्तृत्वादिरूपबन्धस्यापि सत्यस्यैवानर्थत्वाच्च। तदुक्तं वार्तिके बौद्धं प्रति ''नहि स्वप्नसुखाद्यर्थं धर्मे कश्चित्प्रवर्तते यादृच्छिकत्वात् स्वप्नस्य तूष्णीमासीत पण्डितै'' रिति। स्थूलः करोमि स्थूलोऽहं भुञ्ज इत्यादिप्रतीत्या देहस्याप्यनर्थान्वयापाताच्च। नापि बुद्ध्युपाधिकमात्मस्थं भोक्तृत्वादिकमनर्थो नतु देहस्थमिति वाच्यम्। अनर्थाश्रय-

मिथ्येति। तथाच बुद्धिगतभोक्तृत्वादेर्जीव आरोपितत्वेन मिथ्याभूतभोक्तृत्वरूपानर्थस्य जीव एवसद्भावाद्बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरण्यं युक्तमिति भावः। **एतदिति**। कल्पितोऽनर्थोऽस्तीति कल्पनाया इत्यर्थः। **अन्योन्येति**। कर्तृत्वाध्याससिद्धौ मिथ्याभूतकर्तृत्वाद्बन्धत्वसिद्धिस्तत्सिद्धौ च मिथ्याभूतबन्धमोक्षयोर्जीवे सामानाधिकरण्यसम्भवेन तद्विरोधाभावाद्बुद्धेरेव सत्यभूतकर्तृत्वाद्युपपत्तेरात्मनि तदध्याससिद्धिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः। **सत्यस्यैवेति**। अन्यथा स्वाप्नहत्यादेरप्यनर्थत्वापात इति भावः। सत्यभूतानर्थस्य च बुद्धिनिष्ठत्वेन मोक्षस्य चात्मनिष्ठत्वेन बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरण्यायोग एवेति ध्येयम्। ननु कर्तृत्वादिबन्धवन्मोक्षस्यापि कल्पितस्यैव पुरुषार्थत्वादात्मनि बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरण्योपपत्तिरिति शंकां भट्टवार्तिकसम्मत्या परिहरति—**तदुक्तमिति**।

यदि कहें कि बुद्धिगत भोक्तृत्व आदि बुद्धि धर्म होने से अनर्थरूप नहीं है, किन्तु बुद्ध्युपाधिक भोक्तृत्व आदि तो ऐसा भी नहीं कह सकते, कारण अनर्थ कल्पित है। इस कल्पना के कर्तृत्वाध्यास की सिद्धि के अधीन होने से अन्योन्याश्रय हो जायगा। तथा जैसे सत्यस्वरूप मोक्ष ही पुरुषार्थ होता है, उसी प्रकार भोक्तृत्व आदिरूप बन्ध भी सत्य ही अनर्थ है। जैसा कि भट्टवार्तिक में बौद्ध के प्रति कहा है—''**नहि स्वप्न सुखाद्यर्थं धर्मे कश्चित् प्रवर्तते। यादृच्छिकत्वात् स्वप्नस्य तूष्णीमासीत पण्डितैः**'' अर्थात् स्वप्न सुख की तरह मोक्ष सुख को भी कल्पित मानने वाले बौद्ध के प्रति कहते है, जैसे स्वप्न सुख के लिये कोई पाप नहीं करता निद्रावस्था में स्वयमेव स्वप्न सुख प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार मोक्ष सुख भी कल्पित होने से वह सुख भी स्व प्राप्त हो जायेगा, इसलिये उसके लिये साधनानुष्ठान आदि की क्या आवश्यकता है, तदर्थ सब प्रयास छोड़कर चुपचाप बैठे रहना चाहिये। भोक्तृत्व कर्तृत्व आदि अनर्थ का जीव में सद्भाव स्वीकार कर बन्ध तथा मोक्ष का सामानाधिकरण स्वीकार करने पर स्थूलः करोमि, इत्यादि प्रतीति से देह में भी अनर्थान्वय की आपत्ति होगी, न तो

स्यात्मनोऽनर्थकोटित्वायोगात्, भ्रमसमयेऽहं भोक्तेतिप्रमाकाले बुद्धिर्भोक्त्रीतिप्रतीत्या शुद्धात्मनि कदापि तदप्रतीतेश्च। अपि च मनसः श्रवणादिसाधनकर्तृत्वेन तत्फलमोक्षस्यापि तत्रैवापत्तेः ''शास्त्रफलं प्रयोक्तरीति'' न्यायात्, यत्र साधनकृतिस्तस्यैव फलभाक्त्वात्, अन्यथा-कृतहानाकृताभ्यागमप्रसङ्गात्। बन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यापत्तेश्च। न च

स्वप्नसुखवन्मोक्षसुखस्यापि कल्पितत्वमङ्गीकुर्वाणं बौद्धंप्रत्युच्यते नहि स्वप्नसुखार्थं कश्चिद्यत्नं करोति यदृच्छया निद्रायां स्वप्नस्य स्वत एव लभ्यमानत्वेन तत्सुखस्यापि तथात्वात्, अतोमौक्तसुखस्यापि कल्पितत्वेन तस्यापि स्वत एव यदृच्छया लभ्यमानत्व-सम्भवात्साधनानुष्ठानं विहाय तूष्णीमासीतेत्यर्थः। मिथ्याभूतभोक्तृत्वकर्तृत्वादेरनर्थस्य जीवे सद्भावमङ्गीकृत्य बन्धमोक्षयोस्सामानाधिकरण्याङ्गीकारे स्थूलःकरोमीत्यादि-प्रतीतेर्देहस्यापि मिथ्याभूतकर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूपानर्थान्वयप्राप्तौ मोक्षस्यापात इत्याह—**स्थूल इति**। अनर्थ आत्मन इतिशेषः। तथा च तद्गत एव बन्धोमोक्षश्च न देहगत इति भावः। **अनर्थकोटित्वेति**। बुद्ध्युपाधिकात्मस्थभोक्तृत्वस्यात्मनोऽनर्थत्व आत्मनोप्यनर्थ-कोटिनिवेशापत्तेरात्माश्रयः, तथाऽनर्थहानेः पुरुषार्थत्वादात्मनोऽपि तत्कोटिनिविष्टत्वेन तद्धानिरपि पुरुषार्थः स्यादिति भावः। किञ्च बुद्धिगतभोक्तृत्वादेः शुद्धात्मन्यध्यासाङ्गीकार आत्मनि भोक्तृत्वादिप्रतीत्या भवितव्यम्, अस्तीति चेत् भ्रमकाले प्रमाकाले वा भ्रमकाले चेदहं भोक्तेत्यहमर्थनिष्ठत्वेनैव भोक्तृत्वं प्रतीयते नतु शुद्धात्मनि प्रमाकाले चेत् बुद्धिर्भोक्त्रीति प्रतीयेत ततः शुद्धात्मनि तद्भ्रमो न युक्त इत्याह—**भ्रमसमयइति**। कृतेस्तत्फलभोक्तृतया सामानाधिकरण्याच्चेत्युक्तं हेतुं विवृणोति—**अपि चेति**। कुत इत्यतआह—**शास्त्रफलमिति**। पूर्वतन्त्रे तृतीयाध्यायस्थं सूत्रम्। ''शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तस्मात्स्वयं प्रयोगः स्यादि'' ति अस्यार्थः, विधिनिषेधात्मकशास्त्रफलं स्वर्गनरकादि प्रयोक्तरि तत्साधनकृतिमति यजमान एव तस्मात्स्वयमेव यजमानोङ्गप्रधानेषु कर्त्ता स्यादिति। **साधनकृतिः**=साधनविषयकप्रयत्नः।

बुद्ध्युपाधिक आत्मस्थ भोक्तृत्व आदि अनर्थ है, ना हि देहस्थ ऐसा कह सकते, अनर्थ के आश्रय आत्मा में अनर्थ कोटित्व का योग नहीं है। भ्रम के समय अहं भोक्ता (मैं भोगता हूँ) तथा प्रमाकाल में बुद्धि भोगती है, इत्याकारक प्रतीति से शुद्ध आत्मा में कदापि उसकी प्रतीति नहीं होती, बल्कि मन में श्रवण आदि साधन कर्तृत्व मानने पर उसमें फल मोक्ष की भी उसी में आपत्ति होगी, कारण 'शास्त्रफल प्रयोक्तरि' शास्त्र का फल (कर्म का फल) प्रयोक्त में ही होता है। ऐसा न्याय है, जिसमें साधनरूप कृति

शुद्धोपहितयोः स्वाभाविकभेदाभावेन बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरण्यं सूपपन्नमिति वाच्यम्। उपहितगतानर्थस्य शुद्धगतत्व-

अन्यथेति। साधनकृतेःफलभाक्त्वेन सामानाधिकरण्याभावमङ्गीकृत्य बुद्धेरेव कर्तृत्वादिकम्। आत्मन एव मोक्षइत्यङ्गीकारे बुद्धिकृतश्रवणादेर्हानिः वैयर्थ्यं फलाभावात्। श्रवणादिकर्तृत्वाभावेऽपि आत्मनो मोक्षावगमइत्यदृष्टकल्पना स्यादित्यर्थः। बुद्धेः कर्तृत्वे बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरण्यं नोपपद्यत इत्याह—**बन्धमोक्षयोरिति**। विशिष्टशुद्धब्रह्मणोरभेदमभ्युपेत्य बन्धमोक्षयोस्सामानाधिकरण्यमुपपादयति। **शुद्धोपहितयोरिति**। उपहितशुद्ध-ब्रह्मणोरभेदाभ्युपगमे गुणसाङ्कर्यापत्तिरित्याह—**उपहितेति**। ननु शास्त्रफलं प्रयोक्तरीति न नियमः। "पुत्रे जाते इष्टिं कुर्यादित्येवं" पुत्रपूतत्वोद्देशेन जातेष्टिः पितुर्विधीयते तथा पितुःस्वर्गप्राप्त्यर्थं पुत्रं प्रतिश्राद्धं विधीयते, एवं जातेष्टिकृतेः पूतत्वरूपफलेन सामानाधिकरण्यं नास्ति पूतत्वरूपफलस्य पुत्रगतत्वात्तथा स्वर्गफलस्यापि पितृगतस्य पुत्रगतश्राद्धमिति न सामानाधिकरण्यमितिव्यभिचारमाशङ्क्याह—**जातेष्टाविति**। उद्देश्यतासम्बन्धएवकृतिफलयोः सामानाधिकरण्यापादक इत्याशयेन समाधत्ते—**कृतिफलयोरिति**। पुत्रपुत्रकत्वरूपफलं जातेष्टिकर्तृपितृनिष्ठमेवेति उद्देश्यतासम्बन्धेन कृतिफलयोःसामानाधिकरण्यमित्यर्थः। केचित्तु पित्रर्थीयः पुत्रस्तद्गतं पूतत्वादिकं जातेष्ट्यनुष्ठातुःपितुरेवफलं जातेष्टिकर्त्रा पित्रा मम पुत्रस्य पूतत्वार्थमिष्टिं करिष्य इतिसङ्कल्पाकारः तथाच पूतपुत्रकत्वं पितुरेव फलं मम पूतपुत्रकत्वार्थमिष्टिं करिष्य इत्यपि सङ्कल्पःकार्यः, तेन पुत्रेऽपि पूतत्वं सम्पाद्यते। एवं स्वर्गगामिपितृकत्वं-श्राद्धकर्त्तुरेवफलमिति युक्तं शास्त्रफलं प्रयोक्तरीतिन्यायेन कृतेःफलभाक्त्वेन सामानाधि-करण्यमित्याहुः। ननु यागविषयककृतिमतां ऋत्विजां स्वर्गफलाभावेन व्यभिचारान्न कृतेः फलभाक्त्वेन सामानाधिकरण्यमितिचेन्न, आर्त्विज्यादेरपि दक्षिणैव फलत्वात्। आर्त्विज्यस्य स्वर्गफलमेव न भवति द्रव्यदानेन यजमानपरिक्रीततया यागकर्तृकाणां तेषां दक्षिणाया एव फलत्वादतो न व्यभिचार इत्यपि द्रष्टव्यम्। नचात्रात्मान्तःकरणार्थः येनात्मगतो मोक्षो

होगी, उसी में फल भागिता होती है, अन्यथा कृतहानि एवं अकृताभ्यागम का प्रसंग होगा तथा बन्ध और मोक्ष में वैयधिकरण की आपत्ति होगी। कहें कि शुद्ध और उपहित में स्वाभाविक भेद के अभाव होने से बन्ध मोक्ष के सामानाधिकरण्य सम्यक्तया उपपन्न होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि उपहित गत अनर्थ जैसे शुद्ध गत होता है, उसी तरह दृश्यत्व तथा मिथ्यात्व आदि में शुद्ध गतत्व की आपत्ति

वत्तद्गतदृश्यत्वमिथ्यात्वादीनामपिशुद्धगतत्वापत्तेः। नच जातेष्टि-पितृश्राद्धादौ व्यभिचारइतिवाच्यम्। कृतिफलयोः सामानाधिकरण्योपपादकोद्देश्यतासम्बन्धस्य फलाधिकरणे पुत्रपित्रादौ सत्त्वात्। जातेष्टावपि पित्रर्थं पुत्रगतपुत्रत्वादितदनुष्ठातुः पितुरेव फलमित्यर्थः। तथैव श्राद्धेऽपि बोध्यम्। आरोपितानारोपितसाधारणकर्तृत्वस्य फलं प्रति प्रयोजकत्वे बुद्धिदेहयोर्मोक्षान्वयापत्तेः॥ ८८॥

मनस उद्देश्यः स्यादिति भावः। कर्तृत्वस्य फलभाक्त्वेन सामानाधि-करण्यमाशंक्याह—**आरोपितेति**। आरोपितकर्तृत्वस्य फलभाक्त्वान्वये तन्त्रत्वे तस्य स्थूलः करोतीति प्रतीत्या देहादावपि सत्त्वात् फलभाक्त्वान्वयप्रसङ्गः। आत्मारोपित-कर्तृत्वस्य फलान्वयतन्त्रत्वे कर्तृत्वाध्याससिद्धे आरोपितस्यापि कर्तृत्वस्य फलान्वय-प्रयोजकत्वासिद्धिस्तत्सिद्धौच कृतिफलयोः सामानाधिकरण्याव्यभिचारात् कर्तृत्वाध्यास-सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयोऽपि द्रष्टव्यः। नचात्मनि फलान्वय आरोपितकर्तृत्वं तन्त्रं बुद्धौ च फलान्वये सत्यभूतं कर्तृत्वं तथेति वाच्यम्। अननुगमात्। नचान्यतरत्वेन द्वयोरनुगम-कार्यस्तस्य भेदघटितत्वेनातिगुरुत्वात्। कृतिकर्मत्वकरणत्वादीनां मनसि श्रुतेः। बुद्ध्यभावेऽपि कर्तृत्वश्रुतेर्बुद्धेर्न कर्तृत्वमित्याशयेनाह—**किञ्चेति** ।।८८।।

होगी। कहें कि शास्त्रफल प्रयोक्ता है। ऐसा कोई नियम नहीं है, **'पुत्रे जाते इष्टिं कुर्यात्'** इस वचन के अनुसार पुत्र की पवित्रता के उद्दश्रेय से पिता जातेष्टि करता है, इसी प्रकार पिता के स्वर्ग प्राप्त्यर्थ पुत्र के लिये श्राद्ध का विधान किया जाता है, इस प्रकार जातेष्टि रुप कृति का पूतत्व रूप फल के साथ सामानाधिकरण्य नहीं है, क्योंकि पूतत्व रूप फल पुत्रगत है, इसी प्रकार स्वर्गरूप फल पितृगत है, श्राद्ध रूपी क्रिया पुत्रगत है, इस प्रकार कृति तथा फल में सामानाधिकरण्य का व्यभिचार है तो ऐसा नहीं कह सकते। वहाँ भी उद्देश्यता सम्बन्ध से कृति और फल में सामानाधिकरण्य में है? इसी प्रकार श्राद्ध में समझना चाहिये ।।८८।।

किञ्च "तन्मनोऽनुकुरुत" इत्यादिश्रुतौ मनसः कृतिकर्मत्वस्य 'शृण्वन्तःश्रोत्रेण विद्वांसोमनसेति करणत्वस्य' "मन उत्क्रमन्मीलित इवाश्नन् पिबन्नास्त इवे" त्यादौ मन उत्क्रमणेऽप्यात्मनः कर्तृत्वस्य परंज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण इत्यादौ स्वरूपाविर्भावे परमुक्तावपि कर्तृत्वस्य विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्त्ता विज्ञानात्मा यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा आनन्दभुक्तथा प्राज्ञ इत्यादिश्रुतौ विज्ञानात्मनिष्ठकर्त्तृत्वस्य श्रवणात्। न चात्र विज्ञानशब्दो बुद्धिपर इति वाच्यम्। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद तस्माच्च न प्रमाद्यति शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुते इति वाक्यशेषात्। किञ्चाहं करोमीत्यादिप्रत्यक्षेण आत्मा मोक्षसाधनकृतिमान् फलान्वयित्वात्

मनसः कृतिकर्मत्व बोधिकां श्रुतिमुदाहरति—**तन्मनइति**। बुद्ध्यभावेऽपि संसारदशायां कर्तृत्वश्रुतेरित्यर्थमभिप्रेत्याह—**मनउत्क्रामदिति**। कृतिकर्मत्वस्येत्यारभ्य षष्ठ्यन्तपञ्चकस्य श्रवणादितिपरेण सममन्वयः। प्राकृतकरणाभावेपि परममुक्तिदशायां पर्य्यटनादिकर्तृत्वश्रुतेरित्यर्थमभिप्रेत्याह—**परंज्योतिरिति**। परं ज्योतिः भगवन्तं पुरुषोत्तममुपसम्पद्य प्रत्यगात्मा स्वस्वरूपेणैवाविर्भवति नतु केनचिदागन्तुकेन स्वेनरूपेणेति विशेषणादन्यथास्वशब्दस्य वैयर्थ्यमापद्येतेत्यर्थः। आत्मनःकर्तृत्वबोधिकां श्रुतिमुदाहरति—**विज्ञानमिति**। विज्ञानशब्दस्य बुद्धिपरत्वमाशङ्क्य परिहरति—**नचेति**। प्रत्यक्षानुमानश्रुतिसूत्रार्थापत्तिभिरात्मनः कर्तृत्वं समर्थ्यते—**किञ्चेति**। प्रत्यक्षेणानुमानैःश्रुतिभिरर्थापत्तेश्चैतेषां सिद्धस्यात्मकर्तृत्वस्येत्यत्रान्वयः।

दूसरी बात '**तन्मनोऽकुरुत**' इत्यादि श्रुति में मन में कृति कर्मत्व '**शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वान्सः मनसः**' इस श्रुति से करणत्व तथा '**मन उत्क्रमन् मीलित इवाश्नन् पिबन्नास्त इव**' इत्यादि श्रुति में, मन के उत्क्रमण में भी आत्मा के कर्तृत्व एवं '**परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीड़न् रममाणः**' इत्यादि श्रुतियों में स्वरूप के आविर्भाव में परममुक्ति अवस्था में भी आत्मा में कर्तृत्व "**विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्ता विज्ञानात्मा यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा आनन्द भुक्तथा प्राज्ञ**" इत्यादि श्रुतियों में विज्ञानात्मा आत्मा में कर्तृत्व श्रवण है। कहें कि यहाँ विज्ञान शब्द बुद्धि वाचक है तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण इस श्रुति में वाक्यान्त में '**विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद तस्माच्च न प्रमाद्यति,**

सम्मतवत्। अज्ञानं ज्ञानसमानाधिकरणं बन्धरूपत्वात् सम्मतवदित्याद्यनुमानैश्च कर्त्ता विज्ञानात्मा योवेदेदं जिघ्राणीत्यादि श्रुतिभिश्च कर्त्ता शास्त्रार्थवत्वादिति न्यायाच्च। यद्यात्मा कर्त्ता न स्यात्तर्हि भोगमोक्षसाधनोपदेशोऽपि न स्यादित्यर्थापत्तेश्च सिद्धस्यात्मकर्तृत्वस्य बाधकादर्शनात्। न च श्रुतिरनुवादपरा। अहमर्थान्यात्मकर्तृत्वस्य ''नामरूपे व्याकरोत्'' स हि सर्वस्य कर्तेति श्रुत्युक्तेश्वरकर्तृत्वस्य च प्रत्यक्षेणाप्राप्तत्वात्। न च निर्धर्मकत्वं बाधकं निर्धर्मकत्वरूप-धर्मभावाभावाभ्यां व्याघातात्। ज्ञानत्ववत् सौषुप्तिकाज्ञानादिसाक्षित्व-

सम्मतवत्=यजमानवत्। **अज्ञानमिति**। आत्ममात्राश्रिताज्ञानसामानाधिकरण्य-सिद्धावात्मन एव ज्ञातृत्वप्राप्त्या तत्प्रयुक्तं कर्तृत्वमपि तस्यैव सेत्स्यतीति भावः। **सम्मतो**=निगडः। कर्त्ता विज्ञानात्मा योवेदेति जीवकर्तृत्वश्रुतेरानन्दभुगित्यादीश्वरकर्तृत्वश्रुतेश्च प्रत्यक्षप्राप्तजीवेश्वरकर्तृत्वानुवादपरत्वान्न स्वार्थे तात्पर्यमिति बाधकमाशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। अहमर्थान्यात्मा जीवो, नहि अहं कर्त्तेति प्रत्यक्षप्रतीतिं विहाय तदन्यात्मकर्तृत्वं प्रत्यक्षप्राप्तं येन श्रुतिरनुवादः स्यात्, अहं कर्त्तेति प्रत्यक्षञ्च नात्मकर्तृत्वावगाहि त्वन्मतेऽस्याहमर्थभिन्नत्वादिति भावः। नन्वात्मचैतन्यस्य निर्धर्मकत्वान्न तस्य कर्तृत्वमित्याशङ्क्य निराकरोति—**न चेति**। **निर्धर्मकत्वेति**। ब्रह्मणि निर्धर्मकत्वरूप-धर्मसद्भावे निर्धर्मकत्वोक्तिव्याघातः, तदभावे सधर्मकत्वस्यैव प्राप्त्या निर्धर्मकत्वोक्ति-व्याघात इत्यर्थः। ज्ञानत्वादिधर्मवज्ज्ञानकर्तृत्वादिधर्माङ्गीकारे बाधका-भावान्न निर्धर्मकत्वं ब्रह्मण इत्याह—**ज्ञानत्ववदिति। बुद्ध्या विशिष्टस्येति**। बुद्धिविशिष्टस्यैव बुद्धिज्ञातृत्व आत्माश्रयापातादिति भावः। निष्क्रियत्वमिति। कर्तृत्वाङ्गीकारे

शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुते' ऐसा पाठ होने से विज्ञान शब्द आत्मवाचक है यह स्पष्ट होता है। दूसरी बात अहं करोमि (मैं करता हूँ) इत्याकारक प्रत्यक्ष प्रतीत तथा आत्मा मोक्ष साधन कृतिमान् है। फलान्वयी भी होने से धनवान की तरह, इसी प्रकार अज्ञानं ज्ञान समानाधिकरणम् बन्ध रूपत्वात् सम्मतवत् इत्यादि अनुमानों द्वारा भी, विज्ञानात्मा (जीवात्मा) कर्ता सिद्ध होता है। इसी तरह **''योवेदेदं जिघ्र''** इत्यादि श्रुतियों एवं 'कर्ता शास्त्रार्थवत्वात्' इत्यादि न्याय से भी आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है। दूसरी बात यदि आत्मा कर्ता नहीं होगा तो भोग

टिप्पणी :— यह श्रुति परम मोक्ष की प्रतिपादका है तथा तत् केन् कं पश्येत् यह श्रुति ''स्वाप्यसम्पत्योरन्यतरापेक्ष'' के अनुसार सुषुप्ति एवं उत्क्रमणकालिक है, ऐसा ज्ञातव्य है।

वत्बुद्धिंप्रति बुद्धिविशिष्टस्य ज्ञातृत्ववच्च सत्यस्यासत्यस्य वा ज्ञातृत्वादेरप्यात्मन्येव सम्भवाच्च। नापि निष्क्रियत्वं बाधकम्। क्रियाया धात्वर्थत्वे ह्यात्मन्यप्यस्त्यादिधात्वर्थसत्त्वादेः सत्त्वेन सत्त्वासिद्धत्वात् परिस्यन्दादिपरत्वे चेष्टापत्तेः। कृतिपरत्वे च 'रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिमित्यादिश्रुत्या चेतने विहितत्वेनासिद्धेः'। नच निष्क्रियत्वश्रुतिविरोधः। तस्या ब्रह्मणि परतन्त्रक्रियायाः प्रत्यगात्मनि स्वतन्त्रकर्तृत्वस्य निषेधकत्वात्। अन्यथा स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेतिश्रुतेः, नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्, नहि

क्रियाऽऽवेशप्राप्तेरिति भावः। निष्क्रियत्वं बाधकमित्यत्रात्मनो धात्वर्थक्रियाशून्यत्वमभिप्रेतम्परिस्यन्दशून्यत्वं कृतिशून्यत्वं वा नाद्य इत्याह—**क्रियाया इति। अस्त्यादीति।** 'अस्ति ब्रह्मेतिचेद्वेदे' त्यादिवाक्यादिति भावः। द्वितीयपक्षमिष्टापत्त्या परिहरति—**परिस्यन्दादिपरत्वइति**। तृतीयपक्षमभिप्रेत्याह—**कृतिपरत्व इति**। निष्क्रियत्वबोधकश्रुतेर्विरोधमाशंक्य परिहरति। नचेति। तस्याः=निष्क्रियत्वबोधकश्रुतेः। **अन्यथेति**। परतन्त्रक्रियानिषेधकत्वाभावइति तदर्थः। ब्रह्मणि स्वाभाविकक्रियाबोधिकां श्रुतिमुदाहरति—**स्वाभाविकीति। निर्विकारत्वमिति।** कर्तृत्वाङ्गीकारे विकारप्राप्तेरिति भावः। आत्मनो ज्ञानरूपगुणाश्रयत्वेन ज्ञातृत्वाङ्गीकारे द्रव्यान्तरत्वापत्तिरूपविकाराप्राप्तेः यथा ह्याकाशस्य संयोगाश्रयत्वेऽपि न द्रव्यान्तरत्वापत्तिरूपो विकारः, यथा

एवं मोक्ष के साधन का उपदेश भी नहीं होगा यह अर्थापत्ति प्रमाण भी आत्मा में कर्तृत्व का साधक है। इस प्रकार प्रमाणों द्वारा आत्मा में सिद्ध कर्तृत्व का कोई बाधक नहीं दिखाई देता है।

कहें कि श्रुति तो केवल अनुवाद मात्र परक है, अहमर्थ से भिन्न आत्म कर्तृत्व तथा ''नाम रूपे व्याकरवाणि'' 'सहि सर्वस्य कर्ता' इस श्रुति द्वारा प्रतिपादित ईश्वर कर्तृत्व प्रत्यक्ष प्रमाण से अप्राप्त है। नाही निर्धर्मकत्व ही बाधक है, क्योंकि निर्धर्मकत्वरूप धर्म के भाव एवं अभाव से व्याघात है, ज्ञानत्व एवं सौषुप्तिक अज्ञानादि साक्षित्ववत् बुद्धि के प्रति बुद्धि विशिष्ट का ज्ञातृत्व की भाँति सत्य एवं असत्य का किंवा ज्ञातृत्व आदि का भी आत्मा में ही संभव है। और न निष्क्रियत्व ही बाधक है। क्रिया को धात्वर्थ मानने पर आत्मा में भी अस्ति आदि धात्वर्थ सत्ता आदि के सद्भाव के सत्त्व असिद्ध है, परिस्यन्द आदि परक मानने पर इष्टापत्ति है। कृतिपरक मानने पर 'रुक्मवर्णं कर्तार मोक्षं पुरुषं ब्रह्मयोनि में इत्यादि श्रुति से चेतन के विदित होने से असिद्ध है। कहें कि निष्क्रियत्व श्रुति का विरोध होगा तो कहते

श्रोतुः श्रुतेःनहि मन्तुर्मतेरित्यादि श्रुतेश्च बाधस्य तवापि साम्यात्। नापि निर्विकारत्वं बाधकम्। आकाशस्य संयोगाद्याश्रयत्वइवात्मनोऽज्ञानतद्ध्वंसाश्रयत्व इव च ज्ञानादिगुणाश्रयत्वेऽपि विकारित्वायोगात्। ''अविकार्योऽयमुच्यते'' इत्यादिशास्त्रस्य द्रव्यान्तरापत्त्यादिषड्विकाररूपनिषेधपरत्वान्न विरोधः। न च सुषुप्तौ मनसोऽभावे कर्तृत्वाद्यदर्शनं बाधकमिति वाच्यम्। तत्रापि श्वासादिकर्तृत्वदर्शनात्तदसिद्धेः, ''सुप्तो भूर्भूरित्येव प्रश्वसिती'' त्यादिश्रुतेः, देहादिवन्मनसो निमित्तरूपत्वेनापि तदुपपत्तेश्च। ''कामःसङ्कल्प'' इत्यादिश्रुतिरपि

वात्मनस्त्वन्मतेऽज्ञानरूप बन्धतद्ध्वंसरूपमुक्त्याश्रयत्वेऽपि न द्रव्यान्तरत्वापत्तिरूपं विकारित्वं तद्वदित्याह—**आकाशस्येति**। स्मृतिविरोधं परिहरति—**अविकार्य इति। मनसोऽभावइति।** मनसोऽभावदशायां सुषुप्तावित्यन्वयः। तथाचात्मनः कर्तृत्वाङ्गीकारे तस्य सुषुप्तावपि सत्त्वेन तत्रापि कर्तृत्वापातइत्यत्रेष्टापत्तिरित्यर्थः। किञ्च मनसोऽभावे कर्तृत्वाद्यदर्शनं न मनसःकर्तृत्वं गमयति किन्तु निमित्तत्वमेव निमित्तकारणव्यतिरेकेणापि कार्यादर्शनसम्भवात्, नहि दण्डाभावे घटाद्यदर्शनं दण्डस्य कर्तृत्वं गमयतीत्याशयेनाह—**देहादिवदिति**। देहाभावे कर्तृत्वाद्यदर्शनाद्देहस्यापि कर्तृत्वापात इति भावः। ननु 'कामः संकल्प' इत्यादिश्रुतौ कामादीनां मनोरूपत्वं निर्दिष्टं तदात्मकत्वञ्च तत्कर्तृत्वमेवेति मनसः कर्तृत्वसिद्धिरिति चेत्तत्राह—**कामइति**। श्रुत्यन्तरात्=श्रुत्यन्तरसम्वादात्। तथाच

हैं, उक्त श्रुति ब्रह्म में परतन्त्र कृति (क्रिया) एवं जीव में स्वतन्त्र कर्तृत्व का निषेधक है। ऐसा नहीं माने तो '**स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च**' इस प्रति का तथा ''**नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्**'' ''**नहि श्रोतुः श्रुतेः नहि मन्तुर्मते।**'' इत्यादि श्रुतियों का बाध आपको बराबर होगा। नाही निर्विकारत्व ही कर्तृत्व का बाधक होगा जैसे आकाश का संयोगाद्याश्रयत्व, आत्मा का अज्ञान एवं उसमें ध्वंस के आश्रयत्व की भाँति आत्मा में ज्ञानादि गुणों का आश्रय मानने पर भी विकारित्व का योग नहीं होगा '**अविकार्योऽयमुच्यते।**' इत्यदिश्रुति द्रव्यान्तर भावापत्ति रूप विकार निषेध परक होने से उससे भी कोई विरोध नहीं है। कहें कि सुषुप्ति में अभाव होने पर कर्तृत्व आदि का अदर्शन अत्यनिष्ठ कर्तृत्व का बाधक होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकतें, उस अवस्था में भी श्वास आदि क्रिया का कर्तृत्व विद्यमान रहता है। श्रुति भी कहती है—'**सुप्तो भूर्भूरित्येव प्रश्वसिति इत्यादि**' दूसरी बात देह आदि की तरह मन में भी शरण होने से सुषुप्ति में कर्तृत्वाभाव की उपपत्ति होगी। 'कामः संकल्पः' इत्यादि श्रुतियाँ भी मन का करणत्व बोधक ही है, न कि

मनसःकरणत्वबोधनविषयिकैव ''मनसैवाग्रे सङ्कल्पयती'' ति श्रुत्यन्तरात्, अत्र स्पष्टं कण्ठरवेण करणपाठदर्शनाच्च। ''आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण'' इति श्रुतेस्तु ह्यात्मनो भोक्तृत्वे देहादिवन्मनसोऽपि सहकारित्वमात्रमित्येतत्परत्वात्। किञ्च ध्यायतीव लेलायतीवेति'' श्रुताविवशब्दः परतन्त्रप्रभौ प्रभुरिवेतिवत् जीवकर्तृत्व-स्येश्वरपारतन्त्र्यप्रदर्शनपरः। ननु ''प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते'' इति स्मृतिर्बाधिकेति चेन्न, तस्या अपि स्वतन्त्रकर्तृत्वनिषेधपरत्वाऽविशेषात्। ''तत्रैवं सति

कामादीनां मनसा सहाभेदोक्तिः श्रुत्यन्तरानुसारेण मनसः करणत्वपरैव न कर्तृत्वपरेत्यर्थः। **सहकारित्वमात्रमिति**। आत्मशब्दोदितदेहादिसाधारणमनस्सहकारेणात्मनो भोक्तृत्व-मुच्यते एव नतु मनसो भोक्तृत्व तथात्वे देहेन्द्रिययोरपि भोक्तृत्वापत्तेरिति भावः। ध्यायतीवेति श्रुताविवशब्दश्रवणात्। अहङ्कारविमूढःसन्स्वातन्त्र्येणाहङ्कर्तेतिमन्यतइत्येवं जीवे स्वातन्त्र्येण कर्तृत्वनिवारकत्वादित्याह—**किञ्चेति। प्रकृतेरिति।** प्रकृतिरीश्वरस्याचिच्छक्तिर्माया तस्या गुणैः सत्त्वादिभिर्देहेन्द्रियरूपेण परिणतैः सर्वशः सर्वप्रकारेण क्रियमाणानि कर्माणि अहङ्कारविमूढात्मा, अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिरहङ्कारस्तेन विमूढ आत्मा मनो यस्य सोऽहं कर्त्ता इति मन्यते, नतु गुणांस्तत्कार्यभूतान् देहेन्द्रियादीन्वा इति श्लोकार्थः। ननु वस्तुतोऽकर्ता जीवः, आत्मानं

कर्तृत्व बोधक कारण मनसैवाग्रे संकल्पयति ऐसा श्रुति वचन भी है, यहाँ स्पष्ट मन में करणत्व का समर्थन है 'आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिण' इत्यादि श्रुतियाँ, देहादि की तरह मन भी आत्मा के कर्तृत्व में सहकारी मात्रत्व परक है।

दूसरी बात ध्यायतीव लेलायतीव इस सूची में परतन्त्र प्रभु की तरह जीव के कर्तृत्व में ईश्वर पारतन्त्र्य दर्शन परक है यदि कहें कि—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

यह गीता का वचन आत्मा के कर्तृत्व का बाधक होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते गीता का यह वचन भी जीव के स्वतन्त्र कर्तृत्व का ही बाधक है। क्योंकि—

''तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलन्तुयः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मति॥''

यहाँ ''केवल'' शब्द स्वातन्त्र्य परक है उक्त अर्थ में प्रमाण है, अर्थात् जो केवल जीवात्मा को स्वतन्त्र कर्ता मानता है वह दुर्मति है—

कर्त्तारमात्मानं केवलन्तु यः। पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मति'' रिति केवलशब्दः स्वातन्त्र्यपरमुक्तार्थे मानं केवलं स्वातन्त्र्येण कर्तारं मन्यमानो दुर्मतिरित्यर्थः ''सकारयेत्पुण्यमथापि पापं न तावता दोषवानीशितापि'', ''एष एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्योलोकेभ्य-उन्निनीषत'' इत्यादि श्रुतिभ्यः। ''केनापि देवेन हृदि स्थितेन तथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमीत्यादिस्मृतेश्च। बद्धावस्थायामनादिप्रकृति-सम्बन्धरूपया कर्मरूपया वाऽविद्यया संकुचितज्ञानक्रियाशक्तिकानां प्रत्यगात्मनां ज्ञानक्रियादौ मनआदिपारतन्त्र्यात् तत्सहायापेक्षा,

---

कर्त्तारं विमूढः सन् मन्यत इति कर्तृत्वमात्रनिवारकत्वं किं न स्यादित्यत आह—**तत्रैवं सतीति**। एवं यथोक्ते न्याय्ये विपरीते वा कर्मणि अधिष्ठानादिहेतुके निश्चिते सति कस्मिंश्चिदपि कर्मणि कर्त्तारमात्मानं केवलमीश्वरानियतमहमेव कर्त्तेति यः पश्यति जानाति शास्त्राचार्य्योपदेशसंस्काररहितबुद्धित्वान्न पश्यतीति ईश्वरानियतकर्तृत्वं मन्यमानस्यैव निन्दनात्सर्वथा कर्तृत्वनिषेधे तु केवल-पदस्य वैयर्थ्यं प्रसज्जेतेतिभावः। उक्तार्थं श्रुतिस्मृतिप्रमाणमुखेन द्रढयति—कारयेत्पुण्यमित्यारभ्य श्रुतिसूत्रेभ्य इत्यन्तेन। इत्यादिश्रुतिभ्यइत्यस्य स्मृतेरित्यस्य चोक्तार्थे मानमित्यत्रान्वयः। यद्यप्युक्तप्रमाणादात्मनः कर्तृत्वमस्ति, तथापि बद्धावस्थायां संकुचितज्ञानत्वाद्देहेन्द्रियाधीनं कर्तृत्वं न केवलस्यात्मनो मुक्तावस्थायान्तु करणानपेक्षत्वमित्याह—**बद्धावस्थायामिति।** प्रत्यगात्मनां मुक्तावस्थायां सार्वज्ञ्यप्राप्तौ बुद्धीन्द्रियादिनिरपेक्षं ज्ञानं भवतीतिश्रुतिमुखेन

''सकारयेत्पुण्यमथापि पापं न तावता दोषवानीशितापि एष एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्योलोकेभ्यउन्निनीषते'' इत्यादि श्रुति वचनों एवं ''केनापि देवेन हृदिस्थितेन तथा नियुक्तोऽस्मि॥''

इत्यादि श्रुति वचनों से भी जीव का स्वतन्त्र कर्तृत्व का ही निषेध है। बद्धावस्था में अनादि प्रकृति सम्बन्ध रूप अथवा कर्म रूप अविद्या से संकुचित ज्ञान क्रिया तथा शक्ति वाले जीवात्माओं में ज्ञान, क्रिया आदि में मन आदि का पारतन्त्र्य होता है उसकी सहायता की अपेक्षा होती है, परन्तु मुक्त अवस्था में तो जीव में स्व एवं पर स्वरूप का आविर्भाव होने से बुद्धि तथा इन्द्रियादि की अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि—**''सर्वं हि पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वशः इति श्रुतेः यः सर्वज्ञः स हि कर्ता सहि सर्वस्य कर्ता तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय''** इत्यादि श्रुति वचनों से इस में तो नित्य क्रियाश्रयत्व है इसमें कोई विवाद नहीं है। उसी प्रकार मुक्त आत्माओं में भी ज्ञान क्रिया आदि का संबन्ध अविरुद्ध है, क्योंकि इस विषय में—**''स तत्र**

मुक्तावस्थायान्तु स्वपरस्वरूपयोराविर्भावेन बुद्धीन्द्रियादिनिरपेक्षत्वमिति विवेकः। "सर्वं हि पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश" इति श्रुतेः, "यः सर्वज्ञः स हि सर्वस्य कर्त्ता," "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेये" त्यादिश्रुतिभ्यः। ईशस्य तावन्नित्यक्रियाश्रयत्वं विवादशून्यमेव तथैव मुक्तानामपि ज्ञानक्रियादि योगोऽविरुद्धः। "स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः," 'सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति विहारोपदेशात्'। २।३।३३ 'सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः' ४।४।८ इतिश्रुतिसूत्रेभ्यः। ननु ज्ञानेच्छाकृत्यादीनां नित्यत्वे सदा सृष्ट्यापत्तिः। न च कालस्य तत्र

प्रमाणयति—**सर्वमिति**। पश्यः=ब्रह्मदर्शी। सर्वदेशकालावस्थं वस्तु पश्यति स स्वराड् भवति 'स्वेनैव भगवता विश्वान्तरात्मना राजते दीप्यते नेन्द्रियादिभिः सूर्यादिभिर्वा' इत्यादयः श्रुतयोऽनुसन्धेयाः। **विहारोपदेशादिति**। "स ईयतेऽमृतो यत्र काममिति, स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्त्तते" इति च जीवकर्तृकविहारस्य सञ्चरणस्योपदेशाज्जीवः कर्त्तेत्यर्थः। सङ्कल्पादेव तच्छ्रुतेरिति मुक्तस्य सत्यसङ्कल्पादेव पित्रादिप्राप्तिः कुतः स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्तीति तदभिधानश्रुतेरित्यर्थः। ईश्वरस्य ज्ञानेच्छाकृत्यादीनां सदातनानां सत्त्वात् सदा सर्गोत्पादस्स्यादिति शंकते—**नन्विति**। सर्गोत्पत्तौ कालस्यापि सहकारिकारणत्वात्तदभावादेव न सर्गाद्युत्पत्तिरित्याशंक्य

पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः, सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति विहारोपदेशात्।" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है यदि कहें कि ईश्वर में ज्ञान इच्छा तथा कृति आदि गुण नित्य मानें तो सदा सृष्टि की आपत्ति होगी कहें कि काल के निमित्त होने के कारण उसके भाव एवं अभाव को नियामक मान लेने पर उक्त दोष का अवकाश नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि प्रधान आदि में इच्छा आदि गुणों के सम्पादक काल आदि का भी सदा सद्भाव है तो ऐसा नहीं कह सकते कारण सृष्टि एवं प्रलय से सम्बन्ध हो तो इश्वरेच्छा में सिसृक्षात्व एवं हिंसात्व सम्भव है जैसे मायावादियों के मत में वृत्ति चित्त के उपराग के लिये होती है। इस मत में व्यापक होने पर भी चैतन्य का वृत्ति द्वारा ही घट आदि के साथ सम्बन्ध होता है। और जैसे तार्किकों के मत में गोत्व आदि जाति के व्यापक होने पर भी सास्नादि मत् व्यक्ति में हि सम्बंन्ध होता है अन्यत्र नहीं जिस प्रकार हमारे मत में विश्वात्मा पुरुषोत्तम परब्रह्म का सर्वदेश, काल तथा वस्तु से परिच्छिन्न पदार्थ से भिन्न होने से व्यापक होने के कारण सर्वत्र उनकी सत्ता होने पर भी किसी

निमित्तत्वात्तद्भावाभावयोस्तत्र नियामकत्वेन नोक्तदोषावकाश इति वाच्यम्। प्रधानादाविच्छादिसम्बन्धापादककालादेरपि सदा सत्त्वादिति चेन्न, सृष्टिप्रलयकालाभ्यां सम्बद्धाया एवेश्वरेच्छयाः सिसृक्षात्व-जिहीर्षात्वसम्भवात्। यथा परेषां वृत्तिश्चिदुपरागार्थेति मते व्यापकस्यापि चैतन्यस्य वृत्तिद्वारक एव घटादिसम्बन्ध यथाच तार्किकाणां मते सर्वगतस्यापि गोत्वादेः सास्नादिमत्येव सम्बन्धो नान्यत्र, यथा चास्मत्पक्षे विश्वात्मनः पुरुषोत्तमस्य परब्रह्मणः सर्वदेशकालवस्तुपरिच्छिन्न-पदार्थेतरतया व्यापकत्वेन सर्वत्र सत्त्वेऽपि कस्मिंश्चिच्चरमजन्मन्येवाधि-

परिहरति—**न चेति**। तत्र=सृष्ट्यादौ। तद्भावाभावयोरिति। कालसत्त्वे सृष्टिसत्त्वं तत्कालाभावे सृष्ट्यभावइत्यर्थः। उक्तार्थं दृष्टान्तद्वयेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**यथेति**। दार्ष्टान्ते योजयति। यथाचास्मत्पक्षइति। तत्र=कर्तृत्वे। **दर्शेति**। दर्शपौर्णमासाभ्यामिति श्रुतेरपि स्वार्थे तात्पर्यं न स्यात्तत्रापि यागादिकरणे वह्वायासेन **क्लेशसद्भावादित्यर्थः**। किञ्च न कर्तृत्वं क्लेशव्याप्तं किन्तु लीलाया अकरणे श्वासादेश्चाकरण एव क्लेशदर्शनात् कर्तृत्वाभाव एव क्लेशव्याप्त इत्याह—**उच्छ्वासादेरिति**। कर्तृत्वस्य न क्लेशेन सम्बन्धः प्रत्युत फलसम्बन्ध एव श्रूयतेऽतश्श्रुतेः स्वार्थे तात्पर्यमावश्यकमङ्गीकार्यमिति भावः उक्तश्रुतिबलादात्मन एव कर्तृत्वं सिद्ध्यति नान्यस्येति भावेनाह—**यदेति**। **फलेति**। स्वस्थतयाऽवस्थानरूपेत्यर्थः त्रिधा विकल्पयति—**कर्तृत्वमिति**। आद्यपक्षं परिहरति—

चरम जन्म में ही अधिकारी विशेष को ही उनका साक्षात्कार होता है, अन्यत्र नहीं इसी प्रकार ईश्वरीय इच्छा आदि का भी सृष्टिकालादि विशेषावच्छिन्न प्रधान आदि के साथ सम्बन्ध होता है, तभी सृष्टि होती है, अन्य काल में नहीं इस प्रकार उक्त दोष का अवकाश नहीं है, इस प्रकार जीव कर्तृत्व एवं ईश्वर कर्तृत्व में कोई दोष नहीं है यदि कहें कि क्लेशावह है, इसीलिये उसमें श्रुति का तात्पर्य नहीं है, तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि दर्शपूर्णमास आदि यज्ञों में भी तथा श्रवण, मनन आदि में भी श्रुति के तात्पर्य का अप्रसंग तथा उच्छ्वास आदि के अकरण में ही क्लेश देखा गया है। यदा करोत्यथ निस्तिष्ठति इस श्रुति के द्वारा ही कर्तृत्व में फल सम्बन्ध का विधान है। भाव है कि कर्तृत्व बुद्धिगत है अथवा शुद्ध आत्मगत है, किंवा अहमर्थगत है। पहला पक्ष नहीं कह सकते, क्योंकि बुद्धि के जड़ होने से उसमें कर्तृत्व स्वीकार करने पर घट आदि में अतिव्याप्ति होगी दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते क्योंकि अहमर्थ से अभिन्न आत्मा की शुद्धि नहीं है यह पहले विस्तार से कहा गया है। परिशेषात् अहमर्थ से अभिन्न आत्मा में ही कर्तृत्व सिद्ध होता है। यह

कारिविशेषे साक्षात्कारो नान्यत्र तद्वत् पारमेश्वरीयेच्छादेरपि सृष्टिकालादिविशेषावच्छिन्न प्रधानादिसम्बन्धोनान्यदेति नोक्तदोषावकाश इत्यनवद्यम्। न च कर्तृत्वस्य क्लेशावहत्वान्न तत्र श्रौतं तात्पर्यमिति वाच्यम्। दर्शपौर्णमासादावपि श्रवणमननादावपि च तात्पर्याप्रसङ्गादुच्छ्वासादेरकरण एव क्लेशदर्शनाच्च। ''यदा करोत्यथ निस्तिष्ठतीति'' श्रुत्यैव कर्तृत्वस्य फलसम्बन्धविधानाच्च। एतदुक्तं भवति कर्तृत्वं बुद्धिगतम्वा शुद्धात्मगतम्वाऽहमर्थगतम्वा ? नाद्यः। तस्याः जडत्वेन तत्र कर्तृत्वाङ्गीकारे घटादावतिव्याप्तेः। नापि द्वितीयः। अहमर्थाभिन्नात्मासिद्धेः पूर्वमेव

नाद्य इति। तस्याः=बुद्धेः। **तत्र**=बुद्धौ। घटादाविति। घटस्यापि जडत्वाविशेषात्कर्तृत्वं स्यादित्यर्थः। द्वितीयपक्षमपाकरोति—**नापीति।** उपाधिसंसर्गेणात्मनः कर्तृत्वमिति शङ्कते—**नन्विति। उक्तदोषात्**= जडत्वादिदोषात्। **तथात्वे**=उपाधिसम्पर्कात्कर्तृत्वे। उपसंहरति—**तस्मादिति।** इन्द्रियद्वारकमेव कर्तृत्वं बद्धदशायां प्रत्यगात्मनामित्यर्थः। वह्नेर्दाहकत्वं यद्यपि स्वाभाविकं तथापि काष्ठादि-संसर्गमन्तरा न तस्य दाहकत्वं तद्वत् प्रत्यगात्मनः स्वाभाविककर्तृत्वेऽपि बद्धदशायां करणविषयाधीनमित्यर्थः। करणम्=इन्द्रियम्। उक्तश्रुत्या=सुप्तोभूर्भूरित्यनेन प्रश्वसितीतिश्रुत्या। तत्रापि=सुषुप्तावपि। यद्यात्मनः कर्तृत्वं स्वाभाविकं तदा कदापि तदुपरतिर्न स्यादिति शङ्कते—**नन्विति।** कर्मक्रियासत्त्वे कर्तृत्वसत्त्वे तदभावे तदभाव इत्यन्वय-व्यतिरेकमाश्रित्योक्तशङ्कां निरस्यति—**कर्मेति। तदुपरमे**=कर्तृत्वोपरमे। प्रत्यगात्मनां कर्तृत्वं पुरुषोत्तमाधीनं तत्तत्कर्मसापेक्षञ्चेतिसमाधानान्तरमाह—**किञ्चेति।** तन्नियन्तृत्वस्य= ईश्वरनियन्तृत्वस्य। तत्प्रेरणसङ्कल्पस्य=ईश्वरप्रेरणसङ्कल्पस्य। भावाभावाविति। पुरुषोत्तमसंकल्पसत्त्वे

बात पहले ही विस्तार से निरूपण किया गया है। यदि कहें कि केवल बुद्धि या आत्मा में किसी एक में कर्तृत्व न हो उक्त दोष के कारण फिर भी उपाधि के संपर्क से आत्मा के कर्ता न होने पर भी उसमें कर्तृत्व होता है। ऐसा नहीं कह सकते। ऐसा मानने पर नपुंसक व्यक्ति में भी स्त्री से सम्बन्ध मात्र से संतति उत्पादकत्व का प्रसंग होगा इसलिये स्वाभाविक कर्तृत्व आदि के आश्रय अहमर्थ से अभिन्न ज्ञाता आत्मा में बद्ध दशा में करण एवं विषय सम्बन्ध निमित्तक कर्तृत्व रहता है। जैसे स्वाभाविक दाहकत्वगुण के आश्रय अग्नि में काष्ठादि सम्बन्ध निमित्तक कर्तृत्व रहता है। सुषुप्ति एवं मूर्छा आदि अवस्था में करण तथा विषय आदि के अभाव से विशेष

विस्तृतत्वात्। परिशेषादहमर्थाभिन्नात्म-वृत्तित्वमेव सिद्धमिति पूर्वमेव विस्तरेण निरूपितम्। ननु मा भूत्केवल-योर्बुद्ध्यात्मनोरेकतरस्य कर्तृत्वमुक्तदोषात् तथाऽप्युपाधि-सम्पर्कादकर्त्तुरप्यात्मन एव कर्तृत्वमिति चेन्न, तथात्वे षण्ढस्यापि स्त्रीसम्बन्धमात्रेण प्रजोत्पादकत्वप्रसङ्गात्। तस्मात्स्वाभाविककर्तृत्वाद्या-श्रयस्यैवाहमर्थाभिन्नज्ञातुरात्मनो बद्धदशायां करणविषयसम्बन्ध-निमित्तकमेव कर्तृत्वं स्वाभाविकदाहकत्वाश्रयाग्नेः काष्ठादिसम्बन्ध-निमित्तकदाहकत्ववत्सूपपन्नम्, सुषुप्तिमूर्च्छादौ करणविषयादेरभावेन विशेषकर्तृत्वाभानस्यापि सूपपन्नत्वात्, सामान्यश्वासादिकर्तृत्वस्योक्त-श्रुत्या तत्रापि सत्त्वाच्च, सर्वावस्थानुगतत्वमपि पूर्वोक्तरीत्या सूपपन्नतरम्। ननु तर्हि कर्तृत्वपक्षे

प्रत्यगात्मनां कर्तृत्वभावनं श्रीपुरुषोत्तमसंकल्पाभावे कर्तृत्वोपरतिरित्यर्थः। तथात्वे=नियामकत्वे। अन्वयव्यतिरेकौ दर्शयति—तत्प्रयोजक सत्त्वइति। कर्तृत्वप्रयोजकसत्त्व इति तदर्थः। तद्भानम्=कर्तृत्वभानम्। तदभावे=कर्तृत्व प्रयोजका-भावे। **अर्थ इति**। भावाभावावितिप्राङ्निर्दिष्टस्यार्थः। वैषम्यनैर्घृण्यादीति। वैषम्यं नाम देवमनुष्याद्युत्तममध्यमादिरूपविषमसृष्टिकर्तृत्वम्। नैर्घृण्यं नाम दुर्विषयदुःखगर्भज-गन्निर्मातृत्वेन निर्दयालुता। तत्र हेतुमाह—**तस्येति**। वैषम्यनैर्घृण्यस्येति तदर्थः। तदस्पर्शात्= वैषम्यनैर्घृण्या स्पर्शात्। तदुक्तं श्रीबादरायणेन ''वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति'' २।१।३३। नेश्वरस्य वैषम्यनैर्घृण्ये प्रसज्येते कुतः सापेक्षत्वात् तत्तत्प्राणि-पुण्यापुण्यकर्मसापेक्षत्वादीश्वरस्य व्रीहियवाम्रादिसृष्टिवैचित्र्ये तत्तद्बीजगतासाधारण-

---

कर्तृत्व का अभाव भी उत्पन्न होता है। सामान्य श्वास आदि कर्तृत्व तो उक्त श्रुति द्वारा सुषुप्ति में भी रहता है इस प्रकार जीवात्मा में कर्तृत्व आदि सभी अवस्थाओं में उपपन्न है। यदि कहें कि फिर तो कर्तृत्व पक्ष में जाग्रत् अवस्था में जीव में कर्तृत्व का कभी भी उपराम नहीं होगा क्योंकि इस अवस्था में करण कलाप समस्त कारण उपलब्ध हो तो ऐसा नहीं कह सकते, कर्म क्रिया भाव को उसके उपराम में प्रयोजक मानने से उक्त दोष नहीं हो सकता। दूसरी बात सभी चेतन जीवों के कर्म, कर्तृत्वं आदि क्रिया कलापों के सर्वात्मा पुरुषोत्तम के अधीन होने से उक्त दोष नहीं

जाग्रदवस्थायां कदापि तदुपरमो न स्यात्करणकलापस्य तदा सत्त्वादितिचेन्न, कर्मक्रियाभावस्य तदुपरमे प्रयोजकत्वात्। किञ्च सर्वस्यापि चेतनस्य कर्मकर्त्रादिकलापस्य सर्वान्तरात्मश्रीपुरुषोत्तमपरतन्त्रत्वात्, तन्नियन्तृत्वस्य च बद्धजीवा-नाद्यदृष्टफलभोगानुरूपदेशकालसापेक्षत्वेन तत्प्रेरणसङ्कल्पस्य भावाभावौ तद्भावनापरत्योर्नियामकौ भवतः, तथात्वे च तत्प्रयोजकसत्त्वे तद्भानं तदभावे चोपरतिरित्यर्थः। बद्धजीवेत्याद्युक्त्या ब्रह्मणि वैषम्यनैर्घृण्यादिशंकापिदूरतो निरस्ता तस्य स्वस्वादृष्टवृत्तितया तत्प्रयोजके ब्रह्मणि तदस्पर्शात् बुद्धिर्ज्ञानमसंमोह इति श्लोकद्वयेन श्रीमुखगानात्" 'फलमतउपपत्तेः' ३।२।३८।इति सूत्राच्च। नचैवं शास्त्राचार्योपदेशस्य

सामर्थ्यसापेक्षपर्जन्यवत् तथाहि दर्शयति श्रुतिः। पुण्यःपुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन कर्मणा साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवतीत्यादिः। उक्तार्थं स्मृतिप्रमाणेन द्रढयति—**बुद्धिरिति।** बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमःशमः। सुखं दुःखंभवो भावो भयञ्चाभयमेवच॥ अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानं यशोऽयशः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः। श्रीमद्भगवद्गीतायां अ० १०। श्लोक ४।५। बुद्धिःसारासारविवेचनरूपान्तःकरणावस्था। ज्ञानम्, आत्मानात्मपदार्थावबोधनम्। असम्मोहो बोद्धव्यवस्तुविषयकभ्रम-निरासेन तत्स्वरूपावधारणम्। **फलमिति।** शास्त्रीयमैहिकामुष्मिकं सर्वं फलमतः परमात्मन एव भवितुमर्हति। कुत उपपत्तेः कर्मणां हि क्षणिकत्वात् कालान्तरभाविफलदातुमसमर्थत्वात् सर्वाध्यक्षात्सर्वज्ञात्सर्वशक्तेस्तत्तत्कर्मभिराराधितात् परमात्मन एवैहिकामुष्मिकभोग-जातस्य स्वात्मभावापत्तिरूपमोक्षस्य चोपपन्नत्वादिति सूत्रार्थः। परमात्मनः प्रयोजकत्वा-

---

होगा और पुरुषोत्तम नियन्तृत्व भी बद्ध जीव के अनादि अदृश्य फल भोग के अनुरूप पुराकाल सापेक्ष होने से उनकी प्रेरणा के संकल्प का भाव एवं अभाव को जीव में क्रिया कलापों के नियामक होते है, इसको उनके प्रयोजक होने पर उक्त अभाव होगा उसके अभाव में उपराम। बद्ध जीव इत्यादि उक्ति से ब्रह्म में वैषम्य नैर्घृण्य आदि की शङ्का भी निरस्त हो जाती है। क्योंकि जीव में सुख-दुःख आदि अपने-अपने अदृष्टाधीन होने से उसके प्रयोजक ब्रह्म में वैषम्य आदि दोषों का स्पर्श नहीं होता है। यह प्रसंग भगवान् ने गीता में श्री मुख से भी स्पष्ट कर दिया है—

निर्विषयत्वेन वैयर्थ्यापत्तिरिति शङ्कनीयम्। उपदेशस्य श्रीहरिप्रयोजकताज्ञानप्राक्कालीनप्रवृत्तिविधायकत्वेन नैराकांक्ष्यादिति भावः। एवं भोक्तृत्वादयोऽप्यूहनीयाः। तथाहि सुषुप्त्यादौ सुखमहमस्वाप्समिति योऽहं जागर्मि स एवाहं सुखी सुप्तइति स्मरणप्रत्यभिज्ञानप्रमाणसिद्धम्। मोक्षे च 'जक्षन् क्रीडन्निति' श्रुतिप्रमाणसिद्धमिति संक्षेपोविशेषार्थश्चाकरे द्रष्टव्यः॥ ८९॥

इति पराभिमतकर्तृत्वाध्यासगिरिनिपातः॥ २२॥

भ्युपगमे शास्त्राचार्य्योपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्याशंक्य परिहरति—**नचैवमिति।** एवम्= परमात्मन एव सर्वफलप्रयोजकत्वे। **उपदेशस्येति**। शास्त्राचार्य्योपदेशस्येतितदर्थः। भगव दायत्तस्वरूपस्थितिप्रवृत्ति सर्वफल प्रदातृविषयकज्ञानाभाववन्तमेव मुमुक्षुमधिकृत्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिरभ्युपेयत इत्यर्थः। सुषुप्त्यादौ सुखादिभोक्तृत्वे प्रत्यभिज्ञायाः प्रमाणत्वमाह—सुषुप्त्यादाविति। मोक्षे भगवत्स्वरूपगुणविषयानुभवानन्दभोक्तृत्वं श्रुतिप्रमाणेन समर्थयति—**मोक्षइति॥ ८९॥**

इति पराभिमतकर्तृत्वाध्यासगिरिनिपातव्याख्या॥ २२॥

'बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः' इत्यादि दो श्लोकों में। तथा **''फलमत उपपत्तेः''** इस सूत्र से भी इस शंका का निराकरण कर दिया गया है। कहें कि फिर तो शास्त्र एवं आचार्यों के उपदेश आदि का वैयर्थ्य होगा तो ऐसा नहीं कह सकते। शास्त्र एवं आचार्योपदेश भगवान् की प्रयोजकता सम्बन्धी ज्ञान से प्राक्कालीन प्रवृत्ति विधायक होने से निराकांक्ष है। इसी तरह भोक्तृत्व आदि गुण भी आत्मा में ज्ञातव्य हैं। सुषुप्ति आदि में 'सुखमहमस्वाप्सम्' (मैं खूब सुखपूर्वक सोया।) जो मैं अभी जाग रहा हूँ। वही मैं सुषुप्ति में सुखपूर्वक सोया। इत्याकारक स्मरण प्रत्यभिज्ञा प्रमाण सिद्ध है। मोक्ष दशा में भी जक्षन् क्रीड़न रममाणः इत्यादि श्रुति प्रमाण द्वारा जीवात्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि गुण सिद्ध होते हैं।।८९।।

इस प्रकार पराभिमत कर्तृत्वाध्यास गिरि निपातका अनुवाद पूरा हुआ।

(२३) देहात्मैक्याध्यासगिरिनिपातः

अथ देहात्मैक्याध्यासोक्तिरपि मनोरथमात्रैव प्रमाणशून्यत्वात्। नन्वात्मनि देहेन्द्रियाद्यैक्यं तद्धर्माश्चाध्यस्यन्ते तत्राहं ब्राह्मणोऽहं काणोऽहं बधिर इतिप्रत्यक्षस्य, "ब्राह्मणो यजेत" ब्राह्मणो निर्वेदमायात् प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः" इत्युभयकाण्डश्रुतेः, सुषुप्तौ देहैक्याध्यासाभावे प्रमातृत्वादर्शनादित्याद्यन्यथानुपपत्तेश्च सत्त्वेन कथं प्रमाणशून्यत्वमितिचेन्न, त्वन्मतेऽहमर्थस्यानात्मतयाऽहं ब्राह्मण इत्यादेः प्रमाणस्य देहात्मैक्याध्यासाविषयत्वात्। देहात्मैक्यस्य प्रत्यक्षविषयत्वाङ्गीकारे

आत्मानात्मनोरन्योन्यात्मकतामन्योन्यधर्मांश्चाध्यस्य सर्वे प्रमातृत्वादिव्यवहाराः प्रवर्त्तन्त इति परभाषितमितरेतराध्यासं दूषयितुमनुवदति—**अथेति। तद्धर्मान्**=देहधर्मान् ब्राह्मणत्वकाणत्वादीन्। आत्मनि देहैक्यतद्धर्मयोरध्यासे प्रत्यक्षं प्रमाणयति—**तत्रेति।** निरुक्ताध्यास इति तदर्थः। अहं ब्राह्मण इति। ब्राह्मण्यस्य देहधर्मत्वेनात्मनि तदध्यासो देहैक्याध्यासं विना न सम्भवतीतितदैक्याध्याससिद्धिरित्यर्थः। आत्मनीन्द्रियैक्यतद्धर्मयोरध्यासे प्रत्यक्षं प्रमाणयति—अहं काण इति। अक्षिसम्बन्धीयं कृष्णताराद्यसम्बन्धत्वादिरूपोविकारविशेषः काणशब्दार्थः। अयं चक्षुधर्मोऽतएव ब्राह्मणस्याक्षिकाणमिति प्रयोगः, तथा 'येनाङ्गविकार' इति सूत्रे अक्ष्णा काणइत्युदाहृत्य विकृताक्षिमानित्यर्थःइति काशिकायामुक्तत्वात्, एवञ्चात्राहंकारण इत्यात्मनीन्द्रियधर्मरूपकाणत्वाध्यास

देह के साथ आत्मा के ऐक्याध्यास का खण्डन

आत्मा तथा अनात्मा-देहादि के अन्योन्यात्मकता एवं अन्योन्य धर्मों का अध्यास करके समस्त प्रमातृत्व आदि व्यवहार होते है। ऐसा आदि शंकराचार्य ने अपने भाष्य में कहा है, उनके इस इतरेतराध्यास को दूषित करने के लिये अब विचार करते है। अथ देहात्मैकाध्यास का कथन भी मनोरथमात्र ही है, क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं है यदि कहें कि आत्मा में देह तथा इन्द्रिय आदि ऐक्य तथा उनके धर्मों का अध्यास होता है इसमें **'ब्राह्मणोऽहम् काणोऽहम् बधिरः'** अर्थात् मैं ब्राह्मण हूँ, मैं काणा हूँ मैं बहरा हूँ यह प्रत्यक्ष प्रमाण है तथा **'ब्राह्मणो यजेत ब्राह्मणो निर्वेदमायात् प्रज्ञांकुर्वीत ब्राह्मणः'** ऐसा श्रुति प्रमाण विद्यमान है। इसी प्रकार सुषुप्ति में देह के साथ ऐक्याध्यास के अभाव में प्रमातृत्व का अदर्शन होता है, इत्यादि अन्यथा उपपत्ति प्रमाण भी विद्यमान है, फिर कोई प्रमाण नहीं है, यह कैसे

तद्विरोध्यनुमानाद्यप्रामाण्यस्योक्तत्वेन तद्भेदासिद्धिप्रसङ्गाच्च। इतरेतरभिन्नत्वेन निश्चितानां देहेन्द्रियादीनां युगपदैकात्मैक्याध्यासानुपपत्तेश्च, त्वन्मते देहात्मनोर्भेदस्याप्यध्यस्तत्वेन जीवब्रह्मणोरिव

इन्द्रियैक्याध्यासं विना न सम्भवतीति तदैक्याध्याससिद्धिः। **ब्राह्मणो यजेतेति।** ब्राह्मण्याद्याश्रयशरीरस्य जडत्वेनानियोज्यत्वात्तदैक्याध्यासवानात्मैव नियुज्यत इति भावः। देहैक्याध्यासेऽर्थापत्तिप्रमाणमप्याह—देहैक्याध्यासाभावेति। परिहरति—**नेति।** अनात्मत्वेन=आत्मभिन्नत्वेन। देहात्मैक्येति। किन्तु देहादहमर्थैक्यविषयकत्वमेवेत्यर्थः। आत्मनि देहैक्याध्यासे नेदं प्रत्यक्षप्रमाणमिति भावः। चिदचित्सम्बलनस्य दूषितत्वादहमर्थे ब्राह्मण्यादिविशिष्टदेहैक्याध्यास आत्मन्यपि सम्प्राप्त इवेति शङ्कानवकाश इति हृदयम्। अस्तु वा देहात्म्यैक्याध्यासस्तथापि न तत्र प्रत्यक्षप्रमाणमिति त्वया वक्तुं शक्यमित्याह—**देहेति। तद्विरोधीति।** प्रत्यक्षविरोधीत्यर्थः। इदमत्राकूतम्, पूर्वं तावत्प्रत्यक्षस्य जात्या उपक्रमादिन्यायैश्च प्राबल्यं समर्थ्य तद्वोध्यनुमानादेरेवाप्रामाण्यमित्युक्तम्, एवञ्चेह देहात्मैक्यस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वे कदापि तद्भेदसिद्धिर्न स्यात्तत्सिद्धिर्हि देहादीनां व्यावृत्तत्वात् सूत्रानुस्यूतमणिवदात्मनोऽनुवृत्तत्वात्, व्यावृत्तत्वानुवृत्तत्वरूपविरुद्धधर्माधिकरणत्वानुमानेन, अस्तीत्येवोपलब्धव्य इत्यागमेन च वक्तव्या देहात्मैक्यस्य प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धत्वात्तस्य प्राबल्यं प्राक् समर्थितं तत्प्राबल्येन तद्विरुद्धानुमानागमयोरप्रामाण्यं प्राप्तं तेन ब्रह्मज्ञानात् प्राग्व्यवहारदशायामिदानीं तद्भेदसिद्धिरेव न स्यात्। ननु चन्द्रपरिमाण-प्रत्यक्षस्येव देहात्मैक्यप्रत्यक्षस्याप्यपरीक्षितत्वेन परीक्षितानुमानेनैव बाधः किं न स्यादिति चेन्न, चन्द्रपरिमाणप्रत्यक्षस्य दूरादिदोषेण स्वार्थनिश्चयपराङ्मुखस्य युक्तोऽन्येन बाधो नचेह तथास्ति ब्रह्मज्ञानात्प्राग्व्यवहारदशायां बाधाभावात्, तदङ्गीकारे ब्रह्मज्ञानेतरज्ञान-बाध्यत्वेन

कहा जा सकता है, क्योंकि आपके मत में अहमर्थ अनात्मपरक होने से अहंब्राह्मणः इत्यादि प्रमाण का देह और आत्मा के साथ अध्यास का विषयत्व नहीं है। देह और आत्मा के ऐक्य का प्रत्यक्ष विषयत्व स्वीकार करने पर उसके विरोधी अनुमान आदि में अप्रामाण्य उक्त होने से देह और आत्मा का भेद सिद्ध नहीं होगा परस्पर भिन्नत्वेन विनिश्चित देह तथा इन्द्रिय आदि का एक काल में एक आत्मा के साथ अध्यास की उपपत्ति नहीं होगी आपके मत में देह और आत्मा का भेद भी अध्यस्त

तत्राभेदाध्यासायोगाच्च। ननु देहस्य स्वरूपेणैवाध्यस्तत्वाद्देहात्मनोर्न भेदो नाप्यभेद इति चेन्न, अध्यस्तादपि रजताच्छुक्तेः स्वज्ञानबाध्यभेददर्शनात्। अपिचाहं गेहीति वदहं देहीत्येव प्रतीयते नतु देहोस्मीति कदापि कस्यचित् प्रत्ययो भवति ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽहमित्यादिप्रतीतिरपि प्रमैवदेहसंयुक्तस्य ब्राह्मणादिपदार्थत्वात्, नतु देहविशेषमात्रस्य देहीब्राह्मण इतिवत् देहो ब्राह्मण

प्रातिभासिकत्वापत्या स्वार्थसाधनाय प्रमाणत्वेन प्रत्यक्षोक्त्ययोगान्नहि प्रातिभासिकरूप्यावगाहिप्रत्यक्षं केनचिद्रूप्यसिद्धये प्रमाणत्वेनोदाह्रियतेऽतोऽनुमाना-गमाभ्यामिदानीं भेदसिद्धिः सर्वसम्मता न स्यादतो न तत्र प्रत्यक्षप्रमाणमिति। इतरेतरभिन्नत्वेनेति। त्वया युगपदेवात्मनि देहैक्याध्यासाङ्गीकारेण देहादिन्द्रियमन्यत्, इन्द्रियाद्देहोऽन्य इति भेदस्यैव दर्शनात्। देहोऽहमिन्द्रियोऽहमित्येकदैव देहैक्याभ्यासा-योगात्, नहि भिन्नत्वेन निश्चितयो रङ्गरजतयोरेकदैव शुक्तिकायामेवारोपो दृष्ट इत्यर्थः। त्वन्मते=भेदमात्रस्याध्यस्तत्ववादिनस्तव मते। जीवब्रह्मणोरिव देहात्मनोर्भेदस्याप्यध्य-स्तत्वेनेति योजना। **अध्यासायोगादिति**। परस्परविरुद्धयोरिति न्यायादभेदस्य सत्यत्वं स्यादिति भावः। देहस्य रूप्यवत्स्वरूपेणैवाध्यस्तत्वात्तत्र भेदाभेदयोरुभयोरपि मिथ्यात्वमेवेति शङ्कते—**नन्विति**। परिहरति—**नेति**। **स्वज्ञानेति**। शुक्तिज्ञानबाध्येत्यर्थः। यथा रूप्यस्य स्वरूपेणैव शुक्तावध्यस्तत्वेऽपि तत्प्रतियोगिको भेदः शुक्तौ मिथ्याभूतो दृष्टोऽत्यन्ताभाववद्भेदेऽपि प्रतियोगिसत्त्वनियमाभावात्, एवं देहस्यापि स्वरूपेणाध्या-

---

होने से जीव और ब्रह्म की तरह देह और आत्मा में अभेद का अध्यास नहीं होगा यदि कहें देह का स्वरूप से ही अध्यस्त होने से देह और आत्मा में न भेद होगा नहीं अभेद, तो ऐसा भी नहीं कह सकते अध्यस्त रजत से सुषुप्ति का स्वज्ञान बाध्यरूप भेद देखा गया है। दूसरी बात अहं गेही की तरह अर्थात् जैसे मैं घर वाला हूँ यहाँ घर के साथ अध्यास नहीं है मैं घर हूँ ऐसा नहीं कहा गया है। इसी प्रकार अहं देही इस प्रतीति में मैं देह हूँ, ऐसा भ्रम नहीं होता बल्कि मैं देह वाला हूँ, ऐसी प्रतीति होती है। इसी प्रकार मैं ब्राह्मण हूँ, मैं मनुष्य हूँ यह प्रतीति भी प्रमा है क्योंकि देह से युक्त आत्मा ही ब्राह्मण पदार्थ होता है। वहाँ भी देह विशेष मात्र में देहि ब्राह्मणः की भाँति देहोब्राह्मणाः (देहो ब्रह्मणः) ऐसी प्रतीति नहीं होती बल्कि मम गृहम् (मेरा घर) मम क्षेत्रम् (मेरा खेत) इस प्रतीति की तरह मेरा देह, ऐसी प्रतीति होती

इति प्रत्ययाभावात्। मम गृहं ममक्षेत्रमितिवन्मम देह इति प्रतीतेश्च। अन्धोऽहं बधिरोऽहं काण इत्यादिप्रत्ययोऽपि प्रमैव चक्षुःश्रोत्रादिहीनदेहयुक्तस्यैव तथात्वात्, अन्यथा मम मनो मम चक्षुः मम श्रोत्रमित्यादिभेदप्रतीतिर्न स्यात्। किञ्च कृशोऽहमित्यादिप्रतीतिरपि प्रमैव, किन्तु कर्दमलिप्तेऽहं कृष्ण इतिवद्गौणः पुत्रे कृशेऽहं कृश इति वच्च। नचायमध्यासः। कार्श्यात् पुत्राच्च

सेप्यात्मनि तद् भेदोऽस्तु तथाच देहस्य स्वरूपेणाध्यस्तत्वात्तत्र भेदाभेदयोरपि मिथ्यात्वमित्युक्तमसत् ह्येवं तस्य मिथ्यात्वाङ्गीकारेऽभेदस्य सत्यत्वापादनं युक्तमेवेति भावः। **ब्राह्मणोहमिति**। ब्राह्मण्योपेतदेहवानित्यर्थः। **देहविशेषइति**। वेदाधिकारसम्पादकेत्यर्थः। नन्वन्ध इति चक्षूराहित्यरूपान्धत्वस्य देहधर्मत्वेन तस्यात्मन्यध्यासोऽपि सिद्धइति यदुक्तं तदपि अन्धोऽहमिति कथं प्रमेत्यतआह। **चक्षुः श्रोत्रादिहीनस्यैवेति**। चक्षुःश्रोत्रादिरहितदेहविशिष्टचैतन्यस्यैवेत्यर्थः नतु देहस्यैव तथात्वं तथासति शवदेहे बधिरादिशब्दप्रयोगःस्यादिति भावः। यथात्वात्=अन्धोऽहं बधिरोऽहमिति प्रत्ययसद्भावात्। अन्यथा=उक्तप्रतीतेरभेदावगाहित्वे। ननु कृशोऽहं कृष्णोऽहमिति प्रतीतेः का गतिरित्यतो नात्र तथा प्रतीतिरस्ति किन्तु गौणव्यवहारमात्रमित्याशयेनाह—**किञ्चेति**। ननु पुत्रे कृशेऽहं कृश इति तथा कर्दमलिप्ते स्वस्मिन्नहं कृष्णइत्येतन्न व्यवहारमात्रं किन्तु स्वस्मिन् कार्श्याद्यारोपरूपं ज्ञानमित्याशङ्क्य निराकरोति—**न चायमिति। अन्यथेति।** कृशोऽहमित्यादेर्गौणत्वमनङ्गीकृत्याध्यासत्वाङ्गीकार इति तदर्थः। मञ्चाःक्रोशन्तीत्यादौ

है। इसी प्रकार मैं अन्धा हूँ, मैं काना हूँ इत्यादि प्रतीति भी प्रमाण ही है। क्योंकि नेत्र तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियों से हीन देह युक्त व्यक्ति को ही ऐसी प्रतीति होती है अन्यथा मेरा मन, मेरी आँख, मेरा कान इत्यादि भेद की प्रतीति नहीं होती इसी प्रकार **'कृशोऽहं स्थूलोऽहं'** इत्यादि प्रतीति भी प्रमा ही है, किन्तु कर्दम् (कीच) से लिप्त शरीर में अहं कृष्णः (मैं काला हूँ) इस प्रकार (गौण प्रयोग है अथवा) किसी के पुत्र के कृश होने पर अहंकृशः (मैं कमजोर हूँ) यह अध्यास नहीं है कृशता से और पुत्र से स्वभेद स्पष्ट प्रतीयमान हैं, इसीलिये यह अध्यास नहीं है, किन्तु गौण प्रयोग है, गौण प्रयोग स्थल में अध्यास नहीं माना जाता अथवा मञ्चाः क्रोशन्ति इत्यादि वाक्यों में भी अध्यासत्व होगा, पुत्र की कृशता से दुःख का अनुभव पुत्र के अतिशय प्रेमास्पद होने से ही घटता है। दूसरी बात कृशोऽहं (मैं

स्वभेदस्य स्पष्टं प्रतीयमानत्वादन्यथा मञ्चाः क्रोशन्तीत्यादेरप्यध्यासत्वं स्यात् पुत्रकार्श्येन दुःखानुभवस्यातिशयप्रेमास्पदत्वेनैव घटते किञ्च कृशोऽहमित्यध्यासोऽनुपपन्नो विकल्पासहत्वात् तथाहि कृष्णोऽहं कृशोऽहमित्यादौ कृष्णत्वादिधर्माणां रज्जौ सर्पस्य भीषणत्वादीनामिव धर्मैक्येन सहाध्यासो वा स्फटिके लौहित्यस्येव वा धर्मिणं विनैव। नाद्यः।

क्रोशनाध्यासस्य वक्तुं शक्यत्वात् लाक्षणिकत्वं न स्यात् यदि तत्र पुरुषभेदस्य मञ्चेषु स्पृष्टत्वान्न तत्राध्यास इत्युच्यते तर्हि प्रकृतेऽपि सममिति भावः। ननु पुत्रकार्श्यस्य स्वस्मिन्नध्यासाभावे कथं तेन दुःखं स्वस्य भवतीतिचेत्तत्राह—**पुत्रकार्श्येनेति**। विकल्पं दर्शयति—**तथाहीत्यादिना। सहाध्यासइति**। धर्मविशिष्टधर्म्यैक्यारोपइत्यर्थः। **धर्मिणं विनैवेति**। धर्म्यैक्याध्यासं विना धर्ममात्रारोप इत्यर्थः। आद्यपक्षं परिहरति—**नाद्यइति। पूर्वमेवेति**। अहं गेहीतिवच्चाहं देहीत्येव प्रतीयत इति धर्मिभेदस्य प्रत्यक्षत्वसिद्ध-मितिप्रागभिहितमित्यर्थः। द्वितीयपक्षं निरस्यति—**न द्वितीयइति। द्वयोरिति**—तत्र यथा रक्तः स्फटिकः कुसुमं रक्तमिति प्रतीतिद्वयमस्ति तथा देहः कृशः, अहं कृशइतिप्रतीति-द्वयाभावादित्यर्थः। वैपरीत्यतामाशङ्क्यापाकरोति—**न चेति। शिलापुत्रिकाया**=पाषाण-मयिप्रतिमायाः। तथाच पुत्रादिस्थितकार्श्यादिवत्, अहं कृश इत्यादेर्व्यवहारमात्रत्वाङ्गीकारे अयं शिलापुत्रिकाया देह इतिवन्मम देहइत्ययमपि गौणो व्यवहार एव स्यान्न प्रतीतिरित्यर्थः। एकत्र मुख्यत्वेन क्लृप्तस्यैवान्यत्राप्यसति बाधके मुख्यत्वमेव कल्प्यं गौणत्वेनैकत्र क्लृप्तस्य चान्यत्राप्यसति बाधके गौणत्वमेवेत्याह—**ममेति**। इत्यस्य प्रयोगस्य मुख्यतायाः क्लृप्तत्वादितरजन्यव्यवहारोऽपि मुख्यइत्यर्थः। **कृशोहमिति**।

दुबला हूँ) इसमें अध्यास उपपन्न नहीं हो सकता क्योंकि इसमें विकल्प होने पर उसका उत्तर नहीं हो सकता जैसे कृष्णोऽहं (मैं काला हूँ) कृशोऽहम् (मैं दुबला हूँ) यहाँ पर कृष्णत्वादि धर्म रज्जू में सर्प की भीषणत्वादि धर्म के ऐक्य के साथ अध्यास है अथवा स्फटिक में लोहित की तरह धर्म के बिना ही अर्थात् रज्जू सर्प में धर्म विशिष्ट धर्मी के ऐक्य का आरोप और स्फटिक में लोहित का धर्मी के ऐक्याध्यास के बिना धर्ममात्र का आरोप है पहला पक्ष नहीं कह सकते इसका

पूर्वमेव निरस्तत्वात्। न द्वितीयः। लौहित्यवत् कार्श्यादेर्द्वयोः प्रतीत्यापत्तेः। न च कृशोऽहमित्यैक्यप्रतीत्या शिलापुत्रिकाया देह इतिवन्मम देह इत्ययमेव गौण इति वाच्यम्। मम देह इत्यस्य देहात्मविवेकवन्मुख्यतायाः कृशोऽहमित्यस्य च पुत्रकार्श्ये गौणतायाः क्लृप्तत्वात्। तत्र भेदधीः स्पष्टैवेति चेदिहापि तथात्वात्॥९०॥

पुत्रे कार्श्ये पुत्रे कृशे सति क्रियमाणोऽहं कृशइत्यादिव्यवहार इत्यर्थः। ननु शिलापुत्रिकायादेहइत्यत्र गौणत्वदर्शनादत्रापि तथाऽस्त्विति चेत् भ्रान्तोऽसि यदि शिलापुत्रिकाया नम देह प्रतीतिःस्यात्तदैव मम देह इतिप्रतीतेरपि गौणत्वं कल्पयामो नचैवं तस्य जडत्वेन ममदेह इति तस्याः प्रतीत्यभावात्, अयं शिलापुत्रिकायादेह इत्येव व्यवहार इति भावः। **तत्रेति**। विवेकिनां व्यवहारे पुत्रकार्श्येन क्रियमाणे व्यवहारे चेत्यर्थः। **इहापीति**। ममदेहदेहइत्यत्रापीत्यर्थः। तथात्वात्=भेदधियःस्पष्टत्वात्। जातमात्रस्य पश्वादेः प्रवृत्त्यादिहेतोरिष्टसाधनतानुमितिर्हेतुर्यत्स्तन्यपानं तदिष्टसाधनम्, यथापूर्वदेहीयं स्तन्यपानमित्यादिव्याप्तिस्मृतिस्तावन्न देहान्तरस्मृतौ युक्ता, नच मम प्राक् देहान्तरमभूदितिस्मरतस्तस्यैक्यधीः सम्भवति किन्त्वनेकमण्यनुस्यूतसूत्रमिवानेकदेहेष्वनुस्यूतमात्मानं पश्यतस्ततो भेदधीरेव तदुक्तं "जातमात्रा मृगा गावो हस्तिनः पक्षिणो ह्यषाः। भयाभयस्य भोगादौ कारणानि विजानते। अस्मृतौ पूर्वदेहस्य विज्ञानं तत्कथं भवेदि" ति भावः ।।९०।।

पहले ही खण्डन किया गया है। अहं गेही की तरह अहं देहि यहाँ धर्मी भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है। दूसरा पक्ष भी नहीं कह सकते लोहित की तरह कार्श्य आदि धर्म की दोनों में प्रतीति की आपत्ति होगी अर्थात् जैसे रक्त स्फटिकः कुसुममरक्तम् ये दोनों प्रतीति होती है। उस प्रकार देहः कृशः अहं कृष्णः ये दोनों प्रतीति नहीं होती जिसकी आपत्ति नहीं होगी यदि कहें कृशोऽहम् इस ऐक्य प्रतीति से पाषाणमयी प्रतिमा का देह की तरह मम देहः (इसी को गौण प्रयोग मान लेंगे) तो ऐसे नहीं कह सकते मम देहः इस प्रतीति का देहात्म विवेक की तरह मुख्यता का कृशोऽहम् इस प्रतीति का पुत्र की कृशता में गौणता निश्चित है वहाँ पर भेद बुद्धि स्पष्ट ही है ऐसा कहें तो यहाँ भी स्पष्ट भेद है। ।।९०।।

नन्वहं गौरोऽहं स्थूल इतिस्थौल्यादिविशिष्ट-देहस्याहमर्थेऽभेदारोपवच्चेतनोऽहं करोमीति कृत्यादिविशिष्टाहमर्थस्य चेतने भेदारोपः स्यादिति चेन्न, योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं सोऽहं स्थविरः नप्तृननुभवामि योऽहं स्वप्ने व्याघ्रदेहः सोऽहमिदानीं मनुष्यदेह इति देहभेदज्ञानपूर्वकं स्वस्यैक्यमनुसंदधानः कथं ततो भेदं न जानीयात् दृष्टान्तासिद्धेरित्यर्थः। नचेयं विरुद्धधर्म्मरूपलिङ्गधीजन्या भेदधीः परोक्षेति नैक्यापरोक्षभ्रमविरोधिनीति वाच्यम्। प्रत्यक्षे धर्मिणि भेदकसाक्षात्कारस्य भेदसाक्षात्कारव्याप्तत्वात्। इह च व्यावृत्तत्वेन

अहं गौरोऽहं स्थूल इत्यत्राहमर्थे स्थौल्यादिविशिष्टदेहस्याभेदो यथाऽऽरोप्यते तद्वत् चेतनोऽहं करोमीत्यत्र चेतने कृत्यादिविशिष्टाहमर्थस्याभेद आरोपयितुं शक्यते तथाचाहं गौर इत्यादितादात्म्यबुद्धिर्मम देह इति ज्ञानस्यौपचारिकत्वं साधयतीत्याशयेन शङ्कते— **नन्विति। परिहरति—नेति।** नप्तृन्=पौत्रपुत्रान्। अनुसंदधानः=प्रत्यभिजानन्। ततः=देहात्। **विरुद्धेति**। व्यावृतत्वानुवृत्तत्वरूपविरुद्धधर्मेत्यर्थस्तथाच यत् यदनुवृत्तं तत् तदनुवृत्तभिन्नमितिव्याप्त्या आत्मनि तद्देहानुवृत्तत्वेन हेतुना तद्देहाननुवृत्तदेह-भेदानुमितिरिति भावः। यदुक्तमनेकमणिष्वनुस्यूतसूत्रमिवानेकदेहेष्वनुस्यूतमात्मानं पश्यतः योऽहं बाल्य इति प्रत्यभिज्ञावतश्च ततो भेदधीरेवेति यदुक्तं तन्न युक्तं मम देह इत्यस्याः प्रतीतेः व्यावृत्तत्वानुवृत्तत्वरूपविरुद्धधर्माधिकरणरूपलिङ्गजन्यत्वेन परोक्षतया

यदि कहें कि अहंगौरः अहं स्थूलः इत्यादि स्थौल्य आदि गुण विशिष्ट देह का अहमर्थ में अभेद के आरोप की तरह चेतनोऽहंकरोमि इत्याकारक कृत्यादि विशिष्ट अहमर्थ का चेतन में भेदारोप होगा तो ऐसा भी नहीं कह सकते योऽहम् बाल्येपितरावन्वभूवं सोऽहम् स्थविरे नप्तृननुभवामि अर्थात् जो मैंने वचन में माता पिता का अनुभव किया वहीं में बुढ़ापे में नाती-पोते का अनुभव करता हूँ तथा जो मैं सपने में बाघ का देह वाला था वही मैं सम्प्रति मनुष्य देहवाला हूँ इस प्रकार देह भेद ज्ञान पूर्वक अपनी एकता का अनुसंधान करता हुआ कैसे उससे अपने भेद को नहीं जानेगा। इस प्रकार दृष्टान्त की असिद्धि है। यदि कहें यह विरुद्ध धर्म रूप लिङ्ग ज्ञानजन्य भेद बुद्धि परोक्ष है इसीलिये यह ऐक्य के अपरोक्ष भ्रम विरोधी नहीं हो सकती तो ऐसा भी नहीं कह सकते कारण, प्रत्यक्ष में धर्मी में भेदक साक्षात्कार भेदसाक्षात्कार से व्याप्त होता है और यहाँ तो व्यावृतत्वरूप से बुद्धिस्थिति देहादि

धीस्थदेहादिभेदकस्यानुवृत्तत्वस्यात्मनि प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षसिद्धत्वात्, व्यावर्त्तकसाक्षात्कारस्यैवैक्यापरोक्षभ्रमेण भेदव्यवहारस्यौपचारिकत्वेन सह विरोधाच्च। नचैक्यधीविरोधिनो नीला बलाकेत्यत्र नीलाद्भेदकस्य बलाकात्वस्य ग्रहेऽपि नीलभेदप्रत्यक्षाभावस्य तदभेदप्रत्यक्षस्य च दर्शनाद्व्यभिचार इति वाच्यम्। दोषविशेषाजन्यारोपस्यैव

कृशोऽहमित्यादिदेहात्मैक्यापरोक्षभ्रमनिवर्त्तकत्वं नास्ति श्वैत्यानुमितेः पैत्यापरोक्षभ्रम-निवर्त्तकत्वादर्शनादिति शङ्कितुरभिप्रायः। **प्रत्यक्षे धर्मिणीति**। भेदकधर्मसाक्षात्कारोप-पादानायेदम्। समानविषयेऽनुमिति सामग्रीतः प्रत्यक्षसामग्र्याः प्राबल्यमतएव पुरुषत्व-व्याप्यकरादिमानयमितिपरामर्शदशायां पुरुषत्वस्य प्रत्यक्षं भवति नत्वनुमितिः भिन्ने विषयेऽनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वादनुमितिरेवोत्पद्यते न परामर्शप्रत्यक्षम्, एवञ्च प्रत्यक्षे देहात्मरूपे धर्मिणि व्यावृत्तत्वानुवृत्तत्वरूपभेदकधर्मसाक्षात्कारस्य भेदप्रत्यक्षसाम-ग्रीत्वात्भेदसाक्षात्कार एव जायते इत्यपरोक्षैक्यभ्रमविरोधित्वमेवेति भावः। **इहचेति**। व्यावृत्तत्वेन धीस्थोयः स्वदेहादितद्भेदकस्येत्यर्थः। तद्व्याप्य आत्मनि देहभेदोऽपि प्रत्यक्षसिद्ध इति भावः। अस्तु वा भेदसाक्षात्काराभावस्तथापि केवलं व्यावर्तक-धर्मसाक्षात्कार एव देहात्मैक्यापरोक्षभ्रमविरोधी भेदव्यवहारस्यौपचारिकत्वविरोधी च भविष्यतीत्याह—**व्यावर्त्तकेति**। भेदसाक्षात्कारव्याप्यभेदकसाक्षात्कारस्येत्यर्थः यद्धीर्यत्र प्रतिबन्धिका तत्सामग्र्यपि तत्प्रतिबन्धिकेति न्यायादिति भावः। भेदकसाक्षात्कारो

भेदक अनुवृतत्व का आत्मा में प्रतिभिज्ञा प्रत्यक्ष सिद्ध है। दूसरी बात व्यावर्तक साक्षात्कार का ही ऐक्य के अपरोक्ष भ्रम से भेद व्यवहार का औपचारिकत्व के साथ विरोध भी है। यदि कहें ऐक्य बुद्धि के विरोधी नीला बलाका यहाँ पर नील से भेदक बलाकात्व का ग्रहण होने पर भी नील भेद प्रत्यक्षाभाव तथा उसके अभेद प्रत्यक्ष के दर्शन होने से व्यभिचार होगा तो ऐसा नहीं कहा जा सकता कारण दोष विशेष से अजन्य आरोप ही विशेष बुद्धि से प्रतिबद्ध होता है (नीलबुद्धि दोषविशेष जन्य होने से विशेष बुद्धि) प्रतिबद्ध नहीं होगा कहें कि प्रकृत में भी दोष विशेष जन्य आरोप है तो ऐसा नहीं कह सकते भेद ज्ञान से निवृत्ति की उपपत्ति नहीं होगी क्योंकि स्वोपाधिक पदार्थ का अधिष्ठान साक्षात्कार होने पर भी उपाधि पर्यन्त कृतित्व का नियम है। जहाँ-जहाँ बलाका होती है, वहाँ-वहाँ नील भेद का साक्षात्कार भी होता है इस प्रकार दैशिक व्याप्ति में कोई दोष नहीं है यही बात कह

विशेषधीप्रतिवध्यत्वात्, नीलधियो दोषविशेषजन्यत्वेन तदप्रतिबध्यत्वात्। न च प्रकृतेऽपि दोषविशेषजन्यारोप इति वाच्यम्। भेदज्ञानेन निवृत्त्यनुपपत्तेः, सोपाधिकस्याधिष्ठानसाक्षात्कारेऽपि यावदुपाधिवृत्तित्वनियमात्। वस्तुतस्तु यदा भेदकप्रत्यक्षं तदा भेदप्रत्यक्षमिति कालिकव्याप्तिर्नाङ्गीक्रियते, अपितु यत्र भेदकप्रत्यक्षं तत्र भेदप्रत्यक्षमिति दैशिकव्याप्त्यङ्गीकारः, भवति च बलाकायं दिवा

भेदसाक्षात्कारव्याप्त इत्यत्र व्यभिचारमाशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। तदभेदप्रत्यक्षस्य=नीलाभेदप्रत्यक्षस्य। नहि विरोधिधर्मसाक्षात्कारस्य भ्रमविरोधित्वमाचक्ष्महेऽपितु दोषविशेषाजन्यभ्रमं प्रत्येवेत्याशयेनाह—**दोषविशेषेति। तदप्रतिवध्यत्वात्**=भेदकबलाकात्वग्रहाप्रतिबध्यत्वात्। अपरोक्षस्य देहात्मैक्यभ्रमस्य दोषविशेषजन्यत्वेन देहात्मरूपे धर्मिणि व्यावृत्तत्वानुवृत्तत्वरूपभेदकसाक्षात्कारानिवर्त्यत्वमित्याशङ्क्य परिहरति—**नचेति। भेदज्ञानेति।** आत्मा देहोनेति बुद्धेस्त्वयापिस्वीकारात्तादृशभेदज्ञानेन देहात्मैक्यभ्रमस्य निवृत्तिर्न स्यात्तस्य वासनाविशेषरूपदोषजन्यतयाभेदज्ञानेनाप्रतिबद्ध्यत्वादितिभावः। यदिच न विरोधिधर्मसाक्षात्कारस्य भ्रमविरोधित्वं भ्रमविरोधिभूतोर्ध्वाग्रत्वादि-रूपवृक्षत्वसाक्षात्कारेऽपि अधोग्रत्वादिभ्रमानुवृत्तिरेवास्ति, अतस्तद्वदस्यापि सोपाधिक-भ्रमत्वाद्व्यावर्तकधर्मसाक्षात्कारमात्रस्यैव नैक्यभ्रम विरोधित्वमित्युच्यते तथाप्यस्य

रहे है वस्तुतस्तु इत्यादि ग्रन्थ से अर्थात् जब भेदक प्रत्यक्ष होता है तब भेद प्रत्यक्ष होता है। ऐसी कालिक व्याप्ति नहीं स्वीकार की जाती है बल्कि जहाँ भेदक का प्रत्यक्ष होता है वहाँ भेद का प्रत्यक्ष होता है इत्याकारक दैशिक व्याप्ति स्वीकार है। बलाका में दिन में नील भेद का प्रत्यक्ष होता है। इसलिये उक्त दोष का अवकाश नहीं है। बलाका में भी नील भेद का साक्षात्कार होने से दैशिक नियम की असिद्धि नहीं है रात्रि में दोष के वश नील के अभेद की प्रतीति होती है इसी आशय से उक्त अर्थ को प्रकाशित करते है 'भवति च बलाकायां' इस ग्रन्थ से देह के नाश के काल में आत्मा के नित्य होने से उसका नाश नहीं होता इसीलिये देह आत्मा नहीं है इत्याकारक भेदावगाही प्रतीति उत्पन्न होती है इसीलिये उस काल में देह के साथ आत्मा का ऐक्यारोप नहीं होता और उसके अभाव से ही मैं ब्राह्मण हूँ यह व्यवहार

नीलभेदप्रत्यक्षं तस्मान्नोक्तदोषावकाशः। न च देहनाशसमये तद्भेदसिद्धावपि तद्देशकाले तदैक्यारोपासम्भवादिष्टसिद्धिरिति वाच्यम्। देहनाशे मृतस्य प्रत्यक्षसाधनसामग्रीलयात्, म्रियमाणस्य जीवद्दशाव्यावृत्तभेदप्रत्यक्ष-सामग्र्यभावाच्च, मुमूर्षोरचाक्षुषात्मप्रतियोगिकात्माधिकरणक-भेदस्यापरोक्षासम्भवात्तस्मान्नोक्तप्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमिति सिद्धम्। अथ "ब्राह्मणो यजेते" त्यादिश्रुतीनामपि न तत्र प्रामाण्यं वक्तुं शक्यमसम्भवात्। श्रुतौ ब्राह्मणशब्दो लक्षणया देहविशेषैक्याध्यासवद्वाचको वा देहविशेषनिष्ठाध्यासिकसम्बन्धपरो वा देहविशेष एव शक्तो वेति

भ्रमस्य सोपाधिकत्वेऽधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारेणापि निवृत्तिर्नस्यादित्याशयेनाह—**सोपाधिकस्येति**। यत्र यत्र वलाका तत्र तत्र नीलभेदसाक्षात्कारोऽपि विद्यत इति दैशिकव्याप्तौ न कोपिदोषइत्याह—**वस्तुतस्त्विति**। वलाकायामपि नीलभेदसाक्षात्कारसत्त्वान्न दैशिकनियमासिद्धिः निशि दोषवशात्तुनीलाभेदप्रत्यय इत्याशयेनोक्तार्थं स्फुटयति—**भवतीति**। देहनाशकाल आत्मनो नित्यत्वेन तन्नाशायोगात् देहो नात्मेति भेदावगाही प्रत्यय उत्पद्यते, अतएव न तदानीं देहात्मैक्यारोपः तदभावादेवाहं ब्राह्मण इति व्यवहारो न प्रवर्त्तते इत्यध्याससिद्धिरित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। तद्भेदसिद्धौ=देहो नात्मेति भेदसिद्धौ। तदैक्यारोपासम्भवात्=देहात्मैक्यारोपासम्भवात्। देहो नात्मेति भेदज्ञानस्य देहात्मैक्यारोपप्रतिबन्धकस्य सत्त्वादिति भावः। इष्टसिद्धिः=अध्याससिद्धिः। देहनाश-

---

नहीं होता इसीलिये अध्यास की असिद्धि है। ऐसी आशंका करके परिहार करते है **न च देह नाश समये** इस प्रकार शंका करके उत्तर देते है। तद्भेदसिद्धौ देह आत्मा नहीं है ऐसा भेद सिद्ध होने पर। तद् ऐक्यासंभवात् अर्थात् देह तथा आत्मा में ऐक्य के आरोप के असंभव होने से। देह आत्मा नहीं है इस भेद ज्ञान का देह के साथ आत्मा के आरोप का प्रतिबंधक विद्यमान है यह भाव है इष्ट माने अध्यास की सिद्धि होगी। ऐसे नहीं कह सकते क्योंकि देहनाश के समय में यदि देह आत्मा नहीं है, इस प्रकार भेदज्ञान होगा तभी उक्त कल्पना की जा सकती है। देह नाश होने पर (मृतस्य) मृत व्यक्ति का देह आत्मा नहीं है। इस प्रतीति से सिद्ध भेद का प्रत्यक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्यक्ष के प्रयोजक करणों का लय हो गया है और म्रियमाण व्यक्ति को भी तादृश प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि उक्त प्रत्यक्ष के प्रयोजक सामग्री का अभाव है। देहानियोगिक आत्मप्रतियोगिक भेद प्रत्यक्ष के प्रति अनुयोगी

विवेचनीयम्। नाद्यः। विधौ लक्षणासम्भवात्। किञ्च पुत्रमित्रादिषु विकलेषु सकलेषु वाऽहमेव विकलः सकलो वेति भवद्भिरध्यासाङ्गीकारेण भृत्यमित्रादावपि तस्य सत्त्वेन शूद्रस्वामिनो मित्रस्य वा ब्राह्मणादेर्यागाद्यनधिकारप्रसङ्गात् ब्राह्मणमित्रस्य शूद्रस्य

समये यदि देहो नात्मेतिभेदज्ञानं स्यात्तदोक्तकल्पना कर्त्तुंशक्यते नत्वेवमित्याशयेनोक्त शङ्कां निरस्यति—**देहनाश इति।** देहनाशे मृतस्य देहो नात्मेति प्रतीतिसिद्धभेदप्रत्यक्षं नोत्पत्तुमर्हति प्रत्यक्षप्रयोजककरणानां लयादित्यर्थः। म्रियमाणस्यापि तादृशप्रत्यक्षं न जायते तादृशप्रत्यक्षप्रयोजकसामग्र्यभावादित्याह—**म्रियमाणस्येति।** देहानुयोगिकात्म-प्रतियोगिकभेदप्रत्यक्षंप्रति, अनुयोगिप्रत्यक्षस्य कारणत्वमिति तावन्निर्विवादं प्रकृतेऽनु-योगिनो देहस्य नष्टत्वान्न देहाधिकरणकात्मप्रतियोगिकभेदस्य प्रत्यक्षत्वमित्याशयेनाह—**मुमूर्षोरिति।** देहो नात्मेति प्रतीतिसिद्धस्य भेदस्यानुयोगिनो देहस्य नाशान्न तादृशप्रत्यक्षं भवितुमर्हतीतिस्फोरयितुमचाक्षुषेत्युक्तम् तस्य द्वितीयात्मपदवाच्यदेहेऽन्वयः। उक्तप्रत्यक्षस्य=अहं ब्राह्मण इति प्रत्यक्षस्य। अत्र=देहात्मैक्याध्यासे। देहैक्याध्याससद्भावे ''ब्राह्मणो यजेते'' त्यादिश्रुतिः प्रमाणत्वेनोपन्यस्ता तं निराकुर्वन्नाह—**अथेति।** तत्र= देहात्मैक्याध्यासे। श्रुतिस्थब्राह्मणपदार्थं वितर्कयति—ब्राह्मणशब्द इति। आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति। विधाविति।** न विधौ परः शब्दार्थ इति जैमिनिसूत्रात् ''ब्राह्मणो यजेते'' त्यस्यापि विधिवाक्यत्वेन तत्र लक्षणाव्याख्यानायोगादिति भावः। परः

प्रत्यक्ष की कारणता निर्विवाद है प्रकृत में अनुयोगी देह के नष्ट हो जाने से देहाधिकरणक आत्मप्रतियोगिक भेद का प्रत्यक्ष नहीं होगा यह सिद्ध है इसी प्रकार ब्राह्मणो यजेत् इत्यादि श्रुतियों का भी अध्यास में प्रमाण नहीं कह सकते, असंभव है। हम पूछते हैं श्रुति में ब्राह्मण शब्द लक्षणा से देह विशेष के साथ ऐक्याध्यास विशिष्ट का वाचक है अथवा देह विशेष निष्ठा अध्यासिक परक है किंवा देह विशेष में ही शक्त है यह बात विचारणीय है प्रथम पक्ष नहीं कह सकते क्योंकि 'न विधौ परः शब्दार्थः' इस जैमिनि सूत्र से ब्राह्मणो यजेत इस श्रुति के भी विधिवाक्य होने से वहाँ पर लक्षणा की व्याख्या संभव नहीं है। उक्त जैमिनि सूत्र में पर माने शक्यार्थ भिन्न लक्ष्यार्थ विधिवाक्य में भासित नहीं होता यह उक्त सूत्र का अर्थ है इसी प्रकार ब्राह्मणो यजेत इत्यादि श्रुतियाँ भी अध्यास में प्रमाण नहीं हो सकती क्योंकि ऐसा संभव नहीं है श्रुति में और पुत्र मित्र आदि के विकल होने (दुःखी)

तत्राधिकारापत्तेश्च। किञ्च ''ब्राह्मणो न हन्तव्य'' इति निषेधस्य सुप्तजीवन्मुक्तविषयकत्वानुपपत्तेः ॥ ९१ ॥

शक्यार्थभिन्नो लक्ष्यार्थः विधिवाक्ये न भासत इत्युक्तसूत्रार्थः। ब्राह्मणदेहैक्याध्यासवतो यागाधिकारित्वस्यैतच्छ्रुत्यर्थत्वे दूषणमाह—**किञ्चेति। विकलेषु**=व्यङ्गेषु। **सकलेषु**=दृढाङ्गेषुसत्सु। **भृत्यमित्रादावपीति**। सकले विकले वा भृत्यादावहमेव विकल इत्याद्यध्यासाङ्गीकारेणेत्यर्थः मित्रग्रहणस्योत्तरातिप्रसङ्गकथन उपयोगः। तस्य=अध्यासस्य। **शूद्र-स्वामिन इति**। शूद्रं प्रति स्वामिनःशूद्रभृत्यकस्येत्यर्थः। तथाच ब्राह्मणैक्याध्यासवतो यागाधिकारित्वे शूद्रदेहैक्याध्यासवतो ब्राह्मणस्यानधिकारापाताच्चेत्यर्थः। **ब्राह्मणादीति**। ब्राह्मणादिवर्णत्रयं मित्रं यस्येत्यर्थः तत्रापि ब्राह्मणादिदेहे व्यङ्गे साङ्गे वाऽहमेव व्यङ्गइत्याध्यासेन ब्राह्मणैक्याध्याससद्भावाद्ब्राह्मणमित्रस्य शूद्रस्याप्यधिकारापातादिति भावः। **सुप्तेति**। सुप्तस्य ज्ञानमात्रलोपेन ब्राह्मणादिदेहैक्याध्यासस्याभावात् तथा जीवन्मुक्तस्य देहात्मविवेकसद्भावेनारोपितब्राह्मण्यस्याभावेन सुप्तजीवन्मुक्तयोः शिरश्च्छेदे ब्रह्महत्यादिमहापातकाभावप्रसंग इति भावः ।।९१।।

या सुखी होने पर यहाँ आपके अध्यास स्वीकार करने से भृत्य मित्र आदि में भी अध्यास के होने से शूद्र के स्वामी अथवा मित्र ब्राह्मण आदि के याग आदि के अनधिकार का प्रसंग होगा और ब्राह्मण के मित्र शूद्र में अधिकार की आपत्ति होगी दूसरी बात ब्राह्मणो न हन्तव्यः इस निषेध में सुप्त एवं जीवन मुक्त विषयकत्व की अनुपपत्ति होगी। यदि कहें अपने द्वारा अनुष्ठित कर्म से प्राप्त देह विशेष के साथ ऐक्याध्यास वाला ही ब्राह्मण परिवाच्य होता है तो ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि आवश्यक रूप में अपने कर्म से देह विशेष के अर्जन में ही तदर्थक की उपपत्ति होगी। दूसरी बात ब्राह्मणो न हन्तव्यः इस निषेध वाक्य में सुप्त जीवन मुक्त विषयकत्व की अनुपपत्ति अर्थात् सुप्त व्यक्ति के ज्ञानमात्र का लोप होने से ब्राह्मण आदि देहों के साथ ऐक्याध्यास के अभाव से तथा जीवन्मुक्त व्यक्ति में देहात्मविवेक सद्भाव से आरोपित ब्राह्मणत्व के अभाव से सुप्त एवं जीवन मुक्त व्यक्ति के शिर काट देने पर ब्रह्म हत्या आदि महापातक अभाव का प्रसंग होगा ।।९१।।

न च स्वकर्मार्जितेन देहविशेषेणैक्याध्यासवान् ब्राह्मणपदवाच्य इति वाच्यम्। आवश्यकत्वेन स्वकर्मणा देहविशेषार्जनस्यैव तदर्थत्वोपपत्तेः। नापि कादाचित्काध्यासवांस्तदर्थः। महापातकेन नष्टब्राह्मणत्वस्याप्यधिकारित्वापत्तेः। आजन्मनोऽपि जीवन्मुक्तस्य कर्मादिसाधननिषेधविषयत्वापत्तेश्च, पातकेन नष्टब्राह्मण्यस्य निषेधविषयत्वानापत्तेश्च। नच पातक एव तत्रानधिकारप्रयोजकः पतितो ब्राह्मण इति व्यवहारादिति वाच्यम्। शापादिना यवनतां चाण्डालतां वा प्राप्तस्य तथा व्यवहाराभावात्। अतएव न द्वितीयः। संयोगस्यात्मविभुत्वपक्षे

स्वकर्मेति। भृत्यमित्रादिदेहानां स्वकर्मार्जितत्वाभावान्नोक्तातिप्रसङ्ग इति भावः। **आवश्यकत्वेनेति**। देहैक्याध्यासस्यैवाधिकारप्रयोजकत्वं वदतोऽपि कर्मण आवश्यकत्वादित्यर्थः। **अर्जनस्यैवेति**। तथाच स्वकर्मणा देहविशेषार्जनवानेव ब्राह्मणशब्दार्थो नत्वैक्याध्यासोपीत्यर्थः। ततश्च नेयं श्रुतिरध्यासे मानमिति भावः। तदर्थत्वोपपत्तेः=ब्राह्मणशब्दार्थत्वोपपत्तेः। **कादाचित्केति**। तथाच कदाचिदैक्याध्यासवत् एव ब्राह्मणशब्दार्थत्वेन सुप्तजीवन्मुक्तयोरपि कादाचिदैक्याध्याससद्भावेन ब्राह्मण्यसद्भावेन निषेध विषयत्वसम्भवान्नोक्तातिप्रसङ्ग इति भावः। **नष्टेति**। ''मासेन शूद्रो भवति ब्राह्मणःक्षीरविक्रयात्। तत्काल एव चाण्डालो ब्राह्मणोब्रह्महत्यये'' ति मनुस्मरणादित्यर्थः। **आजन्मनोपीति**। तस्य जन्मारभ्य

यदि कहें अपने पुण्य पापादि कर्म से अर्जित देह विशेष के साथ अध्यासवान् व्यक्ति ही ब्राह्मण पदवाच्य होता है। भृत्य तथा मित्र आदि के देहों में स्वकर्मादितत्व के अभाव होने से उक्त अति प्रसंग नहीं होगा तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि देह के साथ अध्यास में ही अधिकार प्रयोजकत्व कहने वाले व्यक्ति के लिये भी कर्म आवश्यक है, इस आवश्यक स्वकर्म द्वारा देह विशेष प्राप्त करनेवाला ब्राह्मण पदवाच्य है। न कि देह के साथ ऐक्याध्यास भी तब उक्त श्रुति अध्यास में मान है। नहीं कादाचित्क अध्यासमान, इस प्रकार कदाचित् ऐक्याध्यासवान् ही ब्राह्मण शब्दार्थ होने से सुप्त एवं जीवन्मुक्त व्यक्तियों में भी कदाचित् ऐक्याध्यास सद्भाव होने से ब्राह्मणत्व के सद्भाव होने के कारण निषेध विषयत्व संभव होने से उक्त अति प्रसंग नहीं होगा। महापातक के द्वारा जिसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है उसमें भी अधिकारी। **मासेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्** अर्थात् मास, दिन में ही दूध बेचने से ही ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। तत्काल एव चाण्डालो ब्राह्मणो ब्रह्महत्यया। ब्रह्महत्या करने से ब्राह्मण भी चाण्डाल हो जाता है, ऐसा मनुभगवान्

सर्वदेहेषु स्वस्वामिभावस्य च भृत्यदेहे सत्त्वेऽऽपीच्छानुविधायित्वस्य चातुरादिदेहेष्वसत्त्वेपि साक्षात् स्वस्वामिभावस्य वा तदिन्द्रियाश्रयत्वस्य वा साक्षात्तत्प्रयत्नजन्यक्रियाश्रयत्वस्य वा तद्भोगायतनत्वस्य वा तत्कर्मार्जिततत्वस्य वा सम्बन्धान्तरस्य सम्भवात्। न च प्रयत्नादावप्यात्मैक्यभ्रमएव सम्बन्धः। अहं कृतिरितिप्रतीत्यभावात्, आत्मसमवायादेः सम्बन्धान्तरस्य तत्त्वाच्च। नचानतिप्रसङ्गाय स्वस्वामिभावादिरैक्याध्यासमूलसम्बन्धाधीन इति वाच्यम्। वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात्, तत्तत्कर्मार्जितस्यैव मूलसम्बन्धत्वाच्च। न च तत्तत्कर्मार्जितत्वं

देहात्मभेदज्ञानित्वेनाधिकारप्रयोजकस्य कदाचिदध्यासस्याप्यभावेन तद्धनने प्रत्यवायाभावापातादिति भावः। **निषेधेति**। ब्राह्मणो न हन्तव्य इतिनिषेधविषयत्वानापत्तेस्तत्र ब्राह्मण्यस्य नष्टत्वेन ब्राह्मण्यस्याभावात्तद्धनने प्रत्यवायाभावः स्यादिति भावः। कदाचिदध्यासस्य प्रयोजकत्वे महापातकेन नष्टब्राह्मण्यस्याप्यधिकारप्रसङ्ग इति प्रागुक्तं तमाक्षिपति—**नचेत्यादिना।** तत्र=महापातकेन नष्टब्राह्मण्ये। महापातकस्यैवानधिकारप्रयोजकत्वमित्यर्थः। तथा व्यवहाराभावात्=पतितो ब्राह्मण इति व्यवहाराभावात्। अतएवेत्युक्तमेव विशदयति—**संयोगस्येति।** ब्राह्मणादिदेहविशेषसम्बन्धस्यान्यस्यासम्भवादध्यासरूप एव स इत्यधिकारप्रयोजकीभूतसम्बन्धः स्वरूप एव नान्य इत्युक्तं तत्राध्यासातिरिक्तोऽन्य एव सम्बन्धःसम्भवतीत्याशयेन परिशेषं करोति—**संयोगस्येति।** सर्वदेहेषु=सर्वेषु

का वचन है। यदि कहें आजन्म अर्थात् जन्म से ही जीवन मुक्त के कर्मादिसाधन निषेध विषयत्व की आपत्ति होगी अर्थात् उस व्यक्ति में जन्म से लेकर देहात्मभेद का ज्ञान होने से अधिकार प्रयोजक कदाचित् भी अध्यास का अभाव होने से उसकी हत्या करने पर प्रत्यवाय के अभाव की आपत्ति होगी, यदि कहें की पालक ही उसमें अनधिकार का प्रयोजक है। क्योंकि उसके लिये 'पतितो ब्राह्मणः' वह पतित ब्राह्मण है ऐसा व्यवहार होता है तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि शाप आदि के द्वारा यवनता या चाण्डलता को प्राप्त व्यक्ति में "पतितो ब्राह्मणः" ऐसा नहीं होता, इसीलिये द्वितीय भी नहीं कह सकते। संयोग के आत्मविभुत्व पक्ष में सभी देहों में तथा स्वस्वामिभाव का भृत्य देह में सद्भाव होने पर भी इच्छानुविधायित्व अथवा आतुर आदि देह में असद्भाव होने पर भी साक्षात् स्वस्वामिभाव अथवा तत् इन्द्रियाश्रयत्त्व किंवा साक्षात् तत् प्रयत्नजन्य क्रियाश्रयत्व अथवा तत् भोगायतनत्व किंवा तत् कर्मार्जितत्व रूप सम्बन्धान्तर संभव है अर्थात् यह साक्षात् स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध रूप पञ्चसम्बन्ध भृत्यादि देहादि प्रसक्त नहीं है आतुर आदि देह साधारण

पुत्र देहसाधारणं पुत्रदेहस्य। तददृष्टेनैवोपपत्तेः। सिद्धग्रामादिष्विव पित्रदृष्टेन सम्बन्धमात्रस्य जननादन्यथा ब्रह्मज्ञानात् पितरि मुक्ते सति पुत्रदेहारम्भकपितृकर्मक्षयेण पुत्रदेहस्य नाशापत्तेः। नापि तृतीयः। तस्य जडत्वादियोगेन नियोज्यत्वासम्भवात्। अन्यथा घटादेरपि

देहेषु शूद्रादिदेहेषु। ततश्च शूद्रादेरप्यधिकारापात इतिभावः। **स्वस्वामिभावस्येति**। तस्य द्विष्टत्वेन भृत्यदेहेपि सत्त्वेन तस्याप्यधिकारापात इति भावः। **इच्छेति**। स्वेच्छानुसारित्वरूप-सम्बन्धस्येत्यर्थः। **आतुरादिति**। ब्राह्मणानामातुरतादशायां देहस्येच्छानुसारित्वाभावेनानधिकारापातादिति भावः। न चातुराणां विधिनिषेधविषयत्वमेव नास्तीतीष्टापत्तिरितिवाच्यम्। तथात्वे तद्धनने प्रत्यवायाभावापातात्। तथा ''स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातु चित्। आधिव्याधिनिमित्तेन विक्षिप्तमनसोऽपितु''। गुणानां स्मरणाशक्तौ विष्णोर्ब्रह्मत्वमेव तु। स्मर्त्तव्यं सततं तत्तु न कदाचित् परित्यजेत्यादिवचनेन तस्यापि विष्णुस्मरणादि विधिविषयत्वेन तत्राधिकारसद्भावात्तद्देहस्य चेच्छानुसारित्वेना-धिकारप्रयोजकसम्बन्धाभावादनधिकारापात इति विशेषो द्रष्टव्यः। साक्षादित्यादेः सम्भवादित्यनेनान्वयः। स्वस्वामिभावसम्बन्धस्य भृत्यदेहेऽपि सत्त्वेन साक्षादित्युक्तं देहान्तस्थ आत्मा स्वदेहं प्रत्येव साक्षात्स्वामी भृत्यादिदेहं प्रति तु तस्य स्वदेहानुकूलतया स्वदेहद्वारैव सम्बन्धो न साक्षादिति भावः। **तदिन्द्रियेति**। तज्ज्ञानजनकेन्द्रियाश्रयत्वं देहस्यास्तीत्यर्थः। शरीरद्वारा प्रयत्नजन्यचेष्टादिक्रियाश्रयत्वस्य घटादावपि सत्त्वात्साक्षा-दित्युक्तं स्वशरीरस्यैव साक्षात्प्रयत्नजन्यक्रियाश्रयत्वं नान्यस्येति भावः। **सम्बन्धान्तरस्येति**। इदञ्च साक्षात्स्वस्वामि भावादिसम्बन्धपञ्चकं न

सम्बन्धान्तर ही अधिकार का प्रयोजक है इसीलिए देह और आत्मा में अध्यस्तत्व संबन्ध नहीं है यह भाव है। सम्बन्धान्तर कहने वाले व्यक्ति भी अध्यास रूप सम्बन्ध त्याग नहीं सकते इसीलिये साक्षात् प्रयत्न जन्य क्रियाश्रयत्व सम्बन्ध है ऐसा कहा है उसमें प्रयत्न में साक्षात् ऐतदीयत्व ही कैसे होगा ऐसी शंका में प्रयत्न एवं आत्मा में ऐक्यभ्रम ही सम्बन्ध है ऐसा कहना होगा। ऐसा कहें तो वह भीनहीं कह सकते हैं, क्योंकि प्रयत्न एवं आत्मा में ऐक्य के अध्यास अंगीकार करने पर अहंकृतिः ऐसी प्रतीति होगी जो नही होती है। दूसरी बात प्रयत्न आदि में भी आत्मैक्य भ्रम ही संबन्ध नहीं है किन्तु तार्किक पद्धति के अनुसार समवाय आदि सम्बन्ध का सद्भाव है। यदि कहें साक्षात् स्वस्वामिभाव आदि पञ्च संबन्धो में भी साक्षात् स्वामिभाव अथवा तदिन्द्रियाश्रयत्व आदि भी इसी देह का भृत्यादि में भी क्यों नहीं होगा ऐसी शंका में इस प्रकार अति प्रसंग की शंका में मूल सम्बन्ध के

नियोज्यत्वप्रसङ्गात्। देहविशिष्ट एव ब्राह्मण शब्दप्रयोगेण देहस्यातदर्थत्वाच्च। अन्यथा मृतब्राह्मणशिरश्च्छेदादिना पुत्रस्य ब्रह्महत्याप्रसक्तेर्दुवारत्वात्। न च प्रत्यक्षैकप्रमाणवादिनां चार्वाकादीनां देहएवात्मेति कथं प्रवाद इति वाच्यम्। अनुगतविषयक प्रत्यभिज्ञारूपप्रत्यक्षदेहात्मनो भेदस्य भेदकानाञ्चावगाहिनः सविकल्पस्य चार्वाकादिभिः प्रामाण्यानभ्युपगमात्। अतएव तादृशकुसमयनिरासक-तया देहात्मैक्यनिषेधकश्रुतेरपि सार्थक्यान्नाप्राप्तनिषेधदोषावकाशः, असत्कारणबाधनिषेधवत्। न च मनुष्यत्वब्राह्मणत्वादीनां देहविशेष-

भृत्यादिदेहातिप्रसक्तमातुरादिदेहसाधारणसम्बन्धान्तरमेवाधिकारप्रयोजकमस्तीति नाध्यस्तत्वं देहात्मनोः सम्बन्ध इति भावः। सम्बन्धान्तरं वदद्भिरपि नाध्यासरूपसम्बन्धः त्यक्तुं शक्यते तथाहि साक्षात् प्रयत्नजन्यक्रियाश्रयत्वं सम्बन्ध इत्युक्तं तत्र प्रयत्नस्य साक्षादेतदीयत्वमेव कुत इति शङ्कायां प्रयत्नात्मनोरैक्यभ्रम एव सम्बन्धइति वक्तव्यमितिचेन्न, प्रयत्नात्मनोरैक्याध्यासाङ्गीकारेऽहं कृतिरितिप्रतीत्यापत्तेरित्याह—**न चेति**। किञ्च प्रयत्नादावपि नात्मैक्यभ्रम एव सम्बन्धः-किन्त्वित्यत आह—**आत्मेति**। तार्किकरीत्येति शेषः। ननु साक्षात्स्वस्वामिभावादि-पञ्चकेऽपि साक्षात्स्वामिभावः तदिन्द्रियाश्रयत्वादिकं वाऽस्यैव देहस्य कुतः भृत्यादावपि किं न स्यादित्यतिप्रसङ्गशङ्कायां तत्र मूलसम्बन्धतया ऐक्याध्यास एव वाच्य इति चेन्न, देहैक्याध्यासेऽपि किं मूलमिति शङ्कायां स्वस्वामिभावादिसम्बन्धस्यैव

कारण ऐक्याध्यास ही सम्बन्ध कहना होगा तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि देह के साथ ऐक्याध्यास में भी क्या प्रमाण है ऐसी शंका में स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध में ही मूलत्व की उत्पत्ति है इस प्रकार वैपरीत्य भी कह सकते है।

यदि कहें तत् तत् कर्मार्जितत्व शरीर का तदीयत्व में मूल सम्बन्ध है ऐसा अभिप्रेत है वह युक्त नहीं है क्योंकि "पुत्र कामः पुत्रकामेष्ट्या यजेत" इस वचन से पुत्र कामेष्टि रूप जो पिता का कर्म है वह पुत्र शरीर का अर्जक होता है, वहाँ पर पुत्र शरीर में पितृकर्मार्जितत्त्व सद्भाव होने पर भी पुत्र का शरीर पुत्र ही होता है पित्रीय नहीं होने से व्यभिचार हो जायेगा इसी आशय से शंका करते है। न च तत् कर्मार्जितत्वम् उसका उत्तर देते है पुत्र के अदृष्ट से ही उसकी उत्पत्ति होती है, अर्थात् पुत्र कामेष्टि रूप जो पितृ कर्म है उससे पुत्र का शरीर अर्जित नहीं होता किन्तु पुत्र के अपने कर्म से अर्जित होता है इसलिये हेतु के अभाव से यहाँ व्यभिचार नहीं है। यदि कहें की तब तो पुत्र कामेष्टि का वैयर्थ्य होगा तो ऐसा नहीं कह सकते पुत्र

विशिष्टात्मवृत्तित्वे चाक्षुषत्वाभावप्रसङ्गश्शङ्कनीयः। केवलात्मनोऽ-चाक्षुषत्वेऽपि देहविशेषयुक्तस्य विशिष्टनिष्ठधर्माणाञ्च प्रतीतिबलाच्चाक्षुष त्वाभ्युपगमेक्षत्यभावात्, विशिष्टस्यातिरिक्ततया केवलस्य चक्षुरयोग्यत्वेऽपि

मूलत्वोपपत्तेरिति वैपरीत्यस्यापि वक्तुं शक्यत्वादित्याह—**न चेति।** किञ्च स्वस्वामिभावादिसम्बन्धचतुष्टये तत्कर्मार्जिततत्वमेव मूलसम्बन्धोऽस्त्विवत्याह—**तत्कर्मेति**। तदीयकर्मेत्यर्थः। ननु तत्तत्कर्मार्जिततत्वं शरीरस्य तदीयत्वे मूलसम्बन्ध इत्यभिप्रेतं तन्न युक्तम् "पुत्रकामः पुत्रकामेष्ट्या यजेते" ति वचनात् पुत्रकामेष्टिरूपं यत्पितृकर्म तत् पुत्रशरीरार्जकं भवति तत्र पुत्रशरीरे पितृकर्मार्जिततत्वसद्भावेऽपि पुत्रशरीरस्य पुत्रीयत्वेन पित्रीयत्वाभावाद्-व्यभिचार इत्याशयेन शङ्कते—**न चेति।** तददृष्टेन=पुत्रादृष्टेन। अयमर्थः। पुत्रकामेष्टिरूपं यत् पितृकर्म तदर्जितं पुत्रशरीरं न भवति। किन्तु स्वकीयकर्मार्जितमेवातो हेतोरभावान्न व्यभिचारः। तर्हि पुत्रकामेष्टिकर्मणो वैयर्थ्यमापन्नमिति चेन्न, पुत्रकर्मणोत्पन्ने पुत्रेऽपि पित्रीयत्वरूपो यः पितृसम्बन्धस्तन्मात्रार्जकत्वांगीकारात् तत्र दृष्टान्तः **सिद्धग्रामादिष्विति**। यथा ग्रामकाम इष्टिं कुर्यादिति श्रूयते तत्र ग्रामकामेष्टिफलं न ग्रामोत्पत्तिस्तस्य तदीयेष्टितः पूर्वमेव सिद्धत्वात् किन्तु सिद्धे ग्राम एतदीयत्वमात्रमिष्टिफलमिति मीमांसकैःसिद्धान्तिततत्वेनेहापि स्वकर्मणे सिद्धे पुत्रशरीरे, एतदीयत्वमात्रस्यैव पुत्रकामेष्टिफलत्वोपपत्तेः, अन्यथा ग्रामोत्पत्तेरेव ग्रामकामेष्टिफलत्वापत्तेरिति भावः। विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति। **अन्यथेति**। पितृकर्मार्जिततत्वम् इतितदर्थः। तृतीयकल्पं

के कर्म से उत्पन्न पुत्र में भी पित्रीयत्वरूप जो पितृसम्बन्ध जो है उसमें पुत्र शरीर अर्जकत्व स्वीकार किया जाता है उसमें दृष्टान्त देते है सिद्धग्रामादिषु अर्थात्त् जैसे ग्रामकामाः इष्टिंकुर्यात् ऐसा श्रुति वचन है वहाँ ग्रामकामेष्टि का फल ग्रामोत्पत्ति नहीं है क्योंकि ग्रामोत्पत्ति इष्टि से पहले ही सिद्ध है, किन्तु सिद्ध ग्राम में ग्राम काम का स्वामित्व मात्र इष्टि का फल है ऐसा मीमांसक विद्वानों द्वारा सिद्धान्तित है तदनुसार यहाँ भी अपने कर्म से सिद्ध पुत्रशरीर में पितृयत्वमात्र ही पुत्रकामेष्टि का फल है अन्यथा ग्राम की उत्पत्ति का ही ग्रामकामेष्टि का फलत्व होगा। यहाँ विपक्ष में बाधक तर्क उपस्थित करते है अन्यथा ब्रह्मज्ञान से पिता के मुक्त होने पर पुत्र देह के आरभंक पितृकर्म के क्षय से पुत्र देह के नाश की आपत्ति होगी इसी प्रकार तृतीय विकल्प भी नहीं कह सकते। उस देह विशेष का जडत्वादि के योग से नियोजकत्व का असंभव होगा अन्यथा जड को भी नियोज्य होने पर घटादि में भी नियोज्यत्व का प्रसंग होगा देह विशेष में ही ब्राह्मण पदार्थत्व मानने पर देह ब्राह्मण पदार्थ नहीं होगा अन्यथा चैतन्य से असंयुक्त देह को ब्राह्मण पदार्थ मानने पर मृत ब्राह्मण के

देहविशेषयुक्तस्य चाक्षुषविषयत्वात्। त्वां ब्राह्मणं पश्यामि त्वमपि मां ब्राह्मणं पश्य ब्राह्मणस्य देह इदं पश्यामीत्यादि व्यवहारपरैर्वाक्यैरात्मवृत्तित्वेन ब्राह्मणत्वस्य प्रतीतेः दण्डिनोऽयं दण्ड इतिवद्ब्राह्मणस्यायं देह इति व्यवहारस्याप्युपपत्तेः। ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यत इति स्मृतेश्च। अन्यथा देहविशेषाध्यासवत्यात्मनि ब्राह्मणत्वादिस्वीकारेऽपि

निरस्यति—**नापीति**। तस्य= देहविशेषस्य। न चेष्टापत्तिस्तस्य जडत्वेनानियोज्यत्वात्। अन्यथा=जडस्यापि नियोज्यत्वे। देहविशेषस्यैव ब्राह्मणशब्दार्थत्वे लौकिकप्रयोगविरोधश्चेत्याह—**देहविशिष्टेति**। तद्विशिष्टचेतनेत्यर्थः। प्रयोगेण=अयं देही ब्राह्मण इति प्रयोगेण। अतदर्थत्वात्= ब्राह्मणशब्दार्थत्वाभावात्। बाधकमाह—**अन्यथेति**। चैतन्यासंयुक्तदेहस्य ब्राह्मणार्थत्व इति तदर्थः। नन्वेवं महता प्रबन्धेन देहात्मभेदस्य प्रत्यक्षत्वोपपादनमयुक्तं तथात्वे चार्वाकादेर्देहैक्यसाक्षात्कारो न स्यात् तथाच तन्मूलकः संसारस्तेषां न स्यादित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति। अनुगतेति**। योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं सोऽहं स्थविरे प्रतप्तमनुभवामि योऽहं व्याघ्रदेहः सोऽहमिदानीं मनुष्यदेह इति प्रत्यभिज्ञारूपप्रत्यक्षदेहात्मनो भेद इत्यर्थः। **भेदकानामिति**। व्यावृत्तत्वेन धीस्थो यः स्वदेहादिस्तद्भेदकानामनुवृत्तत्वा-दीनामित्यर्थः। देहात्मनोर्भेदावगाहिसविकल्पकप्रत्यक्षं यदि चार्वाकानुयायिनां मते स्यात्तदा ततोदेहात्मनो भेदं जानीयान्नत्वेवमिति भावः। अतएव=सविकल्पकस्य प्रामाण्यानभ्युपगमादेव। **तादृशेति**। देहात्मैक्यबोधकत्वेन कुत्सितसङ्केतस्य निरासक-त्वेनेत्यर्थः। **देहात्मैक्येति**। चार्वाकमतसिद्धस्य देहात्मैक्यरूपप्रतियोगिनस्तन्निषेधः

शरीर के छेदन से पुत्र में ब्रह्महत्या का प्रसंग दुर्वार होगा। यदि कहें प्रत्यक्ष मात्र एक प्रमाणवादी चार्वाक् आदियों का देह ही आत्मा है यह प्रवाद कैसे सम्भव होगा तो ऐसा नहीं कह सकते अनुगत विषयक प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष देह एवं आत्मा के भेद एवं भेद के अवगाही सविकल्पकज्ञान का प्रामाण्य चार्वाक् आदियों द्वारा प्रामाण्य माना गया है सविकल्प के प्रामाण्य का अस्वीकार होने से ही देह और आत्मा के ऐक्य बोधकत्व से कुत्सित संकेत का निराशक होने से देह और आत्मा के ऐक्य निषेधक श्रुति का भी सार्थक होने से अप्राप्त के निषेध के दोष का अवकाश नहीं है। यदि कहें की वादी द्वारा प्राप्त का निषेधकत्व श्रुति में कहाँ लिखा गया है तो कहते है "असत्कारण बाधनिषेधवत्" अर्थात् नास्तिकों के मत में असत् कारणवाद प्रसिद्ध है। वह सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति इस श्रुति के द्वारा उसका निषेध किया

चाक्षुषत्वाद्यनुपपत्तेः। तवापि साम्यात्। एतेन सर्वाण्यपि विधिनिषेधशास्त्राण्यध्यासमूलानीति परोक्तं प्रत्युक्तं बोध्यम्। यदप्युक्तमध्याससिद्धौ प्रमातृत्वाद्यन्यथानुपपत्तेः प्रामाण्यं तदपि मनोरथमात्रं तदभावेऽपि सुषुप्त्यादौ सुखाज्ञानादिज्ञातृत्वस्य दर्शनात्, जाग्रदादावपि

श्रुत्या बोध्यत इति भावः। **नाप्राप्तानिषेधइति।** प्रसक्तस्यैव निषेधो भवति नाप्रसक्तस्येति नियमस्तथाच चार्वाकाभिमतदेहात्मैक्यवादश्श्रुत्या निषिद्ध्यत अतो नाप्रसक्त-निषेधदोषावकाश इत्यर्थः। ननु वादिप्राप्तनिषेधकत्वं श्रुतेः कुत्र दृष्टचरमित्यतआह। **असत्कारणेति।** बाह्यानां मतेऽसत्कारणवादः प्रसिद्धः स च सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति श्रुत्या निषिद्ध्यत इत्यर्थः। ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽहमित्यादिप्रत्ययानां प्रमात्वमेव नतु भ्रमत्वं ब्राह्मण्यादिधर्माणां शरीरविशिष्टात्मवृत्तित्वेन प्रमात्वस्यैवोपपन्नत्वात्। तदुक्तं ''ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽहमित्यादिस्तु प्रमैव नः देहभेदयुतो यस्मात् ब्राह्मणादिपदोदित'' इतियत्प्रागभिहितं तमाक्षिपति। **मनुष्यत्वेति।** यदि मनुष्यत्वादिधर्माणां देहविशिष्टात्मवृत्तित्वं स्यात्तदाचाक्षुषत्वं न स्यादित्यर्थः। **परिहरति**—न च शङ्कनीयइति। विशिष्टस्यातिरिक्तपक्षएवावलम्बनीयः, केवलात्मन एव चक्षुराद्ययोग्यत्वेन देहविशिष्टस्य तद्योग्यता सम्भवादित्यर्थः। देहविशिष्टात्मानं पश्यामीति प्रत्ययस्यासत्वान्न तथात्वमित्याशङ्क्षां परिहरन्नाह—**त्वां ब्राह्मणमिति।** देहविशिष्टात्मानं पश्यामीतिप्रतीत्या ब्राह्मणत्वादिधर्माणां विशिष्टात्मनि प्रत्यक्षत्वमुपपन्नं भवतीति भावः। **आत्मवृत्तित्वेनेति।** देहविशिष्टात्मवृत्तित्वेनेति तदर्थः। उक्तार्थं स्मृतिप्रमाणेनापि व्युत्पादयति—**ब्राह्मणस्येति।** विपक्षे बाधकतर्कमुपन्यस्यति—**अन्यथेति।** उपदर्शितरीत्या ब्राह्मणत्वादिधर्माणां चाक्षुषत्वानङ्गीकार इति तदर्थः। **साम्यादिति।** ''यश्चोभयसमोदोषःपरिहारस्तयोः समः।

जाता है ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽहं इत्यादि प्रतीति में प्रमात्व ही है भ्रमत्व नहीं ब्राह्मणत्व आदि धर्मों का शरीर विशिष्ट आत्म विस्मृत होने से प्रमात्व ही उत्पन्न होता है जैसाकि कहा हैं ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽमित्यादिस्तु प्रमैव नः देहभेदयुतो यस्मात् ब्राह्मणादिपदोदितः यदि कहें मनुष्यत्व एवं ब्राह्मणत्व आदि का देह विशिष्ट आत्मवृत्तित्व मान लेने पर उनका चाक्षुष् प्रत्यक्षत्वाभाव का प्रसंग होगा तो ऐसा नहीं कह सकते, केवल आत्मा का चाक्षुष् प्रत्यक्ष न होने पर ही देह विशेषयुक्त तथा विशिष्ट निष्ठ धर्मों का भी प्रतीति के बल से चाक्षुषत्व स्वीकार करने में कोई क्षति नहीं है, क्योंकि विशिष्ट के अतिरिक्त होने से केवल आत्मा के चाक्षुष् अयोग्य होने पर देह विशेष युक्त आत्मा में चाक्षुष्विषयत्व होता है क्योंकि (त्वां ब्राह्मणं पश्यामि) तुझ ब्राह्मण को मैं देखता हूँ (त्वमपि मां ब्राह्मणं पश्य) तुम भी मुझ

प्रमातृत्वस्य स्वरूपनिष्ठतयावदात्मवृत्तिस्वाभाविकस्व-धर्मज्ञाननिरूप्यत्वेनान्यथासिद्धत्वात्॥ ९२॥

नैकस्तत्रानुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारण'' इत्यभियुक्तोक्तिरत्रानुसन्धेयेति। **एतेनेति**। 'ब्राह्मणो यजेतेति विधिनिषेधात्मकशास्त्रस्याध्यासमूलकत्वस्य दूषितत्वेनेत्यर्थः। देहात्मैक्याध्यासाभावे प्रमातृत्वाद्यदर्शनात्तदन्यथानुपपत्तिश्च देहात्मैक्याध्यासे मानमिति प्राङ्निर्दिष्टमनूद्य दूषयति—**यदप्युक्तमिति**। कुतोनेत्यत आह—**तदभावेपीति**। अध्यासाभावेपीति तदर्थः। प्रमातृत्वस्याध्यासमूलकत्वे सुषुप्तावध्यासाभावे न किञ्चिदवेदिषमितिपरामर्शसिद्धाज्ञानप्रमातृत्वमात्मनोऽनुपपन्नं स्यादिति भावः। जाग्रद्दशायामपि प्रमातृत्वं न देहात्मैक्याध्यासप्रयुक्तमपितु स्वरूपवृत्तिस्वाभाविकधर्मज्ञाननिरुप्यमित्याह—**जाग्रदादावपीति**। उक्तार्थं प्रतीत्या व्यवस्थापयति ।।९२।।

ब्राह्मण को देखो अयं ब्राह्मणस्यदेहः इमं पश्यामि इत्यादि व्यवहार परक वाक्यों द्वारा आत्म पितृत्वेन ब्राह्मणत्व की प्रतीति होती है इसी प्रकार दण्डिनोऽयं दण्डः (यह दण्डि का दण्ड है इस व्यवहार की तरह ब्राह्मणस्य अयं देहः।) इस व्यवहार की उत्पत्ति होती है। ''**ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते**'' ऐसा स्मृति वचन भी है। विपक्ष में बाधक तर्क देते है, अन्यथा—उपर्युक्त रीति से ब्राह्मणत्व आदि धर्मों को चाक्षुषत्व स्वीकार न करने पर देह विशेष में अध्यासवान् आत्मा में ब्राह्मणत्व आदि स्वीकार करने पर भी चाक्षुष् प्रत्यक्षत्व की अनुपपत्ति आपको भी समान ही है। ऐसी स्थिति में—''**यश्चोभयः समोदोषः परिहारस्तयोः समः। नैकस्तत्रानुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे**'' यह महापुरुषों का वचन स्मर्तव्य है। इस प्रकार ''**ब्राह्मणो यजेत ब्राह्मणो न हन्तव्यः**'' इत्यादि विधि निषेधात्मक शास्त्र में अध्यास मूलकत्व सिद्धान्त का खण्डन करने से ''**सर्वाण्यपि विधिनिषेधशास्त्राण्यध्यासमूलानि**'' यह शांकर सिद्धान्त निरस्त समझना चाहिये। पहले यह जो कहा गया था कि देह के साथ आत्मा के ऐक्य के अध्यास के अभाव में प्रमातृत्व आदि व्यवहार संभव नहीं है इसलिये अन्यथा अनुपपत्ति भी देह और आत्मा के ऐक्याध्यास में प्रमाण है यह भी आपका मनोरथमात्र है, कारण सुषुप्ति अवस्था में अध्यास के अभाव में न 'किञ्चिदवेदिषम्' इत्याकारक परामर्श सिद्ध आत्मा का अज्ञान प्रमातृत्व अनुपपन्न होगा। जाग्रत् अवस्था में भी प्रमातृत्व देहात्मैक्याध्यास मूलक नहीं है अपितु स्वरूपवृत्ति स्वाभाविक धर्म रूप ज्ञान जन्य है। निरुप्य होने से अन्यथा सिद्ध है ।।९२।।

सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषं घटं जानामीत्यादिप्रतीतेः। "नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्" अविनाशीवाऽरे आत्माऽनुच्छित्तिधर्मा विज्ञातारमरे केन विजानीयादित्यादि" श्रुतिभ्यः एतद्यो वेत्ति तं प्राहुःक्षेत्रज्ञ इति तद्विद" इति श्रीमुखगानाच्च। एतेन

सुखमिति। एतेन सुषुप्तावपि सुखाज्ञानादिप्रमातृत्वस्याहमर्थात्मनि सत्त्वान्न तद्व्यभिचारशंकेति स्फोरितम्। उक्तार्थंश्रुतिप्रमाणेन द्रढयति—**नहिविज्ञातुरिति।** विज्ञातुर्विज्ञानाश्रयस्यात्मनो या विज्ञातिर्गुणभूतविज्ञानं तस्याविनाशो नास्ति नित्यत्वादित्यर्थः। अविनाशी=नित्यः। तद्धर्माणां द्रष्टृत्वज्ञातृत्वादीनां नाशो न भवतीत्यर्थः। ज्ञातव्यस्य निष्कृष्टात्मस्वरूपस्य ज्ञातृत्वमाह—**विज्ञातारमिति।** फलितमनेनात्मनः-स्वाभाविकं ज्ञातृत्वम्। **एतद्योवेत्तीति**। एतद्भूतादिसङ्घातरूपं ममेदमिति यो वेत्ति आत्मनो भेदेन जानाति· तं क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः=आत्मयाथात्म्यज्ञाः प्राहुः क्षेत्रात् कृषीवलात् क्षेत्रज्ञोऽत्यन्तविलक्षण इति प्रकर्षेणाहुरित्यर्थः। **एतेनेति**। सुषुप्तौ देहैक्याध्यासाभावेऽपि अज्ञानप्रमातृत्वस्य सद्भावेनाध्यासस्य प्रमातृत्वप्रयोजकाभावेनेत्यर्थः। देहेन्द्रियादिष्वहं ममाभिमानरहितस्य प्रमातृत्वानुपपत्तौ प्रमाणप्रवृत्त्यनुपपत्तिर्नहीन्द्रियाण्युपादाय प्रत्यक्षादि-व्यवहारः सम्भवति नचाधिष्ठानमन्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः सम्भवतीति भगवत्पादानां श्रीशङ्कराचार्य्याणां भाष्यं तस्य व्याख्यां नन्वात्मनो देहादिभिराध्यासिकसम्बन्धो मास्तु स्वतश्चेतनतया प्रमातृत्वोपपत्तेरित्यभिहितमेतत्सर्वमनूद्य दूषयति—**यदप्युक्तमित्यादिना।** यदि

इस प्रतीति के द्वारा व्यवस्थापित करते है, "**सुखमहमस्वाप्सम्। न किञ्चिदवेदिषम् घटम् जानामि**" इत्यादि प्रतीति है। इसके द्वारा सुषुप्ति में भी सुख विषयक अज्ञानादि प्रमातृत्व अध्यास आत्मा में विद्यमान है, इसमें कोई व्यभिचार शंका नहीं है, यह स्पष्ट किया गया है—'**घटमहम् जानामि**' इस ज्ञान का प्रमाता आश्रय आत्मा है, यहाँ कोई अध्यास नहीं, फिर बिना अध्यास के यहाँ प्रमातृत्व कैसे होता है, इसीलिये अध्यास की असिद्धि प्रमातृत्व की अनुपपत्ति होगी यह शांकर कथन सर्वथा अयुक्त है। यहाँ उक्त अर्थ को श्रुति प्रमाण से दृढ़ करते है—"**नहि विज्ञातुः विज्ञातेः विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्**" '**अविनाशी वाऽरे आत्मा अनुच्छित्ति धर्मा विज्ञातारमरे केन विजानीयात्**' इत्यादि श्रुतियों एवं '**एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः श्रेत्रज्ञ इति तद्विदः**' इत्यादि भगवान् के श्रीमुख के गान वचन है, उक्त प्रतिपादन द्वारा प्रमातृत्व आदि अध्यास मूलक है। यह परपक्षी (शंकर) का कथन निरस्त हो जाता है। इस विषय में सारी अनुपत्तियाँ पहले कही गई है। यहाँ भगवत् पाद श्री शंकराचार्य की पङ्क्ति का

प्रमातृत्वादिकमध्यासमूलमिति परोक्तं निरस्तमनुपपत्तीनां पूर्वमेवोक्तत्वात्। यदप्युक्तं कैश्चित् देहात्माध्यासाभावेऽपि स्वतश्चेतनतयैव प्रमातृत्वोपपत्तिः। न च सुषुप्तौ प्रमातृत्वापत्तिः करणाभावादित्याशङ्क्य प्रमाश्रयत्वं प्रमातृत्वं तत्र प्रमा नित्यचिन्मात्रं वा वृत्तिमात्रं वा नाद्यः। आश्रयत्वायोगात्, करणवैयर्थ्याच्च। द्वितीये जगदान्ध्यप्रसङ्गः। वृत्तेर्जडत्वादिति विकल्पमुखेन निरस्य तस्माद्वृत्तीद्धो बोधः प्रमा तदाश्रयत्वमसङ्गस्यात्मनो वृत्तिमन्मनस्तादात्म्याध्यासमृते न सम्भवति तत्सिद्धयेऽध्यासोऽवश्यमङ्गीकर्त्तव्य इति निर्णीतं तदप्ययुक्तमसम्भवात्।

स्वतश्चैतन्यस्यैव प्रमातृत्वमभिप्रेतं तदा सुषुप्तिसमये चेतनस्य सत्त्वात् प्रमातृत्वं स्यादित्याशङ्क्य परिहरति—**न चेति**। करणाभावात्=इन्द्रियाणामभावात्। तत्र। प्रमाश्रयत्वे। वितर्कयति—**प्रमेति**। आद्यपक्षं निरस्यति—**नाद्य इति**। **आश्रयत्वायोगादिति**। असङ्गस्यात्मनोनित्यचिन्मात्ररूपप्रमाश्रयत्वं नोपपद्यतइत्यर्थः। करणवैयर्थ्याच्च=इन्द्रियाणां वैयर्थ्याच्च। द्वितीयविकल्पं व्युदस्यति—**द्वितीय इति**। फलितार्थं दर्शयति—**तस्मादिति**। एतावता प्रबन्धेनात्यन्ताभेदवादिनां मतमनूद्य सम्प्रति तं दूषयति—**तदप्ययुक्तमिति**—तत्र हेतुमाह—**असम्भवादिति**। असम्भवमेव विशदयति—**तथाहीत्यादिना**। **आवयोरिति**। अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं प्रमातृचैतन्यं तन्मतसिद्धम्। अस्मन्मते च अन्तःकरणवृत्तिविशिष्टबोधःप्रमा तथाच देहेन्द्रियादिविशिष्टात्मनो निरुक्तप्रमाश्रयत्वरूपं

उद्धरण कर खण्डन करते है, श्री शंकर का कथन है —"**देहेन्द्रियादिषु अहं ममाभिमानरहितस्य प्रमातृत्वानुपपत्तौ प्रमाण प्रवृत्यनुपपत्तिः नहीन्द्रियाण्युपादाय प्रत्यक्षादिव्यवहारः सम्भवति न चाधिष्ठानमन्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः सम्भवति**" ऐसा शंकराचार्य जी का भाष्य है। इसकी व्याख्या में किसी ने कहा—"**नन्वात्मनो देहादिभिराध्यासिक सम्बन्धः मास्तु स्वतश्चेतनतया प्रमातृत्वोपपत्तेः।**" इन सबका अनुवाद करके यहाँ खण्डन करते है, परपक्ष गिरिवज्रकार, 'यदप्युक्तं कैश्चित् देहात्माध्यासाभावेऽपि स्वतश्चेतनतयैव प्रमातृत्वोपपत्तिः।' अध्यास के बिना ही आत्मा में स्वतः चेतन होने से प्रमातृत्व की उपपत्ति हो जायगी कहें कि फिर तो सुषुप्ति में प्रमातृत्व की आपत्ति होगी, नहीं होगी, कारण का अभाव है, ऐसी आशंका करके यहाँ विकल्प करते हैं, प्रमातृत्व है, प्रमाश्रयत्व। यहाँ प्रमा पदार्थ क्या है, नित्य चिन्मात्र या वृत्तिमात्र? पहला पक्ष नहीं कह सकते आश्रयत्वायोगात्—असंग आत्मा में नित्य चिन्मय रूप प्रमाश्रयत्व की उपपत्ति नहीं होती और करणेन्द्रियों का वैयर्थ्य भी होगा। दूसरा विकल्प भी नहीं हो सकता वृत्तिमात्र मानें तो जगत् में आन्ध्य का

तथाहि चिन्मात्रस्य प्रमातृत्वासम्भवः प्रमातृत्वासम्भवश्चा-वयोरविशेषेणाभीष्टः वृत्तेर्जडत्वमपि तथैव परन्तु यदुक्तं वृत्तीद्धोबोधः प्रमेत्यादितदयुक्ततमं विकल्पासहत्वात्। तथाहि वृत्तीद्ध इति शब्दस्य को वार्थः वृत्तिप्रतिबिम्बितत्वं वा वृत्त्यवच्छिन्नत्वंवा उभयथाप्यसम्भव-स्तस्य प्रतिबिम्बवादावच्छेदवादखण्डनरीत्यात्रापि निरस्तुं युक्तत्वात्। तस्मादात्मवृत्तिस्वाभाविकधर्मभूतज्ञानमेव सर्वगतमपि बद्धावस्थायां बुद्ध्यादिसङ्कुच्यमानं घटेन दीपप्रभेव बुद्धिविकसितं सत्प्रमेति कथ्यते तदाश्रयश्चाहमर्थो ज्ञात्रभिन्नः श्रुतिस्मृतिन्यायसिद्धः।''योऽयं वेद जिघ्राणीति

प्रमातृत्वमस्ति तदंशे विवादोनास्तीत्यर्थः। वृत्तेर्जडत्वमप्युभयमतसिद्धमित्याह—**वृत्तेरिति।** तथैव=आवयोरविशेषेणाभीष्टः। यस्मिन्नंशे विवादास्पदता तं विषयमाह—**यदुक्तमिति।** वितर्कयति—**तथाहीति। प्रतिबिम्बवादेति।** उभयोर्वृत्तिबोधयोर्बिम्बो-पाध्योर्निरवयवत्वान्नीरूपत्वाच्च न तयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावः सिद्ध्यति, वृत्तिर्बोधं कुठारः काष्ठानीवोच्छित्त्वा भिनत्ति तद्वद्भिनत्ति वा यथावस्थितमेवैकदेशे स्थित्वाऽवच्छिन्नत्तीति विवेचनीयम्। निरवयवस्य बोधस्य छेदनानर्हत्वादित्यादिकं बहुशः प्रपञ्चितं तदनुसन्धात-व्यमित्यर्थः। उपसंहरतितस्मादिति। वृत्तिप्रतिबिम्बितत्वस्य वृत्त्यवच्छिन्नत्वस्य वा वृत्तीद्धशब्दार्थस्य वक्तुमशक्यत्वात्। स्वकीयसिद्धान्तरीत्या प्रमाशब्दार्थं विवृणोति—**आत्मवृत्तिस्वाभाविकेति।** उक्तार्थं दृष्टान्तेन परबुद्ध्यारूढं करोति—**घटेनेति। योऽयंवेदइति।**

प्रसंग होगा, क्योंकि वृत्ति स्वयं जड़ रूप है—इस प्रकार विकल्प द्वारा उक्त विचार का खण्डन करके, वृत्ति को बोध प्रमा अर्थात् वृत्ति से प्रकाशित बोध प्रमा है, उसका आश्रयत्व असंग आत्मा में वृत्ति विशिष्ट मन के साथ तादात्म्याध्यास के बिना संभव नहीं है, इसलिये उसकी सिद्धि के लिये अध्यास अवश्य स्वीकार करना होगा, ऐसा निर्णय किया है, यह भी युक्ति संगत नहीं है क्योंकि ऐसा संभव नहीं है, कारण चिन्मात्र में प्रमातृत्व असंभव है, प्रमातृत्व का असंभव, हम दोनों को समानरूप से इष्ट है। अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य प्रमातृत्व चैतन्य है, यह उनका मत है, हमारे मत में अन्तःकरण वृत्तिविशिष्ट बोध प्रमादि, इस प्रकार देहेन्द्रियादि विशिष्ट आत्मा में निरुक्त प्रमाश्रयत्व रूप प्रमातृत्व है, इस अंश में विवाद नहीं है, वृत्तिका जड़त्व भी उभयमत सिद्ध है, परन्तु यह कथन युक्त नहीं है कि वृत्ति से प्रकाशित बोध प्रमा है, कारण इसमें भी विकल्प होने पर समाधान नहीं हो सकता हम पूछते हैं वृत्ति शब्द का क्या अर्थ है ? वृत्ति प्रतिबिम्बित अथवा वृत्यवच्छिन्न, दोनों पक्ष असंभव है, कारण प्रतिबिम्बवाद एवं अवच्छेदवाद के खण्डन की रीति के अनुसार यहाँ भी खण्डन युक्त होगा, कारण

सआत्मा कतम'' इत्युपक्रम्य पुरुष एव द्रष्टा श्रोता रसयिता घ्राता मन्ता बोद्धा विज्ञानात्मा पुरुषः विज्ञातारमरे केन विजानीयात् जानात्येवायं पुरुषः नहि द्रष्टुर्दृष्टेरित्यादिश्रुतिभ्यः। ''ज्ञोऽत एवेति'' न्यायात् ''एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विद इत्यादिस्मृतेश्च। यच्चोक्तमसङ्गस्यात्मनो वृत्तिमन्मनस्तादात्म्याध्यासमृते न सम्भवति तत्सिद्धयेऽध्यासोऽङ्गीकार्य इति तदत्यन्तविडम्बनमात्रं शुद्धचिन्मात्रा-ज्ञानाध्यासयोर्वदतोव्याघातेन सूर्यतमसोरिवोन्मत्तप्रलापत्वात्, विस्तरशो निरस्तत्वाच्च। नापि सुषुप्तौ

ज्ञानगुणकत्वस्वयंप्रकाशत्वयोः सहप्रतिपादकं वाक्यमाह—**कतमइति**। शङ्कास्पदेषु इत्यर्थः। फलितमनेनात्मनः स्वाभाविकं ज्ञातृत्वम्। नहि शारीरस्य संसृतिदशायामेव ज्ञातृत्वमपितु मुक्तावपीत्याह—**ज्ञानात्येवायमिति**। किमात्मा ज्ञानगुणको जडस्वरूपः किम्वा चिन्मात्रमथवा ज्ञानस्वरूपो ज्ञातृत्ववानिति संशये वैशेषिकाः ज्ञानगुणकं जडमात्मानं मन्यन्ते। अपरे साङ्ख्यशास्त्रावलम्बिनश्चिन्मात्रमात्मानं ब्रुवते, तत्र भगवान्सूत्रकारः स्वसिद्धान्तमाह—''ज्ञोऽत एवेति'' जीवात्मा ज्ञएव ज्ञानस्वरूपत्वे सति ज्ञातृत्ववानेव कुतः ? अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिरित्युदाहृतश्रुतिभ्यः तदुक्तं भगवत्पादैराद्याचार्य्यचरणैर्ज्ञानस्वरूपमिति। श्रीमुखारविन्दनिस्सृतगीतावचनमप्युदाहरति—**एतद्योवेत्ति तं प्राहुरिति**।

वृत्ति और बोध—दोनों में निरवयव एवं नीरुप होने से उन दोनों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव नहीं हो सकता। वृत्ति बोध को जिस प्रकार कुठार (कुम्हारी) काटों को काटकर भेदन करता है, उसी तरह भेदन करती है अथवा यथावस्थित ही एक देश में रहकर अवच्छेदन करती है, यह विचारणीय है, निरवयव बोध-छेदन के योग्य नहीं है, इत्यादि प्रकारों द्वारा अनेक बार विचार किया गया है। इसलिये वृत्ति प्रतिबिम्बितत्व अथवा वृत्यवच्छिन्नत्व वृत्ति शब्द का अर्थ नहीं कह सकते, इसलिये आत्मवृत्ति स्वाभाविक धर्म भूत ज्ञान ही जो सर्वगत होने पर भी बद्धावस्था में बुद्धि आदि संकुचित होने से घट से दीप की प्रभा की तरह बुद्धि विकसित होकर प्रमा कहलाती है। उसका आश्रय अहमर्थ आत्मा है, वही ज्ञाता है, ज्ञाता और अहमर्थ अभिन्न है, जो श्रुति-स्मृति एवं तर्क से सिद्ध है, जैसा कि श्रुति वचन है—''**योऽयं वेद जिघ्राणीति स आत्मा कतम**'' ऐसा उपक्रम करके '**पुरुष एव द्रष्टा श्रोता रसयिता घ्राता मन्ता बोद्धा विज्ञानात्मा पुरुषः विज्ञातारमरे केन विजानीयात्जानात्येवायं पुरुषः नहि द्रष्टु दृष्टेर्विपरिलोपः**' इत्यादि श्रुतिवचन स्पष्ट प्रमाण है, जो आत्मा ज्ञान स्वरूप है

प्रमातृत्वव्यभिचारो वक्तुं शक्यः। सुखाज्ञानादिप्रमातृत्वस्य तदानीमपि सत्त्वेन पूर्वमेव प्रतिपादितत्वात्। नापि करणवैयर्थ्योक्तिर्युक्ता। तत्सार्थक्यप्रकारस्य पूर्वत्रैव निरूपितत्वात्, तस्मादध्यासाङ्गीकारस्य सर्वथा दुराग्रहमात्रत्वमेवावैदिकत्वात्। किञ्चाध्यस्तस्याविद्यादोषवत्वेन कथं प्रमातृत्वं तवापि प्रमाश्रयस्यैव प्रमातृत्वाङ्गीकारात्, प्रत्युत भ्रान्तत्वमेव। एतेन सति प्रमातरि पश्चाद्भवन् दोषो दोष इत्युच्यते यथा काचादि। अविद्या तु प्रमात्रन्तर्गतत्वान्न दोषो येन प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं भवेदित्युक्तिरपि निरस्ता।

प्रागभिहितभाष्यार्थमनूद्य दूषयति—**यच्चोक्तमिति**। ब्रह्मणोऽज्ञानाश्रयत्वे शुद्धत्वं चिन्मात्रत्वं व्याहन्येत इत्याह—**शुद्धेति।** अज्ञानाश्रयत्वोक्तौ शुद्धत्वचिन्मात्रत्वयोर्व्याघातंइत्यर्थः। सर्वेश्वरे परब्रह्मण्यज्ञाने कल्प्यमाने सत्यज्ञत्वाविशेषाज्जीवसाम्यापत्तेस्तथात्वे तु स्वरूपप्रतिपादकशास्त्र बाधापत्तौ तवापि सिद्धान्तभङ्गस्तुल्य एवेति भावः। भवतां राद्धान्ते ज्ञानाज्ञानयोरविद्याकल्पितत्वमुच्यते तत्रेदं जिज्ञास्यते कल्पनाकारणीभूताविद्या जीवनिष्ठा ब्रह्मनिष्ठा वा? नाद्यः। भवतां नये जीवस्य प्रतिबिम्बस्वरूपत्वेन जडत्वात्। ब्रह्माभिन्नानङ्गीकाराच्च। नापि द्वितीयः। तस्य स्वयं प्रकाशत्वेन प्रकाशतमसोरिवात्यन्तविरुद्धत्वात्, ब्रह्मणोऽप्याविद्यकत्वे जीववत्तदभाव-प्रसङ्गाच्च। किञ्चाविद्या सहेतुकी निर्हेतुकीवेति विवेचनीयम्। आद्ये तस्यापि कारणान्तर-

---

और ज्ञाता भी है, "ज्ञोऽत एव" यह ब्रह्म सूत्र स्पष्ट रूप में आत्मा को ज्ञाता ज्ञानाधिकरण बतलाता है, इसी प्रकार '**एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद् विदः**' ऐसा भगवान् के श्रीमुख का वचन भी है। यहाँ फिर शांकर भाष्य के उक्त भाष्य का अनुवाद कर खण्डन करते हैं "**यच्चोक्तमसंगस्यात्मनः**" इति अर्थात् यह जो कहा गया कि असंग आत्मा का वृत्ति विशिष्ट मन के साथ तादात्म्याध्यास के बिना संभव नहीं है, उसकी सिद्धि के लिये अध्यास स्वीकार करना चाहिये यह तो अत्यन्त विडम्बना मात्र है, शुद्ध चिन्मात्र में और अज्ञानाध्यास का कथन "वदतो व्याघातः" के समान है, यह तो सूर्य और तम में अध्यास कथन की तरह उन्मत्त प्रलाप है। और इसका तो पूर्व में विस्तार से खण्डन किया जा चुका है। अर्थात् अज्ञानाश्रयत्व कहने पर शुद्धत्व तथा चिन्मात्रत्व का व्याघात होगा सर्वेश्वर पर ब्रह्म में अज्ञान की कल्पना करने पर जीवब्रह्म में अज्ञत्व समान रूप से रहने पर जीव के साथ साम्यापत्ति और ऐसा होने पर स्वरूप प्रतिपादक शास्त्र के बाध होने पर आप के लिये सिद्धान्त गङ्ग

मूलाविद्या-वच्छिन्नतयाऽनादिभ्रान्तस्य प्रमातृत्वोक्तेरुपहासमात्रत्वात्, जन्मान्धस्य कमलनयनसमाख्यावत्। अपिच तव पक्षे शास्त्रकृतां विदुषामपि पश्वादिभिरविशेषात्तदुक्तीनामपि पशुहेषणसाम्यप्रसक्त्यान्धपराम्परान्यायापत्तेः। ननु विद्वत्त्वं द्विविधं ब्रह्मास्मीति प्रत्यक्षरूपमेकमात्मानात्मविवेकरूपयौक्तिकपरोक्षज्ञानञ्च द्वितीयम्। आद्ये बाधिताध्यासानुवृत्त्या जीवन्मुक्तानां व्यवहारः। द्वितीये परोक्षज्ञानस्यापरोक्षभ्रान्त्य-

कल्पनेऽनवस्थापत्तेः। द्वितीये मुक्तानां भूयोऽपि बन्धप्रसङ्गात्। अस्माकन्तु कर्मसंस्कारादेरनादित्वेऽपि भगवत्कृपाकटाक्षेणोक्तरीत्या प्रकृतिसम्बन्धनिवृत्तेर्नासमञ्जसमित्यभिसन्धिः। **तदानीम्**=सुषुप्तौ। **तत्सार्थक्येति** "तन्मनोऽनुकुरुत" इत्यादिश्रुतौ मनसः कृतिकर्मत्वस्य शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांसो मनसेति करणेत्यस्येत्यादिना प्राक् तत्सार्थक्य-प्रकारस्य प्रतिपादितत्वादित्यर्थः। निगमयति—**तस्मादिति**। तवाप्यात्मनःप्रमातृत्वमिष्टमेवान्यथा सर्वव्यवहारस्य विलोपापत्तेः तच्च न घटत इत्याह—**किञ्चेति**। तद्भाष्यव्याख्यामनूद्य दूषयति—**एतेनेति**। वक्ष्यमाणदोषेणेति तदर्थः। न कोप्याचष्टे जन्मान्धस्य पुंसः कमलनयनमित्युपसहन्नाह—**जन्मान्धस्येति**। तदीयभाष्यस्याभिप्रायान्तरं शङ्कते—**नन्विति**।

समान ही है। आप के सिद्धान्त में ज्ञान अज्ञान दोनों अविद्या कल्पित है, तब यह जिज्ञासा होती है, कल्पना के कारण भूत अविद्या जीवनिष्ठ है या ब्रह्मनिष्ठ? पहला प्रश्न नहीं कह सकते, आपके मत में जीव प्रतिबिम्ब स्वरूप होने से जड़ है और ब्रह्म से भिन्न स्वीकार नहीं है। दूसरा भी नहीं कह सकते, उसमें स्वयं प्रकाश रूप होने से प्रकाश और तम की तरह अत्यंत विरुद्ध है। ब्रह्म को आविद्यिक मानने पर जीव की तरह उसका भी अभाव प्रसंग हो जायेगा। नाही सुषुप्ति में प्रमातृत्व का व्यभिचार ही कह सकते है, उस समय भी सुख विषय अज्ञान का प्रमातृत्व उस काल में भी विद्यमान रहता है, यह पहले ही बताया गया है, इसलिये अध्यास का स्वीकार दुराग्रह मात्र ही है, यह अध्यासवाद सर्वथा अवैदिक है। दूसरी बात अध्यास किंवा अध्यस्तता अविद्या दोष का कार्य होने से उसमें प्रमातृत्व कैसा? आपने भी प्रमा के आश्रय को ही प्रमातृत्व स्वीकार किया है। बल्कि उसमें भ्रान्तत्व ही होगा। अब यहाँ उनके भाष्य की व्याख्या का अनुवाद करके उसे दूषित करते। '**एतेन सति प्रमातरि---**' अर्थात् वक्ष्यमाण दोष से प्रमाता के रहने पर पश्चात् होने वाला दोष दोष कहलाता है, जैसे काच आदि। अविद्या को प्रमाता के अन्तर्गत होने से दोष नहीं है, जिससे प्रत्यक्ष आदि का अप्रामाण्य होता, यह कथन भी खण्डित हो गया। मूला अविद्या से अविच्छिन्न

निवर्तकत्वात्, विवेकिनामपि व्यवहारकाले पश्वादिसाम्यमविरुद्ध-मध्याससाम्यादिति चेन्न, अपरोक्षज्ञानवतां बाधितानुवृत्तेर्जीवन्मुक्ति-खण्डनावसरे विशेषतो निराकरिष्यमाणत्वात्। किञ्च परोक्षज्ञानादपि ध्रुवा

द्विविधविद्वत्त्वमुदाहरति—**ब्रह्मास्मीति। बाधितेति।** जीवन्मुक्तश्च तत्त्वज्ञानेन निवृत्ताविद्योप्यनुवृत्तदेहादिप्रतिभासः। नच जीवन्मुक्तानां तत्त्वज्ञानेनाविद्यानाशे तदैव देहपातस्स्यादिति वाच्यम्। यतः यथा निवृत्तसर्पभ्रमस्य पुंसः संस्कारवशात्भयकम्पानु-वृत्तिस्तथा जीवन्मुक्तस्याप्यविद्यानाशेऽपि तत्कार्यानुवृत्तिः दण्डसंयोगनाशेऽपि चक्र-भ्रमणवद्दृश्यत इति भावः। **जीवन्मुक्तिखण्डनावसरइति।** अपरोक्षज्ञानान्मूलाज्ञान-निवृत्तिरभिप्रेता नवेति नाद्यः। कारणनाशे कार्यस्थित्ययोगाद्भावरूपकार्यस्य निरुपादान-स्थित्ययोगात्, स्वोपादानत्वञ्चेत्, किमत्रोपादानं ब्रह्मैवान्यद्वा। नाद्यः। ब्रह्मणोऽकारणत्वेन

होने में अनादि भ्रान्त में अनादि अविद्या प्रयुक्त अनादि अध्यास में प्रमातृत्व कथन तो उपहास मात्र है, यह तो जन्मान्ध को कमल नयन कहने के समान हास्यास्पद है। आपके मतानुसार तो शास्त्रकार विद्वान् भी पशु के समान होने से उनके वचन भी पशुओं के शब्दों के समान होने के कारण अन्धपरम्परा न्याय की आपत्ति होगी। कारण आपके आचार्य ने विद्वानों को भी पश्वादिभ्यश्चाविशेषा वास्तविक कर डाला है। अब यहा पश्वाादिभ्यनृचा विशेषात् तात्पर्य बताते हुए शंका करते है—

''ननु विद्वत्वं द्विविधम्'' इत्यादि अर्थात् यदि कहें कि विद्वत्व (विद्या) दो तरह के होते है अहं ब्रह्मास्मि इत्याकारक अपरोक्ष अनुभूति एक (पंहला) तथा शास्त्र एवं युक्त (तर्क) द्वारा आत्म अनात्म (वेदादि) विवेक रूप परोक्ष ज्ञान दूसरा। प्रथम पक्ष में बाधित अध्यास की अनुवृत्ति रहने से जीवन्मुक्तों का व्यवहार होता है, अर्थात् जीवन्मुक्त में तत्वज्ञान से अविद्या की निवृत्ति होने पर भी आप देहादिका प्रतिभास रहता है। कहे कि जीवनमुक्तों को तत्त्वज्ञान से अविद्या नाश हो जाने से उसी क्षण देहपात हो जाना चाहिये तो कहते हैं जैसे सर्पभ्रम निवृत्त हो जाने पर भी संस्कार वशात् भय तथा कम्प की अनुवृत्ति रहती है, उसी प्रकार जीवन मुक्त जनों में भी अविद्या के नाश होने पर भी उसमें कार्य की अनुवृत्ति रहती है जैसे दण्ड संयोग के नाश होने पर थोड़ी देर तक चक्रभ्रमण होता दिखाई देता है। द्वितीय पक्ष में परोक्ष ज्ञान अपरोक्ष भ्रान्ति का निवर्तक नहीं होता, इसलिये विवेकियों में व्यवहार काल में पशु आदि के साम्य से कोई विरोध नहीं है, क्योंकि अध्यास के साम्य होने से तो ऐसा नहीं कह सकते इसका आगे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञानवान् व्यक्तियों में भी बाधित अध्यास

स्मृत्याख्यादज्ञाननिवृत्तेः सामञ्जस्यात्। ''सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष'' इत्यादिश्रुत्या कण्ठरवेण डिण्डियमानत्वात्। किञ्च पश्वादीनां ज्ञानस्य क्षुधापिपासादीष्टा-निष्टादिविषयकत्वेन तावन्मात्रत्वेऽपि

तदुपादनत्वासम्भवात् अन्यथा कारणस्य नित्यत्वेन कार्यस्यावश्यम्भावादनिर्मोक्षप्रसङ्गः। न द्वितीयः। अविद्यातत्कार्याभ्यां ह्यन्यस्यासत्त्वात्, तस्मान्मूलाविद्यानाशे प्रारब्धस्याव-स्थातुमशक्यत्वात्तन्तुनाशे पटस्येव। नच प्रारब्धजन्यभोगनिर्वाहकतया कियत्कालमविद्याया अनुवृत्त्यङ्गीकार इति शङ्कनीयम्। विद्याया अविद्योपमर्दकत्वस्वभावहानि-प्रसङ्गादित्येतत्सर्वं

की अनुवृत्ति होती या रहती है, इस कथन का हम जीव मुक्तिवाद के खण्डन के अवसर पर आगे ग्रन्थ में विशेष रूप से करेंगे। दूसरी बात ध्रुवास्मृति रूप परोक्ष ज्ञान में भी अज्ञान निवृत्ति का सामंजस्य है। सत्वशुद्धौध्रुवास्मृतिः अन्तःकरण शुद्ध होने पर ध्रुवा स्मृति होती है और ध्रुवा स्मृति प्राप्त होने पर समस्त ग्रन्थियों का ध्वंस हो जाता है। **'स्मृति लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष'** इत्यादि रूप में श्रुति का डिण्डिम घोष है। शांकर भाष्य में जो कहा गया है अध्यास पश्वादि साधारण है, उसका अन्यथा उपादान करते है, पशुओं का क्षुधानिवृत्यर्थ घास आदि में प्रवृत्ति दण्डोद्यत पुरुष को देखकर हिंसारूप अनिष्ट से रक्षा के लिये उससे निवृत्ति तो स्वाभाविक ही है, इसमें अध्यस्तता नहीं है। इसी बात को श्रुति एवं स्मृति प्रमाण द्वारा दृढ़ करते है—

''जातमात्रा मृगाः गावो हस्तिनः पक्षिणः शशाः
भयाभयस्वभावादौ कारणानि विजानते।
अस्मृतौ पूर्वदेहस्य विज्ञानं तत्कथं भवेत्॥''

इत्यादि स्मृति वचन प्रमाण है। तथा **''अथेतरेषां पशूनामशनापिपास एवाभिज्ञानम्''** इत्यादि श्रुतिवचन भी प्रमाण हैं। इसलिये उक्त दोषों के कारण अध्यास अप्रमाणित होने से उक्त लक्षण सिद्धान्त के श्रौत होने की बद्ध अवस्था में देह इन्द्रिय आदि से युक्त आत्मा में ही प्रमातृत्व है। यह सिद्धान्त सिद्ध होता है और देह आत्मा के ऐक्य स्वरूप से अध्यास का अप्रमाणिकत्व संक्षेप में अध्यास निराकरण पूरा हुआ।

इस प्रकार शांकर मत सिद्ध अध्यासवाद रूपी गिरि निपात पूरा है।

इस प्रकार प्रसंग से प्राप्त यह अध्यासवाद सपरिकर पूर्णतया खण्डित कर दिया गया, इस प्रकार परमत में विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन तथा अधिकारी की सिद्धि नहीं हो सकी। तथा अनुबन्ध के अभाव में शास्त्र प्रणयन स्पष्टतया व्यर्थ सिद्ध कर दिया

स्वाभाविकत्वमेव नाध्यस्तत्वं "जातमात्रा मृगा गावो हस्तिनः पक्षिणः शशाः। भयाभयस्वभावादौ कारणानि विजानते। अस्मृतौपूर्वदेहस्य विज्ञानं तत्कथं भवेदि" तिस्मृतेः। अथेतरेषां पशूनामशनापिपासएवाभिज्ञानमित्यादिश्रुतेश्च। तस्मादुक्तदोष-

चतुर्थाध्याये स्फुटीभविष्यतीति भावः। ध्रुवास्मृतिरूपपरोक्षज्ञानादप्यज्ञानं निवर्त्तत इत्यत्र स्मृतिं प्रमाणयति—**सत्त्वशुद्धाविति**। यदुक्तं पश्वादिसाधारणोऽध्यास इति तद्भाष्ये तदप्यन्यथोपपादयति—**पश्वादीनामिति**। उक्तार्थं श्रुतिस्मृतिप्रमाण-मुखेन द्रढयति—**जातमात्रेति**। प्रागुक्तार्थं निगमयति—**तस्मादिति**। इतिदेहात्मैक्याध्यासनिरसनम्।

गया अब इस विषय में विस्तार करना व्यर्थ है। सिद्धान्त में तो विषय सम्बन्ध अधिकारी आदि सभी शास्त्र सिद्ध होने से शास्त्रारम्भ सर्वथा सार्थक है।

अब अपने महत्वपूर्ण उपोद्घात ग्रन्थ के अन्त में वाङ्गीय दार्शनिक शिरोमणि धुरंधर तार्किक प्रातः स्मरणीय श्री माधव मुकुन्द देवाचार्य महाराज अपने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रयोजन एवं पूर्वाचायों के प्रति अपना सम्मानभाव प्रदर्शन करते हैं दो श्लोकों में कहते हैं कि यह ग्रन्थ मैंने वेद वेदान्तार्थ प्रतिष्ठापक निवृत्ति पथारूप १०८ श्री सनकादि प्रदर्शित सिद्धान्त प्रवर्तक पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत वेदान्त ग्रन्थों का अनुशीलन करके ही यह ग्रंथ मैंने रचा है, इसमें मेरा स्वतन्त्र कोई विचार नहीं है। यह भाव प्रथम श्लोक द्वारा व्यक्त हुआ है, कहते है कि भाष्यकार वेदान्त कौस्तुभकार परम गुरु श्रीनिवासाचार्य महाराज के चरणाम्बुज की अहेतु सेवा से प्राप्त बुद्धि द्वारा की सनकादि महर्षि गणानुगामी पूज्यपाद देवर्षि श्रीनारद, उनके साक्षात् शिष्य श्रीनिम्बार्क भगवान् तदनुगत श्री निवासाचार्य आदि लोक वेद प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा विरचित सत्शास्त्र श्री देवर्षि विरचित पाञ्चरात्र शास्त्र पूज्यपाद आद्याचार्य श्री निम्बार्क भगवान् द्वारा विरचित वादरायणीय ब्रह्म सूत्र का शारीरिक मीमांसा वाक्यार्थ, वेदान्त पारिजात सौरभ तथा श्री श्री निवासाचार्य विरचित वेदान्त कौस्तुभ आदि समस्त साम्प्रदायिक ग्रन्थों का विधिवत् आलोढन करके श्रुति द्वारा निर्णीत अर्थ अथवा श्रुतियों का निर्णय जिसका प्रयोजन है, ऐसा यह परपक्ष गिरि वज्राख्य ग्रन्थ मैंने (पं० श्री माधवमुकुन्ददेवाचार्य) विरचित किया है। यह प्रथम श्लोक का अर्थ है।

इस पुस्तक के निर्माण से समस्त पूर्वाचार्यों के तत्व ज्ञानादि निखिलार्थ प्रदाता अखिल मंगलों की मङ्गलमयी मूर्ति देवाधिदेव श्याम सुन्दर भगवान् श्री कृष्ण तथा

तादवस्थ्येनाध्यासस्याप्रमाणकत्वादुक्तलक्षणसिद्धान्तस्य श्रौतत्वाद्बद्धा-वस्थायां देहेन्द्रियादिसंयुक्तस्यैव प्रमातृत्वमितिसिद्धं सिद्धश्च देहात्मैक्येन स्वरूपेण वाऽध्यासस्याप्रामाणिकत्वमिति सङ्क्षेपः ॥ ९३ ॥

इति देहात्मैक्याध्यासगिरिनिपातः
॥ इतिपराभिमताध्यासवादगिरिनिपातः ॥ २३ ॥

पराभिमतविषयप्रयोजनाधिकारिणां प्रमणाप्रमेयादिव्यवहारान्तर्गतत्वात्सर्वमध्यासमहिम्ना व्यवस्थापयितुं शक्यत इतियत्प्रागभिहितं तत्स्मारयन्निराकरोति—**एवमिति। प्रसङ्गइति ॥ ९३ ॥**

पूर्वोक्त गुण गण विशिष्ट अज्ञानान्धकार निवारक गुरुदेव मनुजावतार भगवान् श्री निम्बार्काचार्य विश्व का कल्याण करें ।।९३।।

यास्ति श्री निमिवंशभूपतिमहाकीर्तिप्रतापान्विता,
धर्मज्ञानविवेकभूतलतयाख्याता श्रुतीनां गणे
यस्यां श्रीश्चकमे स्वजन्य ललितं विद्यापरा शाश्वती
सा जीयान्ममजन्मभूमि मिथिला योगीन्द्र वृन्दाश्रया ॥

इस प्रकार उपोद्धात ग्रन्थ का विवरण पूर्ण हुआ ॥

एवं प्रसङ्गप्राप्तः सपरिकरोऽयमध्यावादो निरस्तः तत्सिद्धं परमते विषयसम्बन्ध प्रयोजनासिद्ध्यधिकार सिद्धिरिति। एवञ्चानुबन्धाभावे शास्त्रप्रणयनस्य सुतरां वैयर्थ्यं इत्यलं विस्तरेण सिद्धान्तेत्वधिकार्यादेः सर्वस्य शास्त्रसिद्धत्वाच्छास्त्रारम्भस्य सार्थक्यमेवेति।'' श्रीश्रीनिवासचरणाम्बुजकोशगन्ध भृङ्गायमाण चरणानुगृहीत बुद्ध्या। आलोड्यतैर्विरचितं सनकानुगैः सच्छास्त्रं मया विरचितः श्रुतिनिर्णयार्थः ॥१॥ एतेन तुष्यतुविभुर्मम देवदेव आचार्य्यवर्य्य निखिलार्थ प्रदो वदान्यः श्रेयस्तनोतु जगतोऽखिल मङ्गलानां मूर्तिर्गुरुश्च भगवान् मनुजावतारः ॥२॥ इत्युपोद्घात ग्रन्थः।

एवमिति प्रसङ्गइति स्मृतस्योपेक्षानर्हत्वं प्रसङ्गः। **सपरिकरइति।** अध्यास-सामग्रीत्यर्थः। एवञ्च=विषयप्रयोजनाधिकारिणामसिद्धौ। **शास्त्रेति।** परमते वेदान्तशास्त्रं नारब्धव्यं विषयप्रयोजनाभावात् गगनकुसुमवदिति प्रयोगः। स्वमते शास्त्रारम्भं समर्थयति—**सिद्धान्त इति।** त्रय्यन्तार्थप्रतिष्ठापकनिवृत्तिपथाधिरूढ श्री १०८ सनन्दनादिप्रदर्शितसिद्धान्तप्रवर्तकपूर्वाचार्यप्रणीतवेदान्तार्थानुशीलनेनैवैषोग्रन्थो मया व्यरचि नतु **स्वोत्प्रेक्षित** इत्याह श्लोकेन—**श्रीश्रीनिवास इति।** श्रिया युक्तः श्रीनिवासाचार्य्यस्तस्य चरणौ अम्बुजे इव तस्य कोशः देशविशेषस्तस्मिन् यो गन्धः सौरभविशेषस्तस्मिन्भृङ्गाइवाचरन्तीतिभृङ्गायमाणाःविश्वाचार्य्यप्रभृतयस्तेषां चरणैरनु-गृहीताऽनुग्रहं प्रापिता बुद्धिस्तया **सनकानुगैः**=सनकाद्यनुगमन कर्तृभिः पूज्यपाद-श्रीदेवर्षिनारदतच्छिष्यश्रीनिम्बादित्यतदनुगतश्रीनिवासाचार्य्यप्रभृतिभिः तैः लोक-वेदप्रसिद्धैः विरचितं सच्छास्त्रं श्रीदेवर्षिप्रणीतं पाञ्चरात्रं पूज्यपादाद्याचार्य्यनिर्मितं वादरायणीयसूत्राणांशारीरकमीमांसावाक्यार्थं श्रीश्रीनिवासाचार्य्यविरचितवेदान्त-कौस्तुभाख्यञ्चालोड्य निर्मथ्य **श्रुतिनिर्णयार्थः**=श्रुतीनां निर्णयएवार्थःप्रयोजनं यस्य स परपक्षगिरिवज्राख्यो ग्रन्थः मया=श्रीमन्माधवमुकुन्दचरणेन विरचित इति प्रथमश्लोकार्थः।

एतेन=प्रागुपदर्शितप्रबन्धेन। **देवदेवः**=देवानां चतुर्मुखरुद्रेन्द्रादीनां देवः पूज्यः। **विभुः**=व्यापकः। आचार्य्यवर्य्याणां श्रीश्रीनिवासाचार्य्यप्रभृतीनां निखिलार्थान् धर्मादि-मोक्षान्तान् प्रकर्षेण ददातीति तथोक्तः मनुजावतारः मनुजइवावतारः वस्तुतः भगवान् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नः। **गुरुः**=अज्ञानान्धकारनिवर्त्तकः। अखिलमङ्गलानां मूर्त्तिः वदान्यः सर्वाऽभीष्टप्रदः पूज्यपादःश्रीनिम्बादित्यः तुष्यतु जगतः ब्रह्मादिस्थावरान्तस्य श्रेयः शिवं मङ्गलमितियावत् तनोतु विस्तारयतु, इति द्वितीयश्लोकार्थः।

स्वेनैवेत्यर्थोऽभिप्रेतः प्रमाणं विनेति वा। नाऽद्यः। स्वविषयत्वापत्तेः नान्त्यः। उपायान्तरानुपन्यासेन तदसिद्ध्यापत्तेः नृशृङ्गशशशृङ्गादेरपि सिद्ध्यापत्तेः अन्यथा स्वप्रकाशत्वहानेश्च। नच तदसत्त्वव्यावृत्तिफलकं प्रमाणं नास्ति, प्रकृतेच वृत्तिविषयतामात्रेण तदस्ति, ब्रह्मणो वृत्त्यविषयत्वे तदसतो व्यावृत्त्यसम्भवात्, तद्विषयत्वे चाप्रकाशत्वापत्तेः। किञ्च तद्विषयकसंशयं प्रति तद्विषयकनिश्चयस्य विरोधित्वात् क्लृप्तत्वेन विषयत्वं विना स्वसंशयविरोधानुपपत्तेः। नच विषयत्वाभावेऽपि स्वनिर्वाहकत्वेन स्वसंशयविरोधित्वाद्युपपत्तिः, स्वनिर्वाहकपदस्य निर्वहणक्रियाकर्त्तृत्व-कर्मत्वादिमात्रपरत्वात्। नच "स्वयं दासास्तपस्विन इत्यादो दासान्तरा-भावमात्रेण स्वदासत्वव्यपदेशवत् स्वभिन्नस्वनिर्वाहकानपेक्षत्वमात्रेण स्वनिर्वाहकत्वोपचारः, दासान्तराभावे सतिस्वदास्यं कुर्वत्येव तपस्विनि तथा व्यवहारेण समाध्यादिषु स्थिते तदव्यवहारेण दृष्टान्तासिद्धेः"। "स्वाध्यायो ऽध्येतव्य" इति विधौ स्वविषयत्वदर्शनाच्चा। नच मामहं जानामीत्यादावहमर्थविषयकं ज्ञानं वृत्तिरूपमेव नतु स्वरूपज्ञानं वृत्यनुत्पत्तिदशायामनहम्वेति कदाचित्संशयाद्यापत्तेः। घटिकाद्वयं घटोऽयं घटोऽयमिति पश्यन्नेवाहमासमिति धारावहनोत्तरपरामर्शानुपपत्तेश्च, नहि घटाकाराहमाकाराचेति वृत्तिद्वयं युगपत्प्रागुत्पन्नं तद्यौगपद्यानङ्गीकाराच्च। अस्तमितआदित्ये याज्ञवल्क्य "किंज्योतिरेवायं पुरुष" इत्यादिप्रश्नपूर्वकं चन्द्राग्निवाग्ज्योतिरप्युक्ता चन्द्रमस्यस्तमिते शान्ते "ऽग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवायं पुरुष" इत्यादीनां ज्ञानसाधनानामभावे किं ज्ञानसाधन-मिति जनकेन पृष्टे याज्ञवल्क्येनोक्तम् "आत्मैवास्यज्योतिर्भवती" त्युपक्रमे आत्मशब्दो

"श्रीमद्धंसकुमारनारदमुनीन्निम्बार्कदेवं प्रभुं वेदान्तस्यच भाष्यकारमनिशं श्रीश्रीनिवासं गुरुम्। वन्देऽहञ्च ततः परान् तदनुगानाचार्य्यवर्य्यानथो भिन्नाभिन्नम-ताम्बुजार्कसदृशान् सर्वान् गुरून्सादरम्"।।१।। "आनन्दामृतवर्षिमेघसुखदं माधुर्य्य-रागास्पदं श्रीवृन्दावनवासलभ्यरतिदं वैराग्यसिन्धूद्भवम्। श्रीराधाचरणारतालिसुखदं नित्यं नवीनं सदा, वन्दे श्रीहरिदासपादनलिनं संततसतापच्छिदम्"।।२।। ।।९४।।

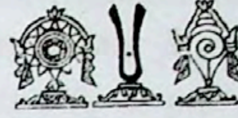
द्युभ्वाद्यधिकरणन्यायेनेशपरः "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योति" रित्युपसंहारेऽप्यत्र सुषुप्त्यादौ ज्ञानसामान्याभावेऽस्य जीवस्यायं परेश एव स्वयंज्योतिर्ज्ञानसाधनं वाचैवायं ज्योतिषाऽऽस्ते" इति ज्योतिः शब्दस्य वाचि ज्ञानसाधने प्रयोगात्, त्वदभिमतस्वप्रकाशपरत्वे सदा स्वप्रकाशत्वेन श्रुतावत्रेत्यस्य वैयर्थ्यात्। नच जाग्रदवस्थायामादित्यादिज्योतिः सम्भवेन दुर्विवेकतया ऽस्यामवस्थायां सुविवेकतया ऽत्रेति सार्थकं, स्वप्रकाशस्या-विवेकाद्यसम्भवात्, अस्येति षष्ठ्या विषयत्वविधानाच्च। स्वविषयत्व-स्वरूपस्वप्रकाशज्ञानेन सविशेषभिन्नस्वप्रकाशश्च जीवः परेशश्च सिद्धः स्वाभिमतस्वप्रकाशत्वोपपत्तेरिति सङ्क्षेपः। यद्वा वा व इत्यत्र वाक्शब्दो लौकिकवाकपरः तत्र दोषवत्त्वेन निषेधसम्भवात्न वैदिकस्य तथात्वे ह्यौपनिषदत्वभङ्गात्। किञ्च श्रुतौ मनश्शब्दोऽपि शास्त्राचार्यसंस्कारशून्य-प्राकृतमनोवाचकोऽअन्यथा "मनसैवानुद्रष्टव्य" इतिसावधारणश्रुति-व्याकोपात्। एतेन "यद्वाचानभ्युदितं यन्मनसा न मनुते" इत्यादयः श्रुतयो ऽपि व्याख्यातास्तुल्यार्थत्वात् अन्यथा मन्तव्य इतिविधिश्रुतिविरोधात् यद्वस्तु लौकिक्या वाचऽभ्युदितं प्रतिपादितं न भवति तदेव ब्रह्म त्वं विद्धीत्यन्वयः। एवमेव मनःशब्दस्याऽप्यसंस्कृतमनोवाचकत्वं वाध्यम्, अन्यथा विद्धीति वेदनविषयत्वोक्तिविरोधात्, एवं "अवचनेनैव प्रोवाचे" त्यत्रापि प्राकृतवचनविलक्षणश्रौतवचनेनानन्तत्वेन वा प्रोवाच उपदिष्टवा-नित्यर्थः अन्यथा प्रोवाचेति वचनक्रियापदप्रयोगवैयर्थ्यात्, सर्वथा प्रमाणाविषयेत्वे शशशृङ्गादिसाम्यापत्तेः, शास्त्रारम्भवैयर्थ्याचेति सङ्क्षेपः। तस्माच्छास्त्रैकवेद्यं परं ब्रह्म श्रीतुरुषोत्तमाख्यमिति सिद्धम्।

इति प्रमाणविषयगिरिनिपातः ॥ ४ ॥

अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र के अनुवाद के अतिरिक्त अन्य लेखों के परिशिष्ट भाग की अनुक्रमणिका:- **पृ. सं.**

श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते

भगवते श्रीमदाद्याचार्यश्रीनिम्बार्काय नमः श्रीसद्गुरवे नमः



प्रस्तुत "**श्रीकृष्णशरणापत्ति स्तोत्र**" के निर्माता जगद्विजयी श्रीनिम्बार्कीय वैष्णवाचार्य श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टजी के शिष्य तथा निम्बार्क सम्प्रदायके चौंतीसवें आचार्य श्रीश्रीभट्टजी महाराज हैं। इस स्तोत्र में कुल पच्चीस श्लोक हैं। आचार्य चरण अनुष्टुप छन्दों से पुराण पुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता अमृतमयी कृपादृष्टि करुणाभरी स्तुति की है। अतः यह एक अनुत्तम स्तोत्र है जो सर्वोत्कृष्ट श्रीभगवच्छरणागति परक है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूपका एवं माधुर्यरस का सर्वोत्कृष्ट अनुवाद सहित वर्णन है।

अथ श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्रम्

श्रीदः श्रीशः श्री निवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। श्रीधरः श्रीकरः श्रीमान्श्रीकृष्णः शरणं मम॥१॥
श्रीवृन्दावनचन्द्रः श्री,- व्रजेन्द्रकुल चन्द्रमाः। श्रीराधा कौमुदीचन्द्रः श्रीकृष्णः शरणं मम॥ २॥

अनुवादः- लक्ष्मी को देने वाले, लक्ष्मी के पति, जिनके वक्षःस्थल पर लक्ष्मी निवास करती हैं, लक्ष्मी के धन अथवा लक्ष्मी है जिनका धन, लक्ष्मी को पालन करने वाले, लक्ष्मी को धारण करने वाले, लक्ष्मी को वृद्धि करने वाले लक्ष्मीवान् भगवान् श्रीकृष्ण ही एक मात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥१॥ श्रीधाम वृन्दावन के चन्द्रमा, व्रजराज कुल के चन्द्रमा, श्रीराधारूप चाँदनी के विकास के चन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण ही एक मात्र मेरा आश्रय स्थल हैं॥२॥

नवगोपकिशोरेन्द्रः कोटिकन्दर्पसुन्दरः। श्रीराधाकेलिसन्तुष्टः श्रीकृष्णः शरणं मम॥३॥
कोटीन्दुजगदानन्दी कालिन्दीपुलिनोत्सवः। स्फुरदिन्दीवरश्यामः श्रीकृष्णः शरणं मम॥४॥

नये-नये ग्वालवाल जो किशोर अवस्थावाले हैं उनमें श्रेष्ठ, करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, ब्रजेश्वरी श्रीराधारानी के प्रेम से सन्तुष्ट भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा सहारा हैं ॥३॥ करोड़ों चन्द्रों के समान जगत को आनन्दित करने वाले, यमुनाजी के तट पर विहार करने वाले, चमकते हुए कमल के समान श्यामस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥४॥

त्रिभङ्गिललितस्तिर्यक्ग्रीवस्त्रैलोक्यमोहनः। पिच्छमौलिः पीतवासाः श्रीकृष्णः शरणं मम॥५॥
मुरलीवादनकलामुह्यत्स्थावरजङ्गमः। प्रत्यङ्गापारसौन्दर्यःश्रीकृष्णः शरणं मम॥६॥

अति सुन्दर त्रिभङ्गी रूपवाले, तिरछी ग्रीवा, चितवन से त्रिलोकी को मोहित करने वाले, सिर पर मोर पंख का मुकुट धारण करने वाले पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥५॥ वंशीध्वनि से समस्त जड़ चेतन को मोहित करने वाले, जिनके सर्वाङ्ग में अपार सौन्दर्य है वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥६॥

कौस्तुभोदारवक्षः श्री, स्फुरन्मकरकुण्डलः। कङ्कणाङ्गदरोचिष्णुः श्रीकृष्णः शरणं मम्॥ ७॥
विस्फुरत्किङ्किणीजालमणिनूपुरमण्डितः। विद्योतपिच्छमुकुटः श्रीकृष्णः शरणं मम॥ ८॥

जिनके उदार वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि है, कानों में मकराकार कुण्डल चमक रहा है और बाहुओं में कङ्कण एवं बाजूवन्द सुशोभित हैं वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥ ७॥ चमकते हुए घुघरुओं के जाल एवं मणियुक्त नूपुर धारण करने वाले तथा चमकते हुये मोर के पंख का मुकुट धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरा एक मात्र आश्रय स्थल हैं। ॥८॥

चन्दनागारलिप्ताङ्गः कस्तूरीतिलकोज्ज्वलः। आजानुतुलसीदामः श्रीकृष्णः शरणं मम॥९॥
कदम्बतरुमूलस्थः कदम्बकृतकर्णिकः। कदम्बमालया वीतः श्रीकृष्णः शरणं मम॥ १०॥

मलयागिरि-चन्दन से सुशोभित अङ्ग वाले, ललाट पटलमें कस्तूरी-तिलक धारण करने वाले और जानुपर्यन्त तुलसी की माला धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थल हैं ॥ ९॥ कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजमान कदम्ब पुष्पों को कानों में लटकाये हुए और कदम्ब फूलों की माला को गले में धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥१०॥

वंशीनादसमाकृष्टो ब्रजसीमन्तिनीव्रतः। राधिकाप्रेमविवशः श्रीकृष्णः शरणं मम॥११॥
पुलकावचितसर्वाङ्गः समालिङ्गन्मुहुर्मुहुः। रूपलीलानिधिं राधां श्रीकृष्णः शरणं मम॥१२॥

बाँसुरी की ध्वनि से ब्रजसुन्दरियोंके समूह को सम्यक् आकृष्ट करने वाले और ब्रजेश्वरी श्रीराधा रानी के प्रेम के आधीन में रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥११॥ रूप सौन्दर्य एवं लीला- निधि वृषभानु नन्दिनी श्रीराधारानी को बारम्बार सम्यक् आलिङ्गन करते हुए जिनका सारा अङ्ग रोमाञ्चित हो रहा है। वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥१२॥

महाकामाग्निसन्तप्तो गोपीगीतसुधाह्रदः।राधासङ्गैकजीवातुः श्रीकृष्णः शरणं मम॥१३॥
वेणुरन्ध्रचलाङ्गुल्या भातिरत्नोर्मिका छविः। शिञ्जन्मञ्जीररसनः श्रीकृष्णः शरणं मम॥१४॥

महाकामाग्नि से सन्तप्त, गोपीगीतामृत के सरोवर स्वरूप और ब्रजेश्वरी श्रीराधारानी के सङ्ग ही जीवनधारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा सहारा हैं॥१३॥ वंशीके छिद्रों पर चलने वाली अंगुलियों से रत्नों के तरङ्गकी भाँति सुशोभित हो रही है छवि जिनकी, शब्द करते हुए घुंघरु हैं करघनी में जिनके वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा सहारा हैं॥१४॥

सान्द्रानन्दैकचिद्घने सदा वृन्दावने वने। विरहन् राधया नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम॥१५॥
अत्याश्चर्यानन्तशक्ति अत्याश्चर्यगुणाकरः। अत्याश्चर्यानन्दरसः श्रीकृष्णः शरणं मम॥१६॥

सघन जो आनन्द और चिद्घन ऐसे वृन्दावन के वन-वन में सदा परा शक्ति श्रीराधाजी के साथ विहार करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा सहारा हैं ॥१५॥ जो अति आश्चर्य अनन्त अचिन्त्य शक्तिशाली, अति आश्चर्यमय कल्याण गुणों के महोदधि और अति आश्चर्य आनन्द रस स्वरूप हैं वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थान हैं॥१६॥

महाचमत्कारिसर्वनिजशक्तिप्रवर्तकः। कृपौदार्यनिधिः प्राज्ञः श्रीकृष्णः शरणं मम॥१७॥
अविशेषेण[1] सर्वस्य सर्वकामप्रपूरकः। सर्वसिद्धिप्रदो नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम॥१८॥

अपने सभी भक्तोंमें अपनी महाचमत्कारी शक्ति को देखने वाले अथवा जो अपनी पराशक्ति (राधा) के सहारे से बड़े-बड़े चमत्कार पूर्ण लोक विलक्षण, लीलायें करते हैं, जिससे संसार की परम्परा चलती है, [इस विषय में हमारी लिखी "युग्मतत्त्वसमीक्षा" नामक पुस्तक पढ़िये] जो कृपा एवं उदारता के समुद्र हैं। जो भक्तों का अज्ञान दूर करते हैं और परम हंसों को ज्ञान देते हैं वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरा आश्रय स्थान हैं॥१७॥ जो सबकी सारी कामनाओं को बराबर पूर्ण करते हैं और उनको नित्य सकल सिद्धियाँ प्रदान करते हैं वे भगवान श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थान हैं॥१८॥

स्मृतिणां वशयन् विश्वं वर्षन् सर्वार्थसम्पदः। सर्वापद्भ्यः सदा रक्षन् श्रीकृष्णः शरणं मम॥१९॥
सकृत्[2] तवाहमित्येवं वादिनेऽपि निजात्मदः। अत्यन्तापारकारुण्यः श्रीकृष्णः शरणं मम॥२०॥

विश्व को वश में करते हुए अपने स्मरण करने वालों पर धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का वर्षण करते हुए जो सारी आपत्तियों से हमेशां रक्षा करते हैं वे भगवान् ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थान हैं॥१९॥ जो एक बार भी भगवान् श्रीहरि की शरण में जाकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसे कहनेवाले को भी जो अपना स्वरूप प्रदान करते हैं वे अत्यन्त अपार करुणा मूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थल हैं॥२०॥

अनन्तापारे संमग्नः कामकेलिरसाम्बुधौ। श्रीराधाप्राणहृदयः श्रीकृष्णः शरणं मम॥२१॥
स्वतन्त्रमेव सकलं कुर्वन्नुद्दामशक्तिमान्। महानन्दमयो देवः श्रीकृष्णः शरणं मम॥२२॥

हाव-भाव, महाभाव कृपा-कटाक्ष, क्रीड़ा रस सागर की अपार अनन्त-असंख्य जलराशि में डूबे हुए श्रीराधा प्राणहृदय भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थल हैं॥२१॥ जो अनन्त अचिन्त्य स्वाभाविक शक्तिमान् विश्वात्मा विश्वमूर्ति स्वेच्छाधीनदेव चराचर समस्त जगत् की रचना करते हैं वे महानन्दमय श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थल हैं॥२२॥

स्वपदाम्भोरुहद्वन्द्वपरमप्रेमभक्तिदः। महानन्दमयो देवः श्रीकृष्णः शरणं मम॥२३॥
[1]सर्वमन्यद् विनाप्येकमत्याभासेन सर्वदा। महास्वान्तो दयः स्वामी श्रीकृष्णः शरणं मम॥२४॥

उपासकों को अपने युगल चरणारविन्दों की प्रेमलक्षणा पराभक्ति प्रदान करने वाले महानन्दमय देव श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थान हैं॥ २३॥ दूसरे के बिना एक ही जो सब चराचर वस्तु रुप से सदा-सर्वदा आभासित होने वाले अर्थात् एक ही जो प्रपञ्चरूप में भासित हो रहे हैं एवं महती दया युक्त अन्तःकरणवाले वे स्वामी श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रय स्थान हैं॥२४॥

१. यद्यपि भगवान् श्रीहरिके प्रसन्न होने पर संसार की कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती, तथापि श्रीमद्भगवद्भक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं करते हैं।

(श्रीमद्भा० १०/३९/२)

2. जो एक बार ही मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे अभय चाहता है, मैं उस प्रपन्न को सब भूतों से अभयदान दे देता हूँ यह मेरा व्रत है।

(श्रीमद्बा०रा०युद्धकाण्ड १८/३३)

श्रीकृष्णशरणापत्ति स्तोत्रमेतन्निरन्तरम्। यः पठेत् तस्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ति साधनैर्विना॥२५॥

इस श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र का जो नियम से प्रतिदिन पाठ करता है उसके समस्त अर्थ (प्रयोजन =कार्य) बिना साधनों से सिद्ध हो जाते हैं॥२५॥

इति श्रीमन्निम्बार्कीय वैष्णवाचार्यजगद्विजयी- केशवकाश्मीरिभट्टचरणारविन्दचञ्चरीक
श्रीश्रीभट्टप्रणीतंश्रीकृष्णशरणापत्ति स्तोत्रंसम्पूर्णम्

अनुवादक - डॉ० स्वामी द्वारकादास काठियाबाबा

इस प्रकार श्रीनिम्बार्कीय वैष्णवाचार्य जगद्विजयी श्रीकेशव काश्मीरिभट्टजी के शिष्य श्रीश्रीभट्टजीकृत श्रीकृष्णशरणा पत्तिस्तोत्र का अनुवाद समाप्त हुआ।

कृष्णाज्ञया जगति यस्तु बभूव पूर्व निम्बार्क एष भगवान् यतिसार्वभौमः।
तत्पाणिपल्लवदले गुरुभक्तिनिष्ठः श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्रं समर्पये॥

समर्पयिता अनुवादकः

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य चरणों के मत में दशमी तिथि यदि पलमात्र भी अर्द्धरात्रि ४५ घड़ी से अधिक होती है, तो एकादशी को छोड़कर द्वादशी का व्रत करना चाहिए। यथा-

अर्धरात्रमतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि। तदाह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥

(कूर्म-पुराण)

इस विवेचन से यह वेध 'स्पर्शवेध' अथवा 'कपालवेध' कहा जाता है। अतः पूर्व तिथि विद्धा एकादशी सर्वथा अग्राह्य है। इसी प्रकार 'श्रीनारद' पञ्चरात्र में भी प्रतिपादित है-

"पूर्व विद्धा तिथेस्त्यागो वैष्णवस्य विलक्षणम्"।

इस वचन के अनुसार पूर्व विद्धा एकादशी त्याज्य है, शुद्ध एकादशी ही ग्राह्य है।

इस प्रसंग में विशेष विवेचन से 'निम्बार्क व्रत-निर्णय' में 'औदुम्बर संहिता में 'स्वधर्मामृत-सिन्धु में' और अन्य परम पुरातन स्वसाम्प्रदायिक अनेक प्रौढ़ ग्रंथ का अवलोकन करना चाहिए।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने पुराणों में उपदेश दिया है कि भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य के उपदिष्ट मार्ग का जो भी अनुसरण करते हैं उन्हें श्रीनिम्बार्क भगवान् मनो वाञ्छित फल प्रदान करते हैं -

उदया व्यापिनी ग्राह्य कुले तिथिरुपोषणे। निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थफलप्रदः॥

---

१. यह श्लोक स्वाभाविक द्वैताद्वैत-वेदान्त-सिद्धान्त परक है। भावार्थ- जो चराचर विश्व के अभिन्न निमित्तोपादानकारण होने से और नियन्तृ-नियम्य भाव से भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं। वे विश्वात्मा वेदैकगम्य सर्वभिन्नाभिन्न-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरी शरण स्थली हैं।

।। श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।।

वैदिक सनातन निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय एवं उनके रचित ग्रन्थों का संक्षिप्त दिग्दर्शन एवं दीक्षा के सम्बन्ध में स्मरणीय बात :-

अनादिवैदिक सनातन निम्बार्क सम्प्रदाय के आदिप्रवर्तक श्रीहंस भगवान हैं। श्रीहंस भगवान् के शिष्य भगवान् श्रीसनकादि मुनिजन हैं, सनकादिकों के शिष्य देवर्षि प्रवर श्रीनारदजी हैं। श्रीनारदजी के शिष्य श्रीसुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क हुए। भगवान् श्रीनिम्बार्क ने लोक में "द्वैताद्वैत" नामक मत (सिद्धान्त) की स्थापना की। भगवान् वेदव्यासजी के लिखे ब्रह्मसूत्रों पर वेदान्त-पारिजात-सौरभ नामक वृत्ति की रचनाकर अपने मत का मण्डन किये। इसके बाद इनके शिष्य पाञ्चजन्य शंखावतार अनन्त श्रीविभूषित निम्बार्काचार्य श्रीनिवासाचार्यजी हुए। उन्होंने वेदान्त-पारिजात सौरभ का पूर्णरुप से मण्डन करते हुए उसकी ही विस्तृत व्याख्याकर ब्रह्म-सूत्र पर "वेदान्त-कौस्तुभ" नामक भाष्य की रचना की। उपरोक्त परम्परा के ही सातवे आचार्य श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी की "वैदान्त-रत्न-मंजूषा" नामक रचना है जो आद्याचार्य निम्बार्क भगवान् की रचना "वेदान्त-दशशलोकी" (वेदान्त-कामधेनु) का वृहत् भाष्य है। इसके बाद इसी परम्परा में सौलहवें आचार्य श्री देवाचार्यजी ने "सिद्धान्त जाह्नवी" नामक ग्रन्थ की रचना की। इनके दो प्रमुख शिष्यों में से श्रीसुन्दरभट्टदेवाचार्य जी की "सिद्धान्त सेतुका" नामक संस्कृत भाषा में ही टीका है। तदनन्तर इसी परम्परा के 33वें आचार्य एवं भगवान् श्रीनिम्बार्क के परवर्ती 30वीं पीढ़ी में जगद्विजयी आचार्यवर श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्य जी हुए जिन्होंने प्रस्थानत्रयी (ब्रह्म-सूत्र उपनिषद्, गीता) पर विस्तृत व्याख्याकर वेदान्त कौस्तुभ भाष्य की पुष्टि करते हुए "वेदान्त-कौस्तुभ-प्रभा" नामक भाष्य की रचना की। इसकी रचना संस्कृत भाषा में है। इस संस्कृत भाषा में लिखी व्याख्या का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। आचार्यवर श्रीनिवासाचार्यजी के परवर्ती एवं परमाचार्य श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी के पूर्वाचार्यों ने भी निम्बार्क भगवान् के वृत्यात्मक भाष्य का सविस्तार अपने रचित ग्रन्थों में मण्डन किया है, पर विस्तार-भय से नहीं लिखा जा रहा है।

इस प्रकार इस परम्परा में हंस भगवान से लेकर श्रीनिम्बार्क भगवान् तक चार आचार्य हुए। श्रीनिम्बार्क भगवान् के बाद 12 आचार्य हुए। इनके बाद 18 भट्टाचार्यगण हुए। अतः आचार्यपरम्परा में श्रीहंस भगवान से लेकर यहाँ तक 34 आचार्य हुए। 34वें आचार्यवर श्रीभट्ट देवाचार्यजी हुए। आपने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में ग्रन्थों की रचना की। श्रीकृष्णशरणापत्ति स्त्रोत इन्हीं की रचना है।इनके ब्रजभाषा में रचित श्रीयुगल-शतक का सम्प्रदाय में विशेष सम्मान है। 35वें आचार्य श्रीभट्टदेवाचार्यजी के शिष्य परम प्रभावशाली एवं यशस्वी आचार्यवर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी हुए। इनके द्वारा कई ग्रन्थ संस्कृत भाषा में रचित हैं पर हिन्दी भाषा में रचित श्रीमहावाणीजी का सम्प्रदाय के लोगों में या रसिक समाज में अधिक सम्मान है। "सिद्धान्त रत्नाञ्जली" भी इन्हीं की रचना है। रसिक राज-राजेश्वर जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी का तेज, प्रभाव, प्रभुता, सिद्धिबल आदि पूरे भारतवर्ष में संत-भक्त समाज में फैल गया था। इनके प्रभावशाली तेजवान्, विद्वान्, भक्तिमान्, शास्त्रज्ञान सम्पन्न सिद्ध 12 शिष्य हुये। जिनके नाम पर निम्बार्क सम्प्रदाय में 12 द्वारे हुये। जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के बाद 12 शिष्य जगद्गुरु निम्बार्काचार्य की उपाधि से सुशोभित हुए। इन 12 आचार्यों की जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के बाद अपने-अपने आचार्यों के अनुसार अलग-अलग (गुरु-शिष्य) परम्परायें हैं। सभी की अलग-अलग शाखायें, प्रशाखायें हैं जो श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय की शोभा हैं और जगद्गुरु निम्बार्काचार्यजी के गौरव को बढ़ाते हैं। जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासव्यासदेवाचार्यजी के शिष्यों में श्रीदेवीजी की भी गणना है। इनको लेकर **श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय में**

साढ़े 12 द्वारे हैं। इनके अलावा आचार्यवर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के अनन्त समलंकृत रूप-रसिक देवाचार्यजी भी कृपापात्र थे। जिनकी रचना **"श्रीहरिव्यास यशामृत" श्री "लीलाविंसति" श्री नित्यविहार पदावली श्री युगल-रस माधुरी आदि ग्रन्थ हैं।** आदि जगद्गुरु निम्बार्काचार्य के शिष्यों में श्रीऔदुम्बराचार्यजी भी हैं। **"औदुम्बर संहिता"** एवं **निम्बार्क विक्रान्ति इन्हीं की रचना हैं इन दोनों ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद हो चुका है।**

भगवान् श्रीसर्वेश्वर, जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी एवं उनकी पीठ :-

पूर्वाचार्यों से पूजित श्रीशालग्रामजी जो साक्षात् राधाकृष्ण ही हैं। ये सम्प्रदाय में परम्परा से ही भगवान् सर्वेश्वर के नाम से बोले जाते हैं। ये सर्वेश्वर भगवान् जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के बाद इनके 12 शिष्यों में से जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी को प्राप्त हुए। आचार्यवर श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी की पीठ (गद्दी) श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) है। इन्हीं की परम्परा की गद्दी पर गुरु परम्परा के क्रम से वर्तमान आचार्यवर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य श्रीजी महाराज पीठासीन हैं। पूर्वाचार्यों से पूजित श्रीसर्वेश्वर भगवान्इस पीठ में विराजमान हैं। इनकी सेवा एवं भोगराग आदि की सेवा श्री श्रीजी महाराज स्वयं करते हैं। वर्तमान आचार्य श्रीजी महाराज के काल में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का अधिक विकास हुआ है। इनके द्वारा विशाल-विशाल आयोजन हुए हैं। इनकी वेदों-पुराणों, ध र्मशास्त्रों में अत्यन्त श्रद्धा है। ये पूर्वजन्म के ही पुण्यात्मा हैं। आपने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में अनेकों ग्रन्थों की रचना की है। आपके यश की ध्वजा सर्वतोमुखी फैल रही है। आपकी रहनी, श्रद्धा, भगवान् के प्रति सेवा का भाव जिज्ञासु वैष्णवों के लिए अनुकरणीय है। आप तप-बल, विद्या-बल, विद्वज्जन-बल, धन-बल आदि अनन्तश्री से समलंकृत हैं। अनेकानेक धनवान् सेवा करने की भावना से आपका संकेत पाने के लिए लालायित रहते हैं। **यदि आपकी हार्दिक भावना हो जाये और आप इधर दृष्टिपात करें तो पूर्वाचार्यों के संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थों का जिनकी टीका हिन्दी भाषा में अब तक नहीं हो पायी हैं, का अनुवाद छप जायें। सानुवादित ग्रन्थों का भी दूसरा संस्करण छप जाये। भगवान् श्रीसर्वेश्वर एवं आचार्यगण भक्तों के अनुग्रहार्थ आपको ऐसे परमपुनीत कार्य के लिए प्रेरणा दें, ऐसी हम लोग भावना करते हैं।**

नोट : ३५वें आचार्य जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के १२ प्रमुख शिष्यों (१२ द्वाराचार्यों) के नाम :-

1. श्रीस्वभूरामदेवाचर्य जी
2. श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी
3. श्रीवोहितदेवाचार्यजी
4. श्रीमदनगोपालदेवाचार्य जी
5. श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्य जी
6. श्रीवाहुलदेवाचार्य जी
7. श्रीलपरागोपालदेवाचार्य जी
8. श्रीहृषिकेशदेवाचार्य जी
9. श्रीमाधवदेवाचार्य जी
10. श्रीकेशवदेवाचार्य जी
11. श्रीगोपालदेवाचार्य जी
12. श्रीमुकुन्ददेवाचार्य जी
12+ ½ श्री देवीजी (अर्द्धशिष्या)।

उपर्युक्त आचार्यों की नामावली पं. प्रवर श्रीवैष्णवदास जी शास्त्री द्वारा विरचित सिद्धान्त मन्दाकिनी ग्रन्थ से उद्धृत है।

मन्त्र-दीक्षा के सम्बन्ध में स्मरणीय बात :-

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में परम्परा से दो मन्त्रों की दीक्षा होती आयी है।

1. शरणागति मन्त्र- अष्टादशाक्षर मुकुन्द मन्त्र। इस मन्त्र का वर्णन श्रीनारद पाञ्चरात्र में हैं। यह ग्रन्थ वैष्णव ग्रन्थों में प्रमाण रूप में माना जाता है।

2. अथर्ववेदीय मन्त्रराज अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल मन्त्र :- यह मूल मन्त्र है, जो अथर्ववेद के गोपालतापिनी उपनिषद् का मन्त्र है। श्रीमुकुन्द मन्त्र और श्रीगोपाल मन्त्र, इन दोनों मन्त्रों पर आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् की व्याख्या है। शरणागति-श्रीमुकुन्द मन्त्र की व्याख्या का नाम है-"प्रपन्न कल्पवल्ली" इसी ग्रन्थ पर इस सम्प्रदाय के 17वें आचार्य श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी की विशद व्याख्या है-जिसका नाम "प्रपन्न-सुर-तरु-मञ्जरी" है। श्रीगोपाल मन्त्र की व्याख्या का नाम "मन्त्र-रहस्य-षोडशी है। इस पर भी श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी की "मन्त्रार्थ-रहस्य" व्याख्या है। मन्त्रराज श्रीगोपाल मन्त्र के सम्बन्ध में सम्प्रदाय के 33वें आचार्यवर श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्यजी द्वारा रचित ग्रन्थ "क्रमदीपिका" में भी अच्छी प्रकार से वर्णन है। इसी प्रकार श्रीगौतमीय तन्त्र में भी इस मन्त्र के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से लिखा गया है।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के बारहों द्वारों में शरणागत श्रद्धालु सन्तों एवं सद्भक्तों को उपर्युक्त ये ही दोनों श्रीमुकुन्द मन्त्र एवं श्रीगोपाल मन्त्र परम्परा से दिये जाते हैं। मन्त्र के सम्बन्ध में यहाँ पर लिखने का मूल उद्देश्य यह है कि बीच में कुछ सन्त अपने शरणागत शिष्यों को इन दोनों मन्त्रों के अलावा दूसरे अवैदिक मनगढ़न्त मन्त्र देने लगे थे। शिक्षा के अभाव में वे अपने आचार्यों के ग्रन्थों को भी नहीं पढ़पाते थे, जिससे भूल का सुधार कर लें। आगे चलकर सन्तों को जानकारी हुई कि हम लोगों के पास श्रीनिम्बार्काचार्यजी की परम्परा का मन्त्र नहीं है। विद्वान् सन्तों के द्वारा जानकारी होने पर उन श्रद्धावान् सन्तों ने अपनी भूल सुधार ली। वे अपनी परम्परा के परम्परा क्रम से प्राप्त हुए सन्तों से दोनों मन्त्र विधिपूर्वक सुने और आगे चलकर अपने शिष्यों को ये ही दोनों मन्त्र देने लगे। भूल-सुधार होने पर भी अब भी कुछ ऐसे संत एवं सद्गृहस्थ मिलते हैं, जो ललाट में निम्बार्कीय ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं और दोनों बाहुओं में शंख, चक्र भी लगाते हैं, पर उनसे पूछने पर पता चलता है तो बताते हैं कि मेरे पास श्रीमुकुन्द मन्त्र एवं गोपाल मन्त्र नहीं है। वे अपने आपको निम्बार्कीय वैष्णव मानते हैं और श्रीनिम्बार्काचार्यजी को ही अपना आचार्य मानते हैं। शास्त्रों में परम्पराविहीन मन्त्र जपना दोष माना गया है। अतः ऐसे श्रद्धालु सन्तों एवं सद्भक्तों को अपने गुरुदेवजी से ही यह बात पूछनी चाहिए। यदि गुरुदेवजी के पास ये दोनों मन्त्र हों तो उन्हीं से उन दोनों को ले लें। सम्भव है यदि दुर्भाग्यवश श्रीगुरुजी के पास भी ये दोनों मन्त्र न हों और वे जीवित हों तो श्रीगुरुजी महाराज को चाहिए कि वे अपनी परम्परा के सन्त से या बारहों द्वारों में से किसी भी सन्त से पुनः मन्त्र ले लें और मन्त्र न प्राप्त हुए शिष्यों को पुनः मन्त्र विधिपूर्वक दुबारा दें।

लेखक :
महान्त सन्तदास
श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, मोतीझील,
वृन्दावन-281121, मथुरा (उ. प्र.)

।।श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते।।



।।श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः।।

अनन्त श्रीविभूषितजगद्गुरुनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी की गद्दी परम्परा आचार्य पीठ-निम्बार्क तीर्थ सलेमाबाद, राजस्थान-

1. श्रीहंसभगवान्
2. श्रीसनकादिक भगवान्
3. श्रीनारद भगवान्
4. श्रीनिम्बार्क भगवान्
5. श्रीश्रीनिवासाचार्य जी
6. श्रीविश्वाचार्य जी
7. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी
8. श्रीविलासाचार्य जी
9. श्रीस्वरूपाचार्य जी
10. श्रीमाधवाचार्य जी
11. श्रीबलभद्राचार्य जी
12. श्रीपद्माचार्य जी
13. श्रीश्यामाचार्य जी
14. श्रीगोपालाचार्य जी
15. श्रीकृपाचार्य जी
16. श्रीदेवाचार्य जी
17. श्रीसुन्दरभट्टाचार्य जी
18. श्रीपद्मनाभभट्टाचार्य जी
19. श्रीउपेन्द्रभट्टाचार्य जी
20. श्रीरामचन्द्रभट्टाचार्य जी
21. श्रीवामनभट्टाचार्य जी
22. श्रीकृष्णभट्टाचार्य जी
23. श्रीपद्माकरभट्टाचार्य जी
24. श्रीश्रवणभट्टाचार्य जी
25. श्रीभूरिभट्टाचार्य जी
26. श्रीमाधवभट्टाचार्य जी
27. श्रीश्यामभट्टाचार्य जी
28. श्रीगोपालभट्टाचार्य जी
29. श्रीबलभद्रभट्टाचार्य जी
30. श्रीगोपीनाथभट्टाचार्य जी
31. श्रीकेशवभट्टाचार्य जी
32. श्रीगांगलभट्टाचार्य जी
33. श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य जी
34. श्रीयुगलशतककारश्रीश्रीभट्टदेवाचार्य जी
35. श्रीपरमहंसवंशाचार्यरसिकराजराजेश्वरप्रवरमहावाणीकार श्रीश्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज (द्वारा-प्रवर्त्तक)
36. श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी
37. श्रीहरिवंशदेवाचार्य जी
38. श्रीनारायणदेवाचार्य जी
39. श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी :-
40. श्रीगोविन्ददेवाचार्य जी
41. श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य जी
42. श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी
43. श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचर्य जी
44. श्रीब्रजराजशरणदेवाचार्य जी
45. श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्य जी
46. श्रीघनश्यामशरणदेवाचार्य जी
47. श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्य जी
48. श्रीराधासर्वेशरणदेवाचार्य जी (विराजमान)

।। श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते।। ।। श्रीमत्कुंजविहारिणे नमः।।

।। श्रीमदाद्याचार्य भगवते श्रीनिम्बार्काय नमः ।।



।। रसिकाचार्य श्रीहरिव्यासदेवो जयति।।
।। रसिकाचार्य स्वामी श्रीहरिदासदेवो जयति।।
।। श्रीसद्‌गुरवे नमः ।।

रसिककुलकमल-दिवाकर स्वामी श्रीहरिदासदेवजी की पूर्ववर्ती-परवर्ती आचार्य-गुरु परम्परा का संक्षिप्त दिग्दर्शन

आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य की गुरु-शिष्य पराम्पराक्रम में 16 सोलहवें आचार्य श्रीदेवाचार्यजी हुए। इनके अनेकों शिष्यों में दो प्रमुख शिष्य हुए। एक श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी एवं दूसरे श्रीब्रजभूषण देवाचार्यजी। श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी की परम्परा में आगे चलकर जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्य श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी, आदि वाणीकार श्रीभट्‌टदेवाचार्यजी एवं परम्परा क्रम से जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी आदि आचार्य हुए। श्रीदेवाचार्यजी के दूसरे शिष्य श्रीब्रजभूषणदेवाचार्यजी की परम्परा में **"श्रीगीत गोविन्दकार"** ठाकुर **श्रीराधामाधवजी के सेवक 'श्रीजयदेवजी'**, रसिकवर **स्वामी श्रीआशुधीरदेवजी** एवं इन्हीं के शिष्य श्रीवृन्दावन धाम के सुप्रसिद्ध **ठाकुर श्रीबाँकेविहारीजी के प्राकट्यकर्ता रसिकशेखर स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज का आविर्भाव हुआ।** स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज की परम्परा में स्वामी श्रीवीठलविपुलदेवजी, स्वामी श्रीविहारिणिदेवजी, स्वामी श्रीरसिकदेवजी आदि स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज को लेकर कुल आठ आचार्य हुए। स्वामी श्रीरसिकदेवजी महाराज श्रीरसिकविहारीजी कुञ्ज के संस्थापक आचार्य हुए एवं ये अष्टाचार्यों में छठे आचार्य हैं। ये ठाकुर श्रीरसिकविहारीजी की सेवा बड़े लाड़चाव से स्वयं ही करते थे। इनके अनेकों शिष्यों में तीन मुख्य शिष्य हुए— **1. स्वामी श्रीपीताम्बरदेवजी 2. स्वामी श्रीगोविन्ददेवजी 3. स्वामी श्रीललितकिशोरीदेवजी**

रसिकविहारी कुञ्ज के पीठाधिपति **स्वामी श्रीपीताम्बरदेवजी** हुए। श्रीगोरेलालजी कुंज के अधिपति स्वामी **श्रीगोविन्ददेवजी** एवं टटिया स्थान के अधिपति **स्वामी श्रीललितकिशोरीदेवजी महाराज** हुए। इनकी गणना अष्टाचार्यों में सातवाँ है। इनके बाद श्रीटटिया स्थान की गद्‌दी पर इन्हीं के शिष्य **स्वामी श्रीललितमोहिनीदेवजी** विराजमान हुए। ये अष्टाचार्यों में अष्टम् आचार्य हैं।

स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज की आचार्य गुरु परम्परा महाकवि श्रीकिशोरदासजी द्वारा रचित निजमत सिद्धान्त ग्रन्थ के आधार पर लगभग सम्वत् १८२० में लिखी गई है।

इस ग्रन्थ में आद्याचार्य श्रीनिम्बार्काचार्यजी की पूर्ववर्ती परम्परा से लेकर परवर्ती द्वादश आचार्यों तथा श्रीदेवाचार्यजी से लेकर स्वामी श्रीहरिदासदेवजी तक के आचार्यों का काल निरूपण एवं पूर्ण परम्परा का विवरण है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्रीहरिदासदेवजी के बाद के परम्परा के अष्टाचार्यों का जीवन-चरित्र एवं सिद्धान्त का भी विवेचन है। निजमत सिद्धान्त ग्रन्थ की उपलब्धि होते हुए भी मैंने बाबा श्रीअलबेलीशरणजी, ललितकुञ्ज, ठाकुर श्रीगोरेलालजी की कुञ्ज, प्रेमगली, वृन्दावन से मँगाकर ही स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज के पूर्व से लेकर उनके बाद की भी पूरी परम्परा उनके द्वारा लिखी गई परम्परा के अनुसार ही लिखा है।

—सन्तदास

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के रस-निधि-रसिक सम्राट् श्रीकुञ्जविहारी-विहारिणिजी के अनन्य उपासक, श्रीवृन्दावनधाम में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध ठाकुर श्रीबाँकेविहारीजी के प्राकट्यकर्ता, अकिञ्चन, परम वीतराग-परम-विरक्त-परम रसिकाचार्य प्रातःस्मरणीय स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज की पूर्ववर्ती-परवर्ती आचार्यों-गुरुओं की विशुद्ध परम्परा—

1. श्री श्रीहंस भगवान्
2. श्री श्रीसनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार भगवान्
3. श्री श्रीनारद भगवान्
4. श्रीमहामुनीन्द्रवर्य श्रीनिम्बार्क भगवान्
5. श्री श्रीनिवासाचार्यजी
6. श्रीविश्वाचार्यजी
7. श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी
8. श्रीविलासाचार्यजी
9. श्रीस्वरूपाचार्यजी
10. श्रीमाधवाचार्यजी
11. श्रीबलभद्राचार्यजी
12. श्रीपद्माचार्यजी
13. श्रीश्यामाचार्यजी
14. श्रीगोपालाचार्यजी
15. श्रीकृपाचार्यजी
16. श्रीदेवाचार्यजी
17. श्रीव्रजभूषण देवाचार्यजी
18. श्रीव्रजजीवन देवाचार्यजी
19. श्रीजनार्दन देवाचार्यजी
20. श्रीवंशीधर देवाचार्यजी
21. श्रीभूधर देवाचार्यजी
22. श्रीहरिवल्लभ देवाचार्यजी
23. श्रीमुकुन्द देवाचार्यजी
24. श्रीललितभानु देवाचार्यजी
25. श्रीकन्हर देवाचार्यजी
26. श्रीवासुदेव देवाचार्यजी
27. श्रीसुरतभानु देवाचार्यजी
28. श्रीपीताम्बर देवाचार्यजी
29. श्रीचिन्मामणि देवाचार्यजी
30. श्रीयुगलकिशोर देवाचार्यजी
31. श्रीदामोदर देवाचार्यजी
32. श्रीकमलनयन देवाचार्यजी
33. श्रीगोवर्धन देवाचार्यजी
34. श्रीश्याम देवाचार्यजी

35. श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी
36. श्रीमधुसूदन देवाचार्यजी
37. श्रीगोपदेव देवाचार्यजी
38. श्रीरूपनिधान देवाचार्यजी
39. श्रीजनहरिया देवाचार्यजी
40. श्रीमथुरानाथ देवाचार्यजी
41. श्रीप्रेमनारायण देवाचार्यजी
42. श्रीअनन्य देवाचार्यजी
43. श्रीश्यामखोजी देवाचार्यजी
44. श्रीलघुवीठ्ल देवाचार्यजी
45. श्रीमोहन देवाचार्यजी
46. श्रीत्रिभंग देवाचार्यजी
47. श्रीहरिविलास देवाचार्यजी
48. श्रीयशोदानन्दन देवाचार्यजी
49. श्रीजयदेव देवाचार्यजी
50. श्रीजनगोपालदेवाचार्यजी
51. श्रीमाधव देवाचार्यजी
52. श्रीविष्णुदेवाचार्यजी
53. श्रीबालगोविन्ददेवाचार्यजी
54. श्रीरामकृष्णदेवाचार्यजी
55. श्रीपरमानन्ददेवाचार्यजी
56. श्रीभागवतदेवाचार्यजी
57. श्रीजनभगवान्देवाचार्यजी
58. श्रीकृष्णदेवाचार्यजी
59. श्रीपुरुषोत्तमदेवाचार्यजी
60. श्रीनन्दलालदेवाचार्यजी
61. श्रीहरिदेव देवाचार्यजी
62. रसिक सिरोमनि स्वामी श्रीआशुधीरदेवजी
63. रसिकअनन्य नृपति स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज
64. रस सागर स्वामी श्रीबीठलविपुलदेवजी
65. रसिकअनन्य मुकुटमणि गुरुदेव स्वामी श्रीविहारिणिदेवजी महराज
66. स्वामी श्रीसरसदेवजी महाराज
67. स्वामी श्रीनरहरिदेवजी महाराज
68. स्वामी श्रीरसिकदेवजी महाराज

छठे आचार्य स्वामी श्रीरसिकदेवजी महाराज से तीन परम्पराएँ हुईं—

1. श्रीरसिकविहारी कुञ्ज की परम्परा 2. श्रीगोरेलाल कुञ्ज की 3. श्रीटटिया स्थान की परम्परा।

1. श्रीरसिकविहारी कुञ्ज की परम्परा—

1. स्वामी श्रीपीताम्बरदेवजी महाराज
2. स्वामी श्रीगोवर्धनदेवजी महाराज
3. स्वामी श्रीकृष्णशरणदेवजी महाराज
4. स्वामी श्रीनरोत्तमशरणदेवजी महाराज
5. स्वामी श्रीनिम्बार्कशरणदेवजी महाराज
6. स्वामी श्रीजगन्नाथशरणदेवजी महाराज
7. स्वामी श्रीललितशरणदेवजी महाराज
8. स्वामी श्रीगंगाशरणदेवजी महाराज

9. स्वामी श्रीलाड़िलीशरणदेवजी महाराज
10. स्वामी श्रीराधाशरणदेवजी महाराज
11. वर्तमान विराजमान महान्त
    स्वामी श्रीवृन्दावनशरणदेवजी महा.

2. श्रीगोरेलाल कुञ्ज की परम्परा—

1. स्वामी श्रीगोविन्ददेवजी महाराज
2. स्वामी श्रीमथुरादासदेवजी महाराज
3. स्वामी श्रीप्रेमदासजी महाराज
4. स्वामी श्रीजयदेवदासजी महाराज
5. स्वामी श्रीश्यामचरणदासदेवजी महाराज
6. स्वामी श्रीहरिनामदासदेवजी महाराज
7. स्वामी श्रीगोपीवल्लभदासदेवजी महाराज
8. स्वामी श्रीबलरामदासदेवजी महाराज
9. स्वामी श्रीगुलाबदासदेवजी महाराज
10. स्वामी श्रीहरिकृष्णदासदेवजी महाराज
11. स्वामी श्रीदामोदरदासदेवजी महाराज
12. स्वामी श्रीबालकदासदेवजी महाराज
13. वर्तमान विराजमान महान्त
    स्वामी श्रीकिशोरदासदेवजी महा.

3. श्रीटटिया स्थान की परम्परा—

1. स्वामी श्रीललितकिशोरीदेवजी महाराज
2. स्वामी श्रीललितमोहिनीदेवजी महाराज
3. स्वामी श्रीचतुरदासदेवजी महाराज
4. स्वामी श्रीठाकुरदासदेवजी महाराज
5. स्वामी श्रीराधाशरणदेवजी महाराज
6. स्वामी श्रीसहचरीशरणदेवजी महाराज
7. स्वामी श्रीराधाप्रसाददेवजी महाराज
8. स्वामी श्रीभगवान्दासदेवजी महाराज
9. स्वामी श्रीरणछोड़दासदेवजी महाराज
10. स्वामी श्रीराधारमणदासदेवजी महाराज

11. स्वामी श्रीराधाचरणदासदेवजी महाराज
12. स्वामी श्रीनवलदासदेवजी महाराज
13. वर्तमान विराजमान महान्त
    स्वामीश्रीराधाविहारीदासदेवजी महा.

श्रीअष्टाचार्यचरण—

1. स्वामी श्रीहरिदासदेवजी महाराज
2. स्वामी श्रीवीठ्लविपुलदेवजी महाराज
3. स्वामी श्रीविहारिणिदेवजी महाराज
4. स्वामी श्रीनागरीसरसदेवजी महाराज
5. स्वामी श्रीनरहरिदेवजी महाराज
6. स्वामीश्रीरसिकदेवजी महाराज
7. स्वामी श्रीललितकिशोरदेवजी महाराज
8. स्वामी श्रीललितमोहिनीदेवजी महाराज

प्रेषक
बाबा अलबेली शरणजी
ललित कुञ्ज
ठा. श्रीगोरेलालजी कुञ्ज
प्रेमगली, श्रीवृन्दावन थाम



अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीस्वभूरामदेवाचार्य परम्परानुवर्ती ३९वाँ आचार्य श्री चतुरचिन्तामणिदेवाचार्य जी (नागाजी) महाराज श्रीविहारी जी मन्दिर (भरतपुर राजदरबार) की आचार्य-गुरु-शिष्य एवं गद्दी परम्परा :—

1. श्रीहंसभगवान्
2. श्रीसनकादिक भगवान्
3. श्रीनारद भगवान्
4. श्रीनिम्बार्क भगवान्
5. श्रीश्रीनिवासाचार्य जी
6. श्रीविश्वाचार्य जी
7. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी
8. श्रीविलासाचार्य जी
9. श्रीस्वरूपाचार्य जी
10. श्रीमाधवाचार्य जी
11. श्रीबलभद्राचार्य जी
12. श्रीपद्माचार्य जी
13. श्रीश्यामाचार्य जी
14. श्रीगोपालाचार्य जी
15. श्रीकृपाचार्य जी
16. श्रीदेवाचार्य जी
17. श्रीसुन्दरभट्टाचार्य जी
18. श्रीपद्मनाभभट्टाचार्य जी
19. श्रीउपेन्द्रभट्टाचार्य जी
20. श्रीरामचन्द्रभट्टाचार्य जी
21. श्रीवामनभट्टाचार्य जी
22. श्रीकृष्णभट्टाचार्य जी
23. श्रीपद्माकरभट्टाचार्य जी
24. श्रीश्रवणभट्टाचार्य जी
25. श्रीभूरिभट्टाचार्य जी
26. श्रीमाधवभट्टाचार्य जी
27. श्रीश्यामभट्टाचार्य जी
28. श्रीगोपालभट्टाचार्य जी
29. श्रीबलभद्रभट्टाचार्य जी
30. श्रीगोपीनाथभट्टाचार्य जी
31. श्रीकेशवभट्टाचार्य जी
32. श्रीगांगलभट्टाचार्य जी
33. श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य जी
34. श्रीयुगलशतककारश्रीश्रीभट्टदेवाचार्य जी
35. श्रीपरमहंसवंशाचार्यरसिकराजराजेश्वरप्रवरमहावाणीकार श्रीश्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज (द्वारा-प्रवर्त्तक)
36. श्रीस्वभूरामदेवाचार्य जी
37. श्रीकान्हरदेवाचार्य जी
38. श्रीपरमानन्ददेवाचार्य जी
39. श्रीब्रजदूलहचतुरचिन्तामणि(श्रीनागाजी) देवाचार्य जी

(श्रीविहारीजी मन्दिर, भरतपुर (राजस्थान)
इनके शिष्य :—)

40. श्रीगोवर्धनदेवाचार्य जी
41. श्रीकृष्णदेवाचार्य जी
42. श्रीजगन्नाथदेवाचार्य जी
43. श्रीमाखनदास जी
44. श्रीचतुरदास जी
45. श्रीमहादास जी
46. श्रीबिहारीदास जी
47. श्रीनन्दरामदास जी
48. श्रीनन्दकिशोरदास जी
49. श्रीउद्धवदास जी
50. श्रीसावलदास जी

(नागाजी से लेकर सावलदासजी तक सभी श्रीबिहारीजी मन्दिर के महन्त हुए)

□□□

-: परम्परा :-

श्रीचतुरचिन्तामणि नागा जी महाराज के अनेक शिष्य हुए। इनका स्थान भरतपुर राजदरबार के अन्दर था। इनके सेव्य श्रीविहारी जी महाराज हैं जो अद्यावधि आज भी भरतपुर राजदरबार में सेवित है।। इनके बाद श्रीविहारी जी की सेवा इनके प्रिय शिष्य श्रीगोवर्द्धनदेवाचार्यजी को मिली। ये ही इस स्थान के गद्दी व महान्त पद पर ४०वें आचार्य प्रतिष्ठित हुए। तत्पश्चात् क्रमशः दस आचार्य या महान्त हुए। ५० वें आचार्य श्रीसावलदासजी हुए। श्रीसावलदास जी महाराज के बाद श्रीबिहारीजी मन्दिर की गद्दी परम्परा समाप्त हो गई। श्रीविहारी जी की सेवा भरतपुर राजदरबार की तरफ से अभी भी अच्छी प्रकार से हो रही है। इसी परम्परा में ४४वें आचार्य श्रीचतुरदासजी प्रतिष्ठित हुए। इनके शिष्य श्रीभीषमदासजी हुए। जो स्वतन्त्र विचरण करते थे। इनके बाद श्रीमहावीर दासजी, श्रीवैष्णवदासजी जिन्होंने सिद्धान्त मन्दाकिनी ग्रन्थ लिखा है। इसी ग्रन्थ में लिखी परम्परा के अनुसार गुरु-परम्परा लिखी गई है। श्रीवैष्णवदास जी शास्त्री के शिष्य श्रीभीमाचार्य जी महाराज कर्दम आश्रम (कर्दम वाड़ी), बिन्दुसरोवर रोड, सिद्धपुर (गुजरात) ४८वें हुए। इनके कई शिष्यों में श्रीसन्तदास जी ४९वें श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन में वर्तमान हैं।

अनुवादप्रेरकस्य तथा प्रकाशकस्य च पूज्य श्रीसन्तदासजी महाभागस्य गुरु-मन्त्र परिचयः

चतुर्षु सम्प्रदायेषु वैष्णवेषु पुरातनः।
आदिमो निम्बकादित्यः सम्प्रोक्तो भुवि विश्रुतः।।1।।

जयन्तीनन्दनो ह्येष आरुणि ऋषिसत्तमः।
तैलङ्गदेश उत्पन्नः चक्रराजावतारकः।।2।।

सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्ञप्तो भविष्यति।
इति व्यासवचः श्रुत्या द्वापरान्तोऽस्य कालकः।।3।।

यथैवास्य श्रेष्ठतमं युगलोपासनं मतम्।
तथैव द्वैताद्वैतोऽपि मतमस्य महोत्तमम्।।4।।

यतो हि पक्ष एवास्मिन् श्रुतीनां चरितार्थता।
तैलङ्गदेशादागत्य गोवर्धन गिरावसौ।।5।।

निम्बग्रामे हि न्यवसत् पितृमातृसुहृद्वृतः।
तत्रैव नारदादेष देवर्षेः समशिष्यत।।6।।

अष्टादशाक्षरं मन्त्रं प्राप्तवान् सर्वकामदम्।
श्रीनिम्बार्कस्य शिष्येषु त्रिषु गौरमुखादिषु।।
सर्वश्रेष्ठो भाष्यकर्ता श्रीनिवासो बहुश्रुतः।।7।।

शङ्खावतारः कृष्णस्य ललिताकुण्डसाधकः।
एनं गृहीत्वा देवाचार्यपर्यन्तः नयनेन्दवः।।8।।

आचार्याः शास्त्रनिष्णाताः बभूवुर्बहुविश्रुताः।

देवाचार्यात् परं जाताः वस्विन्द्वाचार्यवर्यकाः।।9।।
सुन्दरभट्टादयो येषां न क्वापि तुलना श्रुता।
सुन्दरभट्टं समारभ्य यावच्छ्री भट्टवर्यकाः।।10।।
आदिवाणीकाररूपेणेमे वृन्दावने श्रुताः।
रसिकश्रेष्ठभक्तेष्वग्रगण्याः मताः सदा।।11।।

तस्य शिष्यो महावाणीकारः श्रीहरिव्यासकः।
वृन्दावनीयरसिकेषु मूर्धन्यो बहुविश्रुतः।।12।।

अस्य द्वादश शिष्येषु स्वभूरामोऽति श्रेष्ठकः।
तस्य कान्हर देवोऽभूत् शिष्यः वैराग्यमूर्तिमान्।।13।।

तस्याभूत् परमानन्ददेवाचार्यो महान् सुधीः।
नागाजी तस्य शिष्योऽभूच्चतुश्चिन्तामणिर्महान्।।14।।

तस्य गोवर्धनो देवः तस्याभूत् कृष्ण देवकः।
देवाचार्यो जगन्नाथो विरक्तो भक्तिमान् महान्।।15।।

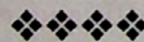
जगन्नाथस्य शिष्योऽभूत् श्रीमाखनदासकः।
चतुरदासश्च तस्याभूत् तस्य भीषमदासकः।।16।।

तस्य भीषमदास्य शास्त्री (श्री) वैष्णवदासकः।
नैयायिक नाम्ना सुप्रसिद्धः नानाग्रन्थसुलेखकः।।17।।

विरक्तस्तस्य शिष्योऽभूत् भीमाचार्यो महान् सुधीः।
गुर्जरि सिद्धपूराख्ये यस्य स्थानं प्रसिद्धकम्।।18।।

तस्यास्ति सन्तदासाख्यो विरक्तः शिष्यविश्रुतः।
वृन्दावने मोतिझीले प्रसिद्धे येन निर्मितः,
निम्बार्ककुञ्ज नामाख्यः आश्रमो बहुभव्यकः।।19।।

त एवास्यानुवादस्य प्रेरकाः पुण्यशालिनः।
भूरिशो धन्यवादार्हाः सम्प्रदायस्य गौरवाः।।20।।
तस्य वैष्णवदासस्य शिष्योऽभूच्छी भगीरथः।
गृहस्थो मैथिलः कृष्णानुरक्तो हि महान् सुधीः।।21।।
तच्छिष्यो वैद्यनाथोऽहमनुवादस्य लेखकः।
सन्तदास गुरुभ्राता साधु-सन्तपदानुगः।।22।।



-पं. वैद्यनाथ झा

।।श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते।।

!! श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्राय नमः !!



।। श्रीसद्गुरुवे नमः।।

अनन्त श्रीविभूषितजगद्गुरुनिम्बार्काचार्यश्रीमत्स्वभूरामदेवाचार्यजीपरम्परानुवर्ती श्रीसन्तदासजी महाराज, श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन की आचार्य (गुरु-मन्त्र) परम्परा —

1. श्रीहंसभगवान्
2. श्रीसनकादिक भगवान्
3. श्रीनारद भगवान्
4. श्रीनिम्बार्क भगवान्
5. श्रीश्रीनिवासाचार्य जी
6. श्रीविश्वाचार्य जी
7. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी
8. श्रीविलासाचार्य जी
9. श्रीस्वरूपाचार्य जी
10. श्रीमाधवाचार्य जी
11. श्रीबलभद्राचार्य जी
12. श्रीपद्माचार्य जी
13. श्रीश्यामाचार्य जी
14. श्रीगोपालाचार्य जी
15. श्रीकृपाचार्य जी
16. श्रीदेवाचार्य जी
17. श्रीसुन्दरभट्टाचार्य जी
18. श्रीपद्मनाभभट्टाचार्य जी
19. श्रीउपेन्द्रभट्टाचार्य जी
20. श्रीरामचन्द्रभट्टाचार्य जी
21. श्रीवामनभट्टाचार्य जी
22. श्रीकृष्णभट्टाचार्य जी
23. श्रीपद्माकरभट्टाचार्य जी
24. श्रीश्रवणभट्टाचार्य जी
25. श्रीभूरिभट्टाचार्य जी
26. श्रीमाधवभट्टाचार्य जी
27. श्रीश्यामभट्टाचार्य जी
28. श्रीगोपालभट्टाचार्य जी
29. श्रीबलभद्रभट्टाचार्य जी
30. श्रीगोपीनाथभट्टाचार्य जी
31. श्रीकेशवभट्टाचार्य जी
32. श्रीगांगलभट्टाचार्य जी
33. श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य जी
34. श्रीयुगलशतककारश्रीश्रीभट्टदेवाचार्य जी
35. श्रीपरमहंसवंशाचार्यरसिकराजराजेश्वरप्रवरमहावाणीकार श्रीश्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज (द्वारा-प्रवर्त्तक)
36. श्रीस्वभूरामदेवाचार्य जी
37. श्रीकान्हरदेवाचार्य जी
38. श्रीपरमानन्ददेवाचार्य जी
39. श्रीव्रजदूलहचतुरचिन्तामणि श्रीनागाजी महाराज इनके शिष्य :-
40. श्रीगोवर्धनदेवाचार्य जी
41. श्रीकृष्णदेवाचार्य जी
42. श्रीजगन्नाथदेवाचार्य जी
43. श्रीमाखनदास जी
44. श्रीचतुरदास जी (आप श्रीबिहारीजी मन्दिर भरतपुर (राजस्थान) की महन्त परम्परा में हैं। इनके शिष्यः-
45. श्रीभीषमदास जी
46. श्रीमहावीरदास जी
47. श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री नैयायिक[१] (श्रीसिद्धान्तमन्दाकिनी, (इसी ग्रन्थ से गुरु-परम्परा लिखी गई है) श्रीगीताभाष्य वैष्णव संस्कार कौस्तुभ आदि ग्रन्थों के रचयिता। श्रीनिवासाचार्य जी की तपस्थली श्रीललिताकुण्ड (श्रीराधा कुण्ड) एवं निम्बग्राम आदि के निवासी
48. श्रीभीमाचार्यजीमहाराज, कर्दम आश्रम (कर्दम वाड़ी), विन्दुसरोवर रोड, सिद्धपुर, गुजरात)
49. **श्रीसन्तदास जी महाराज**- निम्बार्ककुञ्ज, मोतीझील, वृन्दावन

१. वीतराग सन्त श्रीवैष्णवदास जी महाराज के अनेकानेक शिष्यों में दो विशिष्ट विद्वान् शिष्य हुए, जिनमें एक विरक्त सन्त विद्वद्वर श्रीभीमाचार्यजी महाराज तथा दूसरे सद्गृहस्थ शिष्य दार्शनिक सार्वभौम नित्यलीला लीन मैथिल विद्वान् पं०श्रीभगीरथजी झा हुए। इस ग्रन्थ के अनुवादक श्रीवैद्यनाथजी झा आपके ही शिष्य हैं।

गोलोकवासी श्रीमद्भागवतभूषण प्रातः स्मरणीय महान्त श्रीनरहरिशरणजी महाराज एवं प्राचीन स्थान श्रीनिम्बार्काश्रम-श्रीवैजनाथ (श्रीवैद्यनाथ) महादेव, वल्लभीपुर, भावनगर (सौराष्ट्र) का संक्षिप्त परिचय-

यह भारत भूमि सन्तों-भक्तों की भूमि है। इस भारतवर्ष के हरक्षेत्र में सदा से एक न एक पवित्रात्मा महान्पुरुष वैदिक- सनातनी- भारतीय परम्परा से मर्यादित शुद्धहृदय वाले-निर्मलात्मा सन्त प्राय: मिलते ही हैं। उन्हीं सन्तों की गणना में गोलोकवासी विद्वद्वर्यवरिष्ठ आचार्य गुरु की निष्ठा से सम्पन्न-भगवत्-भागवत सेवा परायण महान्तप्रवर प्रात:स्मरणीय श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय के श्रीनरहरिशरण जी महाराज का नाम भाव नगर (सौराष्ट्र) सन्त-मण्डल के महान् सन्तों में बड़े आदर से श्रद्धापूर्वक लिया जाता है।

आपका जन्म सौराष्ट्र प्रान्त में राजकोट के निकट औदिच्य सहस्र ब्राह्मणकुल में हुआ था। आप में ऐसी प्रतिभा थी कि आपके तेजवान् स्वरूप को देखकर इनकी बाल्यावस्था में ही एक दूरदर्शी सिद्ध सन्तजी इनके भविष्य की बातें जानकर यह घोषित किये थे कि यह बालक आगे चलकर बहुत बड़ा विद्वान् और उत्तम कोटि का सन्त बनेगा। सिद्ध सन्तजी की वाणी वास्तव में सत्य के रूप में घटित हुई। कुछ ही दिनों के बाद पूर्व जन्म के संस्कार और श्रीराधाकृष्ण की कृपा से महाराज श्री के हृदय में सहज स्वाभाविक श्रीराधाकृष्ण के दर्शन-मिलन की पवित्र भावना के साथ-साथ श्रीराधाकृष्ण के रूपमाधुर्य; लीला माधुर्य, श्री युगलनाम माधुर्य, श्रीधाम वृन्दावन की मधुर-माधुरी के प्रति उत्कण्ठा जाग्रत हो उठी। तत्पश्चात् भगवत्कृपा से ही श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परमपवित्र सन्त श्रीसेवादासजी महाराज के भजन-साधन-त्याग-तपस्या को देखकर तथा उनके सत्सङ्ग से प्रभावित होकरउन्हीं से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का परम्परागत अथर्ववेदीय अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल मन्त्र एवं शरणागति श्रीमुकुन्दमन्त्र प्राप्त किये। इनके सद्गुरुदेव श्रीसेवादास जी महाराज तथा श्री सेवादासजी महाराज के सद्गुरुदेव श्रीमनोहरदासजी महाराज का तपस्थल श्रीनिम्बार्काश्रम- श्रीवैजनाथ (श्रीवैद्यनाथ) महादेव, वल्लभीपुर ही था। अत: श्रीगुरुपरम्परा से प्राप्त सिद्ध स्थान श्रीनिम्बार्काश्रम में ही रहकर जीवन पर्यंत श्री नरहरिशरणजी महाराज भी साधन-भजन किये। आप आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे। आपका जीवन बहुत ही संयमित और सरस था।

श्रीनिम्बार्काश्रम- श्रीवैजनाथ महादेव संबंधी विशेष विवरण:-

यह परम पावन स्थान उन्मनगंगा के दक्षिण किनारे पर तट से लगा हुआ ही स्थित है। वल्लभीपुर नगर से एक किलोमीटर से कम दूरी पर नदी के उस पार भीड़-भाड़ से बिल्कुल दूर यह एकान्त दर्शनीय स्थान सुशोभित है। श्री नरहरिशरणजी महाराज के काल में आश्रम में गोशाला, सन्त निवास अतिथिगृह आदि की व्यवस्था के संबंध में विशेष परिवर्तन तथा विस्तार हुआ था। मंदिर में सेवा-पूजा-अर्चना, भोग-राग आदि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुकूल ही होता था। भजन ही जिसको प्रिय है उसके लिये यह स्थान पहले भी सानुकूल था और आज भी विशेष रूप से अनुकूल है।

श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय की ३५वीं पीढ़ी में बहुत ही प्रतापी, विरक्त, विद्वान्, दार्शनिक सन्त जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी हुए। वे प्राय: अपनी शिष्य मण्डली के साथ परिभ्रमण-तीर्थ यात्रा करते रहते थे। श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी की परिभ्रमण संबंधी वार्ता भक्तमाल ग्रन्थ में भी वर्णित है। ऐसा लेख मिला है कि श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी महाराज श्रीद्वारकापुरी के तीर्थाटन काल में इस स्थान में कुछ दिन निवास कर साधना किये थे। अत: यह उपरोक्त परम पवित्र स्थान भी श्रीआचार्यजी के अनुयायियों के लिए बहुत प्रिय बन गया। श्रीनरहरिशरण जी महाराज से पूर्व के सन्त-महान्त महानुभाव यहीं पर साधना कर सिद्धि को प्राप्त किये थे।

श्री नरहरिशरण जी महाराज के श्रीधाम वृन्दावन के सत्सङ्ग-लाभ का विवरण :-

श्रीनरहरिशरण जी महाराज कभी-कभी तीर्थाटन भी करते थे। समय-समय पर श्रीधाम वृन्दावन आया करते थे। श्रीवृन्दावन में आकर सत्सङ्ग का पूर्ण लाभ लेते थे।उस समय श्रीधाम वृन्दावन में श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय के पंडित श्रीविहारीदासजी त्यागी का सन्तमण्डल में विशेष सम्मान था। श्रीत्यागीजी महाराज ने सम्प्रदाय के विशिष्ट लोगों के आग्रह पर अपने नवनिर्मित आश्रम का श्रीनिम्बार्कसंस्कृत महाविद्यालय के लिये श्रद्धा के साथ प्रसन्नचित्त होकर दान कर दिया था। इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय के संस्कृत मूल ग्रन्थों का जैसे जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीनिवासाचार्यजी महाराज द्वारा निर्मित 'वेदान्त-कौस्तुभ' (श्री निम्बार्क दर्शन) का सम्प्रदाय के मूर्धन्य विद्वान् श्री वैद्यनाथजी झा के गुरुदेव श्रीभगीरथजी झा से अनुवाद कराये। इसके प्रकाशन के पूर्व ही उनका शरीर पूरा हो गया। बाद में श्रीत्यागीजी महाराज के परिक्रमा मार्ग के गौतम आश्रम के महान्त उन्हीं के शिष्य श्रीशुकदेवदासजी महाराज ने प्रकाशन कराया, पर दु:ख के साथ लिखना पड़ता है कि यह ग्रंथ ठीक ढंग से नहीं छपा। पुन: दुबारा छपवाने पर ही ठीक हो सकता है। उपरोक्त ऐसे महान् त्यागी, सम्प्रदाय निष्ठ, विद्वान् सन्त के सत्संग का श्रीनरहरिशरण जी महाराज ने पूर्ण लाभ लिया। इनके अतिरिक्त वेदान्त निधि ओजस्वी विद्वान् श्रीकिशोरदासजी महाराज वंशीवट निवासी का जिनकी सम्प्रदायके सैद्धान्तिक ग्रन्थों में विशेष आस्था थी, उनके सत्संग का लाभ लिये। उस समय पानी घाट के अच्छे दार्शनिक विद्वान् श्रीकल्याण दासजी महाराज का जिन्होंने "वेदान्त-कौस्तुभ" का मूल छपाया था, सन्तों-विद्वानों में विशेष सम्मान था, उनके सत्सङ्ग का लाभ लिये। उस समय दतियावाली कुञ्ज के श्रीरामचन्द्रदासजी महाराज की साम्प्रदायिक ग्रन्थों में बहुत ही आस्था थी, साम्प्रदायिक कई ग्रन्थ प्रकाशित भी कराये थे, ऐसे सम्प्रदाय निष्ठ सन्त के समागम का भी लाभ प्राप्त किये।

नोट :- श्री नरहरिशरणजी महाराज ने "श्रीनिम्बार्क-प्रभा नामक" ग्रन्थ की रचना की है। यह रचना गुजराती भाषा में है। इस ग्रन्थ में श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय के सिद्धान्त द्वैताद्वैत के संबंध में विशेष रूप से वर्णन है। भक्ति भागीरथी के सम्पादक श्री व्रजविहारीशरणजी राजीव ने इस ग्रन्थ में अपनी सम्पादकीय में इनके जीवन चरित्र का भी बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

महान्त श्री नरहरिशरण जी महाराज और उनकी रचना "श्री निम्बार्क प्रभा" :- महान्त श्री नरहरिशरण जी महाराज ने पूर्वाचार्यों के सिद्धान्तानुकूल श्रीनिम्बार्कप्रभानामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में श्री निम्बार्क भगवान् के द्वैताद्वैत सिद्धान्त का पूर्ण रूपेण निरूपण किया गया है। इसमें श्रीराधाकृष्ण की उपासना पद्धति विधिवत् वर्णित है। श्रीगोपाल मन्त्र एवं श्री मुकुन्द मन्त्र की जप विधि जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीकेशव काश्मीरि भट्टाचार्यजी की रचित "क्रम दीपिका" ग्रन्थ के आधार से विधिपूर्वक लिखी गई है। आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् द्वारा रचित वेदान्त-दशश्लोकी तथा सुबह-शाम की स्तुति, श्रीराधा कवच, श्रीकृष्ण कवच, श्रीगोपाल सहस्र नाम, श्रीगोपाल स्तवराज आदि जो भी पूर्वाचार्यों की स्तुति परक रचनायें हैं, सभी रचनाओं का इसमें उल्लेख है। सम्प्रदायानुकूल सम्पूर्ण उपासना, अर्चा संबंधी विधियों का इसमें निरूपण है। साधना-उपासना करने वालों के लिये यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना गुजराती भाषा में है। अतः गुजराती श्रीनिम्बार्कीय वैष्णवों के लिये विशेषकर पूर्ण अनुकूल है। इस ग्रन्थ का दूसरा प्रकाशन कराना श्रेयस्कर रहेगा।

वल्लभीपुरस्थ (गुजरात) महामण्डलेश्वर श्रीमुकुन्दशरण जी महाराज की विशेषताओं का स्वल्प विवरण :-

महान्त श्रीनरहरिशरणजी महाराज के श्रीगोलोक धाम गमन के बाद उनके प्रिय, आज्ञाकारी शिष्य श्री मुकुन्दशरण जी महाराज श्रीनिम्बार्काश्रम श्रीवैजनाथ महादेव के महान्त पद पर सुशोभित हुए। श्रीमुकुन्दशरण जी महाराज कर्मनिष्ठ एवं विशेष पुरुषार्थी हैं। ये भी श्रीमद्भागवतजी के प्रभावशाली प्रवक्ता हैं। नित्य मन्दिर के बरामदे में बैठकर श्रीमद्भागवत जी तथा श्रीगोपाल सहस्रनाम का पाठ करते हैं। श्री मुकुन्दशरणजी महाराज ने मंदिर का निर्माण नया कराया है। यह मन्दिर दर्शनीय, आकर्षक, विशाल और भव्य है। इस मन्दिर की बनावट शास्त्रीय विधि के अनुसार है। श्रीनिम्बार्काश्रम के श्रीराधाकृष्ण मन्दिर के समान उस क्षेत्र में दूसरा मन्दिर नहीं है। मंदिर की सेवा-पूजा में महान्तजी महाराज स्वयं भी जाते हैं। पूरा स्थान गिरा कर नया ठोस बनवाये हैं। श्री ठाकुर जी के मन्दिर के साथ ही सन्त निवास, गोशाला, अतिथि भवन तथा आगन्तुक भक्तों के लिये सभी नया निर्माण कराये हैं। श्री मण्डलेश्वर जी महाराज कभी-कभी अपने स्थान पर या किसी तीर्थ में भी बहुत बड़ा आयोजन करते हैं। जिसमें दूर-दूर के विद्वान् और भजनानन्दी सन्तों को आमन्त्रित किया जाता है। सन्तों की सेवा-भेंट विदाई विशेष रूप से करते हैं। ये बहुत ही विनम्र दानी एवं स्वभाव से सन्त सेवी हैं। इनके सेवक इनकी कथा सुनने के लिए लालायित रहते हैं। इनके बड़े बड़े आयोजनों में भी सेवकों के माध्यम से बहुत ही अच्छी व्यवस्था रहती है। इनके सभी सेवक आयोजनों की व्यवस्था जिम्मेवारी पूर्वक श्रद्धा से तन-मन-धन से करते हैं।

सभी सेवक सेवा करने के इच्छुक रहते हैं। इन्हें कुछ देखना नहीं पड़ता है। श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज का अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण, पूर्वाचार्यों, एवं सद्गुरुदेव श्रीनरहरिशरणजी महाराज की इनके ऊपर

पूर्ण कृपा है। अपनी गुरु परम्परा के नियमों का पूर्ण रूप से पालन कर रहे हैं। ये अपने काल में स्थानीय व्यवस्था में ज्यादा विस्तार किये हैं। सम्प्रदाय के ग्रन्थों में एवं निज गुरुदेव भगवान में इनकी अपने सद्गुरुदेव के समान ही अत्यधिक श्रद्धा है। इनके सद्गुरुदेव की ही कृपा का फल है कि संकेतमात्र से अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र के प्रकाशन की सम्पूर्ण आर्थिक सेवा करने को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किये हैं। अध्यास गिरिवज्र सम्प्रदाय का सबसे कठिन ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन होना अनिवार्य है।

महामण्डलेश्वर श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज की श्रेष्ठ गुरु-भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये इस ग्रन्थ का प्रकाशन अपनी तरफ से अपने सद्गुरुदेव प्रातः स्मरणीय गोलोकवासी महान्त श्रीनरहरिशरण जी महाराज की पुण्यस्मृति में ही करा रहे हैं।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में १६वें आचार्य जाह्नवीकार श्रीदेवाचार्यजी महाराज के दो प्रधान शिष्य हुए। इनकी सत्रहवीं पहली शाखा में सत्रहवें सेतुकार श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी एवं इन्हीं की दूसरी शाखा में १७वें श्रीव्रजभूषणदेवाचार्यजी हुए। श्रीव्रजभूषण देवाचार्यजी की ही परम्परा में रसिक शेखर श्रीहरिदास जी हुए। सत्रहवीं पहली शाखा में ३५वें चमत्कारी-विलक्षण आचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी हुए। इनके १२ प्रधान शिष्यों में से ३६वें प्रभावशाली भगवद्भक्ति में लीन श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी हुए। आचार्यवर श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी की परम्परा में ३९वें उनतालिसवें आचार्यनिस्परिग्रही-निस्पृह श्रीश्यामाश्याम के अनन्य उपासक श्रीचतुरचिन्तामणिदेवाचार्यजी हुए। इन्हीं की परम्परा में श्रीनिम्बार्काश्रम-श्रीवैजनाथ (श्रीवैद्यनाथ) महादेव के सन्त सम्माननीय स्वनाम-धन्य श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज हैं।

लेखक- महान्त सन्तदास

अनन्त विभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीमत्स्वभूरामदेवाचार्यपरम्परानुवर्ती महामण्डलेश्वर महान्त श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज, श्री निम्बार्काश्रम-वैजनाथ महादेव की आचार्य (गुरुमंत्र) परम्परा :—

1. श्रीहंसभगवान्
2. श्रीसनकादिक भगवान्
3. श्रीनारद भगवान्
4. श्रीनिम्बार्क भगवान्
5. श्रीश्रीनिवासाचार्य जी
6. श्रीविश्वाचार्य जी
7. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी
8. श्रीविलासाचार्य जी
9. श्रीस्वरूपाचार्य जी
10. श्रीमाधवाचार्य जी
11. श्रीबलभद्राचार्य जी
12. श्रीपद्माचार्य जी
13. श्रीश्यामाचार्य जी
14. श्रीगोपालाचार्य जी
15. श्रीकृपाचार्य जी
16. श्रीदेवाचार्य जी
17. श्रीसुन्दरभट्टाचार्य जी
18. श्रीपद्मनाभभट्टाचार्य जी
19. श्रीउपेन्द्रभट्टाचार्य जी
20. श्रीरामचन्द्रभट्टाचार्य जी
21. श्रीवामनभट्टाचार्य जी
22. श्रीकृष्णभट्टाचार्य जी
23. श्रीपद्माकरभट्टाचार्य जी
24. श्रीश्रवणभट्टाचार्य जी
25. श्रीभूरिभट्टाचार्य जी
26. श्रीमाधवभट्टाचार्य जी
27. श्रीश्यामभट्टाचार्य जी
28. श्रीगोपालभट्टाचार्य जी
29. श्रीबलभद्रभट्टाचार्य जी
30. श्रीगोपीनाथभट्टाचार्य जी
31. श्रीकेशवभट्टाचार्य जी
32. श्रीगांगलभट्टाचार्य जी
33. श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य जी
34. श्रीयुगलशतककारश्रीश्रीभट्टदेवाचार्य जी
35. श्रीपरमहंसवंशाचार्यरसिकराजराजेश्वरप्रवरमहावाणीकार श्रीश्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज (द्वारा-प्रवर्त्तक)
36. श्रीमत्स्वभूराम देवाचार्यजी
37 श्रीकर्णहरदेवाचार्यजी
38 श्रीपरमानन्ददेवाचार्यजी
39 श्रीचतुरचिन्तामणिदेवाचार्यजी (श्रीनागाजी महाराज)
40 श्रीमोहनदेवाचार्यजी
41 श्रीहरिदेवाचार्यजी
42 श्रीश्रुतरामदेवाचार्यजी
43 श्रीवृषभानुदेवाचार्यजी
44 श्रीमनीषिरामदेवाचार्यजी
45 श्रीहंसदासाचार्यजी
46 श्रीहरिदासाचार्यजी
47 श्रीमोहनदासाचार्यजी
48 श्रीगंगादासाचार्यजी
49 श्रीराघवदासाचार्यजी
50 श्रीमनोहरदासाचार्यजी
51 श्रीसेवादासाचार्यजी
52 श्रीनरहरिशरणाचार्यजी
53 मण्डलेश्वर-महान्त श्रीमुकुन्दशरणजी महाराज (वर्तमान गाद्यासीन)

!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते!!

!! भगवते श्रीमदाद्याचार्य श्रीनिम्बार्काचार्याय नमः!!



!!श्री हरिव्यासदेवो जयति!!
॥ सद्गुर्वे नमः ॥

परमवीतराग-रसिक शिरोमणि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के भूषण परमपूज्य श्री प्रिया शरण जी महाराज का मात्र संक्षिप्त परिचय :-

इस वर्तमान युग में व्रजमण्डल के रसिक सन्तों में बाबा श्रीप्रियाशरण जी महाराज का नाम सर्वोपरि है। श्रीश्यामाश्याम-श्रीयुगल रस के रसिक सन्त साधक बहुत ही श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करते हैं।

श्री प्रियाशरण जी बाबा के जन्मस्थान एवं बालकालीन समय का विवरण:- आपका जन्म विहार प्रान्त के बक्सर जिले में बक्सर के निकट ही सुनहरा नामक ग्राम में मार्गशीर्ष शुक्ल दसमी के दिन सम्वत् १९५२ में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में हुआ था। आप विद्याध्ययन वाराणसी (बनारस) में अपने नाना-मामा के यहाँ रहकर किये। छोटी अवस्था में ही मेधावी छात्र थे। भगवान् की सेवा-पूजा सत्संग बचपन से ही इन्हें प्रिय था। श्रीमद्भागवतजी की जहाँ भी कथा होती थी वे वहाँ अवश्य जाते थे। सन्तों की सेवा एवं उनके सत्संग का लाभ लेने में इनकी स्वाभाविक रुचि थी। श्रीमद्भगवद्गीता जी-श्रीमद्भागवतजी के पठन-पाठन में इन्हें विशेषानन्द होता था। ये बचपन से ही श्रीराधाकृष्ण के उपासक थे।

बाबा श्री प्रियाशरण जी महाराज एवं उनका दीक्षा संस्कार:- श्री बाबाजी महाराज बक्सर के स्थानधारियों के परिचित तो थे ही। अतः आगे चलकर बक्सर स्थानाधीश जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीमत्स्वभूराम (शोभूराम) देवाचार्य परम्परानुयायी एवं परम्पराक्रम से जगद्गुरु निम्बार्काचार्यचतुरचिन्तामणि देवाचार्य (कदमखण्डी वाले श्रीनागाजी महाराज) के परम्परानुगामी श्री सर्वेश्वरदासजी महाराज के प्रधान शिष्य श्रीश्यामदास जी से पञ्चसंस्कार की विधि से विधिवत् दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य हो गये। उस समय **आपकी आयु १४ वर्ष की थी**। दीक्षा ग्रहण के बाद पुनः वाराणसी आकर विद्याध्ययन करने लगे। गर्मी की छुट्टी में वे किसी न किसी तीर्थ की यात्रा किया करते थे। एक बार उन्हें किसी पत्रिका में वृन्दावन के निम्बार्कीय सन्त महान्त श्री कल्याणदासजी के द्वारा लिखित श्रीमद्भगवद्गीता संबंधी लेख प्राप्त हुआ। उस लेख को पढ़कर बहुत ही आनन्दित हुए। लेख पढ़ने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि अगली गर्मी की छुट्टी में श्रीधाम वृन्दावन की यात्रा करनी है।

बाबा श्री प्रियाशरण जी महाराज के श्रीधाम वृन्दावन की यात्रा संबंधी विवरण :- श्री बाबा जी महाराज श्रीधाम वृन्दावन आने के बाद सर्वप्रथम श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के विशिष्ट विद्वान् जिन्होंने श्री निवासाचार्य जी द्वारा रचित वेदान्त कौस्तुभ का एक मात्र संस्कृत-मूल में ही प्रकाशन कराया

था, उनसे मिले। वहाँ दो दिन रहकर पुनः वहाँ से गोवर्द्धन की यात्रा किये।

गोवर्द्धन में सर्वप्रथम श्री गौराङ्गदासजी बाबा से मुलाकात हुई। श्रीगौराङ्गदासजी बाबा ही बाबा श्री रामकृष्णदास जी (पंडितजी) बाबा से गोवर्द्धन में ही संपर्क कराये। पंडित बाबा जी से इनकी बातचीत हुई। इनकी प्रतिभा को देख कर बाबा श्रीरामकृष्ण दास जी बोले कि यह होनहार बालक है। आगे चलकर यह उच्च कोटि का सन्त होगा। बाबाजी महाराज गोवर्द्धन में ही रहकर सभी गौड़ीय ग्रन्थों का अध्ययन कर लिये। गोवर्द्धन वास के वाद पुनः श्रीवृन्दावन धाम आ गये। यहाँ आने पर पंडित श्री अमोलक रामजी शास्त्री से मालूम हुआ कि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीमहावाणी जी नित्य विहार की उपासना का सबसे उच्च कोटि का ग्रन्थ है। अतः बाद में किसी प्रकार श्री महावाणी जी को प्राप्त कर उसका गहरा अध्ययन किये। श्री महावाणी जी के अलावा रसिक शेखर श्री स्वामी हरिदास जी के केलिमाल एवं उनके अनुगामी श्री विहारिनदेव जी आदि अष्टाचार्यों की वाणियों का, श्रीराधा वल्लभ सम्प्रदाय के सभी ग्रंथों जैसे बयालीस लीला, श्री हितचतुरासी, श्री सेवक वाणी, श्री व्यास वाणी आदि सभी ग्रन्थों का अध्ययन किये और इन ग्रन्थों के आधार पर श्रीधाम वृन्दावन में कई बार प्रवचन हुआ। श्रीधाम वृन्दावन के सभी सन्त-भक्त सभी सम्प्रदाय वाले बहुत प्रभावित हुए। बाबाजी महाराज श्रीमहावाणी जी के सहज सुख पर भी बहुत प्रभावशाली प्रवचन किये। सिद्धान्त सुख का प्रवचन श्री श्रीविहारीजी के बगीचे में हुआ।

उस प्रवचन में प्रसिद्ध सन्त श्री हरिबाबा और श्रीउड़ियाबाबा भी आते थे। जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी महाराज भी इनकी कथा सुनते थे। श्रीहरगुलालजी सेठ तो इनकी कथा श्रवण के विशेष इच्छुक थे। वरसाने बाले बाबा श्री रमेश जी महाराज भी बाबा श्री प्रिया शरण जी के प्रवचन से अति प्रभावित थे और उन्हीं में इनकी गुरु निष्ठा थी। आगे चलकर पूर्ण रूप से उनके शिष्य हो गये। बाबा श्री विशाखा शरण जी महाराज की व्यासवंशी गोस्वामी श्री जगन्नाथकिशोरजी महाराज से दीक्षा प्राप्त थी। आगे चलकर वे बाबा श्री प्रियाशरण जी से विधिवत् विरक्त दीक्षा ग्रहण कर उन्हीं के विरक्त शिष्य हो गये। बाबा श्री प्रियाशरण जी के बाद श्री महावाणीजी के विशेष जानकार और अनुभवी बाबा श्रीविशाखाशरण जी भी हुए। उनकी कृपा से अधिक संख्या में रसिक सन्त साधना में लगे हुए हैं।

श्री विहारीजी के बगीचे में श्रीनिम्बार्क भगवान् की दशश्लोकी प्रणीत अर्थ पंचक की भी व्याख्या किये थे। अर्थपंचक की व्याख्या के समाप्त होते ही श्रीराधारस-सुधानिधि की भी कथा हुई। इस कथा में श्रोताओं की अधिक भीड़ होती थी। इसी प्रसंग में श्री बाबाजी महाराज ने निकुन्ज-रस और ब्रज-रस की भी स्पष्ट व्याख्या किये। श्री महावाणी जी की कथा के प्रसंग में बोले कि श्री महावाणी जी में इतना गहरा-गम्भीर रस है जो अन्य किसी वाणियों में नहीं मिलता। श्रीमहावाणीजी की कथा के प्रसंग में ही श्रीगोपाल मन्त्रराज की भी विस्तृत व्याख्या किये तथा श्री वृन्दावनधाम के दिव्यस्वरूप और उसके

उत्कर्ष का विलक्षण वर्णन किये। रसिकवर श्रीबाबाजी महाराज व्रज-रस एवं निकुञ्ज-रस के मर्मज्ञ परम भागवत सन्त शिरोमणि थे। व्रज साहित्य के सभी सम्प्रदाय के ग्रन्थों के पूर्ण विशेषज्ञ थे।

आप रसोपासना के पुनरुद्धारक थे। शास्त्रीय ग्रन्थों में भी आपकी विशेष रुचि थी और उसका अनुशीलन भी करते रहते थे। आप विधि-निषेध से उठे हुए सिद्ध और शुद्ध महात्मा थे। आप त्याग, वैराज्ञ, एकान्तवास, गम्भीर वैदुष्य, नित्य दम्पत्ति किशोर वृन्दावन विहारी लाल श्रीराधाकृष्ण की रसानुभूति में अद्वितीय थे।

आप गृह त्याग के बाद आजीवन वृन्दावन, गोवर्द्धन, वरसाना, प्रेमसरोवर आदि स्थानों में रहकर साधनारत थे। अन्त में गोवर्धन में अकोला वालों की धर्मशाला में स्थाई रूप से रहने लगे। फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा सं० २०३३ में गोवर्द्धन में ही इनका शरीर पूरा हो गया। वे गोवर्द्धन रज की प्राप्ति किये । गिरिराज की तलहटी में ग्वालपोखरे के पास इनकी अन्त्येष्टि की गई- दाह संस्कार किया गया। अन्त्येष्टि में बाबा श्रीविशाखा शरणजी, श्रीमाधुरी शरणजी, श्री कुञ्जविहारी शरणजी एवं सद्भक्तगण शामिल थे। बाबा श्री विशाखा शरण जी महाराज ने बड़े धूम-धाम से उनका उत्सव मनाया। उस उत्सव में श्रीमहावाणीजी का समाज-गायन, विद्वत्सम्मेलन और बहुत बड़े भण्डारे में सन्तो की श्रद्धा के साथ सेवा की गई।

बाबा श्री प्रियाशरण जी महाराज के ही शिष्य वरसाने वाले श्री रमेश जी महाराज हैं :- अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीमत्स्वभूरामदेवाचार्य परम्परानुवर्ती प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री सम्पन्न बाबा श्री प्रियाशरण जी महाराज के ही शिष्य बाबा श्री रमेश जी महाराज हैं। यह मुझे पहले से ही पूर्ण रूप से मालूम है। बाबा श्री रमेशजी महाराज के यहाँ से "रसीली व्रज-यात्रा" नामक एक विशाल पुस्तक छपी है, जिसकी लेखिका व्रज-बालिका मुरलिका शर्मा हैं। ग्रन्थ का प्रकाशक मान मन्दिर सेवा संस्थान गहवर वन, वरसाना, मथुरा (उ.प्र.) है। उस ग्रंथ में लिखा है- अनन्त श्री सम्पन्न "श्रीप्रियाशरण जी" महाराज से श्री रमेश बाबा जी महाराज ने शिष्यत्व ग्रहण किया।

निम्बार्कीय सन्त आदरणीय श्री रमेश बाबा जी महाराज :- व्रज मण्डल के प्रसिद्ध सन्तों एवं विद्वानों में सम्माननीय श्री रमेश बाबाजी महाराज हिन्दी, संस्कृत एवं अँग्रेजी भाषा के मर्मज्ञ, विद्वान्, महान् संगीतज्ञ, प्रियापीतम श्रीराधाकृष्ण युगल के अनन्य आराधक, कई हजार गौवों के पालक, पाँच सहस्राधिक विरक्त सन्तों सद्गृहस्थ भक्तों एवं गरीब अनाथ माताओं को निःशुल्क चौरासी कोस की व्रज यात्रा का पुण्य प्रदान कराने वाले एवं श्री यमुनाजल के शुद्धिकरण रूपी परम पुण्य कार्य के अग्रगण्य व्रज के वनों एवं कुण्डों के सरंक्षक व्रज-वरसाने के पावन पर्वतों की तोड़फोड़ से संरक्षण हेतु प्राणों की बाजी लगाने वाले मान मन्दिर के वीतराग सन्त श्री रमेश बाबाजी महाराज श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के भूषण हैं- गौरव हैं।

अपूर्णता का कारण जल्दबाजी

मैंने परमपूज्य श्रीप्रियाशरण जी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र लिखा, पर विशेष जल्दबाजी के चलते संतोषपूर्ण नहीं लिख सका। कल हर परिस्थिति में पुस्तक छपने के लिए आर्डर करना है और आज मैं लिख रहा हूँ, अपूर्णता का कारण यही समयाभाव रहा। परमादरणीय श्री कुञ्जबिहारी शरण जी बाबा, श्री निकुञ्ज वाटिका (मथुरा मार्ग) वृन्दावन ने आचार्य चरितावली नामक ग्रंथ लिखा है और वे श्री प्रियाशरण जी बाबा के सम्पर्क में रहे भी हैं, वे उस ग्रन्थ के अन्तिम भाग में इनका जीवन चरित्र अच्छी प्रकार से लिखे हैं। अत: विशेष जानकारी के लिये उस ग्रंथ का सहारा लिया जा सकता है। मुझे बाबा श्री कुञ्जबिहारी शरणजी से ही वह पुस्तक प्राप्त थी।

निम्बार्कीय ऊर्ध्व पुण्ड्र से सुशोभित, हाथ में माला झोली में श्री युगलनाम जपते हुए परमपूज्य श्री प्रियाशण जी महाराज का मैंने भी दर्शन किया था।

श्री युगलनामः-

राधेकृष्ण राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे॥

नोटः वरसाने के पास कदमखण्डी में चतुर चिन्तामणि देवाचार्य श्री नागाजी महाराज का स्थान है । जिस स्थान से प्रायः सभी परिचित ही हैं। श्रीनागाजी महाराज का यह स्थान बाबा श्री प्रियाशरण जी महाराज की गुरु परम्परा का स्थान है। अतः उस स्थान के प्रति परमादरणीय श्री रमेशजी बाबा के शिष्यों-परिकरों की पूर्ण श्रद्धामई दृष्टि एवं उस स्थान में जागृति हो, ऐसी भावना होनी चाहिये।

सन्तदास

स्वाभाविक भेदाभेदवाद एवं गोलोकवासी पूज्य सन्त जगद्गुरु श्रीकृपालुजी महाराज (जगद्गुरु श्रीकृपालुदासजी महाराज)

[काशी विद्वत्परिषद् की सभा में भारत के 500 मूर्धन्य शास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा 14 जनवरी 1957 को जगद्गुरु की उपाधि से अलंकृत]

मैं टी. वी. कभी नहीं देखता था। एक दिन मेरे पास परम पूज्य सन्त बाबा श्री सन्तदास जी महाराज पधारे और बोले आप टी. वी. पर श्री कृपालु जी महाराज का प्रवचन नहीं सुनते गजब का प्रवचन करते हैं- वे वेदान्त पर। उनकी बात मानकर दूसरे दिन से ही मैं उनका प्रवचन सुनने ६:३० बजे सायं को आस्था चैनल पर बैठ जाता। क्या ही दिव्य दर्शन था उनका जैसा दिव्य दर्शन, वैसा ही दिव्याति दिव्य उनका वैदान्तिक प्रवचन होता था। वेदान्त का अर्थ होता है। -उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भगवद्गीता। जिसे प्रस्थानत्रयी कहते हैं। जिन्हें सभी उपनिषद् कंठस्थ नहीं- ब्रह्मसूत्र एवं भगवद्गीता कंठस्थ नहीं वह क्या वेदान्ती होगा। श्री कृपालु जी महाराज को ये तीनों ग्रन्थ जिह्वाग्रवर्ती थे करामलकवत् थे। जब वे वेदान्त पर बोलने लगते तो उनके श्रीमुख से उपनिषदों की बौछारें होने लगतीं -ब्रह्मसूत्रों की झड़ी लग जाती - श्रीमद्भगवद्गीता की तो बात ही क्या। वे आजकल की तरह वेदान्ती नहीं-जिनको केवल भामती, चित्सुखी, खण्डन, शांकरभाष्य ही याद हो। श्रीकृपालुजी महाराज प्रस्थानत्रयी के धुरंधर पण्डित थे। मैं मिथिला और काशी के प्रकाण्ड वैदान्तिक विद्वानों के सम्पर्क में रहा पर कहाँ यह वैदुष्य, कहाँ ऐसा वैदान्तिक पाण्डित्य। आज के समय में उनके जैसा वेदान्त का कोई पण्डित नहीं हुआ; यह कहना अतिशयोक्ति नहीं बल्कि वास्तविक है। वे डंके की चोट में वेदान्त के आधार पर सविशेष ब्रह्मवाद एवं भक्ति सिद्धान्त का समर्थन करते थे पर कोई वेदान्ती विद्वान् उनके प्रवचन का खण्डन करने का साहस नहीं कर पाया। वे वेदान्त पर प्रवचन करते समय स्पष्ट स्वाभाविक भेदाभेदवाद का समर्थन करते थे। **भेदाभेद सिद्धान्त द्वापरयुगीन भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी का सिद्धान्त है**-यह जगत् प्रसिद्ध है।

पूज्य श्री कृपालु जी महाराज अपने को भले ही श्रीनिम्बार्कीय न बता पाये हों; ना ही निम्बार्कीय तिलक लगा पाये हों, पर उनके द्वारा भेदाभेदवाद का समर्थन एवं श्रीयुगल स्वरूप श्रीराधा कृष्ण का स्मरण-चिन्तन-ध्यान तथा श्रीराधे कृष्ण राधे कृष्ण श्रीश्यामा-श्याम श्रीयुगल नाम का संकीर्तन उन्हें निम्बार्कीय सन्त मानने के लिए पर्याप्त प्रमाण है। ऐसे सन्त को कोटि-कोटि प्रणाम!

- वैद्यनाथ झा

अपनी हार्दिक भावना

हमारी हार्दिक-भावना है कि सम्प्रदाय के समस्त दार्शनिक एवं उपासनापरक संस्कृत ग्रन्थों, जिनका प्रकाशन नहीं हुआ है, उनका तथा जिनका अनुवाद सहित प्रकाशन नहीं है, उन सबका सानुवाद आधुनिक ढंग से प्रकाशन किया जाय। इसी शृंखला में हमने जगद्गुरु श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्य जी कृत वेदान्त कौस्तुभप्रभा (ब्रह्मसूत्र का विस्तृत भाष्य) एवं श्रीमाधवमुकुन्ददेवाचार्य जी विरचित अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्र का सानुवाद प्रकाशन कराया है। इसी तरह अन्यान्य ग्रन्थों का भी हम सानुवाद प्रकाशन कराना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से यहाँ सम्प्रदाय के सभी गौरवमय ग्रन्थों का परिचय प्रकाशित कर रहे हैं।

इन ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए हम साम्प्रदायिक धनी-मानी, सद्गृहस्थ श्रीमान् पूज्य महान्तवृन्दों से प्रार्थना करते हैं कि इसके लिए हमें आर्थिक सहयोग प्रदान करें।

अथवा निम्नांकित ग्रन्थों में से किसी एक ग्रन्थ का अपनी रुचि अनुसार स्वव्यय या स्वप्रयास से प्रकाशित कराने का पवित्र संकल्प लें तथा उसकी सूचना कृपया मुझे प्रदान कर अनुगृहीत करने की कृपा करें।

गन्थों की नामावली नीचे की पंक्तियों में है।

विनीत :

सन्तदास
श्रीनिम्बार्क कुञ्ज, मोतीझील,
वृन्दावन (मथुरा)
फोन नं०-9411258769

श्रीनिम्बार्क–सम्प्रदाय ॰ कतिपय विशिष्ट दार्शनिक एवं उपासना के संस्कृत ग्रन्थों की नामावली

क्र०	ग्रन्थ	लेखक
01.	वेदान्त कामधेनु (दशश्लोकी)	आ०आ० श्रीनिम्बार्क महानुनीन्द्र
02.	वेदान्त पारिजात सौरभ (ब्र0सू0वृत्ति)	,, ,,
03.	मन्त्र रहस्य षोडशी	,, ,,
04.	सदाचार प्रकाश	अप्राप्य
05.	वेदान्त कौस्तुभ (ब्र0सू0भाष्य)	श्रीनिवासाचार्य
06.	वेदान्तरत्न मञ्जूषा (दशश्लोकी भाष्य)	श्री पुरुषोत्तमाचार्य
07.	सिद्धान्त जाह्नवी (ब्रह्मसूत्र व्याख्या)	श्रीदेवाचार्य
08.	सि० जा० सेतुका (ब्रह्मसूत्र व्याख्या)	श्रीसुन्दर भट्टाचार्य
09.	वेदान्त कौस्तुभ प्रभावृत्ति (ब्र0सू0विस्तृतभाष्य)	ज०गु०श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचाय

10.	वेदान्त तत्त्वबोध	,, ,,
11.	अध्यात्म सुधा	,, ,,
12.	वेदान्त रत्नमाला	पं० श्री अनन्तरामदेवजी
13.	सविशेष निर्विशेष स्तवराज	,,
14.	प्रपन्न कल्पवती	श्रीसुन्दर भट्ट
15.	प्रपन्न सुरतरु मञ्जरी	,,
16.	मन्त्रार्थ रहस्य मीमांसा	
17.	वेदान्त तत्त्व समीक्षा (विस्तृत)	पं० श्रीभगीरथजी
	श्रीगोपाल तापिनी उपनिषद् भाष्य	,,
18.	श्रीभगवत्ततत्व सुधानिधि (विस्तृत)	,,
19.	श्रीयुग्म तत्त्व समीक्षा (विस्तृत)	,,
20.	द्वैताद्वैत विवेक	,,
21.	गीता तत्त्व प्रकाशिका गीताभाष्य	श्रीकेशवकाश्मीरि भट्ट
22.	वेद स्तुति	,,
23.	सिद्धान्त मन्दाकिनी	पं. श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री
24.	गीता भाष्य	,,
25.	ईशाद्यष्टोपनिषत्	पं. श्री अमोलरामजी
26.	छान्दोग्योपनिषत् प्रकाशिका	,,
27.	वृहदारण्यकोपनिषत् प्रकाशिका	,,
28.	वेदान्त कौस्तुभप्रभा वृत्तिः	पं.श्रीअमोलकरामजी शास्त्री
29.	अध्यास गिरिवज्र	,,
30.	भागवत तत्व दीपिका	,,
	श्रीमद्भागवत टीका	पण्डित प्रवार श्री श्री शुक सुधी
31.	अर्चिरादि पद्धति	,,
32.	स्वधर्मामृत सिन्धु	,,
33.	श्रुत्यन्त सुरद्रुम	श्रीपुरुषोत्तमाचार्य कृतश्रीकृष्णस्तवराज की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या
34.	वेदान्त तत्त्व बोध	श्रीअनन्तरामजी कृत
35.	सिद्धान्त जाहनवी	श्रीदेवाचार्य कृत
36.	श्रीकृष्णस्तवराज	श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद कृत
37.	श्रुत्यन्त कल्पवली	,,
38.	अध्यास गिरि वज्र	पं. श्रीमाधवमुकुन्द कृत
	प्रकाशित हो रही है।	

अस्मिन् ग्रन्थे प्रदर्शितानां श्रुतिस्मृतिसूत्राणां अकारादि क्रमेण सूची

(अ)

अष्टरूपामजां ध्रुवाम्	चूलिका ३
अन्तर्बहिश्चतत्सर्वम्	महानारायणो ११।६
अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः	बृ० ४।३।९
अप्रवचनेनैवप्रोवाच	नृसिंहोत्तरतापिनी ११।६
अग्निहोत्रं जुहोति	छा० ५।२४
अन्तः प्रविष्टः शास्ता	मैत्री ६।८
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा	वेदान्तसू० १।१।१
अन्तवदेवास्य तद्भवति	बृ० ३।८।१०
अनेन जीवेनात्मना	छा० ६।३।२
अस्ति खल्वन्यपरो भूतात्मा	मैत्री० ३।२
अनश्नन्न्यः अभिचाकशीति	श्वेता० ४।६
अथ परा यया तदक्षरम्	मुण्ड० १।१।५
अदृश्यत्वादिगुणकः धर्मोक्तेः	ब्र० सू० १।२।२१
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहु	गीता १६।८
अन्तवन्त इमे देहाः	गीता २।१८
अनित्यमसुखं लोकं	गीता ९।३३
अजोनित्यः शाश्वतः	गीता २।२०
अथात आदेशो नेति	बृ० २।३।६
अस्थूलमनणु	बृ० ३।८।८
अयमात्मा ब्रह्म	बृ० २।५।१९
अहं सर्वस्य प्रभवः	गीता १०।८
अचिन्त्याः खलुये भावाः	महाभारते भीष्म पर्व ५।१२
अथ नामधेयं सत्यस्य सत्यम्	बृ० २।३।६
अणोरणीयान्	कठो० २।२०
असदेवेदमग्रआसीत्	छा० ३।१९।१
असत्यमाहुर्जगदेतदज्ञाः	
अनादिनिधना नित्याः	मनु अ० १ श्लो० २१
अतएव चोपमासूर्यकादिवत्	वेदान्त सूत्र ३।२।८५
अपः पुनर्मृत्युंजयति	बृ० ३।३।२
असन्नेव स भवति	तै० २।६।१
अथ नेहनानेति	बृ० ४।४।१९
अधिकन्तु भेदनिर्देशात्	ब्र० सू० २।१।२१

उषस्ति चाक्रायण:	छां० ५।२।१

(ऊ)

ऊर्ध्वमेकंस्थितस्तेषाम्	याज्ञवल्क्यस्मृति प्रायश्चिताध्याय ३।१६७
ऊर्ध्य मूलमध: शाखम्	गीता १५।१
ऊर्ध्व मूलोऽर्वाक्शाख:	कठ० ६।१

(ऋ)

ऋग्यजु: सामाथर्वाश्चभारतं	स्कन्द पु०
ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि	छां० ७।१।२
ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके	कठ ३।१
ऋषीन्द्रं कपिलम्	श्वे० ५।२
ऋते ह्येकान्तके चेषां	भारते शान्ति प० मोक्ष०

(ए)

एष आत्मेति होवाच	छां० ८।३।४
एतदमृतमभयं ब्रह्मेति	छां० ४।१५।१
एष: सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्	छां० ८।३।४
एकधा बहुधा चैव	ब्रह्मविन्दुप० १२
एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म	छां ६।२।१
एष एव साधुकर्म कारयति	कौषि० ३।८
एतद्योवेत्ति तं प्राहु:	गीता १३।१
एषह्येवानन्दयाति	तैत्ति० २।७।१
एष प्रकृतिरव्यक्त: कर्ता चैव सनातन:	भारते शांपन मो०
एष भूतान्तरात्मा	मु० २।१।४
एको ह वै नारायण:	महानारायणोप०
एतमेवात्मानमन्तकाले	
एषएकान्तधर्मस्ते कीर्तितो नृप सत्तम	शान्ति प० मो०
एवं हि स महाभागो	भारते शान्ति प० मोक्ष० ३३४।३०
एकान्तिनो हि पुरुषा:	भारते शा० प० मो०
एकश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैवमहर्षय:	भारते शान्तिप० मोक्ष० अ०३३९ श्लो० १२
एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य:	मु० ४।९
एकान्तिनस्तु पुरुषा:	भारते शान्ति पर्व मोक्ष० ३३४।३०
एतस्माज्जायते प्राण:	मु० २।१।३
एतस्मान्मनोमयाद्विज्ञानमयोऽन्तरात्मा	तै० २।४।१

कथमसतः सज्जायेत	छां० ६।२।२
को देवो यजनीयः	गोपाल पूर्व तापिनी
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि	गीता १३।२
केचिद्बहुत्वेन वदन्ति	महाभारते हरिवंशे घण्टाकर्णसम्बादे
कस्विद्वनं कउ सवृक्षआस	यजु० १७।२०
कृपास्य दैन्यादियुजिप्रजायते	पूज्यपाद श्री १०८ निम्बार्काचार्य्य
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः	प्रणीतकामधेनुः दशश्लोकि ९
कस्मिन्नुभगवो ज्ञाते	याज्ञवल्क्य स्मृतिः ३।९९
क्षमासत्यं दमः शौचम्	विष्णु स्मृतिः
कर्म वाएतद्यज्ञस्य क्रियते यत्प्रयाजानूयाजा इज्यन्ते	एतरेय ब्राह्मण
कर्तव्यत्वेनवैयत्र	पौष्करसंहिता
कारणं गुणसङ्गोऽस्य	गीता १३।२१
कामःसङ्कल्पः	बृ० १।५।३
किमर्थं वयमध्येष्यामहे	
किं ज्योतिरेवायं पुरुषः	बृ० ४।३।२
किं तदासीदित्यृषयो	ऋ० १०।१९।१
क्षेत्रज्ञं चापिमां विद्धि	गीता १३।२
किं प्रजया करिष्यामो	बृ० ६।४।२२
कुर्वन्नेवेह कर्माणि	यजु० ४० अ० २ मं०
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि	मु० २।२।८
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा	गीता
केनासौ लोको न पूर्यते	छां० ५।१०।८

(ग)

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः	भारते शान्तिपर्व मोक्ष धर्मे ३३४।१
गौरनाद्यन्तवती	मान्त्रि कोप०
गुरुरेवपरं ब्रह्म	

(च)

चोदना लक्षणो धर्मः	पूर्व मीमां० सू० १।१।२
चतुर्भिर्विभक्तः पुरुषः क्रीडति	कूर्म पु०

(छ)

च्छन्दपादौ शब्द शास्त्रञ्च

(ज)

जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति	श्वे० १।६
जानात्येवायं पुरुषः	बृ० ४।४।१४
ज्योतिष्टोमेन यजेत	शतपथ ब्राह्मण
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ	श्वे० १।९
जक्षन् क्रीडन्नममाणः	छां० ८।१२।३
ज्ञानेन तु तदज्ञानम्	गीता ५।१६
जीवाद्भवन्ति भूतानि	छां० ६।८।७
जगत्प्रतिष्ठादेवर्षे पृथिव्यप्सु च लीयते	भारते शान्तिप० मोक्ष० ३३९।२९
जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः।	नारायणोयनि० भारते च
जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन	बृ० ३।१।१
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं	गीता ४।१९
जप्येनापि संसिद्ध्येत्	यजु० २।८७
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम्	श्वे० ४।७
जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः	मनु० १२।१३
ज्ञातुं द्रष्टं तत्वेन	गीता ११।५४
जातमात्रा गावो हस्तिनः	
ज्ञानाग्निसर्वकर्माणि	गीता ४।३७

(त)

तन्महिमानं पश्यति	मु० ३।१।२
तमेतं वेदानुवचनेन	बृ० ४।४।२२
तमक्रतुं पश्यति	कठ० २।२०
तद्यत्रेतत्सुप्तः समस्तः	छां० ८।११।१
तत्तेजोऽसृजत्	छां० ६।२।३
तस्माद्वा एतस्माद्वा आकाशः	तै० २।१।१
तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय	छां० ६।३।३
त्रिवृतं-करवाणि	छां० ६।३।३
तन्मनोऽनुकुरुत	बृ० १।२।१
ततोमां तत्त्वतो ज्ञात्वा	गीता १८।५५
तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानम्	गीता १८।१६

तदैक्षत नामरूपे व्याकरोत्	छां० ६३।३
ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः	
तद्गुण सारत्वात्तद्व्यपदेशः	ब्रह्म सू० २।३।२८
तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तरात्मा	मु० ३।१२
तेन धर्मेण कृतवान्	तै० २।३।४
तत्रापरा ऋग्वेदौ यजुर्वेदः	मु० १।५
ते धूममभिसम्भवन्ति	छां० ५।१०।३
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति	कठ० ५।१५
तर्काप्रतिष्ठानात्	ब्र० सू० २।१।११
तदात्मानमेव वेद	बृ० १।४।१०
तद्रुद्रस्य रोदनम्	तै० सं० १।५।१
तमेव विदित्वा	यजु० १।१५
तत्त्वमसि	छां० ४।१।३
तदा विद्वान् पुण्य पापे	मु० ३।१।३
तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्	बृ० १।४।७
तत्रौदम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायेत्	शतपथ ब्रा०
तावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्ये	छां० ६।१४।२
तद्विष्णोः परमं पदम्	ऋग्वेद १।२२।२०
तदात्मानं स्वयमकुरुत	तै० २।७।१
तद्धैक आहुरसदेवेदम्	छां० ६।२।१
तद्भूतयोनिं	मु० १।१।६
तस्माद्यज्ञात्	पुरुष सूक्त मं० ८
तत्सत्यम्	छां० ६।८।७
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्	क० ५।१५
तेन प्रद्योतेनैष आत्मा	बृ० ४।४।२
तस्माल्लोकात् पुनरेत्य	बृ० ४।४।६
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व	तै० ३।२।१
ता अन्नमसृजन्त	छां० ६।२।४
तत्तेज ऐक्षत	छां० ६।२।३
तस्मादिति अष्टौग्रहाः	बृ० ३।२।१
तेह वाचमूचुः	बृ० १।३।२
त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानम्	छां० २।२३।१

तमेतमात्मानं ब्राह्मणा विविदिषन्ति	बृ० ४।४।२२
तरति शोकमात्मवित्	छां० ७।३।१
तपाम्यहं	गीता ९।१९
तपसा ब्रह्मचर्येण	प्रश्नो १।२
तद्धास्य विजज्ञौ	छां० ६।७।६
तमसस्पारम्	छां० ७।२६।२
तन्त्वौपनिषदं पुरुषं	बृ० ३।९।२६
तत्रसाधुः	पाणिनीय सूत्र ४।४।१९
तन्मनो न मनुते	केन० ५
तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति	बृ० ४।४।२
तदात्मानं स्वयमकुरुत	तै० २।७।१
तस्मिन् यावत्सम्पातमुषित्वाथेतमध्वानम्	छां० ५।१०।५
तद्य इह रमणीयचरणाः	छां० ५।१०।७
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय	मु० ३।१।३
तस्य पुत्रा दायमुपयान्ति	
तद्य इत्थं विदुर्येचेमेऽरण्येश्रद्धा तप इत्युपासते	छां० ५।१०।१
तेनैति ब्रह्मवित् पुण्यकृत्तैजसश्च	बृ० ४।४।९
तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते	बृ० ४।४।२
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्मब्रह्मविदोजनाः	गीता ८।२४
तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्	श्वेताश्वेत० अ० ६।७
तस्याभिध्यानात्	नृसिंहतापिनिः
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादि प्रभवाप्ययम्	विष्णु पु० अं० १; अ० १।२१
तस्य हवा एतस्य महतो भूतस्य	बृ० २।४।१०; मैत्र्यु० ६।३२
तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः	गौ० सू० अ० १।१।२२
तत्रैकस्थंजगत् कृत्स्नम्	गीता ११।१३

(द)

देवाःश्रद्धारूपामाहुतिं	छां० ५।४।२
दशेमे पुरुषे प्राणाः	बृ० ३।९।४
देही नित्यमवध्योऽयम्	गीता ८।३०
द्वासुपर्णा सयुजा	मुण्ड० ३।१।१
द्वाविमौ पुरुषौ लोके	गीता १५।१६

द्वे विद्ये वेदितव्ये — मु० १।१।४
देवान् देवयजो यान्ति — गीता ७।२३
दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् — पाणिनिसूत्र २।१।५०
दध्ना जुहोति
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या — कठ० ३।१।२
द्वितीयाद्वैभयं भवति — बृ० १।४।२
दीक्षाप्रवेशमात्रेण — शैवागमे
दुःखजन्म प्रवृत्ति दोष — गौतम सू० १।१।२
द्वादशाहेन प्रजाकामं जाययेत्
दर्शपौर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत्

(ध)

ध्रुवमपायेऽपादानम् — पाणिनि सू० १।४।२४
धर्मञ्जैमिनिरत एव — पूर्वमीमांसा जै०सू० ३।२।४०
ध्यायतीव पृथ्वी ध्याय-तीवान्तरिक्षम् — छां० ७।६।१

(न)

नच तस्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः — श्वे० ६।८
नच चक्षुषा गृह्यते — मुण्ड० ४।८
नवनीतं यथादध्नः — भारते शान्ति प० मोक्ष १४०।१११
न कलञ्जं भक्षयेत्
नह वा एवं विदि — छां० ५।२।१
न हि विज्ञातुर्विज्ञाते — छां० ६।३।९
न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य — कठ० ६।९
न त्वेवाहं जातु नासम् — गीता २।१२
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च — श्वेत० ६।८
न स वेद यथा पशुः
नहि कश्चिदयं मर्त्यः — भारते अश्वमेधय० अ० ३।१।२
नहिं स्यात्सर्वभूतानि
न तत्र रथयोगा — बृ० ४।३।१०
नह वै शरीरस्य सतः — छां० ८।१२।१
नमामः सर्व वचसां प्रतिष्ठायत्र — विष्णु पु० अं० १; अ० १५।५७
न ह वा अस्यान्नं जग्धि — बृ० ६।१।१४

न शूद्रायमतिं दद्यात्	मनु० ४।९०
न विधौ परशब्दार्थः	पूर्वमीमांसा
न जायते म्रियते	कठ० २।१७; गीता २।२०
नास्त्यकृतः कृते न	मुण्ड० १।२।१२
नारदे नतु सम्प्राप्ते	भारते शान्तिप० मोक्ष०
नारायणे सायुज्यमाप्नोति	नारायणोपनि० ५
नाहं खल्वयमेवं सम्प्रत्यात्मानं	छां० ८।११।१
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः	कठ० २।२३
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय	श्वे० ३।१८
नारायणात् प्राणो जायते	नारायणाथर्वशिर उप० १
नामरूपे व्याकरोत्	छां० ६।३।३
नारायणो जगन्मूर्त्तिः	भारते
नारायणात्प्रवर्त्तन्ते	नारायणाथर्वशिर उप०
ना वेदविन्मनुते	तै० ब्रा० ३।१२।९।७
नाम ब्रह्मेत्युपास्ते	छां० ७।१।५
नामरूपे व्याकरवाणि	छां० ६।३।२
ना सदासीन्नोसदासीत्तदानीं	ऋग्वेद १०।१२९।१
न च मान्तेददृशिरे	भारते शान्तिप० मो० अ० ३३९।१३
नाविरतो दुश्चरितात्	कठ० अ० १२।२३
नाभुक्तं क्षीयते कर्म	ब्रह्मवैव० प्रकृतिखण्डे अ० २६।७०
नान्यतोऽस्तिद्रष्टा	बृ० ३।७।२३
नात्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्च	ब्र० सू० २।३।१७
नाश्रमः कारणं धर्मे	याज्ञ०स्मृ० प्रायश्चिव्यतिधर्म प्रकरणे ६५
नारायणं परंब्रह्म	महानारायणो प०
नामानि सर्वाणि	बृ० १।६।१
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति	मुण्ड० ३।१।३
निष्ठां नारायणमृषिं	भारते शान्तिप० मो०
निष्कलं निष्क्रियम्	श्वे० ६।१९
निर्दोषं हि समं ब्रह्म	गीता ५।१९
निदिध्यासितव्यः	बृं० २।४५
निरतिशयाह्लाद	वि० ६ अं० ५ अ० ६९
नित्यं विभुं सर्वगतम्	मु० १।१।६

(ब)

ब्राह्मणो निर्वेदमायात्	मु० १।२।१२
बृहति बृंहयति तस्मादुच्यते	
बृहन्तो गुणा अस्मिन्निति	
ब्रह्मणस्सायुज्यमाप्नोति	महानारायण० १२।३
ब्राह्मणो याजयेत्	
बालग्रशतभागस्य	श्वे० ५।९
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तः	गीता १८।५१
ब्राह्मणानां हि सद्ब्रह्म	सात्वत, संहितायाम्
बुद्धिर्गुणेनात्मगुणे नचैव	श्वे० ५।८
ब्रह्मा शम्भुस्तथार्कश्च	विष्णु धर्मे
बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः	गीता १०।४
ब्रह्मणा सह ते सर्वे	कूर्म पु० पूर्वखण्ड १२।२९६
ब्रह्मैवेदमेकमेवाग्र आसीत्	बृ० १।४।१०
ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं	श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे अ० १७ श्लो० ४२
ब्रह्मचार्याचार्य्य कुलवासी	छां २।२३।१
ब्रह्मसंस्थोऽमृत्वमेति	बृ० ५।५।१
ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्	जाबालोपनिषद् ४ खं
ब्रह्मचर्यावकीर्णी	
ब्राह्मणो यजेत	
ब्रह्मचर्या देव प्रव्रजेत् गृहाद्वावनाद्वा	जाबालोप० ४ खं
ब्राह्मणः परिव्रजेत् ब्राह्मणोव्युत्थाय	जाबालश्रुतिः
ब्राह्मणः क्षत्रियविशाम्	गीता १८।४१
ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु	भारते
ब्राह्मणक्षत्रियविशां पञ्चरात्रं विधीयते	सात्वत संहिता
ब्रह्मगवि रुदजसे मूर्द्धाते विपतिष्यति	शतपथ ब्रा०
ब्रह्म वा इदं सर्वम्	नृसिंहोत्तर तापिनि ७ खं०
ब्रह्मा देवानां प्रथमः	मु० १।१
बृंहत्वाद्वृंहणत्वाच्च ब्रह्म	विष्णु पु० १ अं० १५ अ० श्लोक ५६
ब्राह्मणैः क्षत्रियैः	भारते शान्तिप० मो०
ब्रह्मणो महिमानमवाप्नोति	
बसन्ते ब्राह्मणः	तै० नारायण ५१ अनुवा० ३

(भ)

भक्त्या मामभिजानाति गीता १८।५५
भवन्ति भावा भूतानाम् गीता १०।५
भिद्यते हृदयग्रन्थिः मु० २।२।८
भिद्येते तासां नामरूपे प्रश्नो प० ६।५
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः श्व० १।१०
भीषास्माद्वातः पवते तै० २।८।१
भोक्तारं यज्ञतपसां गीता ५।२९
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च श्वे० १।१२

(म)

मनुर्वै यत्किञ्चिदवेदत्तद्भेषजम् छां० ब्राह्म० कुल्लूभट्टकटीकायाम् १।१
मद्भक्त एतद्विज्ञाय गीता १३।१८
मनसैवाग्रे सङ्कल्पयति
मन उत्क्रामन्मीलित इवाश्नन्पिवन्नास्ते
ममैवांशो जीवलोके गीता १५।७
मयि सर्वमिदं प्रोतम् गीता ७।७
मत्प्रसादात्तरिष्यति गीता १८।५८
मत्तः परतरं नान्यत् गीता ७।७
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि गीता १५।७
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः गीता ९।१०
मद्भक्तिं लभते पराम् गीता १८।५४
मत्तोऽन्यानि चते राजन् भारते शान्तिप० मोक्ष ध० अ० ३३९।२६
मनसैवानुद्रष्टव्यम् बृ० ४।४।१९
मनोमयः पुरुषः बृ० ५।६।१
महाभूतादि वृत्तौजा मनुः १।६
मामेव ये प्रपद्यन्ते गीता ७।१४
मामेकं शरणं ब्रज गीता १८।६६
मामुपेत्य पुनर्जन्म गीता ८।१५
मामृतं कृन्धि ज्योतिरहम्
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति बृ० ४।४।१९
मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये श्वे० ६।१८
मुमुक्षुर्भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति

मूलप्रकृतिरविकृतिः	षष्टितन्त्रे ३
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत्	स्मृतिः
मायान्तु प्रकृतिं विद्यात्	श्वे० ४।१०
मां योऽभिजानाति	गीता ४।१४
मय्यैव सकलं जातम्	बराहे
	(य)
यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति	आपस्तम्ब० श्रौत ३।१४।८
यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्य	बृ० ३।२।१३
यथा सकुनि सूत्रेण वद्धः	छां ६।८।२
यथा सोम्य मधु मधु कृतो	छां० ६।९।१
यस्य पृथिवी शरीरम्	बृ० ३।७।३
यथा सोम्य महतो वृक्षस्य	छां० ६।१४।१
यथा सोम्य पुरुषं गान्धरेभ्यः	छां० ६।१४।१
य आत्मानमन्तरो यमयति	बृ० ३।७।१
यथा क्रतुरस्मिंल्लोके	छां० ३।१४।१
योऽकामो निष्कामः	बृ० ४।४।६
यजमानः प्रस्तरः	तै० संहिता १।७।४
यमेवैष वृणुते	मु० २।३
योऽस्यात्मनःकारयिता	
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रम्	मु० १।१।६
यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्	बृ० २।४।१४
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति	तै० ३।१।१
यत्परः स शब्दार्थः	पूर्वमीमांसासू०
यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते	तै० २।७।१
योऽयं तवागतो देवः	पुराण
यस्मिंल्लोका निहिता	मु० २।२।२
यस्मिन् द्यौःपृथिवीचान्तरिक्षमोतम्	मु० २।२।५
येनाश्रुतं श्रुतं भवति	छां० ६।१।३
यथेह कर्मजितो	छां० ८।१-६
यथैकेन मृत् पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातम्	छां ६।१।४
यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च	मु० १।१।७

यः सर्वज्ञः सर्ववित्	मु० १।१।९
यच्चापि सर्वभूतानां	
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः	मनु १२।९५
यस्मिन्पञ्च पञ्चजनाः	बृ० ४।४।१७
यस्मात् सम्यक्परंब्रह्म	पौक्यरसंहिता
योवैस्वांदेवतामति यजति	
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः	मनु १२।१०६
यमेवैष वृणुते तेनलभ्यः	कठ० २।२३; मु० ३।२।३
यस्य नाम महद्यशः	यजु० ३२।३
यदा कर्मसु काम्येषु	छां० ५।२।९
य एष सुप्तेषु जागर्ति	कठ० ५।८
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः	गीता १५।१८
यत्र हि द्वैतमिव भवति	बृ० २।४।१४; ४।५।१५
यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः	बृ० ४।५।१३
ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति	कौ० १।२
योऽयं विज्ञानमयः पुरुषः	बृ० ४।३।७
यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्धात्मा	बृ० ४।४।१३
यदुकृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपम्	छां० ६।४।६
तत्कृष्णं तदन्नस्य	छां० ६।४।१
यदग्ने रोहितं रूपम्	छां० ६।४।१
य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरः	बृ० ३।७।१२
योऽयं प्राणः स वायुः	बृ० ३।१।५
य एषोऽक्षिणि पुरुषः दृश्यते एष आत्मा	छां० ४।१५।१
यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च	बृ० २।३।२
यत्त्वं पश्यसि तद्वद	कठ० २।१४
यतः प्रवृत्तिर्भूतानाम्	गीता १८।४६
यस्य पर्णमयी जुहू	ऐतरेय ब्रा० कां० ३।५ प्र० ७ अनु०
यदाङ्क्ते चक्षुरेव भातृव्यस्यवृ॥	
यदेव विद्यया करोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति	छां० १।१।१०
यथा पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यन्ते	छां० ४।१४।३

यो यो यां यां तनुं भक्तः	गीता ७।२१
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्	केन ५
यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति	छां० ६।८।१
य आत्मापहतपाप्मा	छां० ८।७।१
यस्य ज्ञानमयं तपः	मुं० १।१।९
यो मामजमनादिं च	गीता १०।३
ये चेमेऽरण्येश्रद्धातप इत्युपासते	छां० ५।१०।५
यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतम्	छां० ५।२४।३
येचतद्भाविताලोके	भारते शान्ति० मोक्ष० ३३४ अ० श्लो० ४४
यथा नद्यः स्यन्दमाना	मुं० ३।२।८
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्यहृदिश्रिताः	बृ० ४।४।७
यदा वै पुरुषोऽस्माँल्लोकात्प्रैति	बृ० ५।१०।१
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं	श्वे० ६।१८
यस्यान्ते कृतात्मानः	स्मृतिः
यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्	आपस्तम्बश्रौतं ३।१४।८।८
यस्य देवे पराभक्तिः	श्वे० ६।७
यो वै भूमातदमृतम्	छां० ७।२४।१
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति	गीता ८।११
यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत	बृ० १।४।१०
यथा रजनं वासः	बृ०
यद्ब्रह्मा ऋषयश्चैव	भारते शा० प० मो० अ० ३४३ श्लो० १५
ये च तद्भाविता लोके	भारते शान्तिप० मो० अ० ३३४ श्लो० ४४
यदिहास्तितदन्यत्र	भारते आदिपर्व
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्	गीता ९।६
यः सर्वज्ञः सर्ववित्	मुं० १।१।९; २
यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा	छां० ८।१२।४
यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते	तै० ३।१।१
यतो वाचो निवर्तन्ते	तै० २।४।१; २।९।९
यथा पुकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः	गीता १३।३३

विरोधेत्वनक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्	पूर्वमी० १।२।३
वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता	यजु० कां० १ प्र० १
वायुश्चान्तरीक्षं चैतदमृतम्	बृ० २।३।३
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म	बृ० ३।९।२८
विधिना त्वेकवाक्यत्वात्	पूर्वमी० १।१।७
वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्	छां० ६।१।४
वायोरग्निः	तै० २।१।१
वायव्य श्वेतमालभेत	यजु० कां० १ प्र० १ पं० १
विविक्तसेवी लघ्वाशी	गीता १८।५२
व्रीहीन्प्रोक्षति	एतरीय ब्रा०
वदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः	मुं० ३।६।६
वासुदेवः सर्वमिदं स महात्मा सुदुर्लभः	गीता ७।१९
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन	गीता ७।२६
ब्रह्मैवेदं वरिष्ठम्	श्वे० २।११
विश्वंसत्यं	श्रुतिः
वज्रहस्तः	शतपथ ब्रा०
वर्हिषिरजतं नदद्यात्	शतपथ ब्रा०
विश्वानिदेववयुनानि	ईष उप० १८
वैदिकन्तु जपं कुर्वन्	बृहत्पराशरे
वेदेरामायणे चैव भारते	स्मृतिः
विष्णोः सकाशादुद्भूतं	विष्णु पु० १ अं १ अ० ३५
विष्णुर्नामासवेदेषु	विष्णु पु० अं० अ० ४ श्लो० ३९
वासुदेवं परित्यज्य	स्मृतिः
विष्णुस्तदासीद्धरिरेवनिष्कलः	स्मृतिः
वेदाढ्येतु समंदत्वा	वाराहे
विज्ञानात्मा पुरुषः	प्रश्नोपः ४।९
	(श)
शूद्रश्चतुर्थो वर्णः	मनुः १०।४
शृण्वन्तोऽपिबहवो यन्न विद्युः	कठ० २।७
श्रद्धान्वितोभव	
शप्यमानस्य यत्पापम्	स्मृतिः

शान्तो दान्त उपरतः	बृ० ४।४।२३
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः	गीता ६।११
शतं चैकाचहृदयस्य नाड्यः	छां० ८।६।६; कठ० ६।१६
श्रीकृष्णं रुक्मिणीकान्तं	पूर्वगोपालतापिनी ११
शास्त्रफलं प्रयोक्तरि	पूर्वमी० १३।७।१८
शृण्वन्तः श्रोत्रेण	छां० ५।१।८; बृ० ६।१।८
शुद्धे महाविभूताख्ये	विष्णुपुराण अंश ६ अ० ५ श्लो० ७२
शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्या-ज्ञानगोचराः	विष्णुपुराण १ प्र० ३ अ० १
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः	लौकिकोपनिषत् १।३।१
शमो दमस्तपः	गीता १८।४२

(स)

संक्षेपमिदं शृणुध्वं	भारते शा० प० मो०
सत्यं दमस्तपः शौचम्	भारते शान्तिप० मोक्ष०
स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च	श्वे० ६।८
सर्वाणि रूपाणि विचिन्त्य धीराः	स्मृतिः
सोऽकामयत बहुस्याम्	तै० २।६।१
सतः पुरुषात्केशलोमानि	मुं० १।११।७
सर्वोपेता च	ब्रह्मसूत्र २।१।३०
सातिस्रो देवता	छां० ६।३।२
स्वर्गकामोयजेत	यजु० २ कां० ५ प्रश्न ५ अनु० ५
स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो	छां० ६।८।७
सर्वं तंपरादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वंवेद	बृ० २।४।६
सूर्यो यथा सर्वलोकस्यचक्षुः	कठ० ५।११
साधुकारी साधुर्भवति	बृ० ४।४।५
स कारयेत्पुण्यमथापि पापं	भारते
सदा पश्यन्ति सूरयः	ऋग्वेद १।२२।२०
सन्निरुद्धास्तुतेनात्मा	भारते
सुतो भू र्भूः	
स कारणं कारणाधिपाधिपः	श्वे० ६।१
संध्यं तृतीयस्थानम्	बृ० ४।३।९
स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषम्	छां० ८।१५।१

सर्वमभवत्	बृ० १।४।९
सर्वं ह पश्यः पश्यति	छां० ७।२६।२
सत्वाच्चावरस्य	ब्रह्मसू० २।१।१६
सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति	छां० ६।८।१
स वा यमेष दिव्येन चक्षुषा	छां० ८।१२।५
सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं	बृ० २।१।२०
स कारणं कारणाधिपाधिपः	श्वे० ६।९
सतः प्रभवन्ति तस्मात्	मुं० २।१।८
सप्त प्राणाः प्राणमसृजत्	प्रश्न० ६।४
सर्वकर्माण्यपिसदा	गीता १८।५६
समं प्लुषिणा समोमशकेन	बृ० १।३।२२
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः	गीता १५।१५
सेयं देवतैक्षत	छां० ६।३।२
स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्	छां० ४।१७।२
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः	गीता १८।४५
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो	गीता १८।५६
सोमेन यजेत	सतपथ ब्रा०
सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति	छां० ६।१०।२
सर्वमिदं पुराणः संहारकाले	
सत्यं ब्रह्म	बृ० ५।४।१
स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषः	पूज्यपाद श्री १०८ निम्बार्काचार्य्यप्रणीतदशश्लोक्यां ५
सुकृतदुष्कृते धुनुते	कौ० १।४
स एतं देवयानं पन्थानमासाद्य	कौ० १।३
सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः	छां० ७।२६।२
समे शुचौ शर्करावह्नि वालुका विवर्जिते	श्वे० २।१०
स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन्	छां० ८।१२।३
स एव ज्योतिषां ज्योतिः	स्कन्द पू० ५
सर्वं ह पश्यः पश्यति	छां० ७।२६।२
स स्वराड् भवति	छां० ७।२५।२

स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते	छां० ८।३।४
सर्वगन्धः सर्वरसः	छां० ३।१४।२
स यदि पितृलोककामः	

(ह)

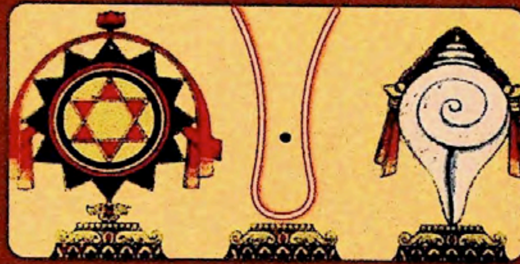
हन्ताचेन्मन्यते हतम्	कठ० २।१८
हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेशः	छां० १।६।६
हत्तास्यैवरूपमसाम	बृ० ५।२१
हस्तो वै ग्रहः	बृ० ३।२८

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते!!

!! भगवते श्रीनिम्बार्काचार्याय नमः!!

!! श्री सद्‌गुरवे नमः!!



चक्र-शङ्ख एवं ऊर्ध्वपुण्ड्र से सुशोभित
मङ्गलप्रद-शुभप्रद-पुण्यप्रद-भक्तिवर्द्धक
परमशोभनीय साक्षात् भगवत्स्वरूप श्रीनिम्बार्कीय
वैष्णव तिलक-स्वरूप